Prakar
Vol 16 1984
G. K. V.
Hardwar

प्रकर

चैत्र : २०४१ (वि. सं.)
मार्च : १९८४ (ई.)

समीक्षित कृतियां

सम्पादकीय		
हिन्दीका संदिग्ध राजभाषा पद	३	वि. सा. विद्यालंकार
कहानी साहित्य		
आजकी हिन्दी कहानी - डॉ. भैरुंलाल गर्ग	५	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
आजकी कहानी—डॉ. विजयमोहन सिंह	६	,,
हिन्दी कहानी १९८०—सम्पा. डॉ. राकेश गुप्त, डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी	७	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
१९८१की श्रेष्ठ कहानियां सम्पा. डॉ. महीपसिंह	९	डॉ. यशपाल वैद
राजा निरबसिया कमलेश्वर	११	डॉ. हरदयाल
कस्बेका आदमी— ,,	१२	,,
हरिहर काका और अन्य कहानियां मिथिलेश्वर	१४	गोविन्दप्रसाद
अंधे आकाशका सूरज—राबिन शॉ पुष्प	१७	डॉ. शंकर पुणतांबेकर
एक बंगला बने न्यारा विजयमोहन सिंह	१८	डॉ. तेजपाल चौधरी
महकके ऊपर—कमलेश भारतीय	१९	डॉ. जवाहर सिंह
इसी शहरमें—सुरेन्द्र तिवारी	२१	डॉ. कीर्तिकेसर
दरारोंवाला बांध—कृष्ण शुक्ल	२१	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
राजस्थानके कहानीकार सम्पा. कमर मेवाड़ी	२३	सुरेन्द्र तिवारी
आतंक सम्पा. नंदल हितैषी	२४	डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी
हास्य-व्यंग्य		
शोक चिह्न हनुमंत मनगटे	२५	डॉ. शंकर पुणतांबेकर
नेताओंकी नुमाइश—डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी	२६	डॉ. साधना सक्सेना
काव्य-संकलन		
कहना आसान है—महाराज कृष्ण काव	२८	डॉ. इन्दु बाली
यादोंके नागपाश—राजकुमार सुमित्र	३०	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
दर्द दे दिया चलते-चलते—सुभद्रा खुराना	३१	डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा
संदर्भ ग्रंथ		
भारत १९८२—गवेषणा और संदर्भ विभाग	३२	सुभाषचन्द्र 'सत्य'
हिंसात्मक राजनीति		
नक्सलवादी आन्दोलन—विप्लवदास गुप्त	३४	डॉ. मूलचन्द गौतम
धर्म-समन्वय		
किरन्तन—सम्पा. डॉ. रणजीतकुमार साहा	३६	डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे
किशोर बाल-साहित्य	३८	
प्राप्ति-सूचना	४०	

वर्ष : १६ चैत्र : २०४१ (वि.)
अंक : ३ मार्च : १९८४ (ई.)

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकर

सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक
प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

भारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

विदेशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.०० रु.
हवाई डाकसे	२००.०० रु.

मत अभिमत

☐ क्या हिन्दी राजभाषा नहीं ?

श्री सुधाकर द्विवेदीकी पुस्तक 'हिन्दी : अस्तित्वकी तलाश'के समीक्षक डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री (देखिये : 'प्रकर' अक्तूबर' ८३) द्वारा उठाये गये मुद्दोंके संदर्भमें मुझे यह कहनाहै कि मुख्यतः ये मुद्दे उठाये गयेहैं : १. त्रिभाषा सूत्र अंग्रेजीकी यथास्थिति बनाये रखनेवाला सूत्र है, इसे समाप्त किया जाना चाहिये। २. हिन्दीभाषी क्षेत्रमें अहिन्दीभाषी क्षेत्रकी किसी भाषाका अध्ययन अनिवार्य किया जाना चाहिये। ३. संघीय भाषाके रूपमें हिन्दीका अध्ययन सारे देशमें आवश्यक किया जाना चाहिये। ४. हिन्दीको सचमुच राजभाषा बनानेके लिए एक निश्चित अवधि तय करना आवश्यक है क्योंकि अगली तैयारियां उसीके अनुरूप होंगी।

जहांतक क्रम संख्या १, २, ३ का संबंध है, ये शिक्षा मन्त्रालयके क्षेत्रमें आतेहैं और इस संबंधमें विशेष जानकारीके लिए उन्हींसे सम्पर्क उपयुक्त होगा। जहांतक क्रमसंख्या ४ में उठाये गये मुद्देका प्रश्न है उसके बारेमें राजभाषा संशोधन अधिनियम १९६७में निम्न प्रावधान है : "**सरकारी कामकाजके लिए अंग्रेजीका प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तबतक जारी रहेगी, जबतक इस व्यवस्थाको समाप्त करनेके लिए हिन्दीको राजभाषाके रूपमें न अपनानेवाले सभी राज्योंके विधान-मण्डल आवश्यक संकल्प पारित न करें और उसके बाद ऐसा करनेके लिए संसदका प्रत्येक सदनभी इस आशयका संकल्प पारित न कर दे।**

—**वीरकुमार मजोत्रा, निदेशक (राजभाषा),**
राजभाषा विभाग, गृह मन्त्रालय, नयी दिल्ली-३।

☐ 'प्रकर' दीपावली अंक

'प्रकर'के दीपावली अंककी प्रस्तुतिके लिए बधाई। आपने चारों ओरसे प्रश्नदंशित राष्ट्रीय एकताको समृद्ध करनेकी दिशामें एक अद्भुत कार्य कियाहै। भारतीय भाषाओंकी पुरस्कृत कृतियोंको एक साथ रखकर, उनपर समीक्षात्मक विचार करके आपने बिखरावके विरुद्ध बहुत सार्थक कदम उठायाहै। भाषाओं के विभाजनमें सर्वदेशीयके रूपमें हिन्दी और संस्कृतकी पहचान आपकी स्पष्ट दृष्टिका प्रमाण है। भारतीय भाषाओंका यही विभाजन आदर्श है।

कृतियोंपर समीक्षाएं भी योग्य व्यक्तियों द्वारा करायी गयीहैं। पुरस्कारकी संस्तुतियोंके प्रमुख अंशोंको अलगसे छापनेकी आपकी पद्धतिभी बहुत अच्छी लगी।

एक प्रश्न उठ सकताहै कि सभी भाषाओंकी कृतियोंकी श्रेष्ठताकी कसोटी साहित्य अकादमी पुरस्कारही क्यों ? आपने अपनी समर्थ भूमिकामें इसका समाधानभी प्रस्तुत कर दियाहै और साथही अपनी आकांक्षाओं-सीमाओंका

संकेतभी । प्रस्तुत अंक ऐतिहासिक महत्त्व अर्जित करेगा, ऐसा विश्वास है ।

—डॉ. रामदेव शुक्ल, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर ।

'प्रकर'का दीपावली अंक, जिसमें १९८२की अकादमी-पुरस्कार प्राप्त पुस्तकोंकी समीक्षाएं हैं, एक ऐतिहासिक महत्त्वका अंक है । इससे समस्त देशके साहित्य की पहचान अनायास उभरतीहै कि समग्रतः भारतीय साहित्य क्या है ! और साहित्यही तो किसी देशके स्वास्थ्यकी नब्ज है । इससे प्रकारान्तरसे साहित्य-अकादमी की पुरस्कार-नीतिपर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ताहै, जिस पर सम्पादकीयमें तथ्यपूर्ण संकेत हैं । राष्ट्रभाषा हिन्दी का यह दायित्व है कि वह ऐसे सर्वेक्षण प्रस्तुत करे । आपने इस दिशामें पहलकर निश्चयही स्तुत्य कार्य किया है । मैं समझता हूं, यह अनुष्ठान प्रतिवर्ष किया जाना चाहिये ।

समीक्षाओंके स्तरमें, ऐसे ऐतिहासिक आयोजनोंमें कुछ अधिक विवेचन-सूक्ष्मता अपेक्षित है । इस दृष्टिसे मराठी पुस्तक 'सौन्दर्यानुभव' पर डॉ. बांदिवडेकरकी समीक्षा एक सफल समीक्षा है । समीक्षकोंके पतेके साथ यदि समीक्ष्य-पुस्तकोंके प्रकाशनादि विवरणभी दिये जाते तो जिज्ञासुओंको पुस्तकें प्राप्त करनेमें सुविधा होती । प्रूफरीडिंगमें भी पर्याप्त सावधानीके लिए गुंजाइश है । इस श्लाघ्य प्रयत्नके लिए कृपया हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार करें ।

— कन्हैयालाल श्रोझा, ८/ए नन्दन रोड, भवानीपुर, कलकत्ता-७००-०२५.

☐ सम्पादकीय : 'राजभाषा और राज्यभाषाए''

'प्रकर' (फर. ८४) में आपका सम्पादकीय 'राजभाषा और राज्यभाषाए'' बड़ा विचारोत्तेजक लगा । अधिकांशतः आपसे सहमति है विशेषतः उग्रवादियोंकी राजनीति, भेदभाववाले प्रयासोंके कारण जो अलगाववादी प्रवृत्तियां पनप रहीहैं, उनकी ओर स्पष्ट उल्लेख आपने किया । लेकिन रवीन्द्रनाथ ठाकुरके मन्तव्यको लेकर मुझे सन्देह है । क्या उनका आशय यही था जो आपने समझाहै ?

मातृभाषामें लिखनेके लिए कहनेके पीछे भावना यह रहतीहै कि अन्तर्राष्ट्रीय होनेके चक्करमें जो लोग तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय भाषामें लिखकर 'अपना कद' बढ़ाना चाहतेहैं उस प्रवृत्तिकी रोकथाम करना । प्रान्तीय भाषाओं तथा मातृभाषाओंका हिन्दीसे विरोध नहीं है, विरोध है अंग्रेजीसे जो मातृभाषा, राष्ट्रभाषा दोनोंका प्राप्य हड़पतीहै और भारतमें बसे 'काले अंग्रेज' अपने विश्व व्यक्तित्वके चक्करमें अनजानेमें इसमें प्रयुक्त होतेहैं । रवीन्द्रनाथ ठाकुर यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीयताके प्रबल पक्षधर थे क्योंकि राष्ट्रीयताको अभिशाप साम्राज्यवादके विस्तारवादमें वे देख रहेथे । उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीयताके स्वस्थ और अभीष्ट रूपकी विरोधी कभी नहीं रही, हां अंध राष्ट्रवाद और उससे प्रेरित साम्राज्यवादकी विरोधी हमेशा रही ।

अतः बलराज साहनीको पंजाबीभाषी होनेके नाते पंजाबीमें लिखनेकी प्रेरणा देना मातृभाषाके प्रति उनके उत्तरदायित्वके प्रति सजग करनाहै न कि हिन्दीसे विमुख करना, यद्यपि व्यावसायिक कारणोंसे अनेक अहिन्दीभाषी और हिन्दीभाषी साहित्यकार अपनी भाषाओं और उर्दूको छोड़कर हिन्दीमें लिखने लगेथे । व्यवसायके अतिरिक्त उनका उद्देश्य अपने देशकी अधिकसे अधिक जनतासे जुड़नाभी हो सकताहै और कुछका था भी ।

अतः रवीन्द्रनाथ ठाकुरको अंग्रेज-अंग्रेजीभक्त वर्गकी विचारधारा और निष्ठाका प्रतिनिधित्व करनेवाला मानना उनके प्रति तो अन्याय है ही, मेरे विचारसे सत्यको अनदेखा करना तथा आग्रह विशेषको व्यक्त करनाभी है ।

—डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, हिन्दी विभाग, सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

[यह अधिक उपयुक्त होता यदि डॉ. गुप्त स्व. बलराज साहनीकी पुस्तक "मेरी धारणाएं और दृष्टिकोण' का 'हिन्दी साहित्यकारोंसे' ४१ पृष्ठका सरमन और स्व. दिलीपकुमार राय के संस्मरण और लेख, विशेषतः महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके संबंधमें लिखे संस्मरण पढ़ लेते.]

☐ पत्र सार

डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी दमोहसे लिखतेहैं कि किसी अंकमें विभिन्न राज्यों द्वारा पुरस्कृत ग्रन्थोंकी समीक्षाओंका विशेषांकभी निकालें तो बेहतर होगा ।

प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल सिरोहीसे लिखतेहैं कि विश्वविद्यालयोंके पाठ्यक्रमोंपर भी कुछ लिखें । मैं तो अपने राजस्थान विश्वविद्यालयकी हालतपर दंग हूं । लगभग हर साल पाठ्यक्रम बदलताहै और हर परिवर्तन ऐसा कि मानना पड़ताहै कि इससे तो पिछलाही बेहतर था । सारे परिवर्तन बंदर-बांटको ध्यानमें रखकर होतेहैं । ऐसे पाठ्यक्रमसे छात्रोंमें हिन्दीके प्रति रुचि नहीं अरुचिही उत्पन्न होगी । ☐ ☐

हिन्दीका संदिग्ध राजभाषा पद

कुछ समय पूर्व 'हिन्दी : अस्तित्वकी तलाश' पुस्तककी समीक्षामें डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्रीने कुछ मुद्दे उठायेथे और उनमें एक मुद्दा हिन्दीको वास्तविक रूपमें 'राजभाषा बनानेके लिए अवधि निश्चित करनेके संबंधमें था। इस संबंधमें गृहमंत्रालयके राजभाषा विभागके निदेशक महोदयने 'प्रकर' का ध्यान राजभाषा संशोधन अधिनियम १९६७ के प्रावधानकी ओर खींचाहै। इसके लिए निदेशक महोदयके हम आभारी हैं। इस प्रावधानकी शब्दावली इस प्रकार है: "उपधारा (१) के खण्ड (क) के उपबन्ध और उपधारा (२), और उपधारा (३) और उपधारा (४) के उपबन्ध तबतक प्रवृत्त बने रहेंगे जबतक उनमें वर्णित प्रयोजनोंके लिए अंग्रेजी भाषाका प्रयोग समाप्त कर देनेके लिए ऐसे सभी राज्योंके विधान-मण्डलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दीको अपनी राजभाषाके रूपमें नहीं अपनायाहै, संकल्प पारित नहीं कर दिये जाते और जबतक पूर्वोक्त संकल्पोंपर विचार कर लेनेके पश्चात् ऐसी समीक्षाके लिए संसदके हरएक सदन द्वारा पारित नहीं कर दिया जाता।" इस प्रावधानमें उल्लिखित उपधारा (१) और इसके खण्ड (क) और खण्ड (ख) के उपबन्ध इस प्रकार हैं : 'संविधानके प्रारम्भके पन्द्रह वर्षकी कालावधिकी समाप्ति होजानेपर भी, हिन्दीके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा नियत दिनसे ही (क) संघके उन सब राजकीय प्रयोजनोंके लिए जिनके लिए वह उस दिनसे ठीक पहले प्रयोगमें लायी जातीथी, तथा (ख) संसद्में कार्यके संव्यवहारके लिए प्रयोगमें लायी जाती रह सकेगी।" इस पूरी वैधानिक शब्दावलीका अभिप्राय यह है कि संविधान द्वारा २६ जनवरी १९६५के बादसे हिन्दीको राजभाषा पदपर बिठाकर पूरा प्रशासनिक कार्य हिन्दीमें प्रारम्भ करनेका जो प्रावधान किया गयाथा, उसे तबतक स्थगित कर दिया गया जबतक राज्योंके विधान-मण्डल अंग्रेजीको समाप्त करनेका संकल्प पारित नहीं कर देते और संसद्के दोनों सदन उसकी पुष्टि नहीं कर देते।

इस प्रावधान द्वारा तीन स्थितियां उत्पन्न हो गयीहैं। प्रथम तो हिन्दीका प्रशासनिक व्यवहार, अतएव राजभाषा पद, तबतक अधरमें लटक गया जबतक राज्योंके विधान-मण्डल हिन्दीको यह पद और कार्य प्रदान करनेके लिए सहमत न हों। तमिलनाडु और नागलैण्ड जैसे राज्य अंग्रेजीके प्रयोगको समाप्त करनेके लिए सहमत होंगे, यह अबूझ पहेली बनी रहेगी, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी। दूसरी स्थिति यह उत्पन्न होगयीहै कि संवैधानिक प्रावधानको बिना निरस्त किये या रद्द किये संविधानकी भावना और संविधान-सभामें घोषित आशयके विपरीत हिन्दीको नाममात्रकी राजभाषा बने रहने दिया गया और वास्तविक रूपमें राजभाषाका पद अंग्रेजी को दे दिया गया। इससे सम्बद्ध तीसरी स्थिति यह उत्पन्न होगयी, जो संवैधानिक समस्याभी है, कि संविधानमें संसदको तो अंग्रेजीके प्रयोगकी कालावधि बढ़ानेका अधिकार प्रदान किया गयाहै, परन्तु राज्योंके विधान-मण्डलोंको अंग्रेजीको बनाये रखनेका अथवा हिन्दीके प्रयोगको रोकनेका कोई निषेधाधिकार प्रदान नहीं किया गया।

प्रकारान्तरसे हिन्दीका प्रशासनिक व्यवहार अनिश्चित कालके लिए स्थगित हो गयाहै। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हिन्दीको वास्तविक रूपमें 'राजभाषा' बनानेकी मांग उठे। एक ओर तो अपने-आपको हिन्दीभाषी मानने-वाले क्षेत्रोंकी दुविधाग्रस्तता, किंकर्तव्य-विमूढ़ता और राजनीतिक चेतनाके अभावके कारण हिन्दीको वास्तविक रूपमें 'राजभाषा' पद प्रदान करनेकी मांग सशक्त रूपसे नहीं उठ पारही, दूसरी ओर इन क्षेत्रोंके विधि-विशेषज्ञ समाजशास्त्री और बुद्धिजीवी इतने आतंकित प्रतीत होतेहैं कि देशपर अंग्रेजी लादे रखनेवाले अंग्रेजीभक्तों, प्रशासकों और राजनीतिज्ञोंका साहसके साथ सामना नहीं कर पारहे। यह स्वीकार करनेमें कठिनाई होतीहै कि इस क्षेत्रके विधि-विशेषज्ञोंका इन वैधानिक और संवैधानिक असंगतियोंकी ओर ध्यान नहीं गया, या उनका ध्यान खींचा नहीं गया। हिन्दी-संगठनों और संस्थाओंके अनुदान-जीवी होजानेसे उनका मौन किसी टिप्पणीकी अपेक्षा नहीं रखता। फिरभी, यदि यह माँग उठतीहै और अंग्रेजीको वास्तविक राजभाषा बनाये रखनेका विरोध होताहै तो उसकी इसलिए उपेक्षा संभव नहीं क्योंकि अंग्रेजीके कारण प्रशासन और जनता दोनों ठीक दो विपरीत दिशाओंमें बढ़ रहेहैं। उनका अन्तर, उनकी दूरी, अंग्रेजी लादे रखनेके लिए व्यय कीजा रही

अरबोंकी राशिभी रोक नहीं सकती बल्कि जनताकी सहज चेतनाको आलोड़ितकर रहीहै और उसकी अभिव्यक्ति किस रूपमें होगी, यह अनुमानका विषय है। वस्तुतः भाषा और जनसाधारण दोनोंकी संलग्नताका विषय समाजशास्त्रियोंका है, संभवतः वे अधिक सही रूपमें इसपर प्रकाश डाल सकें, पर अभीतो देशके समाजशास्त्री भी 'भाषा-विवाद' के हौवेसे आतंकित हैं। वस्तुस्थिति यह है कि 'भाषा-विवादका हौवा दिखाकर तथा इसकी आड़में हिन्दी-विरोधी आतंकका वातावरण बनाकर देशपर अवैध रूपसे अनिश्चित कालतक अंग्रेजी लादे रखनेकी चाल चली गयीहै।

अनिश्चित कालतक अवैध रूपसे अंग्रेजी लादे रखनेकी प्रासंगिकता इसलिए है क्योंकि संविधानमें अंग्रेजीके प्रयोगकी कालावधिको बढ़ानेके जो अधिकार संसद्को दिये गयेथे, वे सीमित थे, वे निश्चित रूपसे कुछ विशिष्ट प्रयोजनों और आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर दिये गयेथे, न कि अंग्रेजीको पूर्ण रूपसे लादे रखनेके लिए या राजभाषा संशोधन अधिनियम १९६७ की ऊपर चर्चित उपधारा (१) के खण्ड (क) और खण्ड (ख) के अनुरूप अबाध अधिकार। संविधान सभामें अबाधअधिकारोंके विपरीत जो आश्वासन दिये गयेथे और संविधानपर उस समय अधिकारी व्यक्तियोंने जो टिप्पणियाँ प्रकाशित करायीं या ग्रन्थ लिखे उनमें यह बात प्रायः दोहरायी गयी कि अंग्रेजीकी स्थितिको पहले जैसी बनाये रखनेका अबाध अधिकार संसद्कों नहीं है। इस प्रसंगमें संविधान-सभाके सदस्य और तत्कालीन परिवहन तथा रेलके राज्यमंत्री श्रीके. सन्तानमने "भारतीय संविधान" पुस्तकमें जो टिप्पणियाँ लिखीहैं, उनके संबंधमें पुस्तककी भूमिकामें उन्होंने लिखाहै : "संविधानके विभिन्न अनुच्छेदोंपर जो टिप्पणियां और व्याख्याएं प्रस्तुत की गयीहैं, वे सामान्य ढंगकी नहीं हैं। यह मेरा सौभाग्य रहा कि मैं आरम्भसे ही संविधान-निर्माणके कार्यसे सक्रिय रूपसे जुड़ा रहाहूं। महत्त्वपूर्ण अनुच्छेदोंसे सम्बद्ध विवादोंमें मैंने भाग लियाहै। इसलिए इसी प्रकारकी अन्य कृतियोंमें विद्यमान टिप्पणियोंकी तुलनामें ये अधिक व्यापक रूपमें इन विवादोंका विवरण प्रस्तुत करतीहैं।" 'राजभाषा संबंधी अध्यायमें राजभाषा संबंधी अनुच्छेद ३४३ की धारा (३)—पन्द्रह सालकी कालावधिके पश्चात् विधिद्वारा अंग्रेजीके प्रयोगको जारी रखनेके प्रावधान—पर टिप्पणी करते हुए लिखाहै : धारा (१) का प्रावधान (संघकी भाषा राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी) संक्रमण कालीन व्यवस्थाओंको छोड़कर निर्बाध-अप्रतिबद्ध-पूर्ण है।' धारा (३) की यह व्याख्या नहीं की जा सकती कि इस अनुच्छेदके प्रावधानके संबंधमें संसद्को असीमित अधिकार प्राप्त हैं। धारा (३) पर टिप्पणी करते हुए लिखाहै : "पन्द्रह वर्षकी कालावधिके बाद लगभग सभी प्रयोजनोंकी दृष्टिसे अंग्रेजीका स्थान हिन्दी द्वारा ग्रहण कर लेनेकी आशाहै, परन्तु यह अनुभव किया गया कि वैज्ञानिक अनुसंधानके कुछ क्षेत्रोंमें अंग्रेजीका प्रयोग जारी रखना आवश्यक हो सकताहै। परन्तु यह कार्य संसद् द्वारा **निश्चित और स्पष्ट विधायन** द्वारा किया जाना आवश्यक होगा।" हमारी धारणा यह है कि राजभाषा अधिनियम १९६३ और राजभाषा संशोधन अधिनियम १९६७ के प्रावधान, अंग्रेजीको अनिश्चित कालके लिए जारी रखने और व्यापक रूपसे व्यवहारके सभी क्षेत्रोंमें उसका प्रयोग जारी रखने, संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओंका उल्लंघन करते है और संविधान सभाकी भावना और आशयके विपरीतहै, इसलिए अवैध है।

इन्हीं कारणोंसे, हमारी दृष्टिसे, हिन्दीके लिए राजभाषा पद भी संदिग्ध हो गयाहै और हिन्दीको उसके संवैधानिक अधिकारसे वंचितकर दिया गयाहै। न केवल अब इस स्थितिमें संशोधन होना चाहिये बल्कि हिन्दी को वास्तविक रूपमें 'राजभाषा' बनानेके लिए अवधि निश्चित की जानी चाहिये। संवैधानिक व्यवस्थाओं और प्रावधानोंके अन्तर्गत राज्य विधान-मंडल अथवा स्वयं संसद तबतक इसमें हस्तक्षेप करनेकी अधिकारी नहीं जबतक संविधानमें ही संशोधन न किया जाये। □

आजकी हिन्दी कहानी[1]

[विवेचनात्मक निबन्ध]

लेखक : डॉ. भैरुंलाल गर्ग
समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृति आजकी हिन्दी कहानियोंके विकास, मूल्यांकन, प्रवृत्तियों और उपलब्धियोंका प्रामाणिक लेखाजोखा प्रस्तुत करतीहै । आजकी कहानियोंके संदर्भमें तेरह निबन्ध हैं :—कहानी : नयी कहानी, कहानी-सृजनकी पहचानका निकष : आदमी, मानव नियतिकी विडम्बनाका साक्षात्कार, ग्राम जीवनका यथार्थ और आधुनिकताका सवाल, विभाजनगत संवेदना और हिन्दी कहानी, सातवें दशककी हिन्दी कहानी, समांतर कहानीका प्रथम संकलन: जीवन संघर्षका व्यापक संदर्भ, पारिवेशिक यथार्थ और अनुभवगत सत्यता, सामाजिक चेतनाकी सफल अभिव्यक्ति, जीवनगत संघर्ष और वैचारिक जीवंतताकी कहानियाँ, आठवें दशकके कहानीकार, समकालीन कहानीकी भाषा, उपलब्धि और सीमाएं । नयी कहानीका स्वरूप स्पष्ट करते हुए लेखककी मान्यता है—'नयी कहानीसे पूर्वकी कहानी पारिवेशिक यथार्थ और अनुभवगत प्रामाणिकतासे दूर थी । यही कारण है कि यह कहानी फार्मूलाबद्ध थी ।'' (पृ. ९) प्रेमचन्दकी कहानी 'कफन' और 'पूसकी रात' (उनकी अनेक कहानियोंसे उदाहरण दिये जा सकतेहैं) में अनुभूत सत्य और पारिवेशिक यथार्थकी व्यंजनाका स्वर प्रकर्षपर हैं । क्या इसे नयी कहानीके अंतर्गत नहीं लिया जासकता ? घीसू और माधवके द्वारा समाजका एक वर्ग कितना बेनकाब और बेलौस होताहै, यथार्थकी कितनी नग्न और कटु अभिव्यक्ति होतीहै—इस ओर लेखकका ध्यान कम जाताहै, डॉ. नामवर सिंह और कमलेश्वरके कथनसे साक्ष्य जुटानेकी ओर अधिक रहताहै । कहानी संघर्ष और जटिलताकी उपज हैही । समृद्धि और ऐश्वर्यकी सभ्यता महाकाव्यमें अभिव्यंजना पातीहै और जटिलता संघर्ष उपन्यासोंमें । यह जटिलता जब औरभी जटिलतर होजातीहै, आदमी इतना व्यस्त होताहै कि जीवनमें एक खंडसे ही समग्र जीवनको जानना चाहताहै, तो कहानी जन्म लेतीहै । लेखककी मान्यता है—''आजका कहानीकार जीवनकी जटिलताओंके प्रति अधिक सन्नेष्ट है । वह पुरातन मिथ्या आदर्शों और नैतिकताओंसे अपने आपको मुक्तकर चुकाहै । यथार्थ जीवनके आधारपर वह पुरातन मानव-मूल्योंका खण्डन और नवीन मानव मूल्योंका मण्डन करना चाहताहै ।'' (पृ. १०) पहलेके कहानीकारोंके साथभी ये शर्तें लागू हो सकतीहैं, पर जीवनको देखनेके नजरिए और मानवमूल्योंको सहेजनेकी दृष्टिसे अन्तर आ जाताहै । नयी कहानी न आदर्शका लबादा ओढ़कर चलतीहै और न किसी नैतिक मूल्यको लादनेके प्रतिप्रति बद्ध है । उसकी दृष्टि खुली और नीर-क्षीर विवेकी है । वह भोगे गये क्षणोंको उकेरकर समग्र जीवनको तलाशना चाहतीहै ।

महानगरीय जीवनके विसंगतियों, संत्रास, अकेलेपन, कुंठा, अजनबियतसे जन्मी है समकालीन कहानी । लेखकका कहना सही है—''इस कहानीमें जहां मानव-मन की उथल-पुथल और पीड़ाको वैज्ञानिक स्तरपर विश्लेषित करनेका प्रयास हुआहै, वहीं व्यवस्था और समाजके संदर्भमें व्यक्तिका अध्ययनकर यथार्थ और व्यंग्यके स्तरपर प्रामाणिक अभिव्यक्ति दी गयीहै ।'' (पृ. २३) इसके साथही लेखकने कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, कृष्ण बलदेव वैद, मोहन राकेश आदिकी कहानियोंसे साक्ष्य देकर अपनी स्थापनाओंको तर्कसम्मत आधार दियाहै । एक उदाहरण द्यातव्य है—''मोहन राकेशकी कहानी 'एक ठहरा हुआ चाकू'में व्यक्त भय सम्पूर्ण समाजका भय है, जो परिवेशगत असुरक्षाका परिणाम है ।'' (पृ. २७)

'उपलब्धि और सीमाएं' शीर्षक उपसंहारात्मक निबन्धसे कृति अधिक उपयोगी होगयीहै । लेखकने कहानीकी सार्थकताकी कसौटी रचनात्मक स्तरपर सामाजिक संसारकी आंतरिकतासे जुड़नेको मानाहै,

१. प्रकाशक : चित्रलेखा प्रकाशन, १४७ सोहबतिया बाग, इलाहाबाद-६ । पृष्ठ : १०४; डिमा. ८३; मूल्य : २५.०० रु. ।

परिमाणात्मकताको नहीं । उसका विचार एकदम सही है कि 'सामान्य जनके प्रति सहानुभूति, उसकी पराजयकी स्थिति, उसके दुःख, नैराश्य, हताशा और एकाकीपनके प्रति जो दृष्टि आजकी कहानीने अपनायी है, वह निःसन्देह प्रसंशनीय है।" लेखक साक्ष्योंको जुटानेकी अपेक्षा संदर्भित कृतियोंमें स्वयं पैठनेका प्रयास करता, तो कृति अधिक मूल्यवान् होती, फिरभी लेखकके श्रम, उसकी आलोचना पद्धति आदिको सराहा ही जा सकताहै । □

आजकी कहानी[1]

लेखक : डॉ. विजयमोहन सिंह

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृतिमें लेखकके कहानियोंको लेकर १९६५-८२ के मध्य लिखे गये निबंध संगृहीत हैं। इसमें अधिकतर पुस्तक-समीक्षाएं हैं, जो हिन्दी कहानीकी विभिन्न प्रवृत्तियों और विशेषताओंका सम्यक् उद्घाटन करतीहैं। कहानीकी विकास-यात्राके विभिन्न मोड़ों और पड़ावों को रेखांकित करनेके कारण इन निबंधोंमें क्रमबद्धता देखी जा सकतीहै। कहानी केवल कहानी नहीं होती, वरन् अपने तत्कालीन समाज और जीवनकी प्रतिबिंब होतीहै। इसलिए लेखक समीक्षा करते हुए उस प्रतिबिंब पर अपनी राय व्यक्त करता गयाहै, जो कहानी और उसके परिवेशको नजदीकसे समझनेमें सहायक हुईहै।

कृतिके प्रारंभमें हिन्दीके तीन वरिष्ठ कहानीकारोंपर स्वतन्त्र निबंध हैं—गुलेरी, प्रेमचन्द तथा मुक्तिबोध। यद्यपि प्रथम दो कहानीकार समकालीनतासे सीधे सरोकार नहीं रखते, पर समकालीन हिन्दीका मूल स्रोत उन कहानीकारोंको मानना होगा। अतः वहां अगर एक प्रस्थान बिंदु है तो आंतरिक और पारस्परिक संबंधभी। 'आधुनिक हिन्दीका प्रस्थान बिंदु' (पृ. ११) गुलेरीजीकी कहानियों ('सुखमय जीवन'-१९११, बुद्धूका कांटा-१९११ और 'उसने कहाथा'-१९२५) की प्रवृत्तियों, विशेषताओंका विवेचन करताहै, साथही इस ओरभी संकेत करताहै कि 'उसने कहाथा' की श्रेष्ठताके क्या कारण हैं। यद्यपि अन्य दो कहानियां तीसरीकी तुलनामें नगण्य लगतीहैं पर गुलेरीकी विकास यात्राको स्पष्ट करतीहैं कि सभी कहानियां प्रेम कहानियां ही है। इसकी परंपराकी ओर लक्ष्य करते हुए लेखकका कहनाहै—"...गुलेरीजीके गरिष्ठ पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्वसे यह रस स्रोत कहांसे फूट पड़ा ? किन्तु जाननेवाले जानतेहैं कि संस्कृतकी—और भारतकी—पांडित्य परंपरामें ऐसी रसज्ञता अपवाद नहीं रहीहै और हिन्दीमें तो इस परंपरा की शुरूआत जहां गुलेरीजीसे होतीहै, तो दूसरी ओर इसका चरम रूप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे रसज्ञ चिंतकोंमें परिलक्षित होताहै।" (पृ. १२) प्रेमकी व्यापकता और उसके लिए प्राणोत्सर्ग इस कहानीका मूल उत्स है। इसकी विशेषता पूर्वदीप्ति शैली है, जो कहानीके पूर्वार्द्धको उत्तरार्द्ध से जोड़तीहै। लेखकका कहना एकदम सही है-"हिन्दीमें आगे चलकर सफलतम प्रयोगशील उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' में पूर्वदीप्ति शिल्पका जिस प्रकार उपयोग करते हुए 'मृत्युके साक्षात्कार' के क्षणोंमें समयके पारदर्शी होनेकी जो बात कही गयी उसके बीज भी कहीं-न-कहीं 'उसने कहाथा' कहानीमें पाये जा सकतेहैं। (पृ. १५) उनकी तीनों कहानियां उनके समग्र साहित्यकी कुंजी तो हैंही, कथा साहित्यके विकासमें उनका अप्रतिम योगदानभी है ।

लेखक 'प्रेमचन्दकी कहानियां' (पृ. १८) में उनकी विशेषताका उल्लेख करते हुए उसे सचेत और मुक्त रचनाकार मानताहै। यही उनकी कहानियोंकी शाश्वत लोकप्रियताका कारणभी है। लेखककी स्थापना है—"उन्होंने इन सभी स्थितियोंके बीच अपनेको एक मुक्त तथा सचेत रचनाकारकी हैसियतसे गुजरने दियाहै, उन स्थितियोंके सबसे 'नुकीले' तथा 'नायाब' रूपको उभारते हुए।" (पृ. १९) इसलिए प्रेमचन्दको किसी खास वर्ग, व्यक्तिका कहानीकार नहीं कह सकते। उनकी कहानियोंके विकासका ग्राफ इसलिए नहीं उलझता कि वे अपनी कहानियोंके माध्यमसे पूरी जिंदगीको उसकी समग्रता और संपूर्णतामें समझना चाहतेथे। फलतः उनके पात्रोंका संसार बड़ा व्यापक है। नाना समस्याएं, नाना समाधान और सबके भीतर अंतःसलिला सरस्वतीकी तरह भारतकी आशा, आकांक्षा, स्वप्न, संस्कारका अजस्र प्रवाह ।

दो निबंधोंके बाद शीर्षकसे ही निबंधकी आत्माका पता चल जाताहै तथा 'सांवली गहराइयोंकी कहानियां' —पृ. २६ (मुक्तिबोधकी कहानियां), 'हिन्दी कहानी का तीसरा व्यक्तित्व'—पृ. २७ (मोहन राकेशकी कहा-

---

[1] प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १५५; डिमा. ८३; मूल्य : ३५.०० रु.।

नियाँ), 'मुकम्मिल क्लासिककी परंपरा'—पृ. ५० (धर्मवीर भारतीकी कहानियाँ), 'चुपचाप खत्म होते हुए' पृ. ५४ (राजकुमारकी कहानियां) आदि आदि। इस प्रकार शीर्षकके प्रथम साक्षात्कारसे ही ज्ञात होता है कि लेखक किस मुख्य मुद्देको तरजीह देना चाहताहै।

मुक्तिबोधकी कहानियोंके मूल्यांकनमें बराबर इस बात का ध्यान रखना होगा कि "वे नैतिक प्रश्नोंसे जिस तरह टकरातेहैं, वह उन्हें सौंदर्यवादी नहीं बनाता। हर कहानीमें स्थितिकी 'घटनात्मकतासे' अधिक उससे जुड़े हुए मूल्य की चिंता उन्हें ज्यादा रहतीहै, जिससे कभी-कभी लग सकताहै कि किसी सामान्य घटनाके प्रति वे अतिरिक्त तरल रूपमें प्रतिक्रिया कर रहेहैं।" (पृ. २६) 'जिदगी की कतरनें' में निर्मलाकी आत्महत्या उन्हें 'आत्महत्या' के मौलिक मनोविज्ञानकी ओर ले जातीहै। वे जिंदगी का अमूर्तन भी नहीं करते। वे उसे ठेठ वर्ग-संदर्भमें रख-कर परखते और विश्लेषित करतेहैं। वे मध्यवर्गका दामन थामे रहतेहैं, जिसके माध्यमसे वे अपनेको तथा समाजको परखना चाहतेहैं। उनकी स्वीकारोक्ति ध्यातव्य है—"मध्यवर्गीय समाजकी साँवली गहराइयोंकी रुंधी हवाकी गंधसे मैं उसी तरह वाफिक हूं जैसे मल्लाह समुन्दर की नमकीन हवासे" (जिंदगीकी कतरनें' कहानी—मुक्तिबोध रचनावली ३, पृ. ७४)

इसमें दो मत नहीं कि लेखकने अपनी नीरक्षीर विवेकी दृष्टिसे समकालीन कहानीकारों और उनकी कहा-नियोंकी अंतरात्मामें प्रवेशकर कई अछूते, अनकहे तथ्यों को उजागरकर कहानीकी विकास यात्राको गति दीहै। 'बंद गलीका आखिरी मकान' (धर्मवीर भारती) पर लेखकीय टिप्पणी द्रष्टव्यहै—"यह शीर्षक जीवनकी संभावनाहीनताको सीमातक पहुंचा देताहै। 'बंद' और 'आखिरी' इन दो-दो विशेषणोंके बीच रोमाँटिक निराशावादका वह विकृत रूप दिखायी पड़ताहै जो 'आत्मदीनता' को व्यापार बनाता है।" (पृ. ५०) इस एक स्थापनासे ही भारतीके कथाकारकी सीमा और शक्तिका सहजही पता चल जाताहै। "इन सभी कहा-नियोंमें बेहद एकरसता है और इस लंबे अरसेमें कहानी-कारकी 'दृष्टि' और 'टेकनीक' एकही स्तरपर एकही बीमार संवेदनासे चिपकी रहतीहै।" (पृ. ५१) लेखक की दृष्टि खुली, निर्णीत और मुक्त है। उसे किसीके रुष्ट होने और तिलमिलानेकी परवाह नहीं है। भाषा पर लेखकका सहज अधिकार है। प्रस्तुत कृति गुलेरीजी से ज्ञानरंजन तक की कहानियोंकी विकास यात्राका दस्तावेज है, जो लेखककी साधना और प्रतिभाका अप्रतिम निदर्शन है। □

हिन्दी कहानी १९८०[1]

सम्पादक : राकेश गुप्त, ऋषिकुमार चतुर्वेदी
समीक्षक : वेदप्रकाश अमिताभ

एक लोकप्रिय विधाके रूपमें कहानीकी हैसियतका अंदाज इस बातसे भी लगाया जा सकताहै कि हर वर्षकी प्रतिनिधि कहानियोंके कई संग्रह प्रकाशित होने लगेहैं। आलोच्य कृति 'ग्रंथायन' द्वारा प्रकाशित पंचम वार्षिक संकलन है। 'प्राक्कथन' में कहा गयाहै : "इन पांच संकलनोंमें इस अवधिमें रचना करनेवाले ८३ कहानी लेखकोंकी १०६ कहानियाँ सम्मिलित कीजा सकीहैं। किसी वाद या गुटसे अपनेको सर्वथा अलग रखते हुए हमने कहानीको उसके कहानीपनके आधारपर ही परखने का प्रयत्न कियाहै।" ८० की कहानियोंके संग्रहको देखते हुए संपादकके वाद-मुक्त या गुटरहित होनेके दावे पर विश्वास किया जा सकताहै। इसमें एक ओर सारिका, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि व्यावसायिक पत्रों से संबद्ध कहानीकारोंकी कहानियां मौजूद हैं, दूसरी ओर संजीव, मोहरसिंह यादव, मनीष राय आदिकी कहानियांभी हैं, जो व्यावसायिक पत्रोंके अतिरिक्त लघु पत्रिकाओंमें भी प्रकाशित होते रहतेहैं।

आलोच्य कृतिमें संगृहीत इक्कीस कहानियोंके साथ 'हिन्दी कहानी : एक अर्द्धदशक' शीर्षकसे ऋषि-कुमार चतुर्वेदीका एक आलेखभी नत्थी है। इसमें '७६ से '८० तककी कहानियोंमें उनकी मुख्य प्रवृत्तियोंको बखूबी 'अंकित' किया गयाहै। बकौल श्री चतुर्वेदी आज की कहानी कहानी नहीं हैं, सचमुचकी जिन्दगी है, जो प्रतिक्षण आम आदमी द्वारा भोगी और जी जारहीहै। आजके गांवकी कहानीको समीक्षकने प्रेमचंदके 'पंच-परमेश्वर' की आस्थाके ढहनेकी कहानी कहाहै। लेकिन इस आस्था-स्खलनको श्री चतुर्वेदी श्लाघ्य मानतेहों, ऐसा नहीं लगता। एक अन्य स्थानपर वे लिखतेहैं : "...

---

१. प्रकाशक : ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़-२०२-००१। पृष्ठ : ३००; डिमा. ८३; मूल्य : ५०.०० रु.।

यदि साहित्यको जीवित रखनाहै और उसे आमजीवन से जोड़नाहै तो प्रेमचन्दकी आस्थाओंको जरूर वापस लाना होगा…।" समकालीन कहानीके रूपबंधसे गुजरते हुएभी चतुर्वेदीकी स्थापना है कि जहां शैलीगत वैशिष्ट्य का अभाव है, वहीं शैलीका कच्चापन बहुत कम कहानियोंमें उपलब्ध है।

यह आकस्मिक नहीं है कि संगृहीत कहानियां अधिकतर मौजूदा न्याय-व्यवस्थाके प्रति स्पष्ट अविश्वास व्यक्त करतीहैं। क्रमशः यह अविश्वास समूची व्यवस्थाके प्रति तीव्र आक्रोश और संयत विरोधकी शक्ल लेता गयाहै। 'उऋण' में व्यक्त पंच परमेश्वरी न्यायके प्रति सप्पूकी वितृष्णासे स्पष्ट है कि अब आम आदमी कथित पंच परमेश्वरके अन्यायको ढोनेके लिए तैयार नहीं है। कहानीके अंतमें सप्पूके साथ आठ-दस जवानोंका उठ खड़ा होना बहुत खुला संकेत है कि विरोध केवल 'व्यक्ति' तक सीमित न रहकर 'सामूहिक' बननेकी ओर अग्रसर है। यही स्थिति 'रघुपाल टोला' (मिथिलेश्वर) में है। अन्यायके प्रतिकारकी शुरुआत रघुपालके वीर व्यक्तित्वसे होतीहै, लेकिन बादमें पूरा टोला शोषणके खिलाफ लड़ने लिए तैयार होजाताहै। इस संदर्भमें कहानीकारकी यह टिप्पणी बदली हुई स्थितियोंको सही ढंगसे सूचित करती है: 'लोगोंकी व्यक्तिगत विशेषताएं और अपना-अपना अलग व्यक्तित्व कुछ समयके लिए बिलकुल खत्म हो गयाथा और वर्गीय चेतना पूरी तरह सबोंके ऊपर हावी हो गयीथी।' 'शिलान्यास' (मनीष राय) में व्यवस्था-विरोध कानूनको अपने हाथोंमें लेनेकी हदतक पहुंच गया है। न्यायमूर्तिकी हत्या करनेके बाद 'नैरेटर'को अपने कियेपर कोई अफसोस नहीं होता। उसका दुस्साहस केवल व्यक्तिगत प्रतिशोध नहीं है, समूचे शोषित वर्गकी हित-कामना उससे जुड़ी हुईहै: 'मैं तो बस इतना जानता हूं कि मेरे भाइयोंको दो जून रोटी मिले, उनका तन ढके और सिर छिपानेको उनके पास झोंपड़ी हो।'

मौजूदा व्यवस्थाकी असंगतियों और क्रूरताओंपर कठोरतम टिप्पणी संजीवकी कहानी 'अपराध' में है। इस कहानीमें बोध, भाषा और 'फार्म' का तालमेल इतना औचित्यपूर्ण है कि समग्र प्रभाव बेहद नुकीला और विचारोत्तेजक बन गया है। कथित नक्सलवादके तहत किस तरह बहुतसे प्रतिभाशाली युवक-युवतियोंने जनविरोधी व्यवस्थाके विरुद्ध जमकर संघर्ष किया और किस तरह पुलिसने न्याय और कानूनकी रक्षाके नामपर उनके साथ अमानवीय सलूक किया, इसका एक प्रामाणिक ब्यौरा 'अपराध' में उपलब्ध है। कहानीकारने बहुत सलीकेसे यह भयावह प्रश्न उठायाहै कि अपराध शचिन और संघमित्राने कियाहै या पुलिस तंत्रसे जुड़े हुए लोग अपराधी हैं? 'नैरेटर' से कहे गये शचिनके ये शब्द उन सभी लोगोंपर लागू होतेहैं, जो न्याय और कानूनके पहरुए बने हुएहैं: 'तुम्हारी नीयत अपराध मिटानेकी नहीं, उसपर फलने-फूलनेकी है।'

'अपराध' जैसी कहानियां जहां व्यवस्थापर सीधे चोट करतीहैं, वहीं 'जन्नत न गयी' (से. रा. यात्री), 'वहींके वहीं' (श्रवणकुमार), 'कुड़िया' (मोहरसिंह यादव) जैसी कहानियां उन स्थितियोंको सामने लातीहैं, जिनके चलते निम्न वर्गके लोग व्यवस्थामें बदलावके पक्षधर हो चलेहैं। 'कुड़िया' की त्रासदी आजके करोड़ों शोषितोंकी त्रासदी है जबकि 'वहींके वहीं' में कारीगरका आक्रामक होना एक नयी शुरुआत है। 'जन्नत न गयी' का टोन शुरुसे आखिर तक व्यंग्यात्मक है और यह स्पष्ट करतीहै कि खलनायक अब नये-नये मुखौटे लगा कर अपनी स्वार्थसिद्धि कर रहेहैं। इन मुखौटोंमें एक मुखौटा गांधीजीका भी है।

आलोच्य संग्रहकी कुछ कहानियां पारिवारिक दायरे में रक्त संबंधोंके तनाव, अलगाव और टूटनको रेखांकित करतीहै। दयानंद अनतकी कहानी 'वियोगानंद' में वृद्ध-मनोविज्ञानका एक नया पक्ष उभराहै। आठवें दशक की कई कहानियोंमें प्रायः बूढ़ी पीढ़ीके दर्द और तकलीफ को इस अंदाजमें प्रस्तुत कियाहै कि वृद्धोंकी निरीहता और असहायता मुखर हो उठीहै। इसके विपरीत 'वियोगानंद' का वृद्ध पिता स्वावलंबी और समर्थहै। बेटों द्वारा भेजी गयी रकम पिताकी मृत्युके बाद मय सूदके उन्हें मिल जातीहै। 'अवकाशप्राप्त' (शशिप्रभा शास्त्री) केवल संबंधोंके उधेड़बुनकी कहानी नहीं है। ऋषिकुमार चतुर्वेदीने सही अंकित कियाहै कि इसमें नारीके शोषण का एक विशिष्ट पक्ष अंकित हुआहै। मनःस्थितियोंके उतार-चढ़ावको सूक्ष्मतासे आंकनेमें लेखिका पूर्णतः सफल रहीहै। नारीके समातन शोषणका हादसा 'झरोखेसे मुंडेर तक' (मंजुल भगत) में भी पढ़ा जा सकताहै। इसी परम्परागत शोषणकी प्रतिक्रियामें 'प्रीति' जैसी आधुनिकाएं जन्म ले रहीहैं, जो अपनी खुशी और शांतिको खुद अर्जित करतीहैं। 'मेरे लिए नहीं' (राजी सेठ) की प्रीति विवाह नहीं करना चाहती: 'पत्नी…जिसे तुम सब

पत्नी कहतेहो, वह मैं नहीं होसकती...कभीभी नहीं। मेरे अंदर दूसरोंको उस हदतक एडजस्ट करनेका माद्दा नहीं हैं......नो हाउ टू किल देम सलेक्स फॉर अदर्स।' 'मिसफिट' (रमेश गुप्त) की इलाभी शादीको बुर्जुआओं के चोंचले मानतीहै। वह समूची व्यवस्थामें बदलाव चाहती है: 'होल सेल' चेंज—वैल्यूजमें, पालिसीमें, एक्शनमें। पर यह हो नहीं सकता, क्योंकि इस मुल्कमें 'सिर्फ शाब्दिक' क्रांति करनेवालोंको पूजा जाताहै...।' 'उत्तर राग' हांलाकि प्रौढ़ोंके प्रेमकी कहानी है, लेकिन उसकी तान इसी बिन्दुपर टूटीहै कि स्त्रीका अपमान करना दुनियांका शायद सबसे आसान काम है। गोहत्या (ठाकुर प्रसाद राय) और बेशरम (अरुणा सीतेश) भी कम-बेश नारी-यंत्रणाकी कहानियां हैं। अनपढ़ नारी 'होलसेल चेंज' चाहते हुएभी उसे व्यक्त नहीं कर पाती। वह अधिकसे अधिक 'बेसरम कहींका' कहकर रह जातीहै।

'लैला मजनू' (ममता कालिया) में दाम्पत्य जीवनके तनावको दिखाते हुए अलगाव या विच्छेदसे असहमति व्यक्त कीगयीहै। प्रेम वह सूत्र है, जो पति-पत्नीको बांधे रख सकताहै। यह कहानी 'थीम'के लिहाजसे उतनी उल्लेखनीय नहीं है जितनी कथन भंगिमा की दृष्टिसे। 'बंशीरखां' (मंजूर एहतेशाम), 'अतीतका विष' (रामदरश मिश्र) और 'वे जरीके फूल' (सूर्यबाला) अलग स्वादकी रचनाएं हैं। 'बंशीरखां' मानवीयताकी ऊंचाईको दिखातीहै और 'वे जरीके फूल' स्मरणके स्तरपर अनुभूतियोंके मुखर होनेका बयान है। रुक्कीका स्मरण 'मैं' को एक अजीबसे अहसाससे भर देताहै: हर अनुभूति सिर्फ दुःख या सुख नहीं देती। और कभी-कभी तो दुख और सुखके बीचका फासला इतना कम हो जाताहै कि उन्हें अलग करना मुश्किल होताहै...।' 'अतीतका विष' जितनी बाहरी यथार्थसे जुड़ी है, उतनी ही आंतरिक तनाव और विस्फोटसे। वेश्या जीवन बिता चुकी सुषमा अतीतके अपराध-बोधसे मुक्त नहीं होपाती और विक्षिप्त होजातीहै। कहानीकारने सुषमाके असंतुलन के लिए सामाजिक व्यवस्थाको जिम्मेदार ठहरायाहै: 'निश्चयही इस असंतुलनके पीछे समाज है।'

अन्य कहानियोंमें वनदेवी-वनप्रेत वैज्ञानिक कथा हैं जो कहानी कम रिपोर्ताज अधिक लगतीहै। 'उड़ान' (पूर्णिमा गुप्त) बोध और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर आश्वस्त करतीहै।

कुल मिलाकर यह संग्रह आजकी कहानियोंकी प्रतिनिधि मुद्राओंको व्यक्त करनेमें समर्थ है। इस तरहके संग्रहोंपर ले-देकर प्रायः एक आरोप लगाया जा सकताहै कि अमुक कहानी क्यों नहीं लीगयी अमुक क्यों ली गयी। इस संदर्भमें सम्पादकीय विवेकको ही मान्यता देनी होगी। आजकी हिन्दी कहानीमें मुख्यतः दो स्वर प्रधान हैं। एक तो व्यवस्थाके प्रति अविश्वास व्यक्त करनेवाली जनवादी कहानियां लिखी जा रहीहैं, दूसरी ओर सामाजिक विसंगतियोंको बगैर किसी राजनीतिक प्रतिबद्धताके कहा जा रहाहै। इस संग्रहमें दोनों तरह की कहानियां मौजूद हैं। वैसे 'लैला मजनू' 'वहींके वहीं' जैसी कहानियां अपेक्षाकृत कमजोर कहानियां हैं इनकी जगह और कहानियां लीजा सकतीथीं। इन छुटपुट आपत्तियोंके बावजूद यह संग्रह हिन्दी कहानीके अध्येताओंके लिए बहुत कामका है। □

१६८१की श्रेष्ठ कहानियां[1]

सम्पादक : डॉ. महीपसिंह
समीक्षक : यशपाल वैद

डॉ. महीपसिंहने अपनी इस सम्पादित पुस्तकमें एक स्वाभाविक सार्थक प्रश्नका उत्तर पहलेसे ही दे दिया है कि १६८१ में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित अगणित कहानियोंमें से उन्होंने २०० से अधिक कहानियां अवश्य पढ़ीहैं—स्पष्ट है कि उन कहानियोंमें से ये कहानियां कई पहलुओंसे उन्हें बेहतर लगीं। कहानीके मुख्य स्वरकी बात करते हुए वे कहतेहैं "कि आजकी हिन्दी कहानी मानवीय स्थितियोंके पुनर्विश्लेषणकी कहानी है।" इसी पुनर्विश्लेषणको लेकर इन कहानियों का जायजाभी लेतेहैं और उन्हें समसामयिक समयमें उत्कृष्टभी मानतेहैं। श्रेष्ठताकी बातको लेकर प्रायः सुधी पाठक और आलोचक किसी उस कहानीको नहीं छोड़ पाते जिसमें झकझोरने, हृदयको छूने, उद्बोधित करने और सहजतासे रोचकता लिये चौंकानेके गुण हो सकते हैं। यहां किसी दूसरी कहानीका (जो संकलनमें नहीं है) संकलनमें ली गयी कहानीसे श्रेष्ठ सिद्ध करनेका प्रयास न भी किया जाये तोभी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यही एक संकलन नहीं हो सकता जो सभी श्रेष्ठ

---

१. **प्रकाशक : हिन्दी बुक सेंटर, ४/५ बी आसफअली रोड, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २७२; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।**

कहानियोंका परिचायक हो। यहाँ इनकी संख्या अठारह है, यह संख्या आठ या अठ्ठाइसभी हो सकतीहै---कहीं दूसरी जगह। अपनी दृष्टिकी बात है, सभी पत्रिकाओंमें संकलित कहानियोंको पढ़ जानेकी बात है बात कुछ हद तक व्यक्तिगतभी हो सकती है फिरभी इन कहानियोंकी श्रेष्ठतापर कोई सन्देह नहीं होसकता। इसे स्वयं परखा जा सकताहै, महसूसा जा सकताहै।

संकलनमें संकलित १८ कहानियोंमें से अधिकांश कहानियाँ मानवीय सम्बन्धोंमें आये विघटनको सामने लातीहैं। "तुम निहालदई" (कमला दत्त) में पीढ़ियों के अन्तरालसे सम्बन्धोंकी गहराईमें आत्मपीड़नके साथ परपीड़नसे भी ग्रस्त है निहालदई। रीति-रिवाजोंका पालन करती टूटती-जुड़ती निहालदई उम्रके आखिरी पड़ावमें नितान्त अकेली-सी रह जातीहै। बुढ़ापा—एक अपने-आपमें रोग है—और अपने दाहसंस्कारके लिए अपना जोड़ा तैयारकर बक्सेमें रख जातीहै। सदा अपने परिवार का ध्यान रखनेवाली, अपनी मृत्युके पश्चात्भी उसके लिए किसीको आर्थिक सांसारिक कष्ट सहन न करना पड़ा। यह कहानी अनुभूतिकी कहानी है जहाँ एक पुरानी वृद्धा सही मानोंमें आधुनिकाभी है। "सुबहकी सैर" (निर्मल वर्मा) भी बुढ़ापेकी ग्रन्थियोंसे लेस है। कर्नल निहालचन्द अपनी पत्नीकी मृत्युके बाद और बेटोंके विदेश चले जानेपर आत्मसम्मान और पुरानी यादोंके सहारे सुबहकी सैरके लिए निकल जाया करतेथे। उनका ध्यान रखनेवाला नौकर उनके हाथोंमें टिफिन देताहै। विदेशमें रह-रहे लड़केके पास जानेकी तमन्नाका सहारा है पासपोर्ट—यादोंके सिलसिलेमें कहां—लड़की, पत्नी-अकेलापन—सुबहकी सैर—और रात और नौकर देवीसिह—निहालचन्दका पेड़से लटका हुआ शव—थैला, थर्मस, आर्मीका कोट—दोनों जेबें उधडी पडीथीं नंगी और उलटी—बिलकुल खाली—उनका कथन—वेदना स्वर अकेलेपनकी तडप जैसे अबभी हवामें मुखर थी।

निहाली रे, ओ निहाली
तेरी सारी जेबें खाली
हाय निहाली
क्या सचमुच खाली"—(पृष्ठ १४०)

निर्मल वर्माकी भाषा-शैलीकी जादूभरी गरिमा इस कहानीमें भी उपस्थित है।

"मत रो आंटी" (मणिका मोहिनी)—बालावस्था, किशोरावस्थाकी दहलीजपर जो देखा—जो महसूस किया—भावुक मन चीत्कारकर उठा—मनमें अनेकानेक जीवन-सेक्स सम्बन्धी भावोंका जीवनकी कटु मर्मस्पर्शी परिस्थितियों और अनुभूतियोंके बीच रिश्तोंमें आयी दरारोंका सिलसिला—बढ़ती उम्रमें पीछेकी याद भावोंपर एक प्रश्नचिह्न एक आश्चर्य सुखद—भी महत्त्वपूर्ण है। किसीके मम्मी-पापा आपसमे लड़े तो बच्चोंपर क्या बीततीहै—एक सार्थक प्रश्न, सशक्त प्रभावपूर्ण भाषा शैलीमें अभिव्यक्त हो पायाहै। 'चातकी' (कृष्णा अग्निहोत्री) 'अपनी वापसी' (चिता मुदगल) "पोशनूलकी वापसी' (चन्द्रकान्ता) 'दूसरी शुरुआत' (सुमति लाल) भी आपसी रिश्तोंके टूटनकी सशक्त रचनाएं हैं। "चातकी" में जीवनकी कटुताओं और यथार्थ स्थितियोंमें माँ बेटीका सम्बन्धभी सहन नहीं हो पाता। बेटी अपनी मांको ही दूर कर पातीहै, पतिको नहीं। सूक्ष्म अमूर्त भावनाओंकी सफल कहानी है 'चातकी' 'अपनी वापसी' आधुनिकता बोधकी सफल कहानी है। टूटनकी कहानी है जिसमें आपसी सम्बन्धोंमें आयी दरारें, सैक्स, आक्रोश, औपचारिकता जैसी चीजें तो जरूर हैं लेकिन वह आत्मीयता नहीं जो सबसे ज्यादा जरूरी है। 'पोशनूलकी वापसी' इन्सानियतकी कहानीहै। सम्बन्धोंकी सार्थकताकी कहानी है। महदाके मनमें अनेक प्रश्न उठतेहैं। सोचताहै कुछ रिश्ते ऐसे होतेहैं न, जो सभी नामोंसे ऊपर होतेहैं। महदु काका ही बच्चोंको वह रिश्ता समझा पायेगा। और मालूम है बच्चोके नाम क्या हैं—बेटीका कुकलि, और बेटे का पोशनूल। नौकर मालिकके मानवीय सम्बन्ध एक आदर्श रूपमें इस कहानीमें सजीव लगतेहैं। 'दूसरी शुरुआत' में एक नारीकी समझ और त्यागकी ओजमयी भावनाको बड़े स्वाभाविक रूपसे चित्रित किया गयाहै। इस कहानीमें ऐसा दर्द है जो रिसता-रिसता रिसकर भी रिस नहीं पाया।

'अभी कुछ और बाकी है' (श्याम व्यास)—मानवीय सम्बन्धोंमें वर्ग-भेद, खोखलेपन और कुण्ठाको सामने लातीहै। मनसे चेतू घरका प्यारा बेटा नहीं बन पाया इसलिए तो वह बार-बार चले जानेको तत्पर है। संभ्रान्त वर्गकी झूठी दार्शनिकता और खोखले आदर्शोंपर तीखा व्यंग्य है "अभी कुछ और बाकी है"कहानी।

'प्रतिक्रिया' (ऋता शुक्ल) 'समुद्र' (धर्मेन्द्र गुप्त) "चाबीके खिलौने" (मनमोहन सरल) 'बदलीका आदेश' (मस्तराम कपूर) ऐसी कहानियाँ हैं जो शहर और ग्राम

से जुड़ी हुईहैं। कहीं पुरातन और नवीन मान्यताओंके समन्वयकी कहानी हैं - बदलते युगबोधमें ग्रामीण अंचल में नयी मान्यताओंकी स्थापनाका संघर्ष है (प्रतिक्रिया) और कहीं यात्रा वृत्तान्तके माध्यमसे भारतकी चित्र-विचित्र प्राकृतिक सुन्दरताका रोचक; मार्मिक बोधगम्य भाषा शैलीमें वर्णन — (समुद्र)। "चाबीके खिलौने" और "बदली का आदेश' कहानियां विदेश-यात्रा और स्वदेश-यात्रा के दुःखद-सुखद मानसिक तनावोंका सही लेखा-जोखा है।

'पेट एक सीढ़ी' (अविनाश शास्त्री) 'बान्ह' (विजय-कांत) "उस गाँवमें जीते हुए" (सलिल सुधाकर) 'टेपचू' (उदयप्रकाश) बीभत्स रस, व्यंग्य, यथार्थ प्रकृत वर्णनकी सशक्त रचनाएं हैं। इन रचनाओंका इस संग्रहमें होना इस बातका संकेत है कि आजका लेखक शहरी मानवीय (समस्याओं) सम्बन्धोंकी टूटन से परेभी देखताहै जहाँ भोले-भाले ग्रामीण दैवी शक्तिके सहारे किन्हीं खतरोंसे जूझतेहैं।

"मुर्ग-मुसल्लम" (भीष्म सहानी) 'आखिरी खबर' (सुरेश उनियाल) इस संग्रहकी दो अन्य सशक्त रचनाएं हैं जिनमें व्यंग्य शैलीका बड़ी कुशलतासे निर्वाह हुआ है। 'मुर्ग - मुसल्लम' में भीष्मजी बड़े रोचक ढंगसे सयासतदानों; जेलों और बाहरके पूंजीपति वर्गके साथ तथाकथित यूनियनोंका भी कच्चा चिट्ठा खोलतेहैं। भीष्म साहनीकी अन्य कहानियोंकी तरह यह कहानीभी पाठकों को मीठा-मीठा दर्दभी दे पातीहैं और उन्हें स्वयंको अनजानेमें कुछ ऐसा ज्ञान दे जातीहै कि वे पहलेसे अधिक समझदार महसूस कर सकतेहैं। 'आखिरी खबर' में व्यावसायिक पत्रकारिता और भ्रष्ट राजनीतिका सही और सार्थक जायजा लिया गयाहै।

निष्कर्ष रूपमें '१९८१ की श्रेष्ठ कहानियां' संकलन के सम्बन्धमें यह टिप्पणी कर सकतेहैं कि जहाँ कहा-नियों और कहानीकारोंकी प्रशंसा करनी होगी वहाँ सम्पादक डॉ. महीपसिंहकी नियमित श्रेष्ठ कहानियों की तलाशकी हिम्मतकी भी प्रशंसा करनी होगी। □

राजा निरबंसिया[1]
कस्बेका आदमी[2]

कहानीकार : कमलेश्वर
समीक्षक : डॉ. हरदयाल

कमलेश्वर 'नयी कहानी' के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनके दो कहानी संग्रह 'राजा निरबंसिया' और 'कस्बेका आदमी' पहली बार १९५७ में प्रकाशित हुएथे। ढाई दशक बीत जानेके बाद अब इन दोनों संग्रहोंका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआहै। इनका ऐतिहासिक महत्त्व तो हैही, साथही पाठक देखेंगे कि दोनों संग्रहोंकी कहानियाँ अबभी पठनीय हैं। इन संग्रहोंकी कहानियाँ पुरानी नहीं पड़ी हैं, अपितु यहभी कहा जा सकताहै कि उनकी पर-वर्ती कहानियोंकी तुलनामें उनकी ये कहानियां अधिक सहज हैं।

'राजा निरबंसियां' में सात कहानियाँ हैं। इनमें से दो कहानियां बहुत चर्चित रहीहैं 'देवाकी मां' और 'राजा निरबंसिया'। 'देवाकी माँ' का महत्त्व देवाकी मां की चरित्र रचनाके कारण है। देवाकी माँ परित्यक्ता है। उसके पतिने दूसरा विवाह कर लियाहै। देवाकी माँ इस विषम स्थितिका साहसके साथ सामना करतीहै। वह ईमानदारीसे मेहनत-मजदूरी करके देवाका पालन-पोषण करतीहै। देवा पढ़-लिखकर भी बेकार रहताहै। राजनीति में भाग लेनेपर जब वह गिरफ्तार हो जाताहै तब उसकी ममता उसे दुर्बल बनातीहै; किन्तु जब वह देखतीहै कि दुर्बलता किसीमें अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं जगातीहै तब वह फिर तनकर खड़ी हो जातीहै। कहानीके अन्तमें आया हुआ असमंजस उसे और अधिक दृढ़, और अधिक मानवीय बना देताहैं। यह कहानी अपने अप्रत्याशित अन्तके कारणभी हमारा ध्यान आकर्षित करतीहै। इससे कहीं अधिक शिल्पगत चमत्कार 'राजा निरबंसिया' में है। यह कहानी 'नयी कहानी' के एक शिल्पगत प्रयोग का उदाहरण है। यह समान्तर कथाके कथाशिल्पको

१. प्रकाशक : शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-६। पृष्ठ : ११०; का. ८२ (द्वि. सं.); मूल्य : १२.०० रु.।
२. प्रकाशक : वही। पृष्ठ : १२८; का. ८२ (द्वि. सं.); मूल्य : १४.०० रु.।

लेकर चलनेवाली कहानीहै । इसमें दो कहानियां एक-दूसरी के आमने-सामने रखी हुईहैं और एक-दूसरेको आलोकित करतीहैं। एक कहानी एक पुराने राजाकी है जो निर-बंसिया था, किन्तु जिसके सन्तान हुई और राजा, रानी और राजकुमार सभी लांछनमुक्त होकर सुखसे जीवन व्यतीत करते रहे। दूसरी ओर जगपती है। बहुत दिन निःसन्तान रहा; और जब सन्तान होनेकी नौबत आयी तो सन्देहों और लाँछनोंका ऐसा समाँ बंधा कि जग-पतीने आत्महत्या करली और उसकी पत्नीने किसी और के यहां बैठनेका निर्णय कर लिया। इन दोनों कहानियोंके आमने-सामने रखे जानेसे दो व्यक्तियों, दो युगों और दो मूल्य-वर्गोंकी तुलना सहजही हो जातीहै। इनमें से दोनों कहानियोंमें उपमेय-उपमान सम्बन्ध स्थापित हो जाताहै। इसी प्रकार किन्तु एक अन्य पद्धतिको अपना-कर 'आत्माकी आवाज' में दो स्त्रियोंकी तुलना की गयीहै। एक है भाभी और दूसरी बिनती। दोनोंके प्रति उनके सम्बन्धियोंका व्यवहार एक जैसी स्थितिमें भिन्न-भिन्न प्रकारका है, जिसके कारण भाभीका जीवन दुःखमय है और बिनतीका सुखमय। संग्रहकी शेष कहानियोंका फलक अधिक व्यापक है। 'पानीकी तसवीर' में बनते-न-बनते सम्बन्धोंकी रूमानियत है। यह कहानी इस बातका संकेत है कि 'नया कहानीकार' परिवर्तित परिवेशमें परिवर्तित होते सम्बन्धोंकी जाँच-पड़ताल करने लगाथा। हर 'नया कहानीकार' सम्बन्धोंकी जाँच-पड़तालमें न तो पूर्णतः निर्मम था न तटस्थ। एक प्रकारकी रूमानियत कुछ कहानीकारोंमें थी। उन कुछ कहानीकारोंमें एक कमलेश्वरभी है। वे अपने रूमानी भावबोधसे पूर्णतः मुक्त कभी नहीं होपाये। 'धूल उड़ जातीहै' कहानीमें उस मानवीयताका चित्रण है जो धर्मकी सीमाओं और विद्वेष को परास्तकर देतीहै। 'सुबहका सपना' में प्रतीकात्मक ढंगसे ऐसे भविष्यके प्रति आस्था व्यक्त की गयीहै जिसमें हिंसा और युद्ध नहीं होंगे। इस भविष्यका प्रतीक हैं गुड्डा-गुड़ियाका ब्याह रचाती दो बच्चियां रानी और बेबी। जैकब साहबका लड़का हिंसक शक्तियोंका प्रतीक है और कबूतर शायद मानवताका प्रतीक है। 'मुरदोंकी दुनियां' भी एक प्रतीकात्मक कहानी है। इस कहानीका केन्द्रीय पात्र निसार है। वह विभिन्न मानव-वर्गोंके सम्पर्कमें आताहै; जिनमें से कुछ जीवन्त है और कुछ निर्जीववत्। वह जिस प्रकारके लोगोंके साथ, जिस प्रकार के माहौलमें रहनेका अभ्यस्त है, वही उसे जीवन्त लगता है, उनसे इतर मुर्दा। वह निर्णय करताहै कि वह मुर्दों के बीच नहीं रहेगा। यह कहानी बदलते परिवेशमें एक व्यवस्थाके नष्ट होने और दूसरी व्यवस्थाके अस्तित्वमें आनेकी ओरभी संकेत करतीहै। इसमें भी विभिन्न प्रतीकोंका उपयोग है।

कथावस्तुके आधारपर कमलेश्वरको कस्बेका कहानी-कार कहा गयाथा। उनकी दिल्ली आनेसे पूर्वकी कहा-नियां एक कस्बेके जीवनके विभिन्न चित्र अंकित करती हैं। 'राजा निरबंसिया' की कहानियोंमें कस्बेकी जिंदगी चित्रित है और 'कस्बेका आदमी' की कहानियोंमें भी। 'कस्बेका आदमी' में बारह कहानियां हैं। इस संग्रहकी सबसे लम्बी कहानी 'तीन दिन पहलेकी रात' है। इस कहानीमें मूल्यगत संक्रमणका मनोरंजक ढंगसे संकेत किया गयाहै। एक डॉक्टर और उनकी पत्नी अपनी पुत्रीके लिए सम्भावित वरके रूपमें जिस युवकको देखते हैं उसका बड़ा आदर-सत्कार करतेहैं और लड़कीको उसके साथ घुलने-मिलनेकी छूट देतेहैं और युवकको लड़कीके साथ छूट लेनेको प्रोत्साहित करतेहैं। लड़की अपने माँ-बापकी पसन्दके लड़केको अपना सब कुछ मानने लगती हैं। माँ-बापके लिए लड़केकी सबसे बड़ी योग्यता है उसकी आर्थिक सम्पन्नताकी सम्भावना। जहाँ इस संभा-बनामें सन्देह उत्पन्न होताहै, लड़का उनकी निगाहमें गिर जाताहै और नया युवक सामने आ जाताहै। इस प्रक्रिया में तीन लड़के क्रमशः सामने आतेहैं—दिवाकर, जितेन और अमर। अन्तमें मीनाकी शादी पुलिस अफसर अमरके साथ होतीहै। शादीके बाद उसके साथके पहले अनुभवके बादही उसका मोहभंग होजाताहै। उसका मन सहमकर उससे पूछताहै—'क्या मैंने इसी अमरको प्यार कियाथा?' कहानीके अन्तमें दो वाक्य और हैं—"कल एक बार न जाने कैसा भ्रम हुआ। लगा, अभी-अभी दिवाकर सड़कसे गुजराहै।" इस अन्तमें तथा अन्यत्र भी इस कहानीमें अनेक संकेत व्यंजित हैं। इससे मध्य-वर्गीय जीवनका खोखलापन भी सामने आताहै। इसकी तुलनामें संग्रहकी अन्य कहानियाँ आकारमें बहुत छोटी हैं। इन कहानियोंको रेखाचित्रात्मक कहानियां कहा जा सकताहै, क्योंकि ये कहानियां कोई सुशृंखलित घटनाक्रम प्रस्तुत न करके छोटी-छोटी घटनाओंके माध्यमसे व्यक्ति-चित्र प्रस्तुत करतीहैं। 'गरमियोंके दिन' में एक ऐसे वैद्य जीका चित्र उपस्थित किया गयाहै जिनकी दुकान चलती नहीं हैं और जिनकी आर्थिक दुरवस्था उनके

व्यक्तित्वको विचित्र हास्यास्पद और दयनीय बना देती है। 'भटके हुए लोग' में पंजाबसे आये शरणार्थियोंका चित्रण है। इसमें भी दो व्यक्तिचित्र उभरकर सामने आतेहैं—हंसराज और सतवन्ती। ये पात्रभी दयनीय अधिक हैं। संक्रमणने उन्हें तोड़ दियाहै। 'चायघर' की लेडी-वेटरभी एक शरणार्थी लड़की है। देशके विभाजन ने उसे क्यासे क्या बना दियाहै, इसे कहानीकारने एक और शरणार्थी लड़की राजकौरके माध्यमसे संकेतित कियाहै, जो दिल्लीमें नर्स बन गयीहै। 'सीखचे' में एक ऐसी युवतीका चित्र है जो बड़ी आयुके कंजूस बनियेके साथ ब्याही जाकर अपनी यौवन-सुलभ सामान्य लालसाओंकी पूर्तिके लिए तरसतीहै। इसमें 'सात फेरों' के कारण स्त्रीकी मानसिकतामें होनेवाले परिवर्तनका संकेत है। प्रश्न यह उठाया गयाहै कि कोई स्त्री अपने उस पति के प्रति क्यों समर्पित, निष्ठावान, और ईमानदार रहे, जो उसे कष्ट तो हर तरहका देताहैं, परन्तु सुख किसी तरह का नहीं देता। ऐसा पति क्या उन सीखचोंके समान नहीं हैं, जो विवश बनाताहै? क्या इन रूढ़ संस्कारोंके सीखचोंको तोड़ा नहीं जासकता? 'इन्सान और हैवान' में भारतीय पुलिसका कुत्सित चित्र प्रस्तुत किया गयाहै। माध्यम दो व्यक्तिचित्र हैं—एक, सिपाही रामसिंह और दूसरा वह निरपराध व्यक्ति, जिसे अपराधी घोषितकर पुलिस गिरफ्तार कर लेतीहै। 'थानेदार साहब' कहानीमें थानेदार बजरंग बहादुरके व्यंग्यात्मक व्यक्तिचित्रके माध्यमसे भारतीय पुलिस का मजाक उड़ाया गयाहै। भारतीय पुलिस निकम्मी है, वह अपराधियोंसे डरतीहै, किन्तु अपनी सार्थकता सिद्ध करनेके लिए निरपराधोंको अपराधी घोषित करतीहै; यह इस कहानीकी व्यंजना है। 'गायकी चोरी' में बिगड़े हुए जमीदार मुंशी प्यारेलालका व्यंग्य चित्र अंकित किया गयाहै। इस कहानीमें कुछ और पात्रोंके व्यक्तिचित्रभी हैं, किन्तु वे छोटे-छोटे और प्रसंगवश आये हुएहैं। मुख्य चित्र मुंशी प्यारेलालका ही है। उनकी प्रमुख विशेषता है अपनी सर्वज्ञता और वीरता सम्बन्धी गप्प लड़ाना। अन्तमें वे बुढ़ियाकी गायका पता लगाकर चोरोंके यहांसे छुड़ा लातेहैं। इससे उनके व्यंग्यचित्रमें गंभीरता आ जातीहै। 'नौकरीपेशा' कहानीमें गांवसे कस्बेमें आकर बसनेवाले महाजन-परिवारोंमें पनपनेवाली बाबू मनोवृत्तिका चित्रण है। यह चित्रण बाबू राधेलालके केन्द्रीय व्यक्तिचित्रके माध्यमसे किया गयाहै। राधेलालने अपने जीवनका अधिकांश हिस्सा किसी-न-किसीकी एवजीमें काम करते बिता दिया। लाला रामभरोसेकी मृत्युने गांव और कस्बेके जीवनमूल्योंके अन्तरकी ओरभी संकेत कर दियाहै। गांवसे कस्बेमें आनेवाले महाजनोंके परिवार मूल्य-संक्रमणसे ग्रस्त हैं। वे न तो पूरी तरह ग्रामीण जीवनके मूल्योंको लेकर चल पा रहेहैं, न पूरी तरहसे कस्बेके जीवन मूल्योंको लेकर। यह उनकी पीड़ाका मुख्य कारण है। 'सच और झूठ' सामान्य स्तरकी प्रेम-कहानी है। 'बेकार आदमी' में बी. सहाय और श्रीप्रकाशके व्यक्तिचित्र हैं। बेकार श्रीप्रकाशके आगे असिस्टेण्ड एम्पलायमेण्ट आफीसर बी. सहाय निष्प्रभ हो जाताहै। इसलिए बेकार आदमी वह नहीं है जो बेरोजगार है, बल्कि वह है जो नौकरी करताहै और लोगोंको रोजगार दिलाताहै। 'कस्बेका आदमी' में छोटेलालका इतिहास है, जो एक सम्पन्न बनियेके पुत्रके रूपमें जीवन प्रारम्भ करके क्रमशः पतित होते-होते एक साधु होनेके लिए विवश होताहै। अन्तमें वह मरताहै तो बिलकुल अकिंचन! छोटेलालके माध्यमसे कस्बेके आदमीकी मानसिकताको रेखांकित किया गयाहै।

कमलेश्वरके समीक्ष्य दोनों संग्रह उनके कहानीकार-व्यक्तित्वके विकासका प्रथम चरण हैं। 'अपनी निगाहमें' पुस्तकमें उन्होंने जो आत्मचित्र प्रस्तुत कियाहै तथा दुष्यन्तकुमारने उनका जो आत्मीय संस्मरणचित्र प्रस्तुत कियाहै—इन दोनों चित्रोंके प्रकाशमें जब हम समीक्ष्य संग्रहोंकी कहानियोंको देखतेहैं तो स्पष्ट हो जाताहै कि इन कहानियोंमें आत्मकथात्मक अंश बहुत अधिक है। इन कहानियोंके अनेक पात्रोंमें स्वयं कहानीकारकी झलक सहजही देखी जा सकतीहै। ये कहानियां कमलेश्वरकी प्रारम्भिक कहानियां हैं। इनमें आत्मकथात्मक तत्त्वका होना इसीलिए स्वाभाविक है।

जिस समय कमलेश्वरने ये कहानियां लिखीथीं उस समय हमारे सामाजिक जीवनमें संक्रमणकी गति तेज होने लगीथी। तमाम लोग गांवसे कस्बेमें, कस्बेसे नगरमें, नगरसे महानगरमें जाने और बसनेका प्रयत्न करने लगेथे। हिन्दीके अनेक साहित्यकारोंका जीवन इस संक्रमण-क्रमका उदाहरण है। कमलेश्वरका जीवनभी इसका अपवाद नहीं है। समीक्ष्य संग्रहोंकी कहानियां इस संक्रमणको स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तरोंपर प्रतिबिम्बित करतीहै। परम्परागत सम्बन्धोंमें परिवर्तन हो रहाहै। मूल्य बदल रहेहैं। दिवाकरके शब्द इसी बदलावकी ओर

संकेत कर रहेहैं—"गुलामीने हमारी सम्भावनाए अभी-तक रोक रखीथीं। हम ठहरे हुएथे। जीवनकी सुरक्षा और गतिशीलता बहुत दूरतक एक साथ नहीं चल सकतीं। सुरक्षा केवल वे चाहतेहैं जो हताश हैं; जिनका विश्वास अपनेपर से टूट चुकाहै। आपही हैं, यदि आपको अपनी कुशलतापर यकीन न होता तो क्या आप इतने सफल डॉक्टर बन जाते? लेकिन आप खुद अपनी कुशलतापर विश्वास रखते हुएभी दूसरेकी शक्तिमें अविश्वास करतेहैं, इसीलिए आपको हर तरफ पतन, दुराचार और अंधेरा दिखायी पड़ताहै। नयी पीढ़ी हमेशा असन्तोषका विषय रहीहैं, पर वह कुछ ऐसा करती आयीहै, जो पिछली नहीं कर पायी और दुनियां बढ़ती गयी…।" (कस्बेका आदमी; पृष्ठ १३) मूल्यगत द्वन्द्व पीढ़ियोंके द्वन्द्वके रूपमें भी सामने आताहै। यही द्वन्द्व सामाजिक और वैयक्तिक सम्बन्धोंमें पड़नेवाली दरारके रूपमें भी सामने आताहै।

'नयी कहानी' ने किस प्रकार परम्परागत कहानीके ढांचेको तोड़ाथा, इसके अनेक उदाहरण कमलेश्वरकी समीक्ष्य कहानियोंमें हमें मिलतेहैं। उनकी कहानियाँ आदि, मध्य और अन्तके सुनियोजित विभाजनवाली कहानियां नहीं हैं। उनमें अनेक शिल्पगत प्रयोग किये हैं। दरअसल, नये कहानीकारके सामने लक्ष्यही बदल गयाथा; फलतः 'नयी कहानी' के मूल्यांकनकी कसौटी भी बदलनेकी आवश्यकता उपस्थित होगयीथी। 'राजा निरबंसिया' की भूमिकाके इस कथनसे हम अपनेको सहमत पातेहैं—"आजकी कहानियोंका रूप बहुत बदल गयाहै। इसलिए उनका मापदण्डभी बदलना पड़ेगा। उनकी सफलता या असफलताकी कसौटी यह नहीं हो सकती कि वे किस हदतक किसका मनोरंजन करतीहैं बल्कि यह होगी कि वे मनुष्यकी शील-संवेदनाको कहां-तक झंझोड़ती, छूती और उकसातीहै। केवल सोद्देश्यता की पृष्ठभूमिमें ही आजके लेखककी कहानियोंका अध्ययन किया जा सकताहै, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वह स्वयं आत्मग्रन्थियोंका चित्रण या विश्लेषण सामाजिक समस्याओंके सन्दर्भमें करताहै।"

दोनों संग्रहोंकी कहानियोंकी भाषामें आँचलिकताका हल्का-सा पुट है। कुछ ऐसी उपमाएं हैं जो तुरन्त ध्यान आकर्षित करतीहै; जैसे—"मकतबमें बच्चे नरकुलकी तरह हिल-हिलकर कुरानपाककी आयतें रटते।" (राजा निरबंसिया; पृष्ठ ४२) या "बांकी चाल और नन्हें-नन्हें सियाह खुर, जिनपर इस तगड़ी और भरी हुई काठका भार, जैसे पुराने जमानेकी कोई तन्दुरुस्त चीनी लड़की।" (वही पृष्ठ ६२) कहीं-कहीं कुछ प्रतीक हमें आकर्षित करतेहैं, और कहीं कुछ सूक्तियां। कुछ स्थलों पर विभिन्न युक्तियोंसे भाषिक चमत्कारकी सृष्टि हुईहै। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) "मांने कुरतेको साबुनसे धोकर, कलफ और नील लगाया, तारपर फैलाया, और इन्तजार किया, पर देवा नहीं आया। खाना बनाकर बैठी रही, पर वह नहीं लौटा। रात आयी और चली गयी लेकिन देवाके वापस आते पैरोंकी आहट नहीं सुनायी पड़ी। तुलसीके बिरवेके ऊपर बंधी अलगनीपर उसका कुरता सूखकर सिकुड़ गया, पर वह नहीं लौटा। मांकी आंखोंसे नींद उड़कर उसे खोजती रही लेकिन किसी सूने पहरमें भी वह वापस नहीं आया।" (राजा निरबंसिया पृष्ठ १७)

(२) "आंगनमें बंधे तारपर पड़े कपड़ोंकी सलवटोंमें अंधेरा भरता जा रहाथा और जलती लालटेनका पीला-पीला बीमार-सा थकन-भरा प्रकाश! और उसके सामने पड़नेवाली वस्तुओंकी फैली हुई लम्बी-लम्बी काली छायाएं।" (वही; पृष्ठ ७४)

इस प्रकारके भाषिक चमत्कार, उपमाओं और प्रतीकोंके प्रयोगके बावजूद कमलेश्वरकी कहानियोंमें काव्यात्मकता नहीं हैं। वे हमें रसमग्न नहीं करतीं—कुछ-कुछ फीकी लगतीहैं; तथापि कहानियोंके रूपमें वे हमें निराशा नहीं करतीं। जो कृत्रिमता हमें उनकी परवर्ती कहानियोंमें मिलतीहैं, वह इनमें नहीं है। इस दृष्टिसे ये सहज कहानियां हैं। □

हरिहर काका और अन्य कहानियां[1]

कहानीकार : मिथिलेश्वर
समीक्षक : गोविन्दप्रसाद

'हरिहर काका' हिन्दी कहानीको नया मोड़ देनेवाले

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १३५; डिमा. ८३; मूल्य : १८.०० रु.।

नयी पीढ़ीके प्रमुख कथाकार मिथिलेश्वरका नया कहानी संग्रह है। इसमें सुविधावादी जीवनकी भाग दौड़के घटना-प्रपंचकी पहचान करानेवाली ग्यारह कहानियां संकलित है। इनमें लेखक जन साधारणसे उसकी ही भाषामें सहज भावसे संवादरत है। उसका लक्ष्य, ह्रासोन्मुख संस्कृतिकी भर्त्सना करना नहीं वरन् अराजक स्थितिको भोगते रहनेवाले व्यक्तियोंकी वस्तु-स्थितिको सम्प्रेष्य बनानाहै। वह पात्रोंके वैयक्तिक आचार-विचारमें निहित वर्गीय चरित्रके जहरको देखकर चिंताग्रस्त है। उस जहरको कोई उगल रहाहै तो कोई पी रहाहै।

'हरिहर काका' को भी वह जहर पीना पड़ाहै। निःसंतान होनेसे उनके हिस्सेके खेतोंको एक ओर ठाकुरवाड़ीके महन्त ठाकुरजीके नामपर हड़पना चाहतेहैं तो दूसरी ओर उनके भाई जमीन हड़हनेकी, दोनोंकी विधि मार-पीटकी है। हथियारोंका भय दिखाकर कागजपर अंगूठेकेनिशान लेनेमें कोई कसर नहीं रखतेहैं। जब हरिहर काकाकी दूरदर्शिता और दोनों पक्षोंकी हड़बड़ाहट उन्हें अपने दुष्कर्ममें सफल नहीं होने देती तो वे अफसोस करने लगतेहैं कि अंगूठेके निशान लेनेके बाद उन्होंने हरिहर काकाको खत्म क्यों न कर दिया, नतीजा होताहै कि वे गूंगेपनका शिकार हैं। खुली आंखोंसे बराबर आकाशको निहारा करतेहैं। इस त्रासदीसे अब कौन उन्हें छुटकारा दिला सकताहै। कहानीका तो यह रोल नहीं है, किन्तु जनमत तैयार होनेमें इससे जरूर मदद मिलतीहै।

'जहाजका पंछी' का केदार वैयक्तिक स्वार्थ-लिप्सासे कहीं अधिक सामूहिक अनाचारका शिकार है। हर बार नौकरी छूट जानेपर उसे नाईके पैतृक व्यवसायकी ओर लौटना पड़ताहै, उस व्यवस्थाकी ओर जहां 'अरे नउआ'? कवनो बाड़स रे' जैसे सम्बोधनके प्रतिवादपर उसने मार खायीथी। गांवसे शहरतक फैली जातिवादकी जड़ें इतनी गहरी फैलीहैं कि बार-बार हर एकसे उसे नाई बने रहनेका सुझाव मिलता रहताहै। नाईके पेशेके माध्यमसे देशमें बेरोजगारी तथा प्रशिक्षणकी दुर्व्यवस्थापर तो व्यंग्य हैही किन्तु अनुभूतिके धरातलपर वह हतोत्साह नहीं करतीहै। 'बॉम्बे हेयर कटिंग सैलून' के द्वारपर पहुंचकर 'आ जा बेटा! अन्दर आ जा! नाईमें जन्मे ही तो नाईका काम करो' का ठहाका सुनना उसकी विवशता है। लेखककी धारणामें यह ठहरावकी स्थिति है संघर्ष यात्राका एक पड़ाव। विवशतामें सहज होनेका अन्तर्द्वन्द्वही इस कहानीकी विशेषता है। यह कहानी यदि परम्पराके पंकमें डूबी वर्ण-व्यवस्थाकी यथास्थितिका पर्दाफाश करनेवाली है तो 'एक सड़क तीन सौदेबाज' ठेकेदार, इन्जीनियर और नेताके परस्पर भ्रष्ट संबंधोंको समकालीन जीवनके विस्तृत धरातलपर आंकतीहै। 'जहाजका पंछी' यदि सामंतवादकी यथापूर्व स्थिति है तो यह कहानी स्वातन्त्र्योत्तर कालकी यथापूर्व स्थिति। गांवकी सड़ककी इस आत्मकथामें अधबने रह जानेका दंश पाठकको प्रभावित किये बिना नहीं रहताहै। क्या किया जाना चाहिये, जैसे प्रश्नभी कहानी उभारती है। लेकिन समाधान लेखक नहीं देता। 'आप तो खुद काबिल हैं। सोचियेगा, क्या करना होगा?' से उसकी नीयतका जरूर पता चल जाताहै। कहानी-कलाका इतनाभर उपयोग उसकी दृष्टिमें यथेष्ट है। समस्याको अपने पूरे सरोकार से पेश कर देना इन कहानियोंकी सर्जनात्मक उपलब्धि है। भावनाओंका अन्वित बिन्दु स्वतःही समाधानतक ले जाताहै।

'चर्चाओंसे परे' की नायिका सरनाकी मजदूरिन बहू सुन्दर होनेकी एवजमें गांव और शहरके मुश्टण्डोंकी हिंसात्मक प्रवृत्तिका शिकार बनती हुई समाजकी बीभत्स एवं नृशंस स्थितियोंकी ओर पाठकका ध्यान आकर्षित करतीहै। जब वह शहरका कोढ़ अपने ऊपर ओढ़कर गांवकी खेत मजदूरीपर लौट आतीहै तो भूखसे तड़पता सरना उसको बांहोंमें भरने या तिरस्कार करनेके बजाय उसकी अटैची खोलकर खानेवाली चीजोंपर झपटताहै। उसे तो गुण्डोंने पहलेही जेल भिजवा दियाथा ताकि बहूपर मनमाना अत्याचार कर सकें। बोधके साथ वस्तुके प्रति लेखककी संवेदनात्मक संयुक्ति कहानीकी बनाबटसे पाठकको विषाद रसमें सराबोर करनेकी बजाय समस्याकी अंतरंग पहचानकी ओर ले जातीहै। यह पहचान 'उनकी जिन्दगी' में भी मुखर होकर हमारे सामने आतीहै। जब लेखक यह कहताहै कि, "मेरी स्थिति अब ऐसी हो गयीहै कि उनसे अलग रहनेपर भी उनकी जिन्दगीको सह सकनेमें असमर्थ होता जारहाहूं।" शहरके एक सम्पन्न कारोबारी व्यक्ति जयचन्द अग्रवाल ने लेखकको तीस रुपये रोजपर कवि सम्मेलन आयोजित करनेका काम सौंपाथा, वह 'स्काईलैब' के गिरनेसे डर रहाथा और लेखकने यह कह दियाथा कि "आपके बिना कौन काम बन्द हो जायेगा।" इस बातपर उसे घरसे निकाल दिया गयाथा। उसे निकाले जानेका इतना दुःख नहीं, जितना क्षोभ हैकि "अकेले हजार आदमियोंके

बराबर जीरहे जयचन्द अग्रवालको [illegible] रहाहै।" वस्तु-स्थितिके प्रति रचनाकारकी गहरी तड़प कहानीमें व्यंजित हुईहै। कहीं ऐसा नहीं लगता कि कुछ आरोपित है।

'घूस देनेकी कला' के कैलाशसे भी वह पीछे है। वह अपने मौसरे भाईको न तो अस्पतालमें भरती करवा सकताहै और न एम. ए. परीक्षामें ही पास करवा सकताहै। अनेक घटनाओंके विवरण देकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा गयाहै। आंतरिक विवेकके प्रवाहका यह चरम बिन्दु है। पार्टीकी तरफसे वह नहीं बोल रहाहै उस मामलेमें वह मौन रह जाताहै। केवल संवेदनाके स्तरपर अपनी बात पाठकतक पहुंचाना चाहताहै। उसमें भी वैचारिक द्वन्द्वकी स्थिति पैदा होतीहै।

'गबूदन, परीक्षा और विश्वविद्यालय' में विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता और विश्वविद्यालयोंके भ्रष्टाचारको प्रत्यक्ष रीतिसे प्रस्तुत किया गयाहै। गबूदन अपने दोस्त जगुआकी तरह ही नकल करके अव्वल आनेके पश्चात् एक प्रतिष्ठित कालेजमें लेक्चररशिप प्राप्त करनेका आकांक्षी है। उसने एम. एल. ए. और एम. पी. को चुनावमें जितायाथा। उन्हींके बलबूतेपर वह बी. सी. के आगे खम ठोकताहै। कहानी चौंकाती उतना नहीं है जितना आहत और आतंकित करतीहै।

'जंगल होते शहर' में रोजमर्राके होते रहनेवाले हत्याकाण्डोंसे कहानीकी प्रेरणा ली गयीहै। सिन्हा साहबको 'अपने पीछे आनेवाला हर आदमी हत्यारा लगताहै" क्योंकि उन्होंने सुना और पढ़ाहै कि जमशेदपुर और रांचीके बाद मुरादाबादमें खूनकी होली मनायी जा रहीहै। रोज सरेबाजार निर्मम हत्याओंकी खबरें पढ़नेमें आतीहैं। एक दिन उनके साथी प्राध्यापक रामलालकी क्लाससे बाहर छात्रोंने छुरा भोंककर उनकी लीला समाप्त करदी। इस प्रकार घटनाओंके माध्यमसे रचनाकार हिंसाके वातावरणका ऐसा टेक्सचर तैयार करताहै कि सिन्हा साहबका प्रत्येक हत्यामें शामिल होनेका अहसास, उनकी बदहवासी और मानसिक संतुलन खोनेकी दशा अपनी भावनात्मक तरलतामें सहज संवेद्य बन जातीहै। यह निस्संदेह रचनाकारकी संवेदशीलताका परिचायक है।

दण्ड' में भीड़ द्वारा जेबकतरेको पीटते-पीटते मरणासन्न स्थिति तक पहुंचाये जानेकी घटनाके बीच लेखकने चीत्कारकर उठनेवाली, निरन्तर कुचली जानेवाली मान[illegible] व्यथा-कथाको तलाशनेकी कोशिश कीहै। भीड़में कोईभी ऐसा आदमी पहचानका नही मिलता जिसके साथ मिलकर पिटतेको बचाया जासके। समूह-मनोविज्ञान के मध्यसे समकालीन जीवनके बृहत्तर आयामसे लेखककी संवेदना जुड़ती दिखायी देतीहै। यह मोह-भंगकी भीड़से भिन्न प्रकारकी भीड़ है जो लेखककी नयी सृजनशीलताका बोध करातीहै।

इस प्रकार समकालीन जीवनकी बीभत्स एवं त्रासद परिस्थितियोंके प्रति गहरे कन्सर्नकी भावनाने 'हरिहर काका' की कहानियोंकी रचना कीहै उसीको लेखकीय दायित्व बोधके रूपमें 'तबतक' कहानीके एक पात्रके कथनमें रेखांकिया जा सकताहै--"तुम भावुक हो। आदर्शवादी हो। इस तरह दुनियांमें कितने लोगोंकी सहायता करोगे? वहसब मूर्खता छोड़कर वह काम करो जिसके चलते सदय अस्पताल और मालती अस्पतालका भेद मिट जाये। अपनी रचनाओंके माध्यमसे यह भेद मिटानेकी कोशिश करो ताकि इलाजके अभावमें किसीका बच्चा न मरे।" एक दूसरे स्थानपर इसका यह कहकर स्पष्टीकरण किया गयाहै कि "जबतक उनका नैतिक विकास नहीं होगा, वे ईमानदारीसे काम नहीं करेंगे। कुछ लोगोंका कहनाहै यहांका पूरा ढाँचा ही गलत है। पूरे सिस्टमको बदलना होगा। लेकिन भाई साहब आप तो खुद काबिल आदमी हैं। सोचियेगा क्या करना होगा?" (पृ. ५७)

स्पष्ट है कि लेखक किसी मतवादकी गुंजलकमें फंसता दिखायी नहीं देता। इस संग्रहकी सभी कहानियाँ इस बातकी गवाह है कि कहींभी किसी मतका आरोपण नही किया गयाहै। रचनाके धरातलपर वह सामाजिक यथार्थकी ऐसी सार्थक अभिव्यंजना प्रदान करताहै कि पाठक सोचनेपर विवश होताहै। निष्कर्ष निकालनेकी उसको छूट है। इन कहानियोंकी सफलताका एक रहस्य यहभी प्रतीत होताहै कि लेखकने भोगे हुए यथार्थसे बाहर निकलकर घटनाके महत्त्वको पहचानाहै और उसकी यह पहचान इन कहानियोंकी भी पहचान बनीहै। इसीलिए 'हरिहर काका'जैसी कहानी प्रकाशमें आयी जिससे सम्पत्ति के मौलिक अधिकारपर प्रश्नवाचक चिह्न लग जाताहै।

दरअसल इन कहानियोंका शिल्प न तो यथार्थकी तलाश करताहै न उसके भोगकी सामग्री जुटाताहै और न भोगकी स्थितियांही पैदा करताहै। वह कहानीकी पृष्ठभूमिको ऐसे बारीक एवं सघन रेशोंसे बुनता है कि घटनाएं स्वाभाविक रीतिसे उभरकर रचनाके मूल कथ्यको

एकदम सतहसे ऊपर ले आतीहै। इसमें वस्तु एवं मनस्थिका चित्रण इतनी सरल और सहज रीतिसे होताहै कि वैचारिकता भावनाओंकी तरलतामें घुल-मिलकर कथ्यको सहज में ही ग्राह्य बना देतीहैं। घटनाएं परिवेशकी समग्रतासे उभरकर आनेके कारण अत्यन्त विश्वसनीयभी हो जातीहैं। जैसे हरिहर काकाके गांवके आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यकलापों के जो चित्र प्रस्तुत हुएहैं उनमें सम्पत्ति-संचय की संस्कृतिके विरुद्ध जनमत तैयार होना जीवनके बड़े परिवेशमें प्रासंगिकभी बन गयाहै।

वातावरणसे घटनाएं जन्म लेतीहैं। और घटनाएं ही कथाको लम्बी उम्र देतीहैं। कहानीकी बनावटसे कथातत्त्व जो पिछली दो-तीन दशकोंमें गायब-सा हो गयाथा वह पुनः लौटकर इस संग्रहकी प्रायः सभी कहानियोंमें नयी सजावटसे स्थापित होता दिखायी देता है। कुल मिलाकर इन कहानियोंमें गांव व शहर अब दो अलग-अलग इकाईयां बनकर हमारे सामने नहीं आती। जो असंगतियां, अनाचार एवं भ्रष्टाचार शहरको लील रहाहै वह यदि गांव नहीं पहुंचाहै तो कमसे कम उसकी सरहद पर जरूर पहुंच गयाहै। दोनों ओरसे आवाजाई है। बाटभी करीब-करीब एक जैसे होते जा रहेहैं। 'हरिहर काका' के सभी पात्र इस अभिशापसे त्रस्त एवं चिंता ग्रस्त हैं। इससे नयी समझ पैदा होतीहै। इसकी सभी कहानियां पठनीय हैं। □

अंधे आकाशका सूरज[1]

लेखक : राबिनशॉ पुष्प

समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर

राबिनशॉ पुष्पऐसे लेखकोंमें से हैं जो कहानीको अत्यन्त चुस्त-दुरुस्त, संतुलित किन्तु उतनीही तीक्ष्ण शैलीमें प्रस्तुत करतेहैं। भाषामें जहाँ नपे-तुले शब्द मिलेंगे वहाँ सहज प्रतीक प्रयोगभी। कहानीको गहन अर्थवाही बनानेके लिए वे शैलीकी ओरसे विशेष सजग दिखायी देतेहैं। तभी सामान्यसे प्रसंगभी कितना कुछ कह जातेहैं।

'अंधे आकाशका सूरज' में लेखककी दस कहानियाँ संगृहीत हैं। 'तीसरा नाम' और 'हुक' को छोड़कर सभी छोटी। 'उजालेका चेहरा' को छोड़कर सभी नारी-जीवनसे संबंधित। नारी किसी-न-किसी रूपसे प्रताड़ित है। वह कहीं प्रेमकी विफलतासे ग्रस्त है (कांच घर, रेगिस्तानकी मछली), कहीं संतान विहीनताके कारण पति द्वारा त्यक्त (स्थिर-अस्थिर), कहीं पुरुषोंका खिलौना बनतीहै (एक दूसरा आकाश), कहीं प्रेमके पीछे ऊँचा खतरा उठातीहै (हुक), कहीं उसपर माता-पिता-भाइयोंका बोझ है (अपना-अपना भय) कहीं वह अपने आपसे जूझतीहै (स्थिर-अस्थिर), कहीं उसे वात्सल्यकी तड़प है (तीसरा नाम), कहीं वह अर्थके लिए अपना जिस्म बेचतीहै (कौर) तो कहीं वह चकाचौंधमें भटक गयीहै (अंधे आकाशका सूरज)।

इस तरह प्रस्तुत संग्रहकी कहानियोंका मूल स्वर नारी पीड़ाही है। जहाज, रोशनीके प्रतिबिम्ब (काँचघर), मौतका कुआँ, की-रिंग (तीसरा नाम)। जैसे प्रतीक अभिव्यक्तिमें खासा प्रभाव उत्पन्न करतेहैं। 'हुक' कहानी की कलात्मकता विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। गौण रूपमें जीवनके अन्य अंगभी सामने आतेहैं। यथा—'तीसरा नाम' सेल्स एजेंटकी जिन्दगीपर प्रकाश डालतीहै, तो 'अंधे सूरज का आकाश' फिल्मी जगत्की गंदियोंको उजागर करतीहै। 'काँचघर' शहरी जिन्दगीके व्यूहको प्रस्तुत करतीहै। अधिकांश कहानियाँ मध्यवर्गकी हैं। 'कौर' अपवाद है जो निम्न वर्गकी नारीका चित्रण है।

'उजालेका चेहरा' जो अपने किस्मकी अलग कहानी है, आजकी तथाकथित प्रगतिपर व्यंग्य है।

सामान्यतः कहानियां ऐसे प्रसंगोंसे युक्त हैं जो कहानी के स्वरको तीक्ष्ण बनातेहैं। यथा—

—लिपि विश्वासको लगा, वह काँचघरमें एकदम अकेली है। सब फ्रेममें मजबूतीसे शीशे ठुकेहैं। कहींसे भी बाहर नहीं आसकती। कहीं कोई द्वार नहीं और इसी तरह बन्द-बन्द उसे अपने फँसे जहाजकी प्रतीक्षा करनीहै··· केवल प्रतीक्षा···! (पृष्ठ १३)

—और जब, उसने तार जोड़े तो बिजलीकी रोशनी पहली बार कस्बेमें फैल गयी। बच्चे शोर करते हुए दौड़ने लगे। वह खम्भेसे उतरा तो उसकी आरती उतारी गयी। थालीकी पहली मिठाई उसे दी गयीथी···अफसरोंने कहा, 'अब इस बिजलीसे मिलें चलेंगी, जगह-जगह नल होंगे और इन सबके पीछे तुम होगे मेकैनिक···। (पृ. ३५)

—वह कैसे समझाये कि पहले तो सिर्फ प्रीतिकौर थी। जब वह प्रीतिकौरके लिए कौर इकट्ठा करने लगी तो नीतिकौर आगयी। और जब वह प्रीतिकौर और नीति कौरके लिए लंगरका इन्तजाम करने लगी तो किरतनकौर आगयी। (पृ. ४७.)

हम आशा करतेहैं कि भविष्यमें लेखक नारी-जीवनके

---

१. प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२-००३। पृष्ठ : ८०; क्रा. ८२; मूल्य : १२.०० रु.।

अतिरिक्त जीवनके अन्य आयामोंको भी इसी तरहकी सूक्ष्मता और पुष्ट शैलीमें प्रस्तुत करेगा। □

एक बंगला बने न्यारा[१]

कहानीकार : बिजयमोहन सिंह
समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'एक बंगला बने न्यारा' विजयमोहन सिंहका दूसरा कहानी-संग्रह है, जिसमें उनकी ग्यारह कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियोंमें सामाजिक और वैयक्तिक धरातलपर उभरती हुई,आन्तरिक एवं बाह्य स्थितियोंके अनेक आयामों के रूपायनका प्रयास हुआहै। अनास्था और मूल्यहीनता, अनिश्चितता और दिशाहीनता, व्यर्थता और मोहभंगके अभिशापको ढोते हुए मध्यवर्गीय मानवको उसकी समस्त अच्छाइयों और बुराइयोंके साथ अनावृत करती हुई ये कहानियाँ लेखककी सूक्ष्म दृष्टिकी परिचायक हैं। कहानियों का संसार विश्वविद्यालयों, दफ्तरों, होटलों और 'घर' कहलानेवाली दीवारोंतक सीमित होते हुएभी, अपनी आन्तरिक विविधताके कारण व्यापक लगताहैं।

इन कहानियोंमें कहीं हम भोगपरक भौतिक लालसाके पीछे भागती हुई रुग्ण मानसिकताकी झांकी पातेहैं, तो कहीं टूटते-बिखरते सामन्ती ऐश्वर्यके अवशेषोंका अन्तर्दर्शन; कहीं सम्बन्धोंके विघटनकी छटपटाहट है, तो कहीं यौन संवेदनाओंकी संयत अभिव्यक्ति; कहीं अन्तर्जगत्में झाँकने का मनोवैज्ञानिक प्रयास है, तो कहीं जनवादी चिन्तनकी हल्की-सी झलक। तात्पर्य यह है कि विजयमोहन सिंहकी ये कहानियाँ, अपनी सीमाओंके बावजूद, समर्थ लेखनकी परिचायक हैं।

इन कहानियोंकी सबसे प्रमुख विशेषता इनकी अन्तर्निहित सहजता है, आर्थिक-सामाजिक विषमताओंके अंकन में कमही लेखक इतने सहज रह पातेहैं। कहीं कोई अतिरंजना नहीं, पूर्वाग्रह नहीं, आक्रोश नहीं, है तो बस सहज तटस्थता, जो चीजोंको यथातथ्य उभारती चली जातीहै। इसका एकमात्र अपवाद 'अगला दिन' कहानीमें दिखायी देता है, किन्तु वहाँभी कहानीकारकी निर्वैयक्तिकता कहानी की सहजताको क्षति नहीं पहुंचने देती।

'अगला दिन' युवा आक्रोशकी कहानी है, जो नयी पीढ़ीकी निराशा और दिशाहीनताके कारणोंका तटस्थ विश्लेषण करतीहै। मूल्य संकटके इस दौरमें जबकि अनीति और स्वार्थपरताकी पंकिलता विश्वविद्यालयोंके कैम्पसतक जा पहुंचीहै, सारी दुरवस्था और अनुशासनहीनताके लिए केवल युवा पीढ़ीको ही दोषी कैसे ठहराया जा सकताहै? कहानी यह ज्वलन्त प्रश्न हमारे सामने छोड़ जातीहै, फिर भी, छात्रों द्वारा पुस्तकालयकी इमारतमें आग लगा देना अनुचित और किसी हदतक अस्वाभाविक लगताहै।

'विस्तार' में युवा मनके एक अन्य पहलूसे हमारा साक्षात्कार होताहै। घरकी चारदीवारीमें घुटता हुआ युवा नारी मन, जो पहाड़से टकराती हुई नदीकी धाराकी तरह सारी स्थितियोंके प्रति, यहाँतक कि अपने व्यक्तित्वके प्रति भी विद्रोही हो उठाथा, 'कैम्पस' की उन्मुक्त हवाका स्पर्श पातेही 'पालतू' हो जाताहै।

'कबन्ध' इस संग्रहकी एक और सशक्त कहानी है, जो धड़ और चेहरेके अलगावकी सही छानबीन करतीहै। ऊपरसे शान्त, संयत और जोगन-सी दीखनेवाली मन्नो दीदी विवेकका उष्ण स्पर्श पाकर मोमकी तरह पिघल उठतीहै। उसके धड़का क्षुधित समर्पण उसके चेहरेके साथ बिल्कुल मेल नहीं खाता। धड़ और चेहरेकी यही द्वैधता विवेकके व्यक्तित्वमें भी तो है। मन्नो दीदीके यौन-आकर्षणमें बह जानेपर भी उसका अतृप्त मन नीताके अभावको तीव्रतासे महसूस करताहै।

'आरामगाहके बाहर' अन्तर्जगत्की एक और कहानी है, जो सम्बन्धोंकी संश्लिष्टताको मूर्त करनेका प्रयास करती है। इस विषयपर आजतक, 'दरअसल, इतना अधिक लिखा जा चुकाहै, कि जबतक कहानी कुछ 'नया' न दे, प्रभावित नहीं कर पाती। अतएव 'आरामगाहके बाहर' त्रिकोण सम्बन्धोंपर लिखी गयी असंख्य कहानियोंकी भीड़में खो जानेवाली एक सामान्य कहानी बनकर रह गयीहै।

'संयुक्त परिवार' की गणना अवश्यही अच्छी कहानियोंमें की जा सकतीहै। यह उस संस्कारविहीन सम्पन्न वर्गकी आन्तरिक विकृतियोंकी कहानी है, जो जायज़ी-नाजायज़ तरीकोंसे कमायी दौलतसे ज्यादासे ज्यादा सुखसुविधाओंको भोग लेना चाहताहै; दावतें और पार्टियाँही जिसके लिए ऐश्वर्य-प्रदर्शनका माध्यम हैं; आधुनिकतम फैशन और 'ऊँचा' रहन-सहन ही जिसके यहाँ आभिजात्यका मानदण्ड है और 'चीयर्स' और कहकहेही जिसकी ओढी हुई, खुशियों की अभिव्यक्ति है। यह वह वर्ग है, जिसके यहाँ चारित्रिक मूल्योंका कोई अर्थ नहीं, और जिनकी 'प्रगतिशीलता' मित्र-

---

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २. अंसारी रोड़, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ११९; का.८२; मूल्य : २०.०० रु.।

की पत्नीतक को वासनाकी तृप्तिका साधन बनानेकी इजाजत देतीहै ।

'मास मीडिया' में टेलीविजन केन्द्रोंकी रंगीन अव्यवस्थाको उद्घाटित करनेका प्रयास हुआहै । लोक रुचिके परिष्कार तथा कला और संस्कृतिके विकासका गुरुतर उत्तरदायित्व वहन करनेवाली यह दुनियाँ अन्दरसे क्या इतनी संकीर्ण और भोंडी है, विश्वास करनेको जी नहीं चाहता ।

'एक बंगला बने न्यारा' संभवतः इस संग्रहकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो सामन्ती मानसिकताके क्षयको कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करतीहै । आर्थिक प्रतियोगिताके इस युगमें अर्थहीन होते गये सामन्ती संस्कारों और नयी उभरती मूल्यहीन व्यावसायिकताके मौन टकरावको तटस्थतासे व्यक्त करती हुई यह कहानी न तो जमींदारोके प्रति हमारे आक्रोशको उभारतीहै, न ही उसकी वकालत करतीहै ।

विजयमोहन सिंहके लेखनका एक दूसरा रंगभी है, जो 'मकबरे' 'अदृश्य शक्ति' 'सहयोग' और 'ठंड' कहानियोंमें दृष्टिगोचर होताहै । ये मूड और मनःस्थितियोंकी कहानियाँ हैं, कलाकी दृष्टिसे उत्तम, पर कथ्यकी दृष्टिसे उतनीही कमजोर । ऐसी बात नहीं है, कि लेखकको अन्तर्जगत्‌की कहानियोंमें सफलता नहीं मिली।···किन्तु कहानीकी मूल संवेदनाही पाठकको छू न सके, तो कला कुण्ठित होकर ही तो रह जायेगी । इन कहानियोंमें ऐसाही हुआहै ।

फिरभी विजयमोहन सिंहके पास सूक्ष्म तथ्यग्राही दृष्टि है और अभिव्यक्तिकी पूर्ण क्षमता ! ···और यही दोनों चीजें हमें उनके लेखनके प्रति आश्वस्त करतीहैं । □

महकके ऊपर

कहानीकार : कमलेश भारतीय
समीक्षक : डॉ. जवाहर सिंह

आज स्थिति कुछ ऐसी क्रूर और भयावह होती जा रहीहै कि व्यक्तिके व्यक्तित्वका विघटन और अस्मिताका संकट दिनोंदिन अधिक गहरा और शोचनीय होता जारहा है। सामाजिक राजनीतिक परिवेशमें व्याप्त मूल्यहीनता की स्थिति, व्यवस्थाके अन्दर फैलती अव्यवस्था, सत्ताकी क्रूरता, अमीर गरीबके बीच और चौड़ी और गहरी होती जारही खाई, प्रशासनकी भ्रष्टता और अमानवीयता तथा आर्थिक और सामाजिक दबावोंके चलते सहज मानवीय रिश्तोंके विघटन एवं आदमी-आदमीके बीच उग रही अपरिचय और बेगानेपनकी कंटीली झाड़ियोंका दुष्परिणाम यह हुआहै कि आदमीसे उसकी आदमियत छिनती जारहीहै, पारिवारिक संबन्धोंमें दरारें पड़ती जारहीहैं और हर स्थापित मूल्य टूटते और और ढहते जारहेहैं । आजका पूरा माहौल कुछ ऐसा बन गयाहै कि आदमी अपनेही संदर्भोंसे कटकर एक भीड़, एक नारा, एक झंडा बनता जारहाहै ।

लेकिन मानवताके लिए एक शुभ लक्षण यह दिखायी देरहाहै कि आजकी इन तमाम विसंगतियों, विद्रूपताओं और विडंबनाओंके बावजूद आदमी हार नहीं मान रहाहै, पराजित नहीं होरहाहै । वह तमाम विरोधी और प्रतिक्रियावादी ताकतोंके नाग-फांसको काटकर अपने लिए एक नये भविष्यके निर्माणमें संघर्षरत है। आजकल हिन्दीके जो चन्द नये कथाकार अपनी सोद्देश्य और सशक्त कहानियों के माध्यमसे इन तमाम विरोधी परिस्थितियोंमें मानव अस्मिताकी रक्षा और आदमीकी बेहतर जीवन-परिस्थितियोंके लिए जीवनके विभिन्न स्तरोंपर जूझ रहे लोगोंके कंधेसे कंधा मिलाकरचो ल रहेहैं, उनकी व्यथा, बिखराव, विद्रोह और आक्रोशक अपनी वाणी देरहेहैं, उनमें कमलेश भारतीय भी एक हैं। और इनके प्रथम कहानी संग्रह 'महकके ऊपर' की प्रायः सभी कहानियां ऐसे ही जुझारू तेवरवालीऔर जीवन-ऊर्जासे पूर्ण कहानियां हैं ।

'महकके ऊपर' की कहानियोंकी सर्वाधिक विशेषता है, इनकी सहजता और जाना-पहचाना परिवेश । 'विरासत' 'अब और नहीं' 'एकही हमाममें' तथा 'इन्तजाम' आदि कहानियोंमें आजकी उन तमाम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओंकी पोल खोलकर नंगा किया गयाहै, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे हमारे जीवनकी दिशा निर्धारित कर रहीहैं, हमें अमानवीय परिस्थियोंमें ढकेल रहीहैं । 'विरासत में सांपका प्रतीकात्मक प्रयोग बड़ाही सार्थक और सांकेतिक है । कहानीका नायक बचपनसे ही सपनेमें सांप देखताहैं । बड़ा होकर जब वह एक आफिसमें किरानीकी नौकरीपर लगताहै, तो वह अपने सपनेवाले सांपका दूसरा रूप अपने बॉसमें देखने लगताहै । उसकी माँ बतलातीहैं उसके स्व-

१. **प्रकाशक : अभिव्यंजना, १०६।४८, पंजाबीबाग, नयी दिल्ली-११००२६ । पृष्ठ : ११८; क्रा. ८२; मूल्य : १८.०० रु. ।**

र्गीय पिताने एक बार अपनी जमीनके एक टुकड़ेमें ढेर सारी बांबियां बनाकर रहनेवाले सांपोंको अपने साथियोंके सहयोगसे मार डालाथा, क्योंकि उन सांपोंके ही चलते उस जमीनपर खेती नहीं होपातीथी। नायकको सूत्र मिल जाताहै कि उसके पिताने किन सांपोंको और क्यों मारा होगा। दरअसल ये सांप साधारण सांप नहीं,थे वे असामाजिक, प्रतिक्रियावादी और भ्रष्ट तत्त्व तथा ताकतें हैं, जो आम आदमीसे उसका हक छीनतीहैं उसके जीवनसे खिलवाड़ करतीहैं और उसको अपने शोषणका शिकार बनाती हैं।" मुझेभी विरासतमें सांपोंके सपने मिलेहैं। जब-जब मुझे अपने साथियोंकी छंटनीका ख्याल आताहै तब-तब सोचताहूं, आखिर मुझे क्या करना चाहिये? क्या मैं चुपचाप उन्हें थमाये जा रहे रिलीविंग आर्डर देखता रहूंगा, अन्याय होते?'''एकही उत्तर हाथ लगताहै—वही जो पिताने कियाथा। और मेरा सारा डर काफूर होगया।" लेखकने बड़ेही सांकेतिक ढंगसे ऐसे सांपोंसे छुटकारा पाने या इनसे निबटनेका रास्ताभी बता दियाहै।

'अब और नहीं' में इन्हीं जहरीले सांपोंकी तीन पीढ़ियोंकी कहानी भगतराम द्वारा कहलवायी गयीहै। यहां शोषण-उत्पीड़न और अमानुषिक शक्तियोंका प्रतीक सांप नहीं, गांवके जमीदारकी हवेली है, जो पूरे गांवको झोंपड़ियोंमें बदलकर स्वयं भव्य और विशाल बनी हुईहै। 'एकही हमाम' में शिक्षित बेरोजगारीकी समस्या और उससे उत्पन्न युवा-मानसिकतामें आये बदलावको वर्तमान राजनीतिक-प्रशासनिक भ्रष्टताकी यथार्थ पृष्ठभूमिमें देखनेपरखनेकी कोशिश कीगयीहै तो 'एक गंधहीन मृत्यु' में संबन्धोंके ठंडेपन और टूटनको हीनता-ग्रंथिके शिकार एक युवक 'अवतार' की मानसिकताके साथ जोड़कर देखा गयाहै।

'महकके ऊपर' में मानवीय पीड़ा और मानव नियति के प्रश्नको एक सर्वथा भिन्न संदर्भमें उठाया गयाहै। अपना देश, अपनी जन्म-भूमि और अपनी मिट्टीकी गंध किस हदतक आदमीको अपनेसे बांधे रहतीहै, उसके प्रति आदमीके मनमें कितनी मोह-ममता होतीहै, लेकिन आर्थिक सुरक्षा, रोजी-रोटीकी समस्या तथा अधिक सुख-सुविधा पानेके लोभमें आदमी अपनी सारी कोमल भावनाओं और रिश्तोंकी गरमाहटको लात मारकर विदेशोंमें जा बसनेके लिए विवश होरहाहै। इस कहानीमें सुख-सुविधा तथा रोजी-रोटीकी तलाशमें अपना प्यारा वतन, अपनी मिट्टी की गंधको छोड़कर बिलकुल अजनबी वातावरणवाले विदेशोंमें जाकर बस रहनेवाले लोगोंकी निस्संगता, अकेलापन, ऊब तथा बेगानेपनकी मानसिक स्थितिका बड़ाही यथार्थ चित्रण हुआहै।

'इन्तजाम' महाजनों और सूदखोरों द्वारा भोले-भाले गरीब और जरूरतमंद किसानोंके आर्थिक शोषण और सामाजिक अवमाननाका एक प्रामाणिक दस्तावेज है। कहानीकार ने इन रक्तजीवी सूदखोरोंके प्रति गांवकी पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ीके व्यवहारमें परिवर्तनके द्वारा किसी प्रकार के शोषणके खिलाफ आवाज उठानेवाली नयी मानसिकताको बड़ी सूक्ष्मतासे रेखांकित कियाहै। विशने (पिता) महाजन जैकिसनके आगे भीगी बिल्ली बना रहताहै और जब जैकिसन कर्जके रुपयोंके बदलेमें उसकी दुधारू भैंस मांगताहै तो वह डरके मारे इनकार करनेकी हिम्मत तक नहीं करता, लेकिन उसका बेटा ठोला भैंस न देनेके लिए महाजनके आगे तनकर खड़ा होजाताहै और उसके आगे कर्जके रुपये फेंककर अपने पिता द्वारा लिखा कागज लेकर घर लौटताहै।

पारिवारिक वैषम्य तथा अर्थकेन्द्रित रिश्तोंके खोखलेपन और प्रवंचनाओंको अहमियतसे उभाड़नेमें 'एक न एक दिन' और 'इसके बावजूद' विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। अर्थकेन्द्रित रिश्तोंने आदमीसे उसकी आदमियत छीनकर उसे परले सिरेका व्यक्तिवादी तथा आत्मकेन्द्रित बना दियाहै। परिवारके आर्थिक आधार बड़े भाई और उनकी पत्नी अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा तथा अपना उच्च सामाजिक स्तर पानेके लिए जब बूढ़े बाप, माँ, छोटे भाई और बहनको आर्थिक दलदलमें फंसा छोड़कर अपना अलग मकान लेकर रहनेके लिए चले जातेहैं तब पूरे परिवारकी बेबसी असहायता और लाचारीका बड़ाही यथार्थ और चित्रात्मक चित्रण 'एक न एक दिन' में हुआ है। 'इसके बावजूद' में आर्थिक दबावोंके चलते पति-पत्नी के बीच बढ़ते तनाव और ढीले होते जारहे संबन्धोंको दिखाया गयाहै।

'देश-दर्शन' दोहरे स्तरपर चलनेवाली एक विशिष्ट व्यंग्यात्मक कहानी है। आगराके किलेके रतन गाइडने जिस तेज-तुर्श व्यंग्यात्मक शैलीमें अपने देशकी तथाकथित प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्थाकी तुलना मुगलकालीन राजतंत्रीय या एकतंत्रीय शासनमें व्याप्त भ्रष्टाचार, पक्षपात, अन्याय, शोषण, दमन और प्रजाके अधिकार हननके साथ कीहै, वह इस कहानीके तेवरको ही बदल देतीहै। आजकी एक अहम सामाजिक समस्या, दहेज और

इसके चलते महिलाओंपर होनेवाले अमानुषिक अत्याचारों का बड़ाही मार्मिक और यथार्थ चित्रण संग्रहकी अंतिम कहानी 'नीले घोड़ेवाले सवारोंके नाम'में हुआहै।

'महकसे ऊपर' की कहानियोंकी अपनी एक निजी महक है, जो पाठकोंके भीतर काफी देरतक बनी रहतीहै, अपनेमें सराबोर रखतीहै। ये कहानियां ऐसी है, जो सामान्य जनको तकलीफोंसे, उसकी आशा-निराशासे, उसके दुःख-दर्दसे,उसकी निजी और सामाजिक समस्याओंसे तथा आजकी भ्रष्ट व्यवस्थाके बीच उसकी विवशतासे गहरे स्तरपर जुड़ीहैं, और जीवनकी उन विसंगतियोंको रूपायित करतीहैं जिनसे हम आजके सामान्य जनकी प्रगतिका मार्ग अवरुद्ध बना हुआहै। कमलेश भारतीयसे हम और भी अच्छी और धारदार कहानियोंकी उम्मीद रखतेहैं। □

इसी शहरमें[1]

कहानीकार : सुरेन्द्र तिवारी
समीक्षक : डॉ. कीर्तिकेसर

'इसी शहरमें' सुरेन्द्र तिवारीका सद्यःप्रकाशित कहानी संग्रह है जिसमें उनकी सोलह कहानियां संगृहीत हैं। जानकारीके लिए इन कहानियोंको तीन वर्गोंमें बांटा जा सकताहै। पहले प्रकारकी वे कहानियां है जिनमें सामाजिक जीवनमें व्याप्त हिंसाके कारण भय और आतंकका चित्रण है। दूसरी आर्थिक विषमताकी कहानियां तथा तीसरी मूल्यबोधके चिंतनसे जुड़ी कहानियां हैं।

भय और आतंककी कहानियोंमें 'इसी शहरमें' कहानी की विशेष सराहना कीजानी चाहिये। इसमें कालिज और विश्वविद्यालयोंके उस दिशाहीन युवाशक्तिके राजनीतिक तत्त्वों द्वारा दुरुपयोगकी भयावह तस्वीर उभरतीहै। युवकोंमें दिनों-दिन बढ़ती हुई अनुशासनहीनता और तिरोहित होती हुई गुणात्मक सोच और इस सबके बीच सही सोचके व्यक्तिकी निरीह तटस्थताका हृदय-विदारक चित्र प्रस्तुत हुआहै। सामना, प्रहार, अंधेरा, वार्ड नं. टू, बावजूद, अंततः और लड़ाईभी आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओंके विभिन्न पक्षोंके आपसी टकरावमें निरन्तर'बेचारे' होते हुए सामान्य जनके जीवनकी नियतिकी कहानियां हैं। 'आवृत्ति-निवृत्ति' और 'सन्नाटा' व्यवस्थाओंके बीच 'असुरक्षित' व्यक्तिकी अपने आपसे लड़ाईके त्रासका परिचय देती है। 'कौन युगी' कहानीमें आदर्श मूल्योंके साथ जीवन जीते हुए व्यक्तिकी व्यर्थता पीढ़ियोंके अंतरालसे व्यक्त हुई है, जहाँ पितासे पुत्रको अकेला व्यक्तित्वही विरासतमें मिलताहै। अकेला इस अर्थमें कि भ्रष्ट व्यवस्थाओंमें जीवनकी शुरूआत करनेवाले पुत्रको पिताकी वाह-वाह सुनकर ही संतोष कर लेना पड़ताहै। व्यावहारिक रूपमें उसे उसका कोई मुआवजा नहीं मिलता। उसने जान लिया है कि उसे अपनी लड़ाई अपनेही बलपर लड़नीहै। 'साथ में' और 'अनिकेत' आर्थिक अभावोंके संवेदनात्मक पहलुओं का विमोचन करतीहै। 'विस्थापित' और 'पेशा' मनुष्य स्वभावकी तमाम विकृतियोंके बावजूद उसमें जुगनूकी तरह चमकती मानवीय संवेदनाकी किरणको पकड़नेकी एक विश्वसनीय कोशिश है।

सुरेन्द्र तिवारी हिन्दी कहानीका एक संवरता हुआ हस्ताक्षर है। शिल्प और कथ्यकी संतुलित संधि तो उनके लेखनके प्रति आश्वस्त करतीही है जहांतक मानव जीवन के संवेदनात्मक पहलुओंका प्रश्न है, उनपर लेखककी पकड़ पर भी किसी प्रकारका संदेह नहीं किया जासकता। किन्तु जहाँ भय और आतंककी कहानियोंका प्रश्न है वहाँ लेखक कहाँ है वह किस कोनेमें खड़ा समाज परिवार या व्यक्तिके किस सड़े हुए अंगकी शल्यक्रिया करना चाहताहै या किस व्यवहारपर प्रश्नचिह्न लगाना चाहताहै यह स्पष्ट नहीं होता। उसकी ऐसी कहानियोंमें तो ऐसा लगताहै कि उसकी दृष्टिमें सारा शरीरही सड़ चुकाहै। ऐसी स्थितिका विकल्प या वेदव्यासकी तरह पूर्ण ध्वंसपर कर्मयोगकी स्थापना हो सकताहै या फिर धीरे-धीरे करीब आती हुई मृत्युकी अकिंचनताके साथ प्रतीक्षा। इस लेखक की दृष्टि दूसरी स्थितिके अधिक करीब पड़ती है। □

दरारोंवाला बांध ?[1]

लेखक : कृष्ण शुक्ल
समीक्षक : डॉ. मृत्युञ्जय उपाध्याय

समीक्ष्य कृति दस कहानियोंका संकलन है। 'कोई एक घर' का स्वप्न मध्यवर्गीय जीवनकी आशा-आकांक्षाओंका केन्द्र है। यद्यपि अपनी सीमाओं और विवशताओंके कारण

१. प्रकाशक : अभिव्यंजना प्रकाशन, पंजाबीबाग, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १२०; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

१. प्रकाशक : साहित्यवाणी, २८ पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद २११००६। पृष्ठ : १०४; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

अधिकांश स्वप्न मरु कांतरमें खोजाते और यथार्थताकी धरती नहीं तलाश पातेहैं। लेखकका कहनाहै कि "अपना घर—मिसेज मेहताका सपनाही तो था, जो उसकी आँखों की पुतलियोंमें, उसी तरह वर्षोंसे स्थिर था, जिस तरह किसी मरे हुए साँपकी आँखोंमें मारनेवालेकी तस्वीर जो उसकी आँखोंमें मरनेसे पहले उतर आतीहै।" (कोई एक घर—पृ. ११) स्वप्न साकार तो होगया पर प्रेमका एकाधिपत्य मिसेज मेहतासे स्वीकार नहीं करवा पाता कि घर अपने बेटे-पतोहूको देकर स्वयं फिर कैद होजाये। अतीतमें प्राप्त असुरक्षा, यंत्रणा उसकी आँखोंके आगे नाचने लगतीहैं। शंकाके बादल मनके क्षितिजपर मंड़राने लगते हैं—"जिस खोह-से कभी वह जान बचाकर भाग आयीथी; उसी खोहका रीछ रवि (उसका पुत्र) की खाल ओढ़े उन्हें ढूँढ़ता हुआ आपहुँचेगा और खुले मैदानसे उन्हें घसीटता हुआ पुनः अपनी खोहमें ले जायेगा और पैरोंके तलवे चाटकर फिर कैद कर लेगा।" लेखकने पात्रोंकी मानसिक स्थितिका घटनाओंके परिवेशमें सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

'सांताक्लाजकी वापसी' बहुत दिनोंसे ईसाई धर्मका पालन करनेवाले परिवारकी कहानीहै, जो अपने परम्परागत हिन्दू धर्म और सामाजिक व्यवस्थासे कटकर एक द्वीपकी तरह जी रहाहै और पग-पगपर अपमान और अकेलेपनका अहसास उसे सालता रहताहै जिसका परिणाम पुनः हिन्दू धर्ममें विधिवत् प्रवेशमें होताहै, पर इससे भी वर्षोंसे चली आरही व्यवस्थाको चोट लगतीहै, विशेषकर बच्चोंको। पिता बुजुर्ग हैं। उनका मन झीलके समान शांत और स्थिर है, वे काफी प्रसन्न हैं पर बच्चे तो अपनी भावनामें बहनेको आजाद हैं। उनके विश्वासके कोमल तंतुको कौन तोड़े। जब ओसके डरसे रातको खिड़की लगा देनेकी बात होतीहै, तो राजू प्रतिवाद कर उठताहै—"नहीं दीदी, आज क्रिसमस ईव है। रातमें सारा घर बन्द देखकर फादर लौट जायेंगे।" अंततोगत्वा सांताक्लाजकी ओरसे खिलौने भेंटकर परिस्थितिसे समझौता करना पड़ताहै। 'शेष आकृति' आजके बदलते संदर्भ, युगबोध और मूल्यदृष्टिको साफ-साफ कहनेसे बाज नहीं आती। सिद्धार्थकी यादोंको मरी बंदरियाकी तरह छातीसे चिपकानेसे क्या होगा? इसीलिए मिलिट्रीके कमिशन्ड ऑफिसर सिद्धार्थकी मृत्युपर उसकी पत्नी संजीवसे प्यार करने लगतीहै। वक्त बहुत बड़ा मलहम होता है। कालके अंतरालमें स्मृतियाँ धुँधली होकर लुप्त होजातीहै— वह सिद्धार्थकी बार-बार मनमें उभारनेकी कोशिश करतीहै लेकिन समयका अन्तराल वहाँ कुछ और रोप डाल रहाथा। वह उभर आये चेहरेकी ओर देखती और पहचाननेकी कोशिश करती—संजीव! लेकिन संजीव कहाँसे आगयाथा?" (पृ. ४०) अतीतपर सिर धुनना मूर्खता है, मुट्ठीसे फिसलते वर्तमानको सहेजनाहै, सही अर्थ देनाहै। "उसने आँखें दीवारकी ओर कर उसपर बनी पेंटिंगपर गाड़ दीथी। जिसमें सिद्धार्थकी आकृति उभरकर उसमें समा गयीथी और वहाँ उभर आयाथा संजीव! उसे लगाथा सिर्फ जो आज है, वही सत्य हैं।" ऐसी कहानियाँ युग-परिवर्तन और सामाजिक क्रांतिको बल देनेवाली है। परिस्थितियोंके आगे नतमस्तक होना उतना कठिन नहीं, जितना उससे जूझकर अपना मार्ग प्रशस्त करनाहै। कृष्ण शुक्लकी प्रायः सभी कहानियोंमें क्रांतिधर्मिताकी तलाश जारी है।

'डरा हुआ महानगर' महानगरीय जीवनकी आपाधापी, भागदौड़, क्षिप्रता, अव्यवस्था, त्रासदी, कुंठा और आत्मघाती प्रवृत्तियोंका खुला दस्तावेज है। न वहाँ कोई सुरक्षित है, न किसीका 'स्व' बचा है और न कोई अपने बारेमें इतमीनानसे सोचही सकताहै। आदमी मौतके कुहरेसे ढकाहै और भीड़का एक अंग बनकर अपनी पहचान खोता जा रहाहै। उसके होनेपर पल-पल खतरा है। 'संचेतना' (५७) में 'मौत' शीर्षक कहानीमें इस समीक्षकने कलकत्ताकी त्रासदीका मार्मिक अंकन कियाहै। कलकत्ता क्या किसीभी महानगरमें आदमी जिंदा होकर भी क्या मौतके हाथ पल-पल नहीं बिकता जारहाहै? "उसे लगा, कमरेमें टियर गैसका धुंआ फैल गयाहै। बिजलीकी रोशनी कमजोर होती जारहीहै। कई आवाजें उभर रहीहैं। हमारा खून ''। इन्हें बेकार मत बहाओ। नहीं तो कोलतारकी सड़कोंपर जमकर काला होजायेगा।" (डरा हुआ महानगर पृ. ८९) यह कटु सत्य है महानगरोंकी जीवन पद्धतिके बारेमें, जिसे लेखक औचित्यकी वाणी दे सकाहै।

'दरारोंवाला बाँध' (जिस आधारपर पुस्तकका नामकरण हुआहै) रमानेवाली कहानी नहीं है, न उसमें जीवनके प्रति किसी गंभीर दृष्टिकी ओर संकेतही है। नारी सारी शालीनता, मर्यादा, क्षमताओंके बावजूद पुरुषके बिना दरारोंवाले बाँधकी तरह होतीहै—"कितना बड़ा बंधन था नारीके लिए। सारे गुणोंको लेकर भी वह असफल रहीथी, एक पुरुषके अभावमें।" इसे दार्शनि

इस कहानीका उद्देश्य है।

अन्य कहानियाँभी अच्छी हैं। जहाँ-जहाँ लेखक प्रारम्भमें उद्देश्य लेकर चलाहै, वहाँ वह जम नहीं सकाहै। किस्सागोईही सब कुछ नहीं है—वह जीवनकी अंतरात्मा में किस प्रकार प्रविष्ट होकर हृदय-संप्रेष्य और सार्वजनीन कथ्य उपस्थित करताहै—इसका महत्त्व अधिक है। भाषा सरल और प्रवाहमयी है। लेखकका यह पहला प्रयास है, जो इसकी संभावनाओंका साक्षी है। आवरण चित्र आकर्षक और अर्थवान है। □

राजस्थानके कहानीकार[१]

सम्पादक : कमर मेवाड़ी

समीक्षक : सुरेन्द्र तिवारी

कमर मेवाड़ी द्वारा सम्पादित 'राजस्थानके कहानीकार' में राजस्थानके बारह नये-पुराने कथाकारों—ईश्वरचन्दर, आलमशाह खान, स्वयंप्रकाश, रामदेव आचार्य, हबीब कैफी, योगेन्द्र किसलय, मणि मधुकर, मधुसूदन पण्ड्या, अफजल खां 'अफजल', मोहरसिंह यादव, हेतु भारद्वाज, कमर मेवाड़ी—की कहानियां संकलित हैं।

राजस्थानमें पिछले दो दशकोंमें साहित्यके प्रति काफी चेतना जागीहै और साहित्यकी हर विधामें श्रेष्ठ लेखक सामने आरहेहैं परन्तु कहानीके क्षेत्रमें राजस्थानके कई कहानीकारोंने काफी प्रगति कीहै और भारतीय स्तरपर ख्याति प्राप्त कीहै। ईश्वरचन्दर, मणि मधुकर, आलमशाह खान, स्वयंप्रकाश इसी श्रेणीके कथाकार हैं। इस संकलनमें संकलित इनकी कहानियांभी अन्य कथाकारोंकी अपेक्षा कुछ अधिक पठनीय और कथ्य तथा शिल्पकी दृष्टिसे सक्षम हैं।

ईश्वरचन्दरकी कहानी 'इसके बावजूद' एक ऐसे वृद्ध पिताकी कहानी है जो अपनी परम्परा और हठके सामने अपने बेटेको भी कुछ नहीं समझता और बेटा जब पिताकी पसन्दकी लड़कीको ठुकराकर अपनी पसन्दकी लड़कीसे शादी कर लेताहै तब वृद्ध पिता उसे घरमें भी नहीं घुसने देता। पर कहानीका कथ्य सिर्फ इतनाही नहीं है बल्कि कहानीका अन्तही कहानीका कथ्य है। पिताको अचानक जब पता चलताहै कि वह दादा बन गयाहै तो फिर वह अपनेको रोक नहीं पाता और पोतेको देखनेके लिए अपने बेटेके मकानपर पहुंच जाताहै। वास्तवमें यह कहानी जहां एक तरफ दो पीढ़ियोंके संघर्षकी कहानी है वहीं मानवीय संवेदनाको सक्षमतासे उभारनेवाली भी कहानी है।

दो पीढ़ियों अर्थात् पिता और पुत्रके सम्बन्धोंको दर्शानेवाली एक और कहानी इस संकलनमें है—रामदेव आचार्यकी 'बाबूजी'। परन्तु 'इसके बावजूद' का पिता जहां स्वाभिमानी और दृढ़प्रतिज्ञ है वहीं 'बाबूजी' का पिता छली और दम्भी है और जो अपने पुत्रसे झूठके सहारे रुपया ऐंठनेमें भी कोई संकोच नहीं अनुभव करता। वास्तवमें 'बाबूजी' का पिता एक ऐसे वर्गका प्रतिनिधित्व करताहै जो अपने स्वार्थसे कभी ऊपर नहीं उठ पाया और अपनी स्वार्थपूर्तिके लिए कोईभी कदम उठानेमें नहीं हिचकता। किन्तु ऐसे वर्गका विरोध होना चाहिये और यही इस कहानीका पुत्रभी करताहै। वह अपने पिता के समक्ष विरोधका स्वर उठाताहै और पिताकी गलत मांगोंको ठुकरा देताहै। इस बिन्दुपर आकर यह कहानी ज्यादाही प्रभावशाली और विश्वसनीय हो उठतीहै।

इस संकलनमें बाल-मनकी संवेदना और सोचको उभारनेवाली दो बहुतही अच्छी कहानियां हैं—आलमशाह खानकी 'पराई प्यासका सफर' और अफजल खां 'अफजल' की 'गाना सुनियेगा बाबूजी'। आलमशाहने होटलमें काम करनेवाले दो कम उम्र बच्चोंकी मानसिकताको उभाराहै जो एक दूसरेको एक गिलास पानी देनेमें भी अलसातेहैं पर होटल मालिककी आवाजपर आधी रातको कंपकंपाते हुए भी दौड़ पड़तेहैं। दूसरी कहानी 'गाना सुनियेगा बाबूजी' में एक भिखमंगे अंधे बच्चेकी कहानी है, परन्तु यह कहानी अपनी अत्यधिक भावुकताके कारण वह प्रभाव नहीं छोड़ पाती जो पहली कहानी छोड़तीहै।

मणि मधुकरकी 'दस्यु' और कमर मेवाड़ीकी 'सूरज फिर निकलेगा' गढ़ी हुई कहानियां हैं, विशेष रूपसे कमर मेवाड़ीकी कहानी। गरीब और बेबस किन्तु जवान और आकर्षक औरत, धन्ना सेठ, सेठ द्वारा औरतपर बलात्कार की चेष्टा, औरत द्वारा सेठकी हत्या—जैसी घिसी पिटी घटनाओंके सहारे बनी गयी यह कहानी न तो पाठककी संवेदनाको छू पातीहै, न औरत या सेठके प्रति कोई भावना ही जगातीहैं, क्योंकि इस तरहके फिल्मी दृश्य देख-देखकर आजका आदमी पहलेही बहुत ऊब चुकाहै।

इन कहानियोंके अतिरिक्त जो कहानियां इस संकलन में पढ़ी जा सकतीहैं वे हैं योगेन्द्र किसलयकी 'नीमके दरख्तसे', हेतु भारद्वाजका 'अब यही होगा'।

---

१. **प्रकाशक : सम्बोधन प्रकाशन, कांकरोली (राजस्थान)। पृष्ठ : १२२; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।**

कुल मिलाकर कमर मेवाड़ीका यह सम्पादकीय वक्तव्य पूरी तरह इस संकलनपर खरा नहीं उतरता कि प्रस्तुत रचनाएं कहानियां न होकर अपने समयकी वे सच्चाइयां और यथार्थकी वे यादगारें हैं जिन्हें आनेवाले कलकी पीढ़ियां सामान्य जनके जीवनके ऐतिहासिक दस्तावेजके रूपमें ग्रहण करेंगी।' बल्कि मेरा तो कहना है कि इस संकलनके अधिकांश कथाकार बहुतही परिपाटीबद्ध कथाकार हैं—हर दृष्टिसे। पुस्तकका प्रकाशन पक्षभी सामान्य है—हर दृष्टिसे। □

आतंक[1]

[लघुकथाएं]

संपादक : नंदल हितैषी

समीक्षक : डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी

धीरेन्द्र शर्माके संयोजनमें नन्दल हितैषी द्वारा संपादित 'आतंक'की प्रस्तुति हिन्दी लघुकथाओंके इतिहासकी एक अविस्मरणीय घटना है। पहली बार किसी एक विषय पर केन्द्रित १११ लघुकथाएँ हिन्दीमें समायोजित की गयी हैं और केन्द्रीय विषयकी व्यापक गवेषणाभी उपस्थित की गयीहै। संपादक और संयोजक बधाईके पात्र हैं कि उन्होंने पूरी तन्मयताके साथ भारतीय पुलिसका चरित्र उजागर कियाहै। 'आंतक' में आकलित आलेखोंसे पुलिस और लघुकथाका सत्य सामने आयाहै। विभिन्न लघुकथाएँ पुलिसकी चारित्रिक विलक्षणताओंकी परतें उघाड़तीहैं। इसी कारण, 'आतंक' से गुजरना अनुभव और अभिव्यक्ति के एक पृथक् संसारसे गुजरने जैसा है। समूची पुस्तक तीन सोपानोंमें विभक्त है और ये सभी सोपान विषयके साथ न्याय करतेहैं।

'आतंक' के प्रथम सोपानमें पुलिस संगठनको विचारों के घरसें समेटनेवाले आठ आलेख हैं। भारतीय जनमानसमें पुलिसकी कोई अच्छी छवि नहीं है—इस स्थापनाको पुष्ट करनेवाले इन आलेखों द्वारा अंततः यही साबित किया गयाहै कि पुलिस अपने मौजूदा संगठनमें नहीं सुधर सकती। जनताका विश्वास पुलिसपर से उठ गयाहै, पुलिस दमनात्मक कारवाईका हथियार है, पुलिस भ्रष्टाचारका जीवन्त उदाहरण है, पुलिस रक्षकके रूपमें भक्षक है। यही सारे निष्कर्ष डॉ. अशोक अग्रवाल, ध्रुव जायसवाल, नवीन नौटियाल, डॉ. रामबहादुर वर्मा और धीरेन्द्र शर्माके निबन्धोंसे सामने आतेहैं। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में अंकित आरक्षी-वृत्तान्तका अनुवाद उपस्थितकर धीरेन्द्र शर्माने यही समझायाहै कि मौजूदा पुलिस-व्यवस्था एक विकृत संस्कृतिकी उपज है। आजका समूचा पुलिस-तंत्र किस सीमातक भ्रष्ट और विगलित हो चुकाहै, इसीका लेखा-जोखा 'आतंक' के इस प्रथम सोपानमें है। 'आतंक' के द्वितीय सोपानमें लघुकथाके स्वरूप और विकाससे सम्बद्ध चौदह रचनाएँ हैं। आशा पुष्प, डॉ. कमल चोपड़ा, जगदीश कश्यप, बलराम अग्रवाल, भूपालसिंह अशोक आदिके आलेखोंमें लघुकथाकी विविध रचनात्मक विशिष्टताएँ और बनावटकी मौलिकताएँ सामने आयीहैं। विक्रम सोनीके निबंध द्वारा लघुकथाका सम्पूर्ण इतिहास उजागर हुआहै। अमर गोस्वामीने लघुकथा आन्दोलनकी सार्थकतापर विचार कियाहै, लेकिन उन्होंने लघु कहानी लघु व्यंग्य जैसी इतर विधाओंके सन्दर्भमें लघुकथा आन्दोलनका ब्यौरा नहीं दियाहै। एक सम्भावनापूर्ण विधाके रूपमे लघुकथाका विश्लेषण 'आतंक' के द्वितीय सोपानमें आश्वस्त करताहै।

'आतंक' का तीसरा सोपान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं आकर्षणका केन्द्र है, जिसमें जनता और पुलिसके अंतः सम्बन्धोंका उद्घाटन करनेवाली १११ लघुकथाएँ हैं। संयोजक और सम्पादक बधाईके पात्र हैं कि उन्हें एक विशिष्ट विषयपर केन्द्रित इन सारी लघुकथाओंके लिए लगभग ६० रचनाकारोंका सहयोग मिला। किसी विषय विशेषपर लिखवानेमें जिन संकटोंका सामना करना पड़ताहै, उन्हें भुक्तभोगीही जानतेहैं। 'आतंक' में पुलिसके आचरण और विघटनको रेखांकित करनेवाली लघुकथाएं ही अधिक मात्रामें संकलित हुईहैं। कैसे पुलिस घटनाकी तैयारी करतीहै, इसका चित्रण अतुलमोहन प्रसादकी लघुकथा 'आदेश' में हुआहै। कैसे पुलिस व्यवस्थाका सम्मान करती है, इसका आलेखन अन्ततः (कमलेश प्रकाश), प्रमोशन (कैलाशचन्द्र जायसवाल), अधिकार और अधिकारी (फजल इमाम) जैसी लघुकथाओंमें लक्षित है। कैसे पुलिस पूछताछके बहाने यौनशोषण करतीहै, यह सच्चाई भगवती-प्रसाद द्विवेदी, इन्द्रा स्वप्न, पुष्पलता कश्यप, आनन्द बिल्थरे, रामकृष्ण विकलेश, चाँद मुँगेरी आदिकी रचनाओंमें समान मानसिकताके साथ सामने आयीहैं। विक्रम सोनीकी लघुकथा 'पुरस्कृता' की नायिका रातभर बयान देते-देते थक जातीहै। बोरी और टाट, परमिट, बयान,

---

1. प्रकाशक : अन्तरा, ५१ श्रीशचन्द्र बसु मार्ग, इलाहाबाद-२११००३। पृष्ठ : २३६; डिमा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

वापसी पूछताछ, इज्जत जैसी सभी लघुकथाओंमें पुलिस द्वारा किये गये यौनशोषणका आतंक उपस्थित हुआहै। पुलिसके इस यौन आचरणका ही जवाब है सुरेश त्रस्तकी लघुकथा 'कुत्ते', जिसमें दलाल थानेदारके सामने उसकी ही बहनको परोस देताहै। आतंक और शोषणके विभिन्न आयामोंको भारतीय पुलिसने किस तरह समेट रखाहै, यह इस संकलनकी लघुकथाओंसे स्पष्ट है। रमेश श्रीवास्तवकी रचना 'कीमत' में पुलिसकी एक नयी भूमिका यहभी सूचित कीगयीहै कि वह परीक्षाभवनमें पुर्जे पहुंचातीहै। राजश्री रंजिताने तो पुलिसकी भ्रष्टताके घेरेमें आई. जी. को भी समेट लियाहै। कुछ लघुकथाओंमें पुलिसको चूना लगानेकी घटनाएँ हैं, तो आनन्द बिल्थरेकी लघुकथा 'बयान' पुलिस-शोषणके खिलाफ आक्रोशकी वाणी देतीहैं। इन सारी लघुकथाओंका एकमेव संकल्प पुलिसके घिनौने-भक्षक चरित्रको उजागर करनाहै। अपने इस लक्ष्यमें 'आतंक' सफल हुआहै, इसमें सन्देह नहीं। सम्पादकको कथ्यकी आवृत्तिपर ध्यान देना चाहियेथा। इस सम्पादकीय चूकके कारणही समान कथ्यकी कई लघुकथाएँ संकलनमें आ गयीहैं।

'आतंक' अपने आपमें एक श्लाघ्य प्रयास है। पुलिस और लघुकथाके चरित्र संकेतनकी एक समर्थ कोशिश। मुद्रणकी अशुद्धियाँ खटकतीहैं। आवरण समूचे संकलनकी आत्माको प्रतीकित करताहै। ☐

हास्य व्यंग्य

शोक चिह्न[1]

लेखक : हनुमंत मनगटे
समीक्षक : शंकर पुणतांबेकर

हनुमंत मनगटे वैसे कहानीकार हैं। उनकी 'सामना' कहानी जब 'सारिका' में प्रकाशित हुईथी, तो काफी चर्चाका विषय बनीथी। कम किन्तु प्रभावपूर्ण लिखनेवाले, चर्चा-गोष्ठियोंके हथकंडोंसे दूर रहनेवाले जो थोड़े बहुत भोंपूहीन साहित्यकार होतेहैं उनमें हनुमंत मनगटे अग्रगण्य हैं। 'सामना' कहानीकी तरह जब उनका 'शोक चिह्न' व्यंग्य 'नई कहानी' में प्रकाशित हुआथा, तो वहभी खासा चर्चित हुआथा। यह रचना लेखककी व्यंग्यकी गहरी पकड़ का परिचय देती है। अभिधात्मक शैलीके सहज किन्तु उतनेही समर्थ व्यंग्य बहुत कम लिखे जातेहैं। कई बार व्यंग्य प्रतीकोंमें अथवा विदग्धताके नाम शब्दजालमें अपनी तीक्ष्णता खो बैठताहै। शैलीमें ध्वन्यात्मकता व्यंग्यकी अनिवार्य शर्त है···और जो लेखक अभिधामें से ध्वन्यात्मकता पैदा करतेहैं उनकी लेखनीकी क्या कहने! 'शोक चिह्न' में इसी तरहकी शैली विद्यमान हैं। एक पुलिस इन्स्पेक्टरको पहलेही ज्ञात हो गयाहै कि राष्ट्रपतिकी मौत हो गयीहै।···'पिछली बार जब वह दौरेसे लौट रहाथा, एक स्टेशनपर नेहरूजीकी मृत्युका समाचार मिलाथा। उस समय दुःखकी अभिव्यक्तिके लिए काले रंगकी खादी का कपड़ा न मिल सकनेके कारण जैसे दुःखका पहाड़ही उसके सीनेपर सवार होगयाथा।···आज प्रेसिडेंटकी मौत-पर उसने तय कर लिया कि काली खादी पट्टीकी बजाय वह टेरिलिनका आधे मीटरका टुकड़ा खरीदेगा। खादीकी पट्टी एक बारही काम आ सकतीहै।···टेरिलिनकी कई सालोंतक चल सकेगी, फिर उसमें चमकभी रहेगी।'

सच, व्यंग्यका कैसा सहज, बिखरा अभिधात्मक ढंग!

प्रस्तुत संग्रहकी १६ रचनाएँ यद्यपि इसी ढंगके सहज व्यंग्य नहीं हैं तथापि वे बहुत कुछ आश्वस्त करती हैं। व्यंग्य आसपासके कूड़े-कचरेको कच्चे मालके रूपमें इस्तेमाल करताहै। कचरा जितना यथार्थ उतना वह व्यंग्यके लिए आदर्श। लेखकने अपने आसपासके आम कचरेको बखूबी बटोरा है। दफ्तरशाही-लालफीताशाही, अंग्रेजी परस्तता, काफीहाउस-संस्कृति, पाद-महिमा, अवसरवादिता, भाई भतीजावाद, भाषणबाजी, अहंवादिता जैसे कचरा-मणियों को छाँट-छाँटकर बीना है। लेखकके व्यंग्यका मूल स्वर राजनीतिक है। कुर्सी-नेता-देशदशापर उसकी नजर बराबर बनी रहतीहै। संदर्भ प्रेम हो, धर्म हो या साहित्य, इनमें भी राजनीतिका प्रतिबिंब पड़े बिना नहीं रह पाता।

बटोरे हुए कूड़े-कचरेका लेखकने अपनी अभिधात्मक शैलीमें व्यंग्य किस प्रकार ढालाहै कुछ नमूने—

—पाँव या पैर और चरणमें अन्तर होताहै। पाँव या पैरका स्थान फुटपाथ, खेत, खलियान, घर, कुटियामें होताहै तो चरणका लिफ्ट, कार, वायुयान या कोठी-फ्लेट में।···इसी कारण कोई बाप अपने बेटेका नाम पाँवकुमार, पैरसिंह, पाँवदास या रामपैर रखना पसन्द नहीं करताहै। चरणकुमार, चरनसिंह, चरणदास या हरिचरण नामके इंसान हमें मिल जातेहैं। (बलिहारी गुरु आपकी पृ. ११)।

---

१. प्रकाशक : प्रारूप प्रकाशन, ६४, चौक गंगादास, इलाहाबाद—२११-००३। पृष्ठ : १०३; क्रा. ८३; मूल्य : १७.५० रु.।

—इसे संभावनाओंका शहर कहा जा सकताहै। क्योंकि यहाँ इस चेतनाके चार मिनेमा घर, चारपाँच देशीविदेशी दारूकी दुकानें, दसपाँच माँसाहारी होटल, एकाध जेल, चारपाँच अखाड़े और दोपेजी अखबार जैसे सभी स्रोत उपलब्ध हैं। (शहर संभावनाओंका, पृ. १७)

—मंत्री महोदयको सुबह दस बजे आनाथा। वे एक बजे पहुंचे। इस बीच कड़कड़ाती धूपमें सड़कके किनारे खड़े छोटे-छोटे बच्चोंमें से कई गश खाकर गिर पड़े। बहुतोंको चक्कर आ रहेथे लेकिन अनुशासनके नामपर उन्हें खड़ा किया गया। (जनसंपर्क दौरा, पृ. ३५)

—मुझे लगताथा कि जैसे मैं एक छोटी-सी पुलियाहूँ और वह चंबल बाँध है। लेकिन मुझे मालूम था कि उसका भी वही हश्र होगा जो आजकलके बँधनेवाले बाँधोंका होताहै। एकाध साल बाद दरारें और फिर आगे धराशायी। (कुछ करना होगा, पृ. ४०)

—कबीरने कहाहै जो घर बारै आपनो, चले हमारे साथ··· (क्यों नहीं कहेंगे वे ऐसा क्योंकि) असलमें कबीरके पास खुदका एकभी घर नहीं था। और न उनमें इतनी काबलियतही थी कि वह अपने लिए घर बना सकता। किस कविने—कवि-सम्मेलनी कविको छोड़कर—आजतक अपना घर बनायाहै। (जो घर बारै आपनो, पृष्ठ ५३)

—पहले भगतिनें फिर भगतगण। भगतिनोंका क्यू इतना लम्बा होता कि कई दिनोंतक भगतोंका नम्बर ही नहीं आता। (महान् आत्मा, पृष्ठ ६७)

—बच्चा सात-आठ महीनेका होगा। माँ उसे अपने स्तनका दूध पिलाना चाहतीहै, लेकिन वह जोरोंसे हाथ पैर चलाते हुए चीख रहाहै। —'हम तुम्हारा मिल्क नहीं पियेगा।' माँ कहती है, 'तो फिर किसका दूध पियेगा कमबख्त।' 'मम्मीका—' अंग्रेज महिलाकी ओर इशारा कर कहताहै। 'तेरी माँ तो मैं हूं। वह तो सौतेली है।' इसपर बच्चा कहताहै, 'हम बोल्टा, टुम हम्मारा मम्मी नहीं होटा। (त्रिशंकु, पृष्ठ ३४)

कुछ स्थलोंपर यह अभिधात्मकता व्यंग्यमें पैनापन नहीं ला सकीहै। यथा—

—जब वे विदेशसे हर चीज मँगवा सकतेहैं, तब क्यों न पानीसे भरे जहाज नहीं मँगवा सकेंगे। और फिर विदेशी पानीका मजा स्वदेशी पानीमें आभी कहाँ सकताहै। (हला मिस्टर मेघदूत, पृष्ठ २३)

—सिंहासननुमा कुर्सीपर किसी हिन्दुस्तानीको बैठनेका सबसे पहला अवसर मिला होगा, तब उसके दोस्तों और चमचोंने 'चीयर' किया होगा। 'चीयर' का अपभ्रंश 'चयर' होगया। (कुर्सीका जीव, पृष्ठ २७)

—प्रजातंत्रमें सबसे शक्तिशाली प्राणी होगा मंत्री और मंत्रीके बाद संत्री। इसके बाद नम्बर आताहै करोड़पतियोंका, फिर सरकारी उच्च पदाधिकारियोंका (इंटरव्यू, पृष्ठ ७०)

—भीमरावकी पूँछ है, यह सिद्ध करनेके लिए मैं डार्विनकी थ्योरीका सहारा नहीं लूँगा। पूँछसे मेरा तात्पर्य है अतिरिक्त योग्यता, जैसे मंत्रीका संत्री होना 'मुख्यमंत्री का साला होना आदि। (मेरा नेता मेरा प्रतिनिधि, पृष्ठ ६१)

लेखकको 'आजाद होनेका सुख,' 'अंधे', 'शहरका हृदय परिवर्तन' जैसे नितान्त सामयिक या पार्टी विशेषको सामने रखकर लिये गये व्यंग्यसे बचना चाहिये। पत्र-पत्रिकाके लिए ठीक है। संग्रहमें नहीं जाने चाहिये।

'जनसंपर्कका दौरा' में साहित्य-राजनीति या 'महान् आत्मा' में धर्म-राजनीतिको लेकर चलनेवाला दोहरा व्यंग्य आकृष्ट करताहै।

'बलिहारी गुरु आपकी', 'कुछ करना होगा', 'जो घर बारै आपनो', 'पिछवाड़ेकी संस्कृति', शोकचिह्न' जैसी रचनाएँ लेखककी व्यंग्यीय संभावनाओंके प्रति आश्वस्त करतीहैं। □

नेताओंकी नुमाइश[1]

लेखक : डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी
समीक्षक : डॉ. साधना सक्सेना

३१ व्यंग्य निबन्धोंका यह संग्रह नेताओंकी नुमाइश शीर्षकसे तो बड़ाही प्रभावी लगताहै और ऐसा महसूस होताहै कि इसमें नेताओंकी कलई खोली गयी होगी। किन्तु नेताओंकी नुमाइशकी तरह यह निबन्ध-संकलन मात्र नुमाइशही रह गयाहै और इसमें व्यंग्यधर्मिताको अपेक्षित न्याय नहीं मिल सकाहै।

कुछ निबन्धों—जैसे "जब रावणने 'रामराज्य' सप्ताहिकको बंद करनेका प्रयास किया," "अभिनन्दन-पत्र जो श्री भ्रष्टाचारके करकमलोंमें भेंट किया गया"—के शीर्षक बहुत लम्बे हैं। शीर्षकोंका छोटा होनाही अधिक प्रभावशाली माना जाताहै।

---

१. प्रकाशक : किताबघर, मेन बाजार, गांधीनगर दिल्ली-३१। पृष्ठ : १२०; क्रा. ८३; मूल्य : १६.०० रु.।

"जब रावणने 'रामराज्य' साप्ताहिकको बंद करनेका प्रयास किया" में व्याकृति द्वारा राजनीति, शिक्षा एवं अधुनातन प्रवृत्तिपर व्यंग्यकार चतुर्वेदीजीने संक्षेपमें चतुर्दिक विडम्बित वातावरणको उद्घाटित कियाहै।

तुलनात्मक एवं वार्तालाप शैलीमें लिखे गये निबंध सप्रयास जान पड़तेहैं। इस संग्रहमें चतुर्वेदीजी फिल्मोंसे अत्यधिक प्रभावित रहेहैं। यह वाक्य "आप जैसा कोई मेरी ज़िन्दगीमें आये" उदाहरण है। प्राचीन कविता शैलीमें, दोहा चौपाई एवं अर्थहीन तुकबन्दी करनेका मोह संवरण भी नहीं कर सकेहैं। वार्तालाप शैलीमें लिखित "परीक्षा लिया जाना मंत्री बननेसे पहले," "क्या शादी करना जरूरी हैं?" "मजनूँ टिकटके" तथा "बचत योजना" आदि सफल निबन्ध नहीं हैं। "बचत योजना" में नाटकीय मोड़ देनेका प्रयास किया गयाहै।

समसामयिक विषयोंको लेकर सशक्त एवं सटीक विधा के रूपमें व्यंग्य साहित्यक्षेत्रमें स्थापित हुआ। इसका उद्देश्य जीवनसे साक्षात्कार करनाहै न कि किसीकी दाढ़ी के बाल गिनना। "दाढ़ीकी प्रासंगिकता," "सिफारिश-कलाका शास्त्रीय-अध्ययन," "व्यथा-कथा एक 'रिटायर' भए ब्रजवासी अफसरकी" "शौक कुत्ता पालनेका," "हमने पुरानी कार खरीदी" "मुसीबतें मोल लेना शुद्ध दूधके चक्करमें," "मिलिए पंडित मुफ्तानन्दजीसे," "मोर्चा चमचागिरीके विरोधमें" "लाओ चंदा, लाओ चंदा," "फ्लूके चक्करमें" आदि निबन्धोंको व्यंग्यके खेमेमें रखनेका औचित्य तो चतुर्वेदीजीही जानें।

कुछ निबन्धोंके शीर्षक चतुर्वेदीजीने प्रश्नवाचक रूपमें दिये हैं और वास्तवमें वे प्रश्नवाचक बनकर ही रह गयेहैं, जैसे, "क्या भ्रष्टाचार रोग असाध्य है?" "क्या शादी करना जरूरी है?" "नर्स-कर्स, और पर्स" नामक निबन्ध चतुर्वेदीजीके 'मुसीबत है' नामक संकलनमें भी प्रकाशित हुआहै। यह निबन्ध दोनोंही जगह चतुर्वेदीजीके ही शब्दों "वो वाई फूले भये गुब्बारेकी भाँति है जाये जाकि हवा निकारे जाये" को चरितार्थ करताहै। इसी तरह एकही बातको विभिन्न स्थानोंपर दोहराया गयाहै, जैसे—'दालभातमें मूसलचंद' की अंतिम पंक्तियां एवं छवि-मेन्युफेक्चरिंग कम्पनी" का वाक्य "यदि नेता महोदयका चरित्र है तो मैंने अवश्य हनन' कियाहै।" इसी प्रकार 'मंत्रीजीका चरित्र हनन की अंतिम पंक्तियाँभी है। ये पुनरुक्तियाँ व्यंग्य-शिल्प पर उपयुक्त टिप्पणियां नहीं। "अभिनन्दनपत्र जो श्री भ्रष्टाचारके कर कमलोंमें भेंट किया गया" निबन्धकी शैली काफी अच्छी है। फिरभी वे बातको बहुत प्रभावशाली ढंगसे नहीं कह पायेहैं जितनी शरद जोशीने इसी विषयपर अपने निबन्धोंमें कहीहै।

"चर्चा सफेदपोश डाकुओंकी" एक सशक्त निबन्ध है। इसमें लेखकने निर्भीक होकर सटीक व्यंग्य कियाहै। इसी प्रकार "दहेज लेनेकी नयी-नयी शैलियाँ" एवं "छवि-मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी" में समसामयिकताका ध्यान रखा गयाहै।

संकलनमें अंग्रेजी शब्दोंका खुलकर प्रयोग किया गयाहै किन्तु जहाँ बहुप्रचलित अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग अधिक समीचीन होता, वहां किसी अप्रचलित क्लिष्ट शब्दका प्रयोग कर दिया गयाहै। वर्तनी सम्बन्धी भूलें तो बहुत अधिक हैं। ऐसा लगताहै कि 'ए' के स्थानपर 'ऐ' का प्रयोग लेखकको अधिक रुचिकर लगताहै, जैसे—टेस्ट, सेटिल,' सैक्शन, सेमिनारके लिए 'टैस्ट,' 'सैटिल,' 'सैमिनार' आदि। हिंदी में 'आँ' का प्रयोग मानक हिन्दीमें होने लगाहै। ऐसी दशामें इसके स्थानपर 'आ' या 'ओ' का प्रयोग खलताहै, जैसे 'बॉस' के लिए 'बास' तथा 'हॉट' के लिए 'होट'। ब्रजभाषाके प्रयोगमें भी कहीं-कहीं तो लेखकने 'ष' और 'श' के स्थानपर 'स' का प्रयोग कियाहै, जैसे पृष्ठ ५७ पर तृस्ना।' इसके बाद 'शुभ' तथा 'कृष्ण' लिखाहै जबकि ब्रजकी ध्वनि-व्यवस्थाके अनुसार सभी जगह 'स' का प्रयोग होना चाहिये। उर्दू शब्दोंके प्रयोगमें भी इसी प्रकारकी अव्यवस्था हैं। लेखकने कहीं नुक्ता लगायाहै और कही नहीं। एकरूपताका ध्यान रखना अधिक उपयुक्त होता। 'तक़दीर' में तो नुक्ता लगा दियाहै किन्तु 'काजी' 'इन्तजाम' 'दफ्तर' आदि शब्दोंमें वे इस नुक्तेको भूल गयेहैं।

शब्दोंके प्रयोगभी विचारणीय हैं। 'मम्मी-पापा' शब्द मध्य वर्गमें प्रयुक्त होतेहैं। किन्तु 'डैडी' शब्द चतुर्वेदीजीके प्रिय शब्द 'डिलक्स' श्रेणीके परिवारोंमें प्रयुक्त होताहै। लेखकने मध्य वर्गकी समस्याको लियाहै और डैडी शब्दका प्रयोग कियाहै, जो समीचीन प्रतीत नहीं होता। पृ. ५१ पर यह वाक्य विचारणीय है—"मिठाई संज्ञा है किन्तु मिठास भाववाचक संज्ञा है।" इसके द्वारा व्यतिरेक अधिक प्रभावशाली ढंगसे नहीं उभरता, जैसाकि लेखकका उद्देश्य है।

कहीं-कहीं लेखकने सशक्त वाक्योंका प्रयोग कियाहै, जो प्रशंसनीय है। उदाहरणार्थ, पृष्ठ ११ पर "सूदखोर अपने कर्जदारसे मूलही वसूल नहीं करता, चक्रवर्ती ब्याज के हिसाबसे पूरी रकम वसूल करताहै," "ग्लूकोज से लाइन चढ़ाना तो कामधेनुका कार्य करताहै।" पृ. ७१पर

"सुनियोजित पापही आधुनिक युगमें पुण्य कहा जाताहै"। आदि।

यह निबन्ध-संकलन व्यंग्यके क्षेत्रमें यदि किसी नौसिखिएका होता तो इसे प्रोत्साहन देनेके उद्देश्यसे अच्छा कहा जा सकताथा। परन्तु एक मंजे हुए लेखककी यह कृति उसकी यश-श्रीमें कदाचित चार चाँद न लगा सके। हां यह अवश्य है कि संकलनके कुछ निबंध हास्य उत्पन्न करनेमें सफल हैं। □□

काव्य संकलन

कहना आसान है[1]

लेखक : महाराज कृष्ण काव

समीक्षिका : इन्दु बाली

'कहना आसान है' महाराज कृष्ण कावका हिन्दीमें पहला काव्य संग्रह है। कविताओंका मूल व्यंग्य है और मानवीय सरोकारसे जुड़ता हुआ सीधा, सहज और सरल है। परन्तु धार इतनी पैनी है कि कथ्य समाजके किसीभी क्षेत्रसे क्यों न उभरे, सीधे सम्प्रेषित होताहै गहरी पैठ करताहै।

कहना आसान है
खेल है यह सब
खेल है
जैसे कोई फुटबालका मैच
और ईश्वर मुंहमें सीटी दबाये
कभी इधर
कभी उधर फाउल देताहै

जिन्दगीकी तेज़ रफ्तारको लेकर आजके टूटते-बिखरते शून्य होते मानवको कितनी सुन्दरता और सहजतासे आगाह करतेहैं—

जिन्दगी अगर दौड़ है
तो तेज भागनाही काफी नहीं है
बचपनमें पढ़ीथी ईसपकी कहानी
खरगोश नहीं जीताथा दौड़में

\+ + +

कितने दौड़ते हुए लोग टकरा जातेहैं
कितने हांफते हुए लोग मर-मरा जातेहैं
दौड़ते हुए लोग खाना नहीं खा सकते
दौड़ते हुए लोग गाना नहीं गा सकते—

\+ + +

जीतते हुए लोग केवल महसूसतेहैं
हाई ब्लडप्रेशर और गैस्ट्रिक अलसर
जिन्दगी अगर दौड़ है
तो बन जाइये
कछुए।

'इन्सान' कवितामें मानवीय सम्भावनाकी बात करतेहैं, व्यंग्यके साथ नया आदर्श उभारतेहैं—

डार्विनने जब आदमीको
बंदरकी औलाद कहा
तो डगमगाये कई धर्म

\+ + +

जिस आँखने देखा
बानरको बना भगवान
वह कभी तो बूझेगी
अनन्त सम्भावनाएं
जिनका नाम है
इन्सान

---

१. प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : ७१; डिमा. ८३; मूल्य : २०.०० रु.।

लगताहै मानवको लेकर वे लगातार एक सपना देख रहेहैं और पढ़नेवालेके मनमें वह साकार होने लगताहै। यथार्थकी ठिठुरती सर्दीमें कहींसे धूपका गोला धीरे-धीरे उनके आसपास एक नयी आशाकी गरमाहट फैलाने लगताहै। बहुत्से प्रश्न-चिह्न उनकी मानसिकता पर सम्भावनाओंको ले उभरतेहैं और उनका उत्तर देनेका प्रयत्न वे तुलनात्मक ढंगसे करतेहैं। अधिकांश कविताओंमें कल, आज और कलका तुलनात्मक रूप, शब्द-चित्र उभरताहै। यह शब्द-चित्र हम महसूसतेहैं और फिर एकाएक आंखोंके सामने आकार लेने लगतेहैं। संभवतः व्यंग्यके साथ यूं शब्द-चित्र उभार देना उनकी बहुत बड़ी शक्ति है।

'ब्यूरोक्रेसी' के धरातलपर भी मानवीय भावनाओंकी दुर्बलताओं और शक्तियोंकी नये संदर्भमें व्याख्या करते नज़र आतेहैं—

कुछ सवाल पुराने हैं
कुछ सवाल नये
एक पुराना सवाल था
वह व्यक्ति रिश्वत तो नहीं लेता ?
यानी जो कामके दाम ले
सो रिश्वतखोर
नया सवाल यह नहीं है
लेते तो सब हैं
नया सवाल है
क्या पैसे लेकर काम कर देताहै?

अपनी बातको आजके बदले युगके परिवेशमें और स्पष्ट करतेहैं—

एक पुराना सवाल था
क्या वह आदमी योग्य है ?
उन दिनों कई कामोंके लिए
योग्यता जरूरी थी
नया सवाल यह नहीं है
योग्यताको क्या चाटनाहै ?
नया सवाल है
इसके बारेमें फोन किसने कियाथा ?

इसी तरहका पैना वार 'दो किस्मके लोग' कवितामें हैं। आजके संदर्भमें पूर्ण जागरूक कवि हमारे सामने उन सत्योंकी व्याख्याभी करताहै जो असत्य होते हुएभी सत्य मान लिये गयेहैं। अच्छे और बुरे व्यक्तिकी व्याख्याके अर्थभी बदल गयेहैं पर इससे 'इन्सान' नामक जीवको कोई फर्क नहीं पड़ता, जबतक कि वह स्वयं यह नहीं महसूस करता कि वह इन्सान है पशु नहीं। जंगलके लौटते नियमोंको उसेही रोकना होगा एक बेहतर इन्सान बनकर। भ्रष्टाचार और बदलते मूल्यको भी नहीं भूले हैं।

वहभी दिन थे
लकड़हारोंको
मिलतीथी जंगलमें
परियां
देतीथीं वरदान
मनचाही चीजका
अब
लकड़हारोंके वंशज
अच्छी-अच्छी परियां
करतेहैं पेश
जनाब रेंजर साहबके पास
वह देतेहैं वरदान
मनचाही चीजका

महाराज कृष्ण धीमी आवाजमें भी तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करनेमें समर्थ हैं—

क्यों न करूं कभी-कभी
बहकी-बहकी हरकतें
कभी-कभार क्यों न कहदूं
वे सारी बातें
जो नशेके बगैर कहनेसे हिचकिचाताहूं।

'सिकन्दर' और 'नेपोलियन' के शराब पीनेकी अति को छूते हुए वे 'नेपोलियन' की प्रेयसियोंकी बातभी करतेहैं और फिर 'वान गो' द्वारा एक वेश्याको अपना कान काटकर दे देनेकी बात लिखतेहैं। 'जूलियस सीजर' का घण्टों मुर्गे उड़ाना और 'चर्चिल' का लगातार धुंआता सिगार। इन सब ऐतिहासिक तथ्योंकी व्याख्या पृष्ठभूमिके रूपमें देते हुए प्रश्नोंमें से एक नया प्रश्न विश्लेषित करतेहैं जिसका वार हमारे हृदयके आरपार निकल जाताहै। कवि अपने सत्यको जीता है और यही उसकी शक्ति बन गयाहै।

जिन्होंने की अति
वही बने जीनियस
एक जुनूनमें रहे तमाम उम्र
क्या सारे जीनियस, ग्रेटमैन थे
मध्यमार्गी

मूडकी खिड़कीसे हटकर
लगताहै
जो घटित होरहा
वही अटल है
लौटकर नहीं आता
गुज़रा हुआ पल है ।

कवि आजमें ही अपने कर्तव्यको पूरा कर देनेकी बात कहताहै जो स्वयं अपनी व्याख्या करता हुआ कल और कलमें परिवर्तित होजायेगा । आजसे कटता हुआ मानव शायद शून्य होकर रह जायेगा । तमाम कविताओंमें सहज अनुभूतिकी सत्यता और मानवीय दृष्टिकी शाश्वतता एक सरसराता सा व्यंग्य प्रस्तुत करतीहै । छोटी-बड़ी सभी कविताओंका वार पैना है, नाविकके तीर हैं । भाव-विभिन्नताको लेकर चलनेवाली कविताएं जीवनकी ऊंचाईयों और नीचाईयोंके सामाजिक स्तरोंको अपनेमें समेटे आगे बढ़ रहीहै, शायद पहाड़ी झरनेसे सागर तक लहरानेके लिए उनके लिए झोंपड़ी और अफसरशाही दर्द एकही धरातलपर आकर उभरताहै । समाजके सभी पक्षोंकी व्याख्या और व्यंग्य करते हुए मानवके उदात्त होजानेकी नहीं बल्कि केवलमात्र इंसान होजानेकी प्रतीक्षा करते नज़र आतेहैं ।

कविताओंमें तलाशऔर छटपटाहटकी गंध लगातार आती रहतीहै । एक अजीब नव-सृष्टिकी प्रलयके बादकी मनु सम प्रतीक्षा है उन्हें । सामान्य स्थितियांभी शायद इसी कारण उनके रेखा-शब्द-चित्रोंमें असामान्य हो उठतीहैं, जो रह-रहकर मानवके अन्तर्मनको झकझोरती है ।

महाराज कृष्णकी कविताओंके पीछे अनुभवकी प्रामाणिकता काफी गहरे महसूस होतीहै, क्योंकि कुछभी आरोपित नहीं लगता । जीवनको और उसके आधारवृत्त मानवको सही अर्थोंमें समझनेकी ललक उसे यथार्थके धरातलसे उठा आकाशमें नहीं बल्कि पातालमें ले जातीहै जहां वे दार्शनिक विश्लेषण करतेहै । उदाहरणस्वरूप उनकी 'लपटें, छिद्र और थकानकी लकीरें' 'मूड' 'मिट्टी' 'गैसके लिए' 'अकाल मृत्यु' और 'बीमा' इत्यादि कविताओंमें देखा जा सकताहै । यह उनकी आजके युगकी कविताओंके नामपर नारेबाजीसे हटकर अलग विशिष्टता है । इसी कारण कविताकी अर्थवत्ताको कहीं ठेस नहीं पहुंचती । कविता चाहे दो, चार या पचास पंक्तियोंकी हो पर प्रभाव एक-सा पैना । उनका एक-एक शब्द लम्बी यात्रा और नये-नये पड़ावों और सार्थक मंजिलका विश्वास जगातेहैं ।

कहीं-कहीं भाव-शिथिलभी होतेहैं, कथ्यकी लय-गति टूटने लगतीहै पर प्रथम संग्रह होनेके कारण इसे विशेष महत्त्व देनेकी आवश्यकता नहीं । आनेवाले कलमें कविसे बहुत-सी आशाएं की जा सकतीहैं । भाषा-शैली भावोंकी तरह सहज और सरल है । □

यादोंके नागपाश[1]

कवि : राजकुमार सुमित्र
समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

प्रस्तुत संकलनकी 'उजासही उजास' कविता 'सुमित्र' की रचनाधर्मिता उजागर करनेवाली एक श्रेष्ठ रचना है । दरअसल कविता भीतरकी ऊर्जा है । वह दुःख-दर्दोंके बीच आसपास फैले उजासको पहचानतीहै । वह सही अर्थोंमें जीने-मरने और जनमनेका एहसासहै । कविता एक शक्ति है जिसकी प्रतिबद्धता जीवनसे है, किरायेके रिश्तों और स्वार्थी अनुबंधोंसे नहीं । कविके लिए कविता जिंदगीका पर्याय बन जातीहै । सुमित्रकी रचनात्मकताकी यही जमीन है और इस दृष्टिसे प्रेमचंद, निराला उनके आदर्श हैं । प्रश्न किसी विशेष विधाका नहीं, अभिव्यक्तिका होता है --

प्रेमचंदकी तरह/उठाकर कहानीको/महलोंसे/झोपड़ीसे जोड़ो/चाहो तो छंदको/निरालाकी तरह तोड़ो/मोड़ो/उसका मुख/दुःखके दरवाजेकी ओर /

यूं तो यादोंके नागपाश' बसंतकी कुछ निशानियोंके साथ पतझड़ोंका स्वागतभी हमें सौंप जातेहैं । 'ढाई अक्षरके निबंधों' के साथ घुटन और संत्रासभी जुड़ाहै । फिरभी कविकी मानवीय चिंता दो पीढ़ियोंके बीच एक सेतु बन जानेकी है जो परम्पराके श्रेष्ठ तत्त्वोंको समेटकर संस्कृतिके नये अध्याय जोड़े । सुमित्रके पास परम्परा और प्रगतिका सही तालमेल है—

सुनो ! हमने नहीं संजोई/मीनार बनानेकी महत्त्वाकांक्षा/हमें तो बस/दो पीढ़ियोंके बीच बने/सेतुकी नियति दो/हमारे उपेक्षित अस्तित्वको/जड़ जिंदगीको/गति दो, गति दो/

सुमित्रका कवि व्यक्तित्व वर्तमान जीवनके दैन्य,

१. प्रकाशक : लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर । पृष्ठ : ९२; डिमा. ७६; मूल्य : १०.०० रु. ।

शोषण, अनास्था और तनावोंसे भली-भांति परिचित है। बौनोंको वामनका अवतार कहा जाताहै, 'सिफारिशके बिना योग्यता अपंग है' संवेदनाका शबदाह हो गयाहै, आदि। फिरभी कविका प्रश्न है—अब ये बात तुम्हारे सोचनेकी है/कि तुम जीवनको लयमें लाना चाहतेहो/ या लय हो जाना चाहतेहो/

सुमित्रकी कविताकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसमें आस्थामूलक और निर्माणपरक दायित्वकी अभिव्यक्ति है। 'शबनमी इलाकेमें शोलोंकी चहलकदमी' के बावजूद कवि सभ्यताका मानवीय व्याकरण हमें सिखाना चाहताहै—

मेरे प्रणामका/शतदल कमल/कभी तो खिलेगा/डूबे सूरजको/नया आयाम/नया परिवेश/कभी तो मिलेगा/

'नया भवन गढ़नेकी सामर्थ्य' कविकी भीतरी ऊर्जा और ऊष्माका द्योतक है। सुमित्रका 'काव्यधर्मी दृष्टि-चिंतन' विचारोंकी पाबन्दीको कभी नहीं स्वीकारता। इसलिए वह जनतांत्रिक मूल्योंके बीच हर पहलूपर विचार करता हुआ वस्तुस्थितिका मुआयना करताहै। केवल राजनीतिक विवशताही नहीं, गधेको आदमी बनानेवाले प्रायमरी शिक्षकपर भी उसकी नजर है और अपने व्यंग्यधर्मी लहजेमें वह कह उठताहै कि—

आप जानतेहैं/ समाजके रजिस्टरमें प्राथमिक शिक्षक/सबसे निचली श्रेणीमें दर्ज है?/किसीने कहाथा—/इसमें क्या हर्ज है/वो छोटे बच्चोंको पढ़ाताहै/इसलिए छोटी रकम पाताहै/बेवकूफ है, क्यों चिल्लाताहै।

जाहिर है कि कवि सुमित्रकी रचनाएं इन्सानी सरोकारसे सम्बद्धहै, राजनीतिक अखाड़ोंसे नहीं। वे यथास्थितिवादके दास नहीं बल्कि 'संभावनाओंकी नयी फसल'के अगुआ-कवि हैं। नहीं। वे'अंधेरेके चीवरमें लिपटी पुखराजी भोर'के कवि हैं जो संकीर्ण मनको गगनका विस्तार देतीहै। 'वह घरेलू कविताओंका कवि' है लेकिन उसका घर उसकी समूची दुनियां है तभी तो वह मारीशस और सिक्किमकी चितासे ग्रस्त है। उसकी पारिवारिकता अंतर्राष्ट्रीय भावभूमि तक फैली हुईहै क्योंकि वह मानवीय सदाशयताकी कविता है।

इन कविताओंकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात है उनकी प्रेषणीयता। उनमें समकालीन कविता जैसा उलझाव और दुरूहता नहीं। नये बिम्ब प्रतीक सहजही हृदयपर अपनी छाप छोड़तेहैं—

(१) आकुल अंजुरीका आस्था जल/निःशब्द बह जाताहै/शेष रह जाताहै/रेतका अछोर अंधा फैलाव/अंतहीन गंधहीन मरुस्थलमें/भटकता/मेरा तितली मन/दिवास्वप्न देखता-देखता/मृग होजाताहै/

(२) त्यक्त वस्त्रों-सी पड़ी/निस्पंद ये परछाईयां/मानों किसीका शापमय आदेश हो/लग रहा—जैसे कि खंडित मूर्तियोंका देश हो।

वास्तवमें सुमित्रकी कविताएं जीवन संघर्षसे उद्भूत और अनुभूतियोंकी आंचमें पकी हुई रचनाएं हैं जो आपबीतीको जगबीती और जगबीतीको आपबीती महसूस करातीहै। वहां व्यष्टि और समष्टिका कोई द्वन्द्व नहीं वरन् सामाजिक और सरोकारके साथ व्यक्तिके उन्नयनकी सुदृढ़ भूमिका है। उनकी पंक्तियां सीधे हमारे दिलो-दिमागपर प्रश्नोंकी बौछारें छोड़तीहैं और वैचारिक भावभूमिपर आत्मालोचनके लिए कुरेदतीहैं। सुमित्र अनुभूतियोंके धनी हैं क्योंकि उनके पास अर्जित सत्य है और वे हमारी जड़ चेतनाकी बातीको एक मुट्ठी रोशनीके लिए निरन्तर उकसाते रहतेहैं। शायद कवि-कर्मकी सार्थकताभी यहीहै। □

दर्द दे दिया चलते-चलते[१]

[गीत संग्रह]

कवयित्री : सुभद्रा खुराना
समीक्षक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

कवयित्री श्रीमती सुभद्रा खुरानाका गीत-संग्रह "दर्दने दिया चलते-चलते" मूलतः भावपूर्ण ५१ गीतोंका संग्रह है, जिसमें विषयगत विविधता होते हुएभी 'दर्दका अहसास' कहीं-न-कहीं पाठकको गहरे छू जाताहै। भूमिकामें प्रख्यात कवि भवानीप्रसाद मिश्रने लिखाहै—"श्रीमती सुभद्रा खुराना निराग्रही गीतोंको लेकर आयी हैं। उनके गीतोंमें दर्शन, प्रेम, पूजा, पर्व, देश सभी ठीक सधे छन्दों और अनुपातपूर्ण रूपमें प्रतिबिम्बित होतेहैं।" मुझे संग्रहके अधिकांश गीतोंमें भवानी भाईके शब्दोंकी सच्चाई मिलीहै। सचमुच आज गीतको 'साधना' के जिस अमृत जलसे सींचे जानेकी आवश्यकता है, वह वैचारिकताके मरुस्थलमें जाने कहां खो गयाहै?

---

१. प्रकाशक : विभु प्रकाशन, साहिबाबाद-२०१-००५। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

इस संग्रहमें 'हृदय' और 'मस्तिष्क' के बीच सन्तुलन रखते हुए कवयित्रीने "हृदय" की प्राण प्रतिष्ठा करायी है।

कहीं-कहीं तो छायावादी भाव प्रवणता एवं बिम्बात्मकता बरबस पंक्तियोंसे मुखर हो उठतीहै—

"तुमने दुलराया होगा, इन--
सांसोंमें सिहरन-सी है,
मुस्कानोंकी द्युति आंगनमें--
प्राणोंमें पुलकन-सी है।" (पृष्ठ-५)

और कहीं-कहीं दर्शनकी गहराईमें पहुंचकर कवयित्री बड़ेही सहज भावसे प्राणी मात्रकी एकात्मकताको वाणी देतीहै—

"अलग-अलग क्या आंक रहे हो,
छलसे हृदय लहरसे !
एक रंगमें रंगी चदरिया,
भीतरसे बाहरसे !" (पृष्ठ-७)

प्रतीकात्मक शैलीकी बहुत सार्थक प्रयोग करते हुए कवयित्री आशा और दृढ़ विश्वासका जो सन्देश देतीहै वह नि:संदेह प्रेरणामय है—

"सूरजके आगे बादलकी---
बात एकभी चल न सकेगी !
यह दोपहरी ढल न सकेगी।" (पृष्ठ-५१)

कहीं-कहीं शब्द-प्रयोगमें कवयित्री नवीनता लायीहै, जैसे---'अनगिन' के स्थानपर "अगिन" (पृ. ५८), 'अभ्राच्छादित,' 'अमृताम्बुधि,' 'कड़कन' (पृ.५५). तथा 'अशब्द' (नि:शब्दके स्थानपर) तथा 'शशि छैय्या' (पृ. ५०) आदि। अलंकार एवं प्रतीक भावोंकी स्पष्टताके लिए प्रयुक्त हुएहैं। संग्रहका मुद्रण सर्वथा निर्दोष एवं नयनाभिराम है। गीत-प्रेमियोंको ये गीत अपनी सहज भावप्रवणता एवं अभिव्यक्ति-क्षमतासे छूएंगे अवश्य।

□□

संदर्भ ग्रन्थ

भारत ८२[1]

सम्पादन : गवेषणा और संदर्भ विभाग
समीक्षक : सुभाषचन्द्र 'सत्य'

देशके लोगोंका जीवन स्तर उठानेमें विभिन्न विकास-कार्यक्रमोंके संचालनके साथ इन कार्यक्रमोंकी सफलताओं-विफलताओंसे लोगोंको अवगत करानाभी समान रूपसे महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि पिछले कई वर्षोंसे विभिन्न जन संचार माध्यमोंमें विकास समाचारों तथा विकास संबंधी विवरण देनेवाले लेखों, वार्ताओं आदिके प्रकाशन प्रसारणपर विशेष जोर दिया जा रहाहै। इस प्रकारकी रचनाओंके लिए संदर्भ-सामग्रीकी आवश्यकता होतीहै जिसका उपयोगकर पाठकों-श्रोताओंको तथ्यात्मक ब्यौरा उपलब्ध कराया जा सकताहै। लेखकों, पत्रकारों, शोधछात्रों तथा शिक्षक समुदायकी सहायताके लिए भारत सरकारके सूचना और प्रसारण मंत्रालयका गवेषणा और संदर्भ प्रभाग प्रतिवर्ष एक संदर्भ ग्रंथ तैयार करता है जिसमें वर्षभर के घटनाक्रमका क्रमिक, योजना बद्ध तथा तथ्यात्मक विवरण दिया जाताहै।

'भारत ८२' इस शृंखलाकी २८वीं कड़ी है। पिछले संस्करणोंकी भांति प्रस्तुत संदर्भ ग्रन्थमें भी अधिकतर ब्यौरा सरकारी क्षेत्रमें किये गये प्रयासोंसे संबंधित है। इसमें १९८२ वर्ष तथा मार्च १९८३ तककी घटनाओंकी

---

१. प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, दिल्ली-१। पृष्ठ : ७२८; रायल ८२; मूल्य (पेपर बैक) २५.०० रु.।

सूचनाएं सम्मिलित की गयीहैं। पुस्तकके बाहरी आवरणमें मामूली अंतरके अतिरिक्त पिछले संस्करणोंकी तुलनामें प्रस्तुत ग्रन्थके स्वरूप, विषय चयन तथा संपादनमें कुछ नयापन नहीं है। यह अवश्य है कि पहली बार इस संदर्भ ग्रन्थमें कुछ रंगीन चित्रभी दिये गयेहैं। इनमें अंटार्कटिक-अभियान-दलसे संबंधित फोटो अत्यन्त सुन्दर और चित्ताकर्षक हैं। पुस्तकमें भारतके क्षेत्रफल समुदायों, राष्ट्रीय प्रतीक, संविधानके महत्त्वपूर्ण तत्त्वों तथा सरकार व जनतासे संबंधित कुछ आधारभूत तथ्योंके अतिरिक्त कृषि, वित्त, व्यापार, रक्षा, विज्ञान व टेक्नोलोजी, ऊर्जा, संचार, शिक्षा, ग्राम-विकास, २० सूत्री कार्यक्रम तथा अन्य क्षेत्रोंमें वर्षभरमें किये प्रयासों तथा इनके परिणामस्वरूप हुई उपलब्धियों या विफलताओंसे संबंधित विवरण व आंकड़े प्रस्तुत किये गयेहैं। इन क्षेत्रोंमें पिछले कुछ वर्षोंमें प्राप्त कीगयी सफलताओंका विवरण देकर तुलनात्मक अध्ययनभी प्रस्तुत किया गयाहै। कहना न होगा यह समस्त विवरण मुख्यतः सरकारी गतिविधियोंतक सीमित है। इस दृष्टिसे इस संदर्भ-ग्रन्थका नाम भारत -१९८२ के स्थानपर 'भारत सरकार १९८२' रखना अधिक उचित होता। यदि इस ग्रन्थको दो-तीन खंडोंमें प्रकाशित किया जाये, परन्तु साथही गैर सरकारी स्तरपर किये जारहे अगणित प्रयासों, गैरसरकारी क्षेत्रकी उपलब्धियाँ तथा राष्ट्रीय विकासमें उसके योगदानका ब्यौरा सम्मिलित किया जाता, तो उपयुक्त होता। २८ वर्षके अनुभवके बाद ग्रन्थके संकलनकर्त्ताओंके लिए ऐसा करना कठिन नहीं होना चाहिये।

संदर्भ ग्रन्थमें आँकड़े देना आवश्यक है, परन्तु प्रगति और बिकास संबंधी आंकड़ोंकी तथ्यात्मकता प्रायः संदिग्ध होतीहैं। इसलिए विभिन्न आयोगों, अध्ययन दलों और कार्यदलोंकी रिपोर्टोंके संबंधित अंशभी साथमें दे दिये जायें तो पाठकके सामने अधिक स्पष्ट चित्र आ सकताहै। उदाहरणके लिए पुस्तकमें रोजगारके कालममें विकलांगोंको रोजगार दिलानेके २१ कार्यालयोंके नाम तो दिये गयेहैं, परन्तु पाठक यह नहीं जान पाता कि इन कार्यालयोंने कितने विकलांगोंको रोजगार दिलानेमें सहायता की। इस प्रकार संदर्भ-ग्रन्थ एक ओर तो केवल सरकारी प्रयासोंकी जानकारी देताहै, दूसरी ओर केवल अर्ध-सत्य सामने आ पातेहैं। यह इस राष्ट्रीय ग्रन्थकी सबसे बड़ी सीमा है।

सांस्कृतिक गतिविधियां, सरकारी क्षेत्रकी सांस्कृतिक साहित्यिक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय सम्मान तथा पुरस्कारों और राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशोंके राजनीतिक, आर्थिक व अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओंका ब्यौरा ग्रन्थको व्यापकता प्रदान करताहै।

इस ग्रन्थसे संबंधित एक अन्य चिंतनीय पहलूभी है। वह है प्रकाशन प्रारंभ होनेके इतने वर्ष बादभी इसे अंग्रेजी-ग्रन्थके अनूदित संस्करणमें प्रस्तुत करना। इतना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थभी राष्ट्रीय भाषामें मूल रूपसे तैयार न हो सकना क्या हमारी गौरवहीन और स्वाभिमान-शून्यताका प्रतीक नहीं है। विश्व हिंदी सम्मेलनोंमें हम हिंदीको विश्वभाषा बनानेके नारे लगातेहैं, परन्तु अपनी सरकार द्वारा प्रकाशित किया जानेवाला संदर्भ-ग्रन्थ अंग्रेजीमें ही तैयार होताहै, और जल्दबाजीमें उसका अनुवाद करके प्रकाशित कर दिया जाताहै। अनूदित भाषाकी अपनी सीमाएं होतीहैं। अतः कई स्थानोंपर भाषा कृत्रिम और दुरुह होनेसे नहीं बच पायी। □□

'प्रकर'का प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

फार्म ४

[नियम ८ देखिये]

प्रकाशन अवधि	मासिक
प्रकाशन स्थान	ए-८/४२, राणा प्रताप बाग दिल्ली-७
मुद्रक, प्रकाशक	विद्यासागर
सम्पादक	विद्यालंकार
नागरिकता	भारतीय नागरिक
पता	ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७
स्वामित्व	विद्यासागर विद्यालंकार

मैं विद्यासागर विद्यालंकार एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

२९-२-८४ विद्यासागर विद्यालंकार

हिंसात्मक राजनीति

नक्सलवादी आन्दोलन[1]

लेखक : विप्लवदास गुप्त
अनुवादक : संजय
समीक्षक : मूलचन्द गौतम

जो किसी खास दलीय राजनीतिके प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं और भारतमें वामपंथी राजनीतिके विकासमें दिलचस्पी रखतेहैं, उनके लिए विप्लवदास गुप्तकी पुस्तक 'नक्सलवादी आन्दोलन' का अत्यधिक महत्त्व है--सहमति-असहमतिके बावजूद ।स्वतंत्रताके बाद देशके प्रमुख राजनीतिक दलोंमें हुए विघटन-विखंडनकी प्रक्रियाके साथ अनेक जनान्दोलनोंके माध्यमसे भारतीय राजनीतिके अन्तर्विरोधों, विशेषताओं और पूंजीवादी-सामन्ती तत्त्वों एवं विदेशी ताकतोंकी इसमें दिलचस्पी तथा उसके प्रभाव को समझनेके लिए, इसके लेखे-जोखेका विशेष महत्त्व हैं। १९६७-७२ का समय कांग्रेससे जनताके मोहभंग और विभिन्न राजनीतिक घटनाओंके उतार-चढ़ावका है। नक्सलवादी गतिविधियोंके कारण देशके विभिन्न भागोंमें सशस्त्र संघर्षकी उथल-पुथलकी जटिलताको विप्लवदास गुप्तने इसी व्यापक और समग्र परिप्रेक्ष्यमें देखनेकी कोशिश करके अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्षही नहीं निकालेहैं, वरन् भारतीय राजनीतिके भविष्यकी दिशाका भी संकेत कियाहै, जो कई दृष्टियोंसे विचारणीय है।

कोईभी आन्दोलन क्षेत्र विशेषकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियोंकी उपज होतीहै, बादमें समान स्थितियों वाले क्षेत्रोंमें फैल जाताहै। ऐसे अल्पकालिक आन्दोलन क्रमिक रूपसे मौजूदा व्यवस्थाकी कमियोंके साथ परिवर्तन की भावी संभावनाओंके आधार-भूत मापदंड होतेहैं। अतः इनकी सफलता-असफलताकी स्थितियोंके विश्लेषण द्वारा अगले कार्यक्रमोंमें सुधार किया जा सकताहै। चीनी आक्रमणके बाद कम्युनिस्ट पार्टीके विभाजन और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) के संक्रमण कालकी स्थितिमें अतिक्रान्तिकारी वर्ग द्वारा नक्सलवादी आन्दोलनका स्वरूप ग्रहण कर लेना स्वाभाविक परिणति थी। मजूमदार के नेतृत्वको चीनी पार्टीकी मान्यताके बाद इसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। इससे पहले तेलंगाना आन्दोलन व अन्य आन्दोलनोंकी पृष्ठभूमि इसके पास थी। पार्टी और माओके प्रति निष्ठासे शुरू होकर यह अतिक्रान्तिकारी, आतंकवादी आन्दोलन किस तरह समाज विरोधी लुंपन तत्त्वों और अपरिपक्व किशोरोंके सफाये कार्यक्रमसे जुड़कर अराजकतामें बदल गया। विप्लवदास गुप्तने १९६७ के नक्सलबाड़ी विद्रोहसे अंततक विभिन्न चरणोंके माध्यम से इसकी पूरी प्रक्रिया, चरित्र, कार्यविधिकी जटिलताको प्रामाणिक तथ्योंके साथ रेखांकित कियाहै। समयसे पहले ही क्रान्तिके लिए सशस्त्र संघर्षकी जनताकी जरूरत, राजनीतिक जागरूकताके उद्देश्यसे शुरू किया गया यह आन्दोलन संगठन-अनुशासनके अभावमें न केवल अनेक गुटोंमें बिखर गया, बल्कि जनतासे कटभी गया। व्यक्तिगत अधिनायकवाद, चीनी पार्टीके अन्धानुकरणके कारण प्रारंभसे ही मजूमदार अपने साथियोंसे अलग पड़ते चले गये। अपने देशमें क्रान्तिकी परिस्थितियोंका सही अनुमान न लगा पानेके कारण छिट-पुट तथाकथित सफलताओंके बाद नेतृत्वकी गलतफहमी अन्ततः आन्दोलनको शासक वर्गके दमनतक ले गयी। गुप्तने आन्दोलनके दौरानही एकत्र सामग्रीसे लिखी गयी १९७४ में प्रकाशित पुस्तकके अंग्रेजी संस्करणके सात वर्षोंके बाद भूमिकामें मजूमदार के बादकी स्थितियोंका विश्लेषण करके उसे 'अप टू डेट' बनानेका प्रयास कियाहै। जिससे आन्दोलनके प्रायः सभी पहलू वैचारिक विश्लेषणकी परिधिमें आ गयेहैं। पूरी पुस्तकमें यह साफ देखा जा सकताहै कि लेखकने माकपा

१. प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., ४ कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-१, नयी दिल्ली-११००२८। पृष्ठ : ३००; डिमा. ८१; मूल्य : ६०.०० रु.।

के राजनीतिक दृष्टिकोणको सही ठहराते हुए आन्दोलनकी कमजोरियों, व्यक्तित्वकी टकराहटों, असफलताके कारणों का गंभीर विवेचन कियाहै।

अर्द्धपूंजीवादी लोकतंत्रकी संवैधानिक संसदीय परिधिमें सक्रिय राजनीतिक दलोंकी समानता और अलगावका आधार उनका वर्ग-विश्लेषण, सहयोग एवं आर्थिक-राजनीतिक संस्थाओंके प्रति दृष्टिकोण से निर्धारित होताहै। इन्हीं मुद्दोंको लेकर वे एक-दूसरेसे सहयोग-विरोध करतेहैं एवं जनताको अपनी कार्य-पद्धतिके बारेमें बताकर समर्थन प्राप्त करतेहैं। नक्सल-वादियोंने पूर्ववर्ती वामपंथी पार्टियोंके वर्गविश्लेषणसे असहमति जताते हुए न केवल शासक पार्टी सहित उन्हें वर्ग दुश्मन घोषित कर दिया, अपितु संसद और चुनावको निरर्थक मानकर सीधे सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता हथियाने पर जोर दिया। जनसंगठन और जनगतिविधियोंको निरस्त करनेका उनका यह रास्ता आतंकवाद और दुस्साहसिक भटकावका आधार था। चीनी पार्टीके वर्ग विश्लेषणका यह अनुकरण अंधभक्ति और अव्यावहारिक कार्यपद्धतिमें बदल गया, जबकि बादमें चलकर चीनी पार्टीने भी मजूमदारके इन कार्योंको गलत माना। चीनी क्रान्ति और सांस्कृतिक क्रान्तिकी अलग-अलग व्याख्याएं ही नक्सलवादको व्यक्तिगत गुटोंतक सीमित करती चली गयी। नक्सलवादियोंमें चलनेवाले इस भीतरी वैचारिक संघर्षको गुप्तने 'नक्सलवादकी अलग-अलग रंगतें' में दियाहै।

नक्सलवादियोंने चीनकी तर्जपर भारतमें उन परिस्थितियोंको भ्रामक तरीकेसे देखा, जिनमें एक चिनगारीसे पूरे जंगलके जल जानेकी कामना की गयीथी। शासक वर्गको जनसमर्थनसे कटा देखकर वे एक अवास्तविक कल्पनालोक में घूम रहेथे। माओवादियोंका यह कार्य राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षमें फूट डालनेकी नीयतसे था, इसीलिए उनके दिशेपर मार्क्सवादी लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा-मा-ले) का गठन किया गया। बादमें चलकर नक्सलवादकी यह अराजकतावादी गतिविधियां शासक पार्टीके लिए हितकर सिद्ध हुई, वामपंथी पार्टियोंके लिए घातक (पृ. १११)। क्रान्तिके इस शार्टकटमें मजदूर वर्ग और उनके संगठनोंकी भूमिकाको कम करके आंकनाभी आन्दोलनकी बड़ी कमजोरी थी। देहातोंमें सशस्त्र संघर्ष और सफाया अभियान कार्यक्रममें अनियंत्रित स्क्वैडोंने जिन लोगोंको अपना निशाना बनाया, उसने जनताको इस कार्यमें साथ लेनेके बजाय भयभीत अधिक किया। जनतामें राजनीतिक जागरूकता लानेके इस तरीकेसे उसमें आन्तरिक घृणाही पैदा हुई। वीरभूम, श्रीकाकुलम, देवरा-गोपी बल्लभपुर, मुशहरी, लखीमपुर-खीरी इत्यादि स्थानोंपर हुए किसान-विद्रोहोंमें नक्सलवादियोंकी सफलता के दावे हत्याओंकी संख्यापर थे, लेकिन इनके साथ भूमिहीन किसान और गरीब तबकेके लोगोंका न होना इस सफलतापर लगा प्रश्न-चिह्न है। चीनी क्रान्तिकी प्रक्रियाके आधारपर ग्रामीण क्षेत्रोंसे क्रमश: नगरोंके घेरने के कार्यके बजाय नक्सलवादियोंने तात्कालिक प्रसिद्धिके लिए कलकत्ता और उसके साथ लगे उपनगरोंमें सांस्कृतिक क्रान्तिके अभ्यासके तौरपर शिक्षा संस्थानोंपर छापे मारने, बुत तोड़नेको प्राथमिकता देकर अपने आधारको ही कमजोर किया। चीनकी सांस्कृतिक क्रान्तिकी इस नकलने उन्हें जनसामान्यसे काट दिया। लाल आधार क्षेत्र और मुक्त इलाकोंपर लुंपन तत्त्वोंका संरक्षण उनकी कमजोरी थी। विप्लवदास गुप्तने इस पूरी गतिविधिमें नक्सलवादके कार्यकर्त्ता, समर्थकों, हत्याके पैटर्न, इस्तेमाल में लाये गये हथियारोंका प्रामाणिक परिचय देते हुए आन्दोलनके इस अन्दरूनी पहलूको पूरी तौरपर उजागर कर दियाहै। बादमें शासक पार्टी द्वारा आन्दोलनके समाज विरोधी तत्त्वोंको अपनी ओर मिलाकर नक्सल-वादियोंके गंभीर कार्यकर्त्ताओंको कुचलवाना आसान हो गया। गुप्त हत्याओंका यह तरीका प्रमुख रूपसे लुंपन तत्त्वों द्वारा आन्दोलनको हथिया लेनेका प्रमुख कारण रहा। कालेजोंके प्रतिभावान विद्यार्थी जो पहले नक्सल-वादकी ओर आकर्षित हुएथे, लुंपन तत्त्वों और हत्याओं की प्राथमिकताके कारण पीछे हट गये। इस आन्दोलनमें हिंसाको आधार रूपसे स्वीकार किये जानेसे अनेक पुराने-प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ता व नेता इससे हट गये, जिससे यह केवल मजूमदारकी खब्ती सनक भर रह गयाथा। उनकी मृत्युके बाद आन्दोलनका बिखर जाना सहज था, क्योंकि व्यक्ति केन्द्रित आन्दोलनोंकी यही नियति होतीहै, जबकि नेतृत्वके संगठन और कतारोंवाले आन्दोलनोंका यह परि-णाम जल्दी नहीं होता।

विप्लवदास गुप्तने नक्सलवादके दृष्टिकोणका परि-चय देते हुए इसके चीनी पार्टी और माकपासे सम्बन्धों का भी विश्लेषण कियाहै। उन्होंने बहुत सही लक्षित किया कि यह आन्दोलन माओवादका सीधा प्रभाव न होकर पश्चिमके आतंकवादी 'नव वामपंथ' तथा अन्य प्रभावोंकी जटिल प्रक्रियाका परिणाम था। यह अतिक्रान्तिकारिता

जड़ोंसे कटी होनेकेकारणही जल्दी धराशायी हो जातीहै। कुछ ग्रुप आजभी बिहार तथा अन्य स्थानोंपर सफाया कार्यक्रमको जीवित रखे हुएहैं, तो इसे अनुभवहीनताकी जिदही कहा जा सकताहै। 'निष्कर्ष'के अन्तर्गत विप्लव-दास गुप्तने नक्सवादके प्रेरणा स्रोतोंपर विचार करनेके साथ शिवसेनाके महाराष्ट्रके आन्दोलनकी इससे तुलना करते हुए इनके मूलमें नगरीय असन्तोषको देखाहै। उन्होंने नक्सलवादके मात्र आन्दोलन बनकर असफल रह जानेके कारणोंपर विस्तारसे विचार करते हुए, इससे मिलनेवाले सबक और भारतमें सशस्त्र संघर्षके भविष्यपर महत्त्वपूर्ण निर्णय दियेहैं। उन्होंने यहभी विचार कियाहै कि यह आन्दोलन पश्चिम बंगालमें ही क्यों उठ खड़ा हुआ? इसके पीछे वहाँकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और आन्दोलनों की सुदृढ़ परम्परा व सामाजिकार्थिक परिस्थितियां सक्रिय थीं। उन्होंने नक्सलवादी आन्दोलनको चर्चित बनानेमें प्रेसकी भूमिकाकी चर्चा करते हुए इसे शासक पार्टी द्वारा वर्गोंपर आधारित संघर्षोंसे जनताका ध्यान बंटानेका एक हथियार मानाहै। धर्म, भाषा और जातिका मताधिकार पर जबतक प्रभाव रहेगा, तबतक जनताको इसी तरह गुमराह किया जाता रहेगा। इस आन्दोलनके बारेमें लेखक का यह निर्णय महत्त्वपूर्ण है कि 'मार्क्सवादियोंके लिए नक्सलवादी आंदोलनका सबसे महत्त्वपूर्ण सबक यह है कि देशकी राजनीतिक परिस्थितियों, सामाजिक-आर्थिक दशा, इतिहास और संस्कृतिके लिए उसकी प्राँसगिकताका निर्णय किये बिना क्रान्तिके एक विशेष प्रतिरूपको अपनाना आत्महत्या सरीखा है? (पृ. २४२)। इसीलिए किसी देशका अनुभव ज्योंका त्यों दूसरे देशमें लागू नहीं किया जा सकता, यही मार्क्सवादकी सही समझ है। प्रेरणा ग्रहण करना अलग बात है। पुस्तकमें नक्सलवादियोंकी अन्द-रूनी बहस और चीनी पार्टी द्वारा प्रसारित दस्तावेजों, माकपा (मा-ले) के दस्तावेजोंको मूल रूपमें देनेसे विवेचन का महत्त्व बढ़ गयाहै। □□

धर्म समन्वय

किरंतन[1]

[महामति प्राणनाथका आत्म-साक्ष्य]

सम्पादक : डॉ. रणजीतकुमार साहा
समीक्षक : डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे

सत्रहवीं शताब्दीके आलमगीर औरंगजेबके सम-कालीन प्रणामी पंथ प्रवर्तक महामति प्राणनाथकी काव्य-वाणी "किरंतन" का डॉ. रणजीतकुमार साहाने निष्ठा-पूर्वक सम्पादन तथा गद्यानुवाद कर, हिन्दीमें प्रायः अचर्चित प्रणामी-साहित्यकी ओर ध्यान खींचा है। प्रणामी-साहित्यने हिंदीको जो विपुल मात्रामें सामग्री दीहै—वह साहित्यिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। साथही, समस्त उत्तर भारतके ऐतिहासिक संघर्षकी साक्षीभी। महामति प्राण-नाथका वाङ्मय वह महासागर है, जिसे "तारतम सागर", "कुलजम स्वरूप" या "स्वरूप साहब" अथवा "श्रीमुख वाणी" कहा गयाहै। इस विशाल-काय ग्रन्थमें, छोटे-बड़े चौदह ग्रन्थ हैं, लगभग अट्ठारह हजार चौपाइयां हैं और इनकी पृष्ठ संख्या १५१८ है। "किरंतन" "तारतम सागर" का आठवां मोती है। इसमें १३३ प्रकरण तथा २१०२ चौपाइयां हैं।

"किरतन" महामति प्राणनाथ (१६१८-१६९४) का परम आत्म साक्ष्य है। इसमें युगीन एवं सामयिक प्रवंचनाओं अथवा विश्रृंखलताओंके जो-जो संकेत अन्तर्नि-हित हैं, वे प्राणनाथजीकी आत्मनिष्ठ चेतना एवं भावनासे

---
१. प्रकाशक : श्री प्राणनाथ मिशन, डी/१९३, डिफेंस कालोनी, नयी दिल्ली-२४। पृष्ठ : ४४३; रायल ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।

सम्वद्धित हैं। उनमें वस्तुनिष्ठ प्रमुख तर्कशक्तिका अभाव है। अपने विशद् एवं गहन जीवनानुभवों द्वारा उन्होंने जो कुछ उपलब्ध किया उसेही "कसनी" के मूल्यांकन द्वारा पदों एवं गाथाओंमें आकलित किया—यही आत्म-साक्ष्य "किरंतन" में सार्थक वाणी पागया।

"किरंतन" में शास्त्र तथा गाथा पक्षका स्वर्णिम तथा अनूठा सामंजस्य है। महामतिकी वाणी अधिकांश रूपेण सरल हिन्दुस्तानीमें है, जिसके वे प्रबल प्रस्तावक एवं अनुमोदक हैं। इसके कुछ पद गुजरातीमें हैं तथा अन्तिम कुछेक पद सिन्धी, विशेषकर कच्छीभाषामें एवं बोलीसे सम्बद्ध हैं। महामतिका आविर्भाव चूंकि गुजरातमें हुआथा, अतः यह स्वाभाविकभी है। किन्तु भावनात्मक तथा ऐतिहासिक आवश्यकताओंके अनुरूप उन्होंने हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें प्रतिष्ठितकर इसके दर्पणमें, भारतीय स्वर एवं स्वरूपको दृढ़ता एवं संकल्प-पूर्वक उपस्थित कियाथा।

"किरंतन" उत्तर मध्यकालकी ऐसी ऐतिहासिक कृति है, जिसमें हिन्दू, इस्लाम तथा अन्य धर्म सम्प्रदायोंकी पूर्ण एवं समन्वित भाव-धारा, अवधारणा, चिन्तन-मनन प्रक्रिया एवं भाषा-सस्कृतिमें स्थित आदि मूल उद्गमोंका विस्तृत तथा गहरा संयोजन है। इस दृष्टिसे "किरंतन" हिन्दी-साहित्य तथा परवर्त्ती भक्तिकालकी अनूठी सम्पदा तथा धरोहर है। सम्पादक डॉ. रणजीतकुमार साहाके पाठानुशीलन तथा अन्तमें, परिशिष्टके रूपमें पारिभाषिक शब्दोंकी सटीक व्याख्याने, इस ग्रन्थको हर दृष्टिसे अपरिहार्य स्थिति प्रदान कीहै। डॉ. माताबदल जायसवाल की प्रस्तावनासे इस ग्रन्थका गौरव बढ़ाहै। इस ग्रन्थमें खड़ी ब्रज मिश्रित सरल हिन्दीको प्रयोग मिलाहै। इसके गद्यानुवाद विशेष रूपसे द्रष्टव्य हैं। उदाहरणार्थ—

"साध सनंध केम जाणिए, जेणे जाती छे जोगबाई।
प्रगट चेहे न करे नहीं पाधरा, ते माहें रहे समाई।"

"साधुओंको किस प्रकार पहचाना जाये? साधु वही है, जिसने अपनी सम्पूर्ण साधन सामग्री, शरीरके गुण अंग इन्द्रियोंको वशमें करके इनके द्वारा अपेक्षित फल पा लियाहो। प्रत्यक्षतः वह लक्षण और चिह्न नहीं लगाता। वह तो अपनी आत्मामें मग्न, अपने अन्तरमें समाया रहताहै।"

डॉ. साहाने इसके पूर्वभी महामति प्राणनाथके प्रथम ग्रन्थ-पुष्प "श्रीरास" का सम्पादन बड़ी योग्यतासे कियाथा और "किरंतन" उसी अध्ययनकी अगली कड़ी है। अर्थ-निर्धारणमें आवश्यकतानुसार प्रसंग-विवेकका भी ख्याल रखा गयाहै और पारिभाषिक शब्दावलीके अन्तर्गत महामति वाङ्मयमें प्रयुक्त विशिष्ट शब्दोंकी विद्वद्पूर्ण व्याख्या की गयीहै। महामतिने हिन्दू धर्मकी व्यापकता, संत-दृष्टिकी सदाशयता तथा इस्लामके "एकेश्वरवाद" का अद्भुत समन्वय स्थापित कियाथा। दुर्भाग्यसे, वह उदात्त दृष्टि संकीर्ण मतवादियों द्वारा ग्रहण नहीं की जासकी।

"किरंतन" की छपाई-सफाई, मुख पृष्ठ, कलेवर साज-सज्जा आदि आकर्षणयुक्त है। इसमें कोई सन्देह नहीं, यदि इसी प्रकार प्राणनाथ वाङ्मय सागरके मोती अनूदित तथा प्रकाशित होकर जन-सामान्य तक पहुंचते रहे तो एक ओर हिन्दी गवेषणाको नये गवाक्ष मिलेंगे तो दूसरी ओर आजके मृगमरीचिकापूर्ण युगको आमुख-वाणीके शब्द-आलोक-हार, "किरंतन" ग्रन्थमें प्रकाशमें सबका जीवन उज्जवल बन जाये, इसकी संगीत-लहरीसे मन-प्राण तरंगित हो उठें। आध्यात्मिक ज्ञानको पाकर आत्माएं गहन निद्राकी केंचुली उतार अपने प्रखर उज्ज-वल रूपमें उजागर हों।"

प्राणनाथजीके दीक्षा-गुरु श्री देवचन्दजीकी चौथी जन्म-शताब्दीके शुभावसरपर प्रकाशित यह ग्रन्थ भारतीय साहित्यकी महती उपलब्धि है। आशा है, संत-साहित्यके मर्मज्ञ एवं शोधकर्त्ताओंको "किरंतन" के अध्ययन द्वारा नयी दिशा तथा शोध-दृष्टि प्राप्त होगी। इसके कई पद गेय रूपमें आजभी प्रचलित हैं। भारतीय धर्म-चेतना तथा उसके आध्यात्मिक उत्कर्षको भी यह कृति नवीन भाव-सम्पदा प्रदान करेगी। □□

किशोर बाल-साहित्य

अक्ल बड़ी या भैंस

लेखक : अमृतलाल नागर; प्रकाशक: राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली। मूल्य : ५.०० रु.।

बाल-किशोर पाठकोंके लिए लिखी गयी इस उपन्यासिकामें लेखक अपनी किशोरावस्थाकी एक घटना का वर्णन करते हुए कहताहै कि मैं, प्रेमलाल, चांदनारायन और शिवचरन बहुत गहरे मित्र थे। हाईस्कूलकी परीक्षाओंमें छुट्टी पाकर प्रेमलाल जब अपने गांव जानेकी तैयारीकर रहाथा, एक अच्छी नस्लकी भैंस बिकने आयी। प्रेमलाल उसे खरीद लेताहै। वह हमसे कहताहै कि गांवके जमींदारका पुत्र मुन्नूसिंह बड़ा दुष्ट है। वह गांवमें जिसकी गाय-भैंस अच्छी देखताहै: खोल लाताहै। उसने दस-बारह गुंडे पाल रखेहैं। कहताहै--'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' उस दुष्टसे भैंसकी रक्षाका कोई उपाय करना होगा। फिर चारों मित्र ऐसी योजना बनातेहैं कि मुन्नूसिंह उनके बिछाये जालमें फंसकर अपनी सारी हेकड़ी भूल जाताहै। लेखक इस कहानीके माध्यमसे अपने बाल-किशोर पाठकोंको यह बताना चाहताहै कि दूरदर्शिता और सूझ-बूझसे मुन्नूसिंह जैसे भैंस बुद्धिवाले बड़े-बड़े हेकड़ीबाजोंको भी ठिकाने लगाया जा सकताहै।

कहानीमें काफी उतार-चढ़ाव हैं। भाषा सरल, सुबोध और मुहावरेदार है। लोकोक्तियोंका सटीक प्रयोगभी देखतेही बनताहै। संवादोंमें स्थानीय ढंग है। बीच-बीचमें दिये गये चित्रभी पुस्तकके आकर्षणको बढ़ातेहैं। सारांशमें आत्मकथात्मक शैलीमें लिखी गयी यह लघु उपन्यासिका जहां बाल-किशोर पाठकोंके लिए मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद है, भाषा-शिल्पकी रवानी एवं कलात्मकता इसे वयस्कोंके लिए भी पठनीय बना देतीहै। □

सचाईका फल

लेखक: चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य; प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली। मूल्य : ३.५० रु.।

इस संग्रहमें बाल पाठकोंके अनुकूल छोटी-छोटी ११ कहानियां संगृहीत हैं—काफी साफ-सुथरी, रोचक रुचिकर एवं शिक्षाप्रद। चमत्कारपूर्ण घटनाओंसे मुक्त इन कहानियोंका धरातल विशुद्ध व्यावहारिक है। भाषा सरल-सहज और कहनेका ढंग तन्मय करनेवाला। सचित्र होनेसे कहानियोंका आकर्षण औरभी बढ़ गयाहै। यद्यपि इनमें से कई कहानियाँ पूर्वश्रुत हैं, पर जिस रूप और सादगीके साथ इन्हें प्रस्तुत किया गयाहै, उससे ये नयी-सी लगतीहैं। कहानियोंके शीर्षक उनकी शिक्षाओंके सूत्ररूप होनेसे सार्थक व सटीक हैं।

सचाई, परोपकार, मित्रता, पापकी कमाईकी निष्फलता, सज्जनताका सुफल, सत्संगति आदिसे सम्बन्धित जीवन-मूल्योंको स्थापित करनेवाली ये कहानियां बाल मनके संस्कारमें काफी समर्थ हैं। □

गुजरातकी लोककथाएं

लेखक: डॉ. कान्तिकुमार भट्ट; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली। मूल्य : ५.०० रु.।

इस संग्रहमें गुजरातकी छोटी-बड़ी १२ लोककथाएं संगृहीत हैं; जैसाकि लोककथाओंकी एक सामान्य प्रवृत्ति है, इसमें संगृहीत 'गलतफहमी' को छोड़कर शेष सभी कथाएं सुखान्त हैं। 'गलतफहमी' में पशु-पक्षियोंकी बोली समझनेवाली गुणवती पुत्रवधूको उसका श्वसुर भ्रमवश डाकिनी समझकर मार डालताहै जब सचाई सामने आतीहै तो उसे बिना-सोचे-समझे किये गये अपने जघन्य कृत्यपर बड़ा पछतावा होताहै। सुखान्त कथाओंका

मुख्य स्वर हास्य विनोद है, जिससे गुजराती लोक-जीवन की विनोदप्रियता एवं जीवन्तताका बोध होताहै। बीभत्सके रसास्वादके लिए 'मतियाकी कथा' देखी जा सकती है, जिसमें जुगुप्सा उभरकर सामने आयीहै और जिससे यहभी स्पष्ट होताहै कि लोक-जीवन तथाकथित सभ्यताकी कृत्रिमतासे किस प्रकार उन्मुक्त होताहै।

'अडवाका पराक्रम,' 'सड़दड़ियाकी कथा,' गलत-फहमी', और 'बैलवाला मियां' अपेक्षाकृत अच्छी रोचक कथाएं हैं। जहांतक इन कथाओंमें गुजरातके अन्तरंगकी झांकीका प्रश्न है निश्चितही इनसे वहांके खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदिकी अच्छी जानकारी मिलतीहै। इनमें स्थानीय रंग है, लोक-धाराकी सुगन्धि है और है लोक-जीवनका खुलापन।

इन कथाओंमें मनोरंजनकी प्रधानता है। फिरभी ये निरभिमानिता, पशु-प्रेम, कृतज्ञता आदि गुणोंका प्रच्छन्न प्रभाव डालतीहैं। बच्चोंकी मानसिकताके अनुकूल सभी कथाएं सचित्र हैं और भाषा-शिल्प सरल-सुबोध। 'सस्सी' (मादा खरगोश), 'घीलोड़ी (घृतपात्र) 'सुन्हड़ी' (कोई खाद्य पदार्थ), 'सड़दड़िया' (शायद हलुआ) जैसे प्रादेशिक शब्दोंका अर्थ पाद-टिप्पणीमें दे दिया जाता तो कथा-प्रवाहमें खटकनेवाला अवरोध दूर कियाजा सकताथा।

☐ **श्री विलास डबराल**

महान भारतीय वैज्ञानिक

लेखक : व्यथित हृदय; प्रकाशक : पीताम्बर पब्लिशिंग कं., करौलबाग, नयी दिल्ली। मूल्य : ५.०० रु.।

पुस्तकमें भारतके दिवंगत ग्यारह महान् वैज्ञानिकोंकी संक्षिप्त परन्तु प्रेरक जीवनियां संकलित की गयी हैं। इन वैज्ञानिकोंमें महान् रसायन-शास्त्री आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, प्रख्यात भौतिकी-शास्त्री श्री जगदीशचन्द्र वसु, नोबेल पुरस्कार विजेता सर सी. वी. रमन, प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री श्री बीरबल साहनी, भौतिकीके राष्ट्रीय अध्यापक श्री सत्येन्द्रनाथ बोस, महान् गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजम, अप्रतिम ज्योतिर्विज्ञानी प्रो. मेघनाथ साह, अग्रणी इंजीनियर डॉ. अयोध्यानाथ खोसला, नाभिकीय भौतिकीके अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक डॉ. होमी जहांगीर भाभा, वनस्पति विज्ञानके प्रकाण्ड पंडित डॉ. पंचानन माहेश्वरी तथा अनुप्रयुक्त विज्ञानके क्षेत्रके महान आविष्कारक डॉ. शान्तिस्वरूप भटनागर हैं।

अपने विषयको रोचक, प्रेरणाप्रद एवं बालोपयोगी बनानेकी दृष्टिसे लेखकका भाषा एवं शैलीका चयन उपयुक्त और सराहनीय है। छोटे-छोटे अनुच्छेदों, सरल तथा लघु-आकार वाक्यों तथा सहज, सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक भाषामें लेखकने अपनी बात कहीहै। उसने किशोर मनको छूनेवाली प्रत्यक्ष तथा विवरणात्मक शैलीको अपनायाहै। लेखककी भाषा तथा शैली उसके उद्देश्यके सर्वथा अनुरूप है।

हिन्दीमें वैज्ञानिकों, वैज्ञानिक विषयों एवं प्रविधिपर सामान्य पाठककों दृष्टिमें रखकर लिखी गयी पुस्तकोंका शोचनीय अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक इस अभावकी पूर्तिकी दिशामें एक छोटा परन्तु प्रशंसनीय प्रयास है। वैज्ञानिक विषयोंपर इस प्रकारकी तथ्यपूर्ण एवं प्रेरक पुस्तकोंकी अबभी बड़ी आवश्यकता है।

☐ **तिलकराम शर्मा**

आश्चर्य किन्तु सत्य

सम्पादक : संजय वर्मा; प्रकाशक : स्टार बुक सेण्टर, दरीबा कलां, दिल्ली। मूल्य : २४.०० रु.।

इस पुस्तकको पढ़कर संसारकी विचित्रता एवं विलक्षणताकी बड़ी गहराईसे अनुभव होताहै। प्रकृतिभी अपने नियमोंका कभी-कभी ऐसा अतिक्रमण करतीहै कि उसका वह रूप आश्चर्यचकित कर देताहै। हजारों टन वजनी चट्टानका एक मामूलीसे आधारपर सन्तुलित रहना, ८ फुट ११ इंच लम्बा आदमी, ५३८ किलोग्राम वजनी आदमी, पुरुषके पेटसे सन्तानोत्पत्ति आदि क्या प्रकृतिके अनोखे करिश्मे नहीं! मनुष्यभी कभी-कभी अपनी शारीरिक, मानसिक या आत्मिक शक्तिसे ऐसे-ऐसे विलक्षण कार्य कर दिखाताहै कि विस्मय-विमूढ़ रह जाना पड़ताहै। पद्मासनमें बैठे शिष्यको गुरु द्वारा हवामें ऊपर उठा देना, २५ फुट रस्सेपर चढ़कर गायब होजाना तथा विविध क्षेत्रोंमें नानाप्रकारके असाधारण कीर्तिमानस्थापितकरना आदि ऐसी घटनाएं हैं जो मनुष्यको विस्मय और तज्जन्य आनन्दसे भर देतीहै। वास्तवमें इस पुस्तकमें ऐसे-ऐसे करिश्मे, कारनामे और आश्चर्यजनक सत्य घटनाएं संकलित हैं कि पाठकमें अद्भुत रसका संचार हो जाताहै। ☐ ☐

'प्रकर' के उपलब्ध पुराने अंक

१९६९ : प्रकाशनारम्भ वर्ष : सभी अंक अप्राप्य

१९७० : बारहों अंक उपलब्ध : [जन. ७० : १९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन]

१९७१ : मार्च, अप्रैल और अगस्त अंक छोड़ शेष अंक उपलब्ध : [जनवरी-फरवरी संयुक्तांक : 'अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य'; जुलाई अंक : १९७०के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट २५.०० रु. पूरा सैट ३८.०० रु.

१९७२ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : १९७१ के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट ३०.०० रु.

१९७३ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : 'भारतीय साहित्य : २५ वर्ष'] पूरा सैट ४०.०० रु.

१९७४ : प्रकाशित अंक : अप्रैल, मई, जून, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट १८.०० रु.

१९७५ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, मार्च, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट २२.५० रु.

१९७६ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट २०.०० रु.

१९७७ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ३०.०० रु.
१९७८ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ३०,०० रु.
१९७९ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ३०.०० रु.
१९८० :	नवम्बर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध	पूरा सैट २७ ५० रु.
१९८१ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैठ ३०.०० रु.
१९८२ :	जून और अक्तूबर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध	पूरा सैट २७.५० रु.
१९८३ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ४०.०० रु.
	फुटकर अंक	३.५० रु.

'प्रकर,' ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली ११-०००७.

दूरभाष : [७११३७६३]

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए संगीता कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२ दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित।

प्रकर

आषाढ़ : २०४१ (वि.)
जून : १९८४ (ई.)

प्रकर प्रकर प्रकर प्रकर प्रकर

समीक्षित कृतियां

सम्पादकीय

भाषाकी राजनीति और उर्दू — १ — वि. सा. विद्यालंकार

रक्षा : प्रतिरक्षा

भारतीय वायुसेनाका इतिहास—ए. मा. एम. एस. चतुर्वेदी — ५ — डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

राष्ट्रीय सुरक्षा और प्रतिरक्षा—डॉ. लल्लनजी सिंह — ७ — ,,

गुरिल्ला युद्ध कर्म—डॉ. परशुराम गुप्त — ९ — प्रा. रमेश

युद्ध एवं शांतिकी समस्याएं—एम. पी सिंह एवं राकेश सिंह — १० — डॉ. जमनालाल बायती

सैनिक जीवन और चुनौती—कर्नल नरिन्दरकुमार — ११ — उदयवीर वि

शोध : आलोचन

रामचरित मानसके शब्दोंका अर्थतात्त्विक अध्ययन—डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल — १२ — डॉ. रामस्वरू

मानस-मन्थन—तनसुखराम गुप्त — १३ — ,,

यौन मनोविज्ञान : शिल्पन और विश्लेषण—डॉ. कुमार वीरेन्द्र — १४ — डॉ. योगेन्द्रनाथ

उपन्यास

निस्संगता—ब्रजनारायण सिंह — १६ — डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

सिद्धियोंके खंडहर—डॉ. शत्रुघ्न — १७ — डॉ. नत्थन सिंह

त्रिशंकु—अरुण साधु — १८ — प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

तीसरे शहरकी तलाश—गिरिराज शाह — २० — डॉ. रामजी सिंह

कहानी संग्रह

प्रतिदिन—ममता कालिया — २२ — गोविन्दप्रसाद

नया तराना—श्री अरविन्दाश्रम — २४ — डॉ. श्रीविलास डबराल

काव्य संकलन

नीमकी भूमिका अलग है—मोतीलाल जोतवाणी — २५ — श्याम विमल

देशके लिए—इन्दरराज वैद 'अधीर' — २६ — डॉ. श्रीविलास डबराल

हास्य-व्यंग्य

दरवाजेपर दस्तक—डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी — २७ — डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी

टेलीफोनकी घंटीसे—डॉ. सुदर्शन मजीठिया — २९ — ,,

द्विभाषी कोश

भोजपुरी हिन्दी कोश—प्रो. व्रजबिहारी कुमार — ३० — डॉ. भारतभूषण

लोक-साहित्य

लोक-साहित्य—सम्पा. डॉ. सुरेश त्यागी — ३१ — डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय

सौन्दर्य प्रसाधन

नारी-शृंगार—हर्षनन्दिनी भाटिया — ३३ — डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

व्यक्तित्व : कृतित्व

रहबर : एक चुनौती—डॉ. विश्रान्त वसिष्ठ — ३६ — डॉ. प्रभाकर माचवे

संस्मरणोंके सुमन—डॉ. रामकुमार वर्मा — ३८ — डॉ. कमलसिंह

मुंशी अजमेरी—मैथिलीशरण गुप्त — ३८ — ,,

सुभद्राकुमारी चौहान—सुधा चौहान — ३९ — प्रा. महेशचन्द्र शर्मा

वैदिक साहित्य

कुन्तापसूक्तसौरभम्—जगन्नाथ वेदालंकार — ४० — i स्वामी विद्यानन्द सरस्वती; ii डॉ. रामनाथ वेदालंकार

प्राप्ति सूचना — ४२

वर्ष : १६ आषाढ़ : २०४१ (वि.)
अंक : ६ जून : १९८४ (ई.)

स्वर विसंवादी

प्रकर

भाषाकी राजनीति और उर्दू

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७.
[दूरभाष ७११ ३७ ६३]

...क समीक्षाका हिन्दी मासिक.
प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रकर शुल्क

भारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन (व्यक्तिगत)	३०१.०० रु.
आजीवन (संस्थागत)	५०१.०० रु.

विदेशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.०० रु.
हवाई डाकसे	२००.०० रु.

उत्तर प्रदेशमें उर्दूको दूसरी राजभाषाका पद प्रदान करनेका प्रश्न अब उच्चतम न्यायालयमें पहुंच गयाहै। देशके सर्वोच्च न्यायालयमें उत्तर प्रदेश प्रशासनकी अपीलका आधार भाषा या राज्यके हिन्दी भाषियोंके हितोंकी समस्या नहीं है, अपितु मात्र वैधानिक प्रश्न है जो इलाहाबाद उच्च न्यायालयके इस निर्णयसे उत्पन्न हुआहै कि उर्दूको राजभाषाका पद प्रदान करनेके लिए प्रशासन एकके बाद एक निरन्तर अध्यादेश जारी नहीं कर सकता। उच्च न्यायालयकी सम्मतिमें अध्यादेशका स्थान लेनेके लिए निर्वाचित लोक प्रतिनिधियोंके सदनमें विधेयक प्रस्तुत किये बिना और सदनमें उसपर विचारके बिना बार-बार अध्यादेश जारी करना छलपूर्ण कार्य है। अब उच्चतम न्यायालय केवल इस वैधानिक प्रश्नपर अपना निर्णय देगा कि अध्यादेशका स्थान लेनेके लिए विधान मण्डलमें विधेयक प्रस्तुत किये बिनाभी क्या प्रशासन बार-बार अध्यादेश जारी कर सकताहै?

असंदिग्ध रूपसे वैधानिक दृष्टिसे यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। संविधानके अनुच्छेद ३४५ में जो व्यवस्था है, उसके अन्तर्गत किसीभी राज्यका विधान मण्डल राजकीय प्रयोजनोंके लिए उस राज्यमें प्रयुक्त होनेवाली भाषाओंमें से किसी एक या अनेकको अथवा हिन्दीको अंगीकार कर सकेगा। इस व्यवस्थाके अनुसार यह कार्य किसी प्रशासनिक आदेशसे नहीं बल्कि विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत विधेयकसे (अन्तत: अधिनियम रूप ग्रहण करनेपर) ही सम्पन्न हो सकताहै। इसी प्रकार अनुच्छेद ३४७ में यह व्यवस्था है कि 'मांग किये जानेपर यदि राष्ट्रपतिको संतोष होजाये कि राज्यके जन-समुदायका पर्याप्त भाग चाहताहै कि उसके द्वारा बोली जानेवाली कोई भाषा किसी राज्य द्वारा मान्य की जाये तो वह निर्देश दे सकेगा कि उस भाषाको उस पूरे राज्य में अथवा उसके किसी भागमें ऐसे प्रयोजनके लिए जैसाकि वह उल्लेख करे, राजकीय मान्यता दी जाये।' इस अनुच्छेदमें 'पर्याप्त भाग' की व्याख्या नहीं कीगयी, इसकी व्याख्या सामयिक परिस्थितियोंके अनुसार करनेकी छूट है। संविधान-सभामें यह प्रयत्न किया गयाथा कि इस स्थितिको स्पष्ट और सुनिश्चित करनेके लिए 'पर्याप्त भाग' के स्थानपर २० प्रतिशत कर दिया जाये, परतु यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ।

इस 'पर्याप्त भाग' को आंकड़ोंमें निश्चित करनेके प्रयत्न निरन्तर होते रहे। १९६१ में मुख्यमंत्री सम्मेलनमें निश्चित किया गया कि किसी राज्यको केवल तभी द्विभाषी घोषित किया जाये जब उस राज्यमें जन-संख्याके न्यूनतम ३० प्रतिशत भाषायी अल्पसंख्यक हों। मुख्यमंत्रियोंके इस निर्णयको ध्यानमें रखते हुए, क्या किसी विधान मण्डलसे यह आशा की

जा सकतीहै कि वह केवल किसी सत्तारूढ़ दलके राजनीतिक प्रयोजनकी सिद्धिके लिए अपने राज्यमें दो राज्यभाषाएं घोषित करदे और इस प्रकार देशके लिए एक स्थायी समस्या उत्पन्न करदे ? मुख्यमन्त्रियोंके इसी निर्णयको ध्यानमें रखते हुए क्या राष्ट्रपतिसे यह आशा की जा सकतीहैं कि ३० प्रतिशतसे कम भाषायी अल्पसंख्यकोंकी माँगपर किसी राज्यको दूसरी राजभाषा के संबंधमें निदेश दे ?

यह स्थिति कुछ और स्पष्टीकरण चाहतीहै। उत्तर प्रदेशकी भाषायी स्थितिपर दृष्टि रखनेवाले तथा समय-समयपर उसका विश्लेषण करनेवाले अधिकारी विद्वानोंका निष्कर्ष है कि राज्यमें कुल जनसंख्याका १.६ प्रतिशतही उर्दू भाषी है। १९७१ की जनगणनामें राज्यके केवल १०.५ प्रतिशतने उर्दू को अपनी मातृभाषा लिखाया। हिन्दी साहित्य सम्मेलनने उत्तर प्रदेशकी परीक्षाओंके संबंधमें जो आंकड़े इकट्ठे कियेहैं, उनके अनुसार १९८० में उच्च माध्यमिक परीक्षाओं बैठनेवाले ८.९ लाख छात्रोंमें से केवल१४,१९८ छात्रोंने वैकल्पिक रूपमें उर्दू में परीक्षा दी और इसी प्रकार इंटरमें ५.२८ लाख छात्रोंमें से केवल ८,८९१ छात्रोंने वैकल्पिक रूपमें उर्दू की परीक्षा दी। इस स्थितिमें यदि उत्तरप्रदेशमें उर्दू को दूसरी राज्य-भाषाका पद दिया जाताहै तो परिणामत: संख्यात्मक दृष्टिसे उर्दू वालोंका प्रतिशत बढ़ जायेगा, हिन्दीकी संवैधानिक स्थिति अवनत होजायेगी और राज्यका जन-लोक भाषायी आधारपर दो परस्पर विरोधी शिविरोंमें बंट जायेगा। संभवत: सत्तारूढ़ दल इस पूर्ण विघटनका श्रेय स्वयं अपने लिएही सुरक्षित रखनेको कृतसंकल्प है।

उत्तरप्रदेशमें भाषायी-कटुताका इतिहास पुराना है। यहाँ केवल उस संघर्षका स्मरण करा देना पर्याप्त होगा जब हिन्दीको न्यायालयोंमें स्थान दिलानेके लिए संघर्ष करना पड़ाथा। तब बहुमत अपनी भाषाको उसका उचित स्थान दिलानेके लिए प्रयत्नशील था। इसके परिणामस्वरूप राज्यभरमें उत्तेजना फैली हुईथी, वैमनस्य बढ़ता चला गयाथा। अब उसकी विपरीत प्रतिक्रिया शुरू होगयीहै। उर्दू को अल्पसंख्यकोंकी भाषा बनाकर, और वहभी उनकी धार्मिक भाषा बनाकर, बहुमतकी भाषाके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें खड़ा किया जा रहाहै। इसे यदि यहां अप्रासंगिक न माना जाये तो इस ओर ध्यान खींचना आवश्यक है कि नमाज आदि धार्मिक कृत्योंमें उर्दू का प्रयोग नहीं होता। धर्म निरपेक्षताकी भावना, धर्म-निरपेक्षताका नारा लगानेवालोंके गलेके नीचे कितनी उतरी है, यह इसीसे स्पष्ट है कि धर्म-निरपेक्षताको रौंदते हुए केवल धार्मिक आधारपर 'धर्म भाषा' उर्दू को बढ़ावा दिया जा रहाहै। वस्तुत: धर्मका उपयोग राजनीतिक अस्त्रके रूपमें किया जारहाहै। जनसंख्याका केवल १.६ प्रतिशत उर्दू भाषी है, परन्तु प्रत्येक इस्लामधर्मीकी भाषा उर्दू बतायी जा रहीहै। यह प्रक्रिया केवल उत्तरप्रदेश तक सीमित नहीं है, देशके प्रत्येक भागमें,प्रत्येक राज्यमें अपने-अपने भाग और राज्यकी भाषा बोलने-लिखनेवाले प्रत्येक इस्लामधर्मीकी भाषा उर्दू घोषित की जारहीहै।भाषा और धर्मके सम्मिलित घटकों द्वारा जिस ज्वालामुखीका निर्माण किया जारहा है, उसका विस्फोट रोकनेकी शक्ति यहांके बड़ेसे बड़े राजनीतिज्ञके पासभी नहीं है। ब्रिटिश शासन अपने लगभग दो शतीके शासनमें देशके केवल सीमान्तोंमें ज्वालामुखी बना सका, हमारे सत्तारूढ़ दलने केवल ३७ वर्षके शासनकालमें एक केन्द्रीय और शक्तिशाली विस्फोटके लिए तत्पर ज्वालामुखीका निर्माण कर दियाहै।

उत्तर-प्रदेशमें अध्यादेशों, विधानों और अनुदानों द्वारा धर्म और भाषाको संयुक्तकर उर्दू भाषियोंकी संख्या बढ़ानेके प्रयत्न होरहेहै। परन्तु बिहारमें आंशिक रूपसे यह कार्य सम्पन्न किया जा चुकाहै। बिहारके १५ जिलों में उर्दू दूसरी राज्यभाषा बनायी जा चुकीहै। संभव है कुछही वर्षोंमें पूरे बिहारकी दूसरी राज्यभाषा घोषित हो जाये। हरियाणा, हिमाचलप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश मेंभी ये प्रयत्न जारी हैं। सबसे अधिक चौंका देनेवाली स्थिति यह है कि गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, और केरलमें योजनाबद्ध रूपसे धार्मिक आधारपर उर्दू पढ़ायी जातीहै। इस कार्यके लिए सरकारी अनुदान दिये जातेहैं, उर्दू पढ़े-लिखे ये लोग अब अपनी मातृ-भाषाभी उर्दू लिखाने लगेहैं, जबकि उनकी मातृभाषा स्थानीय भाषाएं है। समाज विज्ञानके पण्डित इस धर्मभाषाके उन्मादकी प्रवृत्तिके विश्लेषण कार्यमें जुटें तो वे इस तथ्यका भी विश्लेषण करें कि इस्लामधर्मी बंगलादेशियोंने क्यों उर्दू को अर्धचन्द्र दे दिया।

उर्दू-पक्षपाती कुछ मित्रोंने हमसे कुछ प्रश्नोंके उत्तर चाहे हैं। उनकी चर्चा यहां प्रासंगिक होगी। यह पूछा गया है कि उर्दू वाले क्या और किसी भाषाका अधिकार

छीनकर उर्दू को दिये जानेकी बात करतेहैं ? हमारा उत्तर सीधा 'हाँ' में है। जम्मू-कश्मीरमें कश्मीरी, डोगरी और लद्दाखी बोली जातीहै। परन्तु इस राज्यकी भाषा उर्दू है। इसका सीधा प्रभाव इस राज्यकी भाषाओंके विकासपर पड़ाहै। मुख्य रूपसे कश्मीरीके विकासपर इसका बहुत प्रतिकूल प्रभाव हुआहै। कश्मीर घाटीमें इस्लाम धर्मियोंका बहुमत होनेसे और राज्यभाषा उर्दू होनेसे वहाँ उर्दू उसी प्रकारका प्रतिष्ठाका प्रतीक है जिस प्रकार देशके अन्य भागोंमें अंग्रेजी। अंग्रेजीके कारण भारतीय भाषाओंका विकास रुकाहै, इस राज्यमें उर्दूके कारण कश्मीरीका। पिछलेही कुछ वर्षोंके कश्मीरी साहित्यपर दृष्टिपातसे यह स्थिति स्पष्ट होजायेगी।

उर्दूको राजकीय मान्यता प्रदान करनेसे हिन्दीकी संवैधानिक स्थितिपर भी प्रश्नचिह्न लग गयाहै। संविधानमें अवश्य हिन्दी राजभाषा है, परन्तु राजभाषा अधिनियम १९६३ (१९६७ के संशोधन सहित) के अन्तर्गत देशभरकी व्यावहारिक राजभाषा अंग्रेजी है। सभी लोग अनुभवसे जानते हैं कि देशके सभी राज्योंमें राजकीय प्रयोजनों, व्यापारिक व्यवहार, जनसम्पर्क, न्यायपालिका आदि सभी क्षेत्रोंमें प्रथम राजभाषा अंग्रेजी ही है। स्वयं हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें हिन्दीकी स्थिति दयनीय है। वहां अंग्रेजीका प्रभुत्व है और वही प्रथम राजभाषा है। ऐसी स्थितिमें यदि द्वितीय राजभाषा उर्दू घोषित होजातीहै तो प्रथम राजभाषा अंग्रेजी और द्वितीय राजभाषा उर्दू। हम उस युगमें जा खड़े होंगे जबकि उत्तरप्रदेश तथा अन्य हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें हिन्दीको उसका उचित स्थान दिलानेके लिए संघर्ष शुरू किया गयाथा। इसके साथही हमें आजके इस राजनीतिक प्रचारका भी स्मरण हो आताहै कि संविधान द्वारा मान्यताप्राप्त हिन्दी किसीपर थोपी नहीं जा सकती, संविधानकी भावनाकी उपेक्षाकर अंग्रेजी निरन्तर थोपी जा रहीहै और अब अतिरिक्त रूपमें उर्दू थोपी जा रही है। अहिन्दीभाषी राज्योंमें केवल एक भाषा अर्थात् अंग्रेजी थोपी जा रहीहै, जबकि हिन्दी-भाषी राज्योंमें अंग्रेजी और उर्दू दो-दो भाषाएं थोपी जा रहीहैं।

संविधानमें जब राज्योंमें एक या अनेक भाषाओंको राजभाषा या राजभाषाएं बनानेकी व्यवस्था कीगयी थी तो उस समय अधिकतर राज्य बहुभाषी थे। इसी लिए केन्द्रमें केवल एक राजभाषाकी संकल्पना कीगयी थी। परन्तु स्थिति बदल चुकीहै। अधिकांश हिन्दीभाषी राज्योंको छोड़कर सभी राज्य एकभाषी होगयेहैं। इन एकभाषी राज्योंमें अन्य भाषाएं बोलनेवालोंकी संख्या उपेक्षणीय है। परन्तु हिन्दीभाषी कहे जानेवाले राज्यों की यह स्थिति नहीं हैं। उत्तरप्रदेशमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी, गढ़वाली, कुमाऊंनी, बुन्देलखन्डी बोली जातीहैं। बिहारमें भोजपुरी, मगही, मैथिली, बंगला तथा कुछ आदिवासी बोलियां बोली जातीहैं। मध्यप्रदेशमें इसी प्रकार अनेक भाषाएं और बोलियां अपना-अपना दावा प्रस्तुत करती रहतीहैं। यह एक सहज-सा प्रश्न है कि हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें, क्षेत्रीय रूपमें, दूसरी राजभाषाका पद इन भाषाओंको क्यों न दिया जाये? विशेषत: ब्रज, अवधी, भोजपुरी और मैथिली उर्दूकी तुलनामें कहीं अधिक समृद्ध हैं, क्यों न उन्हें उनके उचित स्थानपर बिठाकर स्थानीय लोगोंकी कृतज्ञता ग्रहण कीजाये। इसलिए जब उर्दूवाले मित्र यह प्रश्न करते हैं कि क्या उर्दूको दूसरी राजभाषा बनाया जाना किसी और भाषा को अवनत कर देगा, यह स्थिति स्वयं उत्तर दे देती है।

द्वितीय भाषाके रूपमें यदि संस्कृतके अधिकारका प्रश्न उठे तो वह अधिक न्यायोचित होगा। संस्कृत संविधानकी अष्टम अनुसूचीमें परिगणित भाषा है और सर्वदेशीय भाषा है। उर्दूकी भांति न तो यह भाषा किसी धर्मसे जुड़ी है और न इसकी प्रकृति उर्दूकी भांति देश की सभी भाषाओंसे अलगावकी है। देशकी सभी भाषाओंके साथ संस्कृतके जो अन्त:संबंध हैं, उर्दूके वैसे संबंध देशकी एकभी भाषाके साथ नहीं हैं। वस्तुत: देश की सभी भाषाओंके लिए संस्कृत एक स्रोतका काम करतीहै और आवश्यकता होनेपर देशकी प्रत्येक भाषा संस्कृतकी मुखापेक्षी होतीहै। सार्थकताकी दृष्टिसे द्वितीय राजभाषाके रूपमें यदि किसीके अधिकारकी पुष्टि कीजा सकतीहै तो वह मात्र संस्कृत है। वैसेभी जहांतक उत्तरप्रदेशका प्रश्न है, संस्कृत वहां बर्षों द्वितीय भाषाके रूपमें पाठ्यक्रममें रहीहै।

हम जानतेहैं कि यदि कहा जाये कि उर्दूकी मूल वृत्तिमें ही विदेशीपन है तो उर्दूप्रेमी वैसेही क्षुब्ध होंगे जैसे इन्डियन इंगलिशवाले इस देशमें अंग्रेजीकी स्थिति को चुनौती देनेपर होतेहैं। दोनोंमें से किसी भाषाको इस देशकी भाषाएं और उनका विकास सह्य नहीं है। इस असहिष्णुताका मुख्य कारणही दोनोंका विदेशीपन अर्थात् देशकी मिट्टीसे असंलग्नता है। इस देशमें उर्दूने

विशेष रूपसे बड़ी कट्टरताके साथ धर्मके साथ अपनेको जोड़ लियाहै, अनेक क्षेत्रोंमें अंग्रेजीने भी धर्मकी शरण लीहै, दोनोंमें अन्तर यह है अंग्रेजीका जन्म और विकास सात समुद्र पार हुआ। इसलिए उस ओर सहज उंगली उठतीहै। उर्दूका जन्म यहीं हुआ। उस का व्याकरण हिंदीका व्याकरण है, थोड़े सामान्य अन्तरके साथ। परन्तु शब्दावली, प्रयोग, रूप-गठन, विचार, मानसिकता सब दूसरे देशोंसे आयात किये गये। पालन-पोषण दरबारों और सामन्ती वातावरणमें हुआ, जन साधारणसे बिल्कुल असंपृक्त रहकर। एंग्लो इंडियनोंका पालन-पोषणभी राजकीय वातावरणमें हुआ, वेभी इस देशसे असम्पृक्त रहे, उनकी निष्ठा बाहर रही। दरबारों और अंग्रेजी दफ्तरोंपर निर्भर रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिने अपनी संलग्नताके अनुसार सम्बद्ध भाषाके प्रति अपनी निष्ठाका निर्माण कर लिया, इसलिए दोनों ज़बानें 'मुश्तरक:' होनेका असंदिग्ध दावा करतीहैं। इस प्रकार उर्दू भारतीय जबान है। यह इस देशका सौभाग्य है! जिन्ना साहब इस देशमें जन्मे, पर मन-प्राणसे पाकिस्तानके होगये। मन-प्राणसे विदेशी होनेपर भी उर्दू पाकिस्तानके साथ कश्मीरकी भी भाषा है, संविधानकी आठवीं अनुसूचीमें परिगणितभी। परन्तु आठवीं अनुसूचीमें परिगणित यह भाषा देशकी किसी भाषाके साथ अन्तरंगता स्थापित नहीं कर पायी, कश्मीरी-डोगरी-लद्दाखीके विकासमें अवरोधक। पर राजनीतिक स्तरपर उसके दावेपर ध्यान देनेको बाध्य किया जाताहै। उसके लिए अध्यादेश जारी होतेहैं, विधेयक प्रस्तुत होते हैं, अधिनियम लागू किये जातेहैं। इस प्रकार अध्यादेशों, विधेयकों और अधिनियमों द्वारा देशकी 'भावात्मक एकता' स्थापित कीजातीहै।

दरबारोंसे जुड़े लोगों और उनके वंशजोंने इस बातका प्रमाण प्रस्तुत किया कि उर्दू 'मुश्तरक:जबान' है। चकबस्त, कुमार पाशी, नरेशकुमार शाद, प्रेमचन्द, रघुपति सहाय फिराक, कुंवर महेन्द्रसिंह बेदी, राजेन्द्र सिंह बेदी, कृष्णचन्द्र आदि न जाने कितने लोगोंने उर्दू के प्रति अपनी वफादारीके प्रमाणपत्र प्रस्तुत किये। अनेक वफादारोंने जीभर हिन्दीको कोसा, परन्तु साथ ही अपनी कृतियां हिन्दीमें छपाकर जीवन-निर्वाह हिन्दी से करने लगे। कुछ वफादार सीधे हिन्दीमें आगये जिन लोगोंने अपने उर्दू लेखनमें भारतीय मानसिकता लानेकी कोशिश की, उसे कट्टरपन्थी स्वीकृति नहीं दे सके, इसलिए वफादारी पलटनेके अतिरिक्त उनके सामने कोई मार्ग नहीं था। फिरभी जो 'मुश्तरक: जबान' से चिपके रहे, उन्हें उस जबानमें मान्यता नहीं मिली, बल्कि उपहासका शिकार रहे।

एक ओर कटुताके ये अनुभव हैं जिन्होंने पृथकतावाद की भूमिका निभायी, साम्प्रदायिक भावनाओंको भड़काया, मजहबी भाषावादको जन्म दिया। अब हिन्दीको राजभाषा घोषित करनेके ३४ वर्ष बाद, इस अवधिकी सम्पूर्ण उपलब्धियोंको, पूर्ण रचनात्मक कार्यको नकार कर उर्दूको द्वितीय राजभाषाके पदपर लानेके साथ राजनीतिक स्तरपर पुन: पृथकतावादकी ओर यात्रा प्रारम्भ होगयी है। साम्प्रदायिक तनावोंकी नयी विस्फोटक संभावनाओंके साथ प्रस्तुत किया गयाहै और मजहबी भाषावादको राजनीतिका मान्यताप्राप्त सिद्धाँत स्वीकार कर लिया गयाहै। फिरभी ३४ वर्षोंकी अवधिमें हिन्दीने अपेक्षाकृत जो व्यापक आयाम ग्रहण किये, उनकी उपेक्षा नहीं कीजा सकती। देशकी सभी भाषाओंके साथ सहज निकटताके कारण उसने तादात्म्य स्थापित किया, यद्यपि अंग्रेजीपरस्त निरन्तर इन सम्बन्धोंको निरस्त करनेके लिए जुटे रहे। देशकी सभी भाषाओंके समान विकास और उनमें आदान-प्रदानके जितने प्रयत्न हिन्दी माध्यम से हुए, किसी भाषाकी ओरसे उतनी मात्रामें नहीं हुए। विरोध और बाधाओंके होते हुएभी ये प्रयत्न निरन्तर जारी हैं। क्या उर्दूने कभी ऐसे प्रयत्न कियेहैं या कर सकेगी? क्या अपनी भाषिक संरचना और मानसिकता के कारण देशकी अन्य भाषाओंकी सहज निकटता प्राप्त कर सकेगी? जो स्थिति उर्दूके लिए सहज रही, वह यह थी कि अपने सामन्ती वातावरण और दरबारी शक्तिके बलपर 'मुश्तरक: जबान' के कुछ वफादारों और उनके वंशजोंको जुटा सकी, कुछ वोटोंके बलपर अध्यादेशों, विधेयकों-अधिनियमों, अनुदानोंके माध्यमसे अपने पैर फैला सकी।

इसका जो मूल्य देशको, देशके जन-साधारणको चुकाना होगा, वह यह होगा कि अब उसे त्रिभाषा नहीं, बल्कि उर्दूको मिलाकर चतुर्भाषाके फार्मूलेके अन्दर पिस-पिसकर 'भाषा पंडित' बनना होगा। चार भाषाओं पर जीवन खपानेके बाद वह किन विषयोंपर पांडित्य प्राप्त कर सकेगा, यह उसे विधाताकी इच्छापर छोड़ना होगा। अथवा अंग्रेजीवालोंके फार्मूलेके अनुसार सारी टेक्नालाजी इम्पोर्ट कर लेनी होगी। पर इसका नकद मूल्यभी देना होगा। अनुमान है कि उर्दूको दूसरी राजभाषा बनाने और उसकी व्यवस्थापर वर्तमान सूचकांकों के अनुसार २० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय करना होगा। गरीबीके न्यूनतम मानदण्डोंसे भी नीचे जीवन-निर्वाह करनेवाले देशवासियोंको पेटकी पट्टीको कुछ और कसना होगा। यदि वह स्वेच्छया यह बलिदान करनेको तैयार हो तो ठीक, अन्यथा अध्यादेश, विधेयक-अधिनियमकी बन्दूककी नली सामने होनेपर यह कार्य करनाही होगा!

स्पष्ट है कि भाषाकी राजनीति, धर्मकी राजनीति और वोटकी राजनीति तीनों मिलकर धधकते ज्वालामुखीके विस्फोटकी संकट वेलाकी अवधिको न्यूनतम कर रहेहैं। हम लोग अवश भावसे प्रलयंकारी ताण्डव नृत्य की घड़ीकी प्रतीक्षा कर रहेहैं। हमें सन्देह है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा वैधानिक स्थितिकी बालकी खाल खींचनेपर भी प्रलयंकारी ताण्डव नृत्यकी घड़ीको टाला जा सकेगा। □□

रक्षा : प्रतिरक्षा

भारतीय वायुसेनाका इतिहास[1]

लेखक : एयर मार्शल एम. एस. चतुर्वेदी
आमुख : एयर चीफ मार्शल एच. मुलगांवकर
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

कैसी विडंबना है कि देशकी सुरक्षाका दायित्व जिन के कंधोंपर होताहै उनके बारेमें कोई जानकारी आम आदमीको होतीही नहीं। उसकी मान्यता कुछ इस प्रकार की होतीहै कि मुझे तो बस आरामसे रहनेको मिलना चाहिये। मेरे आरामका इन्तजाम करनेके लिए किसे क्या करना पड़ रहाहै, इसकी खोज-खबर लेने निकला तो आराम कब करूंगा? इसी वृत्तिका परिणाम है कि सामान्य शिक्षित व्यक्तिको भी अपनी सेनाओंके बारेमें कोई आधिकारिक जानकारी नहीं होती। समीक्ष्य पुस्तक ऐसी जानकारी देनेके उद्देश्यसे हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओंमें अवकाशप्राप्त एयर मार्शल चतुर्वेदीने लिखीहै। जब कोई युद्ध होताहै उस समय उसका विवरण देनेवाले लेख आदि खूब प्रकाशित होतेहैं और लोग उन्हें सामयिक महत्त्वकी चीज मानकर बड़े चावसे पढ़तेभी हैं, पर शांतिकालमें उन विवरणोंको पढ़ना एक भिन्न प्रकारका अनुभव प्रदान करताहै। प्रस्तुत पुस्तकमें भारतीय वायुसेनाको जिन-जिन युद्धोंमें अपने शौर्य और कौशलका प्रदर्शन करना पड़ाहै उन सबका वर्णनभी किया गयाहै।

पुस्तक तेरह अध्यायोंमें विभक्त है जिनमें भारतीय वायुसेनाके जन्मकी कहानीसे प्रारंभ करके द्वितीय विश्व-युद्ध, बर्माकी लड़ाईयों, कश्मीरकी लड़ाई, चीन और पाकिस्तानसे हुए युद्धोंमें भारतीय वायुसेनाकी भूमिका का और उसके विस्तार एवं पुनर्गठनका विवेचन किया गयाहै। पहले अध्यायमें भारतीय वायुसेनाके जन्मकी चर्चा करते हुए १९२५ में तत्कालीन चीफ ऑफ जनरल स्टाफ सर एन्ड्रयू स्कीनकी अध्यक्षतामें गठित स्कीन कमेटीका स्मरण किया गयाहै जिसने प्रथम महायुद्धके दौरान साहस और शौर्य प्रदर्शन करनेके लिए रॉयल एयर फोर्समें कमीशन प्राप्त करनेवाले भारतीय वीरोंका उल्लेख करते हुए यह सिफारिश कीथी कि ब्रिटिश वायुसेनाकी भाँति भारतीय वायुसेनाका भी गठन कियाजाये। वस्तुत: इस कमेटीकी सिफारिश यह थी कि भारतीय वायुसेनाका गठन स्थल सेनाके एक अंगके रूपमें किया जाये और सरकारने यह सिफारिश स्वीकारभी कर ली थी, इसलिए निश्चित था कि ऐसाही होता; परन्तु भारत में रॉयल एयर फोर्सके कमांडिंग ऑफीसर एयर वाईस मार्शल सामण्डने इसका जोरदार विरोध करते हुए स्वतंत्र वायुसेनाके गठनकी सिफारिश की। इसे स्वीकार करके जब भारत सरकारने लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें वायुसेना विधेयक प्रस्तुत किया तो उसे प्राय: सभी राष्ट्रवादी सदस्योंके विरोधका सामना करना पड़ा। उनका मानना था कि अंग्रेजोंकी नीयत साफ नहीं है। वे इस विधेयक के द्वारा एक और दमनचक्र अपने हाथमें लेना चाहतेहैं। ऐसीही शंकाओंके कारण इन लोगोंने जोर दिया कि भारतीय वायुसेनामें केवल भारतीय नागरिकोंको ही भर्ती किया जाये, अंग्रेजोंको इसमें किसीभी हालतमें प्रवेश न दिया जाये। उनकी यहभी मांग थी कि इस सेनाका गठन स्थल सेनाकी तरह जाति-भेदके आधारपर नहीं होना चाहिये। इसमें किसीभी प्रांत या जातिके भारतीय नागरिकको सेवाका अवसर मिलना चाहिये। बादमें जब यह विधेयक पास होगया तो अनेक वरिष्ठ नेताओंने अपना संतोष प्रकट करते हुए यह कहा कि 'अब इस विधेयकके पारित होजानेसे हम अपनी वायुसेनाका गठन कर सकेंगे जिसमें केवल भारतीय अफसर और जवान होंगे।' (पृ. १५-१६) इस प्रकार ८ अक्तूबर १९३२

---

1. **प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १४८; डिमा. ८२; मूल्य: २५.०० रु.।**

को भारतीय वायुसेना अधिनियमके अन्तर्गत भारतीय वायुसेनाका गठन हुआ या यों कह लीजिये कि जो भारतीय वायुसेना अभीतक ब्रिटिश वायुसेनाका अंग थी वह अब स्वतन्त्र रूपसे अस्तित्वमें आगयी।

भारतीय वायुसेनाको प्रारम्भिक वर्षोंमें जिन कठिनाईयोंका सामना करना पड़ा इनमें शायद सबसे बड़ी कठिनाई थी विमानोंकी स्वरूप सम्बन्धी। 'वैस्टलैंड वापिटी' विमानकी चर्चा करते हुए लेखकने लिखाहै कि ये चार पंखोंवाले थे और इनकी गति लगभग ८०-८५ मील प्रति घंटातक ही सीमित थी। इनमें बैठनेके दो स्थान थे एक चालकके लिए और दूसरा दिशा निर्देशक (नेवीगेटर) के लिए। पायलेटको पेटियों द्वारा सीटसे बांध दिया जाताथा और नेवीगेटरके साथ विमानमें लगी एक चेन अटका दीजातीथी जिससे विमानके कलाबाजी करते समय वह गिर न पड़े।

तत्कालीन विमानोंमें वैसेही उड़ानकी सुख-सुविधाका कोई प्रावधान नहीं होताथा और वापिटी विमान उस स्तरसे भी नीचेका विमान था। इन विमानोंमें रोकनेके लिए न तो कोई ब्रेक थे और न कोई वायरलैस उपकरण ही जिससे पृथ्वी स्थित स्टेशनसे सम्पर्क स्थापितकर आवश्यक निर्देश प्राप्त किये जासकें।' (पृ. १६-१७)

द्वितीय विश्व-युद्धमें भी वायुसेनाको विमान सम्बन्धी कठिनाईयोंका सामना करना पड़ा। ब्रिटिश वायुसेनाके जितने विमान थे वे सब तो ब्रिटेनने वापस बुला लिये। भारतीय वायुसेनाके पास पर्याप्त जहाज बचे ही नहीं। विदेशोंसे उस समय मिल नहीं सकतेथे। अतः नागरिक विमानोंका उपयोग युद्धके लिए किया गया। इन विमानों में न तो पेट्रोलकी अधिक टंकियां होतीहैं और न बम ले जानेकी सुविधा होतीहै। बमोंको ठीक निशानेपर गिरानेके लिए उपकरण आदिभी नहीं होते। अतः यह सामरिक दृष्टिसे बिल्कुलभी उपयुक्त नहीं थे। पर हमारे वीर सैनिकोंने इन्हीं वायुयानोंका युद्धमें उपयोग किया। बम ठीक लक्ष्यपर गिरें इसके लिए गहरे गोते लगाकर बम गिराये, यद्यपि ये विमान इस दृष्टिसे भी सर्वथा अनुपयुक्त थे।

इस तरहकी अनेक सीमाओंके बावजूद भारतीय वायुसेनाने अपने जो जौहर बर्माकी पहली दूसरी लड़ाईमें दिखाये उसके लिए इसके अधिकारियों और सैनिकोंको ८० सेभी अधिक वीरता-पदक तो दियेही गये, भारतीय वायुसेनाको 'शाही भारतीय वायुसेना' की उपाधिभी दी गयी।

लेखकने विभिन्न युद्धोंके जो विवरण प्रस्तुत कियेहैं वे विश्वसनीय और प्रामाणिक तो हैंही, सजीवभी हैं। कश्मीरकी लड़ाई (पृ. ६६-६७), बर्माकी लड़ाई (पृ. २६-२६), भारत-पाक युद्ध (पृ. १२०-१२३) आदिसे संबंधित विवरण इस दृष्टिसे विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

स्वतन्त्रताके बाद वायुसेनाका जिस प्रकार पुनर्गठन किया गया और जो विस्तार कियागया उसका लेखकने तर्कसंगत विवरण प्रस्तुत कियाहै। कुछ ऐसीभी बातें इस पुस्तकसे पता चलतीहै जो हमारी विदेश नीतिपर प्रश्न चिह्न लगातीहैं। उदाहरणार्थं, "भारत सरकारको वायुसेनाके लिए अच्छे और उपयोगी विमान खरीदनेमें सदा कठिनाईका सामना करना पड़ाहै। स्वतन्त्रताके बाद बहुत खोज-बीन करनेके बाद हमने ब्रिटेनसे वे विमान खरीदे जो या तो उनके काममें नहीं आतेथे अथवा जो वे बेचना चाहतेथे। ये सब अधिकतर पुराने विमान थे···हमें कोई अच्छा बमवर्षक विमान नहीं मिल सका। सैंकड़ों अमरीकी लिबरेटर विमान देशमें मौजूद थे, जिनकी अमरीकाको कोई आवश्यकता नहीं थी और न वे उड़ने योग्य थे। उनके लिए कलपुर्जे मंगाकर उन्हें उड़ने योग्य बनानेका भी कोई साधन नहीं था। वायुसेना मुख्यालयमें इन सभी पहलुओंपर विचारकर निश्चय किया गया कि इन विमानोंमें से कुछको तोड़कर उनके कलपुर्जे शेष विमानोंमें लगाकर उन्हें उड़ने योग्य बनाया जाये।" (पृ. ६६)

लेखकने केवल युद्धोंके विवरणही प्रस्तुत नहीं कियेहैं बल्कि युद्धोंको जन्म देनेवाली परिस्थितियोंका भी विवेचन कियाहै। उदाहरणार्थं, १६७१ में पाकिस्तान के साथ भारतको जो युद्ध लड़ना पड़ा उसकी पृष्ठभूमि लगभग दो पृष्ठोंमें स्पष्ट कीहै, और उस चर्चाका श्रीगणेश कियाहै ७ दिसम्बर १६७१ को पाकिस्तानमें संपन्न हुए पहले आम चुनावसे, जिसमें शेख मुजीबुर रहमानके नेतृत्वमें अवामी लीग पार्टीको पूर्वी बंगालमें पूर्ण बहुमत मिलाथा। इसीप्रकार १६४७ में हुई कश्मीरकी लड़ाईकी पृष्ठभूमिभी इसतरह स्पष्ट कीहै कि जिन लोगोंको उस इतिहासकी कोई जानकारी न हो वेभी सारी बातें संदर्भसहित समझ सकें।

पुस्तककी भाषा सरल है। लेखकने पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग बहुत कम कियाहै ताकि आम हिन्दी पाठकभी उसे समझ सके। किसी तकनीकी विषयको सरल भाषामें समझाकर व्यक्त करना तभी संभव है

जब लेखकका विषयवस्तु और भाषा दोनोंपर अच्छा अधिकार हो। चतुर्वेदीजीका सारा जीवन वायुसेनामें विभिन्न पदोंपर काम करते हुए गुजराहै। इसलिए यह कल्पना सहजही कीजा सकतीहै—कि विषयपर उनका अच्छा अधिकार होगा; पर भाषापर भी उतनाही अच्छा अधिकार देखकर सुखद आश्चर्य होताहै। सामान्य पाठकको ध्यानमें रखकर पुस्तकके अन्तमें लगभग सौ शब्दोंकी एक पारिभाषिक शब्दावलीभी दी गयीहै, पर यह काम कुछ जल्दबाजीमें किया प्रतीत होताहै क्योंकि इसमें कुछ अनावश्यक शब्द आगयेहैं। जैसे चिकित्साके लिए मेडीकल, आधुनिकीकरणके लिए मार्डनाइजेशन, हिन्दी-अंग्रेजी दोनोंमें पैराशूट। सीज़ फायरका दो बार उल्लेख कियाहै, एक बार अस्त्र-विरामके लिए और दूसरी बार युद्ध-विरामके लिए। वस्तुतः आवश्यकता इस बातकी है कि शब्दावलीके स्थानपर परिभाषा कोष दिया जाये ताकि वायुसेनाके कतिपय पारिभाषिक शब्दोंकी, पदोंके वर्गीकरणकी, पदकोंके वर्गीकरणकी, वायुयानोंके नामकरणके आधार आदिकी जानकारी पाठकको मिल सके।

यह पुस्तक एक सैनिक अधिकारी द्वारा लिखी गयीहै और सेनाको राजभक्तिकी शिक्षा दी जातीहै, उसके लिए वही देशभक्ति और मानवताका पर्याय बन जाताहै। आपभी पुस्तक इस रूपमें पढ़ें वरना कुछ कथन आपको चुभभी सकतेहैं, जैसे, ''हिरोशिमा और नागासाकीपर अमरीकी अणुबम गिरनेके साथही दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया। सारे संसारने चैनकी साँस ली।'' (पृ. ५३) जिस अणुबमके दुष्परिणामोंसे वर्तमान पीढ़ीतक ग्रस्त है, विकलांगताका अभिशाप भुगत रहीहै उसके गिरनेपर सारा संसार चैनकी सांस ले यह सोचकर ही सिहरन हो उठतीहै। इसी प्रकार भारतको आजादी मिलना लगभग निश्चित हो चुकाथा उस समय ''ब्रिटेनके राजाने १२ मई १९४५ को भारतीय वायुसेनाको 'शाही भारतीय वायुसेना' की उपाधिसे अलंकृतकर के महान गौरव प्रदान किया।'' (पृ. ५२) कथन विशुद्ध रूपसे किसी सैनिकका ही हो सकताहै। (लेखकने इस तारीखका इसी पृष्ठपर दो बार उल्लेख कियाहै पर एक बार १२ मई और दूसरी बार १२ मार्च छपाहै। मेरी जानकारीके अनुसार १२ मई ही शुद्ध है)।

भारतीय वायुसेनाका समग्र प्रामाणिक इतिहास सरल भाषा और रोचक शैलीमें प्रस्तुत करनेके लिए लेखकको हार्दिक बधाई। पुस्तकका मुद्रण और उसकी साजसज्जा राजपाल एण्ड सन्सकी प्रतिष्ठाके अनुरूप है। पुस्तकका यदि पेपरबैक संस्करण/पॉकेट बुक संस्करण भी निकाला जाये तो उसका मूल्य कम हो सकेगा और तब इससे अवश्यही अधिक पाठक लाभान्वित हो सकेंगे। यों तो यह पुस्तक सभीके कामकी है फिरभी किशोरों और युवकोंके लिए इसका विशेष महत्त्व है। □

राष्ट्रीय सुरक्षा और प्रतिरक्षा[1]

लेखक : डॉ. लल्लनजी सिंह

समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

पिछले कुछ समयसे विश्वविद्यालय स्तरपर सैन्य विज्ञानका अध्ययन एक विषयके रूपमें किया जा रहाहै। प्रस्तुत पुस्तक स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तरपर इस विषयके अध्येताओंकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर लिखी गयीहै। विभिन्न विश्वविद्यालयोंका पाठ्यक्रम यों तो समान होताहै, पर कुछ प्रकरणोंका हेरफेर होही जाताहै। इस पुस्तकका कलेवर इस प्रकार गठित करनेका प्रयास किया गयाहै कि उत्तर-प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र आदि राज्योंमें स्थित विभिन्न विश्वविद्यालयोंके सैन्य विज्ञानके पाठ्यक्रमकी आवश्यकताओंकी पूर्ति होसके तथा लोक-सेवा-आयोगकी सेवाओंमें सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियोंको भी परीक्षा संबंधी उपयोगी सामग्री मिल सके।

पुस्तक पाँच खण्डोंमें विभक्त है। खंड 'क' 'युद्धकी प्रकृति तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंध' में ग्यारह अध्याय, खंड 'ख' 'भारतीय रक्षाके भौगोलिक पहलू' में आठ अध्याय, खंड ''ग'' 'भारतीय रक्षाके सैनिक पहलू' में दो अध्याय, खंड ''घ'' 'भारतीय रक्षाके आर्थिक पहलू' में दस अध्याय, तथा खंड ''ङ'' 'भारतीय रक्षाके सामाजिक एवं राजनीतिक पहलू' में चार अध्याय हैं, इस प्रकार कुल पैंतीस अध्याय हैं। पाठ्यक्रमको आधार बनाकर लिखी गयी सामान्य पुस्तकमें विषयका परिपाक प्रायः सतही स्तरका होताहै। उनका एक बना-बनाया ढांचा होताहै। लेखकको बराबर यह स्मरण रहताहै कि

---

१. प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.)। पृष्ठ १४७+२५१+८६=४८४; डिमा. ८२; मूल्य २५.०० रु.।

पाठक एक विद्यार्थी है जिसकी रुचि विषयमें उतनी नहीं होती जितनी परीक्षामें। अतः लेखकको भी अपना ध्यान परीक्षापर केन्द्रित रखना पड़ताहै। परीक्षामें अच्छे अक पानेके लिए परिभाषाएं लिखनी होतीहैं, दूसरे विद्वानोंके विचार उन्हींके शब्दोंमें लिखने होतेहैं, किसी विषयका विश्लेषण बिन्दुवार करना होताहै, आदि। प्रस्तुत पुस्तकमें भी लेखकने अपने पाठकोंकी इस आवश्यकताका पूरा ध्यान रखाहै, पर वह इससे आगेभी गयाहै। अपने विशद् अध्ययन और चिंतनके आधारपर उसने जगह-जगहपर अपने विचारभी दियेहैं और ऐसे स्थानोंपर पर्याप्त गम्भीरताभी मिलतीहै। सैन्य-विज्ञान एक स्वतन्त्र अनुशासनके रूपमें अपेक्षाकृत एक नवीन विषय है जिसका विकास पश्चिमी विद्वानोंने कियाहै। प्राचीन भारतके मनीषियोंने इस विषयका अध्ययन अर्थ-शास्त्र और धर्मके ही अन्तर्गत कियाथा। विद्वान् लेखकने यद्यपि इन सभीके विचारोंका उपयोग अपनी पुस्तकमें कियाहै तथापि प्राचीन भारतीय विद्वानोंके विचारोंकी विस्तारसे चर्चा नहीं कीहै। उदाहरणार्थ "युद्धकी प्रकृति" (पृ. ८-११) स्पष्ट करनेके लिए विदेशी विद्वानोंके साथ लेखकने एक छोटे-से अनुच्छेदमें कौटिल्य, शुक्राचार्य आदिके भी विचारोंका उल्लेख कर दियाहै। शायद यह पाठ्यक्रमीय पुस्तककी एक सीमा है।

लेखकने अपनी पुस्तकमें अद्तयन सामग्री देनेका प्रयास कियाहै। यही कारण हैं कि १८ जुलाई, १९८१ को छोड़े गये रोहिणी उपग्रहका विवरण यहाँ मौजूद है, और यह सूचनाभी कि सोवियत संघके अन्तरिक्ष यानमें सोवियत उड़ाकोंके साथ भारतीय उड़ाकेको भेजनेकी बात सिद्धान्ततः दोनों देशोंने स्वीकार कर लीहै। अब यह कार्य सम्पन्न हो चुकाहै और राकेश शर्मा दो सोवियत अन्तरिक्षयात्रियोंके साथ अन्तरिक्षयात्रा सम्पन्नकर लौट आयेहैं।

"भारतीय सुरक्षाको आन्तरिक खतरे" शीर्षक अध्यायमें लेखकने उन तत्त्वोंकी चर्चा कीहै जिनसे राष्ट्रीय सुरक्षाको खतरा है। उसके अनुसार ये तत्त्व हैं—क्षेत्रीयता, जातीयता, भाषावाद, जनजाति विद्रोह, निर्धनता, और श्रम-विवाद। उसका यह निष्कर्ष राजनीतिके खिलाड़ियों द्वारा किये गये सतही विश्लेषणपर आधारित लगताहै। वस्तुतः क्षेत्रीयता, जातीयता आदि अपने आपमें कोई रोग नहीं, किसी दूसरे रोगसे उत्पन्न हुए उपसर्ग हैं। जरा विचार कीजिये कि यदि वास्तवमें क्षेत्रीयता, जातीयता आदि सुरक्षाके लिए खतरनाक तत्त्व हैं तो क्या राष्ट्रीय सुरक्षाके लिए खतरा पैदा करनेवाले लारविन्स बन्धु और अमरीकी राजनयिक हेरी बेदरली एकही क्षेत्र और एकही जातिके थे? या निर्धन थे? या कोई श्रम-विवाद था? प्रतिरक्षा मंत्रालयके कर्मचारी शादीलाल कपूरने पाकिस्तानके लिए गुप्तचरी करके राष्ट्रीय सुरक्षाके लिए जो खतरा पैदा किया, उसका आधारभी क्या क्षेत्रीयता, जातीयता, भाषावाद, निर्धनता आदि था? इस सन्दर्भमें राजनीतिबाज जिन बातोंकी चर्चा जान बूझकर नहीं करते उनकी पहचान कमसे कम विद्वानोंको तो करनीही चाहिये। भ्रष्टाचारके शीशमहलमें बैठी राजनीतिक पार्टियां पत्थरबाजी कर रहीहैं। हर कोई दूसरेके पत्थरके नुकीलेपनकी शिकायत चीख-चीखकर कर रहाहै। विद्वानोंसे जनता यह आशा नहीं करती कि वे भी उन्हीं स्वार्थियोंके स्वरमें स्वर मिलायें।

सैन्य-विज्ञान जैसे नवीन विषयपर हिन्दीमें मौलिक साहित्यकी अभी बहुत कमी है, अतः हर उस कृतिका हार्दिक स्वागत करनाही चाहिये जो दूसरोंके विचारोंका पिष्ट-पेषण और चर्वण मात्र न हो। इस दृष्टिसे भी समीक्ष्य पुस्तक स्वागत योग्य है। हां, कुछ बातोंकी ओर अवश्यही मैं लेखकका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। हिन्दी इस समय जिस दौरसे गुजर रहीहै उसमें इस बातकी अत्यन्त आवश्यकता है कि शब्दावलीमें एकरूपता और सरलताका ध्यान रखा जाये। जो शब्द प्रचलित हो गयेहैं उन्हें स्वीकार किया जाये। यदि उन्हें अस्वीकार करें तो उसका समुचित कारण स्पष्ट करना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तकमें इसका सम्यक् ध्यान नहीं रखा गयाहै। उदाहरणार्थ, सिक्युअरिटिके लिए बहु-प्रचलित शब्द सुरक्षा है। लेखकने इसका भी प्रयोग कियाहै, साथही निश्शंकताका भी। भारत सरकारके बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह, कामिल बुल्केके शब्द कोश, आक्सफोर्ड प्रोग्रेसिव अंग्रेजी-हिन्दी कोश आदि किसीमें भी सिक्युअरिटिके लिए निश्शंकता नहीं दियाहै। फिर इसका प्रयोग क्यों? इसी प्रकार डिफेन्सके लिए लेखकने रक्षा, प्रतिरक्षा, और सुरक्षा तीनों शब्दोंका विकल्पसे प्रयोग कियाहै। पारिभाषिक शब्दोंके क्षेत्रमें यह स्वेच्छाचारिता अनुशासन विकसित करनेके बजाय अराजकता उत्पन्न करेगी। इससे हिन्दी लेखकोंको बचना चाहिये। "इंटरनेशनल" के लिए हिन्दीमें कुछ लोग 'अन्तर्राष्ट्रीय' लिख

रहेहैं, इस पुस्तकमें भी लिखा गयाहै; जबकि लिखना चाहिये "अन्तर-राष्ट्रीय", "अन्तर" के अर्थमें "अन्तर" क्यों ? "अन्तर्देशीय" (देशके अन्दर, देशान्तरके लिए नहीं) में जो "अन्तर्" है, वह अन्तर-राष्ट्रीयके अन्तरसे पृथक् है।[1]

प्रस्तुतीकरणमें भी किंचित् परिष्कारकी आवश्यकता है। यह कदापि आवश्यक नहीं कि विदेशी भाषाके देशी-विदेशी लेखकोंके तथा उनकी कृतियोंके नाम विदेशी भाषामें ही दिये जायें। जिस भाषामें पुस्तक लिखी जा रहीहै उसीमें नाम देना अधिक समीचीन होगा। पाठ्य-क्रमकी पुस्तकोंमें दूसरे विद्वानोंके मूल शब्दोंका विशेष महत्त्व होताहै। वे टिप्पणीके रूपमें भी दिये जा सकतेहैं और मूल सामग्रीमें उनका अनुवाद या भावार्थ दिया जा सकताहै। इससे पठनीयतामें प्रवाहभी बना रहताहै। लेखकने कुछ स्थानोंपर ऐसा कियाभी है पर सब जगह नहीं। वस्तुतः नीति जोभी स्वीकार कीजाये उसका निर्वाह आदिसे अन्ततक करना चाहिये। योंभी विचार-णीय है कि मूल शब्दोंका यह आग्रह केवल अंग्रेजीतक ही सीमित है, रूसी, चीनी, स्पेनिश, फ्रांसीसी आदि भाषाओंमें मूल शब्द देनेकी कोशिश नहीं कीजाती। अंग्रेजीके वर्चस्वका यहभी एक उदाहरण है।

यह पुस्तक विश्वविद्यालय स्तरपर सैन्य विज्ञान विषयका अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंकी आवश्य-कताओंको तो पूरा करतीही है, सामान्य पाठककी भी अनेक जिज्ञासाओंका समाधान करतीहै। मुद्रण ठीक है। मूल्यभी ठीक है। पुस्तकमें लेखकके बारेमें दी हुई जान-कारीसे यहभी पता चलताहै कि डॉ. सिंह डी. लिट्. उपाधिके लिए शोध प्रबंध जमाकर चुकेहैं। संभवतः अबतक उन्हें यह उपाधि मिल चुकी होगी और सैन्य-विज्ञानमें यह उपाधि पानेवाले वे विश्वके प्रथम व्यक्ति बन चुके होंगे। इस सम्मानके लिए उन्हें बधाई। आशा है उनकी लेखनी निरन्तर चलती रहेगी और सैन्य-विज्ञान साहित्यकी श्रीवृद्धि करती रहेगी। □

---

१. उपसर्ग रूपमें अन्तः (अन्तर्) का अर्थ बीचमें, मध्यमें और अन्दर होताहै। इसलिए राष्ट्रोंके मध्य अर्थमें 'अन्तर्राष्ट्रीय' प्रयोग उचित प्रतीत होताहै। 'अन्तर' का अर्थ फर्क, शेष, फासला, दूरी आदि होता है, 'अन्तर-राष्ट्रीय' प्रयोगसे राष्ट्रोंकी दूरी अर्थ व्यंजित होने लगेगा जोकि शब्दकी भावनाके अनुकूल नहीं होगा।

गुरिल्ला युद्ध कर्म[1]

लेखक : परशुराम गुप्त
समीक्षक : प्रा. रमेश दवे

नागरिक जीवनके बीचसे शोषण और अत्याचारके विरुद्धजबान खोलती जिन पुस्तकोंका पहले मूल्यांकन किया जा चुकाहै, 'गुरिल्ला युद्ध-कर्म' एक ऐसीही पुस्तक होते हुएभी उनसे इस रूपमें अलग हैं कि यह उसी शोषण और अन्यायके विरुद्ध, न्याय व सम्मानके लिए न केवल संघर्ष बल्कि युद्ध करनेका भी आह्वान करतीहै। लेखकने अपने पुरोगममें गुरिल्ला शब्दकी व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि यह युद्ध-कर्म सबल शत्रुके विरुद्ध निर्बल पक्षका एक ऐसा अमोघ अस्त्र है जिसका प्रतिरोधी आयुध पर-परागत युद्ध शैलीमें विश्वास करनेवाले प्रबलतम शत्रुके आयुधागारमें भी नहीं होता। इसमें संकेन्द्रण, विकेन्द्री-करण, स्थितिक युद्ध, गतिविधिक युद्ध आदिका विश्लेषण कर गुरिल्ला युद्ध-कर्मके लक्ष्य और यौद्धिक स्थितियोंका विशेषज्ञतापूर्ण विवेचन है। साथही लेखकने अंगोला, जिम्बाबवे, मोजाम्बीक, नामीबिया, पश्चिमी सहारा, पूर्वी-तिमोर पुर्तगाली उपनिवेश आदिके मुक्ति-संघर्षोंकी भी इस युद्धकर्मके परिप्रेक्ष्यमें चर्चा कीहै।

पुस्तकका पहला भाग ऐतिहासिक विकास-क्रमसे शुरु होताहै जिसमें आधारभूत तथ्योंको इतिहासकी दृष्टिसे देखा गयाहै। आगे चलकर स्त्रातिजी और समर-तन्त्रके नामसे गुरिल्ला युद्धकी सम्पूर्ण स्ट्रेटेजीका विवरण है। समरतन्त्रके बाद विचार और तकनीकके आधारपर इसकी विप्लव विरोधी अथवा प्रतिगुरिल्ला युद्ध विधिका डेविड, गलुला, सर राबर्टस थाम्पसन, सिम्पसन, जूलियट पैजेटके हवालेसे विश्लेषण किया गयाहै। नगरीय आतंक-वाद, गुरिल्ला दर्शन, मलाया, ग्रीस, वियतनाम और फिलीपीन्सके केन्द्र और उनका ऐतिहासिक तिथिचक्र किताबको आगे बढ़ाता हुआ माओ-युगमें लाताहै। माओ गुरिल्ला युद्धके निष्णात शास्त्री थे। माओ, चे ग्वेवारा, टी. ई. लारेंस, लेनिन, ट्राटस्की आदिके यौद्धिक-संघर्षको गुरिल्लाकर्मने किस प्रकार असरदायक और परि णाममूलक बनाया, पुस्तकके जरिये अच्छे यौद्धिक साक्ष्य उपलब्ध करानेमें लेखक यहाँ सफल हुआहै।

---

१. प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली। (उ. प्र.)। पृष्ठ : १२२; डिमा. ८३; मूल्य : १५.०० रु.।

अंतिम अध्यायमें भारतीय विप्लवी गतिविधियोंके तहत नक्सलवादी आंदोलन, उससे प्रभावित राज्य, पूर्वाञ्चलकी समस्या और पंजाबकी खालिस्तानी ज्वालाका वर्णन पुस्तकको सीधे आजके राजनीतिक संकटोंसे जोड़तेहैं। परिशिष्टमें आधुनिक छापामार युद्धके जनक 'छत्रपति शिवाजी'के प्रति जहां ऐतिहासिक अनुगृहीतताका भाव है वहीं यहभी बताया गया है कि किस प्रकार गुरिल्ला युद्ध कर्म भारतीय युद्ध कौशलका एक अद्भुत हिस्सा था।

पुस्तक सैन्य-विज्ञानके अध्ययनके लिए अत्यन्त उपयोगी है और दुनियांके जिन महान सेनानायकोंने अपने देश व जनके लिए इस युद्धकर्मका प्रयोग किया उनके पूरे युद्ध-दर्शन व कर्मको अत्यन्त वस्तुनिष्ठताके साथ प्रस्तुत करतीहै। यदि पुस्तककी आत्मामें प्रवेश करके देखा जाये तो गुरिल्ला युद्धके पीछेभी मानवीय संवेदना है जिसका इस्तेमाल अन्याय शोषणके विरुद्ध किये जाने पर हर युद्ध जीता जा सकताहै। □

युद्ध एवं शांतिकी समस्याएं[1]

लेखक : एम.पी. सिंह एवं राकेश सिंह
समीक्षक : डॉ. जमनालाल बायती

आज जब विश्व तृतीय युद्धके कगारपर खड़ाहै, विभिन्न देशोंमें आग्नेय शस्त्रोंकी होड़ लगी हुईहै। पता नहीं कब कौन दियासलाई लगादे तथा सभी स्वाहा हो जाये, ऐसी स्थितिमें प्रस्तुत पुस्तकका अपना महत्त्व है। यद्यपि यह स्नातक स्तरकी पाठ्य पुस्तक है पर विश्व-शान्ति, विश्व-नागरिकता, अन्तर्राष्ट्रीय अवरोध या भाई-चारेमें रुचि रखनेवाले प्रत्येक नागरिकके लिए उपयोगी प्राइमर हो सकतीहै।

पुस्तकमें २२ शीर्षकोंमें विवेचन किया गयाहै। आज के इस भौतिक युगमें अंतर्निर्भरता इतनी बढ़ गयीहै, विश्वके एक कोनेमें घटी घटनाका समस्त विश्वपर प्रभाव पड़ताहै, ऐसी स्थितिमें सामूहिक सुरक्षा सम्प्रत्ययका विकास आवश्यक होगयाहै। लेखकोंने इसे सुबोध रूपमें समझानेका सहज प्रयास कियाहै। शीत-युद्धभी विवेच्य बिन्दुओंमें सम्मिलित है जिससे बचा जा सकताथा। पर शीतयुद्ध आज जिस स्थितिमें पहुंच गयाहै, उस स्थितिको समझनेके लिए सम्भव है, लेखकोंकी दृष्टिसे यह आवश्यक हो। नि:शस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियन्त्रण संबंधी सामग्री निश्चयही उपयोगी है पर प्रारम्भिक स्तरपर ही विवेचित है। कुछ विषयोंपर अधिक लिखे जानेकी सम्भावना हो सकतीथी, यथा युद्ध तथा राजनीति, युद्धजनित आर्थिक समस्याएं, शत्रुरूपता; परमाणु तथा गुरिल्ला युद्धपर मात्र सतही विवेचन किया गयाहै। शक्ति-संतुलनका अर्थ बताते हुए इसकी निधियोंपर भी प्रकाश डाला गयाहै। संयुक्त राष्ट्र संघकी भूमिकापर भी कामचलाऊही लिखा गयाहै। इस क्षेत्रमें इस विश्वव्यापी संगठनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकतीहै। विवादोंका समाधान विषयपर उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक विवेचन किया गयाहै, बाहुबलकी अपेक्षा तर्कसे समाधान खोजनेपर बलपूर्वक आग्रह किया गयाहै जो निश्चयही आजके विविधतापूर्ण समाजकी सामयिक आवश्यकता है तथा सामान्य नागरिकभी इससे लाभान्वित होसकताहै।

पुस्तकके आद्योपान्त अध्ययनपर एकही बात कही जासकतीहै कि मानव कल्याणकी दृष्टिसे इस महत्त्वपूर्ण विषयपर लिखनेके लिए लेखकोंको बहुत अधिक अध्ययनकी आवश्यकता है। कहीं-कहीं विचारोंकी अभिव्यक्तिका क्रमभी टूटा हुआ लगताहै। चरण लेखन अधूरे हैं, सन्दर्भ साहित्यमें लेखक तथा पुस्तकोंकी तालिका मात्रही दी गयीहै, इसे किसी स्तरीय तकनीककी सहायतासे सुधारा जा सकताथा। □

सैनिक जीवन और चुनौती[1]

लेखक : कर्नल नरिन्दरकुमार
अनुवाद : धर्मपाल पाण्डे
समीक्षक : उदयवीर विराज

इस पुस्तकमें लेखकने अपने तीन अलग-अलग प्रकारके साहसिक अभियानोंकी कहानी सरल एवं सजीव भाषामें प्रस्तुत कीहै। इनमें से पहला अभियान है नीलकंठ पर्वत शिखरकी विजय; दूसरा है त्रिशूल शिखरसे स्की करते हुए नीचे उतरना; और तीसरा है ऊंचे पहाड़ोंमें बहती सिन्धु नदीमें रबड़की नावपर बैठकर

---

१. प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.)। पृष्ठ : १२४; डिमा. ८४; मूल्य : १०.०० रु.।

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १६२; का. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

यात्रा। ये तीनोंही अभियान ऐसे थे, जो इससे पहले नहीं किये गयेथे और तीनोंही सफल रहे।

नीलकंठ शिखर २१६४० फुट ऊंचा है और बद्रीनाथसे केवल पांच मील पश्चिममें है। देखनेसे लगताहै कि जैसे केवल चाहनेभर-से इसकी चोटीपर पहुंचा जा सकताहै। परन्तु छह अभियात्री दल अलग-अलग वर्षोंमें इसे विजय करनेके लिए गये और असफल वापस लौटे। सन् १९६१ में कर्नल नरिन्दरकुमार एक दलके नेता बनकर गये और इस दलके श्री ओ. पी. शर्मा और दो शेरपा फुरबा और लाकपा १३ जूनको इस शिखरके ऊपर पहुंचनेमें सफल हुए।

इस अभियानकी कहानी बहुत रोमांचकारी है। ऊंचाईपर पतली हवा, आक्सीजनकी कमी, अत्यधिक सर्दी, तेज हवा, बर्फमें बनी दरारें यात्रियोंके लिए निरन्तर कष्ट और संकट प्रस्तुत करतीथीं। यथेष्ट अभ्यास और आरोहण-कौशलके बादभी नीलकंठकी सीधी चढ़ाई एक विकट चुनौती थी, जिसपर केवल इसलिए विजय पायी जासकी कि ये यात्री बहुतही दृढ़ संकल्पवाले थे और अपने लक्ष्यको पूरा करनेके लिए बड़ेसे बड़ा कष्ट सहनेको तैयार थे।

१३ जूनको सवेरे छह बजे ये अभियात्री अन्तिम शिविरसे शिखर विजयके लिए चलनेको तैयार हुए। गुफासे बाहर निकले तो यह देखकर उनकी निराशाका ठिकाना न रहा कि उस समय बर्फ पड़ रहीथी। ठंड और दिनोंसे अधिक थी।

पहली टुकड़ीमें श्री चौधरी दो शेरपाओंको लेकर गये। उन्हें कहा गयाथा कि वे चार घंटेतक वापस लौट आयें, जिससे यदि आगे जा पाना संभव न हो, तो सब लोग निचले शिविरतक लौट सकें। उन्होंने ढाई घंटेतक बर्फ काट-काटकर ऊपर चढ़नेका प्रयत्न किया, पर उसके बाद ऊपरतक पहुंचनेकी आशा न देखकर वे लोग वापस लौट आये। और सबने निचले शिविरमें लौटनेकी सोची।

लेकिन श्री ओ. पी. शर्मा आसानीसे माननेवाले नहीं थे। उन्होंने एक बार प्रयत्न करके देखनेकी अनुमति मांगी, जो कुछ हिचकिचाहटके बाद मिल गयी।

श्री शर्मा और शेरपा फुरबा तथा लाकपा शिखर विजयके लिए चले। दोपहर बीत चलीथी। शामतक लौटनेकेलिए समय कम था। फिरभी वे तीनों दृढ़ निश्चयके साथ चले। शामको पांच बजेतक भी वे वापस नहीं लौटे। आठ बजे, नौ बजे, और ग्यारह बज गये। पर वे वापस नहीं लौटे। उस सर्दी और बर्फमें सबने यही समझ लिया कि वे अब शायद कभी वापस नहीं लौटेंगे। अगले दिन सवेरे लगभग सात बजे वे तीनों वापस लौटे। वे शिखरकी चोटीके ऊपरतक हो आयेथे। रातमें लौटना खतरनाक था, इसलिए वह रात उन्होंने खुलेमें ही बितायीथी।

इसी प्रकार सिंधु नदीमें रबड़की नावपर बैठकर पहाड़ी क्षेत्रमें यात्राका वर्णनभी बहुत रोमांचकारी है। त्रिशूल शिखरसे स्की करते हुए उतरनेका अभियानभी अपने ढंगका अनूठा है। इन वर्णनोंको पढ़कर पाठक अनुभव करताहै कि वह स्वयंभी इनमें भाग ले रहाहै। इस प्रकारके अभियानोंमें सम्मिलित होनेकी इच्छाभी उसके मनमें जागतीहै।

पुस्तकके अन्तमें सात अध्यायोंका एक परिशिष्ट है, जिसमें अभियानकी तैयारीके विषयमें कुछ जरूरी बातें बतायी गयीहैं, जैसे अधिक ऊंचाईका शरीरपर क्या प्रभाव पड़ताहै और उसका क्या उपाय करना चाहिये; पाला मारनेसे बचाव कैसेहो?; हिम-स्खलनके समय सावधानी; बिजली गिरनेके खतरे; पहाड़ोंपर चलनेके नियम; खुलेमें रात बिताना; और तरापेपर यात्रा करते समयकी सावधानियां।

यह परिशिष्ट इस प्रकारकी यात्राओंमें भाग लेनेवाले युवकोंके लिए विशेष उपयोगी है।

पुस्तककी भाषा जहांतहां शिथिल है। हिन्दीमें विदेशी शब्दोंके लिंग निर्धारित करना कठिन होताहै—फिरभी करने तो पड़तेही हैं, क्योंकि संज्ञाके लिंगके अनुसार क्रियाका रूप बनताहै। इस पुस्तकमें पृष्ठ १७० पर 'एवेलांश आ गई' में 'एवेलांश' को स्त्रीलिंग मानाहै, परन्तु पृष्ठ १७१ पर 'एवेलांश हिंस्र पशुके समान है, जो बिना पंखोंके उड़ताहै, बिना हाथोंके मार डालताहै और बिना आंखोंके देख लेताहै' और पृष्ठ १७३ पर 'एवेलांश' सामान्यतया सर्दियोंमें भारी बर्फ पडनेके बाद शुरू होतेहैं' में एवेलांशको पुल्लिग मान लिया गयाहै। उचित यह होताहै कि सब जगह दोनोंमें से किसीभी एकही लिंगका प्रयोग किया जाता।

पृष्ठ ६७ पर लिखा है, 'ब्रह्मपुत्र और सतलज नदियोंके समान सिंधुका मुहानाभी उन ऊंचे पर्वत शिखरोंमें है जो कैलाश पर्वतके पवित्र सरोवरके आस-पास हैं।' 'मुहाना' शब्द संभवत: 'उद्गम' के लिए प्रयुक्त किया गयाहै। भाषाको सुबोध बनानेका प्रयत्न।

मजेकी बात यह है कि हिन्दीके दो शब्दकोषोंमें ढूंढ़नेपर हमें यह शब्दही नहीं मिला। वैसे 'मुहाना' वह स्थान कहलाताहै, जहां नदी समुद्रमें या किसी अन्य नदीमें जाकर गिरतीहै—जहांसे नावें आदि उसमें प्रवेश कर सकतीहैं।

इसी प्रकार पृष्ठ ४४ और ४५ पर 'गली' शब्दका प्रयोग किया गयाहै, इसी उच्चारणवाले अंग्रेजी शब्दके लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होताहै। अंग्रेजीके उस शब्दके लिए 'नाला' या 'सूखा नाला' शब्द यहां अधिक उपयुक्त होता। अंग्रेजीके 'रिज' शब्दके लिए 'मेंढ़' के बजाय कोई अन्य शब्द होता तो अच्छा रहता—बोलचालमें तो इसके लिए पहाड़ीकी 'धार' शब्द प्रयुक्त होताहै।

कुल मिलाकर पुस्तक रोचक और उपयोगी है। □

शोध आलोचना

रामचरितमानसके शब्दोंका अर्थतात्त्विक अध्ययन[1]

लेखक : डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल
समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य

रामचरितमानसकी भाषा एवं शब्दार्थ तत्त्वपर कई अच्छे ग्रंथ लिखे जा चुकेहैं। डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तवने अपने शोधप्रबंध 'तुलसीदासकी भाषा' में मानसकी भाषाके व्याकरणिक तथा भाषावैज्ञानिक रूपपर अच्छा प्रकाश डालाहै। इसी प्रकार डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने 'मानस शब्दार्थ तत्त्व' ग्रंथमें मानसके कुछ शब्दोंकी विशद व्याख्या प्रस्तुत कीहै। इसी क्रममें डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्लका 'रामचरितमानसके शब्दोंका अर्थतात्त्विक अध्ययन' शोधप्रबंध भी आताहै, जिसपर लेखकको जबलपुर विश्वविद्यालयकी पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुईहै।

समीक्ष्य ग्रंथ पांच अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें विषय-प्रतिपादनके प्रारूपकी जानकारी दी गयीहै, जिससे ग्रंथकी विषय-वस्तुका बोध होताहै। द्वितीय अध्यायमें मानसके पर्याय शब्दोंका अर्थपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै। इसमें मानसके २७ व्यक्तिवाचक, ५७ जातिवाचक तथा १० भाववाचक संज्ञा पर्यायोंकी व्याख्या की गयीहै। उदाहरणार्थ व्यक्तिवाचक संज्ञा पर्यायोंमें इन्द्रके १८ पर्यायोंका विवेचन है जिनमें मुख्य अर्थच्छटा इस प्रकार है—सहस नयन कर्मेन्द्रिय वैशिष्ट्य सूचक; अमरपति, देवपति, सुरनाथ, सुरनायक, सुरपति, सुरराजु, सुरेस आदि प्रभुत्वसूचक; अमरावतिपाल, नाकपति सम्राज्ञसूचक; पुरन्दर-भजकस्वरूप व्यंजक; शक्र सामर्थ्य एवं शौर्यसूचक; पाकरिपु वैरसूचक तथा मघवा कुत्सितार्थक है। भानु (सूर्य)के १५ पर्यायोंके विवेचनके अन्तर्गत अरुणको वर्ण वैशिष्ट्यसूचक, भानुको गुण वैशिष्ट्य अथवा भास्वरताद्योतक, तमारीको तमान्तक और सुखशान्तिबोधक, तरनिको उद्धारकगुण वैशिष्ट्यद्योतक। दिनकरको दिनकर्ताद्योतक, चंडकरको प्रखरता एवं प्रचण्डताद्योतक, पूषनको पुष्टकर्ताद्योतक, रविको तेजस्विताद्योतक तथा पतंगको प्रभास्तद्योतक माना गयाहै।

इसी प्रकार जातिवाचक संज्ञाओंमें असुरके ११ पर्यायोंमें निम्नलिखित मुख्य अर्थच्छटाओंका संकेत किया गयाहै--दितिसुत, दनुज, दानव अपत्यवाचक, असुरअनमरता-

[1] प्रकाशक : स्मृति प्रकाशन, १२४ शहरारा बाग; इलाहाबाद। पृष्ठ : २८०; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।

सूचक, जातुधान यातनादायक सूचक, निसिचर रात्रि-भ्रमण सूचक, प्रेतनरकस्थप्राणी सूचक, पिसाच अपक्व-मांसभक्षक सूचक तथा मनुजाद नरभक्षी सूचक आदि हैं।

भाषामें कुछ शब्द ऐसे होतेहैं, जिनमें एकाधिक अर्थ निहित रहतेहैं। ये अनेकार्थी शब्द कहलातेहैं। रामचरितमानसमें भी इन प्रकारके अनेक शब्दोंका प्रयोग हुआहै। समीक्ष्य शोध-प्रबंधके तृतीय अध्यायमें इन बहु-अर्थक शब्दों (संज्ञा, क्रिया, विशेषण) का अर्थपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै। यथा 'जोग' शब्द मानसमें 'तप', 'अवसर' तथा 'उचित' अर्थमें प्रयुक्त हुआहै। लेखकने इनका संदर्भ देते हुए इनकी आवृत्ति संख्याभी दीहै। विशिष्ट संदर्भमें इनके प्रयोगकी सार्थकताकी ओरभी ध्यान आकृष्ट किया जाता तो यह अध्ययन औरभी उपयोगी होसकताथा।

चतुर्थ अध्यायमें रामचरितमानसके समध्वनीय शब्दोंका अर्थपरक अध्ययन है। इसमें कुछ शब्द ऐसेभी हैं, जो तृतीय अध्यायमें बहुअर्थक शब्दोंके अध्ययनमें आचुकेहैं। लेखक महोदयने किसीभी अध्यायके आरंभमें व्याख्यात्मक टिप्पणी नहीं दीहै। अतः पाठकोंको उनकी अध्ययन-सरणि समझनेमें बाधा पड़ सकतीहै। तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायमें यह कमी विशेष खटकतीहै। समध्वनीय शब्दोंका विकासक्रम प्रायः भिन्न होताहै। यदि लेखक महोदय अपने अध्ययनमें मानसके समध्व-नीय शब्दोंके विकासक्रमकी ओरभी संकेत करते तो यह अध्ययन पूर्ण तथा अधिक उपयोगी होता।

पंचम अध्याय व्याकरणिक विवेचनसे सम्बद्ध है। इसमें शब्दोंके पूर्व आबद्धरूपों, परव्युत्पादक आबद्धरूपों, विभक्ति-प्रत्यय, परसर्गों तथा निपातों आदिके अर्थ तथा उदाहरण दिये गयेहैं। मानसके शब्द-रूपोंके अध्य-यनमें इनकी महती उपयोगिता है।

कुल मिलाकर समीक्ष्य शोधप्रबंध गंभीर अध्ययनकी दिशामें एक प्रशंसनीय प्रयास है। हिन्दीके अनेक शोध-प्रबंधोंमें चर्वित चर्वणकी परिपाटी चल रहीहै। प्रस्तुत प्रबंध इस दोषसे मुक्त है। इसमें रामचरितमानसके शब्दोंका अर्थतात्विक अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतिपर प्रस्तुत किया गयाहै। □

मानस मंथन[1]

लेखक : तनसुखराम गुप्त
समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य

समीक्ष्य ग्रंथमें गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानसके आरम्भसे लेकर दोहा सं. ६१ तक की कुछ चुनी हुई चौपाइयों तथा दोहोंकी पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की गयीहै। व्याख्यामें सामान्यतया अर्थ एवं भाव दो पक्षों पर ध्यान दिया जाताहै। भावपरक व्याख्यामें व्याख्याकार कोशगत अर्थसे आगे बढ़कर लाक्षणिक एवं ध्वन्यात्मक अर्थका भी सन्धान करतेहैं। मानसकी व्याख्यामें प्रायः यही शैली अपनायी जाती रहीहै किन्तु समीक्ष्य ग्रंथमें लेखक का आग्रह शब्दोंके कोशगत अर्थकी ओरही अधिक है। अपने मत के समर्थनमें उन्होंने विभिन्न कोशोंको प्रमाणस्वरूप उद्धृत कियाहै।

लेखक महोदयने मानसकी तीन टीकाओंको आलोचना का लक्ष्य बनायाहै— (१) श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार द्वारा सम्पादित रामचरितमानस (२) विद्यावारिधि पं. ज्वाला-प्रसाद मिश्र द्वारा लिखित मानसकी संजीवनी टीका एवं (३) श्री अंजनीनन्दन शरण द्वारा सम्पादित 'मानस पीयूष'। उक्त तीनों सम्पादकों तथा टीकाकारोंके प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुएभी लेखकने उनके मन्तव्योंके प्रति असह-मति व्यक्त कीहै किन्तु इसमें लेखकको अत्यल्प सफलता मिलीहै। कहीं-कहीं तो वह कोशगत अर्थकी सीमाओंसे भी आगे बढ़ जाताहै। यद्यपि सम्पूर्ण ग्रन्थमें वह इसीको आधार मानकर चलाहै। उदाहरणार्थ मानसकी एक बहुश्रुत चौपाईका अंश है—

'मंगल भवन अमंगलहारी।' बालकाण्ड १-१०

श्रद्धेय पोद्दारजीने इसका अर्थ कियाहै "श्रीरामका नाम कल्याणका भवन है और अमंगलोंका हरनेवाला है।" बात बहुत सरल तथा स्पष्ट है किन्तु 'मानस-मंथन' के व्याख्याकार इससे असहमति व्यक्त करते हुए लिखतेहैं 'भवन' शब्द 'भू' धातुसे बनाहै, जिसका अर्थहै उत्पत्ति। अतः यहांभी भवनका अर्थ लेना होगा 'उत्पत्ति' या 'जन्म' अर्थात् (श्रीरामका नाम) मंगलकी उत्पत्ति करताहै।" भवन शब्द 'भू' धातुसे भलेही बनाहो, का अर्थ 'उत्पत्ति'

१. प्रकाशक : सूर्य प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली-६। पृष्ठ: ६४; क्रिमा. ८२; मूल्य : १०.०० रु.।

या 'जन्म' किस प्रकार माना जा सकताहै ? वास्तवमें कवि का अभिप्रेत अर्थ वहीहै, जिसकी ओर श्रद्धेय पोद्दारजीने संकेत कियाहै। इसे और अधिक स्पष्ट करें तो कह सकते हैं। 'श्रीरामका नाम मंगल भवन है अर्थात् मंगल जहाँ निवास करतेहैं। इसकी पुष्टि आगे चलकर भी होतीहै जब गोस्वामीजी कहतेहैं—"मंगल रूप भएउ बन तबतें।

कीन्ह निवास रमापति जबतें ॥

उत्तम काव्यके विमल मतिकी आवश्यकता तथा अपनी अल्पज्ञताका निरूपण करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते है—

'सो न होइ बिनु बिमलमति' बालकांड दोहा सं. १४(ख)

इस पंक्तिमें 'विमलमति' का अर्थ श्रद्धेय पोद्दार जीने 'निर्मल बुद्धि' तथा पं. ज्वालाप्रसाद मिश्रने 'उज्ज्वल मति' कियाहै। लेखक महोदयकी सम्मतिमें विमलका अर्थ स्पष्ट होना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि बृहत् हिन्दी कोशमें विमलका अर्थ स्पष्ट दिया गयाहै। किन्तु इसी कोशमें विमलका अर्थ 'स्पष्ट'से एकदम पूर्व 'विशुद्धभी दिया गयाहै। पाठक विचार करें कि 'विमलमतिका' अर्थ 'स्पष्ट समझ' अधिक उपयुक्त है अथवा 'निर्मल बुद्धि'।

अपने अर्थकी संगति बैठानेके लिए कहीं-कहीं कुछ शब्दोंके अर्थोंको तोड़ने-मरोड़नेका भी प्रयास कियागयाहै। उदाहरणार्थ : मानसकी एक प्रसिद्ध अर्द्धाली है—

भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई।

—बालकांड १/३१

श्रद्धेय पोद्दारजीने इसका अर्थ करते हुए लिखाहै—"वही अब मेरे द्वारा भाषामें लिखी जायेगी, जिससे मेरे मनको सन्तोष हो।" लेखक महोदयको यहां 'प्रबोध' शब्दके अर्थपर आपत्ति है। वे मानक हिन्दी कोश तथा बृहत् हिन्दी कोशका सन्दर्भ देते हुए प्रबोधका अर्थ यथार्थ ज्ञान मानते हैं तथा सन्दर्भित पंक्तिका अर्थ इस प्रकार करतेहैं—रामकथाको जैसा मैंने समझा, उसमें निहित यथार्थ ज्ञान या तत्त्व-ज्ञान जैसा मेरी समझमें आया, "उसे मैं हिन्दीभाषामें लिख रहाहूं।" यदि हम प्रबोधका अर्थ 'यथार्थ ज्ञान' मानभी लें तोभी 'जेहिं' का अर्थ "जैसा मेरी समझमें आया किस प्रकार माना जा सकताहै। बृहत् हिन्दी कोशमें ही प्रबोधका अर्थ 'सांत्वना' भी दिया गयाहै। अतः यहां प्रबोधका अर्थ संतोष अथवा सान्त्वनाही अधिक संगत है।

जिन स्थलोंपर लेखकने अर्थके विस्तारका प्रयास किया है वहां उसे अवश्य सफलता मिलीहै, यथा-बालकांडके दोहा सं. ३३ की प्रथम पंक्ति है—

राम अनन्त अनन्त गुन अमित कथा बिस्तार।

श्रद्धेय पोद्दारजीने 'राम अनन्त' का अर्थ लिखाहै—'श्री रामचन्द्रजी अनन्त हैं।" किन्तु उन्होंने अनन्त शब्दकी व्याख्या नहीं कीहै। 'मानस मंथन' के लेखकने इसकी व्याख्या करते हुए लिखाहै—"श्रीराम शाश्वत है अविनाशी हैं" जो उचित प्रतीत होताहै।

बालकांड चौपाई सं. २/६१ में 'सुर-सुन्दरी' का अर्थ श्रद्धेय पोद्दारजीने 'देव सुन्दरियां', पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'देवताओंकी स्त्री' तथा मानस-पीयूषकारने 'देवताओंकी स्त्रियोंकी शोभा' कियाहै किन्तु मानसमंथनकारने 'सुर सुन्दरी' का अर्थ 'अप्सरा' माना है, जो सर्वथा उचित है।

रामचरितमानसके अर्थ-सन्धानपर निरन्तर नवीन खोज होती रहीहै। 'मानस मंथन' भी इसी दिशामें एक प्रयास है। ग्रंथके मुखपृष्ठपर अंकित है'मानस व्याख्याकारों द्वारा तुलसीके प्रति अन्याय।' मेरे मनमें बार-बार प्रश्न उठताहै कि कहीं लेखक महोदय स्वयंही जाने-अनजाने व्याख्याकारोंके प्रति अन्याय तो नहीं कर बैठेहैं। ग्रन्थकारका एक गुण अवश्य प्रशंसनीय है कि उन्होंने आक्षेपोंको शालीनतापूर्वक प्रस्तुत कियाहै तथा श्रद्धाका सूत्र कहींभी टूटता हुआ नहीं दिखायी पड़ता। सर्वत्र जिज्ञासा एवं समाधानका ही प्राधान्य है और यह एक बड़ी बात है। □

यौन मनोविज्ञान : शिल्पन और विश्लेषण[1]

लेखक डॉ. कुमार वीरेन्द्र

समीक्षक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

मगध विश्वविद्यालयके प्राध्यापक डॉ. कुमार वीरेन्द्रकी यह कृति अपने विषय और विवेचन-पद्धति दोनों ही दृष्टियोंसे विशिष्ट कही जा सकतीहै। पुस्तक यौन (सैक्स) विषयक भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तन धाराओं का शोधपूर्ण प्रामाणिक लेखा-जोखा तो प्रस्तुत करतीही है, साथही, विश्व-साहित्य ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, अंग्रेजी, संस्कृत आदिसे यौन-मनोविज्ञान विषयक कथाओं, उपन्यासों आदिका विवरणभी लेखकने इसमें दियाहै, जिससे कृति निश्चयही अधिक मूल्यवान् बन गयीहै। कृतिके 'उपोद्घात' में डॉ. कुमार वीरेन्द्रने स्पष्टभी कर दिया है—"संस्कृत साहित्यकी सुदीर्घ परम्परामें रतिको बड़ा स्थान मिलाहै, विशेषतः कान्ता विषयिनी रतिको।" इसी परिप्रेक्ष्यमें लेखकने भारतके आद्य काम-चिन्तक वात्स्यायन सहित भर्तृहरि, दशरूपककार धनंजय, अभिनव गुप्तसे लेकर संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्यके अनेकानेक आचार्यों एवं कवियोंके काम (यौन) विषयक चिन्तनको यत्र-तत्र विश्लेषित किया है। इसीके साथ प्रख्यात पाश्चात्य मनो-

१. प्रकाशक : किंजल्क प्रकाशन, बहार बिल्डिंग, महेन्द्रू, पटना-६। पृष्ठ : १७५; डिमा. ८३; मूल्य : ४५.०० रु.।

विश्लेषक एवं यौनविज्ञानी सिग्मण्ड फ्रायड, जुंग, कैनेथ, कर्नबेर्ग, हैवलॉक एलिस आदिकी धारणाओंको भी परखा-जांचा गयाहै, जिससे लेखकके विवेचनमें प्रामाणिकता एवं सन्तुलन आगयाहै ।

पुस्तकके उद्देश्यको लेखकने स्वयं स्पष्ट कियाहै—"इस पुस्तकका उद्देश्य है यौनके इसी व्यापकत्वके सम्बन्ध में अपने विचार उपस्थित करना तथा विचारोंको उद्दीप्त करना । इसके लिए मैंने निर्धारित निर्णय देनेके बजाय सुचिन्तित विचारोंके आधारपर यौनके सम्बन्धमें एक विस्तृत अभिज्ञान उपस्थित कियाहै ।" लेखक अपने इस उद्देश्य में सफल रहाहै । यौनके विषयमें 'निर्धारित निर्णय' देना सरल कामभी तो नहीं है, अतः लेखक सामान्यतः प्रामाणिक चिन्तनकोही आधार बनाकर यौनकी उलझी-पुलझी गुत्थियोंपर लिखनेका यह दायित्व लेकर चलाहै और कृति स्वागत योग्य बन गयीहै ।

पुस्तकका प्रथम अध्याय है—"जीवनमें यौन-भावना : विस्तृति और सीमाएं", जिसमें डॉ. कुमार बहुत सरल और सहज ढंगसे यौन-भावनाके आदिम स्वरूपसे लेकर आधुनिक परिणतितकका विश्लेषण करतेहैं । जहां वात्स्यायनके काम-सूत्रसे "धर्मार्थकामेभ्यो नमः" का सूत्र-वाक्य 'काम' की विस्तृतिका परिचायक है, वहीं सिग्मण्ड फ्रायडकी "लिबिडो" विषयक अवधारणाभी 'यौन' की सार्वभौम स्वीकृति हीहै । लेखकका कथन है—"हमारे यहाँ आदिकालसे ही कामको श्रेष्ठ स्थान दिया गयाहै । धर्म आदि चतुर्विध पुरुषार्थोंमें 'काम' (कामजन्य सुख) को भी एक अन्यतम पुरुषार्थ माना गयाहै ।" (पृ. २१)

वस्तुतः यौन-भावना जीवनकी आदिम और मूल चेतनाके रूपमें मानवके साथ रहीहै और बहुविध विकास का कारण बनीहै, यह प्रायः सभी काम-चिन्तक मानतेहैं।

लेखकने छांदोग्य-उपनिषद्में सहजात प्रवृत्तिके रूपमें स्वीकृत हास्य, क्षुधा और मैथुनके आधारपर काम-चेतना को जीवनकी सहज एवं मूलवृत्ति कहकर उसे अपार महत्त्व दियाहै । लेखकीय निष्कर्षके रूपमें डॉ. कुमारका कथन है—"मानव जीवनमें प्रेमका स्थान सर्वोच्च है । इस प्रेमकी मूलमें हमारी यौनभावनाही काम करतीहै । प्रेमको चाहे जिन शब्दोंमें बाँधिये, यह सत्य है कि इसका गहरा सम्बन्ध कामभावसे है । प्रेमकी उत्पत्ति प्राणीकी यौन-वृत्तिसे ही होतीहै ।" (पृष्ठ २५)

यौन-चेतनाके सम्बन्धमें लेखकने अत्यन्त प्रामाणिक उद्धरण देकर जो निष्कर्ष दियेहैं, उनसे कृतिका महत्त्व निःसन्देह बढ़ गयाहै और यौनके सर्वांगीण स्वरूपको समझानेमें लेखकको वांछित सफलताभी मिलीहै ।

कृतिका दूसरा अध्याय—"यौन मनोविज्ञान : स्वरूप और व्याख्या" वस्तुतः लेखककी शोध-दृष्टि एवं परिश्रम का परिचायक है । लेखकका कथन है—"यौनका समाज से सीधा लगाव है । सामाजिक परिप्रेक्ष्यमें ही हमारी यौन भावनाका विकास होताहै ।" (पृ. ४०) इसी कारण लेखक 'यौन-मनोविज्ञान' का स्वरूपभी समाजसे निरूपित होना स्वीकार करताहै । विस्तृत आधारपर किया गया विश्लेषणात्मक विवेचन इस अध्यायकी उपादेयता बढ़ा देताहै । फ्रायड द्वारा निरूपित 'इडिपस ग्रंथी' का विस्तृत परिचय यौन-गुत्थियोंको सुलझानेमें विशेष सफल है । 'मूल्य एवं ग्रन्थियां'—उपशीर्षक हमारे व्यवहारको समाज के सन्दर्भमें समझनेका आधार देताहै, "यौन विकृतियोंकी दिशाएं" में लेखक हमें विविध विकृतियोंका जो विस्तृत तथ्यपूर्ण विवरण देताहै, वह हमें स्वयंका विश्लेषण करने की क्षमता देताहै; साथही यौन-विषयक अनेक भ्रान्तियों का निराकरणभी कराताहै । इस सन्दर्भमें 'वेश्यावृत्ति' एवं 'अश्लीलता' का विवेचन बेहद महत्त्वपूर्ण है । लेखकका कथन देखिये—"साधारण व्यक्ति काम (यौन) को अश्लील समझताहै और इसकी चर्चा या विवेचना तक नहीं करना चाहता, किन्तु यह हमारी मूल प्रवृत्ति है, अतः इसकी प्रकृति एवं जीवनमें इसकी सीमाओंका परिज्ञान हमें होनाही चाहिये ।" (पृष्ठ ११४)

कृतिके "काम विज्ञानकी भारतीय परम्परा" अध्याय में डॉ. कुमार वीरेन्द्रने वेदों, उपनिषदों, पुराण ग्रन्थों स्मृतियों एवं संस्कृत साहित्यसे प्रामाणिक उद्धरण देकर सिद्ध कियाहै कि भारतीय काम-चिन्तकोंका चिन्तन प्रामाणिक एवं अनुभवसिद्ध होनेके साथ-साथ उदात्तभी रहाहै । लेखकने कहाहै—"आजके अमरीकन एवं अंग्रेज यौन-मनोवैज्ञानिक भारतीय कामशास्त्रकी महान परम्परा को देख दाँतों तले उंगली दबातेहैं ।" अन्तिम अध्यायमें "यौन वर्जनाओं तथा नैतिकता' का सटीक विवेचन है । यह अध्याय लेखकके समाज-चिन्तनको भी व्यक्त करता है । नैतिकताके विषयमें लेखकका चिन्तन स्पष्ट, व्यावहारिक एवं प्रमाण-पुष्ट है । ग्रंथके मुद्रणमें यत्र-तत्र भूलें हैं, फिरभी 'यौन विज्ञान' पर यह कृति मूल्यवान एवं प्रामाणिक कही जा सकतीहै । □□

उपन्यास

निस्संगता[1]

लेखक : ब्रजनारायण सिंह

समीक्षक : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

पारिवारिक परिवेशके सम्बन्धोंपर आधारित यह उपन्यास सामाजिक यथार्थको उद्घाटित करताहै। उपन्यासके शीर्षकमें निस्संगता शब्दसे जो ध्वनि निकलतीहै वह पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धोंकी निस्संगताही है। सामाजिक दायित्व और कर्तव्यका निर्वाह करनेपरभी जब व्यक्ति सम्पर्कमें आनेवालोंके प्रति आसक्त नहीं होता तभी निस्संगताकी सृष्टि होतीहै।

डॉ. ब्रजनारायण सिंहने अपने उपन्यासमें मध्यवर्गीय एक छोटेसे परिवारकी कहानीको बड़े सहज रूपमें परिवारके सदस्योंके अन्तर्द्वन्द्वके साथ चित्रित कियाहै। पांच प्राणियोंके इस छोटेसे परिवारमें पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री और सास हैं। इनके साथही एक पारिवारिक मित्र डॉ. शर्मा है। इस प्रकार मूल कथा इन्हीं पात्रोंकी है। उपन्यासकी मुख्य पात्र अरूपा नामकी नारी है जो शिवेन वर्माकी पत्नी, और डॉ. असित शर्मा परिवारका मित्र है। अरूपा पेशेसे डाक्टर है किन्तु इस उपन्यासमें वह कैंसर पीड़ित भावुक नारीके रूपमें पाठकके समक्ष आतीहै। अरूपाका पति शिवेन वर्मा पेशेसे वकील है। वकालतमें उसकी रुचि नहीं है। पत्नी-परायण सुविधाभोगी पतिके रूपमें लेखक ने उसे चित्रित कियाहै। अपनी महत्त्वाकांक्षी पत्नीकी इच्छाओंके वशीभूत होकर वह जिस प्रकारका व्यवहार करताहै वह एक दुर्बल व्यक्तिका आचरण है। पत्नीके रुतबेकी उसे चिन्ता है, पतिके रूपमें अपने अधिकार और कर्त्तव्यसे वह विमुख है। शिवेन वर्माकी पत्नी अरूपा ऐसे संवेदनहीन पतिको पाकर भीतरही भीतर अवसन्न और विषण्ण है। उसके मनमें सूनापन घर कर गयाहै। पतिको वह कायर किस्मका व्यक्ति मानकर मनका आश्रय खो बैठतीहै और डॉ. असित शर्मामें सांत्वना और संतोषका ठिकाना मिल जाताहै। कैंसर रोगकी असह्य पीड़ाको डॉ. शर्माका सम्पर्क, सद्भाव, सौजन्य एक सीमा तक सह्य बना देताहै। मेडिकल इन्स्टीट्यूटमें वह अपनी उन्नतिका मार्ग डॉ. शर्माके सहयोगमें देखतीहै। अपनी अतृप्त कामनाओंकी पूर्तिका स्थल उसे डॉ. शर्माके सम्पर्क में लक्षित होताहै और वह अपने कायर पतिको कर्तव्य पालनके लिए ही स्वीकार करतीहै।

'निस्संगता' उपन्यासमें पहला निस्संग भाव यहींसे उत्पन्न होताहै। उसके बाद वह अपनी संततिमें निस्संगता का अनुभव करतीहै। उसकी बेटी अलका माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध स्वेच्छासे विवाह करना चाहतीहै किन्तु उसके प्रेमी गौरवका वायुयान दुर्घटनामें देहान्त होजाता है और अलकाके भीतर निस्संगताकी गहरी छाप छोड़ जाताहै।

डॉ. असित शर्मा एक कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति हैं किन्तु उनकी पारिवारिक स्थिति बड़ी विकट है। एक फूहड़, गंवार स्त्रीके साथ उन्हें गृहस्थकी गाड़ी खींचनी पड़ रही है। रागात्मक सम्बन्धोंसे खोखले, स्नेह-प्रेमशून्य भावना-विहीन जीवन जीनेवाले डॉ. असित शर्माकी निस्संगता तो अपने परिवारसे है। उन्होंने भावनाके स्तरपर अरूपाको स्वीकार कियाहै। अरूपाभी डॉ. शर्माके आन्तरिक अभाव को भरनेमें पूरे मनसे जुट गयी किन्तु सामाजिक स्तरपर जिस सम्बन्धको समाज स्वीकार नहीं करता उसे चिर-स्थायी बना पाना सरल नहीं है। डॉ. शर्माको अपनी पद-प्रतिष्ठाका ध्यान है किन्तु उनके भीतरका अभाव उन्हें बेचैन बनाये रखताहै। अरूपाको वह केवल भावनाके स्तरपर ही पा सकतेहैं, सामाजिक स्तरपर नहीं। इसी बिन्दुसे दोनोंके भीतर इस परोक्ष सम्बन्धके प्रति सजगता उत्पन्न होतीहै। कैंसर पीड़ित अरूपा तो अपने पतिके साथ चिकित्साके लिए दक्षिणकी यात्रापर चली जातीहै और डॉ. शर्मा उसकी प्राणघातक बीमारीके प्रति चिन्तित होकर कुंठित भावसे निस्संगतामें डूब जातेहैं।

मध्यवर्गीय परिवारमें इस प्रकारकी समस्याएं प्रायः आती रहतीहैं और उनका समाधान खोज न पानेपर निस्संगता और निष्क्रियताही व्यक्ति-मनको शान्त करनेका साधन बन जातीहै।

इस उपन्यासमें चरित्र-सृष्टिपर लेखकने उतना ध्यान नहीं दिया जितना पात्रोंकी मानसिकताके चित्रणपर दिया है। मानस-संघर्ष झेलनेवाले दो पात्र हैं। अरूपा और डॉ. शर्मा। शिवेन वर्मा परिस्थितियोंके साथ चलनेवाला चरित्र है जो किसीभी चुनौतीको स्वीकार नहीं करता। संघर्षरत पात्रोंके अन्तर्द्वन्द्वके चित्रणमें लेखकने अच्छे मनोविज्ञानका परिचय दियाहै। उपन्यासकी भाषा परिष्कृत और प्रवाहपूर्ण होनेके साथ, गम्भीर चिन्तन-मननके

---

१. प्रकाशक : ज्ञानभारती, ४/१४, रूपनगर, दिल्ली-७। पृष्ठ १५६; क्रा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

उद्भूत है। कहीं-कहीं तो सूत्रात्मक समास शैलीसे चिन्तन की प्रौढ़ताका लेखकने अच्छा परिचय दियाहै। अरूपा इस उपन्यासकी नायिका मानी जाये तो उसका आत्म-कथ्यही इस उपन्यासकी शक्तिभी है। किस प्रकार व्यक्ति आसक्ति और अनुरागके मध्य जीकर भी अन्तमें सामाजिकताके आग्रहसे सम्बन्धोंके प्रति निस्संग होजाताहै यह इस छोटे-से उपन्याससे सहजही उद्घाटित होताहै। यदि इस निस्संगताको सम्बन्धोंकी निस्सारता कहा जाये तो शायद बहुत बड़ा अन्तर नहीं होगा। □

सिद्धियोंके खंडहर[1]

उपन्यासकार : डॉ. शत्रुघ्न

समीक्षक : डॉ. नत्थनसिंह

'सिद्धियोंके खण्डहर' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें भारतके बारहवीं शताब्दीके ऐतिहासिक यथार्थको, नितांत कौशल, संतुलन एवं प्रभविष्णुताके साथ अंकित किया गया है। भारतके इतिहासका यह काल अनेक धार्मिक सिद्धियोंके चमत्कार तथा भ्रमजालका युग था। गौतम बुद्धका तप, साधना और अहिंसाका संदेश बज्रयान और हीनयानमें विभाजित होकर, आन्तरिक स्तरपर यौन साधनाका पर्याय बन गयाथा। घोरपा-सिद्ध साधनागत चमत्कारोंसे राजा तथा प्रजाको भयभीत किये हुएथे और उनकी बुद्धि तथा विवेकको जागृत न होने देनेके लिए कटिबद्ध थे। दूसरी ओर वैष्णव धार्मिक रूढ़ियोंके अन्धकारमें भटक रहेथे और शाक्त, शिव-साधनाके नामपर बौद्धिक दिवालियापन का प्रमाण देरहेथे। तात्पर्य यह है कि सभी सम्प्रदाय, साम्प्रदायिक संकीर्णता तथा स्वार्थपरताके मोहमें ठोस यथार्थके प्रति पराङ्मुख थे और उनकी यथार्थके प्रति इस उदासीनता तथा धार्मिक प्रतिद्वन्द्विताका लाभ उठाकर तुर्क आक्रान्ता भारतकी भूमिपर पैर जमाते जारहेथे। भारतकी धार्मिक सिद्धियाँ, विधर्मियोंकी तलवारका ग्रास बन रहीथीं। सिंधु और गुजरातपर विदेशियोंके आक्रमणसे, भारतीय शासनने, कोई पाठ न पढ़ाथा। एकके बाद एक, नगर तथा राज्य, अपनी स्वाधीनता खोकर, आक्रान्ताओंके चरणोंपर पड़ाथा। भारतका यह दुर्भाग्य था कि न तो देशके शासक एक होकर विदेशी आक्रांताओं का सामना कर सके और न तान्त्रिक-साधनाके सिद्धि चमत्कार तथा रूढ़ियोंसे मुक्त होकर शस्त्रकी शक्तिमें विश्वास पैदा कर पाये। यदि किसी शासकने, इस दिशा में सोचा तो धर्मके तथाकथित सिद्धों तथा शासकोंने, उसके मार्गमें अनेक बाधाएँ खड़ी करदीं। फलतः साम्राज्योंका ध्वंस हुआ; सिद्धियोंके खण्डहर बने और भारत लम्बी दासताके पथपर निकल पड़ा।

डॉ. शत्रुघ्नने, बड़ी कलात्मकताके साथ, भारतके इस यथार्थको, आलोच्य कृतिमें अंकित कियाहै।

उदन्तपुरीके महाराज गोविन्दपाल भारतके उन शासकोंके प्रतीक हैं जो यथार्थके प्रति उपेक्षित थे, समस्त विपत्तियोंका निवारण सिद्धोंकी कृपा तथा मन्त्र-शक्तिके बलपर मानतेथे और सिद्धोंकी कृपा-अर्जनके लिए सब कुछ न्यौछावर करनेके लिए सन्नद्ध थे। उनका पुत्र महेन्द्र कुमार, उन शासकोंका प्रतीक है जो यथार्थके प्रति सजग थे, शत्रुका सामना शस्त्रसे करनाही एकमात्र मार्ग मानतेथे, शस्त्र उत्पादनमें लगेथे, जनतामें मनोबल पैदा करनेकी साधनामें लीन थे, आक्रमणकारियोंका सशस्त्र प्रतिरोध कर रहेथे, किन्तु सिद्धोंके षड्यन्त्रोंके फलस्वरूप विफल होगये। लखनौतीका राजा उस वर्गका प्रतीक है जो ज्योतिषीकी सम्मतिके बिना कोई कार्य करनेके लिए तैयार नहीं था।

कुमार महेन्द्र देशके समस्त शासकोंके सहयोगसे आक्रमणकारीका सामना करनेका महत्त्व समझतेहैं, अतः इख्तियार-बिन-बख्तियार खिलजीका सामना करनेके लिए लखनौती, उत्कल आदि राज्योंको आमन्त्रित करतेहैं, किन्तु ये राज्य संकीर्ण स्वार्थोंसे ऊपर नहीं उठ पाते, अतः ध्वंसका मार्ग पकड़ लेतेहैं।

इस राजनीतिक यथार्थके साथ-साथ, उपन्यासकार तत्कालीन धार्मिक-विश्वासगत प्रतिस्पर्धाका अंकन, देवीदत्त और शोभनके आख्यान द्वारा करताहै। देवीदत्त ब्राह्मण है और शोभन बौद्ध। शोभन प्रयास करताहै कि देवीदत्तकी विधवा युवा पुत्री सुभद्रा, जैन सुमन्तके प्रेम में अनुरक्त होकर, चली जाये। वह जातीभी है, किन्तु सुमन्तके साथ उसका मिलन जीवनकी स्वीकृति है और बौद्ध-साधनाकी सिद्धिकी अस्वीकृति। वह, सिद्धों द्वारा प्रस्तावित महामुद्राके प्रलोभनको ठुकराकर जीवनके स्वाभाविक मार्गपर बढ़तीहै। सुभद्राके समान, सामन्तकी

[1]. प्रकाशक : सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, नयी दिल्ली-५५। पृष्ठ : २४०; क्रा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

विधवा युवा पुत्री 'सुवर्णा' भी सिद्धि-साधनापर लात मार देतीहै। वह सर्वांग सुन्दरी है। सिद्ध घोरपा उसे साधिका बनानेके लिए लालायित है, 'शीलभद्र' उसके सामने यह प्रलोभन देकर उसकी कृपाका अर्जन करताहै और आक्रमण-कारियोंके लिए जासूसी। कुमार महेन्द्र 'सुवर्णा' को अपनाकर, वस्तुतः ढोंगी सिद्धोंसे उसके नारीत्वकी रक्षा करके, एक ओर तो विधवा-विवाहके आयोजन द्वारा परम्परागत रूढ़ियोंको तोड़ देताहै और दूसरी ओर साधना के नामपर होनेवाले दुराचारको धक्का देताहै। 'शील भद्र' उन बौद्ध साधकोंका प्रतिनिधि है, जो चन्द प्रलोभनके पीछे आक्रमणकारियोंका मार्ग प्रशस्त और देशके साथ गद्दारी कर रहेथे।

इस कृतिमें, बड़ी सन्तुलित लेखनीसे, प्रगतिशील एवं राष्ट्रवादी तत्त्वोंके महत्त्वका प्रतिपादन और प्रतिक्रिया-वादी एवं देशविरोधी तत्त्वोंके प्रति विरक्तिका स्फुरण किया गयाहै। उपन्यास, अज्ञेयके 'नदीके द्वीप' वाली यौनपरक शैलीसे बहुत दूर है और स्वस्थ जीवन तथा उसकी रागात्मकताका सफल चित्रण करताहै। सुवर्णा और महेन्द्र तथा सुमन्त और सुभद्राका प्रेमानुभूतिका अंकन सधी लेखनीसे किया गयाहै। 'सुवर्णा' के मानसिक द्वन्द्वका चित्रण नारी-मनोविज्ञानका मार्मिक चित्र है।

आलोच्य कृति प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय एकता, धार्मिक सहिष्णुता, तथाकथित धार्मिक कर्म-काण्डसे जीवनकी रक्षा और बाहरी आक्रमणसे राजनीतिक स्वाधी-नताका रक्षण आजके युगकी प्रमुख समस्या है। प्रस्तुत रचना एक दिशा देतीहै। वह जीवनका पाठ पढ़ातीहै, ढोंगपर प्रहार करतीहै, विदेशी आक्रमणको सैनिक तथा शस्त्र बल से रोकनेका मार्ग प्रशस्त करतीहै, देशके जासूसोंको दंडित करनेका मार्ग दिखातीहै, नारी-स्वाभिमानकी रक्षा करतीहै और मन्त्र तथा सिद्धि-साधनाके कल्पित महत्त्वको नकारती है। अस्तु, कृति प्रत्येक कोणसे प्रगतिशील है और वृन्दावन-लाल वर्माकी ऐतिहासिक रोमांस प्रधान परम्पराकी आधुनिक कड़ी है।□

□□□□□□□□□□□□□□□□

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक संख्याका उल्लेख अवश्य करें।

□□□□□□□□□□□□□□□□

त्रिशंकु[1]

(मराठीसे अनूदित)

लेखक : अरुण साधु
रूपान्तरकार : प्रकाश भातम्ब्रेकर
समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

'त्रिशंकु' मराठी पत्रकार-कथाकार अरुण मार्त्तण्ड साधु का ('बम्बई दिनांक', 'सिंहासन', 'विस्फोट' के बाद) चौथा उपन्यास है। यहां लेखकने अपनी दृष्टि उन दलितों पर केन्द्रित कीहै जिन्हें विभिन्न प्रकारकी आर्थिक, राज-नीतिक सुविधाएं सरकारसे मिलती रहीहैं, पर ये सुवि-धाएं उन्हें अपनेही वर्गसे काटे दे रहीहैं। ऊपरके वर्गसे ये मानसिक रूपसे जुड़ नहीं सक रहेहैं, अपने वर्गसे कटते जा रहेहैं। इसीलिए ये 'त्रिशंकु' हैं!

उपन्यासका केन्द्रीय चरित्र नागेश कांबले है। सुविधा-पूर्ण जिन्दगी जी रहा प्रतिष्ठित चित्रकार और कवि। उसे 'अपनी जाति या जाति-बंधनके प्रति कोई लगाव नहीं था। इसके विपरीत वह खुद जाति-पांति के बन्धनोंको तोड़कर ऊपर उठनेका हर संभव प्रयास कर रहाथा।' (पृ. १०) पर वह बराबर महसूस करताहै कि उच्च वर्ण व वर्गवाले उसके प्रति समुचित सम्मान या सौजन्य नहीं रखते। उसके दफ्तरकी टेलीफोन आपरेटरतक! सम्भ्रान्त परिवारोंके उसके सहपाठीभी उसे हेय दृष्टिसे ही देखतेथे। बादमें वैशाली पण्डितसे प्रेम करते हुएभी उसे यह हीनता-बोध बराबर सताता रहताहै। वह सोचताहै कि वैशाली जरूर अपनेही वर्गके किसी सभ्य, सुसंस्कृत व्यक्तिसे प्रेम करती होगी। वह स्वयंभी वैशालीकी ओर क्यों आकृष्ट है? 'उसकी यह सुप्त आकांक्षा कि वैशालीके साथ सम्पर्कसे उच्च वर्ण और उच्च संस्कृतिमें उसके सफल प्रवेशकी सम्भावना!' (पृ. १६२), नागेश कांबलेके चरित्रका ही एक दूसरा रूप उसके मित्र जगदालेके रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। नागेश अन्तर्मुखी है तो जगदाले नितान्त बहिर्मुखी! संकोच तो उसमें हैही नहीं। नागेश वैशालीको पानेसे असमर्थ रहताहै पर जगदाले चटपट श्रीमती सरोजनी प्रधानतक पहुंच जाताहै, उससे विवाहके

---

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २६५; क्रा॰ ८१; मूल्य : ३३.०० रु.।

लिए तैयार हो जाताहै, श्रीमती प्रधानको भी तैयार कर लेताहै कि वे श्री प्रधानको छोड़ देंगी।

दलित वर्गका ही एक और चेहरा उभारा गयाहै भगवानके रूपमें। वह निहायत बड़बोला, लड़ाका और खोखला चरित्र है। लेकिन दलितोंके लिए उसकी लड़ाई है वजनदार। हजारों पीढ़ियोंसे उसकी पीढ़ीपर जो अत्याचार होरहेहैं, उनका प्रतिकार वह एकबारगीही कर डालना चाहताहै। लड़ाई-झगड़े, गाली-गलौज, यहांतक कि मारपीटसे भी उसे कोई परहेज नहीं है। वह खुलकर झूठ बोलताहै, उन अत्याचारोंकी दुहाई देताहै जो उसने स्वयं तो नहींही झेलेहैं। पर इससे क्या फर्क पड़ताहै? उसके पुरखे तो इस त्राससे गुजरेहैं। वह जानताहै कि जल्दी न्याय पानेका जो मार्ग वह अपना रहाहै उससे फायदेकी बजाय नुकसानभी होसकताहै, सरकारी और सामाजिक दमनचक्र उसके वर्गके अस्तित्वको खतरेमें भी डाल सकतेहैं, पर यह खतरा उठाना उसे मंजूर है। वह साफ कहताहै—''गुण्डागर्दीके सहारेही कुछ किया जा सकताहै, यह मेरी प्रबल धारणा बन चुकीहै। मैं अपने ढंगसे स्थितिसे निपटना चाहताहूं। कोरे भाषणों, नारों, चर्चाओं या लेख लिखनेसे कुछ नहीं होनेका। मेरे प्रयत्नों से दीवार भलेही न ढहे, उसका पलस्तर तो उखड़ही सकताहै। एकाध ईंटभी खिसक सकतीहै।'' (पृ. १६५)। पर इन्हीं दलितोंमें से उठकर मन्त्री बन गये भाऊ साहब का सोच उसके विपरीत है। वस्तुतः सोचका यह अन्तर स्वाभाविकभी है। भाऊ साहबको सब कुछ मिल गयाहै, वे क्यों उत्तेजित हों? भगवानको कुछभी नहीं मिलाहै, वह चुप कैसे रहे? भाऊ साहब भगवानसे कहतेहैं, जो कुछ हमें मिल रहाहै उसे इत्मीनानसे ग्रहण करें, मारपीट उचित नहीं क्योंकि बम्बईमें भलेही यह चल जाये, गांवोंमें उसका परिणाम अपनेही लोगोंको भुगतना पड़ेगा। भाऊ साहब दो टूक कहतेहैं—''हम बीस प्रतिशत लोग अस्सी प्रतिशतकी छातीपर मूंग दलनेकी कोशिश कर रहेहैं। कच्चा खा जायेंगे वे हमें। पानीमें रहकर मगरसे बैर नहीं किया जाता। (पृ. १०३) इसी बातको दूसरी तरफ से यानी सवर्णोंकी तरफसे भी कहलाया गयाहै। पुलिस इन्स्पेक्टर शिन्दे भगवानके साथियोंसे इसीलिए दुर्व्यवहार करताहै कि उससे कम वरिष्ठतावाला एक धेड़ (हरिजन) इन्स्पेक्टर पदोन्नतिकी दौड़में अपनी जातिकी वजहसे आगे निकल गयाथा। यानी भाऊ साहबकी बात सही है। यह लेखककी पक्षधरता है। मन्त्री बनकर भी भाऊ साहब जातिगत हीनता-बोधसे मुक्त नहींहैं। लेखकने बहुतही खूबसूरतीसे यह बात उभारी है। वे नागेशसे अपनी पत्नीको मिलवातेहैं। ''तुमको तो पता होगाही, वह ब्राह्मण है।'' भाऊ साहबने अत्यन्त गर्वके साथ कहा (पृ. १७७)। इस तरह भाऊ साहब, नागेश, भगवान ये तीनों दलित अपनी मानसिकतामें समानान्तर हैं—तीनों उच्चवर्गीय स्त्रीके सामने अपना कद छोटा महसूस करतेहैं। जगदालेभी प्रेम उच्चवर्गीय स्त्रीसे ही करताहै।''

दलित राजनीतिमें भगवान और राजापर लेखकका ज्यादा ध्यान है। राजाका विद्रोह किन्हीं सिद्धान्तों या सोचपर आधारित नहीं है। वह शुद्ध रोमाण्टिक विद्रोह है। उत्साह तो उसमें है पर उसके पीछे ठोस वैचारिक आधार नहीं है। वह तो भीड़में शामिल एक अनाम चेहरा मात्र है। ''मेरे अकेलेकी पढ़ाईसे क्या होनाहै? मुझे कमाई नहीं करनी, उधर हमारे हजारों भाई-बहन आये दिन अन्याय और अत्याचारके शिकार हो रहेहैं और मैं मराठी व्याकरणके पाठ पढ़ता रहूं? मुझसे नहीं होनेका यह···भलेही जान चली जाये।'' (पृ. १९८) और बेचारे राजाकी जान वास्तवमें चली जातीहै, एक आन्दोलनके दौरान।

राजाकी बहिन है इन्दु कोलटकर, एल. आई. सी. की कर्मचारी। वह एक तरहसे नागेशका स्त्री संस्करण है। अपनेमें सिमटी, संकुचित, दलित होनेके हीन-भाव से ग्रस्त! नागेशसे वह मनही मन प्यार करतीहै पर अपने प्यारको अभिव्यक्त करनेका साहस उसमें नहीं है। नागेश उससे बातचीत करना नहीं चाहता क्योंकि वह स्त्रीकी जातिकी है, और वह ''अपने उदास अतीतमें नागेशको ला खड़ा करतीहै!'' (पृ. २३) इसीलिए नागेश वैशालीपर मरताहै, पर उधरसे प्रोत्साहन न पा इन्दुका दैहिक समर्पण स्वीकार करताहै, हालांकि उस वक्तभी उसकी कल्पनामें वैशालीही होतीहै .. ''इन्दु जब उसके आलिंगनमें घुल रहीथी तो नागेश इन्दुमें वैशालीका चेहरा टटोल रहाथा।'' (पृ.२५५)। यह नागेशके चरित्रका संकोचही है कि वह समर्पणके बाद की इन्दुकी नग्नताको अपमानसूचक समझताहै। बेचारी इन्दुकी त्रासदी यह है कि वह जैसे-तैसे देह देकर नागेश को अपने दिलकी बात कहतीहै। यह अलग बात है कि

नागेश उसे सुनकर भी समझ नहीं पाता, पर नागेश उस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त कर पाता इससे पहलेही दंगेमें राजाकी मृत्यु होजाती है। यहीं उपन्यासभी खत्म होजाता है। पर खत्म करते-करतेभी लेखक एक करारी चोट करनेसे नहीं चूकताहै। राजाकी शवयात्रासे अलग होकर नागेश एक वातानुकूलित रेस्तरांमें जाकर बीयर-ह्विस्की का आदेश देताहै—और उपन्यास खत्म होजाताहै। वैसे, अगर उपन्यासका अन्त यहां न होकर आगे होता? तान बीचमें न टूटती तो क्या नागेश इन्दुको अपनाता? उसके चरित्रका ढुलमुलपन कोई साफ उत्तर नहीं देता। अच्छा ही हुआ उपन्यास यहां खत्म होगया।

कई दलित पात्रोंको एक साथ प्रस्तुतकर लेखकने अपने ढंगसे उस प्रश्नको उठायाहै, जो हमारे समयका एक उबलता-सुलगता प्रश्न है। जिन लोगोंपर सवर्णोंने सदियों अत्याचार कियेहैं, अब उनकी नियति क्या हो! उन्हें दी जानेवाली आरक्षणकी छूटसे उनका भला होरहाहै या नहीं? दलितोंका जो आन्दोलनकारी तबका है उसकी हकीकत क्या है? नौकरियोंमें आरक्षण, पदोन्नतियोंमें आरक्षण—इनसे इस तबकेके एक अंशका भला तो होरहा है पर उसकी प्रतिक्रिया शेष लोगोंपर क्या है? स्वाभाविकही है कि इससे उनके हक मारे जारहेहैं। जिनके हक मारे जातेहैं, वे अपने पुरखों द्वारा किये गये अपराधोंकी सजा भुगतनेमें आनाकानी करतेहैं। उधर जिन्हें थोड़ी बहुत सुविधाएं मिल रहीहैं उनके दो हिस्से हैं—एक वह जिन्हें खूब सुविधाएं मिल गयीहैं, वे दूसरोंसे आग्रह करते हैं कि वे धैर्य रखें। जिन्हें कम या बिल्कुलही सुविधा नहीं मिलीहैं, वे तत्काल सब कुछ पा जाना चाहतेहैं। जीवनके और-और क्षेत्रोंकी ही तरह नेतृत्व यहांभी गलत हाथों में है। उन लोगोंके हाथोंमें जो आन्दोलनके नामपर जुटाये गये धनसे खुद मजे उड़ातेहैं, जिनके पास कोई वैचारिक आधार और सुचिन्तित रणनीति नहीं है। परिणाम वही है जो इस उपन्यासमें है।

मैं नहीं जानता कि स्वयं उपन्यासकार किस वर्गसे है? वह दलित हैं या नहीं। पर मुझे बराबर यह लगा कि उसकी सहानुभूति दलित वर्गके साथ नहीं है। यह सही है कि आजका अधिकांश दलित वर्ग त्रिशंकुकी जिन्दगी जी रहाहै, पर क्या यह पूर्ण सत्य है? क्या दलित वर्गमें भी कुछ लोग ऐसे नहीं हैं जो सही सोच रखतेहैं? क्या उस वर्गका कोई पात्र उपन्यासमें नहीं होना चाहियेथा? उपन्यासकारने वैशाली या श्रीमती प्रधानपर ज्यादा ध्यान तो नहीं दियाहै, पर इतना सावधान वह जरूर रहाहै कि उनके चरित्रपर कोई आंच न आजाये। वैशाली अपने हालमें मस्त महिला है और नागेशको एक सीमासे आगे बढ़नेसे रोक देतीहैं, यानी वह 'सच्चरित्र' है। श्रीमती प्रधान अपने पतिसे उपेक्षिता है इसलिए जगदालेसे उसकी निकटता अनुचित नहीं है। रही बात ताईकी, सो वह तो पूरी तरह कलाकार है भावुक, बेहद मानवीय। यानी सवर्ण सब उजले, दलित, सब काले।

शिल्पके लिहाजसे उपन्यास बेदाग है। बल्कि बहुत सफल और कलात्मक। पत्रकार लेखकके पास सूक्ष्मदर्शी, खोजी दृष्टि और ऐसी भाषाहै जो सरल, सहज, सुबोध होकर भी सब कुछ कह देनेमें समर्थ है पर दृष्टि उसकी पक्षपातपूर्ण है—यही मेरी शिकायत है। मैं फिर जोर देकर यह बात कहना चाहताहूं कि दलित वर्गकी त्रिशंकु मानसिकता व स्थितिके यथार्थसे मैं असहमत नहीं हूं पर मैं यहभी मानताहूं कि इस वर्गमें कुछ लोग इस स्थितिसे ऊपर उठे हुएभी हैं। वे कैसे ऊपर उठें और उनका उठना कितना सार्थक है, अगर यह बातभी उपन्यासमें होती तो शिकायत नहीं होती कि लेखक दलितोंके प्रति असहानुभूतिशील है। फिरभी, बावजूद इस शिकायतके, उपन्यास बेहद-बेहद पठनीय है, मननीयभी।

प्रकाश भातम्ब्रेकरका अनुवाद ऐसाहै कि यदि उल्लेख न होता और अरुण साधु मराठी रचनाकारके रूपमें सुपरिचित न होते तो उपन्यासको अनूदित समझाही नहीं जाता। यही अनुवादकी सफलताभी है।□

तीसरे शहरकी तलाश[1]

उपन्यासकार : गिरिराज शाह

समीक्षक डॉ. रामजी सिंह

प्रस्तुत उपन्यास, अपनी रचना-सामग्रीके जुटानेमें एकतरफ जहां मनोवैज्ञानिक दृष्टिका परिचय देताहै, दूसरी ओर अभिव्यक्तिको कलात्मक बनानेमें संवेदनात्मक सूझ-बूझका संकेत। इसमें न तो कोई क्रमबद्ध कथानक है और न किसी प्रभावशाली नायकके व्यक्तित्वकी खोजही एक आंतरिक-जीवन-सत्ताकी

१. प्रकाशक : संजय बुक सेंटर, के-३८/६ गोलघर, वाराणसी। मूल्य : १२·०० रु.।

प्राप्तिकी दिशामें उपन्यास आगे चल पड़ताहै, केवल कुछ स्थितियोंको साथी बनाकर । लेखकीय-कौशल इन स्थितियोंके चयनमें ही है । ये दृश्य और स्थितियां सामाजिक गतिविधियोंसे संबद्ध हैं,जो लेखककी पैनी दृष्टिका संकेत करतीहैं । समाजमें घटित होनेवाली यावत् घटनाओंके प्रति कथाकार कितना सावधान है इसकी पुष्टि उसके द्वारा उठाये गये दृश्योंसे होतीहै । इन्हीं दृश्योंके बीच हमभी कहीं-न-कहीं खड़े हैं, इसका सहज बोध कराकर यह उपन्यास टूटते सपनोंका, डूबते हौसलोंका, नयी-नयी मनोग्रंथियोंका और एक थकान-भरी-आंतरिक-रिक्तताका भावपूर्ण दर्पण बन जाताहै । इन चित्रोंमें, कुछ नैतिक मूल्यों और अनिवार्य-आदर्शसंयमके साथ, उपन्यासकारकी उपस्थिति है इसी आदर्श और यथार्थकी टकराहट पग-पगपर दिखायी देतीहै और सामाजिक-धरातलपर पहली बार अपनेको प्रतिष्ठित करनेकी आकांक्षा बल पकड़ती हुई दीखतीहै । यही है, आजके समयकी पहचान, जहां मानवीय संबंधोंमें एक विद्रूपता है और जिसे आजका सभ्य मानव पग-पगपर झेल रहाहै, लगन और परिश्रमसे लक्ष्यतक पहुंचते-पहुंचते वह किसी अपरिहार्य नियतिका शिकार होजाताहै । आलोच्य उपन्यास, इस प्रकार उन सभी प्रश्नोंसे जूझताहै, जो सामाजिक-विषमताके मुख्य कारण हैं और जिनपर अनादि कालसे अंगुली उठ रहीहै, उठी हुईहै लेकिन समाधान न तब दिया जासका और न आज यहांही । बस, एक द्वन्द्वकी स्थिति सबके भीतर छिपी हुईहै, जिसकी पीड़ा सहते रहनाहै या मुक्तिके प्रयासमें, इस पीड़ाको और गहराते रहनाहै ।

उपन्यासका कथा-फलक बहुत छोटा है । समयका फैलाव नहीं है और न पात्रोंकी ही बहुलताही है । केवल इन्द्रिय-संवेद्य-स्थितियोंकी समायोजनाहै, जो पाठकोंको बाह्य जगत्से अंतर्जगत्में ले जाकर मानसी घात-प्रतिघातोंका दर्शन करातीहैं । हृदयेश, कथानायक है, पढ़ा-लिखाहै, आधुनिक युवा पीढ़ीका प्रतिनिधि है और नलिनीका प्रेमी है, किन्तु उसका पालन-पोषण एक संकीर्ण-विचारधारासे घिरे परिवारमें होताहै । विमाताका कोपभाजन बना रहताहै, जिससे उसके व्यक्तित्वका एकांगी विकास होताहै, किन्तु इस विषम पारिवारिक-वातावरणमें, प्रेमकी एक ऐसी नैतिकता उसमें पैदा होतीहै, जिसके लिए पग-पगपर उसे लांछित-अपमानित होना पड़ताहै पर सूलीपर चढ़कर भी उसे छोड़ नहीं पाता । नलिनी और सरोजसे संबंधित प्रेम-प्रसंग इसके प्रमाण हैं । उसका विद्यार्थी-मन नलिनीको प्राप्त करते-करते अदृष्टके हाथों धोखा खाताहै तो कस्टम अधिकारी वाला मन सरोजके लिए नौकरीसे त्यागपत्र तक देताहै किंतु उसे न तब सुख-शांति मिली और न अब इस परिस्थितिमें ही । एक मनोवैज्ञानिक संकट झेलता ऊब-उदासीके सागरमें डूब जाताहै । उसके कुण्ठित-विधुर-मनके, मनोविकारोंको परखनेमें कथाकार मानव-मनका चितेरा बन जाताहै । मनोविकारों और मुख मुद्राओंको पढ़नेमें लेखक कितना दक्ष है, इसका परिचय तो स्थान-स्थानपर मिलताहै किन्तु सोनेकी तस्करीकी अभियुक्त सरोजको पकड़नेमें, कस्टम-अधिकारीके रूपमें हृदयेशकी अपने दायित्वके प्रति जागरूकता, लेखककी सामाजिक-क्रियाशीलताकी याद दिला देतीहै, जो उसके पद-प्रतिष्ठाके सर्वथा अनुकूल है ।

मानसिक-संघर्ष या सोच-समझकी विभिन्न स्थितियोंको सजानेमें कथाकारने अपनी दृष्टिगत-सूक्ष्मताका परिचय दियाहै—पत्नीकी नासमझीके प्रति ओंकारजी एक तनावका अनुभव करतेही रहतेहैं, तबतक चायसे होंठका जल जाना, बूढ़े पिताजी मृत्युके बाद नलिनीकी अनागत-चिंता और तब एकाएक हृदयेशकी ओरसे मिलनेवाली अप्रत्याशित सहायता, नलिनीको लेकर हृदयेशके माता-पिताकी ऊभ-चूभ तबतक तिनकेका सहारा बनकर हृदयेशकी उपस्थिति, ओंकार और सत्येन्द्रका नाश्तेके टेबुलपर नलिनी-हृदयेशके विवाहका निर्णय और तबतक हृदयेशकी मांकी उपस्थितिसे भूचालकी स्थिति जैसा संकेत, हृदयेशका नौकरीकी तलाशमें शहर छोड़कर बाहर जानेकी तैयारी, तबतक मौसीके साथ सरस्वतीका आगमन तथा मेहमानोंको छोड़कर हृदयेशका घरसे निकल जाना, और सरस्वतीके पिछड़ेपनपर ओंकारजीकी खीझ, उनकी पत्नीकी अपनत्वभरी दृष्टि और पतिका ठहाका—आदिको जिस ढंगसे कथाकारने सजाया-संवारा है उससे आजके युगका तनाववाला वातावरण साफ होजाताहै । और उसके शिल्पमें एक नाटकीयताकी अभिवृद्धि होतीहै । ये दृश्य, पाठकोंको एक जागरूक दर्शककी तरह जगाये रखतेहैं, मानो वह उन्हेंभी इन सामाजिक-तनावपूर्ण-गतिविधियोंको देखनेमें प्रवृत्त करना चाहताहै । इन स्थितियोंको प्रभावी बनानेमें और इस उपन्यासको सफल बनानेमें संवादोंका विशेष योगदान है । स्थि-

तियोंको जोड़नेमें, समयको समेटनेमें और मानव-संबंधोंकी यथार्थताको नये संदर्भोंमें टटोलनेमें —ये संवाद कारगर सिद्ध हुएहैं । इसप्रकार, परिवर्तित घात-प्रतिघातोंको रचनात्मक रूप देनेमें, कथाकारने जिस शिल्पका सहारा लियाहै, उससे यह कृति आद्यंत पठनीय हो गयीहै । □□

कहानी संग्रह

प्रतिदिन[1]

लेखिका : ममता कालिया
समीक्षक : गोविन्दप्रसाद.

हिन्दीकी कथा-लेखिकाओंके संबंधमें अक्सर यह बात कही जातीहै कि उनका रचना-संसार घर-परिवार की समस्याओंतक ही सीमित रहताहै । इससे आगे उनका जीवन-बोध नहीं जाता । वस्तु जगत्के सम्पूर्ण-ज्ञापनकी ओर उनका ध्यान नहीं गयाहै। ममता कालियाका चौथा कहानी-संग्रह प्रतिदिन भी इसका अपवाद नहीं हैं । दस कहानियोंके इस संकलनमें अधिकतर निम्न मध्यवर्गीय परिवारकी घुटनमें जीनेवाली शिक्षित नारीकी छटपटाहटका ही चित्रण हुआहै । यह वैयक्तिक आशा-आकांक्षाओंके तलमें डूबती-उतरती रहतीहै । परिस्थितियोंके अपने अनुकूल न होनेसे वह भीतरही भीतर एक अनोखी विकलता महसूस करती रहतीहै । उसे लगताहै कुछभी उसके अनकूल नहीं है । वह तो सिर्फ घुटनमें जी रहीहै । संवेदनशीलता और वैचारिक उन्मुक्तताका उसके लिए कोई कोई नर्थ नहीं है । लेकिन यह मध्यवर्गीय भाव-बोध कृत्रिम रूपसे पाठकके सामने आताहै । बातें इतनी ज्यादा ओवरटोन्समें कही गयीहैं कि उनमें बनावटीपन आ गयाहै । रचनाके मूल कथ्यसे लेखिकाकी भावनात्मक सम्पृक्ति न होनेके कारण वस्तुही नहीं पात्रोंकी अपनो प्रकृतिभी मध्यवर्गीय चरित्रकी दुर्बलता बनकर पाठक तक पहुंचतीहै, जबकि लेखिकाका यह लक्ष्य कदापि नहीं होता । उनकी छटपटाहट मार्मिक होनेके बजाय मसनुई लगतीहै । एक-दो कहानियोंको छोड़कर यह दोष प्रायः सभी कहानियोंमें आ गयाहै । काली साड़ी, लैलामजनू, वसन्त : सिर्फ एक तारीख, ऐसीही कहानियां हैं । 'काली-साड़ी' में समस्या सखीको साड़ीकी भेंट देकर उत्सव पर्वकी प्रतीक्षा किये बगैर खिलखिलानेकी है, जबकि पतिका वेतन पिछले महीनेके बिल चुकाते-चुकाते समाप्त होजाताहै । ऐसी व्यक्तिगत सन-की पूर्तिमें जब बोनस साड़ीकी खरीदमें चला जाता है तो अपनी भावनाको कुचलना पड़ताहै । लेकिन यह कहानीका त्रासद-बिन्दु नहीं ओढ़ा हुआ सत्य है । पतिको संकट मोचन और 'शॉक एब्जार्बर' कहना भाषाके साथ खिलवाड़ है । इससे छटपटाहटका भाव व्यंजित नहीं होता ।'लैला मजनू'में भी कहानीकी गरिमा नहीं है। "रातके वक्त वे घर में करीब-करीब अपने पैदाइशी परिधानमें घूमते' (पृ. ८७), जीवन आगे बढ़ा तो बच्चे हुए । उन्हें होमवर्क कराना पड़ा । "झुंझलाहटके उस क्षणमें, न वह उसका मजनू रहता, न वह उसकी लैला" (पृ. ९०) घरमें हर चीजका अभाव । "दूध बहुत ढूंढा कहीं नजर न आया । मैंने दूधकी जगह थोड़ी मोहब्बत मिला दीहै । देखो पीकर ।" (पृ. ९२) ये जुमले हास्यास्पद हैं । व्यंग्य उनमें नहीं उभरता । किसी कहानीके नोट्स भलेही हों, किन्तु कथ्यकी कोई गहन भंगिमा अथवा अनुभूतिकी तरलता इनमें नहीं है । सिर्फ चुस्त फिकरे हैं । इसी प्रकार 'मन्दिरा' भी मनोविज्ञानका थीसिस तो होसक्तीहै लेकिन कहानी अपनेमें ठस है। लगताहै तथ्योंको सजा-संवार दिया गयाहै । भावनाका रस उनमें से निचुड़ गयाहै क्योंकि "मन्दिरा उम्रसे अड़तीस, जिस्मसे अट्ठाइस और स्वभावसे अट्ठारह की ठहरतीहै ।" (पृ. ९३) स्वाभाविक है कि

[1] प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८, नेताजी सुभाष मार्ग ,नयी दिल्ली-२ । पृष्ठ : ११८; डिमा. ८३; मूल्य : २०.०० रु. ।

मैन लफंगा हैं, जाने कहां-कहां ताक-झांकमें लगा रहताहै।" (पृ. ९८) इसीलिए उसे लगता है, "वह पतिके नहीं पिताके साथ रह रहीहै।" पतिभी उसके मित्रको देखकर रह जातेहैं, "ये अन्दर आये, एक मिनटको मुझे लगा अपना शिशिर आ गयाहै···अभी तो छुट्टियोंमें दो महीने बाकी हैं।" (पृ. १०१) यह नारी मनकी छटपटाहटका मुद्दा तो है पर वह घटना एवं तथ्योंतक सीमित नहीं है। वह केवल कथन मात्रभी नहीं हैं। रचनात्मक स्तरपर वह वस्तु-संयोजनसे मुखर होताहै। अत: वस्तु अवधारणामें संवेद एवं अनुभूतिकी घुलनशीलताके अभावमें पाठकको चौंकाताभर है।

'माँ' में भारतीय नारीके प्रति परम्परागत दृष्टि-कोणका यथार्थ अंकन हुआहै। पति कालेजमें पढ़ता हो तो पत्नीके जीवनका आधा भाग प्रतीक्षामें बीतना स्वाभाविक है। फिर नजर ऊपर उठाये तो 'चुप छिनाल लुगाई' जैसा व्यंग्य सुनना पड़े। उसपर रातदिन कामकी चक्कीमें पिसना। लेकिन 'माँ में यह सब सहनेकी एक बेहया बहादुरी थी' जैसी भाषा कहानीमें चित्तको रमाती नहीं है। केवल अतीतकी समस्याका बोध कराके रह जातीहै। वर्तमानमें उसकी छाया 'बसन्त: सिर्फ एक तारीख'में दिखायी देतीहै। चन्दा घरके दम-घोटू वातावरणसे वसन्तका आनन्द लेनेके लिए बाहर निकलतीहै। और बरसोंसे दबी नौकरी करनेकी साध लेकर अपनी चिरपरिचित प्राचार्याके पास चली जातीहै। उसे देखकर प्राचार्या पुरानी अध्यापिकाको इसलिए जवाब दे देती है,क्योंकि वह गर्भावस्थाके अन्तिम चरणमें होनेसे छुट्टी चाहतीहै। बसन्त झुलसकर मर गया। निस्सन्देह लेखिकाके पास नारी उत्पीड़नके मार्मिक प्रसंगोंकी खूब पहचान है। लेकिन उनको कहानीका रूप संवारनेमें सफलता नहीं मिलीहै। लगताहै तथ्योंको सगठित करके रख दिया गयाहै। कहानी 'मेड टू आर्डर' है। अनुभूतिकी प्रगाढ़ता एवं वस्तुकी कलात्मक संयोजनाके अभावमें कहानी गढ़ी हुई लगतीहै।

नयी पीढ़ीकी किशोरियोंमें उगती स्वतन्त्रता एवं वैचारिक उन्मुक्तताकी पहचान'तोहमत'में लक्षित होतीहै। मामूली-सी स्वतन्त्रता लेनेपर तोहमत लगतीहै। पास-पड़ोसमें उनका आना जाना बन्द होजाताहै। लगताहै कहानीमें विचारको 'इलस्ट्रेट' किया गयाहै। कथा-प्रवाहकी स्वाभाविकताका इसमें हनन हुआहै। इन कमियोंके बावजूद इस संग्रहमें 'आपकी छोटी लड़की,' 'लड़के' और 'एक जीनियसकी प्रेमकथा' कुछ अच्छी कहानियां हैं। इनमें भी 'आपकी लड़की' संग्रहकी सर्वश्रेष्ठ रचना प्रतीत होतीहै। इस कहानीमें दरअसल एक नहीं दो लड़कियोंका तुलनात्मक रेखांकन हुआहै। एक स्कूल जानेवाली अन्तर्मुखी लड़की है तो दूसरी कालेज पढ़नेवाली बहिर्मुखी। वह छोटी बहनको अपना अर्दली बनाकर ठस्सेसे चलतीहै। परीक्षामें अधिकतम अंक लेतीहै। गायन, नृत्य, अभिनय, टेबिलटेनिस आदि में इनाम जीतकर लातीहै। लड़केभी उसे देखकर रश्क करतेहैं, उसके दीदारका इन्तजार करतेहैं। लेकिन वह न घबरानेवाली एक बिल्कुल अपटूडेट, मॉड लड़की है। उसके विपरीत टुनियांसे लाख बार चाय बनवाओ, पानी मंगवाओ, सब्जी कटवाओ, बाजार भेजो, चौबीस घंटे काम करवाओ, नौ कामोंमें से दस करवा लो परन्तु टुनियां विचलित होनेवाली नहीं है। मां कितनाही धमकाये, सराहना करे, मान करे, कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। पिताके एक लेखक मित्रने उसकी आवाजको पहचान लियाहै—"आपकी लड़कीकी आवाज बहुत अच्छी है इसकी आवाजमें एक संस्कार है। आजकल बहुत कम दिखायी देताहै।" (पृ. ४३) लगताहै इस संस्कारसे लेखिकाका साक्षात्कार हुआहै। शील-शालीनता, समर्पण भावना आदिमें एक निरपेक्ष चारित्रिक गुणको लेखिकाने जैसे अपनी अन्तरात्मा सौंप दीहै, उस गुणको जो परिभाषासे परे है। वह व्यक्तित्वके हर कोणसे दूसरेको प्रभावित करताहै। लगताहै लेखिकाका मन रेखाचित्रकी समायोजनामें पूरी तरह रमा हुआहै। इतना रमाहै कि वह कहानीकी कोटिमें पहुंच जाताहै। कहानीमें दो लड़कियोंके रेखाचित्र उकेरे गयेहैं लेकिन निगाह एकपर ही टिकीहै।जिसके प्रति अनुभूतिकी तरलता स्वाभाविक भावान्वितिपर पहुंचकर पाठकको प्रभावित किये बिना नहीं रहती।

रेखांकनकी प्रवृत्ति इस संग्रहकी अन्य कहानियोंमें भी पायी जातीहै किन्तु 'आपकी छोटी लड़की' के बाद 'एक जीनियसकी प्रेमकथा'में इसे रेखांकित किया जासकताहै। एक आई. ए. एस. के प्रतिभाशाली व्यक्तित्वकी गरिमा अपने सम्पूर्णमें कुछ इस प्रकार उभरकर सामने आतीहै कि वह उसकी पत्नीको 'रेमोफ्लेग' कर जातीहै। वही उसके अवसादका कारणभी बनतीहै। किन्तु लफ्फाजी और बौद्धिक आग्रहके कारण कहानी अपना प्रभाव नहीं छोड़ती।

'लड़के' आजके युवा वर्गका प्रतिनिधित्व करनेवाली रचना है। इसमें कालेजके छात्रोंकी दिशाहीनता, उद्दण्डता एवं लक्ष्यहीन कार्यकलापोंका उल्लेख करके उनकी शून्यवादी प्रवृत्तिपर व्यंग्य कियाहै। वे दूसरोंके परामर्शपर गंगा स्नानके बाद नारियल तोड़कर हड़ताल-पर जानेकी योजना बनाते, किन्तु गंगासे लौटते हुए एक सरकारी जीपको चुरा लातेहैं और जानसनगंजके चौराहेपर छोड़कर भाग जातेहैं। यह एक निस्सन्देह अच्छी कहानी है। देशमें फैली अराजक स्थितिकी ओर पाठकका ध्यान आकर्षित करतीहै।

कुल मिलाकर इन कहानियोंमें मार्मिक प्रसंगोंकी कमी नहीं है और न मध्यवर्गीय जीवनकी त्रासद-स्थितियोंके बोधका अभावही है। किन्तु तथ्योंको बोधगम्य बनानेके लिए वस्तु अवधारणासे सम्पृक्त भावनाको विस्तार न देपानेके कारण अधिकांश रूपसे ये कहानियां यथार्थका छायांकन छायाचित्र-सा मालूम होतीहैं। तथ्योंको सायास जोड़कर केवल लफ्फाजीके सहारे कहानी रचनाकी चेष्टा कीगयीहै। चुटकुलेबाजीके चुस्त फिक्रे प्रासंगिक न होनेके कारण कहानीके प्रभावको कम कर देतेहैं। भाषाके स्थूल प्रयोगसे भी बौद्धिक उन्मेषकी मात्रा बढ़ीहै। "उसे अपना आपा दिव्य महसूस होने लगा," 'वह बांदांकी बदतमीज गर्मीमें पड़ी भुनती रही' अथवा 'वह कविता, कल्पना और कोलतारकी सड़कसे घर पहुंचा' जैसे वाक्योंके सहारे पाठक कहीं पहुंचता दिखायी नहीं देता। फिरभी पूरा संग्रह पढ़ जानेपर मध्यवर्गीय जीवनके अनेक प्रसंग सामने आजातेहैं और सोचनेपर विवश करते हैं। □

नया तराना[1]

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल.

आकारसे पत्रिकानुमा इस पुस्तिकामें ११ कहानियां संकलित हैं। इसमें 'दैत्य वृत्रका संहार' नलिनीकांत गुप्त की, 'नैवेद्य' जयदीपकी 'नया तराना' और 'अनसुनी वाणी' अनु बेनकी तथा 'बधावे बज रहेहैं,' 'ऐसाभी होताहै 'गृह-प्रवेश' और 'अच्छा जीजी नमस्ते' कहानियां वन्दनाजी की है।

'नया तराना' शीर्षक कहानीमें कथानायक 'मैं' को संगीतके प्रभावसे सतोगुणमयी बन गयी मन:स्थितिमें एक दिव्य स्वर सुनायी देताहै कि भगवान्को भगवान्के लिए कोई नहीं चाहता, सब मतलबसे ही भगवान्को चाहतेहैं। जिस दिन सच्ची भागवत अभीप्सा पैदा होगी, उस दिन ऐसा तराना छिड़ेगा कि सारा निरानन्दमय आनन्दमय होजायेगा।। 'दैत्य वृत्रका संहार' 'नैवेद्य' 'बधावे बज रहे हैं' 'गृह-प्रवेश' आदि कहानियांभी श्रीअरविंदकी इसी दार्शनिक प्रतिपत्तिपर आधारित हैं कि भगवत्प्राप्ति की तीव्र अभीप्सासे भागवत उपस्थिति अनिवार्य होजाती है। लोक-चेतनाके ईश्वरोन्मुख आरोहणमें ही परमतत्त्वके अवरोहणकी स्थिति है। 'अनसुनी वाणी' में श्रीअरविंदका संदेश है—'नया सतयुग शुरू होरहाहै। यह सत्यका, सामंजस्यका युग होगा।' (पृ० २६) बाहरके कानोंके लिए यह वाणी भलेही अनसुनी हो, पर मानवकी अन्तरात्माने, धरतीने यह आवाज सुन लीहै। सतयुगका जागरण भीतरही भीतर अदृश्य रूपसे कुलबुलाने लगाहै।

'अच्छा जीजी नमस्ते' एक ऐसे हृदय-रोगीकी कहानी है जिसके आत्मिक आनन्दके सामने रोगकी शारीरिक यातनाएं अपनी सक्रियतामें भी निष्क्रिय एवं निष्प्रभ हो जातीहैं। शारीरिक अस्वस्थतामें भी वह अपने जीवनको स्वस्थ एवं प्राणवन्त बनाये रखताहै। यह कहानी असाध्य रोगियोंको आश्वस्ति तो देतीहै, पर क्षणिक; क्योंकि दुरन्त शारीरिक यातनाओंके बीच मुखपर प्रसन्नताकी आभा छिटकाना ऊंचे साधकोंके लिए भलेही संभव हो, सबके लिए संभव नहीं। फिरभी कहानी अपनी सीमित व्याप्तिमें भी प्रेरक है।

ऐतिहासिक कहानी 'लाखा फुलाणी' में एक ऐसे दानवीरको चित्रित किया गयाहै, जिससे याचक बे-मौसम के पीलू मांगताहै और उसके सतसे पीलू पक उठतेहैं। कहानी कलाकी दृष्टिसे यह एक बड़ी साफ-सुथरी कहानी है।

उदात्त जीवन-मूल्योंसे जुड़ी होनेसे ये कहानियां अपनी असंभाव्यतामें भी प्रभावित करतीहैं। तर्क इनकी प्रतिपत्तियोंको नकारताहै, पर चेतना है कि इन्हें सीनेसे लगा लेना चाहतीहै। कोई चीज है इनमें, जो गहराईसे छूतीहै लेकिन पकड़में नहीं आती। जिस धरातलपर ये चलतीहैं, वह आजकी कहानियोंसे एकदम भिन्न है, पर इनके चलनेका ढंग उनके बिल्कुल मेलमें है। अर्थात् कथ्य अवश्य अध्यात्मोन्मुख है, पर कथन-प्रकार पूरी तरह

---

१. प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२। पृष्ठ : ३२; जेबी दुगना ८१; मूल्य : ३.०० रु.।

व्यावहारिक । हां, कुछ कहानियां (दैत्य वृत्रका संहार, अनसुनी वाणी) ऐसीभी हैं जिन्हें कथोत्थ निबन्ध या गद्यकाव्य जैसा कुछ कहा जासकताहै, पर कहानी नहीं। □□

काव्य संकलन

नीमकी भूमिका अलग है[२]

कवि : मोतीलाल जोतवाणी

समीक्षक : श्याम विमल

पच्चीस कविताओंके इस पहले और छोटे संकलनको देखकर एकाएक यह लगताहै कि कवि प्रौढ़ वयतक पहुंच चुकाहै, उसने इससे भी ज्यादा कविताएं लिखी होंगी, किन्तु संकलनकी दृष्टिसे चयन करते वक्त उसने निर्ममता जरूर बरती होगी । इस कारण यह कविता-पुस्तक चुनिंदा कविताओंके बूतेपर छोटी व खूब सघन बनीहै ।

इन सघन कविताओंपर सुविधासे बात करनेके लिए केवल वहीं सेंध लगायी जासकतीहै जहां खुद कवि अपनी कविताके बारेमें कवितामें ही वक्तव्यनुमा पंक्तियां दे देताहै या जहां गारा कमजोर लगा होताहै ।

यहां दो स्थल ऐसे मिलतेहैं जहां निजकी कविताओंके बारेमें वक्तव्य-सा है, वहभी दो प्रकारका । एकमें है अपनी कविता-सृष्टिमें बरती गयी तथ्यपरक ईमानदारीकी घोषणा और दूसरे स्थलपर है कविताकी रक्षामें आलोचकीय दखलंदाजी न करनेकी प्रकारांतरसे चेतावनी ।

पहले स्थलकी बात पहले कर लीजाये । जैसे संग्रहकी दूसरी कविताकी शुरूआत होतीहै इन पंक्तियोंसे—"मेरी कविताएं/आत्मसंघर्षके नतीजेमें/आत्मसाक्षात्कार है ।"

कविकी इस उद्घोषणामें सच होसकताहै क्योंकि आजकी कविताकी ताकतको ज्यादा विश्वसनीय बनानेके लिए कविको मजबूरन सशस्त्र होकर 'टूटे रथका पहिया' उठाना पड़ताहै । और इसी कविताकी अन्तिम पंक्तिभी—'आत्म-साक्षात्कारमें पूरा सच नहीं होता' एक और सच्चाईका नमूना पेश करतीहै । दरअसल 'अलिफ जोड़नेसे' नामक इस समूची कवितामें कविताको लेकर वक्तव्य है. यहां सिर्फ सुविधार्थ शुरू व अंतकी पंक्तियां उद्धृत कीहैं, हालांकि कहनेको यहभी कहा जासकताहै कि इस समूची कवितामें जीवन और साहित्य दोनोंके बारेमें दार्शनिक 'एप्रोच' समझमें आनेवाले साधारण बिम्बोंकी मार्फत बनीहै ।

दूसरे स्थलपर कविताकी रक्षामें आलोचकीय दखलंदाजी न करनेकी चेतावनी होनेकी बात मैंने कहीहै । यह स्थल है उनतालीसवें पृष्ठकी कविता 'नये मानदण्ड' की आरंभिक पंक्तियाँ । वे ये हैं—'मेरी रचनामें/भाषा शैली/और उद्देश्यके पुराने रूप ढूंढ़ना बेकार है ।'

क्योंकि कवि डॉ. मोतीलाल जोतवाणी मूलतः कथाकार हैं इसीलिए उन्होंने अपनी कथाओंपर भी इसी कवितामें इसी तरहकी आलोचकीय जांच-पड़तालको 'बेकार' घोषित कियाहै, जैसे—'और बेकार है/मेरी कथामें कथाका पारंपरिक सिलसिला खोजना ।'

डॉ. जोतवाणीने इस निवेदनमें वस्तुतः काव्य-शास्त्रीय मानदंडोंसे अपनी कविताओं और कथाओंको परखनेवालोंके प्रति संदेह व्यक्त कियाहै, या उन मानदंडोंको नकारा घोषित कियाहै ।

यदि डॉ. जोतवाणी इस निवेदन द्वारा समूची समकालीन कविता और कथाको पुराने मानदंडोंसे सुरक्षित कराना चाहतेहैं तब तो 'सत बचन' अन्यथा निजकी कविता-कथाकी सुरक्षामें विशेषीकरणकी मुद्रा अपनाना एकाकी गर्वोक्ति कहलायेगी ।

२. प्रकाशक : राजधानी प्रकाशन, बी-७/७४, सफदरजंग इंक्लेव एक्सटेंशन, नयी दिल्ली-२९ । पृष्ठ : ४८; मूल्य : १५.०० रु. ।

अब प्रस्तुत कविताओंको परखनेके लिए यदि डॉ. जोतवाणीके उक्त निर्देशोंको मद्‌देनजर रखा जाये तो ये कविताएं उस 'एक आम आदमी या एक आम औरत' के बारेमें होकर भी आम तक संप्रेषित नहीं होतीं जिसका जिक्र 'नये मानदंड' कवितामें ही हुआहै। क्योंकि इन कविताओंकी सघनता, जिसे मैं तारीफमें कह रहा हूं, उसे पैठने नहीं देती।

इन्हें समझनेके लिए बौद्धिक होनेकी जरूरत है और बार-बार पढ़नेकी जरूरत है और स्वस्थ होकर काव्यमय वातावरणमें पढ़ने-समझनेकी जरूरत है। वस्तुत: इस संग्रहकी कविताएं जागरूक पाठकमें ऐसी समझ तैयार करतीहैं जिससे कविताएं समझदारीसे पूर्ण लगें।

ऐसी समझके साथ मैं एकही कविताको लेकर पूछना चाहताहूं, जिसे पढ़कर कविकी समझपर संदेह तो कतई नहीं, शाब्दिक अतिव्याप्ति उससे हुई प्रतीत होतीहै, वह है एक छोटी कविता—'मुस्कराहट'। पुस्तककी दूसरी भूमिकामें कवि दिविक रमेशको अन्य सात कविताओंके साथ यहभी विशेष रूपसे अच्छी लगीहै—

मुस्कराहट

इस-उससे मुस्कराकर मिलताहूं:
खासकर
—किरयानेवालेसे
ताकि जरा छूटसे सौदा तोलकर दे;
—सब्जीवालेसे
ताकि वह औरोंकी निस्बतमें जरा कम दाम ले।

× × ×

और फिर
इस तरह खर्च कीगयी मुस्कराहटोंके बाद
कोईभी मुस्कराहट
मेरे घर-परिवारके लिए नहीं बच पाती।

इस कवितामें जिस मुस्कराहटका जिक्र है वह नितांत व्यावसायिक और चापलूस मुस्कराहट है, जिसकी मार्फत सौदा-सब्जी खरीदनेमें उपभोक्ताका अपना मतलब पूरा होसकताहै। लेकिन 'इस तरह खर्च कीगयी मुस्कराहटोंके बाद' घर-परिवारके लिए मुस्कराहटका न बच पाना क्या इस बातको ध्वनित नहीं करता कि 'घर-परिवार' के लिएभी मतलबकी मुस्कराहटकी जरूरत रहतीहै?

हां, व्यावसायिकताकी आदतोंमें पड़ जानेसे यदि घरेलू मुस्कानमेंसे सहृदयता छिन गयीहै तो बात अलग है। कवि शायद कहनाभी यही चाहताहै, जो शाब्दिक जल्दबाजीमें स्फीत होगयाहै।

वैसे पूरे संग्रहकी कविताओंमें विविधता मुझे पसंद आयीहै और कविकी परिपक्व दृष्टिसे अलग-अलग भूमिकाएं रोशन हुईहैं। □

देशके लिए[1]

कवि : इन्दरराज वैद 'अधीर'

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल.

'राष्ट्रमंगल' के बाद यह कविका दूसरा राष्ट्रीय कविता-संग्रह है। इसमें कविकी सन् १९६२ से १९८१ के बीच लिखी गयी ४१ कविताएं संगृहीत हैं। 'वर दो माता वर दो' शीर्षक प्रथम स्तुतिपरक कवितामें कविने मां सरस्वतीसे याचना कीहै कि वह हम भारतवासियोंको ऐसी राष्ट्रीय चेतनासे उर्जस्वित् करे कि हमारा देश भारत एक बार फिर विश्ववंद्य होजाये। देशके प्रति यह भक्ति-भावनाही इस संग्रहकी मूल संवेदना हैं, जिसे लेकर कवि कहीं सामाजिक विसंगतियोंको निर्मूल करनेका आह्वान करताहै, तो कहीं आर्थिक विषमता और शोषणके विरुद्ध प्रचंड आक्रोशकी अभिव्यक्ति; कहीं वह बापू, नेहरु, लालबहादुर शास्त्री, वर्द्धमान महावीर, तुलसी, तमिलके महाकवि तिरुवल्लुवर, मलयाली महाकवि आशान आदि राष्ट्रनायकोंके प्रति श्रद्धा-सुमन समर्पित करताहै, तो कहीं राजस्थान, तमिल, केरल आदि प्रदेशोंका राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यमें महिमा-गान। अनेक उद्‌बोधन गीतभी हैं जिनमें कविकी ओजस्वी वाणी राष्ट्रोत्थानके लिए देशवासियोंको उद्‌बुद्ध और प्रबुद्ध करतीहै।

कविको पूर्ण विश्वास है कि जबतक देशमें उसकी अस्मिता और वीरता शेष है, उसकी एकता और अखंडता अटूट और अपराजेय है। भारतकी सांस्कृतिक एकताको रेखांकित करता हुआ वह कहताहै—'एक राहके हैं मीत,मति एक प्यारके/एक बागके हैं फूल,फूल एक हारके/देखतीहै यह जमीन, आसमान देखता /अनेकतामें एकता, हिन्दकी विशेषता।' (पृ. ३७) राष्ट्रभाषा हिन्दीकी अवमानता और स्वतंत्र राष्ट्र भारतमें अंग्रेजीका वर्चस्व कविकी राष्ट्रीय चेतनाको विक्षोभसे भर देताहै। जिस

---

१. **प्रकाशक : जनहित प्रकाशन, गली कसेरान, मंडी रामदास, मथुरा (उ. प्र.)। पृष्ठ : ८०; क्रा. ८१; मूल्य : ४.०० रु.।**

हिन्दीने स्वतंत्रता-संग्रामको वाणी दी, कैसी कृतघ्नताकी बात है कि देशके स्वतंत्र होनेपर उसे भुला दिया गया— 'स्वतंत्रताके दीवानोंने आज त्यागदी मर्यादा /राष्ट्र-भारती के अर्चनमें प्रस्तुत करतेहैं बाधा ।' (पृ.१८) उसे पूर्ण विश्वास है कि 'कश्मीरसे केरलतक अब भाषा इक हिन्दी होगी / भारत माताके माथेपर गौरवकी बिन्दी होगी।' (पृ. १९) राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति प्रेम-भावनासे प्रेरित एक तथ्यात्मक प्रांजल अभिव्यंजना और—सौभाग्य भारत-भूमिका साकार है हिन्दी / भावात्मक जन एकताका सार है हिन्दी । बोली नहीं सिर्फ, है दो-चार प्रदेशोंकी/ आसेतु हिमाचल प्रेमका गुंजार है हिन्दी ।' (पृ. २०)

कवि देशकी आजादीपर प्रश्नचिह्न लगाताहै कि 'यह कैसी आजादी है,' जिसमें धर्मके नामपर विग्रह, राजनीतिके नामपर दल-बदल और राष्ट्रीय शिक्षाके नामपर आजभी मैकालेकी विदेशी शिक्षा पद्धति प्रचलित है। यही नहीं, देशमें आजभी गरीबी है, बेरोजगारी है और समाज आजभी दहेज-प्रथाके गलित कुष्ठसे आक्रान्त है—'आंसू आहें तड़प रहीहै, यह कैसी बर्बादी है ? मुझे बताओ मेरे भारत, यह कैसी आजादी है ?' (पृ. १७) देशकी दुरवस्थापर यह तड़प और उसकी गौरव गरिमाके लिए एक उत्कट ललक इस संग्रहके वे दो तट हैं जिनके बीचसे देश-भक्तिकी स्रोतस्विनी प्रवाहित हुईहै।

जहांतक शिल्पका प्रश्न है, संग्रहकी अधिकांश कविताएं छन्दोबद्ध हैं,जोकि छन्दोविधानकी दृष्टिसे कहीं-कहीं ही त्रुटिपूर्ण हैं। जैसे २४ मात्रिक छन्दमें 'गर्वीले वीर जवानोंका नव अभियान चाहिए' (पृ. ४) यह २८ मात्रिक पंक्ति । 'अभिषिक्त होरहीहै रणचंडी मतवाली' (पृ. ४) के गतिभंगको 'रणचंडी अभिषिक्त होरही मतवाली' करके दूर किया जा सकताथा। फिरभी कुल मिलाकर मानना पड़ेगा कि कविमें अच्छा छान्दस कौशल है। कुछ रचनाएं विच्छन्दभी है, पर उनकी भाषा-शैली भावाभिव्यक्तिमें इतनी सशक्त है कि लयके अभावमें भी वे प्रभाव पैदा करतीहैं। राष्ट्रीय भावाभिव्यक्तिमें सांस्कृतिक मिथकीय उपकरणों तथा लाक्षणिक, व्यंजक और तत्सम शब्दावलीके यथोचित प्रयोगोंसे कविताएं प्राणवन्त और प्रभविष्णु होगयीहै।'वीर शूरमा भारतके' कवितामें 'सूरमा' के लिए 'शूरमा' खटकता है, पर संग्रहकी महनीयताको देखते हुए यह नगण्य है।

वस्तुतः यह संग्रह युवकोंके लिए तो प्रेरक हैही, वृद्धोंके लिए भी उष्ण रक्तका संदेशवाहक है। इसे देख कर आशा बंधतीहै कि आगे कवि अवश्यही राष्ट्रीय एकता और अखंडताके अपने काव्य पथपर औरभी अधिक तेजस्विता, ओजस्विता और मनस्विताको लेकर आरूढ़ होगा ।□□

हास्य व्यंग्य

दरवाजेपर दस्तक[1]

व्यंग्यकार : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

समीक्षक : डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी.

व्यंग्य लेखनके दरवाजेपर होनेवाली हर नयी दस्तक के कारण व्यंग्यके चरित्र और विस्तारके बारेमें नयी-नयी सम्भावनाएं जगने लगतीहैं ऐसा डॉ. सन्तोषकुमार तिवारीके सन्दर्भमें भी हुआहै, जिनकी ३३ व्यंग्य रचनाओंका पहला संकलन 'दरवाजेपर दस्तक' अब सामने है। अपने परिवेशसे किनाराकशी व्यंग्यकारका धर्म नहीं है और व्यंग्यकारका केन्द्रीय कार्य व्यंग्यकी तीक्ष्णतासे हमारी जड़ीभूत चेतनापर प्रहारकर कुछ स्पन्दन उत्पन्न करनाहै, इससे व्यंग्यकार डॉ. तिवारी भलीभाँति परिचित हैं। इसी कारण उनके व्यंग्य संकलनका वाचन महज वाचन नहीं बन पायाहै। यह तो चिन्तन और सम्प्रेषणकी व्यंग्यमूलक घाटीमें सजग पर्यटन है। व्यंग्यकारने संकलन

१. प्रकाशक : जवाहर पुस्तकालय, मथुरा। पृष्ठ : १३८; का. ८३; मूल्य २०.००

के 'अनावरण' में ही जाहिर कर दियाहै कि व्यंग्य मूलतः व्यक्तिगत नहीं होता—वह प्रवृत्तिगत होताहै और प्रतीकात्मकभी। यह नहीं, डॉ. तिवारीने यहभी बतलायाहै कि व्यंग्य और चिन्तनका तानाबाना साथ चलता है। इन्हीं कसौटियोंपर उनकी व्यंग्य सम्पदाकी पड़ताल पहले करनी होगी कि किस दरवाजेपर कैसी दस्तक डॉ. सन्तोषकुमार तिवारीने दीहै।

'दरवाजेपर दस्तक' में एकत्र व्यंग्योंसे व्यंग्यकारका चिन्तन पूरी शक्तिके साथ उपस्थित हुआहै। स्वभावतः व्यंग्यकारका चिन्तक और प्राध्यापक होना व्यंग्य-कर्ममें सहायक और बाधक बनाहै। इनमेंसे अधिकांश व्यंग्य रचनाओंपर इतना अधिक चिन्तन हावी है कि व्यंग्य दब गयाहै, फिरभी हमारे सोचके दरवाजेपर दस्तक देनेमें ये रचनाएं समर्थ हैं। इसका कारण यही है कि डॉ. तिवारी का चिंतन परिवेशकी वास्तविकताओंसे जुड़ा हुआहै और इस संकलनकी सभी रचनाओंमें किसी-न-किसी बहाने परिवेशकी विसंगतियाँ मुखर हुईहैं। शेरेदिल दब्बू रामलाल, भोले भंडारी, तीसरा पर्दा : किचेन केबीनेट, पुस्तक समर्पित आपको, संत कौए, बिचौलियोंकी तलाश, कविता से मुठभेड़ जैसी रचनाएं हिन्दी व्यंग्यके मौजूदा चरित्रके मेलमें है। इनमें न व्यंग्यकारके भीतरका चिन्तक अधिक हावी हुआहै और न प्राध्यापकही अधिक मुखर हुआहै। इन सारी व्यंग्य रचनाओंमें कथनी और करनीके पार्थक्यको रेखांकित किया गयाहै और देश-दशा पर चिन्ता व्यक्त कीगयीहै। राजनीति और साहित्यकी घुमावदार घाटियोंमें मौजूद विरूपताओंको इंगित करनेवाली रचनाकारीके सहारे डॉ. तिवारीने व्यंग्यका प्रयोजन सिद्ध कियाहै। व्यंग्यकारका अनुभव-क्षेत्र बड़ा विस्तृत है और उसका विश्लेषणभी अत्यन्त सूक्ष्म है। इसीलिए कई नये एवं गहन क्षेत्रोंपर भी डॉ. तिवारीकी नजर गयीहै। परिचर्चापर एक चर्चा, साहित्यिक प्रदूषण जैसी रचनाएं इसे प्रमाणित करतीहै। संकलनकी एकमात्र प्रतीक रचना 'संत कौए' है, लेकिन अन्य रचनाएँभी समाज और वातावरणकी विसंगतियोंको नहीं प्रतीकित करतीं—ऐसा नहीं कहा जासकता।

'दरवाजेपर दस्तक' मे आकलित कई रचनाएं निबंध की परम्परागत शैलीमें लिखी गयीहैं। शतरंज और कैरम, नमूने और बानगी, सन्निपात, साहित्यमें हथकंडे, बुढ़ापेकी जिन्दगी जैसी रचनाओंमें कहीं ललित निबन्ध और कहीं हास्य निबन्धकी पारम्परिक छाया है; इसी तरह संकलन के कई निबन्ध प्राध्यापकीय सोचके उदाहरण बन गयेहैं। स्कूली पाठ्यक्रमसे उत्पन्न लेखन, साहित्यका चौधरी, ललमुंहा और कलमुंहा, अलग जबड़ा अलग दाढ़ी, हकीकत का आइना आप बड़े दुश्चरित्र हैं, धर्म और राजनीतिके करिश्मे, नाच मेरी बुलबुल--जैसी रचनाओंमें लेखक लगातार व्याख्यान देताहै। सजग व्यंग्यकार न तो भाषण देताहै और न अपनी बात कहनेके लिए किसी विधाकी लीकपर दौड़ताहै। व्यंग्य विधाका उद्भव और विकास व्यंग्यकारके इसी बेलीकपनका प्रतिफल है। इस क्रममें न केवल व्यंग्यकार शैलीके नये-नये धरातलोंका स्पर्श करताहै, अपितु उसकी भाषाभी एकदम बेलीक होजातीहै। डॉ. सन्तोषकुमार तिवारीने भी लिखाहै कि 'जीवित भाषा नित नये प्रयोग और जटिल अनुभूतियोंके अनुरूप नये मुहावरे देती रहतीहै।' (पृ. ६५) स्वभावतः 'दरवाजे पर दस्तक' में भी व्यंग्यकारकी करवटें बदलती हुई भाषा का संधान पाठक करेंगे और लगभग निराश होंगे।

व्यंग्य-भाषाका स्वर महज सूचनात्मक और चिन्तामूलक नहीं होता, अपितु व्यंग्यकी ईमानदारीके अनुरूप व्यंग्य-भाषा सर्वथा नयी लय और तालकी प्रस्तुति करती है। इस दृष्टिसे डॉ. तिवारीकी भाषा नवीन शब्दचयन और अनूठे वाक्य-विन्याससे लगातार सम्पुष्ट नहीं हैं। कहीं-कहीं उनकी भाषा वक्रताके तटोंको छूती नजर अवश्य आतीहै। जैसे, 'तनहा न कर सकेंगे' में रागदरबारी-शैली के प्रेम-पत्रके टुकड़े हैं और 'साहित्यिक प्रदूषण' में साहित्यिकोंका सजग वर्गीकरण है। कई मौकोंपर डॉ. तिवारी ने प्रहारक व्यंग्य-भाषाकी भंगिमाभी अपनायीहै। इस संकलनमें एकत्र कई रचनाओंकी आख्या आकर्षणका मोहक जाल फैलातीहै। प्रियाहीन डरपत मन मोरा, दलालों का वामन अवतार, आरोपित मुद्राएं लाख लगाऊं संस्कृति, हकीकतका आइना—जैसे शीर्षक पर्याप्त अर्थपुष्ट एवं आकर्षक हैं। समूचे संकलनमें कुल दो ऐसी रचनाएं हैं, जो निबन्धोंकी पारम्परिक कायासे इतर दिशाकी ओर संकेत करतीहैं—चुनावी माहौलका भाषण, अध्यक्ष पदसे। भाषणके रूपमें प्रस्तुत इन दो रचनाओंके विधा स्तरसे स्पष्ट है कि व्यंग्य-कारकी कलममें शैलीकी सघन वीथियोंमें साहसपूर्वक भटकनेका साहस है। 'दरवाजेपर दस्तक' इसी साहसका ट्रेलर है। कालान्तरमें रिलीज होनेवाली डॉ. सन्तोषकुमार तिवारीकी परवर्ती पुस्तकें इस साहसको अधिकाधिक सशक्त और वैविध्यपूर्ण बनायेंगी, यही आशा है। □

टेलीफोनकी घंटीसे[1]

व्यंग्यकार : डॉ. सुदर्शन मजीठिया

समीक्षक : डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी.

अपने इस व्यंग्य संकलनके पृ. ६५ पर डॉ. सुदर्शन मजीठियाने चिन्ता व्यक्त कीहै कि 'हास्यकारों और व्यंग्यकारोंकी तेजीसे घटती हुई संख्याको देखकर उनके लोप हो जानेका भय आखड़ा हुआहै।' लेकिन वस्तुतः चिन्ता और भयकी कोई बात नहीं है। जबतक हिन्दीमें डॉ. मजीठिया जैसे हास्य-व्यंग्यकारोंकी लम्बी कतार मौजूद है, तबतक हिन्दीमें हास्य-व्यंग्यके लोपकी कोई सम्भावना नहीं। प्रमाणके तौरपर 'टेलीफोनकी घंटीसे' में एकत्र व्यंग्य रचनाओंकी चर्चा कीजा सकतीहै। इस सकलनमें एक ओर परम्परागत हास्यप्रधान निबन्धोंकी कोटिकी अनेक गुदगुदीकारी हास्य रचनाएं हैं, तो दूसरी ओर नौकरशाही और राजनीति जैसी प्रखर व्यंग्य रचनाएं भी संकलित हैं।

हास्यके फुहारोंकी सपाट अभिव्यंजनाएं इस संग्रहमें 'प्रेम राष्ट्रीयकरण बिल', 'पितापुकार हजामत', 'सास बहू प्राइवेट-लिमिटेड' जैसी रचनाओंमें है। लेकिन व्यंग्यकार डॉ. मजीठियाकी व्यंग्यधर्मिताका वास्तविक उन्मेष इन हास्य-केन्द्रित रचनाओंमें नहीं है। विभिन्न व्यंग्य प्रधान रचनाओंमें ही उनका व्यंग्यकर्म उनकी वास्तविक क्षमताके साथ उपस्थित हुआहै। इन रचनाओंमें 'कितने शामियानोंमें कितनी बार' जैसी खालिस राजनीतिक व्यंग्य रचनाएं हैं और 'हर साल सिर्फ एक साल की छुट्टी' जैसी नौकरशाहीपर प्रहार करनेवाली रचनाएं भी हैं। 'त्रिशुल' में व्यंग्यकारने जिस शैलीमें पुलिस-अव्यवस्थाका ऑपरेशन कियाहै, उससे हरिशंकर परसाईं की प्रसिद्ध रचना 'इन्सपेक्टर मातादीन चांदपर' का स्मरण हो आताहै। परसाईकी एक रचनाका शीर्षकभी डॉ. मजीठियाने यथावत् ग्रहण कर लियाहै—'पगडंडियों का जमाना'। अज्ञेयके काव्यसंग्रहकी आख्याकी छाप इस व्यंग्य रचनाके शीर्षकपर नजर आतीहै 'कितने शामियानोंमें कितनी बार'।

व्यंग्यकारके रूपमें डॉ. सुदर्शन मजीठियाकी पहचान इस संकलनमें इसी कारण सुस्थिर होतीहै कि पर्यटनकी क्षमता उनमें हैं। यह पर्यटन निश्चयही रवीन्द्रनाथ त्यागी और श्रीबाल पाण्डेयकी पर्यटन-कलासे भिन्न है। 'मैंने किया है', 'टेलीफोनकी घंटीसे' 'पगडंडियोंका जमाना', 'ये लिलीपुट', 'कुत्ते' जैसी कई व्यंग्य-रचनाएं साबित करतीहैं कि छोटी-छोटी ग्रंथियों, मनोभावों ओर स्थितियोंपर व्यंग्यकारकी नजर है। एकही रचनामें कई कई स्थितियोंकी यात्राके उदाहरणस्वरूप मात्र 'टेलीफोनकी घंटीसे' शीर्षक रचनाकी चर्चा काफी होगी। मानुष-सत्य से लेकर सांस्कृतिक विघटनतक का विवरण प्रस्तुत करने वाली इस रचनामें व्यंग्यकारने पुराण और वर्तमान, प्रेम और रोमांच, स्वास्थ्य और संगीत, सादृश्य और व्यावहारिकता जैसे बहुतेरे सन्दर्भोंका स्पर्श कियाहै। व्यंग्यकार को मालूम है कि यह मक्खनका युग है, पगड़ियाँ उछालनेका जमाना है और हम भारतीयोंका गुलामीका घूंघट अबतक नहीं उठाहै। इसी कारण 'टेलीफोनकी घंटीसे' में संकलित रचनाओंमें अपनेही परिवेशकी विसंगतियोंका बार-बार प्रस्तुतीकरण व्यंग्यकारने कियाहै।

डॉ. सुदर्शन मजीठियाके व्यंग्योंमें नश्तरकी तीक्ष्णता और गंधकी विस्फोटकी क्षमता नहीं है। संकलनके फ्लैप पर सूचित किया गयाहै कि 'अपनी सपाटबयानीमें भी इस व्यंग्यकारने जीवनकी विकृतियोंका विश्लेषण लाक्षणिक ढंगसे कियाहै।' दरअसल डॉ. मजीठियाका व्यंग्य-लेखन अभिधामूलक है—एकदम सीधा और स्पष्ट। अभिव्यक्तिके सर्पिल टेढ़ेपनकी जगह व्यंग्यकारने सम्प्रेषणके समतल रास्तेको अपनायाहै। लवेरिया (पृ. २०) नैनट पक्का (पृ. ८१) जैसे कुछ नवीन भाषिक प्रयोग भलेही संकलनमें सामने आयेहैं, लेकिन व्यंग्यकारकी व्यंग्यभाषा शैलीकी बेलीक धारासे नहीं जुड़ीहै। 'प्रेम राष्ट्रीयकरण बिल' विधान्तरका एकमात्र नमूना है। डॉ. मजीठियाके इस व्यंग्य-संकलनमें सोचने और सुधारनेका मसालाहै और इसी कारण 'टेलीफोनकी घंटीसे' पठनीय है। □□

---

1. प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२००३। पृष्ठ : १२०; क्रा. ८३; मूल्य : १८.०० रु.।

द्विभाषी कोश

भोजपुरी हिन्दी-कोश[1]

कोशकार : प्रो. ब्रजविहारी कुमार

समीक्षक : डॉ. भारतभूषण.

भोजपुरी उत्तरप्रदेशके बलिया, गाजीपुर, देवरिया, गोरखपुर, वाराणसी, मिर्जापुर, जौनपुर, आजमगढ़ और बस्ती जिलोंमें तथा बिहारके भोजपुर, रोहतास, पलामू, रांची, हजारीबाग, छपरा, सिवान, गोपालगज और चंपारन जिलोंमें एवं मध्यप्रदेशके जसपुर और सरगुजाके आसपासके क्षेत्रोंकी भाषा है। इसके अतिरिक्त इस भाषाका व्यवहार करनेवाले बिहारके मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी और हाजीपुर जिलोंमें तथा नेपालके बुटवल; कलैया, और तरुहट जिलोंमें भी पर्याप्त संख्यामें हैं। भोजपुरी बोलनेवाले बहुत बड़ी संख्यामें अन्य प्रदेशोंमें भी फैले हुए हैं। यहांतक कि विदेशोंमें फिजी, गुयाना, ट्रिनिडाड और टोबेगो, सुरिनाम, मॉरीशस आदिमें बसे भारतीयोंमें आधे से अधिक इसी भाषाका व्यवहार करनेवाले हैं। इस प्रकार भोजपुरी बोलनेवालोंकी संख्या लगभग पांच करोड़ है।

सर्वप्रथम ए. एफ. आर. हार्नले और जी. ए. ग्रियर्सनके 'ए कंपैरेटिव डिक्शनरी ऑफ बिहारी लैंग्वेज' ने ग्रियर्सनके पीजेंट लाइफ ऑफ बिहार तथा फैलन्सके हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरीमें भोजपुरीके शब्द संकलित किये गये। इसी समय ग्रियर्सनने सेवन ग्रामर्स ऑफ द डायलेक्ट्स एण्ड सब-डायलेक्ट्स ऑफ बिहार तथा केलाग ने ग्रामर ऑफ द हिन्दी लैंग्वेजमें भोजपुरी व्याकरणका समावेश किया। ग्रियर्सनने लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया में भोजपुरीका अध्ययन प्रस्तुत किया और इसे मागधी परिवारकी पश्चिमी शाखा बिहारीके अन्तर्गत रखा।

भोजपुरी अपने-आपमें समृद्ध भाषा है। इसमें तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी सभी प्रकारके शब्दोंकी प्रचुर मात्रा है। प्रायः सभी शब्द भोजपुरीमें आकर इसके ध्वनि-नियमोंके अनुसार परिवर्तित हो गयेहैं। भोजपुरीमें संज्ञाओं और विशेषणोंको क्रिया रूपमें परिवर्तित करनेकी विशेष प्रवृत्ति पायी जातीहै। जैसे—'लात' से लतियाना, 'बात' से बतियाना। इसीके प्रभावसे हिन्दीमें भी फिल्माना, हथियाना, दर्शाना आदिका प्रयोग चल पड़ाहै।

भोजपुरीको लिखनेके लिए पहले कैथी लिपिका व्यवहार होताथा किन्तु अब इसके लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाताहै। भोजपुरीका अपना प्रचुर लोक-साहित्य है। भोजपुरीके प्रयोक्ता इसी कारणसे प्रायः भोजपुरीको पृथक् भाषाका दर्जा देनेकी बातभी उठाने लगेहैं।

ऐसा प्रतीत होताहै कि भोजपुरी-हिन्दी कोश निर्माणका प्रयोजन हिन्दीभाषियोंके लिए भोजपुरी साहित्य को सुबोध बनाना तथा भोजपुरीभाषियोंको हिन्दीका ज्ञान करानाहै। यों हिन्दी और भोजपुरीका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। भोजपुरी एक जीवन्त और सशक्त भाषा है। इसमें पंजाबीके समान वैदिक भाषाकी मर्दानगी एवं अक्खड़पन है। इसीलिए ग्रियर्सनने कहाथा कि भोजपुरी एक कर्मठ जातिकी व्यावहारिक भाषा है। इस क्षेत्रसे भारतको डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, श्री जयप्रकाश नारायण, श्रीलालबहादुर शास्त्री और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जैसे देशभक्त एवं लोकनेता मिले। इसी क्षेत्रमें हिन्दी साहित्यके कर्णधार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर 'प्रसाद', मुन्शी प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्लने जन्म लिया।

प्रस्तुत कोशमें लगभग ८,५०० शब्दोंको सम्मिलित किया गयाहै। इतने शब्दोंमें मात्र अत्यधिक सीमित शब्दावलीका ही समावेश किया जा सकताहै। इसमें कोशकार ने कहींभी यह संकेत नहीं किया कि वह इस कोशका प्रणयन किस पाठक वर्गके लिए कर रहाहै। उचित होता कि वह इस बातका कहीं संकेत कर देता। इसमें यह भी नहीं बताया गया कि यह किस स्तरका है!

१. प्रकाशक : भोजपुरी संसद्, जगत्गंज, वाराणसी। पृष्ठ : २१६; डिमा. ७८; मूल्य : ५०.०० रु.।

ऊपर संकेत किया गयाहै कि भोजपुरीमें संस्कृतके तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्द हैं। उनके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहेहैं।

तत्सम शब्द—भीति, मन, देवता, गोल, धन, धेनु, पत्र, नीच, पानी, लार, लहरि, मति, पाठ

तद्भव शब्द —कंकरी, कंगना, पीतर, भरम, भीतर, मनई, मरन, दूध, छांह, चन्दा, गोसाईं, गोबर, बियान, नेह, परब, तेहवार, पोता, बरिस, सांप, सियार, भँवरा

देशज शब्द —भीड़, अँसावल, उधार, ढेंकुलि, सांठ मुंडेरा, ठेक, ठेंगा, गोड़, झोंटा, पाड़ा आदि।

विदेशी शब्द —बरफ, मरद, रसकूल, टीसन, नकल, रोज नकसा, नालिस, पाकिट, पैदावार, भरती, सहर, साफ, सिलसिला, पियाली, फजिहत, फरक आदि।

इस कोशमें भी शब्दावली (ग्लॉसरी) और शब्दकोश के अन्तरको ध्यानमें नहीं रखा गयाहै। यह द्विभाषी शब्दावली है। इसके अतिरिक्त इसमें शब्दोंकी व्याकरणिक कोटियाँ प्रदर्शित की गयीहैं जो इसे शब्दावलीसे तो पृथक् कर देताहै परन्तु कोशमें शब्दोंके वर्गीकरणकी पद्धतिको इसमें नहीं अपनाया गयाहै। अर्थात् एकही शब्द-परिवार के शब्दोंकी पृथक्-पृथक् प्रविष्टियाँ दी गयीहैं। उदाहरणार्थ:—

चास (जुताई), चासकइल (जोतना), चासबास (खेती)। चास लागल (जुताई पूरा होना)

इन शब्दोंको मूल प्रविष्टि (चास) के अन्तर्गत लेना उचित होता।

इस कोशमें शब्दोंके साथ व्याकरणिक कोटियोंमें एकरूपता और पूर्णताका अभाव है। संज्ञा शब्दोंके लिए कहीं मात्र (सं.) दिया है तो कहीं (स. पु.) या (स. स्त्री.) दियाहै। केवल (सं.) लिख देनेमें स्पष्टताका अभाव है। अतएव सर्वत्र सं. के साथ वह स्त्रीलिंग है या पुल्लिंग, यह देना आवश्यक है। इससे शब्दकोशके प्रयोक्ताको सुविधा होतीहै। जैसे पहलेही पृष्ठपर अँखिया (सं.), अंखुआ (सं.), अंगना (सं.), तूपा (सं). आदि।

इन कुछ कमियोंके बावजूद यह कोश भोजपुरी साहित्यके अध्ययनके लिए उपयोगी है। भोजपुरीमें यह पहला कोश है इसलिए इसका महत्त्व औरभी अधिक हो जाताहै। इस कोशके आरम्भमें कुछ व्याकरणिक अंश भोजपुरी सीखनेवालोंके लिए विशेष रूपसे उपयोगी हैं। कोशके अन्तमें संख्यावाचक शब्द अलगसे देदिये गयेहैं। यह उचितही है।

आशा है भविष्यमें इस कोशको आधुनिक कोशविज्ञानकी पद्धतिको ध्यानमें रखकर और अधिक सुधरे रूपमें प्रस्तुत किया जायेगा।

कोशके मुद्रणमें यदि मूल प्रविष्टियोंको मोटे अक्षरोंमें और अन्य प्रविष्टियोंको छोटे टाइपमें दिया जाता तो अधिक अच्छा होता अथवा मूल प्रविष्टियोंको ब्लैक फेसमें दिया जा सकताथा। □□

लोक साहित्य

लोक साहित्य[1]

सम्पादक : डॉ. सुरेशचन्द त्यागी
समीक्षक : डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय

लोक-साहित्यने जबसे विश्वविद्यालयोंमें स्वतन्त्र विषय के रूपमें अथवा वैकल्पिक पत्र-प्रश्नके रूपमें पठन-पाठन तथा अनुसन्धानके गौरवको प्राप्त कियाहै तबसे इसके अनुशीलन तथा प्रकाशनमें गति तथा प्रगति दृष्टिगोचर होने लगीहै। इसीके परिणामस्वरूप "लोक-साहित्य" नामक आलोच्य पुस्तक पाठकोंके सामने प्रस्तुत है।

ग्रन्थमें ४२ विद्वत्तापूर्ण निबन्ध संगृहीत हैं। यद्यपि लोक-साहित्यकी विभिन्न विधाओंसे सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थ पृथक् रूपमें प्रकाशित हो चुकेहैं परन्तु लोक-साहित्य

१. मेरठ विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् एवं कुरु लोक संस्थान, मेरठ के संयुक्त तत्त्वावधानमें प्रकाशित। मेरठ १९८३ ई.।

तथा लोक-संस्कृतिकी समस्त विधाओंकी विद्वत्तापूर्ण विवेचना एकत्र प्रस्तुत करनेवाला यह ग्रन्थ अपने ढगका प्रथम होनेके कारण उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास भाग १६ (हिन्दी का लोक-साहित्य) जिसके सम्पादनका सौभाग्य राहुलके साथ वर्तमान लेखकको प्राप्त है—एकमात्र अपवाद है, अन्यथा सम्भवत: हिन्दीमें, वर्तमान आलोच्य ग्रन्थको छोड़कर अभी कोई ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुईहै जिसमें लोक-साहित्य सम्बन्धी इतनी प्रचुर सामग्री प्रामाणिक रूपमें उपलब्ध हो। इस प्रकार यह ग्रन्थ क्षेत्र विस्तारकी दृष्टिसे तथा प्रामाणिकताके दृष्टिकोणसे सर्वथा मौलिक तथा प्रथम रचनाका अधिकारी है।

लोक-साहित्यकी अनेक विधाएं हैं जैसे लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-नाट्य तथा लोक-सुभाषित। लोक-सुभाषितको भी अनेक श्रेणियोंमें विभक्त किया जासकताहै जैसे लोकोक्तियां, मुहावरा, पहेलियां सूक्तियाँ बालगीत, और ऋतु-सम्बन्धी वचन। इन सभी विषयों को लेकर विद्वान् लेखकोंने इनका बड़ीही मौलिकताके साथ विवेचन कियाहै। कुरु संस्थानके निदेशक डॉ. हरद्वारी शर्माका 'लोक-गीत' शीर्षक लेख तथा श्री महेशचन्द्र शर्माका 'लोक-गीत—स्वरूप और महत्त्व' विद्वत्तापूर्ण निबन्ध हैं। डॉ. प्रयाग जोशीका 'कुमाऊंनी लोक-गाथाओं के पारम्परिक गायक" उन पेशेवर गायकोंके विषयमें प्रचुर प्रकाश डालताहै जो सारंगी, ढोलक अथवा हुडुका बजाकर लोक-गाथाओंको गाते हुए अपनी उदर दरीकी पूर्ति किया करताहै। डॉ. मालती शर्माने ब्रजमें प्रचलित ढोला-गीतोंका विवेचन करते हुए इसे सुप्रसिद्ध लोक-गाथा 'ढोला-मारू' की कथासे अन्तरको स्पष्ट किया है। श्री वेदप्रकाश गर्गने 'कुरु जनपदकी स्वांग परम्परा' तथा नारायणस्वरूप शर्माने 'मेरठ जिलेकी स्वांग परम्परा' शीर्षक निबन्धोंमें कुरुप्रदेशमें प्रचलित सांग या स्वांग नामक लोकनाट्य परम्पराका अच्छा परिचय दियाहै। डॉ. सत्या गुप्त जिन्होंने खड़ी बोलीके लोक-साहित्यको अपने अनुसन्धानका विषय बनायाहै—ने "कौरवी ऋत गान" शीर्षक लेखमें कुरु प्रदेशमें वर्षा ऋतुमें गेय कजली, बारहमासा, मल्हार आदि गीतोंका बड़ाही प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत कियाहै।

लोक-साहित्यकी इन प्रधान विधाओंके अतिरिक्त अनेक विद्वानोंने लोकोक्तियों, आदिका भी विश्लेषण कियाहै। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें हिन्दी प्रदेशमें प्रचलित, प्राय: प्रत्येक बोलीके लोक साहित्यका परिचय दिया गयाहै। कुलदीपनारायण झड़प ने 'भोजपुरी लोक-गीतोंमें लोक जीवन', त्रिभुवननारायण शर्मा 'मधु' ने अवधी लोक-गीत, रघुनाथ सिंहने कुरु जनपदकी होली, गौतम शर्मा 'व्यथित' ने हिमाचली लोकगीत, शुकदेव श्रोत्रियने गढ़वाली लोकगीत, सुशीला गुप्त ने राजस्थानी लोक-महाभारत आदि अपने शोधपूर्ण निबन्धोंमें विभिन्न जनपदोंके लोकसाहित्यका सुन्दर विवरण प्रस्तुत कियाहै।

श्री कर्णराज शेषगिरिरावने "तेलुगु लोक साहित्य का संकलन तथा प्रकाशन कार्य" नामक लेखमें तेलुगु भाषाके लोक साहित्यका बड़ाही प्रामाणिक वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. केशरीनारायण शुक्लने रूसी लोक साहित्यमें प्रचलित तथा प्रसिद्ध 'बिलीना' नामक लोक-गाथाओंका उदाहरण सहित विवेचन कियाहै।

इस ग्रन्थमें लोक-साहित्यके सैद्धान्तिक पक्षको उजागर करनेका स्तुत्य प्रयास किया गयाहै। इस सम्बन्धमें विजय कुलश्रेष्ठका 'लोक साहित्यके विभिन्न सम्प्रदाय' तथा पुष्पपाल सिंह का 'लोक साहित्यका मिथकीय आयाम' पठनीय है। श्री युगलकिशोर चतुर्वेदीका 'लोक साहित्य महत्त्व और उपादेयता' इस साहित्यकी महत्ताको समझने केलिए अत्यन्त उपयोगी है। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ. कैलाशचन्द्र भाटियाने लोक-साहित्यकी भाषाकी सरलता तथा अकृत्रिमतापर प्रचुर प्रकाश डालाहै। के. सी. त्यागीने लोक संगीतको लेखका विषय बनाते हुए लोक छन्द तथा लोकधुनोंका सम्यक् विवेचन कियाहै। कुन्दनलाल उपरेतीने लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्यके अन्तर को स्पष्ट करनेका प्रशंसनीय प्रयास कियाहै। पं. रामनरेश त्रिपाठीका यह आग्रह अथवा दुराग्रह था कि लोकगीत गांवोंमें ही पाया जाताहै। इसीलिए वे इन गीतोंको ग्राम-गीत कहा करतेथे। परन्तु सनातन धर्म कॉलेज, मुजफ्फर नगरके सेवानिवृत्त प्राचार्य डॉ. विश्वनाथ मिश्रने यह सप्रमाण सिद्ध कियाहै कि नगरोंका भी लोक-साहित्य होताहै और लोकगीत गांवोंके अतिरिक्त नगरोंमें भी गाये जातेहैं। कुछ लोगोंका लोकगीतोंकी आधुनिकतामें संदेह हो सकता है। परन्तु डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्तने अपने निबन्धमें (पृ. ३०-३३) यह दिखलानेका सफल प्रयास कियाहै कि लोक साहित्यकी मन्दाकिनी प्राचीन कालसे ही प्रवाहित होती चली आरहीहै और आजभी इसकी धारा अक्षुण्ण

रीतिसे प्रवहमान हैं । सुभद्राकुमारी चौहानकी कविता और महाश्वेतादेवीके उपन्यासोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार इस ग्रन्थमें लोकसाहित्यकी विभिन्न विधाओंके साथही, इसकी उपादेयता तथा आधुनिकता पर भी विचार किया गयाहै । उत्तरप्रदेशमें प्रचलित विभिन्न बोलियोंके लोकसाहित्यका परिचय देनेके साथही इसमें तेलुगु तथा रूसी लोक-साहित्यका भी प्रामाणिक विवेचन प्राप्त होताहै इस प्रकार इस ग्रन्थको लोक-साहित्यका एक छोटा विश्वकोष कहा जाये तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी।

डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी महाराजसिंह कालेज, सहारनपुरने इस ग्रन्थका सम्पादन बड़ीही विद्वत्ताके साथ कियाहै । इसके लिए वे समस्त लोक-साहित्यके पाठकों तथा विद्वानोंके बधाईके पात्र हैं । तेलुगु लोक-साहित्यके विवरणके साथही यदि अन्य प्रदेशोंके भी विशेषकर दक्षिण भारतके राज्योंके लोक साहित्यका विवेचन यहाँ उपलब्ध होता तो सुन्दर होता । परन्तु सम्भवतः समय तथा सीमाके कारण यह सम्भव नहीं होसका ।

हम यह आशा करतेहैं डॉ. सुरेश त्यागी तथा उनके सहयोगी सम्पादकगण डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त तथा डॉ. कमलसिंह --इसी प्रकार लोक-साहित्यके सम्बन्धमें ग्रन्थों का प्रकाशनकर इस क्षेत्रमें अमरकीर्तिका अर्जन करेंगे । साहित्यका भविष्य अत्यन्त उज्जवल है । इस सम्बन्धमें कुरु लोक संस्थानके संस्थापक, लोक-साहित्यके सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. कृष्णचन्द्र शर्माके आशीर्वादसे ही मैं इस आलोचनाको समाप्त करना चाहताहूं, "लोक साहित्य लोककी सम्पदा है । उसके संरक्षण, प्रचार-प्रसारसे उसे कभी कोई रोक नहीं सकता । लोक साहित्य अमरहै । जय लोक !

"प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः ।" □ □

सौन्दर्य प्रसाधन

नारी शृंगार[1]

लेखिका : हर्षनन्दिनी भाटिया
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री.

मानव शरीरको अधिकसे अधिक आकर्षक बनानेके जितने प्रयोग नारीने कियेहैं उतने संभवतः पुरुषोंने नहीं । प्रकृतिभी इसमें नारीकी सहायिका रहीहै । शृंगारसे नारी अधिक लावण्यमयी, अधिक स्नेहमयी, और अधिक आकर्षक बन जातीहै । शृंगारके ये प्रसाधन प्रकृतिकी ही देन है। इसलिए प्रकृतिका सामीप्य हमें शृंगार प्रसाधनोंके भी अधिक समीप ले आताहै । प्रारम्भमें फूल पत्तियों आदिका सीधा प्रयोग प्रसाधनोंके रूपमें किया गया, (आजभी किया जाताहै) ,कालान्तरमें उनसे तरह-तरहके उपकरण बनाये गये और फिर उनके अनुकरणपर कृत्रिम उपकरणोंका भी निर्माण हुआ। समीक्ष्य पुस्तकमें नारी द्वारा शृंगारके लिए अपनाये गये प्रसाधनोंके उद्गम और विकासको खोजनेका एक प्रयास किया गयाहै । मानव जीवनमें तो विकासकी यह यात्रा अभीभी जारी है, पर इस पुस्तकमें यात्राके उस पड़ावतक काही विवरण प्रस्तुत किया गयाहै जो मध्यकालीन साहित्यमें उपलब्ध है ।

पुस्तक चार अध्यायोंमें विभक्त है—भूमिका, नारी शृंगार : पृष्ठभूमि और परम्परा, नारी शृंगारकी प्रारम्भिक परम्परा, और नारी शृंगारकी परम्पराका

१. प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ । पृष्ठ : २००; डिमा. ८३; मूल्य : ५०.०० रु. ।

विकास। अंतमें तीन परिशिष्टभी हैं। पहलेमें आधार ग्रन्थोंकी सूची दी गयीहै। शेष दोमें क्रमशः हिन्दी और अंग्रेजीके सन्दर्भ ग्रन्थोंकी सूची दी गयीहै। पुस्तकके मध्यमें विभिन्न शृंगार प्रसाधनोंका एक तुलनात्मक चार्ट भी दिया गयाहै। इस चार्टमें सम्पूर्ण पुस्तककी आधार सामग्री प्रस्तुत कर दी गयीहै।

लगभग ढाई पृष्ठोंके प्रथम अध्यायमें लेखिकाने प्रकृति, मानव शृंगारके अन्त:संबंधोंका विश्लेषण कियाहै। प्रारंभमें नर और नारी दोनोंमें ही शृंगारकी प्रवृत्ति समान थी और वे समान रूपसे ही अलंकरण करतेथे, पर कालान्तरमें सभ्यताके विकासके साथ-साथ इन प्रसाधनोंमें भी भेद होता गया और शृंगारके परिमाण में भी। नारी अपने सौन्दर्यके प्रति संभवतः प्रारम्भसे ही अधिक सजगभी थी और गर्विताभी। अतः अपने रंगरूप को संवारनेके लिए उसने शृंगारके प्रसाधनोंका अधिक प्रयोग किया। उसकी यह शृंगार सज्जा उसके सुसंस्कृत होनेका भी प्रमाण बनती गयी।

अध्याय दोमें नारी शृंगारकी पृष्ठभूमि और परम्परा को तलाशते हुए लेखिकाने सौन्दर्यशास्त्र, कामशास्त्र, और मनोविज्ञानका भी सहारा लियाहै। इसके लिए उसने देशी और विदेशी सभी प्रकारके विद्वानोंके विचारोंका उपयोग कियाहै। सौन्दर्य, रूप, लावण्य, उदारता, सौन्दर्यकी अभिवृद्धि करनेवाले अलंकरण, वस्त्र, केश रचना आदिकी विवेचना लेखिका ने कीहै; तथापि इस अध्यायमें जिस विशदता और गहनताकी आवश्यकता थी, जो व्याख्या अपेक्षित थी उसके दर्शन नहीं होपाते। परिणामतः यह अध्याय विभिन्न विद्वानोंके कतिपय विचारोंका संग्रह मात्र बनकर रह गयाहै। कुछ स्थानोंपर तो उद्धृत विचारोंमें पूर्वापर संबंधका भी अभाव हैं। उदाहरणार्थ, पृष्ठ १६ का प्रारंभिक वाक्य है, "इस प्रकार सौन्दर्य-विज्ञानके अनुसार रूपके प्रधान गुण हैं—सापेक्षता (प्रपोर्शन), समता (सिमेट्रि), संगति (हरमनी), तथा संतुलन (बैलेंस)।" इस वाक्यसे ऐसा प्रतीत होताहै कि इन गुणोंकी चर्चा पीछे कीगयी होगी और अब उस चर्चाका समाहार किया जारहाहै जबकि ऐसा है नहीं। इससे पीछे लेखिका ने अनेक विद्वानोंको उद्धृत करके रूप और माधुर्यको स्पष्ट करते हुए लिखाहै, "लावण्य और उदारता, ये रूपमें 'जीवन' का अनुभव करानेवाले गुण हैं। कवि श्रीहर्ष, दमयन्तीके रूपका वर्णन करते हुए कहतेहैं कि वह अपने 'उदार' गुणोंके कारण धन्य है, जिनसे नलभी स्वयं 'आकृष्ट' होगयाहै, क्योंकि चन्द्रिकाकी इससे बढ़कर महिमा क्या होगी कि इससे समुद्रभी स्वयं 'तरल' हो उठताहै। रूपमें आकर्षणका मुख्य कारण यही लावण्य और उदारता नामक गुण होतेहैं जिनसे हमें 'जीवन' का साक्षात् अनुभव होताहै।' (पृ. १५)। इस चर्चामें सापेक्षता, समता, संगति और संतुलनका तो कोई उल्लेखही नहीं है। एक और उदाहरण प्रस्तुत है। "व्यक्तिगत रुचिका भी प्रभाव सौदर्यके आस्वादन पर पड़ताहै। रस्किनने सौन्दर्यको आध्यात्मिक मानाहै, और इसके अन्तर्गत अनन्तता (इनफिनिटि), एकता (यूनिटि), सुस्थिरता (रिपोज), समता (सिमेट्रि), पवित्रता (प्योरिटि) तथा परिमितता (माडरेशन) के गुणोंको स्वीकार कियाहै। रूपगोस्वामीने भी सौन्दर्यका संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत कियाहै :

अंगप्रत्यंगकानां यः संनिवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्टसंधिबन्धः स्यात्तत्सौन्दर्यमितीर्यते ॥

यह सब होते हुएभी, सभ्यताके आरंभमें ही अलंकार का युग प्रारंभ होताहै। इस प्रकार सौन्दर्य एक सापेक्षिक शब्द है, जिसके मूल्यांकनमें व्यक्तिगत रुचिका भी पर्याप्त प्रभाव पड़ताहै।" (पृ. १६)। सौन्दर्यके आस्वादनमें व्यक्तिगत रुचिका जो प्रसंग लेखिकाने उठायाहै उसका सम्यक् परिपाक किये बिनाही उसने निष्कर्षात्मक टिप्पणीभी देदी। इस दृष्टिसे इस अध्याय को और सम्पन्न बनानेकी आवश्यकता है।

पृष्ठ २२ पर नौ पंक्तियां मुद्रित करके पृष्ठ २३ पर "नारी प्रसाधनमें 'सोलह शृंगार' (नवसत) की पृष्ठभूमि तथा परम्पराका विकास" शीर्षक इस प्रकार मुद्रित है कि वह नये अध्यायकी भ्रांति उत्पन्न करताहै। सोलह शृंगारकी परम्पराको लेखिकाने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत कियाहै और प्रचलित परम्पराके अनुरूप इसका प्रारंभ सिंधुघाटी सभ्यताको 'आदियुग' (पृ. २४) मानकर कियाहै। उस सभ्यतासे संबंधित पुरातत्वीय अवशेषोंमें जिस प्रसाधन सामग्रीका उल्लेख डॉ. वासुदेव शरण अग्रवालने "भारतीय कला" में कियाहै उसकी चर्चा लेखिकाने भी कीहै। वैदिक काल, महाभारत काल, और बौद्ध कालमें बांटकर उसने शृंगारकी उस सुदीर्घ परम्परा का उल्लेख कियाहै जो संस्कृत, प्राकृत और पालि साहित्य में मिलतीहै, पर षोडश शृंगारकी परंपरा अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होती। यों पालि ग्रंथ "ब्रह्मजाल सुत्त" में

२० प्रकारके श्रृंगार-प्रसाधनोंका उल्लेख मिलताहै, आयुर्वेदके ग्रंथ सुश्रुत संहितामें शरीरको स्वस्थ और नीरोग रखनेके लिए २४ प्रकारके कार्य बताये गयेहैं जिनमें कुछ श्रृंगार प्रसाधनभी हैं। कामसूत्रकी ६४ कलाओंमें से कुछ कलाओंमें श्रृंगार प्रसाधनोंका भी समावेश किया गयाहै। इस प्रकार संभव है कि इनसे षोडश श्रृंगारकी परम्परा विकसित हुईहो, पर यह संख्या १६ ही क्यों मानी गयी, और किसने इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया—यह नहीं कहा जासकता। इसलिए लेखिकाका यह मानना है कि "जहाँतक षोडश श्रृंगारके अर्थका संबंध है यह संख्यावाचक न होकर गुणवाचक या पूर्णतावाचक अधिक है। भारतीय धर्मशास्त्रमें सोलहकी संख्याका विशेष महत्त्व है। पूर्ण चन्द्रकी १६ कलाएं मानी गयीं। मानवभी षोडश कलात्मक है। संस्कारोंकी संख्या १६है, तथा उपासनामें भी षोडशोपचारको अर्चना को पूर्णताके रूपमें स्वीकार किया गयाहै। संभवतः इसी आधारपर प्रसाधनोंकी संख्याभी पूर्णताकी दृष्टिसे १६ स्वीकार कर लीगयी।" (पृ. ३५)

श्रृंगारको पूर्णता प्रदान करनेवाले ये सोलह श्रृंगार हैं कौन-कौनसे—इस विषयमें भी विद्वानोंमें थोड़ा मतभेद है। आइने-अकबरीमें अबुल फज़लने एक सूची दीहै, केशवने रसिकप्रिया और कविप्रियामें, वृन्दने श्रृंगार शिक्षामें, तथा अन्य लोगोंने भी सोलह श्रृंगारकी अपनी अपनी सूचियां दीहैं। इस परम्पराका विवेचन करते हुए डॉ. बच्चनसिंहने अपने ग्रन्थ "रीतिकालीन कवियोंकी प्रेमव्यंजना" में जो निष्कर्ष निकालेहैं, वे तर्कसंगत हैं, लेखिकाने भी उनसे अपनी सहमति व्यक्त कीहै। उनके अनुसार "षोडश श्रृंगारकी धारणा मध्य युगकी उपज है, इसमें किन सोलह श्रृंगारोंको परिगणित किया जाये यह कभी निश्चित नहीं होसका। समय-समयपर षोडश श्रृंगारके अन्तर्गत नये श्रृंगारिक तत्त्वोंका भी समावेश होता रहा। मेंहदी इसी प्रकारका एक नया तत्त्व है।" (पृ. ४१)

"नारी श्रृंगारकी प्रारंभिक परम्परा" शीर्षक तृतीय अध्यायमें लेखिकाने प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यका आलोड़न करके चतुर्थ अध्यायमें नारी श्रृंगारकी परम्परा का विकास-पथ खोजनेका प्रयास कियाहै, श्रृंगारके एक-एक प्रसाधनको लेकर विशद चर्चा कीगयीहै जो पर्याप्त रोचक है। अपेक्षित सामग्री जुटानेमें लेखिकाने जो श्रम कियाहै वह वहां प्रत्येक पंक्तिमें स्पष्टही झलक रहाहै। पर इस सामग्रीकी प्रस्तुतिमें सुधारकी अभी काफी गुंजाइश है। कुछ उदाहरण सुझावके लिए यहाँ प्रस्तुत किये जा रहेहैं। पृष्ठ ८३ से ८७ तक वस्त्रधारण शीर्षकके अन्तर्गत साड़ी, अंगिया, ओढ़नी, घाघरा आदि की चर्चा करनेके बाद पृष्ठ ८८ से फिर पृथक् शीर्षक देकर इन्हींकी चर्चा कीगयी है। यदि यह आवृत्ति करनी ही थी तो कमसे कम एक वाक्यमें यह कह देना चाहिये था कि अब प्रत्येक वस्त्रकी पृथक् पृथक् चर्चा करेंगे। इसमें भी पृ. ८९ पर अंगिया (अंगिका) शीर्षक दिया है, पृ. ९० पर फिर अंगिया और चोलीके पृथक्-पृथक् शीर्षक दियेहैं। पृ. ९१ पर आइने-अकबरीके सन्दर्भमें फिर अंगिया (अंगिका) की चर्चा कीहै। यह चर्चा एक-एक वस्त्रको आधार बनाकर कीजा रहीथी, पर आगे चलकर आइने-अकबरी, चंदायन, मृगावती, पद्मावत, संत काव्य धारा, कृष्णभक्ति शाखा आदिके आधारपर कीहै (पृ. ९१-९४)। कुछ और आगे चलनेपर यह चर्चा फिर लंहगा, साड़ी, ओढ़नी, अंगिया, कंचुकी आदि शीर्षकों के रूपमें प्रस्तुत कीगयीहै। इसे व्यवस्थित करनेकी आवश्यकता है। कुछ कथनोंको भी संशोधित करनेकी आवश्यकताहै उदाहरणार्थ "आज भारतके प्रत्येक क्षेत्रमें मस्तक पर बिंदी लगाना सुहागका चिह्न स्वीकार किया जाताहै।" (पृ. १०३), पर वास्तविकता यह है कि आज बिंदी सुहागका चिह्न नहीं श्रृंगारकी सामग्रीभर रह गयीहै। और आज तो बिछुआभी सुहागका चिह्न नहीं रह गयाहै। और कमसेकम महाराष्ट्रमें तो 'भरी मांग' भी सुहागका प्रतीक नहीं है। इसी प्रकार आंखोंमें अंजनके संदर्भमें एक यह वाक्य देखिये और अर्थ समझनेका प्रयास कीजिये: "आँखोंकी पुतलियां काली, पतली, और घनी होनी चाहिये।" (पृ. १११)। उद्धरणोंके संबंधमें भी एक निश्चित नीति अपनानेकी आवश्यकता है। अंग्रेजी ग्रंथोंसे उद्धरण एवं उनके सन्दर्भ कहीं रोमन लिपिमें दिये गयेहैं और कहीं देवनागरी लिपिमें (पृ. ११३, १२४ आदि)। हिन्दी पुस्तककी दृष्टिसे भी, और एकरूपताकी दृष्टिसे भी उन्हें देवनागरी लिपिमें ही देना उपयुक्त होगा।

लेखिकाने एक नये विषयपर लेखनी चलायीहै, इसके लिए हम उसका स्वागत करतेहैं। यह विषय अभीतक लेखोंतक ही सीमित रहाहै, इसपर पूरी पुस्तक लिखना दुष्कर कार्य था; पर श्रीमती भाटियाने इसे सुकर कर दिखाया, इसके लिए उन्हें हार्दिक बधाई। पुस्तककी रूपरेखा शोधप्रबन्ध जैसी है, और विषयका

परिपाकभी शोधकीही कोटिका है। एक नये विषयपर प्रकाशकने पुस्तक प्रकाशित करनेका साहस किया, इसके लिए वहभी बधाईका पात्र है। शृंगारके प्रसाधनोंका इतिहास जाननेकी दृष्टिसे यह पुस्तक निश्चित रूपसे महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। □□

व्यक्ति : कृतित्व

रहबर : एक चुनौती[1]

लेखक : डॉ. विश्रान्त वसिष्ठ
समीक्षक : डॉ. प्रभाकर माचवे.

'दो शब्द' में लेखकने लिखाहै—इस कृतिका मुख्य ध्येय 'रहबर' के कृतित्वकी ओर सुविज्ञ एवं जिज्ञासु पाठक का ध्यानाकर्षित करना मात्र है और इसीलिए यहाँ इन की प्रायः समस्त कृतियोंका परिचय एवं सारांशात्मक 'सीमाक्षाएं' (शायद समीक्षाएं चाहिये था) भी प्रस्तुत की गयीहैं।

यही इस पुस्तककी समीक्षाकी सीमा है। मुद्राराक्षसकी गलतीसे पुस्तकका असली रूप उभर आया। पहले ३४ पृष्ठ 'रहबर' की जीवनकी और साहित्य-निर्माणकी प्रक्रियाकी घटनाओंका रेखाचित्र है। शरीर से, मनसे, आर्थिक दृष्टिसे, सामाजिक दृष्टिसे, दो-दो भाषाओंमें लिखनेके कारण 'रहबर' को बहुत कष्ट झेलना पड़ा। उसका उनकी मनोरचनापर स्थायी प्रभाव पड़ गयाहै।

जो पंजाबी लेखक प्रगतिशील लेखक संघकी ओर झुके और मार्क्सवाद-साम्यवादकी ओर आये उन्हें मैंने उर्दू तबकेमें देवेन्द्र सत्यार्थी और 'रहबर' का बहुत मजाक उड़ाते हुए देखाहै। वैसे वे सब दोष जो वे 'रहबर' में देखतेथे, खुद उनमेंभी थे। पर 'रहबर' स्पष्टवादी थे। और बकौल मसलके –

सादुल्ला खरी-खरी कहे
सबके मनसे उतरा रहे

यही हाल उनकी 'बेनकाब' पुस्तकोंका हुआ। यशपालने भी 'गाँधीवादकी शव-परीक्षा' सन् ४२ में लिखी थी। तब साम्यवादी पार्टीकी वही 'लाईन' (पालिसी) थी। गुरुदत्तने भी गांधीवादके विरुद्ध कम नहीं लिखा। पर अति वाम और अति दक्षिण दोनों जिसकी तीव्र आलोचना करते रहे, वे कहां हैं और गाँधी कहां हैं? 'रहबर' ने तिलक और विवेकानन्दमें, दयानन्दमें शरण पायी।

सबसे अच्छी किताब उनकी 'प्रगतिशील साहित्य'पर थी। पहली बार उर्दू और हिन्दीमें भारतीय प्रगतिशील लेखक संघकी अन्दरूनी कमजोरियों, अन्तर्विरोधोंपर यहाँ प्रश्न चिह्न लगायाथा। हालमें उसी कड़ीमें 'रहबर' ने डॉ. रामविलास शर्माका खोखला मार्क्सवाद नामक पुस्तिका लिखीहै। वस्तुत: अरुण शौरीकी लेखमालाके बाद, जो सप्रमाण सामने है, साम्यवादी बंधुओंकी राष्ट्र-भक्ति और 'साम्राज्यवाद-विरोधी' चरित्रकी बहुत अधिक चर्चा करना व्यर्थ है।

इसी दृष्टिसे 'रहबर' की 'माओत्से तुंग' की जीवनी पढ़नी चाहिये। प्रस्तुत पुस्तकके लेखकने ठीकही कहाहै 'इस प्रकार हम देखतेहैं कि 'रहबर' ने अपनी कृतिमें पहली बार समस्त अच्छाइयोंके साथ माओकी गलतियों-भूलोंकी व्याख्या कीहै। अन्यथा लेखक वर्ग या तो अन्ध श्रद्धामें केवल गुणगान करता रहाहै या फिर विरोध भाव

1. प्रकाशक : रचनाकार प्रकाशन, १५८६/१ ई, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : १६५; क्रा. ८३; मूल्य : ३०.०० रु.।

के साथ आलोचना केवल आलोचना !' (पृ. १६१)

'रहबर', जिनकी उम्र अब इकहत्तर वर्षकी है, और जिन्होंने हिन्दीमें ४ कहानी संग्रह, १४ उपन्यास, दस समीक्षा ग्रन्थ तथा पाँच विविध साहित्य, पांच अनुवाद कुल ३८ पुस्तकें लिखीं और उर्दू में तीन कहानी संग्रह, चार उपन्यास, दो अनुवाद और तीन समीक्षा पुस्तकें यानी एक दर्जन पुस्तकें लिखीं अबतक दोनों भाषाओं में उपेक्षितही रहे। यानी उनकी समस्त कृतियोंपर या व्यक्तित्वपर किसीने कोई पुस्तक नहीं लिखी। डॉ. विश्रांत वसिष्ठ इस कार्यके लिए बधाईके पात्र हैं। उनकी समग्र कृतियोंकी सूची परिशिष्टमें दी है जिसमें पृ. १६५ पर दो गलतियां हैं :

छपा है	**चाहिये था**
अकादमी	अकादेमी
कृष्णा पिल्ल	तकषी शिवशंकर पिल्लै

'रहबर' लेखनजीवी रहे हैं और बहुत अंशोंतक यथार्थवादी। राष्ट्रीयतापर उनका अधिक बल है, अन्तर्राष्ट्रीयता बादमें आतीहै। इस दृष्टिसे डॉ. विश्रांत वशिष्ठने उनकी रचनाओंपर जो संतुलित अभिमत दियेहैं वे बहुत उपयोगी और साहित्यके विद्यार्थीके लिए कामके हैं। जैसे 'रहबर' की कहानियोंकी विशेषताएं—

इन सभी कहानियोंकी भाषा एकदम सीधी सरल होतीहै, जिसमें लोक प्रचलित किसीभी शब्दके प्रयोगका परहेज नहीं, चाहे वह शब्द अरबी, फारसी, पंजाबी, अंग्रेजी, संस्कृत किसीभी भाषाका क्यों न हो। कथोपकथनभी स्पष्ट और कथानकको गन्तव्यकी ओर अग्रसर करनेको उत्सुक होतेहैं। इनके कथानककी सबसे बड़ी विशेषता और कहानीका मूल अपने इर्द-गिर्दकी घटनाओं को ही प्रस्तुत करनाहै। यों तो कहानीके तत्त्वोंकी दृष्टि से इनमेंसे अधिकको आदर्शही कहना होगा फिरभी इन की सोद्देश्यता तथा द्वन्द्व चित्रणसे कहानियोंको विशेष बल मिलताहै।

'रहबर' के उपन्यासोंकी विशेषताएं—

'कुछ पाठकों और मित्रोंने कुमुदकी आत्महत्यापर आपत्ति कीहै। इनका तकाजा है कि मुझे इस समस्याका कोई और हल पेश करना चाहियेथा। लेकिन मेरा विचार यह है कि समस्याका वैयक्तिक हल सम्भव नहीं है। जब समाज बदलेगा यह समस्या तभी हल होगी। वैसे कुमुद जो रहीहै पर उसका जीना समस्याका हल नहीं' (नया साहित्य, नवम्बर १९६४, पृष्ठ ८) और 'रहबर' के समस्त उपन्यासोंके लिए यही बात सत्य उतरतीहै।

भाषा आदिके बारेमें इनके उपन्यासोंमें कहानियोंकी सभी विशेषताएं निहित हैं। साथही विभिन्न कथावस्तुओंको एक धागेमें पिरोकर समक्ष लानेमें 'रहबर' का सिद्धहस्त होनाभी प्रश्नातीत है।

समग्रत: 'रहबर' का कथा साहित्य रोचक, प्रेरक तथा समकालीन परिस्थितियोंका लेखा-जोखा होताहै। इसमें न तो प्रकृति चित्रणका विरोध है और न नारी सौन्दर्यके चित्रणका मोह। 'रहबर' के समक्ष सौन्दर्य चर्म में नही कर्ममें है और धर्म पलायनमें नहीं संघर्षमें।

'रहबर'का समीक्षा साहित्य—

'रहबर' की तीक्ष्ण दृष्टि नकाबों और तहखानोंमें से तथ्योंको समक्ष लानेकी ओर ही जातीहै। और जब ये समर्थन करतेहैं अथवा स्थापना यानी कि भंजनके उपरांत निर्माणकी ओर बढ़तेहैं तो प्रत्येक विरोधीको करारा और सटीक उत्तर देनेकी स्थितिमें होतेहैं। जिस तिलकको रूढ़िवादी और स्त्री शिक्षाका विरोधी बताकर नकारनेका प्रयत्न किया जाता रहाहै उसी तिलकको 'रहबर' ने युग-पुरुष सिद्ध कियाहै। यही स्थिति विवेकानन्दकी है जिसे स्वामी कहकर धर्मकी पुड़ियामें बन्द करके फेंकनेका प्रयास किया गयाहै। 'रहबर' ने उसी विवेकानन्दकी मार्क्सवादी 'व्याख्या' की और बताया कि जो स्थान पश्चिममें हेगलका है वही हमारे विवेकानन्दका है। प्रेमचन्दके साथभी यही हुआ कि उन्हें विभिन्न वर्गोंने विभिन्न प्रकारसे नकारनेके प्रयास किये। 'रहबर' ने उनका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत करके बादके साहित्यकारों-समीक्षकोंको बताया कि तुम्हें अभी उपन्यास सम्राट्से बहुत कुछ सीखनाहै। 'रहबर' की व्यक्तित्व, समीक्षाओंमें देश और कालकी सीमाओंकी कदाचित चिन्ता नहीं की गयी है।

कुल मिलाकर इस पुस्तककी उपलब्धि यही है कि इसमें 'रहबर' की हर किताबको पढ़कर उसका सारांश प्रस्तुत कियाहै। विवेकानन्द और, होचीमिन्ह शायद उन की लिखी जीवनियोंमें सबसे अच्छी हैं। और उपन्यासों में सकल्प, किस्सा तोता पढ़ानेका और मिथककी मौत।'

पुस्तकका उपशीर्षक 'एक चुनौती' दियाहै। वह शायद इसी अर्थमें सार्थक है कि अबतक इस युयुत्सु लेखकपर किसीने कुछ नहीं लिखाथा। वसिष्ठने यह कार्य सफलतापूर्वक अन्जाम दियाहै। इसे पढ़कर 'रहबर' से कोई पथिक राहका दिशा-दर्शन लेना चाहे तो ले। □

संस्मरणोंके सुमन[1]

लेखक : डॉ. रामकुमार वर्मा

समीक्षक : डॉ. कमलसिंह

डॉ. रामकुमार वर्मा बहुमुखी प्रतिभाके धनी साहित्यकार हैं। कवि, इतिहासकार एव एकांकीकारके रूपमें तो उन्होंने हिन्दी-जगत्में अप्रत्याशित ख्याति प्राप्ति कीही है उनके संस्मरणोंका प्रस्तुत संकलनभी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

पुस्तकमें दो प्रकारके संस्मरण हैं—एक तो, महान् विभूतियोंसे संबंधित और दूसरे आत्मकथात्मक एवं यात्रावृत्तात्मक। पहले प्रकारके संस्मरणोंमें लेखकने जहां एक ओर, हिन्दी-साहित्यकी बारह महान् प्रतिभाओंसे संबंधित संस्मरण दियेहैं, वहीं महात्मा गांधी, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. अमरनाथ झा एवं श्रीलालबहादुर शास्त्री जैसे महापुरुषोंसे संबंधित संस्मरणभी दे दियेहैं। संस्मरणोंके अतिरिक्त 'साहित्य शिल्प', 'काव्यानुभूति', 'रसानुभूति'एवं 'साक्षात्कार'इत्यादि नामोंसे कुछ सामग्री औरभी इसी पुस्तकमें है। यह सामग्री अपनेमें बहुत अच्छी एवं उच्चकोटिकी है, यह बात अलग है किन्तु इस पुस्तकमें इस सामग्रीका संयोजन न तो उचितही लगता है और न पुस्तककी विधात्मक प्रवृत्तिसे मेलही खाताहै।

वर्माजीकी लेखनीमें सरस्वतीका वास है। प्रस्तुत पुस्तकके संस्मरणोंको पढ़कर ऐसा लगताहै कि वर्माजी संस्मरण लिखनेमें उन विधाओंसे भी अधिक समर्थ एवं आगे हैं, जिन विधाओंमें उन्होंने अबतक कीर्ति प्राप्त कीहै। हिन्दी-जगत् उनके अवशिष्ट संस्मरणोंके प्रकाशित होनेकी प्रतीक्षामें है।

वर्माजी मूलतः कवि हैं और उनके इन संस्मरणोंमें यत्र-तत्र कविताओंके सप्रसंग उद्धरण तो मिलही जातेहै, गद्यमें भी कवि-हृदय झलकता दृष्टिगत होताहै। एक उदाहरण पर्याप्त होगा "वे दिन वसन्तके थे। उमंगोंकी गति लेकर समीर संचरण करताथा, और प्राणोंकी सुगंधिही फूलोंमें निवास करतीथी। कलकी कली आज फूलका रूप रखतीथी तो उसकी पंखुड़ियाँ गिननेको मन होताथा।" (पृ. ५५)

वर्माजीके संस्मरणोंमें यत्र-तत्र बड़ेही आकर्षक बिम्ब दृष्टिगत होतेहैं। प्रेमचन्दजी वाले संस्मरणसे गत्यात्मक बिम्बका एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—"ठीक समयपर ट्रेन आयी और स्टेशनपर हलचल मच गयी। मुसाफिर उतरने लगे और सामान लेचलनेके लिए कुलियोंसे भाव तय करने लगे। तभी मैंने देखा कि तीसरे दर्जेके डिब्बेसे एक सज्जन उतर रहेहैं और कुलियोंकी छातीपर मूंग दलते हुए अपना बिस्तर स्वयं अपनी बगलमें दबाये प्लेटफार्म पर आगे बढ़ रहेहैं।" (पृ. ३९)

वर्माजीके ये संस्मरण उनकी भावात्मक एवं कलात्मक सफलताके द्योतक तो हैंही, साथही इनका महत्त्व इसलिए भी अधिक है कि इनमें संस्मरणोंके माध्यमसे वर्माजीने ऐसी घटनाओंको संजोया है, जो पाठकके लिए आकर्षक, प्रेरक, ज्ञानवर्धक, हृदयविदारक एवं रोमांचक हैं। ☐

मुंशी अजमेरी[1]

लेखक : मैथिलीशरण गुप्त

समीक्षक : डॉ. कमलसिंह

"संस्कृत सुनाऊं, छन्द भाषाके बनाऊं और
पिंगलको डिंगल समेत अपनाऊं मैं,
मुख ते बजाऊं सितार और सरोद वाद्य
देश-परदेशके विशेष गीत गाऊं मैं।
कथा तथा कीर्तन कहानी इतिहास कहूं
नाना रागरंग सों रईसको रिझाऊं मैं,
मूल मारवाड़, जन्मभूमि बुन्देलखण्ड
नांव अजमेरी चिरगांवको कहाऊं मैं।"

मुंशी अजमेरी आधुनिक हिन्दी-साहित्यके अनुपम व्यक्तित्व एवं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तके परम आत्मीय मित्र थे। उनके संस्मरणोंकी पाण्डुलिपिको राष्ट्रकविके सुपुत्र श्री उर्मिलाचरण गुप्तने प्रकाशित कर हिन्दी-जगत्के सम्मुख कतिपय अनजान रहस्योंसे पर्दा हटा लिया है। इन संस्मरणोंसे मुंशी अजमेरीके व्यक्तित्व एवं प्रतिभाका परिचय तो मिलताही है, साथही प्रसंगवश श्री मैथिलीशरण गुप्तका व्यक्तित्व एवं उनकी प्रतिभा ऐसे उजागर हो जातेहैं, शायद इस कृतिके न आनेपर वह सम्भव नहीं होता।

राष्ट्रकविने अपने 'निवेदन' में लिखाहै "बात यह है कि गद्य लिखनेसे मैं सदा अलसाता रहाहू। फिरभी मन

---

१. प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि., ९३ के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११-००३। पृष्ठ : १४४; डिमा. ८२; मूल्य : २२.०० रु.।

१. प्रकाशक : साकेत प्रकाशन, चिरगांव, झांसी। पृष्ठ : १०८; का ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

पर एक बोझ निरन्तर अनुभव करताथा। अन्तमें 'अब नहीं तो फिर कभी नहीं' की स्थिति आगयी। अतएव जैसा बना, मैंने यह प्रयास कियाहै।" मेरी अपनी धारणा है कि पाठक प्रस्तुत कृतिको अगर पढ़ना प्रारम्भ करदे तो पूरी पुस्तक पढ़कर ही दम लेगा और अनुभव करेगा कि यह गद्यकी पुस्तक राष्ट्रकविकी किसीभी काव्य-पुस्तकसे कम नहीं है। अभिव्यक्तिकी सबलता, सजगता, सरसता एवं आकर्षण, जैसा इस कृतिमें लगा, वैसा उनकी काव्य-कृतियोंमें नहीं। काश! राष्ट्रकवि कुछ और संस्मरण लिख गये होते। पूरी पुस्तक जहां एक ओर हास्य, व्यंग्य, वक्रोक्ति एव वाग्वैदग्ध्यसे ओत-प्रोत है, वहीं दूसरी ओर हिन्दीके विकास एवं उत्थानकी भावना एवं दर्दसे भरी हुई है। कुछ बानगी प्रस्तुत हैं—

"सम्मेलनमें बच्चनजीने अपनी मधुशाला' भी सुनायीथी। पास बैठे एक सेठजीसे उसकी प्रशंसा सुनकर अजमेरीने पूछा—"मधुशालाका अर्थभी आप समझतेहैं? उन्होंने कहा—"क्यों नहीं, 'मधुशाला'—हमारी कांग्रेस और क्या?" (पृष्ठ ९१)

"एक बार उन्हें समस्या दी गयी—

अब ये नैना स्यामके सखी हमारे नाहि।

उन्होंने सुनतेही ऐसी पूर्ति करदी मानो पूर्ति नहीं कंठस्थ रचना पढ़ रहेहैं।

देखत ही उन ओर वे आन बसे मन माँहि,
अब ये नैना स्यामके सखी हमारे नाहि।

किसीने कहा—"मुंशीजी, कुछ कौंसिल करनेको पेंसिल चाहिये। औरभी कुछ?" वे बोले -"तुमने ऐंसिल-सी छातीपर रख दीहै।" एक जनने कहा—"तीनही तुकें मिलीं।" अजमेरीने कहा—"रुबाई बन लो।" (पृ. १०२)

पुस्तकमें संस्मरणोंका कोई क्रम नहीं, संस्मरणोंका कोई शीर्षक नहीं; यहभी अभिव्यक्तिका एक आकर्षक एव निराला ढग है। हिन्दी-साहित्यके प्रेमी अवश्यही प्रस्तुत कृतिका आदर करेंगे। □

सुभद्राकुमारी चौहान[1]

[भारतीय साहित्यके निर्माता]

लेखिका : सुधा चौहान
समीक्षक : महेशचन्द्र शर्मा.

२०वीं शताब्दीके भारतीय साहित्यकी सर्वाधिक यशस्वी कवयित्रियोंमें हिन्दीकी प्रख्यात कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहानकी परिगणना की जातीहै। समीक्ष्य कृति को सुभद्राजीकी सुपुत्री श्रीमती सुधा चौहानने मूल हिंदी में लिखाहै। इसमें कवयित्रीके जीवन एवं व्यक्तित्वका अन्तरंग विश्लेषण नितान्त सरल एवं मार्मिक ढंगसे प्रस्तुत किया गयाहै।

पुस्तकको दस भागोंमें विभाजित किया गयाहै, पर इन भागोंको शीर्षक नहीं दिये गयेहैं। केवल संख्यासे हर भागको सूचित किया गयाहै। लेखिकाका कहनाहै: 'सुभद्राने लक्ष्मीबाईकी वीरगाथाको, उसके यशस्वी उत्सर्गको अपनी संगीतमयी तरल ओजस्विनी कवितामें आधुनिक युगके आल्हाके रूपमें ढाल दिया। उन्होंने अपनी 'झाँसीकी रानी' नामक कवितामें लक्ष्मीबाईकी स्वाधीनताकी लड़ाईको उसके सरल, मानवीय जीवनवृत्त को कल-कल, छल-छल बहते हुएसे छन्दमें बाँधाहैं (पृष्ठ १६)।' आधुनिक हिन्दी कवितामें शायद ऐसा यह एक अकेला वीर-गाथा काव्यहै, या पंवाड़ा है जो लोकगीतके समान लोक-मानसका अंग बन गयाहै' (पृष्ठ-२०)। जब राष्ट्रीय आंदोलन अपने उठानपर था 'झाँसीकी रानी' कविताने लोगोंके मानसमें त्याग, उत्सर्ग, बलिदान एवं शौर्यकी उदात्त भावनाओंको जगाया। सुभद्राकुमारी चौहानकी दूसरी लोकप्रिय कविता है 'वीरोंका कैसाहो बसन्त?' लेखिकाका कहना सच है कि मनकी भावना की एक सीधी-सच्ची अभिव्यक्ति, ऐसी भाषामें, जो हमारे रोजके कामकाजकी भाषा है, काव्यका गुणही मानी जानी चाहिये। (पृष्ठ २६)

सुभद्राकी कवितामें शायदही ऐसे कठिन एवं गरिष्ठ शब्द मिलें जिनके अर्थ-बोधके लिए कोशपर निर्भर रहना पड़े। सीधे-सादे बोलचालके वाक्योंसे ही जैसे उनकी कविताका निर्माण होजाताहै।

'तुम मुझे पूछतेहो जाऊँ?
मैं क्या जवाब दूं तुम्हीं कहो!
'जा ' कहते रुकती है जबान;
किस मुंहसे तुमसे कहूं रहो।'

इस कृतिके अनुशीलनसे हम सुभद्राकी जीवन-दृष्टि से भी अवगत होतेहैं। उनकी जीवन-दृष्टि है 'विश्वास, प्रेम, साहस हैं, जीवनके साथी मेरे।' इसीलिए वह कहती है—

आशा आलोकित करती

---

[1] प्रकाशक: साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ: १००; डिमा. ८१; मूल्य: ४.०० रु.।

मेरे जीवनके प्रतिक्षण
हैं स्वर्णसूत्रसे वलयित
मेरी असफलताके घन (पृ. २७)

सातवें भागमें कवयित्रीके साहित्यिक परिवारकी जानकारी मिलतीहै। इस कृतिमें लेखिकाने कहीं-कहीं संस्कृतकी उक्तियोंका प्रयोगभी कियाहै: 'प्रियेषु सौभाग्य-फला हि चारुता' (पृ. २५), किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' (पृ. २५) 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' (पृ. ६०)।

समीक्ष्य कृतिमें यत्र-तत्र ऐसे वाक्योंका प्रयोगभी देखनेको मिलताहै। जिन्हें 'सूक्ति'के रूपमें ग्रहण किया जा सकताहै। जैसे—

(१) स्वस्थ और उदात्त विचारोंके पनपनेके लिए स्वस्थ मन बहुत आवश्यक है। (पृ. २५)।

(२) महत्त्वाकांक्षा और प्रतियोगिता, सदासे आदमी की प्रगतिके महत्त्वपूर्ण प्रेरक कारण रहेहैं। (पृ. ४६)।

(३) 'अपने प्रति किये गये अन्यायको आदमी कभी क्षमा करताहै और कभी अनदेखा करताहै क्योंकि जीनेके लिए उसे कोई सार्थक आधार चाहिये। (पृ.५६)।

सुभद्राकुमारी चौहानकी कवितामें जहां एक ओर दैनन्दिन जीवन एवं जाने-पहचाने मानव व्यापारोंका चित्रण मिलताहै तो दूसरी ओर अदम्य राष्ट्रप्रेम एवं सामाजिक समस्याओंके संघर्षभी। हिन्दीके महाप्राण 'निराला' तथा मुक्तिबोधने सुभद्राजीकी बड़ी प्रशंसा की है।

कृतिके अन्तमें एक 'चयन' दिया गयाहै (पृ. ७५—१००) जिसमें सुभद्राकुमारीकी कविताएं हैं। यह चयन निश्चयही प्रस्तुत लघु कृतिको उपादेय बनाताहै। यह कहना निरापद है कि इस कृतिमें आद्योपांत सुभद्राकुमारी चौहानके जीवन एवं व्यक्तित्वको प्रस्तुत किया गयाहै।□

वैदिक साहित्य

कुन्तापसूक्तसौरभम्[1]

[अथर्ववेदके २०वें काण्डके १२७-१३६ सूक्तोंका संस्कृतमें आध्यात्मिक भाष्य]

भाष्यकार: जगन्नाथ वेदालंकार
समीक्षक: (१) स्वामी विद्यानन्द सरस्वती
(२) डॉ. रामनाथ वेदालकार
(३) माधव पंडित

[१]

ज्ञान-विज्ञानके अक्षय भण्डार वेद वह दिव्य ज्ञान है जिसके आलोकमें मनुष्य अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनोंकी सिद्धि कर सकताहै। मनीषि-प्रवर श्री जगन्नाथ वेदालंकार कृत 'कुन्तापसूक्तसौरभम्' के रूपमें वेदकी अनादिकाल से प्रवहमान पीयूषधारासे अवगाहनकर जहां सामान्यजन आनन्दसे आप्लावित हो उठेंगे, वहां विद्वज्जनोंको (विशेषत: पाश्चात्य विद्वानोंको) यह देखकर प्रसन्नता होगी कि आपातत: निरर्थक, अनर्गल अथवा असंबद्ध प्रलाप प्रतीत होनेवाले वेदमन्त्र भी अपने भीतर कितने गम्भीर तथा उपादेय अर्थोंको समेटे हुएहैं। वास्तवमें 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' महर्षि कणादकी इस घोषणाके रहते वेदमें इस प्रकारके दोष आरोपित करने वाले स्वयं अनर्गल प्रलापके दोषी हैं।

आलोच्य ग्रन्थ अथर्ववेदान्तर्गत कुन्तापसूक्तों (२०-१२७-१३६) का आध्यात्मिक भाष्य है। वस्तुत: इस भाष्यके वैशिष्ट्यको समालोचकके शब्दोंसे नहीं, स्वयं

१. प्रकाशक: गुरु गङ्गेश्वरचतुर्वेद प्रकाशन संस्थान, श्रौतमुनि गाँधी मार्ग, वृन्दावन (मथुरा)। पृष्ठ: १५३ + १४; डिमा. ८३; मूल्य: २५.०० रु.।

आद्योपान्त देखकरही जाना जा सकताहै। भाष्यकारने मन्त्रान्तर्गत प्रत्येक शब्दके भीतर पैठकर उसके गूढ़ार्थको खोज निकालाहै। यह भाष्य ग्रन्थकारके विस्तृत अध्ययन, परिशीलन एवं मन्थनका परिणाम है। भाष्यकारकी व्याख्या व्याकरण तथा निरुक्त-सम्मत तो हैही, अपने अर्थोंकी पुष्टिमें उन्होंने दर्शन, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंसे पुष्कल प्रमाण उपस्थित कियेहैं। पदे-पदे ग्रन्थकारके वैदुष्यकी छाप दृष्टि-गोचर होतीहै। मन्त्रार्थकी सिद्धिमें अनेकत्र वेदमन्त्रोंके प्रस्तुत किये जानेसे 'वेदसे वेदार्थ' की मान्यताको बल मिलताहै। निश्चयही इन सूक्तोंका इतना सुन्दर एवं सर्वांगपूर्ण भाष्य आजतक देखनेमें नहीं आया। वेदके एक-एक अंशका भाष्य करनेमें इसी प्रकार साधनाकी जाये तभी वेदका गौरव बढ़ सकताहै।

यदि मन्त्रार्थके द्रष्टाही ऋषि कहातेहैं तो जिस सूक्ष्मेक्षिका दृष्टिसे श्री जगन्नाथजीने कुन्ताप-सूक्तान्तर्गत मन्त्रोंका दर्शन कियाहै उसे देखते हुए उन्हें इन सूक्तोंका ऋषि माना जा सकताहै।

इस ग्रन्थका हिन्दीमें अनुवाद जितनी जल्दी होसके, होना आवश्यक है।

[२]

अथर्ववेद शौनकीय संहिताके २०वें काण्डके १२७ से १३६ तक के कुन्ताप-सूक्त कहलातेहैं, जिनमें कुल १४७ मन्त्र है। ये सभीं मन्त्र बड़े ही रहस्यमय हैं और वेदोंके अन्य मन्त्रोंसे विलक्षण प्रकारके हैं, जिनका सामान्य संस्कृतज्ञको कुछभी अभिप्राय समझमें नहीं आता। सायण का भाष्यभी इनपर उपलब्ध न होनेसे ये मन्त्र विद्वानोंके लिए पहेलीसे बने रहेहैं। पाश्चात्य विचारकोंने तो यहां तक कहाहै कि ये अनर्गल प्रलापमात्र हैं, इनमें कोई आशय खोजना निरर्थक है। प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने इन समस्त मन्त्रोंकी संस्कृत भाषाके माध्यमसे अध्यात्मपरक व्याख्या कीहै। कुछ नमूने इस प्रकार हैं :

एता अश्वा आप्लवन्ते । तासामेका हरिक्निका। हरिक्निके किमिच्छसि ? साधुं पुत्रं हिरण्ययम्। "ये घोड़ियां कूद रही हैं, इनमेंसे एक हरिक्निका है। हे हरि-क्निके, तू क्या चाहती है ? मैं चाहती हूं कि मुझे साधु सुनहरा पुत्र प्राप्तहो।" लेखककी व्याख्यानुसार ये घोड़ियां इन्द्रियवृत्तियां हैं, आप्लवनसे ईश्वरीय सरोवरमें स्नान अभिप्रेत है। जब वे इन्द्रियवृत्तियां हरि परमेश्वरमें स्नानकर लेतीहैं, तब हरिक्निका कहलातीहैं और सकल-ऋद्धि-सिद्धिप्रद हिरण्मय चैत्य शिशुके जन्मकी कामना करसे लगतीहैं।

त्रीणि उष्ट्रस्य नामानि। हिरण्य इत्येके अब्रवीत्। द्वौ वा ये शिशवः। नीलशिखण्डवाहनः। "उष्ट्र (ऊंट) के तीन नाम हैं कुछके मतमें उसका नाम हिरण्य है। शिशुजन उसके दो अन्य नाम बतातेहैं। वह उष्ट्र नीले मयूरपिच्छको धारण करनेवाला है।" लेखकने अपनी व्याख्यामें उष्ट्रसे परमात्मा अर्थ गृहीत कियाहै—**ओषति वहति समूलाम् अविद्याम् इति उष्ट्रः**—समूल रूपसे अविद्याको दग्ध करनेके कारण परमात्माका नाम उष्ट्रहै।

लेखकने प्रायः सर्वत्र अपनी व्याख्यामें वैदादि साहित्यके प्रमाण दियेहैं तथा अर्थको व्याकरण-सम्मत बतानेका भी प्रयास किया है। निश्चयही यह भाष्य वेदकी अध्यात्मपरक व्याख्यामें अपना एक विशेष स्थान रखेगा। यद्यपि ये सूक्त गोपथब्राह्मणमें व्याख्यात हैं तथा श्री क्षेमकरणदास, श्री जयदेव विद्यालंकार, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार आदिभी इनका संक्षिप्त हिन्दी भाष्य कर चुकेहैं, तोभी प्रस्तुत भाष्य नवीनता एवं प्रमाण-निर्वचन व्याकरणादि-परिपुष्टताके कारण विशेष स्वागत योग्य है। यह भाष्य श्रीयोगी अरविन्दकी अध्यात्म-दृष्टिको ध्यानमें रखकर लिखा गयाहै। पाठकको कहीं-कहीं अर्थ क्लिष्ट एवं कल्पनाप्रसूत प्रतीत होसकतेहैं।

[३]

कुन्ताप सूक्तोंकी प्रस्तुत व्याख्या एवं भाष्यके संबंधमें हम विद्वान् पाठकोंका ध्यान उस परम्पराकी ओर खींचना चाहेंगे जो भारतीय साहित्यमें प्रारम्भ से विद्यमान है और निरन्तर प्रवाहित रहीहै। हिन्दी साहित्यके समीक्षकोंने इसे 'उलटबांसी शैली' नाम दियाहै। इन समीक्षकोंका मानना है कि उलटबांसी 'पद रूढ़ मार्गसे व्यतिक्रम' अथवा लीक छोड़कर चलने और सोचनेकी प्रक्रियाको ध्वनित करताहै। इसका सर्वाधिक विकास कबीरने किया और सर्वाधिक जटिलता गोरखनाथने प्रदान की। साहित्यका ऐति-हासिक दृष्टिसे अध्ययन करनेवालोंकी मान्यता है कि गूढ़ार्थ वैदिक ऋचाएं उलटबांसीका मूल स्रोत हैं। उलटबांसीके लिए जिन तत्त्वोंको अनिवार्य माना गयाहै, उनमें प्रतीक-संकेत प्रधान शब्द-वैचित्र्यका रहना तथा विरोध-विसंगतिजन्य असंबद्धताका होना प्रमुख है।

वैदिक विद्वान् श्री जगन्नाथजीने कुन्तापसूक्तोंका

जो भाष्य प्रस्तुत कियाहै, वह हिन्दी साहित्यकी उलटबांसी शैली, प्रहेलिका और कूट शैलियोंके मूलस्रोत का स्पष्ट संकेत है। इस भाष्यमें केवल लेखककी व्याकरणिक व्याख्याएं नहीं हैं अपितु शब्द, अर्थ, निहित भाव, संकेत और प्रतीककी निरन्तर परम्पराका भी सप्रमाण उल्लेख है। 'अश्व' का अर्थ इन्द्रिय-वृत्ति क्यों किया गयाहै, इसपर भाष्यकारकी टिप्पणी है 'एताः अश्वाः, इमा इन्द्रियवृत्तयः, इन्द्रियाणि हयानाहुः (कठो. १.३.४) इति इन्द्रियाणां हयत्वमश्वत्वं वा शास्त्रविदां समयः (पृ. ३३)। इस प्रकार प्रतीक-संकेत व्याख्या सोदाहरण विद्वान् भाष्यकारने कीहै और इसे शास्त्रज्ञोंका 'समय' कहा है। पूर्ण परम्परा और साहित्यमें अन्तःप्रवेश किये बिना जिन पाश्चात्य विद्वानोंने इसे 'प्रलाप' कहकर प्रलाप कियाहै, उन्होंने अपनेही ज्ञानकी सीमा और वैदिक साहित्यकी परम्परासे अपरिचयका प्रमाण प्रस्तुत कियाहै। प्रारंभ में हिन्दी साहित्य और इसके इतिहासके मनीषियोंने उलटबांसी शैली साहित्यकी भी उपेक्षा कीथी।

इस असाधारण व्याख्याके लिए वैदिक विद्वान्का हम अभिनन्दन करतेहैं और उनसे अन्य सूत्रोंकी व्याख्या की आशा रखतेहैं। □□

प्राप्ति सूचना

[समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकोंकी सूची। चुनी पुस्तकोंकी समीक्षाएं अगामी अंकोंमें प्रकाशित होंगी। समीक्षार्थ पुस्तककी दो प्रतियां भेजें। एक प्रतिकी प्राप्ति-सूचना प्रकाशित कर दी जायेगी।]

व्यक्ति : कृतित्व

मरु-भूमिका वह मेघ (स्वर्गीय उद्योगपति घनश्याम दास बिड़लाका जीवन और जीवन-दर्शन)—रामनिवास जाजू। प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी द्वार, दिल्ली-६। पृष्ठ : ४००; रायल ८४; मूल्य : ५०.०० रु.।

मुक्तिबोधकी आत्मकथा विष्णुचन्द्र शर्मा। प्रका. राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. ५००; डिमा. ८४; मूल्य : ६०.०० रु.।

मेरा जीवन प्रवाह वियोगी हरि। प्रका. सस्ता साहित्य मण्डल, एन-७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१। पृ. ३१४; डिमा. ८३ (द्वि. आ. परिवर्द्धित संस्करण); मू. २०.०० रु.।

साक्षी हैं हम विजय। प्रका. वरुण प्रकाशन, ई-५३, अमर कालोनी, नयी दिल्ली-२४। पृ. ८०; डिमा. ८४; मूल्य : ३०.०० रु।

उपन्यास

मैं और मैं—मृदुला गर्ग। प्रका. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. २२७; डिमा. ८४; मू. ५०.०० रु.।

राहु-केतु श्रवणकुमार गोस्वामी। प्रका. राजपाल एंड संस, दिल्ली-६। पृ. २३७; क्रा. ८४; मू. ३०.०० रु.।

लापता—प्रभाकर माचवे। प्रका. राजपाल एंड संस, दिल्ली-६। पृ. १४०; क्रा. ८४; मू. २०.०० रु.।

कहानी

ईंटके ऊपर ईंट—महाश्वेतादेवी, अनु. प्रमोदकुमार सिन्हा। प्रका. राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृ. १५६; क्रा. ८४; मू. २२.०० रु.।

एक नाम और तथा अन्य कहानियां—सत्येनकुमार। प्रका. राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १६०; क्रा. ८४; मू. २४.०० रु.।

एक फूल दस कांटे—देवीदास आत्माराम घोडके । प्रका. निर्मलाबाई घोडके म. नं. १४-१०-१२५० पुराना पुल मार्ग, हैदराबाद (आं. प्र.) । पृ. ९१; क्रा. ८४; मूल्य : ५.०० रु. (पेपर बैक) ।

घट श्राद्ध—यू. आर. अनन्तमूर्ति, अनु. वी. आर. नारायण । प्रका. राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-२ । पृष्ठ १३६; क्रा. ८४; मू. ३०.०० रु. ।

जिस्मपर उगा ककन—कृष्णशंकर भटनागर । प्रका. मीनाक्षी पुस्तक मन्दिर, पी-१०, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ । पृ. ९२; क्रा. ८३; मू. १८.०० रु. ।

रक्तचाप—रमेश बक्षी । प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू. बी. बँग्लो रोड, दिल्ली-७ । पृ. १०८; क्रा. ८३; मू. २०.०० रु. ।

सूखते पोखरकी मछली—सूर्यकान्त नागर । प्रका. कमल प्रकाशन, प्रिंस यशवन्त रोड, इन्दौर-४ । पृ. ११२; क्रा. ८२; मू. १३.०० रु. ।

नाटक

आदमीका गोश्त—डॉ. विलास गुप्ते । प्रका. भारती भाषा प्रकाशन, ५१८/६बी, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२ । पृ. ६४; क्रा. ८३; मू. १५.०० रु. ।

जय सिद्ध नायक—चन्द्रशेखर कम्बार; अनुवाद : बी. आर. नारायण । प्रका. सरस्वती बिहार, जी.टी. रोड, शाहदरा दिल्ली-३२ । पृष्ठ : १०६; क्रा.८४; मूल्य : २५.०० रु. ।

जसमा ओड़न—शान्ता गांधी; प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-२ । पृ. १४२; डिमा. ८४; मू. ३५.०० रु. ।

बाढ़का पानी—शंकर शेष । प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन, बँग्लो रोड, दिल्ली-७ । पृ. ६३; क्रा. ८४; मू. १५.०० रु. ।

रामकी लड़ाई—लक्ष्मीनारायण लाल । प्रका. अम्बर प्रकाशन, ८८८ ईस्ट पार्क रोड, करोल बाग, नयी दिल्ली-५ । पृ. ७४; क्रा. ८३ (द्वि. सं.); मूल्य : ७.५० रु. (पेपरबैक) ।

हास्य-व्यंग्य

दरवाजेपर दस्तक—डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी । प्रका. जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार, मथुरा-२८१-००२ । पृ. १३८; क्रा. ८३; मू. २०.०० रु. ।

मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं—सुदर्शन मजीठिया । प्रका. ज्ञान भारती, ४/१४, रूपनगर दिल्ली-७ । पृ. १४५; क्रा. ८३; मू. १५.०० रु. ।

काव्य

अगली सुबहके नाम अग्निदूत । प्रका. दक्षिणायन; वितरक : सक्षम प्रकाशन, ५-२-४१०, हैदरबस्ती, सिकन्दराबाद ५००-००३ (आं. प्र.) । पृ. ६०; डिमा. ८३; मू. १५.०० रु. (पेपरबैक) ।

अग्निजा (संस्कृत-काव्य)—व्योमशेखर । प्रका. लोकालोक प्रकाशन, १५६, श्याम पार्क, साहिबाबाद (गाजियाबाद) उ. प्र. । पृ. ४८; डिमा. ८४; मू. २०.०० रु. ।

अब आगे सुनो—जनकराज पारीक । प्रका. श्रुति प्रकाशन, ३० मंडी ब्लाक, श्रीकरनपुर (राज.) ३३५-०७३ । पृ. १०७; डिमा. ८४; मू. २५.०० रु. ।

काली रातकी चीख—विजय । प्रका. वरुण प्रकाशन, ई-५३, अमर कालोनी, नयी दिल्ली-२४ । पृ. ६०; डिमा. ८४; मूल्य २५.०० रु. ।

परिप्रेक्ष्य कुहरों ढंका—डॉ. श्यामसुन्दर घोष । प्रका- प्रज्ञा प्रकाशन, गोड्डा (बिहार) । पृ. ५८; डिमा. ८४; मू. २०.०० रु. (पेपरबैक) ।

बोधिसत्व सुनें—अनिल राकेशी । प्रका. ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नयी दिल्ली । पृ. ९५; डिमा. ८४; मू ३०.०० रु. ।

मेरी श्रेष्ठ कविताएं—बच्चन । प्रका. राजपाल एन्ड संस, कश्मीरी द्वार, दिल्ली-६ । पृ. ४८०; डिमा. ८४; मू. ८०.०० रु. ।

मैं तेरी वंशी हूं माधव—सुभद्रा खुराना । प्रका. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली २ । पृ. ९०; डिमा. ८३; मू. २०.०० रु. ।

श्रीकान्त वर्मा : प्रतिनिधि कविताएं—सम्पा. विनोद भारद्वाज । प्रका. राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६ । पृ. १२३. क्रा. ८४; १५.०० रु. ।

सविनय और नाराज कविता—भगवतीचरण वर्मा । प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२ । पृ. १२८; क्रा. ८४; मूल्य : २४.०० रु. ।

सुनो मार्कण्डेय—ओम्प्रकाश गुप्त । प्रका. न्यू एज बुक सेंटर, २२ महासिंह गेट मार्किट, अमृतसर । पृ. ५६; डिमा. ८३; मू. २०.०० रु. ।

शोध : आलोचना

अथ कथा जात्रा—राजकुमार । प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन,

बंगलो रोड, दिल्ली-७। पृ. ८८; डिमा. ८४; मू. २५.०० रु.।

आलोचक रामविलास शर्मा—डॉ. नत्थनसिंह। प्रका. विभूति प्रकाशन, के-१४, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृ. ३०८; डिमा. ८३; मू. ७०.०० रु.।

चिन्तनके स्वर—लक्ष्मीकान्त गार्गेव। प्रका. भारती भाषा प्रकाशन, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृ. ९९; डिमा; ८४; मू. ३०.०० रु.।

तुलसी और, और तुलसी—डॉ. किशोरीलाल गुप्त। प्रका. किताब महल, १५ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद। पृ. १७९; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु.।

प्रेमचन्द : मूल्यांकन और मूल्यांकन—डॉ. नत्थनसिंह। प्रका. विभूति प्रकाशन, दिल्ली-३२। पृ. १४५; डिमा. ८२; मू. ३५.०० रु.।

भारतीय धर्म साधना—डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी : प्रका. किताब महल, इलाहाबाद। पृ. २३८; डिमा. ८४; मू. ५०.०० रु.।

मध्यकालीन बोधके आधुनिक सन्दर्भ—डॉ. बलराज शर्मा। प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७। पृ. १५४; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु.।

रासो काव्यधारा—डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ। प्रका. किताब महल इलाहाबाद। पृ. २००; डिमा. ८४; मू. मू. १४.०० रु.।

लघुकथा : बहसके चौराहेपर—सम्पा. सतीशराज पुष्करणा। प्रका. विवेकानन्द प्रकाशन, महेन्द्रू पटना-६। पृ. २८०; डिमा. ८३; मू. १००.०० रु.।

साहित्य समीक्षा और शोध अंजु मिश्र। प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७। पृ. १३३; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु.।

सूरकी काव्य माधुरी—डॉ॰ रमाशंकर तिवारी। प्रका. किताब महल, इलाहाबाद। पृ. २२२; डिमा. ८३; मू. १५.०० रु.।

सूरकी भक्ति भावना—डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री। प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७। पृ. १५६; डिमा. ८४; मू. ५०.०० रु.।

सूरकी मौलिकता—डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री। प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७। पृ. १९१; डिमा. ८४; मू. ५०.०० रु.।

विविध

आधुनिक पंचतन्त्र—सरन माहेश्वरी। प्रका. प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.)। पृ. ४०३, डिमा. ८४; मू. ३५.०० रु.।

आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन—डॉ. शोभाशंकर; प्रका. साहित्य भवन, प्रा. लि. ९३, के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-३। पृ. २६४; डिमा. ८०; मू. ४०.०० रु.।

कुन्तापसूक्तसौरभम्—जगन्नाथ वेदालंकार। प्रका. गुरु गंगेश्वर चतुर्वेद प्रकाशन संस्थान, श्रौत मुनि निवास, गांधी मार्ग, वृन्दावन (मथुरा)। पृ. १५३; डिमा; मू. २५.०० रु. (पेपरबैक)।

कृष्णकथा—सूरजमल मोहता। प्रका. सस्ता साहित्य मंडल, एन-७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१। पृ. ३३३; क्रा. ८४; मू. १५.०० रु.।

कैंसर—वैद्य विद्याधर शर्मा। प्रका. आयुर्वेद रिसर्च सेंटर, नवलगढ़ (राज.)। पृ. ६७; डिमा. ८३; मू. ३०.०० रु.।

वरुणके पुत्र वीरेन्द्रकुमार निगम। प्रका. सन्मार्ग, प्रका. दिल्ली-७। पृ. १११; डिमा. ८३; मू० ३५.००रु.।

वैदिक संस्कृति : दृग् स्पर्श आचार्य चतुरसेन। प्रका. सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७। पृ. २२४; डिमा. ८३; मू. ५०.०० रु.।

संभाषण—(भाषण संग्रह)—महादेवी वर्मा; प्रका. साहित्य भवन, इलाहाबाद। पृ. १३२; डिमा. ७६ (द्वितीय संस्करण; मू. ६.०० रु. (पेपरबैक)।

हिन्दू राज्य—बलराज मधोक। प्रका. वैचारिक विकल्प प्रकाशन, बैंक स्ट्रीट, (पटवारीजी कार्नर), नयी दिल्ली-५। पृ. १९२; क्रा. ८३; मू. १०.०० (पेपरबैक)।

राजस्थानी अध्यापक-साहित्य

घायल मुट्ठीका दर्द—(काव्य) सम्पादन : प्रकाश आतुर। प्रकाशक : सुरजीत प्रकाशन, व्यापारियों का मोहल्ला, बीकानेर। पृ. १२०; डिमा. ८३; मूल्य ११.२० रु.।

भीतर बाहर (कहानी-संग्रह) सम्पादन : मृदुला गर्ग। प्रका. सूर्य प्रकाशन मंदिर, बिस्सों का चौक, बीकानेर। पृ. २५६; डिमा. ८३; मू. १७.५०रु.।

रेतीके रात दिन (गद्य-विविधा) सम्पा. प्रभाकर माचवे। प्रका. सुरजीत प्रकाशन, बीकानेर। पृ. १६०; डिमा. ८३; मू. १४.५५ रु.।

हिवड़ै रो उजास (राजस्थानी रचनाएं)—सम्पा. श्रीलाल नथमल जोशी। प्रका. उषा पब्लिशिंग हाउस एम. जी. हास्पिटल रोड, जोधपुर। पृ. १७१, डिमा. ८३; मू. १५.०० रु.। □□

शाखा कार्यालय : ६३, गली राजा केदारनाथ,

चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

'प्रकर' के उपलब्ध पुराने अंक

१९६९ :	प्रकाशनारम्भ वर्ष : सभी अंक अप्राप्य	
१९७० :	बारहों अंक उपलब्ध : [जन. ७० : १९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन]	पूरा सैट २५.०० रु.
१९७१ :	मार्च, अप्रैल और अगस्त अंक छोड़ शेष अंक उपलब्ध [जनवरी-फरवरी संयुक्तांक : 'अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य' ; जुलाई अंक : '१९७० के उल्लेखनीय प्रकाशन']	पूरा सैट ३८.०० रु.
१९७२ :	बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : १९७१ के उल्लेखनीय प्रकाशन]	पूरा सैट ३०.०० रु.
१९७३ :	बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : भारतीय साहित्य : २५ वर्ष]	पूरा सैट ४०.०० रु.
१९७४ :	प्रकाशित अंक : अप्रैल, मई, जून, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर,	पूरा सैट १८.००
१९७५ :	प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, मार्च, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर	पूरा सैट २२.५० रु.
१९७६ :	प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर,	पूरा सैट २०.०० रु.
१९७७ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ३०.०० रु.
१९७८ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ३०.०० रु.
१९७९ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ३०.०० रु.
१९८० :	नवम्बर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध	पूरा सैट २७.५० रु.
१९८१ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ३०.०० रु.
१९८२ :	जून, अक्तूबर और दिसम्बर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध,	पूरा सैट २७.०० रु.
१९८३ :	बारहों अंक उपलब्ध	पूरा सैट ४०.०० रु.
	फुटकर अंक	३.५० रु.

'प्रकर,' ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली ११-०००७.

[दूरभाष : ७११३७६३]

त्रि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए संगीता कम्पोज़िंग एजेन्सी द्वारा भाटिया प्रेस, '२५७४ रघुवरपुरा-२ दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित.

प्रकर

श्रावण : २०४१ (वि.) जुलाई : १९८४ (ई.)

समीक्षित कृतियां

सम्पादकीय

विशिष्ट धार्मिक समुदाय : विशिष्ट अधिकार : आत्मार्पित देश — २ — वि. सा. विद्यालंकार

अंग्रेजीका व्यापार—

ट्रेडिंग इन लैंग्वेज—डॉ. तुलसीराम — ५ — डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

औद्योगिक प्रतिष्ठान

समृद्धिकी ओर : टाटा उद्योगकी कहानी—रूसी एम. लाला — १४ — डॉ. जमनालाल बायती

उपन्यास

दर्पण झूठ ना बोले श्रवणकुमार गोस्वामी — १७ — डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

समय एक शब्दभर नहीं है—धीरेन्द्र अस्थाना — १९ — डॉ. कमलकिशोर गोयनका

राज्यदान ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' — २१ — डॉ. भैरूंलाल ग[illegible]

कहानी संग्रह

प्यासी रेत—दामोदर सदन — २३ — डॉ. जवाहरसिं[illegible]

जो आदमी हम बना रहेहैं—रघुबीरसहाय — २५ — डॉ. शंकर पुणतांबेकर

काव्य-संकलन

अग्नि-शृंगार—केदारमान व्यथित — २७ — डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र

स्वर पाषाण शिलाके—रमेशचन्द्र — २८ — डॉ. अनिलकुमार मिश्र

अंगारोंके देश—अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' — ३० — डॉ. मन्तोषकुमार तिवारी

एक मुक्ति और—अग्निदूत — ३१ — प्रा. महेशचन्द्र पुरोहित

शोध : आलोचना

साधारणीकरण और सौन्दर्यानुभूतिके प्रमुख सिद्धान्त— डॉ. प्रेमकांत टंडन — ३१ — डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

हिन्दी उपन्यास : उत्तरशतीकी उपलब्धियां—डॉ. विवेकीराय — ३४ — सन्हैयालाल ओझा

व्यक्ति : कृतित्व

नेताजी (सम्पूर्ण वाङ्मय : खंड : १)—सम्पा. शिशिरकुमार बोस — ३९ — डॉ. विजय द्विवेदी

माताजी और श्रीअरविंद—रवीन्द्र — ४० — डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

वेद : धर्म : अध्यात्म

वेदमंजरी—डॉ. रामनाथ वेदालंकार — ४१ — जगन्नाथ वेदालंकार

गीता : एक नव्य चिन्तन—डॉ. [illegible] गुप्त — ४२ — डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित

पत्र पत्रिकाएं — ४३

वर्ष : १६ श्रावण : २०४१ (वि.)
अंक : ७ जुलाई : १९८४ (ई.)

प्रकर

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक. प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रकर शुल्क

भारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन (व्यक्तिगत)	३०१.०० रु.
आजीवन (संस्थागत)	५०१.०० रु.

विदेशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.०० रु.
हवाई डाकसे	२००.००रु.

मत अभिमत

☐ सम्पादकीय

जून ८४ के 'प्रकर' में 'उर्दू' पर सम्पादकीयके लिए हार्दिक बधाई। जहांतक मैं समझताहूं उत्तरप्रदेशमें हिन्दीवाले ९०%, उर्दूवाले ८% और शेष २% में अन्य भाषावाले हैं। वोटकी राजनीतिने राज्य सरकारको अन्धा बना दियाहै।

—डॉ अज्ञात, छायालोक, १११-ए/१८३,
अशोकनगर, कानपुर-२०८.०१२

उर्दू पर आपका सम्पादकीय ('प्रकर' : जून' ८४) बेलाग, दो टूक तथ्य प्रकट करताहै। विचारोत्तेजक और सामयिक सम्पादकीय लिखकर आपने हिन्दीके विरुद्ध जारी सरकारी षड्यंत्रका भण्डाभोड़ कियाहै, बधाइयां स्वीकारिये।

—डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', हिन्दी विभाग,
बी. एस. एम. कालेज, रुड़की (उ. प्र.)

'नव विक्रम संवत्' विषयक सम्पादकीय ('प्रकर' : अप्रैल' ८४) मार्मिक है। खेद है कि दिन प्रतिदिन हमारे सांस्कृतिक मूल्य ह्रासको प्राप्त होते जारहेहैं। हमारी मानसिक दासता इतनी गहरी होती जारहीहै कि हमारे हृदयोंमें स्वाभिमानकी भावना किसी प्रकारभी जागृत नहीं हो पारहीहै। हम दासताको ही स्वतन्त्रताका पर्याय समझने लगेहैं। देशकी स्वतन्त्रताकी पहचानके अपने कुछ चिह्न होतेहैं। उनके अभावमें देशकी अपनी पहचान नष्ट होजातीहै और स्वतन्त्र होतेभी उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहता। देशका यह कारुणिक अन्त कहां जाकर रुकेगा? सभी क्षेत्रोंमें यही दयनीय स्थिति है।

—वेदप्रकाश गर्ग, १४ खटीकान,
मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

'प्रकर' के सम्पादकीय लेख बहुतही महत्त्वपूर्ण होतेहैं। मेरा सुझाव है इन लेखोंको संकलितकर एक अलग पुस्तकके रूपमें इनका प्रकाशन किया जाये।

—कन्हैयालाल सेठिया, सेठिया ट्रेडिंग कं.
३ मैंगो लेन, कलकत्ता-७००-००१.

☐ सत् साहित्य और पुरस्कार

आपने कुछ समय पूर्व पुरस्कृत साहित्यके स्तरका प्रश्न उठायाथा। सम्भवतः इसके द्वारा आपने सत् और अकादमिक अथवा शिष्ट साहित्यके अन्तरको रेखांकित करनेका प्रयत्न कियाथा। मेरे विचारसे सत् साहित्यके

(शेष पृष्ठ ४ पर)

स्वर : विसंवादी

विशिष्ट धार्मिक समुदाय : विशिष्ट अधिकार : आत्मार्पित देश

जब समाजका भाव-जगत् आन्दोलित हो उठताहै, तो उसकी प्रतिक्रिया आन्दोलक स्थितियोंकी तीव्रता और सघनतापर निर्भर करतीहै। इस प्रक्रियामें यदि प्रतिक्रियाका रूप उग्र होजाताहै तो पूरे समाजका भाव-जगत् क्षुब्ध और उत्तेजित होउठताहै और सम्पूर्ण कोमल वृत्तियां तिरोहित होजातीहै। सामाजिक क्षेत्रमें भाव-जगत्का यह विक्षोभ हमें अभी भोगना पड़ाहै। इस विक्षोभसे पूरा सामाजिक तन्त्र छिन्न-भिन्न होनेकी स्थितिमें पहुंच गया और राजनीतिक-आर्थिक-भौगोलिक विखण्डनकी सीमाको छूने लगा। निस्सन्देह तात्कालिक रूपसे यह पंजाबकी विघटनवादी प्रवृत्तियोंकी ओर संकेत तो हैही, साथही उन विघटनवादी प्रवृत्तियोंकी ओरभी संकेत है जिन्होंने हमारे पूरे समाज और पूरे देशको अन्तर्व्याप्त और परिव्याप्त कर लियाहै। पंजाब और असम जैसे क्षेत्रोंमें विक्षुब्ध भाव-जगत्के हिंसात्मक विस्फोटकी ऊष्मा हमेंही नहीं, विश्वके अन्य भागोंको भी अपने तापसे प्रभावित कर गयीहै। पूर्वांचलके हिंसात्मक विस्फोटोंसे भी हम ठीक प्रकारसे परिचित हो चुकेहैं। कश्मीरके राजनीतिक विक्षोभोंसे हम परिचित हैं, परन्तु अन्तर्व्याप्त सामाजिक विक्षोभोंका परिचय कमही लोगोंको है। इसी प्रकार (दक्षिण भारत तमिलनाडु) के धार्मिक-आर्थिक-राजनीतिक एवं पश्चिमी भारतके धर्मजड़ित जातिगत और मध्यदेशके कहीं मात्र धर्मगत, और कहीं मात्र जातिगत विक्षोभ कभी-कभीही ध्यान खींच पातेहैं। कठिनाई यह है कि इन सब विक्षोभोंका उपचार स्थानिक और सीमित रूपमें किया जाताहै जोकि मूल समस्याकी अन्तर्व्याप्ति और परिव्याप्तिको कदाचित्ही प्रभावित करतेहैं।

समाजके विभिन्न वर्गों और देशके विभिन्न खण्डों और भागोंमें लक्षित होनेवाले तात्कालिक विक्षोभ और विस्फोट किन्हीं सामयिक स्थितियोंसे उत्पन्न नहीं हुए। यदि इनके निदानका इतिहास तैयार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि अतीतके निश्चयों, निर्णयों और नीतियोंका इनके निर्माण और सृजनमें पूरा हाथ है। कुछ निश्चयों-निर्णयों-नीतियोंमें सद्भावकी झलक मिलेगी, परन्तु इनके सम्भावित परिणामोंपर दृष्टि नहीं रखी गयी, इसलिए राजनीतिक क्षेत्रोंमें इसे 'तुष्टीकरण' का नाम दिया गया। अन्य निश्चयों-निर्णयों-नीतियोंके निर्धारणमें कहीं प्रतिपक्षकी चालोंको ध्यान में रखा गया तो कहीं उन्हीं प्रतिपक्षियोंकी नीतियोंको ही अंगीकार कर लिया गया। समाज और देशके अपने अनुभवोंको या तो भुला दिया गया अथवा नकार दिया गया। सम्भवतः इनके पीछे यह मानसिकता काम कर रहीथी कि हमारा अतीत हमारी गलित परम्पराओं, जड़ताओं, कट्टरताओं, विकृत मनोवृत्तियोंका सामूहिक इतिहास है, जोकि नये युग, नयी स्थितियों और नये वातावरणकी दृष्टिसे पुराना पड़ चुकाहै, उस अतीतके अनुभव निरुपयोगी हैं, इसलिए उपेक्षणीय हैं। आज हमें नये समाधानोंकी, नयी दिशाकी आवश्यकता है।

राजनीतिक (साथही सामाजिक) स्तरपर हमारा यह चिन्तन और मनोवृत्ति स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादके संविधानमें साकार हुआ। इसमें खण्डित रूपमें प्राप्त देशकी अखण्डता प्रतिपादित की गयी, सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य रूपमें उसकी सत्ता स्वीकार कीगयी, इस लोकतन्त्रात्मक गणराज्यको समाज और देशके विभिन्न समुदायों-वर्गों-धर्मोंको ध्यानमें रखते हुए धर्म-निरपेक्ष रूप प्रदान किया गया, बादमें आर्थिक न्याय प्रदान करनेके लिए समाजवादी रंगभी दिया गया। देशके लोगोंको बताया गया कि विश्वके विभिन्न संविधानोंमें से 'उत्कृष्टतम' का संग्रहकर देशके कल्याणार्थ जनताके हितमें, उनकी सम्पूर्ण समस्याओंके समाधानोंके लिए, नयी दिशा प्रदान करनेके लिए, देशको अखण्ड बनाये रखनेके लिए, उनकी भाषामें नहीं, अंग्रेजीमें यह

संविधान उन्हें अर्पित किया जा रहाहै।

आज जिन समस्याओंका हमें सामना करना पड़ रहाहै, अथवा जो कुछ हमें भोगना पड़ रहाहै, विक्षुब्ध भावजगत्‌के कारण जिन विस्फोटोंसे देशका पूरा जन-समुदाय आतंकित है, उसकी तुलनामें हमारा संविधान हमें स्वप्नलोक प्रतीत होताहै। आजके साहित्यिक मनीषियों और कवियोंको 'शब्द' अर्थहीन प्रतीत होता है, इस प्रत्यक्ष अनुभूतिगम्य एवं त्रस्त जीवनमें हमें 'आत्मार्पित' अंग्रेजी-लिखित संविधान स्वप्नलोकके रूपमें व्यंग्य प्रतीत होताहै। मन ठोस यथार्थकी खोजमें भटकताहै और वह अतीतके प्रसंगोंमें जाकर अटक जाताहै; उस अतीतके जिसे गलित परम्पराओं और जड़ताओंका प्रतीक माना जाताहै। अन्तर्मनके किसी कोनेमें पड़ी संस्कार द्वारा अर्जित ये स्मृतियां एक-एककर साकार होने लगती हैं। मौर्यकालका वह साम्राज्य, जो दो सौ वर्षसे भी अधिक समयतक राजनीतिक और भौगोलिक रूपमें ऐसे विशाल भारत भूखण्डपर स्थापित हुआथा, जो अपने समयके शक्तिशाली साम्राज्योंके लिए चुनौती था, जिसके विस्तारको अंग्रेज इतिहासज्ञ विसेंट स्मिथने ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंके लिए ईर्ष्याका विषय बतायाथा और जिसे वे कभी नहीं प्राप्त कर सके और जो साम्राज्य सम्राट् अशोक द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्मके आन्तरिक विग्रहोंके कारण छिन्न-भिन्न होगया। विक्रमादित्यका वह अभियान, जिसने शकोंको पराजित किया, जिसकी विजय-स्मृतिमें विक्रम-संवत प्रवर्तित हुआ। चन्द्रगुप्त द्वितीयका, जिसने पुनः अवन्ती विजयकर शकोंका नाम तक मिटा दिया। वस्तुतः देशका पूरा प्रवहमान इतिहास उन विक्षोभों, विस्फोटों, संघर्षों, विखण्डनोंसे भरा है जिनसे देशको बारबार निकलना पड़ा है। ये सम्पूर्ण अनुभव हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं, हमारा मार्ग-निर्देश करतेहैं, कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत करतेहैं, इन्हें हमारे राजनीतिज्ञोंने कूड़ेमें फेंक दिया, पर वे ऐतिहासिक अनुभव हैं, उनकी स्मृतियां हैं, जो जाग-जागकर सामने आ उपस्थित होतीहैं।

हमारा राष्ट्रीय ऐतिहासिक अनुभव है कि अशोक द्वारा प्रवर्तित राजकीय बौद्धधर्म बौद्ध संघकी राजनीतिक शक्तिका प्रतीक बन गया। स्वयं ये संघ दमन और आतंकके केन्द्र होगयेथे। पुष्यमित्र शुंगके सैनिक विद्रोह ने इस धार्मिक राजनीतिक सत्ताको समाप्त कर दिया। उसके बादभी देशमें बौद्धों, शैवों, तांत्रिकों, वैष्णवोंके संघर्ष चलते रहे, देशकी राजनीतिक शक्तिको नष्ट करते रहे। बीच-बीचमें सहिष्णु राजाओंका उदय हुआ, परन्तु धर्मके आधारपर रोपा गया विष जन-जीवनसे कभी निकला नहीं। वह आन्तरिक रूपसे व्याप्त रहा, कभी सुप्तावस्थामें रहा, कभी विस्फोटके साथ स्वयं उभरा, कभी उभारा गया, चाहे स्वार्थवश चाहे अज्ञानतावश। यह स्थिति वर्तमान राजनीतिक स्थितिसे कितनी भिन्न हैं?

संविधानमें 'सर्वधर्म प्रतिपालक' का स्थान 'धर्म-निरपेक्षता' को दिया गया। परन्तु आजकी कुटिल राजनीतिज्ञोंके संसर्गसे 'धर्म-निरपेक्षता' कुटिल राजनीतिका अंग बन गयी है। आजकी राजनीतिमें 'धर्म-निरपेक्षता' का अर्थ है: अपने आपको धर्म विशेषका अनुयायी घोषित करनेवाले प्रत्येक धार्मिक समुदायके विशिष्ट अधिकार, इन विशिष्ट अधिकारोंकी सत्ता और राजनीतिक दलों द्वारा मान्यता, मान्यता प्राप्त विशिष्ट अधिकार सम्पन्न धार्मिक समुदायोंको राजनीतिक और सामाजिक प्रोत्साहन और सुविधाएं। यह सब धार्मिक अधिकारों, धार्मिक प्रवृत्तियोंके अन्तर्गत हैं। पंजाब, कश्मीर घाटी, नगालैंड, कुछ पूर्वांचलीय अन्य क्षेत्र और झारखण्डकी समस्या यही है। वस्तुतः धर्मनिरपेक्षताका अर्थ पलटकर 'विशिष्ट धर्म प्रतिपालन' होगयाहै। अब साधारण जनको यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि इसी भावनाके आधारपर वह 'विशिष्ट धर्म' के लिए आत्मार्पित होगयाहै। अर्पित वस्तुका अपना स्वत्त्व नहीं होता। उसके लिए भाव-जगत्‌का विसर्जनकर आतंकके सम्मुख केवल आत्म-समर्पणका मार्गही शेष रह जाताहै।

ऐतिहासिक स्मृतियोंसे उबरकर जब अपने अनुभव-कालका चित्र अपने सामने खींचतेहैं तो प्रतीत होताहै कि 'आत्मार्पण' की इस परम्पराकी नींव इसी युगमें रखी गयीथी, हमारेही नेताओं द्वारा। यह उनकी व्यक्तिगत विश्वसनीयताको चुनौती नहीं है, अपितु यह उनकी पृष्ठभूमि, उनकी अभ्यासपूर्वक अर्जित धारणाओं और मनःस्थितिको चुनौती है, जिसने देशके इतिहासको बदल दिया, खण्डित भारत स्वीकार कर लिया, प्रत्येक कोनेपर 'शत्रु' देशकी स्थापना करली, कश्मीर और तिब्बतने अपने अधिकारोंका पिण्डदान कर दिया। अपनी बाह्य सीमाओंपर अग्निकुंडोंका निर्माण करनेके साथ, परिणामतः, सम्पूर्ण देश और उसके साधनोंको इन कुण्डोंका 'हव्य' बना दिया गया। असमकी समस्याभी इसी 'हव्य'

का एक अंश है। अब, यह आंतरिक तत्त्वोंका काम है कि वे यह देखें कि यह अग्नि 'हव्य' के अभावमें मन्द न पड़ जाये और बाह्य अग्निके साथ आन्तरिक अग्निभी निरन्तर प्रज्वलित रहे, जबतक यह सर्वभुक् अग्नि सब कुछ भस्मीभूत न कर दे!

ये आन्तरिक तत्त्व किसी धर्म-सम्प्रदायके विशिष्टाधिकार सम्पन्न लोग होतेहैं। देशकी राजनीति इन्हींके प्रसादन और तुष्टीकरणके चारों ओर घूमतीहै। विभाजनसे पूर्व प्रसादनकी जिस नीतिकी निरन्तर आलोचना की जातीथी, विभाजनके बादभी उस नीतिको जारी रखा गया और संविधानकी 'समस्त नागरिकोंको सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासनाकी स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसरकी समता प्राप्त करानेके लिए' घोषणाके साथ देशके राजनीतिक नेता पं. जवाहरलाल नेहरूने मुसलमानोंके पृथक् व्यक्तिगत कानूनकी मांग स्वीकार करली। 'अवसरकी समता'के प्रतिपादनके अनुकूल न तो अन्य धर्मोंके लिए पृथक् व्यक्तिगत कानून स्वीकार किये गये, न नारी-मुक्ति आन्दोलनकी चिन्ता की गयी और न नर-नारीकी समानताके सिद्धान्तको मान्यता दीगयी। पंजाबके अकाली आन्दोलनको विभाजनसे बहुत पहलेसे कांग्रेसका समर्थन प्राप्त रहा और पंजाबके वर्तमान आतंकवादी आन्दोलन तक निरन्तर यह समर्थन रहा। जब विशिष्ट धर्मोंको साम्प्रदायिक आधार पर विशिष्ट अधिकार प्रदान किये जायेंगे, देशके अन्य नागरिकोंके समान स्तरपर उन्हें नहीं रखा जायेगा तो क्षोभ, संघर्ष, आतंक, विघटनकी प्रक्रियाएं स्वतः शुरु हो जातीहै। अपने विशिष्ट अधिकारोंके कारण विशिष्ट धर्म विशिष्ट महत्वाकांक्षाएं पालने लगताहै, ये महत्वाकांक्षाएं उसे विदेशी सहायताके लिए प्रेरणा देती हैं और वह सहायता प्राप्तभी होने लगतीहै, वह अपना पृथक् सामाजिक स्तर निर्धारित करने लगताहै, आचार-व्यवहार और भाषामें पृथकता पनपने लगतीहै, वेशभूषा तकमें विशिष्टता लानेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होजाती है, तब वह आन्तरिक राजनीतिकी दृष्टिसे अपनी पृथकतापर बल देने लगताहै और अपने अनुयायियोंके लिए पृथक् कानूनों-विधानोंकी मांग करने लगताहै। पृथकतावादकी यह राह, अपनी विशिष्ट पहचानका आग्रह तनावका वातावरण बनाये रखतीहै। यही तनाव सम्पूर्ण समाजके भाव-जगत्को विक्षुब्ध किये रहताहै।

आज देशका शासन-तन्त्र न तो पुरातन 'सर्वधर्म प्रतिपालक' के आदर्शको स्वीकार करताहै, न संवैधानिक व्यवस्था 'धर्म-निरपेक्षता' को अंगीकार कर रहाहै। आजका तंत्र 'विशिष्ट धर्म: विशिष्ट अधिकार' की नीतिको अपनाये हुएहै, इस नीतिको आवरण धर्मनिरपेक्षताका प्रदान कर रहाहै। शासन-भाव-जगत्को न स्वीकार करतेहैं, न उसकी भाषा बोलते-समझतेहैं। आधुनिक शासन-प्रणाली केवल अनुकरणसे प्राप्त प्रणाली है जिसकी पृष्ठभूमिमें अनुभूतिका अभाव है। अनुकरणमें अंगीकृत प्रणालीमें भी अनुभवके आधारपर संशोधनकी व्यवस्थाके स्थानपर तंत्रके शिकंजे कसनेके अधिकारोंमें दिन-रात वृद्धि कीजा रहीहै। ये अधिनायकवादी अधिकार हमारे समाजकी चेतनाको जड़ताकी स्थितिमें ले जा चुकेहैं, जहां भाव-जगत्का भी अतन्र्धांन होगयाहै। ऐसी तमस स्थितिमें लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता समाजके अंग नहीं बन सकते, उसे हांकनेके नारे बन जातेहैं। □ □

(पृष्ठ १ का शेष)

लिए राज्याश्रय कोढ़ और पुरस्कार अभिशाप है। इसमें 'अहं' का मिथ्या विस्तार और अनैतिकताका प्रचार होताहै। पुरस्कार परिचय/पहुंच और तिकड़मके बलपर अधिक दिये जातेहैं, अन्य बातें गौण होतीहैं। बहुतसे पुरस्कार पानेवालोंकी प्रतिभासे, पास-पड़ोसके लोगोंकी बात तो छोड़िये, उनके परिवारके लोग तक परिचित नहीं होते। पुरस्कृत कृतियां सबसे कम पढ़ी जातीहैं, परन्तु बिक्री जरूर अधिक होजातीहैं।

आजका साहित्य अर्थकर है। अर्थ अपने-आपमें अनर्थका कारण है। धनकी दृष्टिसे जब सभी समानधर्मा हैं तो पुरस्कार देकर उनके बीच असमानता पैदा करना उचित नहींहै। कविश्री धूमिलके शब्दोंमें: सभी तिजोरियोंके दुभाषिये हैं', उनके बीच 'को बड़ छोट कहत अपराधू'। साहित्यसे यह अपराध न करायें तभी अच्छा होगा।

—डॉ. विजय द्विवेदी, हिन्दी विभाग,
म.पू.न. कालेज, बारीपदा (उड़ीसा)।

वर्तमान भारत में भारतीयों द्वारा अंग्रेजीका व्यापार[1]

अंग्रेजीके बढ़ते चरण : जड़ीभूत जनसाधारण

कृतिकार:
डॉ. तुलसीराम[2]

समीक्षक :
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री[3]

भाषाका मसला आज हमारे देशमें कुछ इस तरह उलझ गयाहै और इतना नाजुक बन गयाहै कि लोग इसपर चर्चा करनेसे भी कतराने लगेहैं। १९वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और २०वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके दौरान सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं स्वाधीनता संग्रामके कार्यक्रमके एक अनिवार्य अंगके रूपमें देशकी भाषा-समस्याको भारतीय परिप्रेक्ष्यमें सुलझाने और विदेशी भाषाके बढ़ते वर्चस्वको रोकनेके लिए जो प्रयास किये गयेथे, वे अब मूल्योंके अवमूल्यनके इस युगमें इतिहासकी सामग्री मात्र बनते जारहेहैं। समयकी इस धाराके वास्तविक स्वरूपको समझने, उसके उत्सको पहचानने, और उसकी दिशाको प्रतिवर्तित करनेकी इच्छा रखनेवाले विचारकों-विद्वानोंकी संख्याभी घटती जा रहीहै। सन्तोष अगर है तो बस यही कि अभी उनका नितान्त अभाव नहीं हुआहै। समीक्ष्य पुस्तकका लेखकभी एक ऐसाही विद्वान् है जो अभी मशाल थामे हुएहै।

अंग्रेजी-शिक्षाका प्रारम्भ

अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षाका प्रसंग छिड़तेही एकाएक मैकालेकी याद आजातीहै क्योंकि यह माना जाताहै कि सन् १८३५ में मैकालेने भारतके वाइसरायके समक्ष अपना जो 'मिनट' प्रस्तुत कियाथा, उसे स्वीकार कर लेनेके कारणही देशमें अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षाको वह प्रतिष्ठित स्थान मिला जो आजतक बरकरार है, बल्कि यह कहना चाहिये कि उसकी वह प्रतिष्ठा अब आजादीके बाद दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रहीहै। कुछ ऐसा मान लिया जाताहै कि मैकालेने अपने विचार भारतीयोंपर उनकी इच्छाके सर्वथा विपरीत थोप दिये। यह सबसे सरल समीकरण है। सारा दोष दूसरोंका है, हमारा कोई दोष नहीं। यह विचार कोई नहीं करता कि देशवासी जीते-जागते इन्सान न हुए, भेड़-बकरी, गधा-खच्चर हो गये जिनपर जिसने जब जो चाहा लाद दिया, थोप दिया। इस बातका अध्ययन करनेका जोखिम कोई उठानाही नहीं चाहता कि भारतीयोंपर विदेशी भाषा, और विदेशी साम्राज्यभी, आरोपित करनेका साहस (या दुस्साहस ?) किसीने कियाही कैसे ? तत्कालीन युगकी आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियां क्या थीं ? इन विदेशियोंसे हमारा सम्पर्क किस रूपमें हुआ ? उनके प्रति हमारी भावना क्या थी ? हमारे प्रति उनकी भावना क्या थी ? तत्कालीन प्रबुद्ध भारतीयोंके सोचने-विचारनेकी शैली क्या थी ? प्रस्तुत पुस्तकमें विद्वान् लेखकने यह जोखिम उठायाहै और उन परिस्थितियोंके घात-प्रतिघातका

---

१. कृति : ट्रेडिंग इन लैंग्वेज : द स्टोरी ऑफ इंग्लिश इन इंडिया। प्रकाशक : जी. डी. के. पब्लिकेशंस, ३६२३ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : ३६४+१४; डिमा. ८३; मूल्य : ६०.०० रु.। २. डॉ. तुलसीराम, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक। ३. डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, २५ जयश्री, ७५ वरली सी फेस रोड, बम्बई-४००-०२५।

गहराईमें जाकर विश्लेषण कियाहै।

लेखकने पुस्तककी भूमिकाके प्रारम्भमें ही क्रिस्टोफर मार्लोके एक नाटक डॉ. फास्टसके नायक (नायकका नाम डॉ. फास्टसही है) की दो पंक्तियाँ उद्धृत कीहैं जिनमें स्वर्ण प्राप्तिके लिए भारत जानेकी बात कही गयीहै। भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीका आगमनभी इसी इच्छाकी पूर्तिके लिए हुआथा और उसकी वह इच्छा पूरीभी हुई। यह दूसरी बात है कि जब सन् १५९९ ई. में लंदनके कुछ उत्साही व्यापारियोंने "ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी" की स्थापना की, और ३१ दिसम्बर, १६०० को जब पूर्वी देशों, विशेष रूपसे भारतके साथ व्यापार करनेके लिए इंग्लैंडकी तत्कालीन महारानी एलिजाबेथसे आज्ञापत्र प्राप्त किया तब अपने व्यापारके विस्तार और सफलताके बारेमें उन्होंने शायद वैसी कल्पनाभी न कीहो जैसी सफलता उन्हें वस्तुतः मिली। सन् १९६० में बैंक ऑफ इंग्लैंडने अपनी शताब्दी मनायीथी। उस समारोहमें कुछ भारतीय विद्यार्थीभी आमन्त्रित किये गयेथे। लेखकभी उनमें से एक था। इस अवसरपर एक चलचित्रभी दिखाया गया जिसमें भारतसे लाये गये मालसे लदे जहाजभी दिखाये गये। माल उतारते हुएभी दिखाया गया। जहाजसे सोनेके टुकड़े इस प्रकार उतारे जारहेथे जैसे किसी खानसे पत्थर निकाले जातेहैं। पाठकोंको आज यह काल्पनिक कथाके समान लग सकताहै, पर है यह वास्तविकता। यह वह समय था जब इंग्लैंड विश्वकी एक प्रमुख आर्थिक और राजनीतिक शक्तिके रूपमें उभर रहाथा और ब्रिटिश संसदमें इस प्रकारकी चर्चाएं होतीथीं कि असभ्य लोगोंपर शासन करनेकी अपेक्षा सुसंस्कृत लोगोंके साथ व्यापार करना कहीं अच्छा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनीको भारतमें अपना व्यापार बढ़ानेके लिए अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयोंकी आवश्यकता हुई। संयोग यह था कि अंग्रेजीकी शिक्षाका इन्तजाम देशमें पहलेही हो चुकाथा। ईसाई मिश्नरियां यहां कुछ शताब्दियोंसे ईसाई धर्म प्रचारका काम कर रहीथीं। उन्होंने इसी प्रयोजनसे स्कूलभी खोलेथे जिनमें अन्य विषयोंके अलावा वे स्थानीय भाषाभी पढ़ातेथे और अपने-अपने देशकी भाषाभी, यानी पुर्तगालके मिश्नरी पुर्तगाली भाषा सिखातेथे, फ्रांसके मिश्नरी फ्रांसीसी सिखातेथे। इसी क्रममें इंग्लैंडके मिश्नरी अंग्रेजी पढ़ा रहेथे। इन अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंके लिए व्यापारिक कम्पनीमें नौकरीका रास्ता निकल आया। नौकरीके इस आकर्षणने ईसाई धर्मको और अंग्रेजीकी शिक्षा देनेवाले मिश्नरी स्कूलोंको एक नयी प्रतिष्ठा प्रदान की। ईस्ट इंडिया कम्पनीका व्यापार ज्यों-ज्यों बढ़ता गया और राजनीतिमें उसका दखल ज्यों-ज्यों बढ़ता गया अंग्रेजीके पैर उतनेही मजबूत होते गये।

मैकाले अंग्रेजीकी इस यात्राका एक पड़ाव मात्र है। वह न 'अथ' है, न "इति"। "अथ" की चर्चा करनी हो तो चार्ल्स ग्रांटसे शुरु करनी होगी जिसने सन् १७९२ में एक रिपोर्ट प्रस्तुत कीथी—ऑब्जर्वेशन ऑन द स्टेट ऑफ सोसाइटि अमंग द एशिआटिक सबजेक्ट्स ऑफ ग्रेट ब्रिटेन पर्टिकुलॅलि विद रिस्पेक्ट टु मॉरल्स एंड द मीन्स ऑफ इम्प्रूविंग इट। इसे संक्षेपमें "ऑब्जर्वेशन्स" कहतेहैं। इसमें ग्रांटने भाषाके सम्बन्धमें दो सुझाव दिये। पहला यह कि भारतमें पश्चिमी ढंगकी शिक्षा दीजाये। जिसका माध्यम अंग्रेजीही हो। दूसरा यह कि भारतमें अंग्रेजीको ही अपने कामकाजकी भाषा बनाया जाये। उसका तर्क था कि भारतीय तो अज्ञानतामें डूबे हुएहैं, अंधविश्वासोंसे घिरे हुएहैं। उन्हें सद्ज्ञान, विज्ञान और तर्ककी शुद्ध हवा चाहिये जो अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षाके द्वाराही सम्भव है। ग्रांटके संबंधमें यह जान लेना उपयोगी होगा कि वह एक पादरी था, और भारतीयोंको अज्ञानी एवं अंधविश्वासी माननेवाले तथा अपने चिन्तन और व्यवहारको विज्ञानसम्मत माननेवाले अंग्रेज चार्ल्स ग्रांटको मात्र एक पादरी नहीं, सिद्ध पुरुष मानतेथे जो अपना कार्य परमात्माके आदेशपर करताहै। उसके सहयोगी थे विलियम विल्बरफोर्स और लार्ड मैकालेके पिता जैचरि मैकाले। ये तीनों उस युगमें गरीबोंके मसीहा माने जातेथे। ग्रांटने सन् १७६७ में भारतकी यात्रा कीथी और लगभग २० वर्ष यहां बिताये। ग्रांट और उसके सहयोगियोंके लिए अंग्रेजी केवल एक भाषा नहीं थी, वह मुख्य रूपसे ईसाई मतके प्रचारका एक साधन थी। इसलिए गरीबोंके इन मसीहाओंने भारतमें अंग्रेजीका प्रचार करनेके पक्षमें जो कुछ कहा और किया उसे ईसाइयतके प्रचारसे अलग करके देखनेकी कोशिश करना इतिहासको झुठलाना होगा। स्वयं ग्रांटने अपने ऑब्जर्वेशन्समें इसे स्वीकार कियाहै (पृ. ३)। ग्रांटकी दृष्टिमें अंग्रेजी शिक्षाका उद्देश्य हिन्दुओंको धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे जीतनाथा। इसके साधन थे अंग्रेजी भाषा और साहित्य; उसने कल्पना कीथी

कि लगभग एक पीढ़ीमें यह परिवर्तनकर लिया जायेगा। (पृ. ७) ग्रांटके इस आब्जर्वेशन्सके आधारपर ही विल्बर-फोर्सने ब्रिटिश संसदमें एक प्रस्ताव रखा जिसके पक्ष-विपक्षमें पर्याप्त चर्चा हुई और अन्ततः सन् १७९३ में वे सिद्धांत स्वीकार किये गये जिनकी परिणति सन् १८१३ के आज्ञापत्रमें हुई। इसी आज्ञापत्रमें यह निर्देश दिया गयाथा कि भारतमें शिक्षापर प्रतिवर्ष एक लाख रुपये खर्च किये जायें। इस सन्दर्भमें यह ध्यान देनेकी बात है कि प्रारम्भमें कंपनीका एकमात्र उद्देश्य व्यापारही था, पर अन्य यूरोपीय जातियोंके धर्मप्रचारके प्रयत्नोंको कम्पनी तटस्थ भावसे नहीं देख सकी। उसे इस क्षेत्रमें पिछड़ जानेकी चिन्ता हुई। अतः उसने व्यापारके साथ धर्म-प्रचारभी अपना उद्देश्य बनाया और अपने देशसे धर्म-प्रचारकोंको भारत भेजा। धर्मप्रचारके कामको अधिक सफलतापूर्वक चलानेके लिए सन् १६१४ से कम्पनीने अनेक भारतीय ईसाइयोंको अपने खर्चेपर इंग्लैंड भेजना शुरू कर दिया ताकि वे वहां अंग्रेज पादरियोंसे ईसाई धर्मका प्रचार करनेका प्रशिक्षण प्राप्तकर सकें। कम्पनीके निदेशक-मण्डलने अपने सन् १६५९ के आज्ञापत्रमें तो भारतमें धर्मप्रचारके कामको विशेष गति देनेकी स्पष्ट घोषणा की। पर बादमें, विशेष रूपसे सन् १७५७ के प्लासी, तथा १७६५ के बक्सरके युद्धोंमें विजय पानेके बाद जब कम्पनीको भारतमें राजनीतिक अधिकार मिल गये तो वह भारतमें साम्राज्यके स्वप्न देखने लगी जिसे साकार करनेके लिए उसने ईसाई धर्म प्रचार संबंधी अपनी नीतिमें परिवर्तन किया। अब वह सांस्कृतिक संघर्षसे बचनेकी कोशिश करने लगी। उसने धर्मनिरपेक्षताका चोगा ओढ़ लिया। पर मिश्नरी लोग इस परिवर्तनके लिए तैयार नहीं थे। धर्मप्रचारके लिए धनकी आवश्यकता होतीहै, वे इस कामधेनुको सेंतमेंतमें कैसे छोड़ देते? लार्ड मैकालेने सन् १८३५ के अपने मिनटके माध्यमसे कम्पनीकी नीति और मिश्नरियोंकी आकांक्षा दोनोंमें तालमेल बिठानेका प्रयास किया। अपनी सफलताके प्रति वह आश्वस्त था। उसने अपने पिताको एक पत्रमें सन् १८३६ में लिखा, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि शिक्षाकी हमारी योजना क्रियान्वित की गयी तो अबसे ३० साल बाद बंगालके सभ्य घरानोंमें एकभी मूर्तिपूजक हिन्दू शेष नहीं रहेगा। और यह सब धर्मपरिवर्तनके लिए किये गये किसीभी प्रयासके बिना होगा; उनकी धार्मिक आज़ादीमें ज़रा-सा भी हस्तक्षेप किये बिना होगा। यह केवल यूरोपीय ज्ञान और चिंतनके प्रभावसे होगा" (पृ. ८७-८८)

अंग्रेज़ीके १८वीं शताब्दीके प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. जॉनसनने अपनी एक पुस्तक "द वर्ल्ड वैल डिस्प्लेड" में अंग्रेज़ोंकी वणिक् वृत्तिपर टिप्पणी करते हुए लिखाथा, "विश्वमें अंग्रेज जहांभी गये अपने लालचको संतुष्ट करने गये, और भ्रष्टाचार बढ़ाने गये, बिना अधिकारके सत्ता हथियाने गये और बिना उत्प्रेरकके क्रूरता करने गये।" (पृ. ५) ग्रांट और मैकाले जैसे लोग इसके उदाहरण हैं। ब्रिटिश व्यापारकी चिन्ता करते हुए मैकालेने कहा कि भारतके लोगोंपर इस प्रकारका शासन उपयुक्त होगा जिसमें राज्य भलेही उनका हो, पर वे कपड़े हमारे पहना करें। उनका खानपान हमारीही तरह हो। वे इतने अज्ञानीभी न रहें कि हमारी चीजोंकी कद्रही न कर सकें। इतने गरीबभी न रहें कि हमारा सामान खरीदही न सकें। (पृ. ९५-९६)

स्वयं भारतीयों द्वारा अंग्रेज़ीका प्रचार

मैकालेकी वणिक् वृत्ति और साम्राज्यवादी चालों पर परदा नहीं डाला जासकता, पर इस तथ्यको भी तो नज़रन्दाज़ नहीं किया जासकता कि तत्कालीन भारतीय समाजके अनेक बड़े नेताओंने मैकालेके निर्णयोंका गर्म-जोशीसे स्वागत किया क्योंकि उससे समाजके सुविधा-जीवी वर्गके अहम्की संतुष्टि होतीथी। वस्तुतः इसका सबसे अधिक चिन्ताजनक पहलू तो यह है कि आज जब सारा सामाजिक और राजनीतिक परिवेश और परिप्रेक्ष्य बदल चुकाहै तबभी समाजके नेतागण मैकालेकी प्रवर्तित कीहुई शिक्षाका ही प्रसार कर रहेहैं। भाषाके मामलेमें भी मैकालेके कथनको रट्टू तोतेकी भांति दुहरा रहेहैं, उसेही परम प्रामाणिक और विश्वसनीय मान रहेहैं। ऐसे लोगोंकी आजभी कमी नहीं है जो मैकालेकी ही तरह भारतीय भाषाओंको इतना "अविकसित और गंवारू" मानतेहैं कि उनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञानको व्यक्त कियाही नहीं जा सकता। दूसरी ओर जब कभी भारतीय भाषाओंके विकास और सामर्थ्यका परिचय देनेवाली कोई मौलिक कृति प्रकाशमें आतीहै तो वे तर्क देतेहैं कि यह हमारे समझ सकने योग्य भाषा नहीं है। यह विचार नहीं करते कि उस विषयको अंग्रेजीमें समझनेका प्रयास वे कितने वर्षोंसे कर रहेहैं, और भारतीय भाषाओं में उसे समझनेका कितना प्रयास कियाहै। गुरुकुल कांगड़ी

या उस्मानिया विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओंके अनुभवसे भी वे कुछ सीखनेको तैयार नहीं जिन्होंने क्रमशः हिन्दी और उर्दू के माध्यमसे उच्च स्तरका ज्ञान-विज्ञान सिखानेका ऐतिहासिक काम कियाहै।

ग्रांट और मैकाले दोनोंकी ही दृष्टिमें भारतमें शिक्षाका प्रयोजन भारतीयोंको "आज्ञाकारी सेवक" बनानाथा (पृ. ९०) इसीलिए उन्होंने अंग्रेजीको केवल अध्ययनका एक विषय नहीं, समस्त शिक्षाका माध्यम बनानेका सुझाव दियाथा। शिक्षाकी विषय सामग्रीके रूपमें यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान प्रस्तावित कियाथा। परिणाम यह हुआ कि यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान और अंग्रेजी एक दूसरेके पर्याय बन गये। अंग्रेजी पढ़नेका मतलबही होगया यूरोपीय ज्ञान-विज्ञानका जानकार। जिन्हें अधिक जाननेकी लालसा नहीं थी वे थोड़ी-सी ही अंग्रेजी पढ़कर सन्तोषकर लेतेथे। उनकी अधकचरी अंग्रेजीके नमूनेभी लेखकने प्रस्तुत कियेहैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसे लेखकने मार्क ट्वेनके हवालेसे उद्धृत कियाहै। अंग्रेजी भाषाका शिक्षक बननेका आकांक्षी व्यक्ति आवेदनपत्रमें लिखता है, "माइ डियर सर ऑर जैंटिलमैन, दैट योर पिटीशनर हैज मच क्वालिफिकेशन इन द लैंग्वेज ऑफ़ इंग्लिश, टु इंस्ट्रक्ट द यंग ब्यॉयज; आई वाज़ गिवन टु अंडरस्टैंड दैट योर आफ़ सूटेबिल चिल्ड्रेन हैज़ टु अक्वायर द नॉलेज आफ़ इंग्लिश लैंग्वेज" (पृ. १७८)।

सन् १८५४ के वुडके घोषणापत्रमें यह शिकायत कीगयीहै कि लोग देशी भाषाओंको भूलकर अंग्रेजी भाषापर साधारणसे अधिकारको ही शिक्षाका अन्तिम उद्देश्य मानने लगेहैं (पृ. १३४)। देशी भाषाओंकी उपेक्षापर भारतीय शिक्षा आयोग (१८८२), लार्ड कर्जन (१९०२, १९०४) आदिने भी चिन्ता व्यक्त कीथी। इस चिन्तामें अगर कोई भक्त गौरांग प्रभुओंकी न्यायप्रियताके दर्शन करना चाहे तो कर सकताहै, "जाकी रही भावना जैसी······", वैसे वास्तविकता यह है कि उनकी योजना भारतके एक विशिष्ट वर्गको अंग्रेजी पढ़ानेकी थी जो अपने रक्त और रंगमें तो भारतीय हो, पर अपनी रुचि, विचार, नैतिकता और बुद्धिसे अंग्रेज हो ताकि वह अंग्रेजोंका "आज्ञाकारी सेवक" बनकर प्रशासनके संचालनमें मदद करे, आम जनता और शासक वर्गके बीचकी कड़ीका काम करे। अनपढ़ जनताको कण्ट्रोलमें रखे। (पृ. ९१-९२) उनकी दृष्टिमें संस्कृत या अरबीके विद्वान्भी अनपढ़ही थे, दूसरे शब्दोंमें अनपढ़का अर्थ था अंग्रेजी भाषा और यूरोपीय ज्ञान-विज्ञानके ज्ञानसे शून्य। इस अनपढ़ जनतासे सम्पर्क करनेके लिए देशी भाषाओंकी जानकारी आवश्यक थी। अतः उनकी चिन्ताका मूल विषय यह था कि हमारे आज्ञाकारी सेवक अपनी देशी भाषाओंकी उपेक्षा करेंगे तो आम पब्लिकको कंट्रोल कैसे करेंगे? कंट्रोल नहीं करेंगे तो हमारा साम्राज्य कैसे चलेगा? देशी भाषाओंकी उपेक्षा देखकर उन्हें अपनी मानस-सन्तानकी कमअक्लीपर अफसोस होरहाथा कि वह अपनी भूमिकाको ठीकसे समझही नहीं पारही। अंग्रेजोंने वस्तुतः एक नयी जातिप्रथाको जन्म दिया 'अंग्रेजी पढ़ी-लिखी जाति'। इस जातिकी मान्यता थी, आजभी है, कि शिक्षा केवल नौकरीके लिए है। मैट्रिक्युलेशन विश्वविद्यालयके लिए पासपोर्ट है, विश्वविद्यालयकी डिग्री नौकरीका पासपोर्ट है, और अंग्रेजी दोनोंके ही लिए 'खुल जा सिमसिम' है। इस वर्गके लिए शिक्षा मुख्यतया संस्कृतिका साधन, व्यक्तित्वके सर्वांगीण विकासका अवसर, या ज्ञानका स्रोत नहीं, बस नौकरीकी कुंजीभर है। संस्कृति व्यक्तित्व और ज्ञान सबका पर्याय है—अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिष्टाचार। इस जातिप्रथाने नये प्रकारके वर्गभेदको जन्म दियाहै, असमानताको पाला पोसाहै, समाजको जर्जर बनायाहै।

अंग्रेजोंकी नीति "बांटो और राज्य करो" की थी। सन् १८५७ की घटनाओंसे ब्रिटिश साम्राज्य हिल गयाथा, पर इस नीतिके कारणही वह बच सकाथा। सर चार्ल्स वुडने एलगिनको लिखा, एक वर्गको दूसरेसे लड़ाकर हम अपनी सत्ता बचाये रख सकेंहैं और हमें ऐसाही करते रहना चाहिये····· तुमभी ऐसाही करो ताकि लोगोंकी एक भावना न बनने पाये।" उसने ऐसा सिर्फ राजनीतिमें ही नहीं, सेनामें भी करनेको कहा, "पंजाबकी सेना पूर्वी क्षेत्रकी सेनाको मारनेको तैयार रहे, पूर्वी सेना सिखोंको मारनेको तैयार रहे···क्योंकि अगर सारा भारत हमारे खिलाफ संगठित होगया तो हम कितनी देर ठहर पायेंगे ? (पृ. २३६) इस देशके दो बड़े वर्गों हिन्दुओं-मुसलमानोंके बीच खाई बनाने और उसे चौड़ा करते रहनेका वे निरन्तर प्रयास करते रहे। टामस मुनरोने मद्रास प्रान्तके हर जिलेमें दो अंग्रेजी स्कूल खोलनेकी योजना बनायी – एक हिन्दुओंके लिए, दूसरा मुसलमानोंके लिए। उन्होंने नीति अपनायी कि

मुसलमान भूतपूर्व शासक हैं अतः उनके साथ बिशिष्ट व्यवहार किया जाना चाहिये (मानों हिन्दू तो कभी और कहीं शासक थेही नहीं)। लार्ड डफरिनने अपने एक भाषणमें मुसलमानोंको सम्बोधित करते हुए कहा, 'आप शासन कर चुकेहैं अतः हमारी जिम्मेदारियां समझ सकतेहैं।' जिस सर सैयद अहमद खांने कभी पंजाबके हिन्दुओंको सम्बोधित करते हुए यह कहाथा, 'आपने अपने लिए हिन्दू लफ्ज़का इस्तेमाल कियाहै, यह ठीक नहीं है क्योंकि मेरी रायमें हिन्दू लफ्ज किसी खास मज़हब का नाम नहीं, बल्कि जोभी हिंदुस्तानमें रहताहै उसे खुदको हिन्दू कहनेका हक है। मुझे इस बातका अफसोस है कि हालांकि मैं हिन्दुस्तानमें रहताहूं पर आपने मुझे हिन्दू नहीं कहा।' (पृ.२३४) उसी सर सैयदको जब अंग्रेजोंने मुसलमानोंके नेताके रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसकी हिन्दुओंसे अलग पहचान बनानेकी कोशिश की तो उसने सन् १८७४ में अलीगढ़ मोहम्मदन एंग्लो-ओरियंटल स्कूल खोला जिसके लिए लार्ड नार्थब्रुकने तुरन्त १०,००० रु. की छात्रवृत्तियां प्रदान करदीं और चार सालके अन्दरही इसे कालेजका दर्जा दिलवा दिया। सर सैयदको मुसलमानोंका मसीहा साबित करनेके लिए सर विलियम हंटरने भारतीय शिक्षा आयोगकी पहली बैठक अलीगढ़में हो की और मुसलमानोंके विशेष दावे स्वीकार किये। अल्फ्रेड लॉयलने विद्यार्थियोंमें राजभक्ति का भाव भरनेके लिए सर सैयदकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की। थ्योडोर बैंकने, जिसे सर सैयदने १८८६ में अपने कालेजका प्रिंसिपल बनायाथा, इस कालेजकी प्रशस्तिमें कहा कि यहांके लड़के ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाके लिए गोली संगीनोंका सामना करेंगे। अंग्रेजोंकी ही शहपर सैयद अहमद खांने कांग्रेसको हिन्दुओंका संगठन बताकर उसका विरोध किया और १८८८में 'युनाइटेड इन्डिया पैट्रियाटिक एसोसिएशन' की स्थापना करके ब्रिटिश शासनकी भरपूर सराहना की। 'थ्योडोर बैंकने मोहम्मद एंग्लो ओरियंटल डिफेंस असोसिएशन आफ अपर इन्डिया'का गठन किया जिसका सचिव वह स्वयं बना और सर सैयद अहमद खांके बेटे सैयद महमूदको भी एक सचिव बनाया।

अंग्रेजी-उर्दू का गठबंधन

अंग्रेजोंसे इस प्रकारका संरक्षण पाकर मुसलमानोंने भारतीय भाषाओंका विरोध करना शुरू कर दिया। इसके लिए तरह-तरहके तर्क दिये जाने लगे। फारसी अरबीके एक शिक्षकने शिकायत की कि बंगला पढ़नेसे मुसलमान बच्चोंके विचार बदलने लगेहैं। माध्यमिक विद्यालयमें बंगला पढ़नेवाले ५० प्रतिशत मुसलमान बच्चे पुनर्जन्ममें विश्वास करने लगेहैं। बंगालके मुसलमानोंने कहना शुरू कर दिया कि हिन्दुओंकी बंगला संस्कृतनिष्ठ होतीहै। जबकि मुसलमानोंकी बंगला अरबी फारसीनिष्ठ। इस तरह बंगला एक नहीं, दो भाषाएं हैं। इसलिए बंगलाके माध्यमसे पढ़ाई नहीं होसक्ती। अंग्रेजों से उनकी दोस्ती इस सीमातक बढ़ी कि जब मुस्लिम मदरसे पाठ्यक्रमका संशोधन किया गया तो फारसीको अनिवार्य नहीं रखा, अंग्रेजीको अनिवार्य बनाया। वैसे अंग्रेजी मुसलमानोंमें कितनी लोकप्रिय हो पायीथी इसका अन्दाजा इस तथ्यसे लगायाजा सकताहै कि कलकत्ता मदरसेमें अंग्रेजीकी कक्षाएं सन् १८२६ से शुरू करदी गयीथीं, पर २५ वर्षोंमें केवल दो विद्यार्थियोंने जूनियर स्कालरशिप परीक्षा पास की। (पृ. १०६)

मुसलमानोंकी अंग्रेजोंके प्रति यह वृत्ति और अंग्रेजीके प्रति भारतीयोंका मुग्धकारी भाव देखकर ब्रिटेनके इतिहासकी एक घटनाकी ओर अनायासही ध्यान चला जाताहै। रोमन लोगोंने ब्रिटेनपर कब्जा कर लियाथा। ब्रिटेनके प्रथम रोमन गवर्नर जूलियस अग्रिकोलाने यह नीति अपनायी कि ब्रिटेनके बड़े लोगोंके बच्चोंको रोमके साहित्य और विज्ञानकी शिक्षा दीजाये तथा उनमें रोमन सभ्यताके प्रति चाव पैदा किया जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि रोमनोंके जानी दुश्मन बननेके बजाए अंग्रेज उनके जिगरी दोस्त बन गये। अंग्रेजोंके पूर्वजोंने रोमन लोगोंके आक्रमण रोकनेके लिए जितना प्रयास कियाथा उससे कहीं ज्यादा प्रयास बादकी पीढ़ीके लोगोंने रोमन लोगोंको ब्रिटेनमें रोके रखनेके लिए किया।

त्रिभाषा-सूत्रका जन्म

हमारी बिडम्बना यह है कि हमने अंग्रेजोंको तो निकाल बाहरकर दिया, पर अंग्रेजीको पूरी ताकतसे रोकनेका प्रयास कर रहेहैं। स्वाधीन भारतमें डॉ. राधाकृष्णनकी अध्यक्षतामें गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (१९४८) से लेकर डॉ. दौलतसिंह कोठारीकी अध्यक्षतामें गठित शिक्षा आयोग (१९६६) तकका चिन्तन इस विषयमें एकसा ही है। जब वे जनतंत्रको

सामने रखकर विचार करतेहैं तो बरबस कह उठतेहैं कि अंग्रेजीको जाना चाहिये क्योंकि यह जनतंत्रका नकार है; पर जबसे 'एलीट'को सामने रखकर विचार करतेहैं तो ऐसी योजना प्रस्तावित करतेहैं जिससे अंग्रेजी बनी रहे। (पृ. २७५, २७६, २६२) त्रिभाषा सूत्र इसीका एक उदाहरण है। स्वाधीन भारतमें त्रिभाषा सूत्रकी संरचना तरह-तरहसे कीगयी पर अंग्रेजीको अनिवार्य बनाये रखनेका बराबर ध्यान रखा गया। जरा विचार कीजिये कि त्रिभाषा-सूत्रका क्रियान्वयन निम्न माध्यमिक और माध्यमिक स्तरपर पूरा होजाताहै। स्वयं शिक्षा आयोगने यह स्वीकार कियाहै कि लगभग ८० प्रतिशत बच्चे माध्यमिक स्तर तक आते-आते अपनी पढ़ाई बन्द कर देंगे, जीविकोपार्जनमें लग जायेंगे। इसीलिए उसने माध्यमिक शिक्षाके विभिन्न चरणोंमें व्यावसायिक शिक्षाका प्रावधान करनेकी संस्तुति कीथी (देखें शिक्षा आयोगकी रिपोर्ट, अनुच्छेद २.१७)। प्रश्न यह उठताहै कि फिर इन बच्चोंको विदेशी भाषा पढ़नेके लिए विवश क्यों किया जाये? इस तथ्यकी उपेक्षा क्यों कीजातीहै कि माध्यमिक स्तरपर सबसे अधिक विद्यार्थी अंग्रेजीमें अनुत्तीर्ण होतेहैं। अपेक्षाकृत कठिन माने जानेवाले विषय अनिवार्य गणित और अनिवार्य विज्ञानमेंभी उतने विद्यार्थी अनुत्तीर्ण नहीं होते जितने अंग्रेजीमें होतेहैं। अपने एक अध्ययनमें मैंने स्वयं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थानके पांच वर्षोंके परीक्षा-परिणामका विश्लेषण कियाथा जिससे पता चलाकि माध्यमिक स्तरपर अनुत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियोंमें लगभग ६८ प्रतिशत विद्यार्थी वे होतेहैं जो अंग्रेजीमें भी अनुत्तीर्ण होतेहैं, और ३४ प्रतिशत वे होतेहैं जो केवल अंग्रेजीमें अनुत्तीर्ण होतेहैं। अंग्रेजीको अनिवार्य बनाकर हम असंख्य होनहार युवकोंकी संभावनाओंको कुंठित कर देतेहैं। अंग्रेजीका लाभ तो एक वर्ग विशेषको मिल पाताहै, पर उसका खमियाजा बहुतोंको भरना पड़ताहै। इसका एक उदाहरण लेखकने ७ दिसम्बर, १६८० के हिन्दुस्तान टाइम्समें प्रकाशित एक समाचारको उद्धृत करके दिया है। समाचारहै आत्म-हत्याका। अभागे युवकने अपने नोटमें लिखा, केन नाट स्पीक इंगलिश, फेल्ड इन लाइफ (पृ. २६८) इस अंग्रेजीकी अनिवार्यताके कारण ऐसी आत्म-हत्याएं और हत्याएं रोजही न जाने कितनी हो रहीहैं।

त्रिभाषा-सूत्रकी उद्भावना करनेवाला व्यक्ति चार्ल्स ग्रांट और मैकालेसे कम बुद्धिमान हरगिज नहीं रहा होगा। दिखावा तो यह किया गयाकि इस सूत्रसे क्षेत्रीय भाषाओंको भी उनका अधिकार मिलेगा और सम्पर्क भाषाके रूपमें हिन्दीकोभी उचित स्थान मिलेगा। पर गुप्त मंत्रणा यह थी कि अंग्रेजीको कसकर पकड़े रखो, 'सदियों की ठण्डी बुझी आग सुगबुगा उठी, मिट्टी सोनेका ताज पहन इठलातीहै' और 'गुहार लगा रहीहै' कि 'सिंहासन खाली करो कि जनता आतीहै।' सो इस जनतंत्रकी भीड़में कहीं अपनी अंग्रेजीमें खोन जाये, वरना सिंहासन खाली करनाही पड़ेगा। इसलिए अंग्रेजीको अनिवार्य बनाकर रखा गया। नतीजा यह हुआ कि कश्मीरसे कन्याकुमारी और कामरूपसे कच्छ कहीं चले जाइये, त्रिभाषा-सूत्रका क्रियान्वयन देखिये, क्षेत्रीय भाषा और हिन्दी अनिवार्य होभी सकतीहै, नहींभी हो सकती, पर अंग्रेजी अनिवार्य होगीही (हिंदीभाषी क्षेत्रोंकी बात छोड़ दीजिये)। आप वहांसे निकलनेवाले समाचार पत्र देखिये, दुकानोंपर लगे साइनबोर्ड देखिये, बसमें या सार्वजनिक स्थानोंपर लिखे निर्देश देखिये, स्थानीय भाषा होभी सकतीहैं, नहींभी होसकतीहै, पर अंग्रेजी जरूर होगी; और हिन्दी, नही होगी, नहीं होगी, नहीं होगी। त्रिभाषा-सूत्र जिन्दाबाद। उसका यही प्रयोजन था न।

अन्य देश और भाषा समस्या

विश्वके कुछ अन्य देशोंमें भी भाषा-समस्या रहीहै। उनमें से रूस और ब्रिटेनकी भाषा समस्याका और उन्होंने अपनी समस्याका समाधान कैसे किया, इसका लेखकने उल्लेख कियाहै। प्रयोजन यहीहै कि सम्भवतः इनके उदाहरणसे हमारे देशवासी कुछ सीखें। हमारे यहां तो संविधानमें भारतकी प्रमुख भाषाएं १५ ही बतायी गयी हैं, रूसमें १३० भाषाएं बोली जातीहैं जो चार विभिन्न परिवारोंकी हैं और उनकी लिपियां भी अलग-अलग हैं। रूसने सबसे पहला काम तो यह किया कि एक समान लिपि अपनायी लेटिन लिपि। और दूसरा काम यह किया कि रूसी भाषाको सभी प्रमुख कामोंके लिए अपनाया। रूसमें साम्यवादी व्यवस्था है, अतः सामान्यतया लोग यह सोच लेतेहैं कि वहां भाषा सम्बन्धी सारे निर्णय किसी एक केन्द्रीय स्तरपर लेकर सारे देशपर लागू कर दिये गये होंगे। ऐसे लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि रूसके संविधानमें १३०

भाषाओंको समान दर्जा दिया गयाहै और सभी प्रमुख कामोंके लिए रूसी भाषाका प्रयोग वहां लोगोंने स्वेच्छया स्वीकार कियाहै। संविधानमें तो उसे संघ सरकारकी राजभाषा तक घोषित नहीं किया गयाहै। हालांकि संघीय प्रशासनमें रूसीका ही प्रयोग होताहै। ब्रिटेनको दो बार विदेशी भाषाओंके आधिपत्यकी त्रासदी भोगनी पड़ीहै। पहली बार ४३ ई. पू. से ४१० ई. तक, जब रोमन लोगोंका राज्य रहा और लेटिन राजाभाषा रही दूसरी बार १०६६ ई. से १३६२ ई. तक जब नार्मन लोगोंका राज्य रहा और फ्रांसीसी राजभाषा रही। पर दोनोंही बार समाजके उच्च कहे जानेवाले वर्गने ही इन विदेशी भाषाओंको अपनाया, आम जनताने नहीं। जब सन् १३६२ में कानून बनाकर अंग्रेजीको अदालतकी भाषा बनाया गया तब अंग्रेजीकी चार प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी बोलियां थीं जिनमें उच्चारण और वर्तनी सम्बन्धी विभेदोंके अतिरिक्त व्याकरण सम्बन्धीभी इतने अन्तर थे कि एक बोली बोलनेवाला दूसरी बोलीको समझभी नहीं सकताथा। इसके अतिरिक्त शब्दावलीका भी अभाव था। उस समय समाजके तथाकथित उच्च वर्गमें फ्रांसीसी सम्पन्न भाषा मानी जातीथी, अंग्रेजीको दरिद्र भाषा माना जाताथा। तब अंग्रेजीमें एजूकेशन, सिस्टम, मैथड, स्कीम, इंडस्ट्री, मैच्योरिटि, बेनेफिट, क्रिटिक, क्राइसिस, क्लाइमेक्स, आटोग्राफ, इम्फैसिस, इनीशिएटिव जैसे हजारों शब्दोंका अस्तित्वही नहीं था। स्वयं अस्तित्ववाची शब्द 'एग्जिस्ट'का तब अस्तित्व नहीं था। ये तमाम शब्द तो अंग्रेजीमें सैकड़ों साल बाद विकसित हुए। पर सरकारी कामकाज उसमें पहलेही शुरू कर दिया गया। उच्च वर्गने जब इसमें अड़ंगेबाजी की, जैसी वह हमेशा करता आयाहै, तो इंग्लैंडमें सन् १७४० में कानून बनाया गया कि सार्वजनिक स्थानपर लेटिन या फ्रांसीसी बोलने वालोंपर जुरमाना किया जायेगा। (देखिये ७,२.१९६७ के नवभारत टाइम्समें डॉ. राम मनोहर लोहियाके भाषणका अंश) जो लोग यह तर्क दिया करतेहैं कि जब भारतीय भाषाएं सम्पन्न बन जायेंगी तब अंग्रेजीके स्थानपर उनका प्रयोग शुरू कर दिया जायेगा, उन्हें ब्रिटेनके उदाहरणसे कुछ सीखना चाहिये; और नहीं तो कमसे कम भाषा-विकासका यह सामान्य सिद्धान्तही सीख लेना चाहिये कि कोई भाषा शून्यमें विकसित नहीं होती। वह प्रयोग करनेसे ही विकसित होतीहै, और प्रयोग करते-करतेही सम्पन्न बनतीहै। जब कोई भाषा सम्पन्न बन जायेगी तब उसका प्रयोग शुरु करेंगे यह तर्क कुछ ऐसाही है कि जब तैरना आ जायेगा तभी पानीमें उतरेंगे।

अंग्रेजीसे जुड़े मिथक

अंग्रेजीके प्रेमियोंने अंग्रेजीके साथ कुछ मिथकभी जोड़ रखेहैं और उनका खूब प्रचार कियाहै। जैसे, भारतकी राष्ट्रीय एकता अंग्रेजीके बलपर टिकी हुईहै, भारतमें राष्ट्रीयताका भाव जितनाभी विकसित हुआहै वह अंग्रेजीके अध्ययनसे ही हुआहै, जितना नहीं हो पायाहै वह अंग्रेजीके कम अध्ययनका परिणाम है, भारतमें आधुनिकता अंग्रेजीके अध्ययनसे ही आरहीहै, आदि आदि। लेखकने इन सबकी सम्यक् परीक्षा कीहै। इस कार्यमें उसका दृष्टिकोण अत्यन्त संतुलित रहाहै, कहींभी अतिवादी नहीं। अंग्रेजीके महत्त्वको वह निस्संकोच स्वीकार करताहै, उसकी देनोंको भी स्वीकार करताहै; पर उसे "इतिहासकी देन" मानताहै, "सरस्वतीकी देन" नहीं। (पृ. ३२८-३३३)

लेखकका यह ग्रंथ वास्तविक अर्थमें शोध-प्रबंध है जो किसी उपाधिके लिए नहीं, भाषा संबंधी राष्ट्रीय समस्याका हल खोजनेके लिए लिखा गयाहै। अत्यन्त ललित सुपठनीय भाषामें लिखे हुए ग्रंथकी अनेक विशेषताएं हैं। लेखकने इतिहासकी जोभी बात कहीहै, वह प्रमाण सहित कहीहै मूल शब्द उद्धृत कियेहैं, उनका पूरा सन्दर्भ दियाहै। उसने इतने अधिक स्रोतोंसे सामग्री इकट्ठी कीहै जो सामान्य विद्वान्के बसकी बात नहीं। वह स्वयं अंग्रेजीका प्रोफेसर है अतः अंग्रेजी साहित्यके ग्रंथोंमें उपलब्ध सामग्रीका तो उसने उपयोग कियाही है, उसने अंग्रेजीके उन ग्रंथोंका भी मन्थन कियाहै जो अब सामान्यतया पढ़ेही नहीं जाते। अवतक शिक्षा संबंधी जितनेभी आयोग, समितियां आदि गठित हुई, उनके प्रतिवेदनोंका उसने समीक्षककी पैनी दृष्टिसे विश्लेषण कियाहै। इन प्रतिवेदनोंपर तत्कालीन प्रतिक्रियाएं क्या हुईथीं उनका भी उल्लेख करते हुए वर्तमान परिस्थितियोंमें उनकी प्रासंगिकता क्या है—इसकी भी चर्चा कीहै। इस प्रकार इतिहासका उपयोग वर्तमानको सुधारने और भविष्यका निर्माण करनेके लिए किया गयाहै। इतिहासके अध्ययनका मुख्य प्रयोजन भी संभवतः यही है। पिछली लगभग दो शताब्दियोंके आर्थिक शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवनको चित्रित करने

वाले अनेकानेक ग्रंथोंके यथास्थान उद्धरण देखकर लेखकके विस्तृत एवं गहन अध्ययनका संकेत मिलताहै। अध्यायोंके शीर्षक बड़े सटीक हैं। उनमें साहित्यिक भाषा और ऐतिहासिक तथ्योंका बड़ा सुन्दर समन्वय हुआहै।

अंग्रेजी जोड़ती नहीं तोड़तीहै

अध्यायोंकी संख्या जाननेमें भी पाठकोंकी रुचि होसकतीहै। पुस्तकमें दस अध्याय हैं जिनमें प्रारंभिक सात अध्यायोंमें स्वतन्त्रतासे पूर्वकी, और आठवें अध्यायमें स्वतन्त्रताके बादकी स्थितिकी विशद् विवेचना कीहै। नवें अध्यायमें रूस और ब्रिटेनकी भाषा समस्यासे संबंधित सामग्री दीहै। दसवें अध्यायमें अंग्रेजीसे जुड़े मिथकोंका मायाजाल साफ करनेके बाद लेखकने स्पष्ट शब्दोंमें और बहुत संक्षेपमें यह बतायाहै कि आज वस्तुत: किस प्रकारके परिवर्तनकी आवश्यकता है। लेखकका सन्देश है कि शिक्षाके माध्यमके रूपमें अंग्रेजीका प्रयोग एकदम बंद होना चाहिये, प्रशासनके क्षेत्रसे अंग्रेजीको निष्कासित करना चाहिये, और राष्ट्रीय सम्पर्कके रूपमें हमें उसी भाषाका व्यवहार करना चाहिये जो हमें राष्ट्रसे, राष्ट्रके सामान्य जनसे जोड़तीहो, न कि तोड़तीहो। अंग्रेजीका अध्ययन होना चाहिये, पर विदेशी भाषाके रूपमें। अंग्रेजीको मातृभाषा न बना दिया जाये। उसके शिक्षणकी विधि ऐसी हो जो मातृभाषाके योगदानको स्वीकार करे, मातृभाषाके अध्ययनको व्यवधान न माने।

भारतमें आज अंग्रेजीकी प्रत्यक्ष विधि जैसी शिक्षणविधिकी आड़में मातृभाषा जैसा रुतबा दिये जानेकी जिस साजिशके प्रति लेखकने सावधान कियाहै वह वास्तवमें विशेष ध्यान देने योग्य है। यह विसांस्कृतीकरणकी प्रक्रिया है। अत: इसके साथ वे सारी बातें जुड़ी हुईहैं जो विसांस्कृतीकरणका परिणाम होतीहैं। छोटे-बड़े शहरोंमें तो आज गली-गलीमें अंग्रेजी माध्यमके विद्यालय खुलते जा रहेहैं देशका ज्यों-ज्यों 'आर्थिक विकास' होरहाहै, अंग्रेजीका शिकंजा कसता जारहाहै। अत: इन विद्यालयोंकी संख्या बढ़ती जारहीहै और उसीके साथ अंग्रेजीकी जड़ेंभी मजबूत होती जारहीहैं। सांस्कृतिक पुनरुत्थान कालमें रोपा हुआ और स्वाधीनता संग्राममें सींचा हुआ बिरवा अब सूखने लगाहै। सदियोंकी सन्तोंकी मेहनत बेकार हुई जारहीहै। मेरा विचारहै कि इस स्थितिके लिए दूसरे तो अनेक कारण जिम्मेदार हैं ही, त्रिभाषा-सूत्रभी कम जिम्मेदार नहीं है जो अंग्रेजीको अनिवार्य बनाये रखकर उसे हमारे समाजका अनिवार्य अंग बनानेपर तुला हुआहै। यह परिवर्तन लानेवाला सूत्र नहीं है, यथास्थिति बनाये रखनेवाला सूत्र है। यह माना जासकताहै कि वर्तमान पीढ़ीका काम अंग्रेजीके बिना नहीं चलेगा, पर यह कदापि नहीं माना जासकता कि देशी भाषाओंमें अपेक्षित प्रशिक्षण देनेके बादभी आनेवाली पीढ़ीका काम अंग्रेजीके बिना नहीं चल सकेगा। इस विश्वासके आधारपर मेरा माननाहै कि अपने देशमें अनिवार्यतया केवल दो भाषाएं पढ़ायी जानी चाहिये—अहिन्दी क्षेत्रोंमें क्षेत्रीय भाषा और संधीय भाषा हिन्दी; हिन्दी क्षेत्रों हिन्दी और कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा। इन सभी भाषाओंका केवल साहित्यिक रूपही न पढ़ाया जाये, बल्कि वह रूपभी पढ़ाया जाये जिसे "प्रयोजनशील रूप" कहतेहैं, जिसका व्यवहार प्रशासन आदिकी भाषाके रूपमें होताहै। अन्य सभी भाषाएं वैकल्पिक होनी चाहिये, अनिवार्य नहीं। लेखक महोदयसे भी मेरा अनुरोध है कि वे त्रिभाषा-सूत्र और प्रस्तावित द्विभाषा सूत्रपर अवश्य विचार करें।

एक भूल लेखकसे हो गयीहै। उसकी ओर ध्यान दिलाना इसलिए आवश्यक है ताकि आगामी संस्करणमें उसे दूर किया जासके। माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२-५३) ने दो भाषाओंके अध्ययनकी सिफारिश कीथी, न कि तीन भाषाओंकी, जैसाकि पुस्तकमें पृ. २८१ पर लिखाहै। आयोगके प्रतिवेदनके पांचवे अध्यायमें भाषाओंके अध्ययनपर विचार किया गयाहै। उनकी संस्तुतियां तो वेही हैं जिनका लेखकने उल्लेख कियाहै, पर बिंदु २ पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओंकी एकसाथ चर्चा तीन भाषाओंका भ्रम उत्पन्न कर देतीहै। आयोगने लिखाहै, "मिडिल स्कूल स्टेजपर हर बच्चा कमसे कम दो भाषाएं पढ़े।" (पृ. ७२) इसी पृष्ठपर हाई और हायर सेकेंडरी स्टेजपर भी कमसे कम दो भाषाएं पढ़नेका सुझाव दिया गयाहै जिनमें से एक मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा हो। आगामी अध्यायमें माध्यमिक विद्यालयोंके पाठ्यक्रमकी चर्चा करते हुए आयोगने भाषा संबंधी अपनी संस्तुतियां पुन: प्रस्तुत कीहैं जिसमें नं. १ पर मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा और शास्त्रीय भाषाका संश्लिष्ट पाठ्यक्रम प्रस्तावित

कियाहै और नं॰ २ पर छह भाषाएं प्रस्तावित कीहैं जिनमें से कोई एक भाषा चुननेका निर्देश दियाहै। (पृ. ८५)। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा आयोगने द्विभाषा सूत्र प्रस्तावित कियाथा जिसमें अनिवार्य थी केवल मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा। मिडिल स्टेजपर बच्चेको कुल दोही भाषाएं पढ़नीहैं। इसकी छूट अवश्य दी गयीहै कि अगर कोई बच्चा मिडिल स्टेजपर चाहे तो हिन्दी और अंग्रेजी पढ़ सकताहै। पर ध्यान देनेकी बात यह है कि प्राथमिक स्तरपर बच्चा मातृ-भाषा/क्षेत्रीय भाषा पढ़ता रहाहै, और अगर मिडिल स्टेजके बादभी पढ़ेगा तो मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा फिर अनिवार्य होगी। तो कोई बच्चा मिडिल स्टेजपर मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषाको क्यों छोड़ेगा? छोड़ना चाहियेभी नहीं। हिन्दी हो या अंग्रेजी, दोनोंकी तुलनामें मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषाका महत्त्व अधिक है।

एक छोटी-सी चूककी ओर ध्यान और आकृष्ट कर दूं। डॉ. दौलतसिंह कोठारीकी अध्यक्षतामें जो आयोग सन् १९६४ में गठित किया गयाथा उसका नामकरण किया गयाथा--द एजूकेशन कमीशन। सन् १८८२ में सर विलियन हंटरकी अध्यक्षतामें भारतका जो पहला आयोग गठित किया गयाथा, उसका नाम था—इंडियन एजूकेशन कमीशन। लेखकने डॉ.कोठारीवाले आयोगको भी एक दो स्थानोंपर 'इंडियन एजूकेशन कमीशन' लिख दियाहै, जैसे पृ. २९८। यद्यपि वर्षभी साथ लिखाहै इससे आशय समझनेमें कठिनाई नहीं होती।

आज लोग जीविकाके लिए तो सब कुछ कर रहेहैं, पर निःस्वार्थ भावसे राष्ट्रीय समस्याओंपर राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार करनेवालोंकी संख्या घटतीही जारहीहै। आज तो विश्वविद्यालयके शिक्षकभी या तो कोर्सकी किताबें लिख रहेहैं, या "बेस्ट सेलर" लिख रहेहैं, या राजनीतिक दलों और राजनेताओंकी कृपा पानेके लिए लिख रहेहैं,। ऐसे माहौलमें राष्ट्रप्रेमसे प्रेरित पुस्तक ताजी हवाके झोंकेकी भांति सुख देतीहै। हम लेखकके शतायु होनेकी कामना करतेहैं ताकि भविष्यमें उसकी लेखनीसे ऐसी सुन्दर पुस्तकें औरभी तैयार हों। यह पुस्तक अंग्रेजीमें है। जो कुछ उसमें कहा गया है उसका अंग्रेजीवालोंके पास पहुंचना अधिक आवश्यकभी है। पर पुस्तक इतनी विद्वत्तापूर्ण ढंगसे लिखी गयीहै कि अनुवाद होनेपर भारतीय भाषाकी इससे श्रीवृद्धि होगी।

डाक-विभागके कर्मचारियों द्वारा पोस्ट-कार्ड बैरंग करनेका व्यापार

डाक-विभागकी पोस्टल-टैरिफिके अनुसार यदि किसी पोस्टकार्डपर प्रेषकका केवल नाम पता छपाहै तो वह १५ पैसेमें भेजा जाताहै और उसे बैरंग नहीं किया जासकता।

परन्तु डाक-विभागके कर्मचारी इस व्यवस्थाकी बिना चिन्ता किये उन सभी कार्डोको बैरंग कर देतेहैं जिनपर प्रेषकका केवल नाम-पता छपा होताहै।

पत्र बैरंग करनेका यह व्यापार खुले आम और धौंसपट्टीके साथ बराबर चल रहाहै, यद्यपि इस ओर डाक-विभागके अनेक अधिकारियोंका अनेक बार हम ध्यान खींच चुकेहैं।

पोस्टकार्ड बैरंग करनेवाले डाक कर्मचारियोंसे सावधान रहे.

उपभोक्ता-संघ द्वारा प्रचारित

औद्योगिक विकासमें टाटा-बन्धुओंका योगदान[1]

कृतिकार :
रूसी एम. लाला

समीक्षक :
डॉ. जमनालाल बायती

प्रस्तुत पुस्तकमें टाटा उद्योगके विकासकी कहानी है। टाटा उद्योगके विकासकी इस कहानीके साथ टाटा बन्धुओं द्वारा संचालित जनहितकारी कार्योंका लेखा-जोखाभी दिया गयाहै। परन्तु, धन पैदा करना या संग्रह करनाही काफी नहींहै, वरन् अधिक महत्त्वपूर्ण है—धन का विनियोग करना। इसी आर्थिक-दर्शनका इस उद्योग की कहानीमें दर्शन होताहै। भारतीय परम्परामें अर्थ-संग्रह करनेवाला अथवा धनपतिको अर्थ और सम्पत्तिका संरक्षक माना गयाहै, न कि मालिक। परम्परागत रूपसे हमारे समाजका आदर्श रहाहै : 'सैकड़ों हाथोंसे संग्रह करो, हजारों हाथोंसे विकीर्ण करो। सम्पादित कार्यका ठीक-ठीक वर्धन करो। (शत हस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर, कृतस्य कार्यस्य चेह स्फाति समावह)। ठीक इसी आदर्शपर टाटा बन्धु चलते रहेहैं।

धन या सम्पत्ति अन्ततः है किसलिए—धन या सम्पत्ति ही तो साध्य नहीं है। साध्य तो कुछ औरही है स्तरीय जीवन-यापन, या परोपकार या बड़े हितपर छोटे हितको प्रभावी न होने देना। इन उद्देश्यों या लक्ष्यों या साध्योंकी प्राप्तिका साधन है—धन। इसीलिए धनका अपने आपमें स्वयं कोई महत्त्व नहीं है जबतक कि उसका सही एवं न्यायसंगत उपयोग न हो। सर आर्थर लेविस्ने भी आर्थिक विकासके प्रमुख कारक प्राकृतिक साधन, पूंजी निर्माण, तकनीकी विकास, श्रम, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-प्रशासनिक संगठन तथा मानवीय घटकोंमें से मानवीय कारकको सर्वाधिक महत्त्व दियाहै। इस सबसे भी यही संकेत मिलताहै कि आखिर यह सब विकास है किस निमित्त? लेविसने तो मानवीय घटकको ही मानवीय सम्पदा कहकर पुकाराहै।" आदमी पैसोंसे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।" (पृष्ठ ५०)

ग्रन्थ लेखकने सम्पदा और मानवीय संबंधोंके बारेमें लिखाहै कि 'वेल्थ' (सम्पदा) 'वील' शब्दसे निकलाहै जिसका अर्थ होताहै भलाई, सुख, समृद्धि, कल्याण। व्यापक संदर्भमें यह शब्द अपने अर्थमें समुदायके कल्याणको अन्तर्निहित करताहै। सामुदायिक कल्याणके लिए सम्पदाका निर्माण किया जाताहै, यह निर्माण कार्य एक वर्ग करता है और दूसरा वर्ग उसका उपभोग करताहै। आधुनिक युगमें एक तीसरा वर्ग उभरा है जो उस सम्पदापर नियन्त्रण करना चाहताहै जिसके निर्माणके लिए दूसरे लोग श्रम करतेहैं। प्रस्तुत कृतिमें देशके अग्रणी औद्योगिक टाटा प्रतिष्ठान द्वारा राष्ट्रके निमित्त सम्पदाके निर्माणके लिए कीगयी साधनाका विवरण है। यह साधना सम्पदाके निर्माणकी है। इस निर्माण-प्रक्रियामें परिसम्पत्तिकी स्फीति (विस्तार, संवर्धन) होतीहै और सम्पदाके निर्माताको आर्थिक शक्तिपर नियन्त्रणके आरोपका सामना करना होताहै। इस नियन्त्रण संबंधी आरोपका निर्णय आर्थिक विनियोगसे किया जाताहै तथा निर्णयमें सम्पत्तिके सामाजिक उपयोगको ध्यानमें रखा जाताहै। आजके राजनीतिक प्रचार और आर्थिक क्षेत्रपर अधिकाधिक राजनीतिक नियंत्रणकी महत्त्वाकांक्षाकी स्थिति और वातावरणमें किसी प्रतिष्ठानकी सम्पदाके निर्माण, निर्मित्त सम्पदाके सार्वजनिक हित अथवा सामुदायिक कल्याणके कार्योंकी गाथा प्रस्तुत करना वस्तुतः साहसिक कार्य है और लेखकने इस पुस्तकमें इसे सफलतापूर्वक सम्पन्न कियाहै।

पुस्तकके प्रथम भाग पृष्ठ १६ से ११४में तथा पृष्ठ २१० से २१३ तक परिशिष्टमें टाटा-बन्धुओं द्वारा सम्पदा-निर्माणके क्रमिक विकास और संवर्धनका विवरण है। इस विवरणसे स्पष्ट है कि टाटा-बंधु बहुआयामी सूझ-बूझके धनी हैं तथा उनके उद्योग विविधतापूर्ण हैं।

टाटा-बन्धुओंके औद्योगिक जोखिमकी यह कहानी साहस, लगन, संघर्ष एवं उपलब्धियोंसे भरी पड़ीहै। टाटा उद्योगोंकी कहानी सही दृष्टि, कड़ी मेहनत, लम्बी परेशानी एवं त्यागसे उपजे साहस, मानवताके प्रति गहरे लगावकी भावनासे आरम्भ होतीहै। पुस्तकके प्रथम भाग

---

१. **कृति : 'समृद्धिकी ओर : टाटा उद्योगकी कहानी' (मूल अंग्रेजी : द क्रियेशन ऑफ वेल्थ), अनुवाद : डॉ. शंकर शेष। चित्रांकन : मारियो मिरांडा। प्रकाशक राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : २१६; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।**

साहसिक कदममें स्वतन्त्रतासे पूर्व १८७४से आरम्भ हुए क्रमवार ४६ उद्योगोंके क्रमिक विकासकी कहानी प्रस्तुत की गयीहै।यह उनके शान्त, सबल,दृढ़ एवं निस्वार्थ भाव से अपने लक्ष्यकी ओर बढ़नेकी द्योतक है। कहतेहैं टाटा बंधु मान-सम्मान तथा उपाधियोंके पीछे नहीं दौड़े तथा कभी रियायतोंके लिए दावा नहीं किया। टाटा-बंधुओंने किसीभी उद्योगकी सफलताके तीन सूत्र ठीकसे समझ लिये थे—१. भारी उद्योगका जनक इस्पात है २. सस्ती विद्युत ऊर्जा तथा ३. अद्यतन तकनीक। विदेशी तकनीशियनोंकी सेवाएं प्राप्त करनेमें वे कितनी लगन एवं निष्ठा से तत्पर रहतेथे ? मोटे रूपसे कहा जा सकताहै कि "जहां कहींका भी उन्होंने दौरा किया, जो कुछ कहीं अच्छा देखा, वह सब वे अपने देशके लाभके लिए भारत लायें।" (पृष्ठ २६)

टाटा उद्योग अल्जीरिया, लाइबीरिया, कुवेत तथा सउदी अरेबियामें भी तकनीकी क्षेत्रमें सेवाएं दे रहेहैं। कई बार ऐसी स्थितियां आयीं कि कम्पनीका दिवाला निकल सकताथा पर ऐसा नहीं किया गया। टाटा-बंधुओं ने परिवारकी महिलाओंके कीमती आभूषण बैंकमें रहन रखकर भी देनदारियोंका भुगतान किया और न कभी श्रमिकोंकी छंटनीही की। कार्यकी उत्कृष्टताके लिए १९३३-३४की वार्षिक रिपोर्टमें भारतीय नागरिक उड्डयन निदेशालयने लिखा—"हवाई डाक सेवा किस कुशलता और क्षमतासे चलायी जानी चाहिये, इसका उदाहरण टाटा सर्विसेज है। हम कुशल सेवाओंके लिए उनकी प्रशंसा करतेहैं।······इम्पीरियल एयरवेजको अपने कर्मचारियोंको टाटाके यहाँ भेजना चाहिये जिससे वे देख सकें कि काम किस तरह किया जाताहै।" (पृष्ठ ७७)

जनोपयोगी सुविधाएं यथा शिक्षा,निर्देशन, प्रशिक्षण, चिकित्सा, वाणिज्य-व्यवसाय पुस्तकके दूसरे खण्डमें—लहरोंका विस्तारमें वर्णित है। टाटा-बन्धुओं द्वारा संचालित सभी कम्पनियोंके अधिकारियोंके प्रशिक्षणके लिए एक व्यापक-काम्प्रीहेंसिव-संस्थान पुणेमें टाटा मेनेजमेण्ट ट्रेनिग सेन्टर कार्य करताहै, जहां प्रतिवर्ष ४० से अधिक पाठ्यक्रम चलाये जातेहैं। इन पाठ्यक्रमोंमें ५० प्रतिशत सम्भागी सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रके अधिकारी होते हैं। विश्व-बैंकने १९६३ की रिपोर्टमें कहाहै : "ट्रैनिग सेंटरके कार्यका क्षेत्र, लोगोंका चुनाव और सुविधाओंकी दृष्टिसे कम्पनीके प्रशिक्षण कार्यक्रमको विश्वके सर्वश्रेष्ठ कार्यक्रमोंमें गिना जा सकताहै।" (पृष्ठ : १२०) इस ट्रेनिग सेंटरका लाभ सिंगापुर, हॉलेण्ड, जर्मनी, ज्यूरिख, गलेन, ईरान आदि देशोंने भी उठायाहै। एक जगह जमशेदजी कहतेहैं —"कर्मचारीही हमारी समृद्धिके आधार हैं।" (पृष्ठ : १३०) मि. टाटा एक अन्य जगह कहते है—"मैं प्रायः अपने आपसे एक सवाल पूछताहूं। जब पूरे देशमें औद्योगिक अशान्ति है तब जमशेदपुरमें शान्ति कैसे बनी हुईहै। मैं सोचताहूं—इसके दो कारण हैं। एक तो आपसी परामर्शकी वह पद्धति जिसे हमने वर्कशॉपके स्तरसे सर्वोच्च मेनेजमेण्टतक विकसित कियाहै। मेरा ख्याल है कि दूसरे स्थानपर कम्पनीमें अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों की सफलताका यह बहुत बड़ा रहस्य है।" (पृष्ठ : १३५) यह सराहनीय कदम था कि पहली बार टाटा स्टील कम्पनीने ही अपने कार्यकलापोंका बम्बईके भूतपूर्व न्यायाधीश एस. पी. कोतवाल, बी. जी. मावलंकर तथा प्रो. रजनी कोठारी द्वारा सामाजिक सर्वेक्षण करवाया।

किसी-न-किसी रूपमें टाटासे उपकृत व्यक्ति हैं—कई खिलाड़ी, ए. आर. दलाल, जे. सी. कोयाजी, वी. एन. राव, डॉ. जीवराज मेहता, डॉ. राजा खन्ना एवं डॉ. वी. के. आर. वी. राव.। निम्न संस्थाओंको टाटा बन्धुओंका आर्थिक संरक्षण मिलाहैं—विज्ञान संस्थान, बंगलार; टाटा समाज विज्ञान संस्थान, बम्बई; टाटा कैंसर शोध एवं उपचार संस्थान, बम्बई; टाटा मौलिक शोध संस्थान, बम्बई; यह संस्थान गणित तथा परमाणु विज्ञानके राष्ट्रीय अनुसंधानके केन्द्रके रूपमें आधारभूत अग्रणी संस्थाके रूपमें जाना जाताहै।

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक एशियामें अपनी प्रकारका एक मात्र संस्थान टाटा समाज विज्ञान संस्थानको, उसके कार्यके महत्त्व तथा विस्तारको देखते हुए भारत सरकारने विश्वविद्यालयका स्थान दियाहै। यहाँ प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, स्नातक, स्नातकोत्तर तथा शोध उपाधिका विभिन्न विषयों यथा : कर्मचारी प्रबन्धन, औद्योगिक सम्बन्ध, अपराध विज्ञान, (बाल अपराध सहित) सुधारात्मक प्रशासन, परिवार तथा शिशु कल्याण, चिकित्सा तथा मनोविकार, समाज कल्याण प्रशासन, शहरी तथा ग्रामीण सामुदायिक विकास, आदिम जाति कल्याण, बाजार-शोधका अध्ययन-अध्यापन होताहै। अपने विषय की ४५००० पुस्तकोंवाला संस्थानका अपना समृद्ध पुस्तकालय है। चाइल्ड गाइडेंस क्लिनीक अपनी किस्म का प्रथम सेवा संस्थान है। यह संस्थान बर्मा, श्रीलंका, मलेशिया, सिंगापुर, नेपाल, बंगलादेश तथा अफ्रीकी देशों की समाज-विज्ञानियोंकी आवश्यकताएं पूरी करताहै।

इस संस्थानके वरिष्ठ अधिकारी राष्ट्रीय पुलिस आयोग, बोनस पुनर्विचार समिति एवं जेल सुधार समिति

में सदस्योंके रूपमें राष्ट्रीय नीति निर्धारणको प्रभावित करते रहेहैं। इसके अतिरिक्त संस्थानके अध्यापकों द्वारा निष्पादित शोध कार्योंके प्रतिवेदनों एवं अन्य लेखोंपर भी सम्बन्धित विभागों द्वारा निरन्तर ध्यान दिया जाता रहाहै। न केवल इतनाही; बल्कि यह संस्थान नीति-निर्धारणकी जरूरतोंको पूरा करनेके लिए वैचारिक पृष्ठभूमिभी प्रदान करताहै। पुस्तकका यह भाग समाजशास्त्रके किसीभी अध्येताके लिए आधारभूत सामग्री प्रस्तुत करताहै।

इन महत्त्वपूर्ण कार्योंके अतिरिक्त टाटा-बन्धुओंने एक और अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया, वह है—नेत्रहीनों को कार्य सिखाकर पुनर्वास करना। इसका नामहै—टाटा एग्रीकल्चरल रूरल ट्रेनिंग सेंटर फॉर दि ब्लाइण्डस, पृष्ठ १७३-१७४ पर दी गयी कहानी ऐसे अपाहिजोंमें नवजीवनका संचार करतीहै।

सन् १९२४में लगाये गये एक अनुमानके अनुसार आई. सी. एस. परीक्षामें चयनित प्रत्याशियोंका २० प्रतिशत भाग जे. एन. टाटा छात्रवृत्ति प्राप्त करताथा। "'बंगलोर, पंचगनी तथा उटकमण्डके बगीचोंमें विदेशी नवीन पौधे तथा पेड़ोंको इन बंधुओंने पहली बार लगाकर बड़ा किया।'"टाटा-बंधु दैवी प्रकोपोंके समयभी मुक्त-हस्तसे दान देते रहेहैं। मोरवीकी बाढ़के समय २५ लाख तथा कोयनाके भूकम्पके समय ७ लाख रुपयोंकी सहायता दी। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि २५ लाख या ७ लाख रुपयोंकी मदद दी गयी—बल्कि महत्त्वपूर्ण यह है कि इस सहायतामें ३० प्रतिशत राशि कामगरोंने ही दी थी यह इस बातका जीता जागता-प्रमाण है कि आप सह-नागरिक बंधुओंके प्रति कितने सजग हैं? चिन्तित हैं? पृष्ठ: १७८)

खेलकूदमें भी टाटा-बंधु पीछे नहीं रहे। देशके १०० खिलाड़ियोंको अन्तर्राष्ट्रीय खेलके मैदानोंमें उताराहै १९३७में टाटा स्पोर्ट्स क्लबकी स्थापना की—यह पहला औद्योगिक घराना था जिसने खेलोंपर भी ध्यान दिया। उन्होंने ऑलम्पिक खेलोमें भाग लेनेके लिए खिलाड़ियों को विदेशोंमें भेजा जबकि भारतमें उस वक्ततक ऑलम्पिक बॉडी भी नहीं बनीथी। इससे उनका खेलोंके प्रति अनुराग स्पष्ट होताहै।'"पुस्तकमें ऐसे कई उदाहरण सामने आतेहैं जो हृदयस्पर्शी हैं। किसी कर्मचारीकी विधवा पत्नीको कम्पनीके प्रधान एक्ज्यूटीवकी पत्नी द्वारा अपनी गाड़ीमें अपने साथ बिठाकर अधिकारीके पास ले जाना तथा जीविकोपार्जन हेतु उपयुक्त काम दिलवाना। ऐसे उदाहरण विरलेही मिलते हैं।'"'"इस प्रकार निश्चयपूर्वक कहा जा सकताहै कि "टाटा उद्योगोंसे जुड़े प्रत्येक व्यक्तिका न केवल वर्तमान वरन् बुढ़ापाभी सुरक्षितहैं।" (पृष्ठ १७२)

पुस्तकका तीसरा खण्ड पृ. १८६ से आरम्भ होता है जिसमें कथ्यात्मक सूचनाएं हैं। यह खण्ड देशके औद्योगिक विकासमें रुचि रखनेवाले किसीभी अर्थशास्त्र के विद्यार्थीके लिए उपयोगी हो सकताहै। पृ. १९३ पर विभिन्न कम्पनियोंमें इनके अंशोंका प्रतिशत दर्शाया गयाहै जो ३ से १९ प्रतिशत तक है। मात्र एक कम्पनी सेण्ट्रल इण्डिया स्पिनिंग विविंग एण्ड मेन्युफेक्चरिंग कम्पनीमें उनके अंश ४४ प्रतिशत है। टाटा-बन्धुओं द्वारा प्रवर्तित ४९ उद्योग देशकी समृद्धिमें योगदान कर रहे हैं यह तालिका पृ. २१० से २१३ पर देखी जा सकती है। पृ. २१४ पर परोपकारी कार्योंको भी लिपिबद्ध कर दिया गयाहै।

हर काममें सुधारकी गुंजायश रहतीहै, कोईभी कार्य सभी दृष्टियोंसे आदर्श या आलोचनारहित नहीं हो सकता। ऐसाही संकेत दियाहै भूमिकामें श्री टाटाने। उनके अनुसार लेखक अपने काममें सम्भवत: कुछ असफल रहाहै। वह है संस्थाकी कुछ कमजोरियों और असफलताओंकी ओर संकेत न करना और न ही उनकी आलोचना करना। श्री टाटाने आभार मानाहै अंशधारियों का जिनका इन कम्पनियोंको सतत विश्वास प्राप्त रहा है, तथा उपभोक्ताओंका जिन्होंने गुणवत्तात्मकताके आधार पर उत्पादन स्वीकार किया। इस कथनमें टाटा-बंधुओं की विनम्रता झलकतीहै।

यदि एक वाक्यमें पुस्तकके बारेमें सम्मति देनी पड़े तो कहना होगा कि जो व्यक्ति औद्योगिक पृष्ठभूमिमें पाले पोसे गयेहैं और साथही जोखिम उठानेको उद्यत हैं उनके लिए इस पुस्तकमें बहुत कुछ सामग्री है। यह पुस्तक टाटा उद्योगोंकी अपने आपमें जानकारी तथा तथ्योंका भण्डार समेटे हुएहै। पुस्तक बड़े रोचक ढंगसे लिखी गयीहै, लेखककी भाषामें प्रवाह है, कहींभी अनुवाद का सन्देह नहीं होता। देशके औद्योगिक विकासकी कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्रस्तुत करतीहै। पुस्तक केवल सम्पदा वृद्धिकी कहानीही नहीं है बल्कि प्राप्त धनको सही व रचनात्मक ढंगसे उपयोगमें लानेकी विधि एवं राहभी बतातीहै। पुस्तकमें बराबर आकर्षण बना रहता है, कहींभी ऊब नहीं होती। कई उदाहरण बड़ेही हृदयस्पर्शी बन पड़ेहैं। मुद्रण साफ एवं त्रुटिरहितहै, चित्र सुन्दर है एवं उपयुक्त स्थानोंपर दिये गयेहैं।□□

दर्पण झूठ ना बोले[1]

लेखक : श्रवणकुमार गोस्वामी
समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ.

उपन्यास सर्वाधिक व्यापक एवं प्रशस्त सर्जनात्मक विधाके रूपमें स्वीकार किया जा सकताहै। जब हिन्दी साहित्य जगत्‌में व्यंग्य स्वतंत्र विधाके रूपमें स्वीकृत हो चुकाहै तो क्या व्यंग्यका क्षेत्र निबन्धात्मक और काव्यात्मकता तथा थियेटरसे अलग हटकर किसी अन्य विधामें भी अपनी व्याप्तता प्राप्त कर सकताहै, इसका उत्तर श्रवणकुमार गोस्वामीका उपन्यास—'दर्पण झूठ ना बोले' देताहै। इस 'दर्पण झूठ ना बोले'से पूर्व श्रवणकुमारकी प्रथम औपन्यासिक कृति 'जंगलतंत्रम्' व्यंग्यपरक उपन्यासके रूपमें धूम मचा चुकीहै और यह सिद्ध कर चुकीहै कि व्यंग्य इस महाकाव्यात्मक विधामें भी अपनी चरितार्थता सिद्ध कर सकनेमें समर्थहै। 'जंगलतंत्रम्' रचनाके लिए लेखक पुरस्कृतभी किया जा चुकाहै।

व्यंग्यपरक औपन्यासिक लेखनमें श्रवणकुमार गोस्वामी अद्वितीय हैं और यह अद्वितीयता उनके राजनीतिक-सामाजिक एवं काल-बोधके प्रति उनकी यथार्थ पकड़के साथ व्यंग्य संश्लिष्टताके कारण अधिक है तभी उन्होंने इस उपन्यासमें प्रजातान्त्रिक व्यवस्थाके कर्णधारोंके चेहरों पर लगे विविध प्रकारके मुखौटोंको बड़ी निर्भीकताके साथ उताराहै तथा जनताके सामने उनके असली चेहरोंको प्रस्तुत कियाहै। इस उपन्यासकी व्यंग्यपरकता जहां अपने औपन्यासिक लेखनमें व्यंग्यपरक उपन्यासकारको स्थापित करनेमें सक्षम है, वहीं वह ईमानदारपूर्ण लेखनको भी रेखांकित करनेमें पूर्णरूपसे सफल है।

'दर्पण झूठ ना बोले' का कथानक संक्षिप्त रूपमें इतनाही है कि जनता (पात्र) को बेईमान दूकानदार चार रुपये किलोके भावसे कैशमीमो देकर भी बारह रुपये लेताहै। जनता द्वारा थानेमें शिकायत करनेपर भी उस दुकानदारका कुछ नहीं बिगड़ता क्योंकि रिश्वत देकर वह बच जाताहै। जनता उसकी शिकायत नगर कोतवाल, नगरपाल और मुख्यमंत्री तकसे करतीहै, पर व्यर्थ। उसे सिवाय निराशा, कुण्ठा और हताशाके कुछ नहीं मिलता क्योंकि जिन लोगोंकी शिकायतें की गयीथीं, उन सबको 'प्रमोशन' (पदोन्नति) मिल गयीहै। देशपाल प्रजातंत्रमें व्याप्त भ्रष्टाचार, बेईमानी, चालाकी और राजनीतिक चालोंका खुलासा करते हुए जनताको स्पष्ट करताहै—'मैं जानताहूं जनता, मैं सब कुछ जानताहूं। यह सच है कि तुम बहुत दुखी हो, पर मैं क्या करूं? मैंभी तो तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता।'...मेरा इस सिंहासनपर बैठना या नहीं बैठना महामंत्रीकी मर्जीपर है। महामंत्री जिस दिन चाहें, बहुमतके बलपर अपमानितकर मुझे इस सिंहासनसे उतार सकताहै। राजमहलके बाहर निकाल सकताहै और किसीभी ऐरे-गैरे नत्थूखैरेको इस सिंहासनपर बिठा सकताहै।" (पृष्ठ ६५)

जनताका मुकदमा उच्चतम न्यायमंदिरमें पहुंचता है। एक वकील अपने भावी जीवनकी सार्थकता सिद्ध करनेके लिए उस मुकदमेको 'फ्री' लड़ताहै। जनताको न्यायमंदिरमें अंग्रेजी बोलनेपर टोक देनेके परिणाम स्वरूप चौबीस घण्टेकी जेल यात्रा करनी पड़तीहै। उसे उसकी भाषा या उसके देशकी भाषामें उसके अपराधका उल्लेख तक नहीं किया जाताहै। उपन्यासकारने अत्यन्त सहज और सपाट ढंगसे पिछले सैंतीस वर्षोंसे चल आरहे भाषाई विवादपर व्यंग्य कियाहै—जहां जनताकी भाषामें काम नहीं होता, वहां जनताको न्याय मिलभी कैसे सकता है।' (पृष्ठ ६२)

जनताका एक मात्र सहयोगी जमाना (पात्र) है जो जब तब उसे युगके अनुरूप चलनेकी सलाहभी देताहै और वह युग-सत्यसे जनताको परिचित कराताहै—देशके कर्णधारही भ्रष्टाचारके पोषक और उसके विस्तारक हैं। ऐसी स्थितिमें जो होना चाहिये वही होरहाहै।...इस देशको लकवा मार गयाहै। यहां सभी लकवाग्रस्त होगये

---

१. प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू. बी. बैंग्लो रोड, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : १५८; डिमा. ८३; मूल्य . ४०.०० रु.।

हैं। यहाँ तुम्हारी कोई नहीं सुनेगा। देशके नेता विदेशी बैंकोंमें मोटी-मोटी रकमें जमा करवा रहेहैं, वे देशका सौदा कर रहेहैं वे तुम्हारी गरीबी बेच रहेहैं। (पृष्ठ ६८)। जनता फिरभी अपनी हार नहीं मानती तथा जनता जमानाको अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहतीहै कि मैं हारी नहीं हूं। मैं ठहरी नहीं हूं। मैं जमानेको एक दिन जरूर बदल डालूंगी।' (पृष्ठ १००)। जनता पत्रकारोंके समक्ष वक्तव्य देतीहै—'इस देशमें मेरी सुनताही कौन है? पिछले चुनावके बाद जब चीनीके दाम बढ़ गयेथे तब मैंने कोतवाल, नगरपाल, प्रदेश मंत्री, महामंत्री, देशपाल, मुख्य न्यायकर्त्ता वगैरह सबसे भेंट कीथी। मैं अपनी शिकायत लेकर जैसे-जैसे ऊपर बढ़ती गयी, मेरी निराशा उतनीही बढ़ती गयी। वही सरकार आज भी है। (पृष्ठ १०७)।

उपन्यासकारने देशकी राजनीतिक इजाफेदारीका विश्लेषण व्यंग्यात्मक ढंगसे प्रस्तुत करते हुए कहाहै कि जनताके नामपर सत्तारूढ़ और विरोधी पार्टी चुनावके लिए चन्दा जमा करतीहैं और दोनोंके बोलने और कार्यों में समानता है। वह जमाना स्पष्ट कहताहै कि—'तिरंगी पार्टीने भी तुम्हारे नामपर करोड़ोंका चन्दा इकठ्ठा कियाहै और बहुरंगी पार्टीने भी यही काम कियाहै।' (पृष्ठ ११६)

इस प्रजातंत्रकी खूबी यहहै कि कोईभी दल सत्तारूढ़ होजाये स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं होता। हर सत्तारूढ़ दलकी आलोचना विरोधी दल करताहै। चुनावोंके बाद चीजें मंहगी होजातीहैं या बाजारसे गायब होजाती हैं, जनता फिर उन्हीं परिस्थितियोंको बर्दाश्त करनेके लिए बाध्य होजातीहै तथा सत्तारूढ़ दल कोशिशमें रहता है कि—'आजकल जनता बहुत होशियार होगयीहै, इसलिए यह जरूरीहै कि जोभी काम किया जाये, काफी चालाकीसे किया जाये ताकि जनताको किसीभी प्रकारका सन्देह नहीं हो। (पृ. २२) उपन्यासकारने दिखायाहै कि जनताके नामपर झूठे आरोप गढ़कर सत्तारूढ़ दलको अन्दर से किस प्रकार तोड़ा जा सकताहै। यहीं उपन्यासकारने जनताके माध्यमसे यहभी कहला दियाहै कि—'चार बुड्ढोंने मिलकर देशको रसातलमें धकेल दियाहै।' (पृष्ठ १३८) यहीं 'वोट' की राजनीतिपर करारा व्यंग्य करनेसे भी उपन्यासकार नहीं चूकाहै। (पृष्ठ १४०)

जनता इस आलोच्य उपन्यासकी नायिकाहै जो सर्वत्र शोषित है, आतंकित है, राजनीतिक दलोंके स्वार्थों के निकषपर उपयोगी पदार्थ है। जब जो दल चाहताहै, उसका उपयोग करताहै, दुकानसे लेकर अधिकारी सत्ताधिकारी उसे अपने स्वार्थोंके लिए प्रयोग करते रहतेहैं।

वर्तमान व्यवस्थापर करारा व्यंग्य करते हुए उपन्यासकारने राजनेताओंके साथ-साथ अधिकारियोंके यथार्थको भी स्पष्ट रूपसे रेखाँकित कियाहै कि जनता की इज्जत जेलर और गुण्डे लूटते रहतेहैं और सत्ताधिकारी उसे असत्य मानतेहैं (पृ. १५४) और जब जांच आयोग गठित करनेका आश्वासन देताहै सत्ताधिकारी, तो जनता उसकी हंसीभी उड़ातीहै।

हमारे देशमें स्वतंत्रताके बादसे नारोंकी उपलब्धि बड़ी सार्थक रहीहै। आरम्भमें समाजवाद लानेका नारा दिया गया, पर समाजवाद कहाँ है, कहांसे आयेगा कब आयेगा इसका पता नहीं चलताहै सैंतीस वर्षोंकी लम्बी अवधिमें भी। इसीलिए उपन्यासकारने कहलायाहै जनता द्वारा कि—'समाजवाद···समाजवाद, पता नहीं कबसे समाजवाद ला रहेहैं। पता नहीं, आपका समाजवाद कहाँसे आरहा है? पता नहीं आपका समाजवाद हवाई जहाजसे आरहा है या बैलगाड़ीसे? पता नहीं आपका समाजवाद किस स्टेशनपर अटक गयाहै? पता नहीं आपका समाजवाद आपके पास क्यों नहीं आना चाहरहा है? (पृ. १५५)

उपन्यासकारने देशकी वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों एवं सत्ताकी केन्द्रस्थ मानसिकता तथा स्वार्थपरकता आदिका यथार्थ चित्रांकन करते हुए जनताकी मरणासन्नतामें ही उसकी जिजीविषाका रेखांकन करते हुए यह दिखानेका प्रयास कियाहै कि अपनी मजबूरियों तथा नाजायज स्थितियोंमें जीवन भोगती हुई जनता मरभी नहीं सकतीहै। इस प्रकार त्रिशंकुकी स्थितिमें हमारी लोकतंत्रशाहीमें अपनी दुरावस्थापर मात्र विवश असहाय और अकर्मण्य बनकर जनता निरन्तर राजनीति सत्ता एवं मंहगाईसे पिस रहीहै।

उपन्यासकारने बाजारमें बैठनेवाले बनियासे लेकर कोतवाल, नगरपाल, महामंत्री, देशपाल, न्यायाधीश, सत्ताधिकारियोंके चमचोंके यथार्थका उद्घाटन कियाहै जो व्यंग्यपरक तो हैही अत्यन्त उत्तेजकभी है। फिर भी हमारे देशमें आये बदलाव (इमरजैन्सीके बाद) की स्थितियोंमें सरकार गिरनेके कारण और राजनीतिक क्षेत्रमें तथाकथित दांव-पेंच, दलमें अविश्वसनीयता और रुपये-पैसेसे राजनीतिक समर्थनके मोलभाव आदिका विस्तृत

और व्यापक उल्लेख कियाहै।

उपन्यासकारने इस उपन्यासमें विवरणात्मक शैली अपनाकर यथार्थका चित्रण कियाहै तथा फ्लैश बैक पद्धतिसे विगतका चित्र त्रिकालदर्शीके दर्पणके माध्यमसे प्रकट कियाहै क्योंकि दर्पण झूठ नहीं बोलता। उपन्यासकारने आरम्भमें जनताकी महत्ताकी स्थापना कोतवालके शब्दोंमें (व्यंग्ययुक्त) कीहै : 'जनताको धोखा देना सबसे बड़ा अपराधहै। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि इस मुल्कमें जनतंत्र हैं? जनतंत्र याने जनताका राज। यह मुल्क जनताका है। हम जनताके सेवक हैं। (पृ. १३)

इसी जनताको जो भोली है और वर्तमान राजनीतिक रंग-ढंगसे परिचित नहीं है। सत्तासे न्याय पानेका आकांक्षी है, जमाना बतलाताहै कि—'मैं अपने अनुभवके बलपर तुमसे यह कहना चाहताहूं कि ऊपर और नीचेका यह चक्कर छोड़ो। इससे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा···कोतवाल अपनी जगहपर इसी तरह बना रहेगा और लालाभी अपनी दुकानमें बैठकर बराबरकी तरह डण्डी मारता रहेगा।' (पृ. १८) क्योंकि जमाना अपनी स्थिति स्पष्ट कर देताहै—मैं अनुभव प्राप्त करनेके बाद कायर बन गयाहूं। अभी तुम्हें इस दुनियांका अनुभव नहींहै···जिस दिन तुम्हें इस संसारका अनुभव प्राप्त होजायेगा, तुम स्वयं डरपोक बन जाओगी। (पृ. २३)

उपन्यासकारने लोकतंत्रकी अफसरशाही, नेताशाही के भ्रष्ट आचरणको ही उजागर नहीं कियाहै अपितु न्यायालयोंमें जिस जनताके पक्ष-विपक्षमें निर्णय किया जाताहै, उसे कभी यहभी पता नहीं चलता कि क्या निर्णय हुआहै क्योंकि हमारे लोकतंत्रमें सैंतीस वर्षो बादभी भाषायी गुलामी बनी हुईहै। देशपालका कथन इसी भाषायी गुलामीका प्रतीक है—'अरे, यहतो तुमने अपनी भाषामें ही लिख दियाहै? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं यह भाषा नहीं जानता?' (पृ. ६२) इस लोकतंत्र के राजनीतिक कठमुल्लापनपर व्यंग्य करते हुए देशपाल की स्थितिका चित्रण उपन्यासकारने कियाहै—'मैं कुछभी नहीं हूं। मैं सिर्फ रबरकी एक मुहर हूं रबरकी ऐसी मुहर, जिसका प्रयोग सिर्फ दूसरेही करतेहैं। मुझे यह अधिकार भी नहींहै कि मैं अपनीही मुहरका प्रयोग अपनी इच्छाके अनुरूप कर सकूं।' (पृ. ६३)

संविधानमें निहित शक्तियोंकी व्याख्या करते हुए उपन्यासकारने देशपालके मुखसे राजनीतिक यथार्थका उल्लेख करायाहै। संविधानमें यहभी लिखाहै कि अन्तिम शक्ति जनता याने तुम्हारे हाथमें होगी। पर तुम्हीं बताओ, क्या तुम्हारे हाथमें कोई शक्ति नामकी चीज है? क्या तुम्हारे हाथमें कोई शक्ति है?' (पृ. ६५)

उपन्यासकारने बड़ी सटीक एवं मुहावरेदार भाषाका प्रयोग कियाहै जिसमें व्यंग्यके साथ विश्लेषणगम्य अर्थ निहित है। लेकिन एक भयंकर भूलभी शब्द-प्रयोगकी दृष्टिसे होगयीहै। जनता पृष्ठ सातपर उलासे जब कैशमीमो लेतीहै तो फिर वह कहतीहै—'लालाजी, आपने आजभी अंग्रेजीमें रसीद काट दीहै।' पर पृष्ठ इकत्तीसपर मुख्यमंत्री कार्यालयसे प्राप्त पत्रको देखकर कहतीहै—'धत्तरेकी! यह चिट्ठीभी रंगरेजीमें होहै।' यही नहीं, जनताको अनपढ़भी बताया गयाहै—'हुजूर, मैं पढ़ना लिखना नहीं जानतीहूं।' (पृ. २१) महामंत्रीजीको भी कहतीहै—मैं पढ़ना लिखनातक नहीं जानती—(पृ. ४८) पर जब पढ़ना-लिखनातक नहीं जानतीहै तो यह अंग्रेजीमें या 'रंगरेजी' में है -का उल्लेख व्यर्थ सिद्ध होताहै। पढ़ना-लिखना न जाननाही उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होना चाहियेथा। यहां उपन्यासकार इसलिए क्षम्य समझा जासकताहै कि १५८ पृष्ठके कलेवरमें प्रेस कापी तैयार कराते समय पुनरावलोकनका अवसर शायद न मिला हो।□

समय एक शब्दभर नहीं है[1]

लेखक : धीरेन्द्र अस्थाना

समीक्षक : डॉ. कमलकिशोर गोयनका

हिन्दीके युवा कथाकार धीरेन्द्र अस्थानाका उपन्यास 'समय एक शब्दभर नहीं' है नक्सलवादी चेतनाका उपन्यास है। उपन्यासके आरम्भ और अन्तमें 'समय' की व्याख्या है। 'समय' एक शब्दभर नहीं है, अर्थात् समय व्यक्तिको स्थायी उदासी देसकताहै और यह स्थायी उदासी व्यक्तिके जीवनको रेगिस्तानमें बदल सकतीहै। इसके साथ 'समय' एक और बड़ा कामकर सकताहै और वह है उपन्यासके नायक टेकचन्द उर्फ भुवनमोहन जैसे 'असामान्य', 'शिखंडी', 'अराजक', 'खानाबदोश', 'कापुरुष', 'दुविधाग्रस्त', 'इश्कबाजी,

१. प्रकाशक, राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारीरोड, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ८०, क्रा. ८१; मूल्य : १४.०० रु.।

और सैक्सके चुतियापोंमें फंसा लेखक', लिजलिजे, घृणित, यौन विकृतियों, आवारगी, दारू आदिका व्यक्ति कुछ नक्सलवादियोंके सम्पर्कमें आनेपर एकदम बदल जाताहै। लेखकने इसे 'मुक्ति' कहाहै और यह मुक्ति होतीहै भयसे, गलाज़तसे, कुंठासे, निराशासे, हताशासे और मृत्युसे। लेखक आगे लिखताहै, "यह उसकी पूर्ण मुक्तिका समय था। समय जो केवल शब्द नहीं अर्थ था। मुक्तिका अर्थ प्रसारित करनेवाला शब्द।' समय। वह समयके इस अर्थके आगे नतमस्तक था, आभारी था और गद्गद् था।" अर्थात् लेखककी दृष्टिमें समयने इतना बड़ा परिवर्तनकर दिया कि भुवनमोहन जैसा असामाजिक व्यक्तिभी नक्सलवादियोंके दलका सदस्य बन गया। और यह वह दुनियां है जहां पहुंचकर वह अनुभव करताहै कि अब उसके सोचने, रहने और जीनेका तरीका बदल गयाहै और अब यहांसे लौटना असम्भव है। वह अपनी प्रियतमा संगीताके आग्रहपर भी, जिसके लिए वह बराबर पागल रहताहै, पुरानी अंधेरी, नकारा और उबाऊ दुनियां में लौटना नहीं चाहता। अब संगीताको उसकी दुनियांके अनुरूप बनना होगा, जिसमें जया है, रजनी है, आशू है, ममगाई है, पुलिस है, जेल है, गोली है, मौत है। क्या इसे गांधीके हृदय-परिवर्तनके अर्थमें नक्सलवादी हृदय-परिवर्तन कहना उचित न होगा? और जब गांधीका हृदय-परिवर्तन अव्यावहारिक एवं अमनोवैज्ञानिक है तब वह नक्सलवादी होने मात्रसे तर्क-संगत कैसे होसकताहै?

भुवनमोहन एक कांग्रेसी नेताका बेटा है। वह बचपनसे ही असामान्य प्रवृत्तिका है। अक्षर-ज्ञानके समय वह अपने मास्टरका सिर पत्थरकी सलेटसे फोड़ देताहै। कॉलिज पहुंचनेपर एक दिन वह क्रोधित अवस्थामें पितासे मिलने कांग्रेस दफ्तरमें पहुंचताहै और 'टेकचन्द' जैसा सड़ियल नाम रखनेके लिए उन्हें फटकारताहै तथा दफ्तरकी शानदार दरीपर थूककर भाग जाताहै। इसके विपरीत नक्सलवादी द्वारा पिताकी हत्या करनेपर भी शान्त बना रहताहै। उसके लिए पिताका कत्ल जैसे एक खबर थी और इस खबरसे जैसे उसका कोई निजी रिश्ताही नहीं था। सम्भवत: उसके मनमें इसके कारण आक्रोश हो कि उसके पिताने उसके नक्सलवादी मित्रको पुलिसके हाथों पकड़वा दियाथा और पुलिसने उसके मित्रको मार दियाथा। वह इससे इतना क्रोधित होताहै कि वह पिताके मुंहपर थूककर घरसे भाग जाताहै। वह अपनी पांच-सात कहानियां लिखकर लेखक बन चुकाहै, यद्यपि इस उल्लेखसे पूर्व उसमें कोई लेखकीय संस्कार दृष्टिगत नहीं होता। घर छोड़कर वह दिल्ली पहुंचताहै। यहां लेखकने अनावश्यक रूपसे राजधानीको कब्जेमें करनेके नक्सलवादी आन्दोलनकी असफलता, नक्सलवादियोंका हरिद्वार जाकर संन्यास लेने तथा आत्मरक्षाके लिए कांग्रेसमें दाखिल होने आदिका उल्लेख कियाहै जो निश्चयही कथामें लेखकके अतिक्रमणका सूचक है। दिल्लीसे बाद भुवन मेरठ, कलकत्ता आदि स्थानोंपर नौकरी करता हुआ भटकता रहा। कई वर्ष प्रूफ रीडरी की और इस बीच हिन्दी और दर्शनशास्त्रमें एम. ए. भी कर लिया। कलकत्ता पहुंचकर सगीता बैनर्जीसे उसका रोमांस हुआ लेकिन शादीसे पहले वह एकाएक गायब होगयी तो वह नौकरी छोड़कर दिल्ली आगया। अब उसके यौन विकृतियों और कुंठाओंसे लबरेज उपन्यास प्रकाशित हुए और खूब बिके। अब वह एक विवादास्पद लेखकके रूपमें प्रसिद्ध होचुकाथा।

भुवन अब नैनीताल पहुंचताहै। संध्या उसकी पाठिका है, प्रशंसिका है और उसके अराजक एवं अव्यवस्थित जीवनको व्यवस्था देना चाहतीहै, लेकिन भुवन अब स्वयंको पराजित 'पौरुषका क्षत-विक्षत शव' समझने लगाथा। वह नैनीताल कुछ लिखनेके उद्देश्यसे आताहै, लेकिन वह यहाँ नक्सलवादियोंके सम्पर्कमें आताहै। एक है उसका मित्र आशू जो तीन होटलोंके मालिकका बेटा है तथा स्वयं हिन्दी साप्ताहिक अखबार निकालताहै। विचारोंसे मार्क्सवादी है और पहाड़ोंमें नक्सलवादियों द्वारा शुरू कीजानेवाली लड़ाईका समर्थक, अनुयायी। इसके अतिरिक्त वह रेखा, सुरेश, भगवतीप्रसाद, रजनी उनियाल, जया चौधरी आदि नक्सलवादियों-मार्क्सवादियोंसे मिलताहै। यहां ये लोग उससे कहतेहैं कि वह अभीतक सैक्सका लेखक है लेकिन उसे जनताके आन्दोलनसे जुड़ना चाहिये। इसके बाद लेखकने नवेन्दु घोष, जया चौधरी तथा मिस्टर चौधरीके प्रसंगको इतना विस्तार दे दियाहै कि कथा-नायक भुवनमोहन अदृश्य होजाताहै तथा नक्सलवादियोंपर किये गये पुलिस अत्याचार, नैनीतालमें नक्सलवादी आन्दोलन, हड़ताल, पुलिस दमन आदि प्रमुख बन जातेहैं। इस पूरे आन्दोलनसे लेखकने भुवनको जोड़नेका प्रयत्न तो कियाहै लेकिन वह ममगाई, जया चौधरीके समान न तो कथाका सूत्रधार है और न उनके समान जीवन्तही है। इन सब

नक्सलवादियोंके बीच जया चौधरी ही सबसे अधिक [illegible] प्रभावित करतीहै, क्योंकि लेखकने उसकी कथाको घटित होते हुए दिखायाहै, अपने शब्दोंमें वर्णित करके, टाल नहीं दियाहै। लेखकने नक्सलवादी नेता ममगांईको जन-नेताके रूपमें प्रस्तुत कियाहै और लिखाहै, "पहाड़ोंमें एक कहावत है कि जो आदमी ममगांईको नहीं जानता उसे पहाड़ी कहलानेका हक नहीं है।" लेकिन लेखकने इस फरार जन-नेताके कृतित्वको न जाने क्यों उपन्यासका प्रमुख आधार नहीं बनाया। इसके विपरीत चुना ऐसा नायक जो असामान्य है, अराजक है, नामर्द है, कॉफी हाउसी लेखक है, आवारा है। लेखक अपने इस कथा-नायकसे इतना दु:खी होउठताहै कि वह सामने आकर उसकी कटु आलोचना करताहै और गाली-गलौजपर उतर आताहै। लेखक भुवनके 'चुतियापे' में फंसे रहने तथा जनता द्वारा 'चूतड़' तोड़ देनेतक की अभद्र भाषाका इस्तेमाल कर लेताहै। प्रश्न यह है कि लेखक जिसे असामाजिक सिद्ध करताहै, उसे कथा-नायक क्यों बनाताहै और वह जिसे जन-नेता कहताहै, उसके कृतित्वको प्रधानता क्यों नहीं देता? उसे कथा-नायक क्यों नहीं बनाता? निश्चयही लेखकका उद्देश्य फरार ममगांईके चरित्र-आख्यानसे अधिक सिद्ध होसकताथा।

इस लघु उपन्यासमें लेखकने पहाड़ोंकी पीड़ा तथा पुलिस अत्याचारका जो नक्शा खींचाहै, वह प्रशंसनीय है। आन्दोलन, हड़ताल, पुलिस दमनके दृश्य बड़े जीवन्त हैं जो पाठकको झकझोरतेहैं। ये दृश्य लेखककी सामाजिक चेतनाको उजागर करतेहैं तथा पहाड़ोंमें होनेवाले शोषण एवं अत्याचारके प्रति उसकी गहरी चिन्ताको अभिव्यक्त करतेहैं। उपन्यासका शीर्षक 'समय एक शब्द भर नहीं है' दार्शनिक अर्थ रखताहै जिसे भुवनके हृदय-परिवर्तनसे जोड़ा गयाहै। यह शीर्षक जितना अर्थ-व्यंजक है, उतनी अर्थ-व्यंजना वह भुवनके अर्थमें नहीं देपाता। लेखकको उपन्यासका कोई दूसराही शीर्षक चुनना चाहियेथा।

उपन्यासमें चित्रित नक्सलवादी आन्दोलनपर विचार करना आवश्यक प्रतीत होताहै। फ्लैपपर राजकुमार गौतमने लिखाहै कि नक्सली आन्दोलन अपरिपक्व क्रियान्वयन तथा संगठनहीनताके कारण अस्त होगया। व्यवस्थाके साथ-साथ साहित्यने भी इस जन-आन्दोलनकी गलत या अधूरी सूचनाएं देकर इसे हाशियेपर ही छोड़ दिया। इस दुःखद स्थितिको यह उपन्यास छोड़ताहै, अर्थात् नक्सलवादी आन्दोलनके अस्त होनेके बाद यह उपन्यास उसे हाशियेसे हटाकर मुख्य भूमिपर ले आयाहै। लेखकने स्वयं उपन्यासमें दुर्बल एवं अवसरवादी नक्सलवादी नेतृत्व तथा असफल आन्दोलनका उल्लेख कियाहै और उसकी कटु आलोचना कीहै। लेखकने स्वयं जिस नायककी सृष्टि कीहै वह आवारा और यौन-विकृतिका लेखक है। वह नक्सलवादियोंके सम्पर्कमें आताहै और उनके संगठनका हिस्सा बन जाताहै, लेकिन क्या गारंटी है कि वह अन्य नक्सलवादियोंके समान अवसरवादी, कायर और स्वार्थी नहीं होगा, जबकि उसमें ये सभी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं। प्रश्न यह भी है कि क्या भारतमें सत्ता और पुलिससे बन्दूकोंसे युद्ध किया जा सकताहै और क्या यही सभी समस्याओंका एकमात्र समाधान रह गयाहै? जनतन्त्रमें जन-संगठन और जन-आन्दोलन होनाही चाहिये लेकिन बन्दूकसे ही जनता अपने अधिकार प्राप्त कर सकतीहै, यह दृष्टिकोण स्वीकार नहीं किया जासकता। जन-आन्दोलनके नामपर कुछ लोगोंके हाथोंमें आयी बन्दूक समाजको किधर लेजायेगी, इसे आसानीसे समझा जा सकताहै। जनतन्त्रमें जनताके शोषण और पुलिस तन्त्रका कोई समर्थन नहीं कर सकता, लेकिन इन समस्याओंका समाधान बन्दूकसे नहीं जनतान्त्रिक उपकरणोंसे ही करना होगा। उपन्यासमें भी लेखकने मानाहै कि नक्सलवादी दिग्भ्रमित रहेहैं, स्वार्थी रहेहैं, तब ऐसे व्यक्तियोंके हाथोंमें बन्दूक देनेका क्या दुष्परिणाम हो सकताहै, इसे सरलतासे समझा जा सकताहै। उपन्यासमें जो शोषण एवं अन्यायका विरोध है और उसके प्रति लेखककी जो बेचैनी है वह निश्चयही प्रशंसनीय है, लेकिन इनसे मुक्तिका रास्ता केवल गोली है, इसे स्वीकार करनेमें बहुसंख्यक देशवासियोंको घोर आपत्ति होसकतीहै। ☐

राज्यदान[1]

उपन्यासकार : डॉ. ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज'
समीक्षक : डॉ. भैरुंलाल गर्ग.

अशांत चिता, बढ़ते चरण, बन्धनकी प्यासके बाद राज्यदान लेखकका चौथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमिपर आधारित उपन्यास है।

---

१. प्रकाशक : पाण्डुलिपि प्रकाशन, ई-११/५, कृष्ण नगर, दिल्ली-५१। पृष्ठ : २०४; क्रा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।

फ्लैपकी टिप्पणीमें इसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमिको सजीव रूपमें प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास बताया गयाहै । यह बात सही है कि लेखकने शकोंके भारतपर आक्रमण और तत्कालीन भारतीय राजाओंकी स्थितिको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें उठाते हुए आरंभमें एक मानचित्र देकर अपनी बातकी पुष्टि कीहै, जो उचितही है । लेकिन ऐतिहासिक आख्यानको जिस विधामें ढाला गयाहै उसकी प्रस्तुतिका ढीलापन कृतिकी सजीवतामें बाधा उत्पन्न करताहै । अनंगपट्टनके महाराज शक्तिधरके दो लड़के हैं शीलधर और कर्मधर । शक्तिधरकी पत्नी शीलधरको युवराज पदका अधिकारी होते हुएभी युवराज बनानेका विरोध करतीहै, क्योंकि वह शीलधरकी सौतेली मां है । कर्मधर उसका सगा बेटा है, उसकी इच्छा है कि वही अनंगपट्टनका युवराज बने । इसी मध्य शकोंका आक्रमण होताहै, शीलधर विजयी होताहै । संघर्षकी स्थितिमें ही उपन्यासकी कथाका अन्त होजाताहै । अन्तमें शीलधरको ही राजा बनाया जाताहै । भाईयोंमें व्याप्त पारस्परिक वैमनस्यभी समाप्त होजाताहै । अपराधी अपनी-अपनी गलतियोंपर पश्चात्ताप करतेहैं और कथाको एक सुखद अन्त मिल जाताहै ।

कथाका ऐतिहासिक आधार अलग बात है और उसे औपन्यासिक रूप प्रदान करना अलग बात । औपन्यासिक तत्त्वोंपर कृतिका विवेचन-विश्लेषण करनेपर लगताहै, जितनी आकस्मिकताके साथ कथाका आरंभ होताहै जितनी तीव्रतासे कथा आगे बढ़तीहै और जिस तरह संघर्षका अन्त सायास आकस्मिकताके साथ कराया गयाहै ये सब कथाके प्रवाहको तीव्रता तो प्रदान करतेहैं लेकिन विधाके अन्य तत्त्व गौण और उपेक्षित रह जातेहैं । पात्रोंका चारित्रिक विकास बहुत कम होपायाहै । लगताहै घटना चक्रके तीव्र प्रवाहके साथ पात्र बहते चले जातेहैं । इसके साथ उपन्यासमें देश कालकी संस्कृति और सामाजिक परिवेशकी जीवन्तताभी चित्रित होनी चाहिये । मात्र कथा प्रधानताही कृतिकी उपादेयताका मानदण्ड नहीं होता । फिर ऐतिहासिक आख्यान अथवा घटनाको उठानेकी निश्चित सोद्देश्यताभी स्पष्ट होनी चाहिये । राज्यप्राप्तिके लिए संघर्ष या युवराजपदके आकांक्षी पुत्र द्वारा पिताकी हत्याकी सैकड़ों घटनाएं भारतीय इतिहासमें मिल जायेंगी, लेकिन उन्हें समकालीन सन्दर्भोंमें उठानेका औचित्य स्पष्ट होना चाहिये । ऐतिहासिक आख्यानोंकी प्रासंगिकतापर दृष्टि रहती तो कृतिकी उपादेयता अधिक मुखर होपाती ।

कहीं-कहीं भाषायी सौष्ठव और वाक्यविन्यासगत शैथिल्य अखरनेवाला है । 'युद्ध तब समाप्त हुआ जब शीलधरकी कृपाण माहदके सीनेमें चुभकर पीठसे निकल गयी ।' (पृ. १८५) कृपाणके लिए 'चुभना' शब्दकी अपेक्षा 'घुसना' अधिक उपयुक्त हो सकताहै । 'फिरभी आपके इस मोदकोंका भोग लगाही लेंगे ।' 'इस' के स्थान पर 'इन' होना चाहिये । यह प्रूफकी भी अशुद्धि हो सकतीहै । लेकिन पृष्ठ १७७ पर अंग्रेजीके शब्दका व्यवहृत होना बड़ा खटका—'और इस कारण उसे रंजकसे मिलनेका प्रोग्राम स्थगित करना पड़ा ।'

फिरभी लेखकका यह प्रयास प्रशंसनीय कहा जाकताहै । मुगल और तुर्कोंके आक्रमणोंको लेकर तो साहित्य जगत्में काफी लिखा गयाहै परन्तु शक, हूण आदि जातियोंके आक्रमणका इतिहासभी कम रोमाँचक नहीं है । इतिहासके लगभग इन अनछुए पृष्ठोंको औपन्यासिक धरातल प्रदान करना साहस और इतिहास दृष्टिकी सूझ-बूझके बिना संभव नहीं । फिरभी अगर लेखक कृतिकी विधागत साहित्यिकता और तात्त्विक मानदण्डोंके प्रति थोड़ा सचेष्ट रहता तो यह अधिक सजीव, सरस और रोचक बन सकतीथी । □ □

कहानी संग्रह

प्यासी रेत[1]

कहानीकार : दामोदर सदन
समीक्षक : डॉ. जवाहरसिंह.

'प्यासी रेत' हिन्दीके चर्चित यथार्थवादी कथाकार दामोदर सदनका तीसरा और ताजा कहानियोंका संग्रह है । संग्रहकी ग्यारह कहानियां समसमयिक सामाजिक राजनीतिक-जीवनकी विकृतियों और विडम्बनाओंको अलग-अलग स्तरोंपर उद्घाटितकर आजके भारतीय परिवेशकी एक मुकम्मल तस्वीर पेश करनेमें पूरी तरह सक्षम हैं ।

---

[1] प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२ । पृष्ठ : १४६; क्रा. ८३; मूल्य : २५.०० रु. ।

दामोदर सदन एक लम्बे अरसेसे कहानियां लिखते आ रहेहैं। लेखकके पास आजके सामाजिक जीवनमें विविध-स्तरोंपर चलनेवाले अन्तर्संघर्षों, बाहरी बिखराव और आंतरिक टूटनको परखनेकी सूक्ष्म दृष्टि और व्यवस्थासे जुड़े प्रशासनिक-तंत्रकी भीतरी खामियों तथा कमजोरियोंको पहचाननेको समझभी है। इसीलिए ये कहानियां लेखकके विशाल और व्यापक अनुभवका योग पाकर आजके सामाजिक यथार्थका प्रामाणिक दस्तावेज बन गयीहैं।

'प्यासी रेत' की कहानियां अपनी सहजतामें छिपी गहरी और तीखी व्यंग्यात्मकता तथा सूक्ष्म यथार्थपरक कथ्यात्मकताके कारण कहानियोंकी भीड़में भी अपनी अलग पहचान बनानेमें कामयाब होसकीहैं। सग्रहकी शीर्षक कथा 'प्यासी रेत' सतहपर तो दो शराबियोंकी एक पूरे दिनकी 'दिनचर्या' मात्र लगतीहै, पर इसकी सपाट सतहके नीचे व्यापक मानवीय मूल्योंके अवमूल्यन और व्यर्थता-बोधकी जो अन्तर्धारा प्रवाहित होरहीहै—वही इस कहानीको सामान्यसे विशिष्ट बना देतीहै। शराब किस तरह धीरे-धीरे आदमीके भीतरके मानवीय तत्वों तथा जीवन रसको सोखकर उसे नीरस-निस्सत्त्व 'रेत' में बदल देतीहै फिरभी उस रेतमें शराबकी ही प्यास बनी रहतीहै—यही इस कहानीका कथ्य है। छोटेलाल और रामूके जीवनकी व्यर्थताको इनके पूरे परिवेशके साथ पूरी गहराईसे रेखांकित करनेवाली इस कहानीमें प्रेमचन्दकी 'कफन बननेकी पूरी सम्भावनाएं थीं अगर कहानीकार इन दोनों शराबियोंकी जीवन-स्थितियोंको उन व्यापक सामाजिक और आर्थिक संदर्भोंसे जोड़ पाता जिनके चलते ये दोनों पात्र अमानवीय-स्तरपर जीवन जीनेको बाध्य होते गये। इस चूकके कारणही यह महत् सम्भावनाओंवाली कहानी मात्र शराबकी बुराइयाँ दिखानेवालीं सामान्य-सी कहानी बनकर रह गयीहै।

'दावत' और 'ताजका सेलसमैन' इस संग्रहकी दो ऐसी कहानियां हैं जिनमें इस गरीब देशमें भी शान-शौकत ऐशोआराम और विलासिताकी जिन्दगी जीनेवाले ऐसे दो वर्गोंकी अन्दरूनी जिन्दगीकी यथार्थ झांकियां दिखायी गयीहैं जो रिश्वत, जाल-फरेब और तिकड़मके सहारे अपने नकली आभिजात्यको बनाये रखनेमें सक्षम हैं। पिसाल साहब (ताजका सेलसमैन) आजकी भ्रष्ट और घटिया नौकरीशाहीके जीवन्त प्रतीक हैं। अपने लिए अधिकाधिक सुविधाएं जुटानेके लिए वे अपनी ऊंची कुर्सीके अधिकारोंका दुरुपयोग करनेमें जराभी नहीं हिचकते। 'अंग्रेज इस देशसे चले गये पर अपनी औलाद छोड़ गये' वाले कथनको अपने चरित्र और व्यवहारोंसे पूरी तरह सार्थक करनेवाला यह सरकारी आफीसर पूरी तरह 'टोरी बच्चा' है…एक नेटिव अंग्रेज।

व्यवस्था और व्यवस्थासे जुड़ी भ्रष्ट नौकरशाहीकी मिलीभगतसे ठेका, परमिट, लाईसेंसके माध्यमसे सरकारी पैसे लूटनेके तिकड़ममें लगे इस देशका एक वर्ग—सेठ, व्यापारी, ठेकेदार आदि नवधनाढ्य वर्ग—के असली चरित्र और जीवनचर्याका कच्चा चिट्ठा खोलनेमें 'दावत पूरी तरह सफल रहीहै।

आज हर आदमी दोहरे स्तरपर जीवन जी रहाहै—बाहर कुछ और तथा भीतर कुछ और। इस मुखौटावादी संस्कृतिको न केवल शहरोंमें ही देखा जा सकताहै, बल्कि गांव और कस्बेभी इससे अछूते नहीं हैं। रामदत्त दुबे, जर्मनप्रसाद, कृपाशंकर और भीषणसिंह चौहान (अंधा-कस्बा) जैसे राजनीतिक लंगीबाज और घटिया स्तरके टांगखींचू समाज-नेता गांव कस्बोंकी शांत जीवन-तलैयामें ढेला फेंककर उसे अशांत और गन्दा बना रहेहैं तो कवि, लेखक राजनीतिक नेता ('वह आ रहाहै') भी अपनी व्यावसायिक सफलताके लिए घटियासे घटिया स्तरके हथियार इस्तेमाल करने और तिकड़म भिड़ानेमें उनसे किसी तरह पीछे नहीं हैं। आजके गाँवों और कस्बोंमें व्याप्त भ्रष्ट राजनीतिक, चरित्रहनन और दांव-पेंचके द्वारा अपनी रोटी सेंकनेवाले कस्बाई छुटभैये नेताओंके टिपिकल टुच्चे चरित्रको उभाड़नेमें लेखकको पूरी सफलता मिलीहै। (अंधा कस्बा)

दफ्तरकी दुनियांही नहीं, दफ्तरकी राजनीतिभी अलग ढंगकी होतीहै। यहां 'बॉस' नामका एक खूंख्वार शेर होताहै और बड़ा बाबू, छोटा बाबू, उससेभी छोटे-छोटे बाबू तथा पीअन-चपरासी नामक अनेक मेमने, सियार, लोमड़ी और खरगोश आदि निरीह प्राणी होतेहैं। इन प्राणियोंमें बॉसका कृपा-पात्र बनने, चमचागिरी करने तथा मक्खनबाजी करनेके लिए जो आपसी होड़ लगी रहतीहैं, उसमें हर तरहकी कला और हथकंडे अपनाये जाते हैं। इसी चिरपरिचित पृष्ठभूमिमें उभड़तीहै 'गोलाबारी' की कहानी। इसमें दफ्तरी जीवन और माहौलमें चलनेवाली चुगलखोरी, ईर्ष्या-द्वेष, नोंक-झोंक और डांट-फटकार के बीच बाबुओंकी अभाव-ग्रस्त जिन्दगीमें भी पल

रही झूठी शान और बड़प्पनके काल्पनिक अहसासका बड़ा ही जीवन्त चित्रण हुआहै।

लेकिन 'वन-अप' और 'किस्सा तोता मैना'—इन दो कहानियोंकी सार्थकता इस संग्रहकी अन्य कहानियोंके बीच समझमें नहीं आती। वैसे इन दोनों कहानियोंमें बम्बइया टाइप हिन्दी फिल्म बननेकी काफी सम्भावनाएँ हैं। बिना सिर-पैरकी ऊल-जलूल लिजलिजी रोमानी कहानी, बेडरूम सीन और थोड़ी-सी जासूसीके साथ संयोग तथा अटका देनेवाले तत्त्वोंकी भी इनमें कमी नहीं है। बस कमी रह गयी तो केवल यही कि ये कहानियाँ दामोदर सदनने लिखी है, गुलशन नन्दाने नहीं।

संग्रहकी अन्तिम तीन कहानियां—'अकाल', 'एक और दौरा' और 'तनसू भाई' में व्यवस्था, नौकरशाही और आजकी राजनीतिकी विकृतियां और विडम्बनाएं लेखकीय प्रतिबद्धतासे टकराकर पूरी स्थितिको एक तेजाबी व्यंग्यमें तब्दील कर देतीहैं। 'अकाल' में सरकारी तंत्र और नौकरशाहीको व्यंग्यका निशाना बनाया गयाहै तो 'एक और दौरा' में राजनेताओंके भीतर छिपी यश-लिप्सा, पाखण्डी व्यक्तित्व और चरित्रहीनताको। आदिवासी क्षेत्रमें पड़े भयंकर सूखा और अकालमें जब पानी और अन्नके अभावमें पशु और आदमी रोज-रोज कीड़े-मकोड़ेकी तरह मर रहेहै तब राहत पहुंचानेवाले छोटे बड़े सरकारी अधिकारीगण 'आदिवासी ऋण-निवारक कानून, अकाल सहायता-निधि,निधिका बुक ट्रांसफर, लोक-निर्माण विभागकी नियम-पुस्तिका, अनुमान तैयार करनेके विषय-नियमों-उपनियमोंपर पुरजोर बहस' कर रहे हैं। (पृ. १२९)। 'इस बहसकी परिधिसे केवल आदिवासी छूट गयाहै।' इनके सामने सबसे बड़ा सवाल है कि अमरीकासे आये थेराट्टिन बिस्कुट तथा दूसरे पैकबन्द सामान यदि खोला जाये तो उसे कौन-सी मद में डाला जाये। सरकारी लालफीताशाही के परखचे उड़ानेमें यह कहानी (अकाल) बेजोड़ है।

'एक और दौरा'में मंत्रियों द्वारा जन-सम्पर्कके नाम पर किये जानेवाले सरकारी दौरोंके दरम्यान उद्घाटन, भाषण, सर्किट हाउसमें बिश्राम और मातहत अधिकारियों द्वारा विदेशी शराबके साथ उत्तम भोजन तथा स्वागत सत्कारवाली परम्परापर तीखा प्रहार किया गयाहै। मंत्री दलबदल बहादुरसिंह जब एक जन-सभा को सम्बोधित करते हुए कहतेहैं, 'इस संकटकी घड़ीमें आज आपसे यही मांगने आयाहूं और मैं आज वादा करताहूं कि इसके बदले आपको क्रांति और समाजवाद दूंगा' तो समाजवाद' और 'क्रांति' जैसे जनवादी और अर्थगर्भित शब्दोंकी ऐसीकी तैसी होजातीहै। अभावग्रस्त संतप्त जनता अपनी आकांक्षाओंको पूरा करनेके लिए जिन हथियारोंका सहारा लेतीहै उन्हीं हथियारोंको सत्ताधारी लोग किस धूर्ततासे अपनी स्वार्थ-पूर्तिके लिए प्रयोगमें लाने लगतेहैं, यह आजकी राजनीतिका एक कटु और घिनौना यथार्थ बन चुकाहै। 'एक और दौरा' में कथाकारने इस घिनौने यथार्थकी ओर बड़े प्रच्छन्नरूप में संकेत किया है।

वैसे तो संग्रहकी अन्तिम तीन कहानियोंमें दामोदर सदनका व्यंग्यकार बेहद आक्रामक और तुर्श हो उठाहै पर 'तनसू भाई' का रेखा-चित्र उकेरते समय उसने अपनी पूरी प्रहारक-क्षमताका परिचय दे दियाहै। 'तनसू भाई' एक व्यक्ति-चित्र और व्यक्ति-चरित्र न रहकर अपनी व्यापकतामें एक विशिष्ट वर्गका चरित्र बन गयाहै और वह वर्ग है आज गांव-गांव गली-गलीमें सत्ताकी राजनीतिका झंडा कंधेपर उठाये घूमनेवाले गँवई कस्बई नेताओंका।

संग्रहकी प्रायः सभी कहानियां ('वन-अप' और 'किस्सा तोता मैना' को छोड़कर) आजके सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक तंत्रकी खामियों और विकृतियोंपर चोटकर इस यथास्थितिवादके प्रति जन-मानसमें विक्षोभ और विद्रोहकी प्रतिक्रिया उत्पन्न करनेमें अपनी सफलता तलाशती लगतीहै।□

जो आदमी हम बना रहे हैं[1]

कहानीकार : रघुवीरसहाय
समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर.

'जो आदमी हम बना रहे हैं' पढ़कर इस बातका अहसास होताहै कि लेखक **रघुवीरसहाय** हमें बता रहेहैं 'जो कहानी हम बना रहेहैं।' जिस ढंगकी कहानी लेखक बनाना चाहताहै उसमें वह साहित्यकार कम पत्रकार, फोटोग्राफर और विचारकही अधिक है। बीच-बीचमें

१. **प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन**,२/३८ **अंसारी मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ** : २०२; **क्रा** ८२; **मूल्य** : ५८.०० रु.।

लेखकका कवि रूपभी सिर ऊपर उठाता दिखायी देताहै। फ्लैपपर कहा गयाहै, 'कवि और कहानीकार एकसाथ होनेकी हिन्दी साहित्यमें पुरानी परम्परा नहीं है।··· समकालीन साहित्यकारोंमें जिन्होंने···पद्यके साथ गद्यभी लिखा उनमें **रघुबीरसहाय**की गिनती कुछ विशेष आग्रह के साथ कीजा सकतीहै।···इनकी कहानियोंमें सुन्दरकी रक्षणीयकी और सार्थककी खोज बार-बार दिखायी देती है।' अवश्यही फ्लैपकी इन पंक्तियोंका लिखनेवाला ऐसा ऊंचा पारखी है जिसकी दृष्टि हमें प्राप्त नहीं है या फिर उसने मात्र फ्लैप परम्पराका निर्वाह कियाहै। पत्रकार, कवि रघुवीरसहायको विचारकके नाते वास्तव में कहानियां लिखनेके चक्करमें नहीं पड़ना चाहियेथा। वे सीधे-सीधे निबन्ध लिखते, जैसेकि इसी संग्रहमें **'एक छोटी-सी यात्रा', 'हिन्दीके सम्पादकसे भेंट', 'स्पष्ट-वादिता'** शीर्षकोंके अन्तर्गत मौजूद हैं। रीतिकालीन कवि जिस तरह अपना कलात्मक चमत्कार दिखानेमें ही अपनी रचनाकी सार्थकता मानताथा, उसी तरह आजके कुछ लेखक अपनी वैचारिकताका चमत्कार दिखानेमें मानतेहैं। उन्हें कथातत्त्वसे कोई मतलब नहीं। कथातत्त्व जैसे वैचारिकताके लिए एक बहाना मात्रहै। यों कथातत्त्वभी इस स्थानपर उपयुक्त शब्द नहीं है। उसे प्रसंगही कहा जाना चाहिये। **रघुबीरसहाय**की कहानियोंके प्रसंगोंमें भी विशेष दम नहीं दिखायी देता। कहीं छतपर कबूतर है, कहीं लड़का लकड़ीका टुकड़ा उछाल रहाहै, कहीं पेशावघरका दरवाजा तिलस्मी है, कहीं बिल्ली पुलियाके नीचे जा छिपीहै, कहीं सनकी डॉक्टर है। पत्रकार भाषा का धनी होताहै। उसे आप प्रसंग मात्र देदीजिये, वह महल खड़ा कर देगा। **रघुवीरसहायने** ऐसाही किया है। पर ये महल अखबारमें शोभतेहैं, किताबमें नहीं। **रघुवीरसहायके** महलकी दीवारोंपर यत्रतत्र इस तरहकी सूक्तियां चस्पा हैं—वैचारिक सूक्तियां—

मैं आपको विश्वास दिलाताहूं कि जिस क्षण मैं अपना काम कर लूंगा वह मर जायेगा और उसकी आत्मा मुझमें समा जायेगी। इसी क्षण आप उसे गलत भी समझ लेंगे और अभीभी आप यह नहीं सोच रहेहैं कि मैं कुंठासे ग्रस्त हूं और आप नहीं हैं, इसका क्या प्रमाण है। (पृ. ६२)

अथवा,

एक बार, कम-से-कम एक बार मैं न तो किसीको नफरतसे देखूंगा, न पसंदगीसे। यहां नहीं। किसीको देखूंगा ही नहीं। मैंने तय किया। यहां नहीं। उम्दा धूपमें लोग अपने अन्दरसे एक तरहकी चीज निकालकर बाहर फेंकने लगतेहैं। वे लोग करतेहैं ठीक, पर क्यों? अभी, इसी समय क्यों? (पृ. १३२)

लेखकने 'कहानीकी कला'कीभी अच्छी खासी कहानी बना दीहै। रेलके डिब्बेमें एक यात्री, खड़े हुए दूसरे यात्रीको बैठनेको जगह नहीं देता। बस इतनी घटना-भर सेकहानी कैसी होतीहै, होनी चाहिये इसपर लेखक विस्तारसे कहता जाताहै। प्रसंगकी बूंद-बूंद झलक और उसकी प्रतिक्रियामें कहानी सम्बन्धी विवेचन।

इसे नया प्रयोग कह सकतेहैं। कुछ भलाभी लगता है, पर यह कहानीकी कला ही है, कहानी नहीं। 'विदेश में एक भारतीय' तो सीधे-सीधे रिपोर्ताज है। लगताहै कहानीका विदेश पाकिस्तान है, पर देशका नाम देनेमें संकोच क्यों किया गया, पता नहीं। लेखकने संग्रहका शीर्षक किसी उसकी कहानीसे नहीं, अपनी ओरसे स्वतंत्र दियाहै। पता नहीं, वह शीर्षक व्यंग्यात्मक है कि तथ्यात्मक। यदि तथ्यात्मक है तो इस संग्रहमें 'किलेकी औरत' 'तीन मिनट' जैसी नंगे नाच और देह-पिपासाकी कथाएं नहीं होनी चाहियें।

'सेब', 'मेरे और नंगी औरतके बीच', 'सरकस,' 'ग्यारहवीं कहानी, 'मुठभेड़', 'एक भगोड़ेका आत्मकथ्य' और 'सीमाके पारका आदमी' ये सात कथाएं ऐसीहैं जो संग्रहके व्यंग्यात्मक शीर्षकको, यदि वह है, सार्थक करतीहैं। ये कहानियांभी लेखककी वैचारिकताके भारसे मुक्त नहीं हैं, किन्तु ये बहुत कुछ हमारे युगका इतिहास कह जातीहैं। लेखक इनमें मनुष्यकी इन संवेदनाओंको भी पकड़ताहै जो दूसरे धरातलपर एक साथ चलतीहै, ऊपरसे शिष्ट बनी और अंदरसे कमीनापन लिये हुए। यथा, मेरे मुंहसे निकला, घबराओ नहीं, ठीक होजायेगी लड़की। अब सोचताहूं कि बजाय इसके अगर मैं पूछता, आज कौन-सा दिन है, तो कोई फरक न पड़ता।' (पृ. ४५) 'क्या तुम्हारे और उसके कपड़ोंमें जो भीषण अंतर है उसीसे तुम समझ रहे हो कि उसे सरदी लग रही है ···तब वह दो कपड़े पहने होती, तो शायद तुम गरमाये बैठे रहते, चाहे उसे सचमुच ठंड लगती रहती। (पृ. ५६) 'उसने कहा, मैं तुम्हारा दिल नहीं तोड़ना चाहती, मगर सरकस वाले अक्सर यह करतेहैं कि जान बूझकर निशाना चूक जातेहैं। (पृ. ६०) अथवा 'जब चिठ्ठी निकली तो हरिहर दंग रह गया। एक सफेद कागजने अब एक

ग्रन्थका रूप ले लियाथा। यह उसके लड़केके सब नुस्खों और जांच पत्रोंके बादमी पुलिदेसे कहीं बड़ा था। (पृ. ८६)

'सीमाके पारका आदमी' इस संग्रहकी ही नहीं हिन्दी साहित्यकी श्रेष्ठ कहानियोंमें कही जा सकतीहै। युद्धके बाद दो देशोंके बीचके सम्बन्ध पुन: ऐसे स्थापित हो जातेहैं जैसे उनके बीच मोर्चे तने ही न थे। ये वे देश नहीं हैं जो कलतक एक दूसरेका खून पीजानेके लिए आमादा हो उठेथे। अब अखबारमें वृतांत छपतेहैं कि इन परस्पर दुश्मन देशोंने मोर्चेपर परस्परके साथ कितनी इन्सानियतका बरताव किया। पूरी कहानी सत्ताधारियोंकी पाशवी मनोवृत्तिपर व्यंग्य है जो शान्तिके दिनों इन्सानियतका मुखौटा धारण किये रहतीहै। पर इस कहानी का अन्तिम हरिजनवाला अंश इतिहासका यथार्थ जरूर हो, इसे जोड़ देनेसे लेखकने पाठकका ध्यान युद्धकी सामान्य नृशंसतापरसे विशिष्ट इतिहास घटनाकी ओर आकृष्ट कियाहै जो कहानीको सार्वभौगिक नहीं बनने देता।

'एक जीता-जागता व्यक्ति', 'इन्द्रधनुष,' 'उमसके बाद', 'लड़के', 'एक छोटी-सी यात्रा,' 'खेल', 'कीर्तन' सामान्य अनुभव कहानियां हैं। 'रास्ता इधरसे है' कहानीकी व्यंग्यात्मकता हास्यास्पद बनकर रह गयीहै। 'प्रेमिका'में धारीदार साड़ी नायकके मुंहपर आगिरने पर प्रेमिकाका मुंहही बच्चोंकी तरह नहीं खुल जाता सारी कहानीही बचकानी बनकर रह जातीहै। 'कोठरी' सामान्य आदमीके जीवन-संघर्षकी कहानी है जिसमें उधार पढ़े प्रेमचन्द और डिकेन्स हैं। तभी एक और लड़का मशीनके पट्टेसे मर जाताहै तो उसकी औरत ससुर भगतकी हमबिस्तर बनी रहते लेखककी ओरसे रिमार्क पातीहै 'भगतके साथ उसका जो भी सम्बन्ध था वह अनुचित सम्बन्ध न था'। 'विजेता' आजके परिवार नियोजनके युगमें नये सन्दर्भोंके साथ नये किस्मकी मनोदशाको प्रस्तुत करतीहै जो अपने-आपमें विशेष है।

भाषामें कहीं-कहीं व्यंग्यात्मकता खूब बन पड़ीहै। यथा—सरकार इतनी कम उम्रमें एक ऐसे व्यक्तिका नष्ट होजाना बरदाश्त नहीं करती जिससे अभी न जाने कितने बरस सरकस कराया जा सकताहै। (पृ. ६८) सच तो यह है कि अकाल भारतमें बना निरंतरही रहता था, परन्तु उसकी जानकारी लोगोंको तभी हो पाती जब अनाज आयात किया जाता। (पृ. ७६) हम दोनों की बातचीतका अन्दाज ऐसाहो जाता कि यह कहानी मैं न लिखता, कृष्णचन्दर लिखते। (पृ. १२४) 'युद्ध-विराम हो चुकाथा। हर बारकी तरह पड़ोसी शत्रुको कुचलकर रख देनेके गीत लिखनेवाले कवि दूसरे धंधों की तलाश करनेमें लगेथे। (पृ. १४६)

लेखकने भाषामें कई मुक्त देशज शब्दोंका प्रयोग कियाहै। पर ये रेणुकी भाषा जैसी आंचलिकता नहीं लापाते। यथा पिछवाऊँगा (४०) लड़कौंधी (४१) हुमासा (३), चीन्हता (४६) भुनभुल (५७) गपड़ चौथ (७७) उठकुरवां (८६) तापा हुआ (८६) बुलकारा (१०१) फुफ्छल (१०५) हड़ेले (१०८) बौखल (११५) आदि।

कुल मिलाकर 'जो आदमी हम बना रहे हैं' में हमें न उस आदमीके दर्शन होतेहैं जो युग बना रहाहै या उस कलाके जो युगको बनातीहै। ये कहानियां एक वैचारिकी प्रयोग-भर हैं। वैचारिकताका सूक्ष्म दर्शन यहां विद्यमान हो, पर संवेदनाके स्तरपर इनमें यह गहराई नहीं जो महादेवीके रेखाचित्रोंमें दिखायी देतीहै। कवि पर पत्रकारिता और फोटोग्राफीही अधिक हावीहै।□□

नेपालका हिन्दी काव्य

अग्नि शृंगार[१]

कवि : केदारमान व्यथित
समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र.

'अग्निशृंगार' (लघु काव्य-संकलन) नेपाली साहित्य जगत्के ख्यातिप्राप्त वरिष्ठ कवि श्री केदारमान व्यथितकी नवीनतम (हिन्दी) कृति है जिसे नेपालकी ओरसे विशाल हिन्दी-परिवारको एक स्पृहणीय सारस्वत उपहार माना जायेगा। कुछ समय पहलेही इनका 'हमारा देश हमारा स्वप्न' नामसे प्रकाशित एक काव्यसंकलन हिन्दी जगत्में आदरपूर्ण चर्चाका विषय बनाथा। व्यथितजी अपने कवि जीवनके आरम्भिक दिनोंसे ही नेपालीके साथ अपनी मातृभाषा नेवारी और हिन्दीमें भी सहज स्वाभाविक शैलीमें श्रेष्ठ काव्य रचनाके कारण लोकप्रिय होचुकेथे। इस दृष्टिसे वे आर्यावर्त्तकी उस महान् ऋषि-परम्पराके कवि हैं जिन्होंने अपनी कठिन काव्य-साधनाका अमृतफल सदा अधिकाधिक लोगोंको आस्वाद कराया और जिनके हाथों भाषाएं स्वयं संस्कृत और परिष्कृत होगयी। काव्यकी एक अपनीही विश्वजनीन भाषा होतीहै जो व्याकरण और कोष द्वारा प्रदर्शित विभेदको पाटती हुई अभिव्यक्तिकी 'बैखरी' को 'परा' वाणीकी अपूर्वताका अनुभवैकगम्य सौन्दर्य प्रदान करतीहै। वाक्सिद्ध और रससिद्ध कवियोंके काव्यानुशीलनसे यह बात सहजही हृदयंगम होजातीहै। कवि व्यथितकी अनेकभाषा कुशलता उनकी अनुभूति प्रवणता और नवनोन्मेषशालिनी प्रज्ञाके कारणही पुष्ट हुईहै। साथही, उनकी कविता जीवनके यथार्थ और ठोसको ही इन्द्रधनुषी कल्पना सौन्दर्यसे मंडित करतीहै। अत: आकर्षक तो हैही प्रभावोत्पादकभी। व्यथितजीकी भावनाएं कवितामें उतरनेसे पहले जीवनमें उतर चुकी लगतीहै। उनकी 'व्यथा' ओढ़ी हुई नहीं है। 'अग्निशृंगार' के सामान्य पाठकको भी उसकी सूक्तियों (या कटूक्तियों !) में भुक्तभोगीके स्वरकी तीव्रताका अहसास होताहै। कवि व्यथितके कृतित्वका यह गौरवशाली पक्ष है कि वह व्यक्तित्वकी श्रेष्ठतासे अनुप्राणित है। अपने यौवनके मधुरतम क्षणोंको क्रांतिकी ज्वालामें आहुति देनेवाले व्यक्तित्वमें ही कुन्दनकी यह शुद्धता और प्रखरता आ सकतीहै। वह परिस्थितियों के कारण रूपायित होताहै मगर धातुका परिवर्तन नहीं सहन करता। कवि व्यथितकी ओजस्वी काव्य यात्राके परिणतिस्वरूप आजकी हताश, दिशामूढ़ और विषादयोगी युवापीढ़ीके लिए "अग्निशृंगार" ऊर्ध्व-चेतनाका एक जाज्वल्यमान पुष्पस्तबक है। इसमें काव्यके माध्यमसे इन सूक्तियोंसे कविने 'आग' के रसको 'अनुराग' के रूपमें अपने पाठकको पिलायाहै।

ये 'मिनि कविताए' या सूक्तियां 'अन्योक्ति काव्य का सुन्दर प्रतिमान उपस्थित करतीहैं जिनमें अप्रस्तुत प्रशंसाकी सूक्ष्म बिधिसे स्थायी काव्यप्रभाव पैदा किया जाताहै। अन्योक्ति ऐसी काव्यविधा है जो प्रातिभ अनुभूतिके साथही वयके अनुभवसे अधिक परिपुष्ट और सार्थक होतीहै। 'अग्निशृंगार' की अनेक सूक्तियां व्यथित काव्यकी अन्त:सलिला ओजस्वी भावधाराके साथही उसकी ठोस वैचारिक पृष्ठभूमि, चिन्तनकी प्रौढ़ताको सिद्ध करतीहै। वे युगबोधके साथही सामाजिक दायित्वके निर्वाहके लिए काव्य साधनका जागरूक प्रयोग दिखातीहै। इस लघु काव्य-संकलनका विषयफलक अद्भुत रूपसे विस्तृत है। यहां एक ओर प्रणय-शृंगारकी मादक अनुभूतियोंके 'छायावादी' प्रकृति चित्र हैं--

"कल्लोलिनीको चांदनीकी

१. प्रकाशक : भारत-नेपाल मैत्री प्रकाशन, पटना। पृष्ठ : ६३; क्रा. ८४; मूल्य : ८.०० रु.।

गुदगुी लगीहै।"

× × ×

"रातभर चांदके साथ
रतिक्रीड़ा करती हुई
सीत्कारती रही नदी,"

तो दूसरी ओर विश्वहितकी ऊर्ध्वमुखी प्रकाश-चेतना—

"आंखवाले हम उन्हींको कहतेहैं
जो धो सके सबके तिमिरको।"

यहां कविने युगसत्यको उसके अनेक पक्षोंके साथ विस्तारित काव्य फलकपर शब्दचित्रित कियाहै, इन सूक्तियोंका शब्दवितान और उनका अन्तर्निहित अर्थ-वैपुल्य देखते-सोचतेही बनताहै।

"आलोकधारासे जबतक नहीं भरेगी
एकसौ छप्पन मिट्टीकी प्यालियां[1]
तबतक सचमुच मैं
सूर्यको निचोड़ताही रहूंगा!" (संकल्प सौन्दर्य)

"लोग हंसते जारहेहैं
हमारी ओर देखकर
बिना पाकेटके
कोट तो नहीं हुए हम?' आदि।

संकेतात्मकता और लाक्षणिकताके मोहक रहस्यावरणको तोड़कर कहीं-कहीं कवि सपाटबयानीका सहारा लेकरभी चमत्कृत करताहै। ऐसा अक्सर आक्रोशकी अभिव्यक्तियोंके क्षणमें हुआहै। युगकी अपूर्व छलनाओं, नृशंसतापूर्ण मित्रघात और अमानवीय बुद्धिवादपर कवि सीधे बरस पड़ाहै—

"नरकको भी जिनकी सहनशक्तिके सम्मुख
बार-बार लज्जित होना पड़ा
ऐसे आदमियोंके नामही
देशभक्तोंकी सूचीमें है हमारे देशके।

× × ×

"दुर्भिक्षके बीज बोकर
रोगके संक्रमणको
प्रतिष्ठा देनेका कीर्तिमान स्थापित कियाहै
हमारे देशने!"

इस काव्यमें इस तरहकी अनेक काटनेवाली 'सूक्तियां' या कटूक्तियां हैं जो भाषाकी साफगोईके कारणही 'लुन्ती' की भांति हमारी तमोग्रस्त चेतनासे सटकर उसे तिलमिलाती और जगा देतीहै। उपनिवेशवाद और सामन्तवादसे मुक्त हुए एशियाके सभी विकासशील देश सामाजिक नैतिकताके अधःपतनकी इसी विषम नियतिका कटु दंश अनुभव कर रहेहैं। अतः व्यंग्यकारके रूपमें वहांके साहित्यकारको इसी तरह काव्य-शल्य-चिकित्सा करनी पड़तीहै। कवि व्यथित अपने प्रौढ़ वयके शान्त क्षणोंमें भी युगकी अकुलाहटको युगके भरोसे छोड़ देनेका छद्म नहीं कर सकतेथे। अतः उन्होंने अपनी अग्निगर्भा वाणीका ईन्धन डालकर उसे उद्दीप्त कियाहै और युग-तथा कविकर्म दोनोंका समन्वित निर्वाह कियाहै। नेपालके साथही विश्व-हिन्दी-साहित्य परिवारमें दहकते शोलेवाले उनके इस बहुमूल्य काव्य संग्रह अग्निश्रृंगारका दिल खोलकर स्वागत होगा, इसमें सन्देह नहीं।□

1. एकसौ छप्पन मिट्टी···राष्ट्रसंघके सदस्य देश।

स्वर पाषाण शिलाके[1]

कवि : रमेशचन्द्र
समीक्षक : डॉ. अनिलकुमार मिश्र.

अहल्याकी पौराणिक कथाको सूत्र रूपमें ग्रहणकर कविने आधुनिक नारीकी उस व्यथाको अभिव्यंजना दीहै जो 'नारी-मुक्ति आन्दोलन' और उसके अधिकारोंकी मांग में परिलक्षित होतीहै:

"कहनेभर को प्राचीन कथा,
पर इस कविताकी मर्म-व्यथा
सबकी सब इसी समयकी है,
आजके व्यथित हृदयकी है

'हल' कुरूपताका प्रतीक है और अहल्या—सुन्दरता का आगार है। 'वाल्मीकि रामायण'के अनुसार वह ब्रह्मा द्वारा सृजित प्रथम सौन्दर्यशालिनी बाला थी। फलतः उसका सौन्दर्य कल्पनातीत था। तन और मन दोनोंसे वह पवित्र थी, अन्तः और बाह्य—उभय सौन्दर्यकी तमोहर ज्योति थी, निष्काम कर्मकी पावनमूर्ति थी।

ब्रह्माने उसे महर्षि गौतमको सौंप दियाथा। वह महर्षि गौतमकी सहचरी थी। उसे 'पाषाण-शिला' कहा गयाहै क्योंकि महर्षि गौतमने उसे शाप दियाथा कि वह पाषाण शिला बने, इन्द्रके बलात्कारके कारण। लेकिन आजका भौतिक युग 'शाप' की बात स्वीकार नहीं करता।

1. **प्रकाशक : समवेत प्रकाशन, २२३, राजेन्द्र नगर, लखनऊ (उ. प्र.)। पृष्ठ : ८८; डिमा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।**

क्या वास्तवमें महर्षिका हृदय तपःसाधना करते-करते इतना कठोर होगयाथा कि एक कोमलांगीको कठोरतम बनादे। ऋषिका तो यह स्वभाव नहीं।

हलका कार्य है खेत जोतकर अन्नका उत्पादन करना। हल वहीं चलेगा, जहांकी धरती कोमल हो, कठोर नहीं। लेकिन, पौराणिक कथानुसार अहल्या कठोरताकी प्रतीक है। उसपर हल नहीं चल सकता। इसीलिए वह 'अहल्या' है। दूसरे, अपने स्वभावसे उसने कठोरताओंको भी मृदुतामें बदलकर बंजरमें वसन्तकी बहार ला दीथी, अतः 'अहल्या' है। तीसरे, ऋषिने अज्ञानतामें हुई गलतीके लिए उसे केवल प्रताड़ित एवं प्रबोधित कियाथा, जिसके परिप्रेक्ष्यमें वह पाषाणवत् होगयी, उदासीन होगयी, मौनहो गयी।

बलात्कार इन्द्रने कियाथा, दण्ड इन्द्रको मिलना चाहियेथा। विडम्बना है दोषी नारीही है। उसके मूक हृदयकी पीड़ा कौन समझताहै ? परित्यक्ता नारीके मन की घुटनका अनुमान क्या सहजही लगाया जा सकताहै ? अहल्याका व्यंग्य-वचन ठीकही है—

"यह कैसा वरदान दियाथा,
तुमने मुझको अरे विधाता !
ऐसा रूप कि जो कालिखके
बिना अधूराही रह जाता।"

उच्चवर्गीय भोग-विलास गरीबीकी दुनियांका सौन्दर्य कहां देख सकताहै ? अहल्या निरीह अबलाका प्रतिनिधित्व करतीहै और इन्द्र उच्चवर्गका, जिसके लिए नारी मात्र भोग्या है—जैसाकि गौतमकी इस प्रताड़नासे ध्वनित होताहै—

"हम तो दीन अकिंचन अपनी,
छोटी-सी दुनियांमें रहते
सह लेतेहैं हर अभावको,
नहीं किसीसे कुछभी कहते।
किन्तु, तुझे क्या कमी पड़ गयी
देवलोककी सुविधाओंमें,
जिसको आया यहां ढूंढ़ने,
मर्त्य लोककी अबलाओंमें।"

इन्द्रकी लम्पटताको रंगे हाथों पकड़नेपर गौतमकी प्रताड़नाका स्वर इतना तीव्र होउठताहै कि—

"भाग यहांसे फिर धरतीकी
ओर न अपनी आंख उठाना
वरना तुझे अमर होकर भी
यहां पड़ेगा प्राण गंवाना।"

रोषभरी वाणीमें विवश कोई गरीब कह रहाहै—'हम गरीब अवश्य हैं, पर अपनी इज्जत हमेंभी प्यारी है। अपनी रक्षामें हम प्राण लेनेमें भी नहीं हिचकेंगे।'

अहल्याके माध्यमसे कविने आधुनिक बलात्कारकी शिकार नारीकी मर्म-वेदनाको मुखरित कियाहै। विवशता या अज्ञानतावश नारी किसीको तन तो समर्पित कर देतीहै किन्तु मनसे अपने प्रियतमके प्रति समर्पित है, तो वह दोषी कैसे ? यह विडम्बना है कि आज नारीके मनका नहीं, तनका ही महत्त्व रह गयाहै। अहल्या कातर वाणीमें कहतीहै—

"यदि लम्पट नर कोई,
नारीकी मर्यादाको छल जाये
क्या है यही नियति बेचारी,
सुलग-सुलगकर वह जल जाये।"

अहल्या अपनेको अपराधिनी नहीं मानती। वह पूछतीहै—

"पर अपराध हुआ क्या मेरा,
अबतक जान नहीं पायीहूं।
किस विधानसे मैं कलुषित हूं,
यह पहचान नहीं पायीहूं।"

अहल्याको शाप देकर और उसे त्यागकर क्रोधाभिभूत गौतमभी पश्चात्तापकी अग्निमें जलेथे। उनके लिए तो मनका संयमही सबसे बड़ा नियम था। देह-कर्म पर आधारित धर्मको वे भ्रमही मानतेथे। फिरभी उनका मन संयमित नहीं रह सका। पश्चात्तापसे दग्ध उनका मन स्वीकार करताहै—

"तनसे छली गयी नारीको,
मैंने क्यों कह दिया अपावन।
मनसे तो निष्कलुष अहल्या,
उतनी जितना भोला बचपन।"

गौतमका अन्तर्मन्थन उसकी सहिष्णुताकी प्रशंसा करताहै—

"मैं अन्याय करगया उसपर,
किन्तु न उसकी जिह्वा डोली।
गरल घूंट-सा मौन पीगयी,
एक शब्दभी किन्तु, न बोली।"

गौतमका यह अन्याय निरन्तर उनके मनको सालता रहा है—

मेरे न्यायशास्त्रके पन्ने,

लगता मेरी हंसी उड़ाते ।
जोभी किये विवेचन मैंने,
लगता व्यंग्य वचन कह जाते ।
लोक-दृष्टिमें अपना सारा
अहं स्वतः गलता जाताहै ।"

अहल्या-गौतम चिरपरिचित कथाको 'स्वर पाषाण शिलाके' एक नया आयाम प्रदान करतीहै—दिवोदासके रूपमें । प्राचीन साहित्य और इतिहासमें प्रमुखतः तीन दिवोदासोंका उल्लेख मिलताहै—प्रथम दिवोदास काशी का चन्द्रवंशी राजा था, जिसकी चर्चा पुराणोंमें है (ब्रह्म. ११/३९-४८, वायु. ९२/२३/३८, ६१-६८ आदि)।

प्रथम दिवोदासके साथ द्वितीय दिवोदासका भी उल्लेख मिलताहै। पार्जिटरके अनुसार प्रथम दिवोदास दक्षिणापथके हैहयवंशी दो राजाओं भद्रश्रेण्य और दुर्दभ का समकालीन था । वह भीमरथका पुत्र था । हैहयोंके आक्रमणके कारण शायद उसे अपनी राजधानी वाराणसी छोड़कर गंगा-गोमती संगमकी ओर भागना पड़ा । उसके तीन-चार पीढ़ी बाद उसी नामका एक और राजा हुआ, जिसके समय तालजंघवंशी च्वीतिहव्यके पुत्रोंने काशीपर पुनः आक्रमणकर पराजय दी, पर शीघ्रही उसके पुत्र प्रतर्दनने उन्हें मार भगाया । तृतीय दिवोदास उत्तरी पाञ्चालकी एक शाखा तृत्सुका राजा था । 'अतिथिग्व' उसकी उपाधि थी । उसके पिताका नाम वृहदश्व था—(विष्णुपुराण ४।१९।६१) । वह वीर और योद्धा था। दासराज शम्बर उसका शत्रु था, जिसे उसने कई बार हरायाथा (ऋ. १।११२।१४) वह विद्वान् और वैदिक मन्त्रोंका प्रणेताभी था(ऋ. ७।१९।८) । यह तृतीय दिवोदास अहल्याका भाई बताया जाताहै, जो विवेच्य खण्ड-काव्यको एक नया आयाम देताहै ।

दिवोदास उस भाईका प्रतिनिधित्व करताहै, जिसकी बहनपर उसकेही मित्रोंने 'अत्याचार' कियाहै । इन्द्र दिवोदासका घनिष्ठ मित्र था—अहल्यापर अत्याचार करते हुए उसे अपनी मित्रताका भी ध्यान नहीं आया । दूसरी ओर जब दिवोदासको इन्द्रकी क्रूरता व दुष्टताका परिज्ञान होताहै, तब वह इन्द्रसे प्रतिशोध लेनेके लिए सन्नद्ध होजाताहै, किन्तु तभी उसका पुराना शत्रु शम्बर युद्ध छेड़ देताहै । फलतः दिवोदास द्विधाग्रस्त होजाता है—

"यदि संघर्ष इन्द्रसे होगा,
शम्बर अवसर पा जायेगा ।
होगा शक्ति-विभाजन विघटन,
दल बल व्यर्थ चला जायेगा ।"

शम्बर या इन्द्रसे युद्धकी यह संघर्षावस्था अन्तमें देश-धर्म पर न्यौछावर होकर शम्बरकी ओर मुड़ जातीहै :

"मैं भ्रममें हूं लेकिन शायद,
राजनीतिका नियम यही है,
अपना हर दुख देश-धर्मपर
संकटकी तुलनामें कम है ।

समग्रतः 'स्वर पाषाण शिलाके' नारीकी निर्दोष अस्मिताकी सफल अभिव्यक्ति हैं । पुरानी एवं रूढ़िगत मान्यताओंकी लीकसे हटकर इसमें नारीको नवीन एवं तथ्यपरक दृष्टिसे देखा गयाहै । कविका आधुनिक भाव-बोध नैतिकताकी दुहरी नीतिपर प्रखर प्रहार है । जन-वादी दृष्टिकोणकी परिचायक यह कृति विचारोत्तेजक एवं प्रासंगिक है । □

अंगारोंके देश

कवि : अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'
समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी.

आलोच्य कविता-संग्रहमें कवि राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, और सांस्कृतिक संदर्भोंके साथ प्रस्तुत हुआहै । इसमें चित्तौड़ और मेवाड़की वीरभूमि हुंकार कर उठीहै। कालिदास, दयानंद, विवेकानंद, सरस्वती बापू, जय-प्रकाश आदिके प्रदेयको स्तुतिपरक शैलीमें प्रस्तुत किया गयाहै । प्रारम्भमें वीणापाणिकी स्तुति है और अन्तमें मुक्तक । यह एक ओज-प्रधान काव्य-कृति है ।

कविकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है । छंदबद्ध रचनाएं प्रस्तुत करनेमें सावधानी बरती गयीहै । बावजूद इसके, संग्रहकी भाषा द्विवेदी युगीन काव्य-शैलीसे आगे नहीं बढ़ सकीहै । तुकांत रचनाओंकी अपनी एक सीमा होतीहै। कविमें भारतीय सांस्कृतिक गौरव और अतीतके प्रति आदर-भाव व्याप्त है लेकिन हृदयको मथ देनेवाली ताकत और युगके अन्तःस्पंदनोंको पकड़नेकी बारीकी नहीं है ।

यूं तो अध्यात्म, संस्कृति, विज्ञान और विश्व-कल्याणकी झांकीभी देखनेको मिलतीहै लेकिन मात्र

---

१. **प्रकाशक : शशि प्रकाशन, पठकाना, शाहाबाद, हरदोई (उ. प्र.) । पृष्ठ : ६०; डिमा. ८३; मूल्य : १०.०० रु.** ।

शब्दावलीसे आजके युगमें अपेक्षित प्रभाव छोड़नेमें ये कविताएं बहुत समर्थ नहीं हैं। आज भाषाके तेवर, नये अर्थोंकी छटाएं कविताको बहुत आगे ले गयीहैं। 'गुरुगोविन्द सिंह' रचना बहुत प्रासंगिक बन पड़ीहै।

तलवार तुम्हारी कीर्तिमयी अपयशका भार न हो पाये/बहकावेमें खोकर विवेक, भाई गद्दार न होपाये/उन्मद अकालियोंको अपने गुरुवर! आकर फिर शिक्षा दो/अक्षुण्ण राष्ट्रकी अखंडता रखनेके लिए तितिक्षा दो।

कुल मिलकर 'अनंत' का यह संग्रह उन्हें राष्ट्रीय काव्य-धारासे जोड़ताहै। □

एक मुक्ति और[1]

कवि : अग्निदूत
समीक्षक : महेशचन्द्र पुरोहित.

एक मुक्ति और' शीर्षकसे कवि अग्निदूतकी एक लंबी निषेधप्रधान कविता प्रस्तुत है। आजकी विडम्बना-पूर्ण स्थितिमें कराहते हुए मानवके लिए मुक्तिका रास्ता धर्म-संप्रदायोंमें से होकर नहीं जाता—ऐसा कवि मानताहै। अतः वह अबतक मानव द्वारा अर्जित संपूर्ण साँस्कृतिक धरोहरको नकारताहै। उसे मुक्तिका मार्ग संघर्षही नजर आताहै :—"पर हे मानव/तुम्हारे मस्तिष्क' से/यह स्मरण न रिसे/कि तुम्हारे संघर्ष-अनुरूप क्षमताओंके/अनुपातमें मिलूंगी मैं—तुम्हें।" इस प्रकारकी कुछ इनी-गिनी पंक्तियांही पूरी कवितामें सकारात्मक हैं। यदि कवि प्रस्तुत कवितामें नकारात्मक पंक्तियोंमें कमी करके सकारात्मक पंक्तियोंमें वृद्धि करता तो संभव है वह पुनरुक्ति दोषसे बचता हुआ किसी ऐसे दर्शनका विकासभी कर पाता जो संघर्षको दिशा देताहै क्योंकि संघर्ष बेमानी है यदि किसी दर्शनकी लगाम उसे परिचालित नहीं करती। युवा कविसे आशा करनी चाहिये कि वह भविष्यमें इस ओर विचार करेगा।

आलोच्य कवितामें कविने अनावृत्तो, प्रौढ़ती गयी, आत्मसातने, परिणतताने लगी, अर्पणें, वशीकृताने, संघर्षती, प्राप्तने, जैसी नयी क्रियाओंका प्रचुर मात्रामें प्रयोग कियाहै, जो विचारणीय है। चालीस पृष्ठोंकी अजिल्द पुस्तिकाका मूल्य पन्द्रह रुपये अधिकही है। □

१. प्रकाशक : सक्षम प्रकाशन, ५-२-४१०, हैदरबस्ती, सिकन्दराबाद-५०००३। पृष्ठ : ४०; डिमा. ८३; मूल्य : १५.०० रु.।

शोध : आलोचना

साधारणीकरण और सौन्दर्यानुभूतिके प्रमुख सिद्धांत[1]

लेखक : डॉ. प्रेमकान्त टंडन
समीक्षक : डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी.

अबतक साधारणीकरणपर स्वतन्त्र रूपसे लिखी गयी दो पुस्तकें मेरे सामने आयीयीं—डॉ. तारकनाथ बाली प्रणीत "साधारणीकरण, संप्रेषण और प्रतिबद्धता" और दूसरी डॉ. रामलखन शुक्ल द्वारा लिखित "साधारणीकरण"। योंतो भारतीय काव्यशास्त्र और रसनिरूपक सभी ग्रन्थोंमें साधारणीकरणकी चर्चा मिलतीहै—पर स्वतन्त्र पुस्तकके रूपमें इन दो कृतियोंका अस्तित्व प्राप्त है। इसी परंपरामें तीसरी आलोच्य पुस्तक है—"साधारणीकरण, और सौन्दर्यानुभूतिके प्रमुख सिद्धांत"। डॉ. बालीने साधारणीकरण, संप्रेषण और प्रतिबद्धताको परस्पर संबद्ध करते हुए अपना पक्ष रखाहै। डॉ. शुक्लकी पुस्तक ऐतिहासिक अनुक्रममें "साधारणीकरणका विवेचन अधिक प्रस्तुत करतीहै—पाश्चात्य समशील चैन्त-

१. प्रकाशक : भारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१। पृष्ठ : ३२८; डिमा. ८३; मूल्य : ५०.०० रु.।

निक पक्षोंको उस तरह नहीं लेती, जिस तरह प्रस्तुत आलोच्य-कृतिके लेखकने लियाहै। यह इस पुस्तककी विशेषताहै।

प्रस्तुत कृतिमें लेखककी यह धारणा पुष्ट हुईहै—"मूलत काव्यानुभूतिकी प्रक्रियाके रूपमें निरूपित" साधारणीकरण "वस्तुतः सौंदर्यानुभूतिकी ही प्रक्रिया है। उधर, सौंदर्यानुभूतिके अनेक पाश्चात्य सिद्धांतोंका प्रणयन यद्यपि मूलतः मूर्ति, चित्र, संगीत आदि काव्येतर ललित कलाओंके संदर्भमें हुआ, तथापि उनमें काव्यके संदर्भभी समाविष्ट हैं। अतः साधारणीकरण और सौंदर्यानुभूतिके पाश्चात्य सिद्धांत परस्पर तुलनीयता प्राप्त कर लेतेहैं।" इस संकल्पकी पुष्टिके निमित्त लेखकने पहले दोनों पक्षोंका स्वतन्त्र विवेचन कियाहै, तदनंतर दोनोंमें समानताकी भूमि अन्विष्ट कीहै—ढूंढ़ निकालीहै। इस संकल्प-सिद्धिमें उपसंहारके अतिरिक्त कुल चार अध्याय हैं— जिनमें क्रमशः आधारभूत रसदर्शन, साधारणीकरण सिद्धांतका विवेचन, सौंदर्यानुभूतिके प्रमुख पाश्चात्य सिद्धांत और तुलनात्मक विवेचन किये गयेहैं।

प्रथम अध्यायमें संस्कृत काव्यशास्त्रमें साधारणीकरण सिद्धांतकी पृष्ठभूमि निरुपित की गयीहै। पृष्ठभूमिसे अभिप्राय है—भरतसूत्र केन्द्रित रस-विवेचनसे। निःसंदेह उपस्थापकका श्रम और उदीयमान समझ उसके विवेचनमें प्रतिफलित है, फिरभी शास्त्रका गहनकान्तार पथिकको कभी-कभी भटकाभी देताहै। उदाहरणके लिए—"इसप्रकार काव्यप्रकाशके अनुसार आचार्य शंकुकका मत है कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों अर्थात् कारण, कार्य और सहकारी रूप गमक सामग्रीसे स्थायी भावका गम्य-गमक संबंध स्थापित होना "संयोग" है और निष्पत्तिका अर्थ है—सामाजिक द्वारा नटमें स्थायी भावका अनुमान।" (पृ. ४०)। वस्तुतः विभाव, अनुभावादि गमक हैं,कारण, कार्यादि नहीं। लोकमें उन्हें कारण, कार्य कहते हैं, काव्य या कलाकृतिमें नहीं। काव्य या "अलोक" में वे अन्यथा होजातेहैं—कृत्रिम कारणादि कृत्रिम रूपमें प्रतीत नहीं होते,अपितु चित्र-तुरगवत् कलोचित बुद्धि से गृहीत होतेहैं और इस रूपमें गृहीत सामग्रीको विभावादि पदसे ही व्यवदिष्ट करना चाहिये, न कि कार्यकारणादि पदसे। दूसरे "गम्यगमक" संबंध नहीं होता "गम्य-गमक-भाव" संबंध होताहै। अस्तु। शास्त्र अर्थात् व्यवस्थित चिंतनकी भाषा अत्यंत नपीतुली होतीहै। दूसरी बात यहभी है कि साधारणीकरण श्रव्य-दृश्य-उभयविध काव्य द्वारा प्रतिपाद्य "रस" पर लागू होताहै। भरतसूत्र द्वारा प्रतिपादित "रस" सूत्र नाट्यको केन्द्रमें रखकर लिखा गयाहै। अभिनवगुप्त और आनंदवर्द्धनने नाट्यके साथ-साथ श्रव्यमें भी समान रूपसे "रस" की महत्ता स्थापित कीहै। एक ओर अभिनवगुप्त कहतेहैं "काव्येऽपि च लोकनाट्यधर्मिस्थानीयेन स्वाभावोक्ति वक्रोक्ति प्रकारद्वयेनालोकिक प्रसन्न मधुरौजस्विशब्द समर्प्यमाण विभावादियोगादियमेव रसवार्ता" (ध्वन्यालोकलोचन, पृ. १८६) जो वार्ता भरतसूत्रको नाट्यके संदर्भमें रखकर नाट्यशास्त्रके व्याख्याताओंने की है--वही बात काव्य (श्रव्य-काव्य) में चलायी जा सकतीहै। उन्होंने यहभी कहा—"अस्तुवात्र नाट्याद्विचित्ररूपा रसप्रतीतिः"—अर्थात् नाट्यकी अपेक्षा श्रव्यकाव्योंमें होनेवाली रसप्रीतीति विजातीय है—कुछ वचित्र है। यहभी कि 'काव्ये रसः नाट्यायमानः,' यहभी कि नाट्यमें रसानुभूति प्रत्यक्ष और काव्यमें प्रत्यक्षवत्। आनंदवर्धने भी तृतीय उद्योतमें इस विजातीय रसप्रतीतिकी स्थितिका संकेत दियाहै। उन्होंने कहाहै—"वस्तु च सर्वमेव जगत्गतमवश्यंकस्याचिद्रस्य भावस्य वाङ्गत्वं प्रतिपद्यते, अन्ततो विभावत्वेन। **चित्तवृतिविशेषणा हि रसादयः।**" (ध्वन्यालोक, पृ. ४६५)—रसकी कितनी व्यापक अवधारणा है। रचयिताकी रचनात्मक मनोभूमिकासे गुजरकर हर वस्तु चित्तपर अनुकूल असर डालतीहै, चित्तवृत्ति उत्पन्न करतीहै। यही चित्तवृत्ति-बिशेष तो रस है। कहनेका अभिप्राय यह है कि साधारणीकरणकी पृष्ठभूमिमें रसका विचार करें--तो इस व्यापक रूपकी भी चर्चा होनी चाहिये, विशेषकर रचनाका प्रसार जब गद्य-प्रचुर हो चुकाहो।

इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत भाषा और उसकी अभिव्यक्ति प्रक्रियासे गहरे स्तरपर न जुड़े रहनेके बावजूद डॉ. टण्डनने रससूत्रके चारों व्याख्याकारों और स्वयं भरतके पक्षोंको काफी तलस्पर्शिताके साथ रखाहै। लेखकने अद्यावधिक विचारोंसे (लिखनेसे पहले) गहरे स्तरपर परिचय प्राप्त कियाहै और समझको दीप्ति दीहै। आजकलकी अकर्मण्यता तथा शास्त्रविरोधी रुचिके बावजुद इन्होंने जिस विपरीत प्रवाहमें तैरनेका प्रयत्न कियाहै, वह प्रशंसार्ह है।

ग्रंथका दूसरा अध्याय 'साधारणीकरण' का विवेचन करताहै। ग्रंथकारने इस अध्यायमें भट्टनायक, अभिनवगुप्तपाद, विश्वनाथ, जगन्नाथ, रामचन्द्र शुक्ल और डॉ.

नगेन्द्रकी साधारणीपरक अवधारणाओंको तटस्थ ढंगसे प्रस्तुतकर अपनी वैचारिक प्रतिक्रिया व्यक्त कीहै। आचार्य शुक्लकी स्थापनासे असहमत होते हुएभी मौलिक के नाते प्रशंस्य बतातेहैं—जबकि डॉ. नगेन्द्रके मतसे आंशिक सहमति और आंशिक असहमति व्यक्त करतेहैं। समस्त विवेचन स्पष्ट, साफसुथरा और विश्वसनीय है।

तृतीय अध्यायमें लेखकने सौंदर्यानुभूतिके प्रमुख पाश्चात्य सिद्धान्तोंकी समाधि-लब्ध-भाषामें प्रविष्ट होकर प्रभावशाली उपस्थापन कियाहै। इन प्रमुख पाश्चात्य सिद्धांतोंमें प्लेटोका दैवी उन्माद या दैवीप्रेरणा, अरस्तूका विरेचन, काण्टकी निःसंगता या अनासक्ति, प्रीस्टलेकी असंपृक्तता, एम. आर. लिविसका व्यक्तित्वका आत्म-विस्तार, बर्नलली और थ्योडोर लिप्सकी समानुभूति, वोदिजरका पृथक्करण अथवा अपसारण, एडवर्ड बुलोकी मानसिक दूरी, गैसेटका अमानवीकरण (डिस्ट्मनाइनेशन) इलियटका व्यक्तित्वसे बचाव या व्यक्तित्वका विसर्जन, विमसैरका सार्वभौमीकरण, रिचर्ड्सका संवेगसंतुलन और निर्वैयक्तिकता, अनासक्त परितोष, ताटस्थ्य आदिका परिगणन किया गयाहै। वास्तवमें इन संकेत सूत्रोंमें सारा पाश्चात्य चिंतन सिमटा हुआहै। इस अध्यायके उद्धरण एवं संदर्भग्रन्थ सूचित करतेहैं कि लेखक यथा-संभव मूलस्रोतोंसे गुजरकर मूल चेतनाको पकड़ना चाहता है और उसे आत्मसात्कर अपनी भाषामें व्यक्त करनेका प्रयत्न करताहै। सौंदर्यानुभूतिकी प्रक्रियाके लिए जिन पाश्चात्य अवधारणाओंका लेखकने उल्लेख कियाहै, उसके पीछे वहांकी दार्शनिक चिंताधाराभी है। इन बातोंको ठीक-ठीक हृदयंगम करनेके लिए जिस दार्शनिक पीठिका से जुड़ना आवश्यक है—जिन ज्ञान-विज्ञानकी शाखाओंसे जुड़ना आवश्यक है—वह समय-साध्य एवं श्रमसाध्य है।

इतना तो स्पष्ट है कि रचनाकी चरितार्थता 'संवाद' में है और 'संवाद'में आड़े आतीहै व्यक्ति संकीर्णता या संकीर्ण अहम्, अतः पौरस्त्य और पाश्चात्य—उभयदेशीय चिंतनमें इससे मुक्ति पानेके लिए विभिन्न कोणोंसे प्रयास किया गयाहै और उन्हीं कोणोंसे 'संवाद' की व्याख्या की गयीहै। निश्चयही एक बिन्दुको देखनेसे इस तुलनात्मक प्रयासमें नये आयाम उघड़तेहैं—नये क्षितिज खुलते हैं। चतुर्थ अध्याय तुलनात्मक विवेचनमें ही तत्पर है।

इस तुलनात्मक विवेचनके अनंतर लेखकका अपना निष्कर्ष है और वह यह कि संस्कृत आचार्य द्वारा सौंदर्यानुभूतिकी प्रक्रियाके लिए प्रतिपादित सिद्धांत 'साधारणीकरण' में पश्चिमकी इन सभी अवधारणाओंका समावेश होजाताहै और ये सब मिलकरभी 'साधारणीकरण' सिद्धांतकी व्यवस्था सांगोपांगता, परिपक्वता और उसके आंतरिक सामरस्यकी प्राप्ति नहीं कर पातीं (पृ. १६१)।

लेखक इस तथ्यसे अवगत है कि पाश्चात्य चिंतनमें ये सारे विचार ललित कलामात्रके आस्वाद पक्षसे जुड़े हुएहैं, जबकि साधारणीकरण केवल रसास्वादकी प्रक्रिया है—फलतः काव्य और नाट्यसे ही जुड़ा हुआहै। यहां काव्यको कलाके अंतर्गत रखाभी नहीं गयाहै—फिरभी अहंके विगलनपर जो दोनोंने जोर दियाहै और विगलन-पूर्वक आस्वाद या सुखद प्रभाव-ग्रहणकी बात कीहै—उस बिंदुने उभयदेशी आस्वादोपयोगी प्रक्रियाका तुलनार्थ समीप ला दियाहै। अन्ततः उपसंहारमें लेखकके मनमें यह प्रश्न शेष रहही जाताहै कि क्या बातहै कि उभय-देशीय चिंतक दार्शनिकही हैं और दर्शनकी भूमिकापर, विज्ञानसमम्मत चिंतनकी भूमिकापर विचार करतेहैं—फिरभी भारतीय पलड़ा बड़ा पड़ जाताहै ? अवश्य कहीं-न-कहीं कोई कारण है। वस्तुतः यह अंतर 'फिलासफी' और 'दर्शन' का है। 'फिलासफी' विद्यानुराग मात्र है—जो परिवेष्टित गंतव्यका अंग नहीं है, जबकि 'दर्शन' अन्य निरपेक्ष 'दर्शन'है—स्वयम् प्रकाशहै आत्मपर्याप्त है। वह दर्शन 'दर्शन' हैही नहीं, जो अपने होनेमें अपनेसे भिन्नकी अपेक्षा करे। भारतका यह 'दर्शन' पश्चिमकी 'फिलासफी' से उसे विशिष्ट बनाताहै।

आजकल बातको समझनेसे अधिक लोग कुछ 'नया' कहना चाहतेहैं—क्योंकि बिना कुछ 'नया' कहे व्यक्ति चिंतक और विचारककी कोटिमें आताही नहीं। और यह भूख बातको—सत्यको समझनेमें बाधा डालतीहै। लेखकने इस सत्यग्रासी भूखको दबाकर सहस्राब्दोंके चिंतनको पचाने और संप्रेषित करनेमें ही अथक श्रम कियाहै—अतः उसे साधुवाद देता हूं। □

हिन्दी उपन्यास : उत्तरशतीकी उपलब्धियां[1]

लेखक : डॉ. विवेकी राय

समीक्षक : कन्हैयालाल ओझा.

किसी उपन्यासकार द्वारा अन्यके उपन्यासोंकी समीक्षा एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है, जिसके लाभभी हैं और अलाभभी। लाभ तो यह कि सृजनकी समस्याओंसे परिचय के कारण उसकी समीक्षा प्रामाणिक होसकतीहै। अलाभ यह कि उसके शिल्पगत या तथ्यगत कुछ पूर्वाग्रह या प्रतिबद्धताएँ उसके विवेचनको प्रभावित कर सकतीहैं। समीक्ष्य-कृतिके लेखक एक कृतविद्य-उपन्यासकार हैं और इसमें इस उत्तर शतीकी उपलब्धि-स्वरूप उनके द्वारा चुने हुए बाईस उपन्यासोंकी उनकी लिखी समीक्षाएँ संगृहीत हैं। एक अलाभ यहभी हुआहै कि इस सूचीमें उनकी कोई कृति परिगणित नहीं हुईहै। उनकी कृति 'लोकऋण' और 'सोनामाटी' काफी चर्चित हुईहैं। 'दो शब्द' की अपनी भूमिकामें वे लिखतेहैं 'कुछ मूल्यवान् कृतियाँ ग्रन्थकी सीमाके कारण छूट गयीहैं। भविष्यमें मेरी चयन-दृष्टिकी सीमाको छूती ऐसी कृतियोंको कभी इसप्रकार प्रस्तुतकर मुझे सन्तोष होगा।' पता नहीं, लेखकके मनमें ऐसी कौनसी रचनाएँ हैं, किन्तु चूंकि वे ग्रन्थकी सीमाके कारण छूटी हैं, अतः यह तो स्पष्ट है कि उपलब्धिकी दृष्टिसे छूटी हुई कृतियां प्रस्तुत कृतियोंसे श्रेष्ठ नहीं होसकतीं।

समीक्ष्य कृतिमें केवल समीक्षाएं ही संकलित हैं, चयनके लिए लेखककी कसौटियाँ, उपन्यास विधाकी प्रकृति, शिल्प, कथ्य, प्रयोजन या समीक्षाके सामान्य प्रतिमान आदि पर लेखकीय वक्तव्य पुस्तकमें नहीं है। प्रारम्भमें 'दो शब्द'में अवश्य लेखकने अपनी चयन-दृष्टिके लिए 'अनुत्तर योगी'के सन्दर्भमें कथित भारतीय-उपन्यासको लक्ष्य मानाहै, यद्यपि अनुत्तर योगीकी समीक्षामें भी उन्होंने भारतीय उपन्याससे अपने अभिप्रायपर प्रकाश नहीं डालाहै। उस समीक्षाका शीर्षक है 'भारतीय उपन्यास-जगत्में एक अभिनव प्रयोग।' बल यहांपर 'अभिनव प्रयोग' पर है। समीक्षामें केवल पृष्ठ १०९ पर उल्लेख है 'ऐसा कथारस जो विशुद्ध भारतीय उपन्यासकी सीमा बनाताहै, गांधीवाद और मार्क्सवादके मिले-जुले मूल्योंका प्रतिष्ठित काव्य है और राजभोग और लोकहितके द्वन्द्व के बीच उभरती भारतीय मनकी अपनी अस्मिताकी पहचान बनाताहै।' ध्यातव्य है 'सीमा बनाताहै', तथा परस्पर विरोधी 'गांधीवाद और मार्क्सवादके मिले जुले मूल्योंका प्रतिष्ठित काव्य है।' इससे भारतीय उपन्यास की क्या पहचान उभर सकतीहै, पाठक यह स्वयम् सोचें। विभिन्न समीक्षाओंसे अवश्य लेखकके विचार जाने जा सकतेहैं किन्तु समीक्षाएँ व्याख्यात्मक अधिक हैं विवेचनात्मक कम, जिनसे सर्व-सामान्य कसौटियां नहीं निर्धारित कीजा सकतीं।

मोटे रूपमें समीक्षित कृतियोंको चार श्रेणियों— सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आँचलिकमें बांटा जा सकताहैं। यों, आंचलिक कृतियोंका परिवेशही आँच-लिक है, वरंच वे हैं राजनीतिकही, आधुनिक-राजनीतिकी विसंगतियोंका कच्चा-चिठ्ठा। समीक्षाओंका केन्द्र-बिन्दुभी आधुनिकता-बोधका अन्वेषण है, जिसका उपजीव्य है यथार्थ-वाद! 'दो शब्द'में लेखक कहताहै 'सन् ५० के बाद' यथार्थकी सम्पूर्णतावाले महान उपन्यासोंकी जो शुरूआत करती परिकथासे हुई, वह अभी विविध स्तरपर और अधिक संश्लिष्ट ढंगसे चल रहीहै। समीक्षाओंकी शुरू-आतभी इसी उपन्यासकी समीक्षासे की गयीहै। सांस्कृतिक उपन्यासोंकी समीक्षा इस समीक्षाके बादमें है। लेखकका प्रयत्न इन सांस्कृतिक उपन्यासोंमें भी आधुनिकता बोध को ही खोजनेका अधिक है। 'युद्ध'की रामकथा तो अवश्य

१. प्रकाशक : राजीव प्रकाशन, १८९-ए/१, अलोपी बाग कालोनी, इलाहाबाद-६। पृष्ठ : २४३; डिमा. ८३; मूल्य : ५०.०० रु.।

ही आधुनिक-वातावरणकी गढ़ी गयीहै । 'अनुत्तर योगी' का ढाई हजार वर्ष पूर्वका तथा अन्य दो उपन्यास 'पुनर्नवा' तथा 'एकदा नैमिषारण्ये' का कथा-काल मध्ययुगका है । किन्तु यदि इतिहास अपनेको दुहराता है, जैसाकि लेखक का मत है तो उस कालकी समस्याएं आधुनिक-काल जैसीही होंगी, और उनका निर्वचन आजकी प्रासंगिकताके अनुरूप कियाही जा सकताहै, जबकि लेखक इसी युगमें जी रहा है और लिख रहाहै । लेकिन बात इतनी सहज नहीं है। आधुनिकता-बोधको प्रायःही पाश्चात्य-संस्कृतिकी उपज माना जाताहै । भारतीय संस्कृति आधुनिकताकी अपेक्षा शाश्वततापर अधिक बल देतीहै । पाश्चात्य संस्कृतिमें परम्परा, धर्म और अध्यात्मको निश्चयही दूर रखा जाताहै जबकि भारतीय साहित्यकी निजताकी पहचान येही तत्त्व माने जासकतेहैं। समीक्षित तीन उपन्यासोंमें यह बात स्वयंसिद्ध है और इस दृष्टिसे अवश्य वे भारतीय उपन्यास हैं ।

'युद्ध' में रामायणकी रामकथा तो सम्पूर्णतः, 'अवतार-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व, ईश्वरत्व, चमत्कार और अति-मानवीयता'को हटा देकर 'एक सामान्य कुतूहलवर्धक युगीन आग्रह' (पृ. ११३) से सम्पृक्त हैही, किन्तु ढाई हजार वर्ष पूर्वकी 'अनुत्तर योगी' की महावीर गाथा तो, 'गर्भाधान, इन्द्र-इन्द्राणी, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा और देवी-देवता के प्रसंग, अलौकिक तत्त्वोंका समावेश और अतिशय प्रसंग कल्पना' (पृ. १०१) 'आकाशवाणी, देववाणी, अतिमानसी चमत्कार (पृ. १०७) आदि लोकोत्तर तत्त्वोंसे ओतप्रोत होनेपर भी लेखकके अनुसार 'महावीर गाथा तत्कालीन मृत रूढ़िवाद (थीसिस) के विरुद्ध एक प्रचंड प्रतिवाद (एन्टी-थीसिस) के साथ नये सम्वाद (सिंथेसिस) के प्रस्तोता' और दूधमें चीनीकी भांति युगीन प्रगतिका यथार्थ स्वर है । 'पुनर्नवा' की समीक्षामें अवश्य लेखकने आधुनिकताको छुट्टी देदीहै ।'पूरे रहस्य-रोमांच तथा मध्यकालीन सिद्धि-साधनाकी अलौकिकताओंसे भरा हुआ' यह उपन्यास इतिहास, राजनीति, काव्य, साहित्यके साथ शैली शिल्पमें सनातन भारतीय संस्कृतिके इस स्वरूपकी प्रतिष्ठा' हिन्दीका एक श्रेष्ठ उपन्यास बन गयाहै । 'एकदा नैमिषारण्ये' में पात्रोंकी अतिमानवीयताको उघाड़कर मानव स्तर पर ऐतिहासिक पुरुषके रूपमें उनका चित्रण इस कथाकृति की विशेषताहै । (पृ. ३०) और 'आदिसे अन्ततक धार्मिक परिवेशमें आवृत उपन्यास प्रभावकी दृष्टिसे भरपूर प्रगतिशील सिद्ध होताहै । (पृ. ३७) 'भारतीय जनजीवन जिस रूपमें सन् ५० के बाद बिखर-निखर रहाहै' क्या उस रूप की सम्यक् प्रतीति ये उपन्यास देपातेहैं ? यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाताहै ।

शेष उपन्यास अवश्य 'परती परिकथा' की परम्परासे शुरू हुई शृंखलामें परिगणित होतेहैं । इन कृतियोंका वामपन्थी तेवरभी पूर्वोक्त सांस्कृतिक उपन्यासोंसे इन्हें पृथक् करताहै । यानि इस वाम तेवरको भारतीय न कहा जाये तो इन उपन्यासोंको शायद भारतीय उपन्यास कह पाना कठिन होगा । इन कृतियोंको नागर-परिवेश और आंचलिक परिवेशके विभेदक दृष्टिकोणसे भी पहचाना जा सकताहै । राजनीतिक विसंगतियां तो आधुनिकता-बोध वाले सभी उपन्यासोंका प्राण स्वर है । आंचलिक क्षेत्रमें राजनीतिने जिस परम्परागत पारस्परिक सामरस्यका उच्छेद कियाहै, उसकी व्यथा-कथा इनमें विशेष भावसे मुखर हुईहै । 'तमस' यद्यपि धर्मके नामपर देशके विभाजनसे सम्बन्धित है, किन्तु वह धर्मान्ध और साम्प्रदायिक राजनीतिका शिकार है । राजनीतिक मूल्योंके विवेचनमें लेखकका वामपन्थी रुझान प्रमुख है, यद्यपि इन मूल्योंकी पहचान और विश्लेषणका गम्भीर प्रयत्न समीक्षाओंमें नहीं दिखायी देता । 'अनित्य' में कांग्रेस द्वारा चलाये गये स्वाधीनता-संग्रामकी न केवल आलोचना हुईहै, बल्कि उसकी उपलब्धियोंको शतप्रतिशत नकारा गयाहै ।' इस स्थापनाका लेखकसे सम्यक् विवेचन अपेक्षित था । इस कृतिमें गांधीवादियोंको शुरूसे ही नपुंसक, स्वार्थी, मौकापरस्त, गलत आदर्शोंको जीनेवाले चरित्रहीन और सुविधावादी (पृ. २२६) बताया गयाहै । इस टिप्पणीके अतिरिक्त लेखकने किसी विवेचनकी आवश्यकता नहीं समझी । 'मेरा नाम तेरा नाम' के बारेमें लेखकका मन्तव्य है कि इसमें 'नक्सलवादी खूनी क्रान्ति सेक्स-क्रान्तिमें दब गयी है ।' (पृ. २३२) नगर-बोधके उपन्यासके बारेमें भी लेखककी इसी तरहकी परिचयात्मक उक्तियां हैं । 'लाल पीली जमीन' में कथाकारने 'युवा छात्रोंके पूरे समुदायको बेनकाब कियाहै ।'—बेनकाब, लेकिन केवल उनके अन्धेरे पक्षको, जहां नंगईका क्षेत्र राजनीतिसे सर्वदा दूर हटकर समाज-संकेन्द्रित है और उसमें अपराध और सेक्समें भरपूर बल सेक्सपर ही पड़ गयाहै ।' (पृ. २००) यदि यही पूरे युवा छात्र समुदायका चित्र है तो क्या कृतिकी प्रामाणिकतापर सन्देह तथा उपलब्धिके रूपमें लेखककी चयन-दृष्टिपर अंगुली नहीं उठायी जासकती ? 'वह पथ बन्धु था' और 'गोबर गणेश' के पात्रोंके संस्कार परम्परावादी

हैं, यद्यपि 'गोबर गणेश' में विनायक और शान्तमूके प्रेम-व्यापारको आधुनिकताका पुट दिया गयाहै ।

जैसाकि ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट होगा, लेखककी समीक्षाएं परिचयात्मक या व्यवहारात्मक अधिक हैं, विवेचनात्मक कम । इससे लेखककी कोई स्पष्ट कसौटी या समीक्षाके प्रतिमान व्यंजित नहीं हुएहैं । यदि वह कहीं एक प्रवृत्तिकी प्रशंसा कर जाताहै तो उसी प्रवृत्तिकी अन्यत्र निन्दा । समीक्षागत यह अन्तर्विरोध कई स्थलोंपर देखा जा सकताहै । ऐसा प्रतीत होताहै कि किसी कृतिको पढ़कर लेखने एक सामान्य धारणा बना डाली और फिर उसके औचित्यके लिए उसने प्रसंग खोज लिये । यह संभव है कि लेखकको भिन्न-भिन्न समयोंमें भिन्न-भिन्न कृतियां पढ़नेकी या समीक्षाके लिए मिली हों, और उसने जब-तब उनकी समीक्षाएं लिखीहों, और अब एक पुस्तकाकार प्रकाशित करनेके अवसरपर उसने उसमें आवश्यक काट-छांट कर लीहो । प्रस्तुत समीक्षकने ऐसी कुछ समीक्षाएं यत्र-तत्र पढ़ीभी हैं । इससे एक और प्रश्न सहजही उभरता है : उपलब्धियोंकी इस श्रेणीसे ऐसी कृतियां न छूट गयीहों जो लेखककी दृष्टिमें किसी कारणसे आने से वंचित रह गयीहों ?

सांस्कृतिक विश्लेषणमें लेखककी दृष्टि ऐतिहासिक और धार्मिक घटना-प्रसंगों तथा साहित्य-शास्त्रके परम्परागत प्रतिमानोंके परिपालनकी ओर अधिक रहीहै । राजनीतिक घटना-प्रकरणोंमें उसने स्वातंत्र्योत्तर विसंगतियों की ओर अधिक ध्यान दियाहै, चेतनागत उपलब्धियोंकी की ओर नहीं । विसंगतियोंके कारणोंपर भी उसकी सतही दृष्टिही गयीहै । शायद यह समीक्षित कृतियोंकी सीमाके कारणभी हो । सामाजिक क्षेत्रमें उसने वर्जनाहीन उन्मुक्त प्रेमकी वकालत करते हुए विवाह-संस्थाकी मर्यादाओंकी तीव्र आलोचना कीहै, और मुख्यतः इस स्थापनामें ही वह स्त्रीसमाजका पक्षधर बनाहै । उनके व्यक्तिनिष्ठ अन्य आयामोंकी खोज और विश्लेषणपर उसने बल नहीं दिया, यद्यपि 'मेरी तेरी उसकी बात' में उषाका चरित्र उसे पर्याप्त अवसर दे रहाथा । यहभी किंचित् आश्चर्यजनक लगताहै कि बीसवीं शतीके उत्तरकालकी कृतियोंकी समीक्षा में लेखक द्वारा मनोवैज्ञानिक-तत्त्वोंपर विशेष और आवश्यक ध्यान नहीं दिया गया ! शायद यह उसके जनवादी आग्रहके कारण हो । इस आग्रहसे यह स्वाभाविक है कि लेखक ग्रामांचलोंके सन्त्रासको अधिक उत्कटतासे अनुभव कर व्यक्त कर सकाहै और अपनी समीक्षाओंमें उसे समुचित स्थान दे सकाहै । आंचलिक उपन्यासोंकी समीक्षाओंको एक स्थानपर देखना एक सुखद अनुभव है । और इसी प्रसंगमें लेखककी विशिष्ट कृतियां 'लोकऋण' और 'सोना-माटी' की अनुपस्थिति तथा नागार्जुन जैसे कथाकारके उल्लेखका अभावभी खटकताहै । लेखक यदि हिन्दीके आंचलिक उपन्यासोंपर एक विवेचनात्मक पुस्तक प्रस्तुत करे तो वह अवश्य प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी ।

प्रस्तुत समीक्षा-संग्रहमें लेखककी समीक्षा-दृष्टिका एक प्रमुख लक्ष्य समीक्षित कृतियोंकी भाषाभी रहाहै । लगभग प्रत्येक कृतिके भाषा पक्षपर उसने अत्यन्त सजग होकर विचार कियाहैं । भाषा विषयक लेखककी इस चेतनाके बावजूद यह कष्टकर लगताहै कि उसकी समीक्षाओंकी भाषा सपाट, ढीलीढाली और कहीं-कहीं अस्पष्ट भी है । मुद्रणकी अशुद्धियोंके लिए अवश्य लेखक जिम्मेदार नहीं होसकता । पृष्ठ २०० पर 'लालपीली जमीन' के लेखकका नाम गोविन्दसिंह छपाहै । पृष्ठ २२८ पर गांधी-इर्विन समझौतेके सन्दर्भमें कहा गयाहै, 'न ही क्रांतिकारियोंको जेलसे छोड़नेके लिए पहल कीगयी ।' होना चाहिये था 'जेलसे छुड़ानेके लिए' । वर्तमान बीसवीं सदी को पृ. ४० और १२८ पर उन्नीसवीं शताब्दी कहा गया है । पृष्ठ २८ पर वाक्य है 'इससे राष्ट्रीय एकताको धक्का लगना अवश्यम्भावी प्रतीत होताहै ।' यदि वह 'अवश्यम्भावी' है तो उसके 'प्रतीत होने' का प्रश्नही नहीं उठता । दोनोंमें से कोई एक शब्द होना चाहियेथा, यद्यपि दोनोंके अर्थकी व्यंजना पृथक् है । यह बात नहीं कि लेखकका भाषा-सामर्थ्य कुछ कम हो । पृ. ७७ पर 'अपने लोग' की समीक्षाका पहला अनुच्छेद उसकी शक्तिका प्रमाण देता है । किन्तु अन्यत्र बहुधा वह टिप्पणीकार (कमेंटेटर) ही अधिक रहाहै । समीक्षाओंका भिन्न-भिन्न समयमें लिखा जानाभी इसका कारण हो सकताहै ।

एक उपन्यास, 'सर्वनाम', की भाषाकी लेखकने ऐसी उत्कट भर्त्सना कीहै कि आश्चर्य होताहै उसे उपलब्धियों के इस समारोहमें कैसे प्रवेश दे दिया गया ? लेखकने लिखाहै, भाषाई अराजकता-अव्यवस्थाकी दृष्टिसे यह हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ (या कि सर्वनिकृष्ट ?) कृति है ।', 'सर्वनाममें छः प्रकारका भाषा-प्रयोग है ।' 'हिन्दी भाषा के दारिद्र्य या दुर्भाग्यका ऐसा चरमोत्कर्ष सर्वनाममें उभरा है ।' आदि मन्तव्योंसे समीक्षाका दो-तिहाईसे अधिक भाग भरकर लेखकने निष्कर्ष रूपमें लिखाहै 'कुल मिलाकर

'सर्वनाम' विफल हुआहै और भटक गयाहै और उसकी विफलताका एकमात्र कारण यह है कि उसके पास उसकी अपनी भाषा नहीं है।' इस फतवेके बाद कृतिके पक्षमें कहनेको रहही क्या जाताहै ? तो क्या सचमुच सर्वनाम (पात्र) की विफलता एकमात्र कारण उसके पास अपनी भाषाका न होनाहै ? समीक्षकने जहाँ छः प्रकारकी भाषा कह गिनायीहै, अथवा 'मुहुर्मुहु' शब्दके बहुलावर्तनपर ध्यान दियाहै, वहाँ यदि वह सर्वनाम द्वारा अपने सम्भाषणमें अंग्रेजी वाक्योंके प्रयोगकी संख्याभी गिना देता तो पाठकोंको लेखकके इस विचारका प्रमाणभी मिल जाता। सर्वनामके हिन्दीके आग्रहका जबकि लेखकने स्वयं अपनी समीक्षामें स्वीकार कियाहै, तब उसकी विफलताको उसके द्वारा अगृहीत भाषाके मत्थे मढ़ना लेखककी ज्यादतीही हो सकतीहै। हाँ, यदि वह 'सर्वनाम' उपन्यासकी विफलताका कारण हुईहो तो बात दूसरी है। किन्तु इस उपवादकी परीक्षा करना शायद अप्रासंगिक नहीं होगा।

हिन्दी भाषाके इस उपन्यासमें पात्रोंके सम्भाषणकी स्वाभाविकताके आग्रहसे अंग्रेजी और बांग्ला भाषाका भी प्रयोग हुआहै। कथावस्तुका मुख्य स्थान कलकत्ता महानगर तथा कथाका क्षेत्र औद्योगिक और व्यावसायिक है। उच्च-पदस्थ सभी अधिकारी पर्याप्त शिक्षित, अपने-अपने व्यवसाय (ट्रेड) में प्रशिक्षित और अभिजात-वर्गके हैं। कर्मचारी-वर्गभी सामान्यतः शिक्षित मध्यवित्त परिवारके स्थानीय बंगाली हैं। मजदूर-वर्ग और चतुर्थ श्रेणीकी शिक्षा-दीक्षा सामान्य और प्रान्तीयता मिश्रित है। इन तीनों वर्गोंके व्यवहारकी भाषामें भेद होना स्वाभाविक है। उपन्यास-लेखक, कम-से-कम सम्वादके क्षेत्रमें तो, भाषाके उद्धार और परिष्कारका दायित्व नहीं लेता, सम्वादोंके माध्यमसे ही उसे पात्रोंके व्यक्तित्वको स्थापित करना होताहै। यदि ऐसा न होता तो हिन्दीके उपन्यासों में आंचलिक-भाषाका भी कोई स्थान न होता! बंगालमें व्यवहारकी भाषा, सामाजिक-स्थितिके अनुपातमें, शुद्ध बंगला, बंगला मिश्रित हिन्दी, या अंग्रेजी है। उद्योग और व्यवसायके तन्त्र-प्रधान (टैक्निकल) क्षेत्रमें, उच्च गणित जैसे विषयमें अथवा प्रतिष्ठानिक प्रबन्ध-व्यवस्था में हिन्दीकी गढ़ी हुई शब्दावलीका अभी प्रचलन नहीं हुआहै, इस स्थितिको कैसे अस्वीकार किया जा सकता है? वर्तमान भारतका अन्य कई दुर्भाग्योंमें भाषिक दुर्भाग्यभी एक साम्प्रतिक सचाई है। यदि 'सर्वनाम'के माध्यमसे चाहे कथाकारके अनजाने, पाठकों और समीक्षकोंकी इस ओर दृष्टि गयीहै तो वह शुभही है। ऐसा प्रतीत होताहै कि लेखकका विद्वेष अंग्रेजी भाषा-विशेषसे है, जो अहेतुक है। विद्वेष होना चाहिये अंग्रेजी लादनेवालोंसे। भाषा तो अपने-आपमें सर्वथा निर्दोषही होती है।

और क्या सचमुच सर्वनामकी विफलताका एकमात्र कारण यह है कि उसके पास उसकी अपनी भाषा नहीं है? समाजमें व्याप्त भ्रष्टाचार, पूंजीपतियों द्वारा शोषण,आभिजात्यका दम्भ,वर्ग-चेतना, तथाकथित नेताओं की स्वार्थलिप्सा, सत्ताके दुरुपयोग या राजनीति और अर्थनीतिके भ्रष्ट दाँव-पेचोंकी सर्वनामकी विफलतामें कोई क्या भूमिकाही नहीं है--यदि लेखकका प्रतिपादित निर्णयही सही है तो, सचमुच यह उपन्यास एक असफल कृति है और आश्चर्य यही होताहै कि लेखकने इस कृतिको किस विवशतासे उपलब्धि मान लिया ?— 'सर्वनाम'के लेखकको इस समीक्षकसे और इस कृतिके अन्य प्रशंसकोंसे भी एक शिकायत है कि किसीने इसकी अन्तरात्माको देखनेका प्रयास नहीं किया। इस कृतिमें व्यक्त उत्तर शतीकी जितनी विसंगतियोंके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रतिष्ठानिक, मनोवैज्ञानिक और भाषिक विसंगतियोंके—प्रस्तुतीकरणकी चर्चा की गयीहै वे अपने स्थानपर सही हैं,किन्तु ये सब अराजक-विसंगतियां तो परिस्थितियोंका परिवेश मात्र हैं। कथाकारने इन परिस्थितियोंके बीच आजकी युवा पीढ़ीका सन्त्रास,मोहभंग और पथभंग और इनके बावजूद उसकी सहज ऊर्जस्वित युयुत्साको केन्द्रमें रखना चाहाहै। 'सर्वनाम' स्वयं एक प्रतीक है, अपनी सारी निजता और संज्ञाको नकारकर अपनी समस्त पीढ़ीके अभिधानका भार स्वीकार करने वालेका नाम है। वह शक्ति, उत्साह, ऊर्जा और शिक्षा आदिसे भी उफन रहाहै। अपनी कतिपय भौतिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओंके बावजूद, वह आग्रहहीन होकर कुछ उदग्र कर गुजरनेको व्यग्र है किन्तु उसकी ट्रेजिडी यह है कि उसे उचित और आवश्यक नेतृत्व नहीं मिलता। प्रवाह-पतित और दिशाहारा यह सब प्रकारके सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, प्रतिष्ठानिक व्यवस्थानिक व्यूहोंसे संघर्ष करता हुआ उचित मार्गकी खोजमें प्रवृत्त है। सब ओरसे पराजित और निराश होकर भी उसकी जिजीविषा और युयुत्सा खंडित नहीं होती, वह चिताके धूम्रायित प्रकाशमें आगेके पथकी खोजके लिए भविष्यकी गुहामें खो जाताहै। कथाकारने प्रारम्भमें इस कृतिका नाम देना चाहाथा 'कुहासा'—ऐसा कुहासा जिसमें युवा पीढ़ी उचित मार्गदर्शनके लिए भटक रहीहै। मुझे खेदहै कि 'सर्वनाम'को लेकर मुझे इतने विस्तारसे लिखना पड़ा। मुझे भयहै कि कहीं लेखक प्रस्तुत समीक्षा की 'सर्वनाम'पर लिखी उसकी समीक्षाकी प्रतिक्रिया न

समझ ले ! डॉ. रायके प्रति मेरे मनमें अत्यन्त सम्मान और उनकी अधीति, विद्वत्ता और सर्जनात्मकताके प्रति गहरी श्रद्धा है। मेरे लिए यह एक अवसर था। सृजनकी प्रक्रियामें मैं अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकूं। यदि इसे वे प्रतिक्रिया स्वरूप मेरा दुराग्रह, अत्याग्रह, या पूर्वाग्रह भी समझें तो यह मेरा बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा। हाँ, अपनी अज्ञता स्वीकार करनेमें मुझे तनिकभी संकोच नहीं है। अस्तु।

इन सभी समीक्षाओंको पढ़कर हिन्दी उपन्यासकी उत्तर शतीकी सामान्य उपलब्धियोंपर क्या प्रकाश पड़ताहै यह विचारणीय है। भारतीय उपन्यास तो इन्हें कहनाही होगा क्योंकि इन सभीमें भारतके वर्तमानकी तस्वीर प्रस्तुत हुईहै। किन्तु भारतीयताकी यह तस्वीर परिवेश-गत रंग और रेखाओंमें ही चित्रितहै, आन्तरिक भावनाओंमें शायद नहीं। इसे आधुनिक भारतकी संस्कृति भी कहा जा सकताहै, किन्तु इसे उसकी मूल प्रकृति कहना शायद सम्भव नहीं होगा। यह बाह्य परिवेश युद्धोत्तर और स्वातन्त्र्योत्तर कालमें इतनी त्वरा और चकाचौंधके भीतर रूपायित हुआहै कि साहित्यकारोंकी आँखें चौंधिया गयी लगतीहैं। वे परिवेशको भेदकर भारतकी अन्तरात्मामें प्रवेशका शायद अवसरही नहीं पातीं। 'पुनर्नवा', 'एकदा नैमिषारण्ये' या 'अनुत्तर योगी' में इस पहचानकी स्पृहा है, किन्तु वे आधुनिकता-बोधके आग्रहसे प्रच्छन्न होगयीहैं। 'युद्ध' का तो वातावरण ही अप्रत्यायक होगया हैं। 'गोबर गणेश' के जगनसे भारतीय आत्माके अनुसन्धानकी कुछ आशा कीजा सकतीथी, किन्तु वहभी उनके व्यक्तित्वके खोखलेपनके कारण अधूरीही रही। रह गयी शेष सामाजिक राजनीतिक कृतियां, जो अपने वाम-पन्थके प्रति उन्मुख हैं। दुर्भाग्यवश वाम-पन्थको भारतीयताका प्रतीक मानना कठिन लगताहैं। आधुनिक राजनीतिमें शब्दोंके अर्थ बदल गयेहैं और बराबर बदलते जा रहेहैं। अर्थका अब कोई अर्थ ही नहीं रहा, निरे शब्द अपने खोखलेपनसे और अधिक मुखर होकर बज रहेहैं। 'मेरा नाम तेरा नाम : वियतनाम' इस नारेमें हम चाहें तो अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूतिका दम भर सकतेहैं, किन्तु वह केवल अभिव्यक्ति-परकही हैं, अनुभूतिपरक नहीं, भारतीय-साहित्य तो सहानुभूतिही नहीं, समानुभूति और उससेभी आगे स्वानुभूतिको ही प्रमाण मानताहैं। उसकी गति तो औरभी आगे पराभूतिके क्षेत्रतक पहुंचकर आर्ष-साहित्यका गौरव प्राप्त करतीहैं।

सहजही एक प्रश्न उभरता है : क्या इन समीक्षित और उपलब्धियोंके रूपमें स्वीकृत कृतियोंमें उभरा हुआ समाजही सच्चा प्रतिनिधि भारतीय-समाज है? राजनीति अवश्य आज सुदूर ग्रामांचलोंके जन-मानसतक छा गयीहै किन्तु जिस राजनीतिका हम नंगा नाच देख रहेहैं वह राजनीति है या दुर्नीति ? इन खोखले नारोंकी नींवपर समाजका ढाँचा कबतक खड़ा रह सकेगा ? याकि सब कुछ प्राचीनको धरासात्कर नवीनके लिए मार्ग छोड़ने को केवल अणु-बमकी ही आशा रह गयीहै ? इन प्रश्नों का उत्तर आजकी राजनीति, अर्थनीति, या रूढ़ धर्मनीति भी नहीं दे सकती। केवल साहित्यकार अपने चिन्तनकी गरिमा और अपनी प्रज्ञाके बलपर ही दे सकताहै। जीवन के मूल्य-बोधके संकटका नामही आजकी हमारी सभ्यता है। यह संकट इसलिए भी है कि हम कृषि-युगसे पलट कर उद्योग-युगमें प्रवेश कर रहेहैं। आर्थिक इकाइयाँ रूपान्तरित होरही हैं। पारस्परिक सम्बन्धोंके रूपाकार बदल रहेहैं, ग्रामांचल नगरांचलमें परिवर्तित हो रहेहैं, अन्तर्राष्ट्रीय सहकार और संचार-माध्यमोंका विस्तार सहानुभूतिके केन्द्रोंको झकझोर रहाहै। भारतीय मनीषा पदार्थके शल्कपर न रुककर सदा उसके गहनतम आभ्यन्तरीणमध्यबिन्दु तक पहुंचनेकी रहीहै और इस दृष्टिसे उसने किसीभी तत्त्वको विजातीय या अभारतीय नहीं माना। अवश्य उसने उन तत्त्वोंका आत्मसात् कियाहै, अपनी प्रकृतिके अनुसार उन्हें नये सिरेसे गढ़कर। भारतीयताकी पहचान यहहै कि यह इन आयातित और नये परिवेशोंका भेदकर गहराईतक पहुंचे। औद्योगिक संस्कृति और गणतान्त्रिक शासन-तन्त्रके दर्शनके मूलमें पैठकर तदनुमोदित जीवन-मूल्योंका अनुसन्धान करे। यह दायित्व आजका जागरूक साहित्यकारही उठा सकता है और इसी दिशामें भारतीय-उपन्यास वैश्विक-प्रतिष्ठा अर्जित कर सकताहै। 'सर्वनामके लेखकको' महानगरके औद्योगिक और राजनीतिक वातावरण प्रस्तुत करनेके प्रसंगमें इसके लिए अवसर था, उसने चीर-फाड़भी की किन्तु वह केवल खोजभर ही थी। अब समय आगयाहै कि हिन्दीके उपन्यासोंको हिन्दीकी दृष्टिसे ही नहीं वैश्विक दृष्टिसे भी देखना-परखना चाहिये।

अन्तमें एकाध बात और। लेखक यदि समीक्षित कृतियोंके प्रकाशकोंका पता और प्रकाशन वर्षभी देदेता तो उन पाठकोंकी जिन्होंने वे पुस्तकें नहीं पढ़ीहैं और इन समीक्षाओंको पढ़कर जो उन्हें पढ़ना चाहें, तो वे आसानीसे प्राप्त कर सकें। समीक्षाएं तो मूल पुस्तककी स्थानापन्न नहीं होसकतीं। और समीक्षाओंका एक उद्देश्य यहभी है कि पाठक मूल कृतिको पढ़नेके लिए प्रेरित

हो। दूसरी चिन्तनीय बात है पुस्तकका मूल्य। प्रकाशकने शायद पहलेही मान लियाहै कि पुस्तक केवल साहित्यकारोंके लिएही है जोकि इसे खरीदकर पढ़ नहीं सकेंगे। और जबकि सरकार या संस्थाएं तथा पुस्तकालयही खरीदें तो क्यों न उसका मनमाना मूल्य रख दिया जाये—खरीदकर न पढ़नेके लिए बेचारे हिन्दीके पाठकको कोसना व्यर्थ है।□□

व्यक्ति : कृतित्व

नेताजी[1]

[सम्पूर्ण वाड्.मय : खण्ड १]

सम्पादक : शिशिरकुमार बोस
अनुवाद : प्रयागनारायण त्रिपाठी
समीक्षक : डॉ. विजय द्विवेदी

नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ताके सम्पादक श्री शिशिरकुमार बोसने ब्यूरो द्वारा जुटायी गयी विपुल सामग्री, पत्रों और चित्रोंके आधारपर नेताजी सुभाषचन्द्र बोसकी जो आत्मकथा प्रस्तुत कीहै वह अपने आपमें बहुत विद्वत्तापूर्ण और उपयोगी है। इससे नेताजीके आरम्भिक जीवन कालका अन्तरंग और आन्तरिक परिचय मिलताहै। इतनाही नहीं इससे सुभाष बोसके बारेमें प्रचलित बहुत-सी भ्रान्त धारणाओं एवं अतिरंजित तथ्योंका सन्तोषजनक निराकरण संभव होसकाहै। नेताजीके बारेमें अक्सर कहा जाताहै कि उनके जीवनको दिशा देनेमें भारतीय रहस्यवाद और बंगाली भावुकतावादका बड़ा हाथ था, और यहभी कि वे पश्चिमी परम्पराके बुद्धिवाद, कर्मठतावाद एवं धर्म-निरपेक्षतावादसे पूरी तरह प्रभावित थे। सार्वजनिक जीवनमें नेताजी सीधी स्पष्ट एवं व्यावहारिक राजनीतिके हामी थे। वे दृढ विश्वासी राजनीतिज्ञ थे। (देखिये मिहिर बोस लिखित पुस्तक 'द लास्ट हीरो')। प्रस्तुत प्रकाशन सुभाषचन्द्र बोसकी जीवनकथाको समझने के लिए जो पुष्टिपरक सामग्री प्रस्तुत करताहै, उसके मंथनसे श्री मिहिर बोसकी उक्त मान्यताएं मेल नहीं खातीं। इस सामग्रीसे इतनाही पता चलताहै कि नेताजी पश्चिमकी कतिपय विशेषताओंको मान्यता जरूर देतेथे, परन्तु उनसे प्रभावित न थे, ऐसा वही कह सकताहै जो पूरे संसारको पश्चिमकी नजरसे देखताहो। संयोगकी बात है कि श्री मिहिर बोस लन्दनमें बसे बंगाली पत्रकार है।

इस खण्डमें जो सूचनाएं दी गयीहैं, उनका सार-संकलन इस प्रकार है : विदेशी मिशनरी स्कूलोंका परिवेश भारतीय छात्रोंकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं था। इन्हें अंग्रेजी स्कूलोंके नमूनेपर चलाया जारहाथा। इनमें भारतीय स्कूलोंकी अपेक्षा अंग्रेजीकी पढ़ाईका स्तर बहुत ऊंचा था। यद्यपि वहां शिक्षा नियम और पद्धति के अनुसार दी जातीथी, तथापि वह भारतीय विद्यार्थियों की आवश्यकताओंके अनुकूल नहीं थी। बाइबिलकी पढ़ाईका महत्त्व बहुत अधिक था, इसकी पढ़ाई रोज होती थी और अवैज्ञानिक थी। पूरा पाठ्यक्रम इस ढंगसे बनाया गयाथा कि हमारी मनोवृत्ति अधिकसे अधिक अंग्रेजों जैसी होसके। (पृ. २०) भारतीय भिन्न वर्गके माने जातेथे और सहानुभूतिका आधार जातीय था। (पृ. २३)। इसलिए "मैं कहूंगा कि अब किसीभी ऐसे स्कूलमें किसी भारतीय लड़के या लड़कीको नहीं भेजना चाहिये, कि अगर कोई शिक्षा-प्रणाली भारतीय परिस्थितियों. भारतीय आवश्यकताओं और भारतीय इतिहास तथा सामाजिकताकी उपेक्षा करतीहै तो वह इतनी अवैज्ञानिक होगी कि उसे कोईभी युक्ति-संगत समर्थन नहीं दिया जासकता है। (पृ. २४)।

कहनेकी जरूरत नहीं है कि नेताजीके सम्पूर्ण वाड्.मयको लाखों रुपया व्यय करके प्रकाशित-प्रचारित करनेवाली सरकारने, ऐसा करनेके लिए प्रेरित प्रोत्साहित करनेवाली प्रधानमंत्रीने अपने लम्बे लोकतंत्री शासन-कालके दौरान नेताजीकी उक्त भावनाओंका जरा-सा ध्यान नहीं रखा। इसके विपरीत देशकी सरकारों और नेताओंने स्वयं ऐसा आचरण किया जैसे वे मैकालेके ही वंशज और उत्तराधिकारी हों और उन्हींकी ओरसे दीन-हीन भारतीयोंपर शासन करनेके लिए भेजे गयेहों।

1. प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : २५६; रायल ८२; मूल्य : २२.०० रु.।

जब आचरण करनेवाली संस्थाएं निहित स्वार्थोंके कारण स्वयं आचरण-भ्रष्ट होगयीहों, तब आदर्शोंके व्यापक प्रचार-प्रसारका क्या औचित्य हो सकताहै ? महात्मा गांधी के नाम लिखे गये नेताजीके दि. ३१-३-१९३९ के पत्र से पता चलताहै कि गांधी जी कांग्रेस पार्टीमें व्याप्त भ्रष्टाचारसे बुरी तरह परेशान थे। (इण्डिया आफिस लायब्रेरीसे हालमें ही प्राप्त किये गये दो पत्रोंके आधारपर।)

स्कूल-जीवनके परवर्ती सालोंमें नेताजीपर भारतीय योगशास्त्र, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और श्रीअरविन्द आदिका व्यापक प्रभाव पड़ा। उनमें भारत-भारती और भारतीयताके प्रति प्रेम विकसित हुआ। इसीने उन्हें मानवतावादी दृष्टि और विप्लवी जीवन दिया। इस तरह उनके व्यक्तित्वका विकास भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ समंजन-पूर्वक होता रहा, जिसके प्रति उनकी भावना बचपनसे ही सकारात्मक रही। (पृ. १० प्राक्कथन)। कालेज-जीवनमें नेताजीने अपने आध्यात्मिक कल्याण और मानवके उत्थानमें सहायक जीवन जीनेका व्रत लियाथा। इस दौरान उन्होंने अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन कियाथा, अनेक महात्माओंकी संगति प्राप्त कीथी और 'काम वासनाके क्षेत्रमें' तीव्र संघर्ष कियाथा। उनका कालेज जीवन अनेक तरहकी उत्तेजनाओंके बीच गुजरा था। इन सबका बड़ा प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत खण्डके भाग-एकमें विस्तारसे दिया गयाहै। इसी भागमें नेताजी के इंगलैंडमें अध्ययन, इण्डिया सिविल सर्विससे त्यागपत्र देने आदिका प्रभावशाली विवरण दिया गयाहै।

पुस्तकके दूसरे भागमें सुभाषचन्द्र बोस द्वारा परिवार एवं अन्य लोगोंको लिखे गये पत्र दिये गयेहैं। इन पत्रों से नेताजीके सपनों, उनकी सेवा-भावना और आदर्श-वादिताका परिचय मिलताहै। 'परिशिष्ट' (भाग-तीन) में अतिरिक्त 'पुष्टिपरक सामग्री' दी गयीहै। इसका अपना महत्त्व है।

नेताजीके सम्पूर्ण वाङ्मयको प्रकाशित करनेकी दिशामें यह प्रथम खण्ड श्री शिशिर बोसके संपादन कौशलका अच्छा परिचय देताहै। इसके भीतर खोये हुए नेताजी की पहचान करानेवाले तीन निशान—हिन्दू, हिन्दी हिन्दुस्तान स्पष्ट झलकतेहैं। इससे यहभी पता चलताहै कि राजनीतिज्ञके रूपमें नेताजी कितने व्यावहारिक और और दूरदर्शी थे। बड़े आश्चर्यकी बात है कि आजाद भारतकी सरकार नेताजीके आदर्शोंके प्रचार-प्रसारपर इतना व्यय कर रहीहै, मगर उसने नेताजीके किसीभी आदर्शको सरकारी कार्यक्रमका अंग नहीं बनाया। तब यह सारा आयोजन क्यों और किसलिए ?

प्रस्तुत पुस्तक इतनी उपयोगी है कि इसे हर भारतीय के लिए पाठ्य-पुस्तकका दर्जा दिया जा सकताहै। किन्तु इसके पहले मुद्रणकी असंख्य त्रुटियोंमें सुधार किया जाना जरूरी है। □

माताजी और श्रीअरविंद[1]

लेखक: रवीन्द्र

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय.

अध्यात्म जगत्में श्रीअरविन्द और माताजी (मीरा) ने जो साधनाकी अलख जगायीहै, भक्तोंको आलोकित कियाहै, उन्हें सत्पथपर मोड़ाहै, उसका विशद और व्यापक चित्रण इस कृतिमें हुआहै। उनतीस शीर्षकोंमें दोनोंके व्यक्तित्वके विकासकी रेखाओंका अंकन करते हुए लेखकका अभीष्ट उनके द्वारा आध्यात्मिक ज्योति जलानाहै। सामग्रीके संकलनमें अंत: और बहि: साक्ष्यका सहारा लिया गयाहै। उनके जीवनके एक-एक प्रसंग, उसकी एक-एक घटनाका लेखक बड़ी रोचकता और तन्मयतासे वर्णन करताहै, इतना कि वह भी उनके साथ तदाकार होगयाहै।

'भूमिकामें श्रीअरविंदके अवतारके पहलेही संकेत मिलनेकी सूचना है। हजारों वर्ष पहलेकी बातहै कि दक्षिणके एक योगी नागाई जापताने अपना शरीर छोड़नेसे पहले अपने एक शिष्यको बतलाया कि उत्तरसे एक योगी आनेवालाहै, वह तुम्हारा मार्ग दर्शन करेगा। वह तीन बातोंकी घोषणा (१. भगवानने जो गुण, विद्या, प्रतिभा दियेहैं, सब उनका है। परिवारके भरण-पोषणके लिए जो नितांत आवश्यक है, उसीका उपयोग करनेका अधिकार है, २. भगवानका साक्षात् दर्शन करनाही होगा, ३. स्वदेशकी मातृरूपमें कल्पना) करेगा। श्रीअरविंदने वैसी घोषणाके द्वारा अपने अवतरित होनेका संकेत कर दिया।

'माताजीका जन्म' (पृ. १८) में फ्रांसके अभिजात कुलमें जन्मी मीराकी जन्मसे ही दिव्यानुभूति इस बातकी

---

१. **प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो.बा. नं. १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१। पृष्ठ : २९२; डिमा. ७९; मूल्य : २५.०० रु.।**

प्रमाण थीं कि वे सिद्ध नारी हैं। "नन्ही मुन्नी मीरा बैठी-बैठी ध्यान किया करतीथी और ज्योति देखा करतीथी और मानतीथी कि वह पृथ्वीपर कोई विशेष कार्य करनेके लिए आयीहै।" (पृ. १६) इसके साथ है उनका एक अनुभूति-सम्पन्न लेख 'थोड़ी देर बादका रास्ता' (पृ. २१)।

इस प्रकार 'सारी दुनियांका भार,' 'प्रथम महायुद्ध और श्रीअरविंद,' 'माताजी जापानमें,' 'श्रीअरविंदकी राजनीति', 'पांडिचेरी काल', 'श्रीअरविंदाश्रम' 'माताजीने कहा,' 'माताजीका शरीर-त्याग,' 'माताजी तथा श्रीअरविंदके कुछ संदेश' आदि विविध लेखों द्वारा दोनोंके व्यक्तित्व, जीवनदर्शन एवं उपदेशपर विश्वसनीय ढंगसे प्रकाश डाला गयाहै। लेखकने कहीं ललित निबंध, कहीं कथा, कहीं नाटक आदिका सहारा लेकर कृतिको हृदय संप्रेष्य, सार्वजनीन और प्रभावक बनायाहै। ऐसी कृतिसे मानवकी अधोमुखी चेतनाका ऊर्ध्वीकरण होताहै, विराट्के प्रति आस्था जगतीहै। इन दृष्टियोंसे लेखक साधुवादका अधिकारी है। □ □

वेद: धर्म: अध्यात्म

वेदमञ्जरी[1]

[चारों वेदोंसे संकलित
३६५ वेदमन्त्रोंकी व्याख्या]

लेखक : डॉ. रामनाथ वेदालंकार
समीक्षक : जगन्नाथ वेदालंकार.

महामनीषी, विद्वत्प्रवर डॉ. रामनाथजी वेदालंकारने अपना यह अनर्घ्य ग्रन्थ श्री स्वामी दीक्षानन्दजी सरस्वतीकी प्रेरणासे आचार्य श्री अभयदेवजी विद्यालंकारकी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक विनय' की शैलीके अनुरूप रचाहै। इसमें वर्षभर दैनिक स्वाध्यायकी दृष्टिसे कुल ३६५ मन्त्र रखे गयेहैं। उनका क्रम वही रखा गयाहै जैसाकि मूल वेदोंमें है। प्रत्येक वेदके मन्त्रोंके आरम्भमें उस वेदकी १० सूक्तियां अर्थसहित दी गयीहैं। पुस्तकके आरम्भ और अन्तमें चारों वेदोंकी कुछ चुनी हुई सूक्तियां स्वाध्यायार्थ प्रस्तुत की गयीहैं। ग्रन्थके अन्तमें तीन आवश्यक परिशिष्ट दिये गयेहैं मन्त्रानुक्रमणिका, व्याख्यात मन्त्रोंके देवताओंकी सूची और मन्त्रार्थ-टिप्पणियां। देवतासूचीमें मन्त्र-संख्याका निर्देश कर दिया गयाहै जिससे पाठक उस-उस देवताके मन्त्र खोजकर देख सकताहै। इसी प्रकार मन्त्रार्थ-टिप्पणियोंके ऊपर पृष्ठ-संख्या देदी गयीहै जिससे पाठक उस-उस मन्त्रको ढूंढ़कर मन्त्रार्थ टिप्पणीमें उसके विशेष शब्दोंकी व्युत्पत्ति आदि जान सके।

इस ग्रन्थपर विद्वान् लेखकने जो प्रारम्भिक वक्तव्य लिखाहै वह अनेक दृष्टियोंसे अत्यंत उपयोगी है। जहां वह वेद-स्वाध्यायके प्रेमियोंके लिए अतीव प्रेरणाप्रदहैवहां वेदके विद्यार्थियों और उपाध्यायोंको एवं अध्यापकों के लिए अत्यन्त ज्ञानवर्द्धकभी है। उसमें वेदके बहिरंगका संक्षिप्त पर सुस्पष्ट परिचय कराया गयाहै; 'वैदिक भाषाकी अर्थ-गरिमा,' 'वेदमन्त्रोंके ऋषि', 'वेदमन्त्रोंके देवता', 'वैदिक छन्द', 'ऋषि, देवता और छन्दके ज्ञानका महत्त्व', 'वैदिक भाषाके कुछ सामान्य नियम' - इन विषयोंपर प्रचुर सामग्री सुव्यवस्थित ढंगसे दी गयीहै। 'वैदिक भाषाके कुछ सामान्य नियम' के अन्तर्गत वैदिक व्याकरणके १३ नियम पाणिनीय व्याकरण और प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थोंके प्रमाणों तथा 'वेदमञ्जरी'-गत मन्त्रोंमें

१. प्रकाशक : समर्पण शोध संस्थान, आर्यसमाज करौल-बाग, नयी दिल्ली-५। पृष्ठ : ४३६; डिमा. ८३; मूल्य : ४०.०० रु.।

आये उनके अनेकों उदाहरणों सहित स्पष्टतया समझाये गयेहैं।

ग्रन्थकारने 'वेदमञ्जरी' के स्वाध्यायकी विधिभी इसी वक्तव्यमें बतलायीहै जिससे पाठक कम समयमें वेदका अच्छा मर्मज्ञ बन सके। हमारा विश्वास है कि उस विधिसे इसका नियमित स्वाध्याय करनेवाला पाठक सहजही वेदमें सम्यक् और गम्भीर रूपसे प्रवेश करनेमें समर्थ होजायेगा।

ग्रन्थमें मन्त्रोंका अर्थ प्रधानतया आध्यात्मिक शैलीसे किया गयाहै। अनेकत्र आधिदैविक, आधिभौतिक आदि अर्थ दिखाकरभी उनकी परिणति प्रायः आध्यात्मिक अर्थमें की गयीहै, क्योंकि वेदोंका प्रधान प्रतिपाद्य आत्मा और परमात्माही है।

व्याख्याकारने बहुश्रुतताके बलपर मन्त्रोंकी बहुत गम्भीर और विशद व्याख्या कीहै। तदर्थ उन्होंने आवश्यकतानुसार शब्दके वाच्यार्थके अतिरिक्त उसके लक्ष्य, व्यंग्य और ध्वन्य अर्थोंका आश्रय लेकर उसके सभी गर्भितार्थोंको स्पष्ट कियाहै, जिससे मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ हृदयंगम होसके। मन्त्रोंमें जहां उपमा, दृष्टान्त, श्लेष, काव्यलिंग आदि अलंकारोंका प्रयोग किया गयाहै वहां अलंकारका सम्पूर्ण हार्द खोलकर समझाया गयाहै जिससे वेदमन्त्रका गूढ़ आशय फलितार्थों सहित हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष होजाये और उससे भगवानकी महान् महिमा परिस्फुटित होसके एवं मन्त्रका पूर्ण रूपसे रसास्वादन किया जासके।

इस प्रकारके गुणगणसे विभूषित यह सर्वांगसुन्दर वैदिक कृति 'वैदिक विनय' की तरह केवल आर्यसमाजके दैनिक एवं साप्ताहिक सत्संगों एवं प्रवचनोंके लिएही उपकारक नहीं है, अपितु वेदके उच्चस्तरीय अध्ययन-अध्यापनके लिए पाठ्य पुस्तक एवं सहायक ग्रन्थके रूपमें भी निर्धारित करने योग्य है। अतः यह ग्रन्थ प्रत्येक वेद-प्रेमीके घरमें पहुंचना चाहिये। आशा है इस अनुपम ग्रन्थको आर्यसमाजों और उनकी सभी संस्थाओं—विद्यालयों और पुस्तकालयों आदिमें समुचित स्थान प्राप्त होगा।

हमारे देशके राष्ट्रपति समय-समयपर वैदिक विद्वानों एवं साहित्य-स्रष्टाओंको सम्मानित और पुरस्कृत करतेहैं। प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिताभी अपनी इस अत्युत्कृष्ट नयी रचना तथा 'वेदोंकी वर्णन-शैलियां' आदि उच्च कोटिके ग्रन्थोंके लिए सम्मानित और पुरस्कृत होनेके सच्चे अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं। □

गीता एक नव्य चिन्तन

लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन

समीक्षक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित'.

भाषाविज्ञान और तुलसी साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान् डॉ. अम्बाप्रसाद सुमनकी सारस्वत प्रतिभा निरन्तर क्रियाशील रहतीहै, परिणामतः भारतीय संस्कृतिकी मूल्यवान् निधि 'श्रीमद्भगवद्गीता' के विषयमें उनके चिंतनपरक १८ लेखोंका यह संग्रह मूल्यवान प्रस्तुति है। शताब्दियोंसे गीता दार्शनिकों, समाजसेवियों और विद्वानों के द्वारा व्याख्यायित होती आरहीहै, पर अभीतक उसके अध्येता-विचारकोंकी प्यास बुझी नहीं और वे नयेसे नये चिंतनके प्रकाशमें उसके मर्मोंका भिन्न रीतियोंसे उद्घाटन करते चले आरहेहैं। उसी क्रममें डॉ. सुमनकी कृतिका भी अपना महत्त्व है।

गीताकी गहन दार्शनिकतामें जिनकी गति संभव नहीं है, जिनकी दृष्टि लोककी ओर लगी हुईहै, पर जो पूरे अपने मूल मानवीय धर्म, कर्तव्य-कर्मके प्रति निष्ठावान् है और आधुनिक संदर्भमें उपयोगी बनाकर अध्यात्म चेतनाको जगाये रखना चाहतेहैं या जो गीताको ज्ञानका माध्यम मानतेहैं, उन सबके लिए जितनी सुकरता, स्पष्टता, सुबोधता, रोचकता और ज्ञानमयतासे गीताके रहस्यको सुलभ बनाया जा सकताहै, डॉ. सुमनने इस कृतिको बनाये रखनेका प्रयत्न कियाहै, और उनके इस श्रमकी सार्थकता उसकी सफलतामें है।

डॉ. सुमनने गीताके मुख्य शब्दों और उसकी उक्तियोंको लेकर विस्तारशः जो व्याख्यान तैयार कियेहैं, उनमें एक कुशल व्याख्याता और वक्ताके गुणोंका समावेश होनेके कारण उनकी रंजकता बनी हुईहै। जीवन-व्यवहारसे लेकर काल्पनिक और पौराणिक कथाओं तथा ज्ञान-विज्ञानके अन्यान्य विषयोंका एक साथ सुन्दर समाहार इन व्याख्याओंमें हुआहैं जिसके कारण, कतिपय स्थानोंपर आवृत्तिकी विवशताके बावजूद, उनका यह ग्रन्थ एक ज्ञान-कोश बन गयाहै। श्रीमद्भगवद्गीताकी वर्तमान संदर्भमें प्रासंगिकताको सिद्ध करती हुई इस कृति

१. प्रकाशक : वासन्ती प्रकाशन, ८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ. प्र.)। पृष्ठ : १७६; मूल्य : ५०.०० रु.।

में इतिहास, दर्शन, भौतिक विज्ञान, खगोलशास्त्र, शारीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, अध्यात्म, साहित्य, समाजशास्त्र, जीवविज्ञान, संस्कृति, समाजकल्याण आदिकी बातोंका प्रसंगतः उल्लेख और विशदीकरण हुआहै, किन्तु कहींभी वह पाठकको भारी नहीं पड़ता, उसकी रुचि उत्पन्न करताहै। स्पष्ट है कि इसमें पूर्व और पश्चिमके ज्ञानका सम्मिलन हुआहै। विशेषता यह है कि डॉ. सुमन शब्दों की व्युत्पत्तिसे लेकर उनके प्रचलित और मान्य अर्थ-संदर्भोंका उपयोग करते हुए शास्त्रीयता और परम्पराका भी निर्वाह करतेहैं और नवीन प्रसंगमें नव्य अर्थकी दीप्तिभी प्रदान करतेहैं। शब्दोंके बीच सूक्ष्म अर्थभेदको वे पूरी गम्भीरतासे रेखांकित करते चलतेहैं। चौबीस पृष्ठोंका पुरोवाक् उनकी दृष्टिका सार रूपमें उन्मीलन करताहै। इसी तरह गीताके ७०० श्लोकोंके १८ अध्यायोंका सारभी इस पुस्तकके इन १८ लेखोंमें प्रस्तुत हैं। गीताको कर्म-प्रधान ग्रन्थ और गीताके कृष्णके व्यक्तित्वको विधिपरक मानते हुए डॉ. सुमनने गीताको परमार्थ सहित लोकोपयोगी व्याख्या कीहैं। चूंकि इस पुस्तकमें एकत्रही अन्यान्य धर्मोंके सार तत्त्वभी प्राप्त हैं, भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष देशमें इसकी बड़ी उपयोगिता है। साम्प्रदायिकता इसकी मर्यादा नहीं है, अतएव सभीके लिए पठनीय और आचरणीय हैं। प्रासंगिकताके सन्दर्भमें यह इसकी बड़ी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। एक दो उदाहरण देकर अलम् कर देनेकी अपेक्षा हम उचित समझतेहैं कि जिज्ञासु पाठकों से इसके समग्र अध्ययनकी अपेक्षा ही कीजाये। हमें विश्वास है कि एक बार उठा लेनेके पश्चात् पुस्तकको आद्यंत पढ़ जानेके सुखसे पाठक वंचित नही होना चाहेगा। सुननेका लाभ तो तदुपरांत हैही।

पत्र-पत्रिकाएं

नागार्जुन

[‘सम्पर्क’ पत्रिकाका प्रवेशांक]

सम्पादक : सुरेशचन्द्र त्यागी,

समीक्षक : मूलचन्द गौतम.

प्रवेशांकके रूपमें ‘सम्पर्क’ का नागार्जुन अंक सुनियोजित होनेके बावजूद महत्त्वपूर्ण महत्त्वाकांक्षी प्रयास है। नागार्जुनकी तरहका विवादास्पद साहित्यकार हर तरहसे चुनौती होताहै, खासकर विचारों-कर्मोंसे। यही वजह हैं कि एक बंधी लीकसे इधर-उधर हटकर सोचनेमें असमर्थ लोगोंको ऐसे व्यक्ति और रचनाकारको निरस्त करनेमें कोई हिचक नहीं होती। अब समय है कि नागार्जुनका सृजन स्वस्थ मूल्यांकनका आधार बने। ‘सम्पर्क’ के कुछ लेख यह आधार तैयार करतेहैं।

यहां ‘सम्पर्क’ की नागार्जुनपर केन्द्रित सारी सामग्री के पूरे विवरणमें जाना वहुत उपयोगी नहीं होगा। शोभाकान्तका संस्मरण और बृहदारण्यक नागार्जुनकी रचनाओंका सिलसिलेवार परिशिष्ट अंककी उपलब्धियाँ हैं। बाबाका व्यक्तित्व विलक्षण है। प्रभाकर श्रोत्रीय और राणाप्रतापसिंहके संस्मरण उसपर बेहतर तरीकेसे प्रकाश डालतेहैं। नागार्जुनका पूरा जीवन जितने खतरोंसे भरा रहाहै वह उनके सृजनका स्रोत हैं, जिसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। कुछ लोग राजनीतिकार्थिक परिस्थितियोंसे काटकर बाबाके वैचारिक विरोधाभासों और भटकावोंकी चर्चा करतेहैं, उन्हें कुछ हाथ नहीं लगता, ठीक उनकी तरह जो बाबामें कोई विरोधाभास और भटकाव नहीं मानते। व्यावहारिक संघर्षोंसे अलग जिनके सिद्धांत किताबोंमें सुरक्षित हैं, इन्हें बाबापर फतवे देनेमें आसानी होसकतीहैं, जबकि समझनेमें उनका व्यक्तित्व और सृजन उतना सरल नहीं है। अजय तिवारी, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, विजय बहादुरसिंह, कुंवरपालसिंह और सत्यकामके लेख बाबाके पद्यऔर गद्य के मर्मको खोलतेहैं। इस मूल्यांकन और विश्लेषणको सम्पादक योजनाबद्ध और व्यवस्थित तरीकेसे पेश करते तो यह अंक कुछ खासही होता। वाचस्पतिके पत्रोंके अलावा बाबाके अन्य आत्मीयोंके ऐतिहासिक पत्रोंका भी अपना अलग महत्त्व होता। बाबापर लिखी गयी कुछ पुरानी अच्छी सामग्रीको पुनर्प्रकाशित करकेभी यह पूरी

१. प्रकाशक : आशिर प्रकाशन, रामजीवन नगर, चिलकाना रोड, सहारनपुर-२४७-००१। पत्रिका वार्षिक शुल्क : १५.०० रु.। प्रस्तुत अंक—पृष्ठ : ७६; डिमा. ८४; मूल्य : ४०.०० रु.।

कीजा सकतीथी। इस रूपमें 'सम्पर्क' का यह अंक अपनी सीमाओंमें अच्छा प्रयास है और नागार्जुनको समझने-समझानेमें इसका स्थायी महत्त्व रहेगा। प्रभाकर माचवेकी कविता और रेखांकन अंकको गरिमा देतेहैं। □

दिगन्त[1]

स्वर्णरेखा[2]

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय.

कोयलांचल जैसे औद्योगिक क्षेत्रसे किसी साहित्यिक पत्रिकाका प्रकाशन एक कृच्छ साधना है और उसे जिलाकर एक बड़े पाठक समुदायको लाभान्वित करना औरभी कठिन हैं, परन्तु 'दिगन्त' दोनोंमें सफल प्रतीत होताहै। इसका कारण है इसकी विविध आयामी रुचिकर, स्तरीय और मौलिक सामग्री। समीक्ष्य अंक (दो) की कविताएं (भारत माता—मीना अग्रवाल, गीत—कुंअर बेचैन, लो मेरा आभार—डॉ. श्यामसुन्दर घोष) अहसासोंकी लगी और आश्वस्तिका बोध करातीहैं। बेचैन और घोष तो काव्य जगत्के चर्चित हस्ताक्षर हैं उनकी साझेदारीही 'दिगंत' की लोकप्रियताका प्रमाण है। कहानियां तथा अन्य लेखभी पठनीय हैं।

स्वर्णरेखा दूसरे अंकका मूल आकर्षण है संजीव चट्टोपाध्यायके उपन्यास 'कैंसर' का किट्टू द्वारा अनुवाद। इसमें शक नहीं कि उपन्यास रमानेवाला है, पाठक दम-साधकर पूरा उपन्यास पढ़े बिना नहीं उठता, अनुवाद ऐसा है कि मूल कृतिका आनंद देताहै, पर इतने स्थानमें अन्य विविध सामग्री देकर भिन्न रुचिके पाठकोंका कल्याण किया जा सकताथा। अनिल ठाकुरका लेख 'नकली माहौलकी बेजान कहानियां' दोष-दर्शन और नकारात्मकताकी ओर अधिकतर अग्रसर हैं। इससे न प्रेरणाका प्रभात जगाया जा सकताहै और न कहानियोंका स्तरही ऊँचा किया जा सकताहै। फिरभी संपादक मंडल जिस जोश-खरोश और प्रतिबद्धताके साथ लगाहै, उससे आशाएं बंधतीहैं। □□

1. सं. मैकू सिंह कुशवाहा संयुक्त संपादक—विमल त्रिपाठी। मासिक, डिमा। धनसार, धनबाद-८२८१०६। पृ. ६६, मूल्य : ३.५०; वार्षिक : ४०.०० रु.।

2. सं. कृष्णचंद्र चौधरी, विद्यापति नगर, कांके रोड, रांची-८३४००८। डि. मासिक। पृ. १०४, मूल्य : ३.००; वार्षिक : ३०.०० रु.।

सभ्यताके निर्माता[1]

लेखक : अमृतलाल नागर; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ३६; मूल्य : ५ ०० रु.।

'सभ्यताके निर्माता' में ऋषभदेव, महर्षि और्व, राजा सगर, अगस्त्य मुनि, हजरत मूसा, राम-रावण युद्ध और योगीराज कृष्णसे सम्बन्धित ७ पौराणिक कहानियोंको पुरातात्त्विक शोध सामग्रीके परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत किया गयाहै। बताया गयाहै कि ऋषभदेवने ही सर्वप्रथम लोगोंके जीवकोपार्जनके असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प—ये छह मार्ग बताये। महर्षि और्व राजा सगरके गुरु थे, जिनका जन्म उरू देश अर्थात् ईराकमें हुआथा। ईराकमें 'निप्पु' के टीलेकी खुदाई में निकले अति प्राचीन सूर्य-मंदिरकी ईंटोंमें जो वंशावलियां उत्कीर्ण हैं, उनमें 'और्व' का नाम 'उरूर' लिखाहै। राजा सगरके बारेमें बताया गयाहै कि येही ईराकके सर्गोन महान् हैं। ईराक देशमें फुरात नदीके किनारे स्थित 'अजुतु' यानी अयोध्या इनकी राजधानी थी, जो रामकी अयोध्यासे भिन्न है। ये विश्वके पहले चक्रवर्ती राजा थे, जिन्होंने लोगोंको सर्वप्रथम सभ्यताकी रोशनी दिखायी।

सभ्यताके निर्माताओंमें अगस्त्य मुनिका अवदानभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण भारतमें आर्य संस्कृतिके संवाहक इस महान् यात्रिकने तमिल भाषाका संस्कार किया और फिर दक्षिण भारतसे समुद्र पार हिन्द-चीन और इंडोनेशिया तक घूम-घूमकर सभ्यताकी विजय-पताका फहरायी। 'हजरत मूसा' जीवन-वृत्त में बताया गयाहै कि किस प्रकार इन्होंने असभ्य यहूदियोंको सभ्य समाजके रूपमें संगठित किया। 'राम-रावण युद्ध' में लेखकने राम-रावण युद्धकी ऐतिहासिकताको प्रतिपादित कियाहै, जोकि पुस्तकके शीर्षकसे प्रत्यक्षतः मेलमें नहीं।

'योगीराज श्रीकृष्ण' में गोवर्धन धारण, कालिय-मर्दन, बकासुर-वधकी घटनाओंको वैज्ञानिक आधार देनेका प्रशस्य प्रयास है।

पौराणिक कहानियोंका ऐतिहासिक विवेचन-विश्लेषण इस संकलनमें इस कुशलताके साथ हुआहै कि रोचकता बराबर बनी रहीहैं। जिस जादूके दर्पणमें लेखक सभ्यताके निर्माताओंके दर्शन करातहै उससे कहानियोंमें नाटकीयताके समावेशसे मनोरंजकता अक्षुण्ण बनी रहीहै। कुल मिलाकर संकलन रोचक, ज्ञानवर्धक एवं पठनीय है।

—डॉ. श्रीविलास डबराल

'प्रकर' : जुलाई'८४ पंजीकरण संख्या १७५८२/६९ डाक पंजीकरण संख्या : डी (डीएन) ५६६
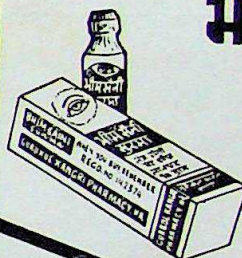
आगामी अंकमें

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त
महादेवी वर्मा
संबंधी कुछ विशिष्ट सामग्री

'हिन्दीके विशाल मन्दिरकी वीणापाणि'
डॉ. महादेवी वर्मासे एक विशेष भेंट
...डॉ. रणवीर रांग्रा

महादेवी वर्माका गद्य-साहित्य डॉ. हरदयाल

मेरे प्रिय संस्मरण (महादेवी वर्माकी कृति)
समीक्षक : डॉ. कमलकिशोर गोयनका

साहित्यकार महादेवी (डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया)
समीक्षिका : सुधारानी श्रीवास्तव

(कुछ अन्य सामग्रीभी)

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए संगीता कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२ दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित.

प्रकर

भाद्रपद : २०४१ (वि.) :: अगस्त : १६८४ (ई.)

स्वाधीनता दिवस अंक

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त महादेवी वर्मा
और कुछ अन्य विशिष्ट समीक्षा
सामग्री सहित

[स्वाधीनता दिवस अंक :: महादेवी वर्मा संबधी विशिष्ट सामग्री]

वर्ष : १६
अंक : ८

भाद्रपद : २०४१ (वि.)
अगस्त : १९८४ (ई.)

सम्पादक
वि. सा. विद्यालंकार

वार्षिक मूल्य : ३०.०० रु.
प्रस्तुत अंक : १०.०० रु.

आजीवन (व्यक्तिगत) ३०१.०० रु.
आजीवन (संस्थागत) ५०१.०० रु.

'प्रकर', ए–८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली–११०-००७.

 दूरभाष : ७११३७६३

अंककी सामग्री

महादेवी वर्मा संबंधी सामग्री

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः [भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोहमें महादेवी वर्माके भाषणके अंश] ६
डॉ. महादेवी वर्मासे विशेष भेंट—डॉ. रणवीर रांग्रा ७
महादेवीका काव्य—डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ १२
महादेवीका गद्य साहित्य—डॉ. हरदयाल ५५
मेरे प्रिय संस्मरण—महादेवी वर्मा; समीक्षक: डॉ. कमलकिशोर गोयनका ५६
साहित्यकार महादेवी—डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया; समीक्षिका: सुधारानी श्रीवास्तव. ६२

विशिष्ट समीक्षा खण्ड

निबंध-संकलन

चिन्तामणि (तीसरा भाग)—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; सं. नामवर सिंह २१ डॉ. प्रेमशंकर
कहां है द्वारका—अज्ञेय २४ डॉ. रामदेव शुक्ल.

साहित्य: भाषा

भारतीय धर्म साधना—डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी २८ डॉ. राजमल बोरा
साहित्य और कलाकी पहचान—डॉ. जगदीश शर्मा. ३१ डॉ. रमाकान्त शर्मा
राष्ट्रीयताकी अवधारणा—डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य ३४ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री
हिन्दी साहित्य: बंगीय भूमिका—डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र, रामव्यास पाण्डेय ३५ डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया.

भारतीय साहित्य : आदान-प्रदान

उल्लंघन (कन्नड़से अनूदित)—एस. एल. भैरप्पा ३७ डॉ. विवेकी राय
हरदत्तका ज़िन्दगीनामा (पंजाबीसे अनूदित)—अमृता प्रीतम ४० डॉ. अरविन्द पाण्डेय
विश्वंभरा (तेलुगु) सी. नारायण रेड्डी ४३ डॉ.एन.पी. कुट्टन पिल्लै
कृष्णचरित्र (बंगलासे अनूदित)—बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ४५ मन्हैयालाल ओझा.

भारतीय साहित्य (मूल)

प्रेमपत्र – शेषेन्द्र शर्मा ४७ डॉ· विजेन्द्रनारायण सिंह
ललिता दु:खदर्शक (गुजराती आद्य नाटक)—रणछोड़ भाई उदयराम ४६ डॉ. अब्दुर्रशीद शेख

काव्य-संकलन

अपराधिता—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ५१ डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
रोशनीके मेंवानकी तरफ—चन्द्रकान्त देवताले ५३ डॉ. हरदयाल

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशनों की परम्पराओं में नवीनतम

१. **परकाया प्रवेश तथा अन्य कहानियाँ** — **मास्ति वेंकटेश आयंगार**
१९वें ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९८३) से सम्मानित कन्नड़ कथा के जनक मास्ति वेंकटेश आयंगार (श्रीनिवास) की सर्वाधिक चर्चित एवं लोकप्रिय १९ कहानियों का बेजोड़ संग्रह।

२. **सुब्बना (उपन्यास)** — **मास्ति वेंकटेश आयंगार**
ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता मास्ति वेंकटेश आयंगार के प्रथम उपन्यासका प्रथम हिन्दी रूपान्तर। पेपरबैक संस्करण।

३. **पट्टमहादेवी शान्तला (उपन्यास) भाग—१** — **सी. के. नागराजराव**
दक्षिण भारत के होयसल राजवंश के महाराज विष्णुवर्धन की पट्टरानी शान्तला को केन्द्र में रखकर लिखा गया एक सशक्त एवं रोचक उपन्यास। प्रथम 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' से सम्मानित। आगामी तीन भाग भी शीघ्र ही प्रकाश्य।

४. **भारतीय कविताएं : १९८३**
भारतीय कहानियाँ : १९८३
१९८३ में प्रथम बार प्रकाशित सभी भारतीय भाषाओं में से चुनी हुई लगभग ७५ प्रतिनिधि कविताओं एवं लगभग २८ कहानियों के पृथक-पृथक महत्त्वपूर्ण संकलन। इन अपूर्व संकलनों को "स्वाधीनता के उपरान्त राष्ट्र में किया जानेवाला सर्वाधिक उल्लेखनीय साहित्यिक एकता-आयोजन" माना जा रहा है।

५. **यथासम्भव (व्यंग्य लेख)** — **शरद जोशी**
शीर्षस्थ समकालीन सक्रिय व्यंग्यकार शरद जोशी छपते-छपते तक लिखे गये व्यंग्य लेखों में से स्वयं लेखक द्वारा चुने गये १०० स्थायी महत्त्व के लेखों का अद्वितीय संकलन।

६. **छावा (उपन्यास)** — **शिवाजी सावंत**
लोकप्रियता के कीर्तिमान स्थापित करनेवाले चिरनवीन उपन्यास 'मृत्युंजय' के ओजस्वी लेखक शिवाजी सावंत का दूसरा (नवीनतम) उपन्यास जो उनकी १२ वर्ष की साधना का सुफल है।

७. **पागल मन के दस चेहरे** — **शिवराम कारंत**
डॉ. के. शिवराम कारंत को ज्ञानपीठ पुरस्कार अपने उपन्यास 'मूकज्जी' पर प्राप्त हुआ था, किन्तु अन्य विधाओं में भी उनकी सक्रियता अनुकरणीय है। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के अनेकानेक आयामों को उद्घाटित करने वाली रोमांचकारी संघर्ष-गाथा।

८. **गगनभेदी (नाटक)** — **वसन्त कानेटकर**
मराठी के प्रख्यात नाटककार वसन्त कानेटकर की विलक्षण कृति जिसमें शेक्सपीयर की अमर त्रासदियों के नायकों—हेमलेट, मैकबेथ, ओथेलो, लियर्स—को एक ही चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

९. **कारवाँ आगे बढ़े (ललित निबन्ध)** — **कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'**
ललित निबन्ध विधा के अप्रतिम लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की स्फूर्तिमयी जीवन्त रचनाओं का प्रेरक संकलन।

१०. **आकर्ष (निबन्ध + लघु उपन्यास)** — **शिवानी**
पत्रकारिता के लहजे में लिखे गये बहुचर्चित पठनीय लेखों एवं लोकप्रिय लघु उपन्यास 'मोहब्बत' का अपारम्परिक संयोग।

११. **जैन साहित्य में कृष्ण** — **डॉ. महावीर कोटिया**
जैन वाङ्मय में शलाका पुरुष श्री कृष्ण वासुदेव का, कथानक और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से, विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत कृति में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी में लिखी गयी प्राचीन जैन कवियों की अब तक उपलब्ध रचनाओं का कालक्रम से उल्लेख हुआ है।

भारतीय ज्ञानपीठ

बी-४५/४७, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११० ००१.

संग्रहणीय पठनीय, सुरूचिपूर्ण पुस्तकें

धर्म, अध्यात्म, दर्शन

विनय-पत्रिका : तुलसीदास; संपा.-टीकाकार वियोगी हरि (सजिल्द) २५.००
बुद्ध : जीवन और दर्शन : डॉ. सद्धातिस्स —अनु. विठ्ठलदास मोदी ६.००
गीता-प्रवेशिका : महेन्द्रकुमार मोहता १०.००
श्रीअरविन्द का जीवन-दर्शन (परिवर्द्धित संस्करण) : इन्द्रसेन ८.००
ईसा : जीवन और दर्शन : फादर कामिल बुल्के ६.००
ज्ञानेश्वर की ज्ञान-गंगा : विनोबा का चिंतन, —अनु. डा. मूंदड़ा ५.००
गीता माता : गांधीजी १५.००
गीता बोध : गांधीजी ३.००
अनासक्ति योग : गाँधीजी ५.००
विष्णु सहस्रनाम : विनोबा १२.००

नीति, आचार शिक्षा

रामकृष्ण उपनिषद : चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ४.५०
जीवन और शिक्षण : विनोबा ३.००
कैसे-कैसे भ्रम : वियोगी हरि ३.००
नीति की बातें : वियोगी हरि ३.००
सच्चे इन्सान बनो : फादर वालेस ७.००
गांधी-विचार दोहन : कि. घ. मशरुवाला ३.००
परमसखा मृत्यु : काकासाहेब कालेलकर ६.००
तुकाराम गाथासार : अनु. नारायणप्रसाद जैन ४.००
आत्मचिन्तन : चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ५.००
दक्षिण की सरस्वती : चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य २.००

आत्मकथा और जीवनी साहित्य

आत्मकथा (सम्पूर्ण) (प्लास्टिक कवर) १५.००
गांधी – एक जीवनी : बी.आर. नन्दा १२.५०
इन्दु से प्रधानमंत्री : कृष्णा हठीसिंग १०.५०
मेरा जीवन-प्रवाह : वियोगी हरि २०.००

संस्मरण

कुछ देखा, कुछ सुना : घनश्यामदास बिड़ला ४.५०
कुछ शब्द : कुछ रेखाएं : विष्णु प्रभाकर ४.५०
श्रीमन्नारायण : व्यक्ति और विचार : सं. यशपाल जैन २५.००
दिव्य जीवन की झांकियां : यशपाल जैन ६.००

सेतु-निर्माता : यशपाल जैन ८.५०
मानवता के दीये : झवेरचन्द मेघाणी ६.००
मानवता के झरने : गणेश वासुदेव मावलंकर ४.००

कथा साहित्य

रामायण के पात्र : खण्ड : १ : नानाभाई भट्ट, अनु. : काशिनाथ त्रिवेदी १०.००
रामायण के पात्र : खण्ड : २ : नानाभाई भट्ट, अनु. : काशिनाथ त्रिवेदी १०.००
महाभारत-सार : सूरजमल मोहता १५.००
कृष्णकथा : सूरजमल मोहता १५.००
हिन्दुओं के व्रत और त्योहार : कुंवर कन्हैयाजू ८.००
रामकीर्ति : स्वामी सत्यानन्दपुरी ८.००

साहित्य और संस्कृति

हमारी संस्कृति के प्रतीक : महादेव शास्त्री जोशी ६.००
हमारी पुरातन कथाएं : वियोगी हरि ४.५०
भारतीय संस्कृति : साने गुरूजी १२.००
अमृत की बूंदें : आनन्दकुमार ८.००

उपन्यास साहित्य

अन्तहीन अन्त (चेक उपन्यास) : हेलेना होदाचोवा, अनु. दागमार मारकोवा १५.००
गौरप्रिया : डॉ. सुमति क्षेत्रमाडे १२.००
मेघ मल्हार : डॉ. सुमति क्षेत्रमाडे १०.००
मोगरा फूला : वि. स. खांडेकर १५.००
पद्मिनी का शाप : लक्ष्मीनिवास बिड़ला १०.००
अपराजिता : मनोज वसु १०.००
विराट : स्टीफन ज्विग, अनु. यशपाल जैन ८.००
आँचल और आग : लक्ष्मीनिवास बिड़ला १०.००
धूप-छांह : मनोज वसु १०.००
बदलाव : प्रियरंजनदास मुंशी १०.००
लहरों के बीच : सुनील गंगोपाध्याय १०.००
अन्धा मन : कृष्णप्रसाद मिश्र १०.००
नियति के पुतले : पिनिशेट्टि श्रीराममूर्ति ८.००
प्रकाश की छाया में : नरेन्द्रपालसिंह ५.००

कहानी साहित्य

बहता पानी निर्मला : भागीरथ कानोडिया ८.००
कुब्जा सुन्दरी : चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ६.००
मुखौटे के पीछे : यशपाल जैन २०.००
फूल और कांटा : लक्ष्मीनिवास बिड़ला १५.००

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

एन-१७ कनाट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१.

ज्ञानपीठ पुरस्कार
से सम्मानित
महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा संबंधी
प्रस्तुत सामग्री

- **कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः**
  [भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोहमें भाषणके अंश]
- **डॉ. महादेवी वर्मासे विशेष भेंट**
- **महादेवीका काव्य**
- **महादेवीका गद्य साहित्य**

तथा अन्य दो कृतियोंकी समीक्षा

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः

मनीषी कवि काल-खण्डोंका संकलन करताहै कोई उसकी रचना नहीं करता.

—महादेवी वर्मा

"कभी-कभी साहित्यकारका अपना युग उसे नहीं समझ पाता, पर यह स्थिति उसे लेखनसे विमुख नहीं कर पाती। वह महाकवि भवभूतिके समान कह सकताहै : 'कालो ह्यं निरवधिः विपुला च पृथ्वी'—काल असीम है, पृथ्वी बहुत विस्तृत है। कभी कोई मेरा समानधर्मा उत्पन्न होगा जो मुझे समझ सकेगा।

पर सामान्यतः साहित्यकार किसी शून्यमें उत्पन्न न होकर एक विशेष युग, विशेष समाज और विशेष परिवेशमें उत्पन्न होताहै, अतः अपने युगसे प्रभावित होना उसके लिए अनिवार्य है। अन्तर यही है कि उसमें **युगबोधके** अतिरिक्त **युगान्तर-बोधभी** रहताहै। उसकी मानसिकता ऐसी त्रिवेणी है, जिसमें अतीत युगोंके शाश्वत जीवन-मूल्योंकी गंगाभी हैं, वर्तमान युगकी समस्याओंकी उच्छल प्रवाहमयी यमुनाभी और अनागत भविष्यकी अन्तःसलिला सरस्वतीभी। इसीसे पार्थिव रूपसे साहित्यकारके न होनेपर भी उसकी रचना आगत पीढ़ियोंको सम्बल देती रहतीहै।

सच्चा साहित्य व्यक्तिको समष्टिसे एकाकार करनेवाली निरन्तर गतिमयी कर्मधारा है, अतः उसकी प्रक्रियाका जटिल होना स्वाभाविक है। सम्भवतः इसीलिए भारतकी आर्षवाणीने कविकी परिभाषामें '**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः**' कहा है। वह मनीषी होताहै, क्योंकि वह सब काल-खण्डोंका संकलन करताहै, वह समष्टिसे एकाकार होनेके कारण व्याप्तभी होताहै और स्वयम्भूभी है, क्योंकि कोई उसकी रचना नहीं करता।

वैदिक वाङ्मयमें ईश्वरको कविकी संज्ञा दी गयीहै, '**देवस्य 'पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'**—ईश्वरकी काव्य-सृष्टिको देखो, जो न मरतीहै और न पुरानी होतीहै। इस परिभाषाके अन्तर्गत कमही कवि आसकेंगे, परन्तु जो आसकतेहैं उनकी रचना जीवनके समानही शाश्वत और चिर नवीन रहेगी।

साहित्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि आजभी कोई युद्ध-प्रिय तथा विज्ञानके चरम विन्दुतक पहुंचा हुआ देश, यह स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं है कि उसके पास साहित्य नहीं है या उसे साहित्य और साहित्यकारकी आवश्यकता नहीं है। कारण स्पष्ट है। साहित्य जीवनके विकासका ऐसा अभिन्न साथी रहाहै कि उसका अभाव बर्बरता या असभ्यताका पर्याय माना जायेगा। इसीसे सब प्रकारके देश उसकी स्थितिको स्वीकार करतेहैं, चाहे वे उसे अपनी प्रवृत्तिके अनुरूप ढालनेके लिए सब वैध-अवैध प्रयत्न करते रहतेहैं।

प्रायः प्रत्येक युगमें साहित्यकारको चुनौती मिलीहै। कभी धर्मने, कभी राजनीतिने, कभी समाजने उसके समक्ष ऐसी समस्याएं प्रस्तुत कीहैं जिनसे बिना संघर्ष किये वह अपने लक्ष्यतक नहीं पहुंच सकता। अतः हर महत्त्वपूर्ण साहित्यकारको क्रान्त द्रष्टा होनाही पड़ताहै। उसने अपने विद्रोहके लिए दण्डभी स्वेच्छा और सुखसे झेलाहै।

आधुनिक युगमें साहित्यकारको सबसे कठिन चुनौती विज्ञानसे मिलीहै। विज्ञान भौतिक जगत्के तथ्योंकी खोज है, जिसकी प्राप्ति मनुष्यको प्रकृतिपर विजयी होनेकी शक्ति देतीहै। पर यह शक्ति दिशाहीन और अनियंत्रित रहतीहै। उसमें धर्मके समान न पाप-पुण्यका द्वन्द्व है, न दर्शनके समान सत्य-असत्यका और न समाजके समान उचित-अनुचितका। इसीसे आधुनिक विकसित देश, विज्ञानसे प्राप्त शक्तिको दोधारी तलवारकी तरह चला रहेहैं। उन्होंने ध्वंसको अपनी शक्तिका प्रमाण मान लियाहै, अतः विज्ञानकी संहारक शक्ति आतंकही उत्पन्न कर रहीहै।

जीवनके मंगल विधानके लिए मनुष्यमें संवेदनकी तरलताकी आवश्यकता होतीहै जिसे विज्ञानका ताप सुखा रहाहै। यदि मनुष्यमें संवेदनशीलताकी रागात्मकता नहीं रहेगी तो ध्वंसके ज्वालामुखीपर बैठी मानव जाति किसीभी क्षण समाप्त होसकतीहै।[१]

---

१. 'भारतीय ज्ञानपीठ अठारहवां पुरस्कार समर्पण समारोह'में २८.११.८३ को श्रीमती वर्मा द्वारा दिये भाषणके कुछ अंश.

मैं नीर भरी दुखकी बदली

[हिन्दीके विशाल मन्दिरकी वीणापाणि डॉ. महादेवी वर्मासे एक विशेष भेंट]

—डॉ. रणवीर रांग्रा

महादेवीजी वेदनाकी कवयित्री हैं। दुःख उनके काव्यका प्राणाधार है। उनके एक गीतकी तो टेकही यह है: 'मैं नीर भरी दुखकी बदली'। जीवन उनके निकट वेदना और करुणाका संगम है: 'विरहका जलजात जीवन, विरहका जलजात / वेदनामें जन्म, करुणामें मिला आवास।' महादेवीजी दुःखको जीवनका ऐसा काव्य मानतीहैं जो सारे संसारको एकसूत्रमें बांध रखनेकी क्षमता रखताहै। उनका विश्वास है कि 'विश्व-जीवनमें अपने जीवनको, विश्व-वेदनामें अपनी वेदनाको इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्रमें मिल जाताहै, कविका मोक्ष है:

दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अचंचल!
पथ न भूले, एक पगभी, घर न खोये, लघु विहगभी
स्निग्ध लौकी तूलिकासे, आंक सबकी छांह उज्ज्वल।

दुखवादको काव्य-विषय बनाकर भी महादेवीजीने सुखवादसे वैर नहीं ठाना, बल्कि सुखवादका उल्लास प्राप्त करनेके लिएही उन्होंने वेदनासे मैत्री कीहै। 'नीहार' 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' नामक अपने कविता-संग्रहोंके रचना-कालकी अपनी प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहाभी है कि नीहारके रचनाकालमें मेरी अनुभूतियोंमें वैसीही कुतूहल-मिश्रित वेदना उमड़ आतीहै जैसी बालकके मनमें दूर दिखायी देनेवाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्शसे दूर सजल मेघके प्रथम दर्शनसे उत्पन्न होजातीहै। 'रश्मि'को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूतिसे अधिक, उसका चिन्तन प्रिय था, परन्तु 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थितिको व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायासही मेरा हृदय सुख-दुःखमें सामंजस्यका अनुभव करने लगाथा:

विरहका युग आज दीखा,
मिलनके लघु पल सरीखा,
दुःख सुखमें कौन तीखा,
मैं न जानी औ न सीखा!
मधुर मुझको होगये सब,
मधुर प्रियकी भावना ले।

युग प्रवर्तक महाप्राण निरालाने महादेवीजीकी काव्य साधनापर अर्घ्य चढ़ाते हुए ठीकही लिखाहै:

'हिन्दीके विशाल मन्दिरकी वीणापाणि
स्फूर्ति चेतना रचनाकी प्रतिभा कल्याणी

महादेवीजी प्राप्ति और तृप्तिसे दूर रहनेवाली कवयित्री हैं: **'मिलनका मत नाम ले मैं विरहमें चिर हूं।'** प्राप्तिकी अपेक्षा यत्न उन्हें अधिक प्रिय है—प्राप्ति तो प्रयत्नको कुंठित कर देतीहै। चिरन्तन साधिकाकी तरह महादेवीजी तृप्तिसे दूर, सदा तृषितही बनी रहना चाहतीहैं:

चिर तृप्ति कामनाओंका कर जाती निष्फल जीवन,
बुझतेही प्यास हमारी पलमें विरक्ति जाती बन!
मेरे छोटे जीवनमें देना न तृप्तिका कण-भर,
रहने दो प्यासी आंखें भरती करुणाके सागर।

अपने विद्यार्थी-जीवनमें ही नहीं, बादमें भी, बल्कि आजभी जब कभी क्षणभरके लिए भी मुझे तृप्तिका स्पर्श मिलताहै, मैं महादेवीजीकी उक्त पंक्तियोंको गुनगुनाने लगताहूं। इससे तृप्तिकी तन्द्रा टूट जातीहै और मैं पुनः संघर्षरत होजाताहूं। जिसकी रचनाओंसे जीवनमें जूझने की शक्ति मिलती रहीहो उसके सान्निध्यकी लालसा कितनी उत्कट रही होगी, इसका सहजही अनुमान लगाया जासकताहै।

महादेवीजीसे भेंट हुई, उनके काव्यपर उनके साथ वार्ताका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। चर्चाका आरम्भ करते हुए महादेवीजीकी रचना-प्रक्रियाको जाननेके उद्देश्यसे पूछा:

'काव्योन्मेषके क्षणोंमें क्या कभी आपको ऐसाभी लगाहै कि गीतको रचते-रचते आप स्वयंभी रची जारही हैं, आपके सामने बाहरी और भीतरी यथार्थताओंकी परतपर परत खुल रहीहै और आपको सत्यके निकटसे निकटतर पहुंचनेका आभास मिल रहाहै ? जिन गीतोंको रचते समय आपको इस प्रकारकी अनुभूति हुईहो, उनके नाम और तत्कालीन मनःस्थितिका परिचय देनेकी कृपा करें।

गीतकी रचनाको प्रबन्ध-काव्यकी रचनासे भिन्न बताते हुए महादेवीजी बोलीं : किसी तीव्र संवेगके उपरान्तही गीत लिखनेकी स्थिति उत्पन्न होतीहै। इसलिए गीत रचते-रचते अपने-आप रचे जानेका प्रश्न नहीं उठता। खंडकाव्य, महाकाव्य आदिमें रचनाका वैसा प्रश्न उठता है। किन्तु गाते समय, गुनगुनाते समय, तो भावभूमि पहले बन चुकी होतीहै और किसी प्रकारका भी सत्य, जो उसके अन्तर्गत है, लयवान होचुका होता हैं। इसलिए ये गीत ऐसीही मानसिक स्थितिमें लिखे गये हैं जिसमें तन्मय स्थिति है। कौन गीत किस मानसिक स्थितिमें लिखा गयाहै, यह तो अपनीही शल्य-क्रिया करने के समान है जो अच्छेसे अच्छा डाक्टरभी नहीं करता। उसके लिए दूसरे डाक्टर चाहियें।

महादेवीजी कविही नहीं, चित्रकारभी हैं। उनके चित्र भाव-विभोर कर देतेहैं, पर उनका विश्वास है कि कोई व्यक्ति एक-साथ सफल कवि और सफल चित्रकार नहीं होसकता। 'सांध्य-गीत' की भूमिकामें लिखाभी है कि प्रायः सफल चित्रकार असफल कविका और सफल कवि असफल चित्रकारका शाप अपने साथ लाताहै। पर 'दीपशिखा' में संगृहीत उनके चित्रोंको देखकर मुझे प्रतीति नहीं हुईथी। इसलिए मैंने पूछा :

'दीपशिखा' के चित्र गीतोंकी भावभूमिको रूपायित करतेहैं और गीत चित्रोंको गहराई प्रदान करतेहैं। उसमें आपका कवि और चित्रकार किस शक्तिके प्रभावसे शाप-मुक्त होगया ?

अपनी पूर्व धारणाकी पुष्टि करते हुए उन्होंने कहा : 'एक रेखा एकही वस्तुस्थितिका चित्रण करतीहै। एक रंग एकही भावका परिचय देसकताहै। इस प्रकार, जो रेखांकनमें चतुर हैं, कुशल हैं, अभ्यस्त हैं, वे जब कविता लिखने बैठतेहैं तो एकही भाव प्रधान रहताहै, कवितामें अनेक भावोंका संगम होजाताहै। उसमें एक भावके रंगको दूसरेसे भिन्न करना कठिन होजाताहै। इसी प्रकार जब कवि चित्र बनाने बैठताहै तो अनेक भावोंके उस संघातको व्यक्त नहीं कर पाता जो उसके अत्यन्त निकट होताहै या जिसे वह शब्दोंमें व्यक्त करनेमें बहुत समर्थ नहीं होसकाहै, उसे वह चित्रमें आंकताहै। मैं समझतीहूं कि 'दीपशिखा' में चित्रकार और कवि किसी शापसे मुक्त नहीं हुएहैं। दोनोंही बंधनमें हैं। एक गीतमें जितने चित्र थे, जितने भाव थे, जितने रंग थे, वे उस रेखामें नहीं आयेहैं। रेखा केवल एक धुंधली-सी पृष्ठभूमि देती है और कवितासे भिन्न करके उसे देखा जाये तो वही अपूर्ण लगेगी, और इसी तरह कविताको भी उससे हटा कर देखा जाये तो सम्भवतः कविता अधिक विशाल जान पड़ेगी। सीम-असीम जैसे दोनों उसमें एक साथ मिलनेका प्रयत्न कर रहेहैं। कहीं मिल पातेहैं, कहीं नहीं मिल पाते।'

'दीपशिखा' के प्रति एक और दृष्टिकोणभी है। उसमें गीतोंको जो चित्रमयी पृष्ठभूमि मिलीहै वह निश्चयही गीतकी भावभूमिको स्पष्ट करके उसे समझने में सहायता प्रदान करतीहै। पर यह सहायता पाठकको बड़ी मंहगी पड़तीहै, क्योंकि महादेवीजीके ही शब्दोंमें 'रेखांकनको इच्छानुसार परिवर्तितकर लेना देखनेवाले के लिए संभव नहीं है, किन्तु शब्दांकनको प्रत्येक पाठक अपने मनोजगत्‌के अनुकूल ढालता-बनाता रहताहै।' इसलिए मैंने कहा कि ये चित्र पाठककी कल्पनाको अपनी ही डोरीसे बांधे रखतेहैं, उसे मुक्त गगनमें उड़ने नहीं देते और पूछा कि इस दृष्टिसे क्या 'दीपशिखा' के चित्र उसके गीतोंकी शक्ति और सीमा दोनों नहीं कहे जा सकते ?

मेरे आरोपको झुठलाते हुए महादेवीजी बोलीं : 'चित्रमयी पृष्ठभूमि एक मानसिक स्थिति उत्पन्न कर देतीहै पढ़नेवालेकी, यदि वह उस स्थितिमें पहुंच जाताहै और तब कविता पढ़ता है, उससे तटस्थ होकर। मनकी ऋतु बदल जानेके उपरांत जो कुछ दिखायी पड़ताहै वह उस ऋतुके अनुकूल होजाताहै, तो वह लेखकके भावके अधिक निकट पहुंच जाताहै। यह तो लाभ है उसका जो उसकी मानसिक स्थितिको अपनी मानसिक स्थितिके निकट ले जाता है, क्योंकि रंग और रेखाएं दृष्टिको बांधतीहैं। दृष्टि भीतर कहीं प्रभाव उत्पन्न करतीहै। इसलिए जब वह कविता पढ़ताहै तो वह प्रभाव उसके हृदयमें रहताहै। इस प्रकारसे तो वह मुक्त है कि अन्यथा अर्थ नहीं ले सकता। जैसे एक दुःखी व्यक्ति वसंतमें भी पतझड़

देखताहै और सुखी व्यक्ति पतझड़को भी वसंत देखताहै। ऐसी कोई भूल तो नहीं होगी, किन्तु यदि वह निश्चित रूपसे अपनीही इच्छाके अनुसार मुक्त उड़ना चाहताहै तब वे निश्चित रूपसे उसे बंधन देंगे, क्योंकि वे उसे कविके साथ बैठा देंगे, उसे मुक्त होकर विचार नहीं करने देंगे—वसंतको पतझड़ नहीं समझने देंगे और पतझड़को वसंत नहीं समझने देंगे, यह सत्य है। कविके लिए तो यह बड़ा वरदान है कि पाठक उसकी मानसिक स्थितिके निकट हो। हमारे यहां संस्कृत के जिस कविने दुःखी होकर कहाहै—अरसिकेषु कवित्व निवेदनम् शिरसि मा लिख, मा लिख, मा लिख, यह बहुत कुछ ऐसीही स्थिति है। चित्र ऐसी स्थिति नहीं उत्पन्न होने देते। ये बंधनभी हैं, मुक्तिभी। कविके लिए तो अधिक उपयुक्त है और पाठकके लिएभी, कविको समझनेके लिए उपयुक्त है।

महादेवीजीके गीत हिन्दी-साहित्यकी अमूल्य निधि हैं। इनमें उनकी अतीन्द्रिय अनुभूतिको अभिव्यक्ति मिलीहै। पर प्रबन्ध-काव्य उन्होंने एकभी नहीं रचा। इसका कारण जाननेकी इच्छामें मैंने पूछा :

'क्या गीतिकाव्यमें ही आपको सम्पूर्ण तृप्ति मिल जातीहै जो आप महाकाव्यकी रचनामें प्रवृत्त नहीं हुई? गद्यमें आपकी प्रबन्धात्मकताका कमाल देखकर—'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीतके चल-चित्र', 'पथके साथी,' 'मेरा परिवार' के संस्मरणात्मक रेखाचित्रोंकी छटा देखकर यह माननेको मन नहीं होता कि प्रबन्धात्मकता आपकी प्रवृत्तिके अनुकूल नहीं पड़ती।'

मेरे प्रश्नकी गहरी खुदाई करते हुए महादेवीजीने कहा : 'गद्यमें मैंने केवल उन व्यक्तियोंको स्मरण किया है जो मेरे जीवनके सम्पर्कमें आयेहैं और जिन्होंने किसी प्रकार मुझे प्रभावित कियाहै। मैंने उनका निकटसे निरीक्षण कियाहै, उनके सुख-दुःखसे तादात्म्य कियाहै और अपने हृदयका समस्त स्नेह उन्हें दियाहै। वह कुछ कौशल नहीं है, वह पूर्वनियोजितभी नहीं है। वे सहजही मिल जातेहैं मुझे जीवनके मार्गमें। परन्तु घटनाओंके प्रति मेरी वैसी आसक्ति नहीं हैं। इसलिए प्रबन्ध-काव्य के अनुरूप घटना खोजना, पात्रोंकी सृष्टि करना, मेरे स्वभावके बहुत अनुकूल नहीं पड़ता। यदि जीवनमें ये व्यक्ति मुझे न मिलते तो सम्भवतः पुराणोंमें से, वेदकाल में से कोई घटना खोज लेती। किन्तु मार्ग चलते हुए जितनी घटनाएं मिलतीहैं, जितने व्यक्ति मिलतेहैं उनकी [illegible] कहीं-कहीं घटनाओंके प्रति मेरी आसक्ति कम हो जातीहै। तब फिर जो उससे एक करुण भाव उत्पन्न होताहै, उस भावको गीतमें व्यक्त करतीहूं।'

महादेवीजीके गीतोंमें विषादही विषाद देखनेवालों को उन्होंने 'दीपशिखा' के नये संस्करणकी भूमिकामें निरुत्तरकर दियाहै, 'आलोक मुझे प्रिय है, पर दिनसे अधिक रातका— दिनमें तो अन्धकारसे उसके संघर्षका पताही नहीं चलता, परन्तु रातमें हर झिलमिलाती लौ योद्धाकी भूमिकामें अवतरित होतीहै। इस नाते दीप-शिखा मेरे अधिक निकट हैं।' उनका ध्यान इस कथन की ओर आकृष्ट करते हुए मैंने कहा :

'फिरभी यह जिज्ञासा तो हैही कि सत्यको असत्यसे आलोकको अन्धकारसे जूझता देखकर उसकी सामर्थ्य आंकनेकी प्रेरणा आपको कहांसे मिली?'

प्रश्नको तौलते हुए वे बोलीं : 'प्रेरणा कहीं बाहर खोजने नहीं जाना पड़ता। वस्तुतः हर संवेदनशील लेखकको, कविको, कलाकारको और, मैं कहूंगी, सामान्य जनको अपने परिवेशमें ही मिलतीहै और हमारा परिवेश अभीभी बदला नहीं है। संघर्ष जो असत्यसे सत्यका था, अन्धकारसे आलोकका था, आज और गम्भीर है, गहरा है। जीवनकी पहलेसे अधिक कठिन, अधिक जटिल स्थिति है। इसलिए मेरा वह कथन तो आजभी सत्य है और लगताहै, अभी बहुत समयतक सत्य रहेगा।

'रश्मि' की भूमिकामें महादेवीजीने लिखाथा कि 'जिस प्रकार जीवनके उषाकालमें मेरे सुखोंका उपहास-सा करती हुई विश्वके कण-कणसे एक करुणाकी धारा उमड़ पड़ीहै, उसी प्रकार संध्याकालमें जब लम्बी यात्रासे थका हुआ जीवन अपनेही भारसे दबकर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्वके कोने-कोनेमें अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा। ऐसाही मेरा स्वप्न है।' उस प्रसंगको छेड़ते हुए मैंने पूछा कि जो स्वप्न आपने चालीस वर्ष पहले देखाथा क्या आपको लगता है कि वह पूरा होरहाहै?''

मेरा प्रश्न उन्हें चालीस वर्ष पहलेके युगमें लेगया। तबकी परिस्थितियोंको स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा : 'जब मैंने लिखना आरम्भ कियाथा तब जीवनकी ऐसी स्थिति नहीं थी और एक सुखका जीवन मुझे सुविधा-पूर्वक मिल सकताथा। मैंने उसे अस्वीकार किया, क्यों-कि मेरे मनकी करुणाने दूसरा क्षेत्र खोजा। अपने आस-पास अनेक व्यथित देखे और उनकी व्यथा दूर करनेके

लिए ही मैंने एक दूसरा मार्ग अपनाया जो कंटकाकीर्ण था, जो इतना सुविधा-सम्पन्न नहीं था। और स्वप्न यह था कि जब मैं प्रयत्न कर चुकूंगी तब दूसरोंको इतना प्रसन्न देखूंगी कि अपना चला हुआ मार्गभी मुझे कुछ बोझिल नहीं लगेगा। लगेगा, ये कांटे, ये पैरके छाले सब वरदान हैं। यात्राका अन्त तो अभी आया नहीं और कठिनाइयां ज्योंकी त्यों हैं, परिवेश वैसाही हैं, संघर्ष वैसाही है। पहलेसे अधिक संघर्ष अब मुझे करना पड़ताहै, क्योंकि उस समय मनुष्यके पास आस्था थी, विश्वास था, गन्तव्य था और अब यह सब बताना पड़ताहै, बार-बार कहना पड़ताहै, बार-बार जगाना पड़ताहै। ऐसी स्थितिमें आज यह कहना कि स्वप्न पूरा हुआ, कठिन है। स्वप्न किसीका पूरा नहीं होता, किन्तु मेरा तो अभी आधाभी पूरा नहीं हुआ, क्योंकि मैं देखतीहूं कि जगानेका काम और अधिक कठिन होगयाहै। अनास्थामें आस्था उत्पन्न करनेका कार्य उस युगमें नहीं था। उस युगमें आस्था थी, हममें और हमारे परिवेशमें आस्था थी। इसलिए सहयात्री बहुत-से थे। अब व्यक्ति अकेला चल रहाहै और भटक न जाये, इसकी जो चिंता करतेहैं उनकी चिंता पहलेसे अधिक है। अभी स्वप्न पूरा होनेमें बहुत समय है, पर थकावट नहीं है।

चर्चाको आजके गीतपर लाते हुए मैंने अन्तिम प्रश्न किया :

'गीत अब आधुनिकताके नामपर बौद्धिकताके निकट और अनुभूतिसे दूर पड़ता जारहाहै और नयी कविताके अनुकरणपर 'नव गीत' कहलानेमें गौरवका अनुभव कर रहाहै। गीतकी इस परिणतिके विषयमें आपकी क्या राय है ?''

प्रश्नको पूरी गम्भीरतासे लेते हुए महादेवीजी बोलीं : 'वस्तुत: अनुभूतिका ही संकट है हमारा और इसे मैं बार-बार कहती रहीहूं। कविके लिए अनुभूतिका संकट ही सबसे बड़ा संकट होताहै। कवि न दार्शनिक है, न कोई स्मृतिकार है, न नीतिज्ञ है, न राजनीतिज्ञ है। वस्तुत: वह जीवनके सत्यको सौंदर्यके माध्यमसे पाताहै और सौंदर्यको भावनासे पाताहै। तो यह संकट हमारा अंतर्जगत्‌का, संवेग-जगत्‌का, मानसिक जगत्‌का ऐसा है कि यदि वह दूर न हो तो कवि, कवि नहीं रहेगा। चिन्तन अपने-आप प्रधान होजायेगा। हृदय जहां मौन होजायेगा, वहां चिंतन प्रधान होजायेगा और चिंतन हमें निष्क्रिय कर देगा। चिंतन तादात्म्यकी शक्ति नहीं

देता, मतवादकी शक्ति देताहै, तर्ककी शक्ति देताहै। एक चिन्तन दूसरी प्रतिक्रिया जगाताहै, लेकिन भाव दूसरी प्रतिक्रिया नहीं जगाता। भाव भावसे तादात्म्य करताहै। जल जलसे मिल जाताहै। जल शिलासे नहीं मिल सकता। तो वास्तवमें दोनोंमें इतना अंतर है कि हमारा जो आधुनिक काव्य है उसमें संवेगोंकी स्थिति नहीं रही, संवेदनाकी स्थिति नहीं रही, भावनाकी स्थिति नहीं रही, बल्कि उसे हम कविकी दुर्बलता मानने लगे। आज हमारा कवि चिन्तनको ही प्रधानता देताहै और चिन्तनको गाना चाहताहै, मानो चाणक्यकी नीतिको वीणापर गाताहै, पर वास्तवमें वह नीतिभी नहीं है और गीतभी नहीं है।

'नवगीतकार उस नयी कविताके विरोधमें आये, किंतु वेभी यह भूल जातेहैं कि हर चिन्तनको गाकर नहीं हृदयतक पहुंचाया जा सकता। भावको ही गाया जा सकताहै। जो लय है,जो प्रवाह है, वह उस भावसे ही आताहै। कोई नदीको मार्ग नहीं बना देता। मार्ग वह अपने आप बनातीहै। शिलाओंपर टूटतीहै, बिछलती है और अपने तट बनातीहै, मार्ग बनातीहै। भावभी अपने आप अपना मार्ग बना लेताहै। ऐसा कोई चिन्तन कि जिसमें हम योजनाबद्ध होकर कविता लिखतेहैं, कविता नहीं हुआ करती, उसमें काव्य नहीं होता। ('साहित्यिक साक्षात्कार' नामक पुस्तकसे')। □

महादेवीका काव्य

—डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ
प्राध्यापक हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, झालावाड़

छायावादकी बृहत्त्रयीमें पन्त, प्रसाद और निरालाका ही नाम लिया जाताहै, महादेवी वर्माको छोड़ दिया जाताहै। यद्यपि निराला अपने जीवन-कालमें उपेक्षितही रहे परन्तु वादमें उन्हें सबसे बड़े समर्थक मिले रामविलास शर्मा और साथही प्रगतिवाद या मार्क्सवादके समर्थकोंने भी ऊँचा उठानेका प्रयास किया। नन्ददुलारे वाजपेयीने भी उनके काव्यको इस शताब्दीका श्रेष्ठ काव्य माना। प्रसादको ऊँचा उठानेमें डॉ. नगेन्द्रका योगदान रहा, उन्हें आलोचकोंकी एक लम्बी शृंखला मिली जो उनको दोषोंका संकेत करके अधिकांशतः गुणों को ही स्थापित करती रही। पन्तकी स्थिति कुछ मध्यवर्ती रही। उनके छायावादी रूपको डॉ. नगेन्द्रने उभारा और उत्तरवर्ती अन्तश्चेतनावादी काव्यकी मूल चेतनाको आध्यात्मिक मानकर उन्हें लगभग सभी आलोचकोंने आत्मवादी कविही स्वीकार किया। पन्तकी अनेक स्पष्ट घोषणाओंके बादभी उनका प्रगतिवादी काव्य न तो प्रगतिवादियोंके मध्यही आदृत हुआ और न ही सामान्यतः उसे श्रेष्ठ काव्य माना गया। उनके उत्तरवर्ती काव्यको मार्क्सवादी आलोचकोंने सहजानुभूतिके रूपमें स्वीकार न करते हुए कल्पनाके आधारपर ही सृजित माना।

महादेवी वर्माके काव्यमें पन्त जैसा झटकेदार विकास (?) नहीं है। वह प्रारम्भसे जिस भावधाराको लेकर चलाहै उसीका विकास आगे होता गयाहै। विकासकी दिशा एकही रहीहै। दूसरे शब्दोंमें कह सकतेहैं कि महादेवी वर्माने समयकी हवाके साथ बहनेकी अपेक्षा अपने प्रति सच्चे रहनेका ही प्रयास कियाहै और उसका परिणामभी यह रहा है कि जहां उनके काव्यने अपने शाश्वत तत्त्वोंके कारण एक व्यापक स्वीकृति पायी वहां आलोचनाके क्षेत्रमें उनके समर्थकोंके स्थानपर उनके विरोधीही अधिक रहेहैं। उनके विरोधी आलोचक दो प्रकारके हैं—एक तो वे जो आत्मवादी अनुभूतियोंको काव्यका विषय तो मानतेहैं परन्तु महादेवी वर्माके काव्यका अवमूल्यन इस आधारपर करतेहैं कि उनका काव्य अनुभूतियोंपर नहीं अनुभूतिकी कल्पनापर आधारितहै। दूसरे वर्गके आलोचक वे हैं जो महादेवी वर्माकी अनुभूतियोंको काव्यका विषयही नहीं मानते। परन्तु महादेवी वर्माको जो व्यापक जन-स्वीकृति मिली है उससे कसमसाकर बिना विरोध किये यह कसम खाये बैठेहैं कि उनके विषयमें कुछभी नहीं लिखेंगे। ऐसे सभी लोग प्रायः मार्क्सवादी खेमेके हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लके समयतक केवल 'नीहार', 'रश्मि' और 'सांध्य-गीत'का ही प्रकाशन होपायाथा, 'दीपशिखा' सामने नहीं आयीथी। शुक्लजीने उनके विषयमें जो टिप्पणी दीथी वह इस प्रकारहै—"इस वेदनाको लेकर उन्होंने हृदयकी ऐसी अनुभूतियां सामने रखीहैं जो लोकोत्तर हैं। कहांतक वे वास्तविक अनुभूतियां हैं और कहांतक अनुभूतियोंकी रमणीय कल्पना हैं, यह नहीं कहा जा सकता।२ रामचन्द्रशुक्ल जैसा निर्भय, स्पष्टवादी और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तिभी स्पष्टतः यह कहनेका साहस नहीं कर पाया कि महादेवीका काव्य मात्र अनुभूतिकी कल्पना है। वे एक संशय मात्रही व्यक्त कर सके।

यदि रामचन्द्र शुक्लकी सम्पूर्ण वैचारिक पृष्ठभूमिका अनुशीलन किया जाये तो यह बात स्पष्ट होकर सामने आतीहै कि एक ओर तो उनके मस्तिष्कपर भारतीय आस्तिकताके संस्कार इतने गहरे थे कि वे भारतकी अध्यात्मवादी परम्परा और आत्मवादी चिन्तनका विरोध नहीं कर सकतेथे और दूसरी ओर समस्त पाश्चात्य विचारधाराओंके अनुशीलन तथा 'विश्व-प्रपंच' के अनुवादके समय जगत्-विकासकी पाश्चात्य परिकल्पनाओंसे निकटतम सम्पर्क आनेके कारण उनका मन आध्यात्मिकताके ढोंगोंसे बुरी तरह चिढ़ा हुआथा

---

१. पन्तका परवर्ती काव्य—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
२. हिन्दी साहित्यका इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ-६८४

और भौतिकवादी चिन्तनका उनपर इतना गहरा असर था कि वे किसीभी प्रकारकी आध्यात्मिक अनुभूतियोंको काव्यका विषयही माननेके लिए तैयार नहीं थे। भारतीयताको झटकारकर अलग न करपाना उनकी सीमा थी और उनका पाश्चात्य चिन्तन उनकी आधुनिकता थी, उनकी शक्ति थी। 'रहस्यवाद' नामक लेखमें उन्होंने लिखाहै--"मनोमय कोशही प्रकृत काव्य-भूमि है, यही हमारा पक्ष है। इसके भीतरकी वस्तुओंकी कोई मनमानी योजना खड़ीकरके उसे इससे बाहरके किसी तथ्यका--जिसका कुछ ठीक-ठिकाना नहीं—सूचक बताना हम सच्चे कवि का क्या, सच्चे आदमीका काम नहीं समझते।" (१)एक ओर तो इतना स्पष्ट इकतरफा वक्तव्य और दूसरी ओर महादेवीकी अनुभूतियोंकी सच्चाईके आकलनमें अनिश्चितता, दो विरोधी बातें हैं। महादेवीके विषयमें उनकी उपर्युक्त पंक्तियोंको महादेवीके प्रति मात्र शिष्टाचार नहीं माना जासकता। उनका आक्रमण बिना किसी लाग-लपेटके एकदम सीधा होताहै। वास्तवमें महादेवीके विषयमें उनका यह कथन उनके इस विश्वासकी सीमा है कि काव्यका वर्ण्य-विषय आध्यात्मिक नहीं होसकता, साथही इस बातका प्रमाणभी है कि महादेवीके काव्यकी प्रेरणा सच्ची अनुभूतिही है, मात्र उसकी कल्पना नहीं है। रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रतिभासम्पन्न और मर्मभेदी व्यक्तिके विषयमें यह कहनाभी ठीक नहीं है कि वे महादेवीकी काव्य-कल्पनाकी अतिशय रमणीयताके सामने परास्त होगयेथे। वे अनुभूतिकी गहराई और सच्चाईसे युक्त काव्यको ही हर स्थानपर स्वीकृति देतेहैं और महादेवी वर्माका काव्य इस दृष्टिसे किसीभी प्रकार द्वितीय कोटिका काव्य नहीं ठहराया जासकता। यों किसीभी कविकी सभी रचनाएँ न तो एकही कोटिकी होतीहैं और न होसकतीहैं, परन्तु महादेवी वर्मामें यह अन्तर भी बहुत अधिक नहीं है।

आचार्य शुक्लने अपने निबन्ध 'रहस्यवाद'में प्रणयानुभूतिकी जो कोटियां प्रस्तुत कीं, उन्हींको आधार बनाकर यह सिद्ध करनेका प्रयास कियाहै कि महादेवीके काव्यका मूलाधार तो लौकिकही है परन्तु उदात्तीकरणके द्वारा उसे पारलौकिक रूप देदिया गयाहै। प्रियतमके स्थान पर एक विराट्की कल्पना और अभिव्यक्तिके लिए पूजाके साधनोंका प्रयोगकरके उसमेंसे वासना निःशेष कर दीहै। सम्पूर्ण विश्लेषण मनोवैज्ञानिक होनेपर भी अन्ततोगत्वा यह शुक्लजीके इसी विश्वासपर टिकाहै कि अलौकिककी अनुभूति काव्यका विषय नहीं होसकती। उनका आस्थावादी मन ईश्वरको और उसकी अनुभूतिको तो मानताहै पर उसे अरविन्द जैसे कुछ सिद्ध पुरुषों तक ही सीमित बताया गयाहै। 'दीपशिखाकी भूमिका' नामक लेखमें उन्होंने रहस्य भावनाको इस आधारपर अस्वाभाविक बतायाहै कि अनुभूतिका विषय एकदम स्पष्ट होकर सामने आताहै, अस्पष्ट नहीं रहता। मीरा का उदाहरण इसी बातके पक्षमें प्रस्तुत किया गया है।

लौकिक प्रणयानुभूति न तो कोई पाप है और न ही वैसा होना अस्वाभाविक है। सभी छायावादी कवियों के लौकिक आधार बहुत स्पष्ट हैं। प्रसादने उसकी अभिव्यक्ति 'आँसू'में कीहै। 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' परभी उसका कुछ प्रभाव है। पन्तने 'ग्रन्थि' में कुछभी छिपाया नहीं है और निरालाका तो पूरा काव्य ही लौकिक धरातलपर सृजित हुआहै परन्तु जहांतक महादेवीजीका प्रश्न है उनके जीवनका कोईभी ऐसा प्रसंग सामने नहीं आता। अमृता प्रीतम उन्हींके युगकी हैं और उन्होंने अपने काव्यमें अपने लौकिक प्रणयको न केवल स्पष्टतः स्वीकारही कियाहै वरन् निरन्तर रेखांकितभी करती रहतीहैं। ऐसा करनेमें महादेवीके सामनेभी कठिनाई कहाँ थी? कहा जा सकताहै कि हर नारी अमृता प्रीतमकी तरह साहसी नहीं होसकती और महादेवीके पारिवारिक संस्कारभी इस प्रकारके नहीं हैं। यहभी तर्क दियाजा सकताहै कि ऐसे प्रश्नोंपर कवि या कवयित्रीके जीवन कालमें अनुसंधान नहीं होना चाहिये। परन्तु महादेवीका जीवन इतना स्पष्ट और सार्वजनिक रूपसे सामने है कि इस प्रकारका कोईभी अनुसंधान एक अंधेरे बन्द कमरेमें एक ऐसी काली बिल्ली ढूंढ़नेका प्रयास होगा जो उसमें हैही नहीं।

महादेवीका जन्म १९०७ में हुआ और 'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' का प्रकाशन क्रमशः १९३०, १९३२, १९३५, १९३६ और १९४२ में हुआ। 'नीहार' में १९२४ से १९२८ तक के गीत संगृहीत हैं। तात्पर्य यह है कि उनका रचनाकाल १९२४ से १९४२ तक है, उनकी सत्रह वर्षकी आयुसे लेकर ३५ वर्षतक की आयुकी रचनाएं इन संग्रहोंमें हैं। निस्सन्देह यह लौकिक प्रणयकी आयुकी कविताएं हैं और यदि यह मान लिया जाये कि उनका काव्य लौकिक

(१) चिन्तामणि, भाग-२, पृष्ठ ७३-७४.

प्रणयका आधार लेकर ही सृजित हुआहै तो अनेक ऐसे प्रश्न सामने आतेहैं जिनका उत्तर ढूंढ़े नहीं मिलता।

सबसे पहला प्रश्न यह है कि यह आयु-सीमा आत्माभिव्यक्तिकी सर्वाधिक बलवती स्पृहाका समय है, क्या कोईभी व्यक्ति इस आयुमें उदात्तीकरणकी उस सीमातक पहुंच सकताहै जिस धरातलपर महादेवी वर्माके काव्यकी रचना हुईहै? डॉ. नगेन्द्रने जिन गीतोंमें लौकिक प्रणयकी अनुभूति मानीहैं क्या वे कबीरके "नैननकी करि कोठरी..." के स्तरको पहुंच सकेहैं? जब कबीरकी उपर्युक्त अभिव्यक्ति अलौकिक और अदृष्ट प्रियतमके प्रति मानी जातीहै तो क्या कारण है कि महादेवीके गीतोंकी अनुभूति लौकिक प्रणयसे उद्भूत मानी जाये?

मेरा दूसरा प्रश्न यह है कि यदि उनकी अनुभूतिका आधार लौकिक प्रणयही होता तो उनकी कविताओंमें कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूपमें पुरुषका वर्णन आताही। अन्तश्चेतनामें बसा रूप किसी-न-किसी माध्यमसे तो व्यक्त होताही। उनके काव्यमें केवल एकही स्थानपर एक व्यक्तिवाचक संज्ञा आयीहै—'सिद्धार्थ' १, इसी कवितामें कृष्णको 'वृन्दा विपिनवाले' शब्दसे अभिहित कियागयाहै। इसके अतिरिक्त उनके काव्यमें कोईभी अन्य व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं मिलेगी। क्या लौकिक प्रणयकी सीमाका संगोपन इस सीमातक सम्भव है? यह तो सभीने स्वीकार कियाहै कि उनके काव्यमें वासना और शारीरिकताका एकान्त अभाव है। यदि अनुभूतिका धरातल लौकिक होता तो क्या शारीरिकता और वासनाका ऐसा एकान्त अभाव सम्भव था।

महादेवीके काव्यमें रूपकोंकी भरमार है। इन गीतोंमें जिस प्रियतमका वर्णन है उसके सूक्ष्म और अमूर्त सौंदर्यकी अभिव्यक्ति प्रकृतिके विभिन्न उपकरणोंके माध्यमसे की गयीहै। कहींभी पुरुष-बिम्ब सामने नहीं आता। उसके आगमनकी कल्पना और उससे व्याप्त वातावरणका चित्रणही प्रमुख है या फिर प्रकृतिके माध्यमसे आगमिष्यत्पतिकाके अनुभवोंकी व्यंजना की गयीहै। प्रियतमको कहीं-कहीं प्रतीक्षित पथिक अवश्य कहा गयाहै, और बस इतनाही, शेष उसके पुरुष रूपका कोई उभार नहीं, परन्तु महादेवीके अधिकांश रूपकोंका केन्द्र नारीही है। यदि यह सत्य है कि छायावादी कवियोंकी अन्तश्चेतनामें बसी वासनाने उनके द्वारा सुन्दर नारी-बिम्बोंका निर्माण कराया तो निश्चितही महादेवी वर्माके काव्यमें नारी-बिम्बोंके स्थानपर पुरुष-बिम्ब ही होने चाहियें थे, परन्तु पुरुष-बिम्बोंका वहां सर्वथा अभाव है। रूपसि, सजनि, सखि आदिके रूपमें ही प्रकृतिको सम्बोधित किया गयाहै और महादेवीके ये नारी-सौंदर्यके बिम्ब अपने चरमोत्कर्षपर हैं। क्या यह आत्मरतिकी अभिव्यक्ति है? उत्तर नकारात्मकही होगा क्योंकि इनमें से अनेक गीतोंमें महादेवीजी इन बिम्बोंके साथ तटस्थ हैं। जहां वे स्वयंको उपस्थित करतीहैं वहां उनके गीतोंका सामान्य ढांचा यह है कि वे प्रकृतिके विभिन्न उपकरणोंके सौन्दर्यको ऐसी नारीके विभिन्न अंगों, क्रियाओं और मानसिकताओंके आरोपण द्वारा प्रस्तुत करतीहैं जो प्रियतमसे मिलनेको उद्यत है परन्तु अन्तमें वे अपनी विरहाकुलता, वेदना और पीड़ाके वैशिष्ट्यको उसके कण्ट्रास्टके माध्यमसे उभारतीहैं। प्रकृति सच्चे अर्थोंमें उनकी सखी है। ये सुन्दर नारी-बिम्ब महादेवीकी आत्मरति नहीं, उनकी सौंदर्यानुभूतिके परिणाम हैं और यह सौंदर्यानुभूति निश्चितही उनको एक उच्च स्तर प्रदान करतीहै। अतः हमारी स्थापना है कि महादेवीके काव्यमें नारी-बिम्बोंका आधिक्य यह सिद्ध करताहै कि उनकी प्रणयानुभूतिका आधार लौकिक प्रियतम नहीं है, विशेष रूपसे उस स्थितिमें जबकि पुरुष बिम्बोंका वहां सर्वथा अभाव है।

महादेवी वर्माने काव्यके साथ-साथ चित्रोंके माध्यमसे भी अपनी भावाभिव्यक्ति कीहै और काव्य-कृतियोंके अलंकरणके रूपमें जो चित्र आयेहैं उनमें केवल तीनही पुरुष चित्र हैं—एक भगवान बुद्धका जो आहत हंसका तीर निकालकर उसे अपनी करुणाका दान कर रहेहैं, दूसरा मार्ग-पथिकका जो हाथमें लकुटि और कन्धेपर अपनी थैली लटकाये आगे फैले हुए अनन्त मार्गपर बढ़ता जा रहाहै, तीसरा है घनघोर तूफानसे भरे सागरपर अपनी नावको अनन्तकी ओर ले जानेवाले नाविकका। प्रथम चित्रमें बुद्धकी आकृति स्पष्ट है परन्तु उसमें करुणाका भावही व्यंजित होताहै, माधुर्य या शृंगारका लेशभी उसमें नहीं है। निश्चितही यह चित्र आलम्बन रूप है परन्तु किसीभी स्थितिमें यह माधुर्य-भावका चित्र नहीं है। शेष दो छायाचित्र हैं, उनमें पुरुषाकृतियां अस्पष्ट है और ये चित्र आलम्बन नहीं है। महादेवी वर्माने इन चित्रोंमें स्वयंका तादात्म्य मार्ग-पथिक और नाविकके साथ कियाहै। महादेवीके चित्रोंकी यह स्थिति

---

(१) नीरजा, गीत५३; यामा पृष्ठ १६४.

भी मेरी उपर्युक्त धारणाको ही पुष्ट करतीहै ।

कुछ आलोचकोंके अनुसार वेदनाही महादेवीके काव्यका मूल स्वर है । कोई इस कथनसे शत-प्रतिशत सहमत न भी हो तोभी यह स्वीकार करनाही होगा कि उनके काव्यमें यह भाव आद्यन्त व्याप्त है । 'दीपशिखा' के गीतोंमें जहाँ कवयित्रीका आत्मविश्वास बड़ीही दृढ़ताके साथ व्यक्त होताहै, वहाँभी वेदनाका अभाव नहीं है । कहीं-कहीं यह वेदना जगत्‌को लेकर है परन्तु अधिकांशत: वह आत्म-वेदनाके ही रूपमें सामने आयाहै । डॉ. सावित्री सिन्हा कहा करतीथीं कि छायावादी युगकी ही नहीं द्विवेदी युगकी भी विशेषता वेदना भावही है । करुणा, रुदन, विरह और एक विशेष प्रकारकी छटपटाहट द्विवेदी युगमें भी थी और छायावादी युगमें भी रही । छायावादी रूमानियतके स्थानपर जब काव्यमें बौद्धिक नियंत्रणका युग आया तभी यह वेदना भाव समाप्त हुआ और आक्रोश, आवेग तथा आन्तरिकताकी समृद्धि जैसे वर्ण्य-विषय काव्यमें प्रवेश पा सके । 'साकेत' में उर्मिलाको आधार बनाकर यह करुणाही सामने आयीहै । रामनरेश त्रिपाठीके 'मिलन' और 'पथिक' का मूल भावभी वेदनाही है और निश्चितही माधुर्य प्रेमका उसमें गहरा योगदान है और इसी प्रेमसे उत्पन्न विरह उदात्तीकृत होकर देशप्रेम और समाज-कल्याणमें बदल गयाहै । परन्तु, इसी कारण यह नहीं कहा जासकता कि उर्मिलाकी वेदनाकी अभिव्यक्तिका उत्स मैथिलीशरण गुप्तके माधुर्य-प्रेमकी भावना है या रामनरेश त्रिपाठीके काव्यमें उनके लौकिक विरहकी अभिव्यक्ति है । महादेवी वर्माके विषयमें यह प्रश्न बड़ीही स्वाभाविकताके साथ उठताहै कि क्या लौकिक प्रणयसे उत्पन्न वेदना भाव बिना किसी कम-बढ़तके प्रारम्भसे अन्ततक सत्रह वर्षके अन्तरालमें निरन्तर एक-सा रह सकताथा ? निश्चितही इस वेदना-भावका कारण लौकिक प्रियतमका विरह नहीं, वह युग-मनोवृत्ति है जो द्विवेदी युगसे लेकर छायावादके पराभवके बादभी कुछ दिनोंतक छायी रही । महादेवीके काव्यमें प्रारम्भसे अन्ततक यह भाव लगभग एक-सी गहराईके साथ विद्यमान है, पूर्णत: सहज है, उसमें कृत्रिमता नहीं है । रुदन वास्तविक है । उनके गीतोंको पढ़ते-पढ़ते कभी-कभी पाठक सोचने लगताहै कि 'आखिर कवयित्रीको कष्ट क्या है ?' यदि यह लौकिक प्रणयजन्य वेदनाही होती तो पाठकका उसके साथ साक्षात्कार होताही परन्तु महादेवीके काव्यका औद्धत्य यही है कि उसमें वेदनाका वर्णन तो अत्यन्त गहरा है परन्तु उसका कारण एकदम स्पष्ट होकर सामने नहीं आता । हमारी स्थापना है कि लौकिक प्रणयका इतना संगोपन किसीभी नारी या पुरुषके लिए सम्भव नहीं है कि उसका कोई तन्तु काव्यमें दृष्टिगत न हो ।

कुछ आलोचकोंने महादेवीके अभावको सीधे-सीधे भौतिक प्रियतमसे जोड़ा है जो हमें स्वीकार्य नहीं है । अन्त:करणमें जिस अभावकी अनुभूति होतीहै, वह अनिवार्यत: एक जटिल प्रक्रिया है, उसमें अन्तश्चेतनापर पड़े कितने प्रभाव गुम्फित है, कहना असम्भव है । जिन्हें भरा-पूरा प्रेम मिलताहै, मिलनकी गहन अनुभूति होतीहै, आन्तरिक समृद्धिकी अनुभूति होतीहै, उनके जीवनमें भी ये कुछही क्षण होतेहैं, व्यक्ति पुन: एक रिक्तताका अनुभव करताहै, अभावका अनुभव करताहै जो मूलत: प्रेमसे उद्‌भूत नहीं होता । उसके अन्य अनेक कारण हुआ करतेहैं । रवीन्द्रनाथ टैगोरके जीवनमें कोई अभाव नहीं था । क्या 'गीतांजलि' में जिस विरहकी अभिव्यक्ति हुईहै वह किसीभी प्रकारसे भौतिक विरहकी अनुभूति कहीजा सकतीहै ? उनकी सौन्दर्यानुभूति और महादेवीकी सौन्दर्यानुभूतिमें कोई विशेष अन्तर नहीं है । रवीन्द्रमें वेदना भावकी विरल व्याप्ति न होकर सौन्दर्यकी गहन अनुभूति है जबकि महादेवीमें अपनी अस्मिताको सिद्ध करनेकी छटपटाहट अधिक है । दोनोंका प्रयास अलौकिक सौन्दर्यकी अनुभूतिही है और यह माननेमें मुझे तनिकभी संकोच नहीं कि टैगोरमें यह प्रयास अपेक्षाकृत अधिक जटिल स्थितियोंतक पहुंच सकाहै ।

यदि ईश्वर और ईश्वरानुभूतिका कोई अस्तित्व नहीं है तो तुलसी, कबीर, सूर, मीरा, तुकाराम आदिका जीवन असफल जीवनही मानना होगा । इन सन्तोंने सम्पूर्ण जीवन जिस तत्त्वकी साधनामें लगा दिया, यदि वह कोई तत्त्वही नहीं है तो भारतके ही नहीं सम्पूर्ण विश्वके वे लोग जो ईश्वरार्पित जीवन जीते रहे, एक व्यर्थका जीवनही जीये! वास्तविक स्थिति यह है कि आजके कट्टर मार्क्सवादीमें भी यह साहस नहीं है कि तुलसीके जीवनको असफल कह सके । यह एकदम एक अलग बात है कि वह इसके लिए अलौकिक साधनाके स्थानपर लौकिक साधनाका अनुसंधान करे । यदि श्री अरविन्दमें ईश्वरानुभूति मानी जा सकतीहै तो महादेवीमें उसकी अनुपस्थिति केवल इसीलिए सिद्ध नहीं होसकती कि श्रीअरविन्द एक 'पहुंचे हुए' साधक थे जबकि

'पहुंचे हुए' शब्द अव्याख्यायित ही रह जाताहै। वास्तवमें महादेवीकी प्रणयानुभूतिका प्रश्न सगुणता और निर्गुणताके साथ न जुड़ा होकर ईश्वरके अस्तित्वकी स्वीकृति और अस्वीकृतिके साथ जुड़ा हुआहै। सभी सगुण कवि अनुभूतियोंकी गहराईमें उतरकर निर्गुण और निराकारकोही स्वीकृति देते दिखायी देतेहैं। सभीकी अनुभूतियाँ स्पष्टतासे जटिलताकी ओरही गयीहैं।

किसीभी पाठकको उपर्युक्त विवेचन अधूरा और अप्रामाणिकही लगेगा यदि इसकी पुष्टि महादेवीके काव्य द्वारा नहीं होती। महादेवीके महत्त्वसे जुड़े सभी प्रश्नोंका उत्तर निश्चितही महादेवीका काव्यही है अतः उसकी मूल प्रकृति स्वरूप और शिल्पपर एक दृष्टिपात असंगत न होगा।

महादेवीके काव्यकी मूल प्रकृति, स्वरूप और शिल्प

महादेवीके काव्यका मूल वर्ण्य-विषय जीवन और जगत्की नश्वरता, उस असीम शक्तिकी शाश्वतता और उसके प्रति आत्माके रागको लेकर चलताहै परन्तु फिरभी वह न तो पलायन है और न ही संन्यासकी ओर लेजाताहै। जीवन और जगत्की नश्वरताको प्रस्तुत करनेमें वे अनेक स्थानोंपर कबीर, मीरा और सूरके समकक्ष हैं अन्तर केवल इतनाही है कि महादेवीकी भाषामें वह तीखापन नहीं जो कबीरमें है और इस दुनियाँका वैसा बहिष्कार नहीं है जो मीरा और सूरमें है।

'नीहार' के पाँचवे गीतमें संसारकी अस्थिरता और कालकी निष्ठुरताके सामने संसारके मादक सौन्दर्यमें मतवाले लोगोंको स्पष्टतः पागलही कहा गयाहै।[१] तेरहवां गीत कहताहै कि आकाशकी नीलिमाकी तरह विस्तृत तथा असीम करुणासे युक्त लोगभी आज धूलमें लोट रहेहैं। अधरोंका वह अरुणोदयी स्मित-सौन्दर्य जिसके निर्माणमें दैव शक्तिने केवल एकही तत्त्व—सुषमाका उपयोग कियाथा, जो पुष्पके समान कोमल अस्तित्व रखतेथे वेभी पत्थरकी समाधिमें सोरहेहैं। इस गीतमें यह सब कुछ भूमिकाके रूपमें है, मुख्य बात यह है कि भौतिक जीवनकी जिन अतृप्त

१. आकर तब अज्ञात देशसे, जाने किसकी मृदु झंकार
गा जातीहै करुण स्वरोंमें, कितना पागल है संसार।
—(यामा पृ. ६१

आकांक्षाओंको लेकर वे सभी सो गयेहैं उन भौतिक आकांक्षाओंकी जागृति कहीं कवयित्रीमें न हो जाये, अतः वह अपनी आत्म-ज्योतिकी क्षीणताको तीव्र प्रकाशमें बदलना चाहतीहै।[१] भक्त कवियों द्वारा प्रस्तुत संसारकी नश्वरताका वर्णन—'जा दिन मन पंछी उड़ जैहैं' इत्यादि—मनमें एक प्रकारकी भयानकता और मृत्युके आतंककी अनुभूति करातीहै परन्तु महादेवीका मृत्यु-वर्णन हमें बड़ी कोमलताके साथ स्पर्श करके हमारी करुणा और संवेदनाको जगाताहै :—

दैव-सा निष्ठुर, दुःख-सा मूक
स्वप्न-सा, छाया-सा अनजान
वेदना-सा तम-सा गम्भीर
कहांसे आया वह आह्वान
हमारी हंसती चाह समेट
ले गया कौन तुम्हें किस देश?
—यामा, पृष्ठ ३५

विकसते मुरझानेको फूल
उदय होता छिपनेको चन्द
शून्य होनेको भरते मेघ
दीप जलता होनेको मन्द
यहां किसका अनन्त यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!
—यामा, पृष्ठ ४२

जहाँ रोताहै मौन अतीत,
सखी तुम हो ऐसी झंकार
जहां बनती आलोक समाधि,
तुम्हीं हो ऐसा अन्धाकार
—यामा, पृष्ठ ४७

रश्मि' के गीत ३, ६, १७ और २६ इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतोंमें भी संसारकी नश्वरताको उस असीम शक्तिके खेलके रूपमें बड़ीही कोमलताके साथ प्रस्तुत किया गयाहै। भक्त कवियोंकी तुलनामें महादेवीका वैशिष्ट्य यह है कि भक्त कवियोंने कहींभी मृत्युकी कामना नहीं कीहै परन्तु महादेवीमें मृत्युके प्रति एक हल्का-सा आकर्षण मिलताहै। 'सांध्यगीत' और 'नीरजा' में संसारकी नश्वरताका स्वर उतना मुखर नहीं है जितना विरहका।

इस जगत्को नश्वर माननेवाला आत्मवादी दर्शन उस परम तत्त्वको ही परिवर्तनका आधार मानताहै जो स्वयं अनश्वर रूपसे सभी परिवर्तनोंके मूलमें विद्यमान रहताहै। समस्त जगत्में एकही मूल शक्ति व्याप्त है, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति जो कही-कहीं वर्णनात्मक हो उठीहै, महादेवी वर्माके गीतोंमें स्पष्ट रूपसे मिलतीहै। 'रश्मि' के गीत क्रमांक २२ में कवयित्री उस समयकी कल्पना करतीहै जब संपूर्ण संसार परिवर्तन विहीन था, न दिन था, न रात थी। उस समय वह कौन-सी शक्ति थी जो सृष्टिके प्रारम्भमें स्पन्दनहीन और विकारहीन रूपमें अकेली सोयी हुईथी? उसमें जब सृष्टिकी आकांक्षा जागृत हुई तो त्रिगुणात्मक रंगोंसे उसने इस सृष्टिका निर्माण कर दिया। उस शक्तिके विषयमें उनकी जिज्ञासा है :

पिघल गिरिसे विशाल बादल,
न कर सकते जिसको चंचल;
तड़ितकी ज्वाला घन गर्जन,
जगा पाते न एक कम्पन;
उसी नभ-सा क्या वह अविकार,
और परिवर्तनका आधार?
पुलकसे उठ जिसमें सुकुमार,
लीन होते असंख्य संसार।
—यामा, पृष्ठ १०७

भारतीय दर्शनके अनुसार आत्मा इसी मूल शक्तिका एक छोटा-सा अंश है जो उसीकी तरह अक्षर और अनश्वर है और इस जीवनका लक्ष्य आत्माका परमात्मामें लीन होनाहै। सारा दर्शन, धर्म और साधना इसी लक्ष्यकी ओर उन्मुख है और महादेवीके काव्यका लक्ष्य भी इसी ओर उन्मुखहै। अद्वैत भावकी व्यञ्जना करनेवाले गीतों की संख्या महादेवीके काव्यमें पर्याप्त है। 'रश्मि' के गीत १३ उपालम्भके रूपमें आत्मा-परमात्माके साथ अपना अभेदत्व स्थापित करतीहै—

चाहकी मृदु उंगलियोंने छू हृदयके तार
जो तुम्हींमें छेड़दी, मैं हूं वही झंकार।

नींदके नभमें तुम्हारे स्वप्न-पावस-काल,
आँकता जिसको वही मैं इन्द्रधनु हूं बाल!
—यामा, पृष्ठ ६०

बीसवां गीत निराला द्वारा रचित 'तुम तुंग हिमालय

---

१. कन-कनमें बिखरी सोतीहै,अब उनके जीवनकी प्यास,
जगा न दे हे दीप! कहीं,उसकोतेरा यह क्षीण प्रकाश।
—यामा, पृष्ठ १५

शृंग...' की ओर बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेताहै :

तुम हो विधुके बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर, कौतूहलके बाण !

—यामा, पृष्ठ १०१

'नीरजा' का दसवां गीत इस दृष्टिसे अत्यधिक लोकप्रिय हुआहै। इसके प्रारम्भिक अंशोंमें कवयित्री स्वयंको एक साथ ऐसी वस्तुओंके युग्मके साथ एकाकार करतीहै जो कभी एक नहीं हो सकते, जिनमें से एक दूसरेका कारण है—'कूलभी हूं, कूलहीन प्रवाहिनीभी हूं' 'नीलघनभी हूं सुनहली दामिनीभी हूं' 'अधरभी हूं और स्मित चाँदनीभी हूं'। 'परन्तु अन्तमें आतेआते यह आवेश अपनी पूर्णतापर इस प्रकार पहुंचता है—

नाशभी हूं मैं अनन्त विकासका क्रमभी,
त्यागका दिनभी चरम आसक्तिका तमभी
तारभी आघातभी, झंकारकी गतिभी
पात्रभी मधुभी मधुपभी, मधुर विस्मृतिभी
अधरभी हूं और स्मितकी चाँदनीभी हूं।

—यामा, पृष्ठ १३९

'दीपशिखा' के गीत ४२ में कवयित्रीने स्वयंको दीपके साथ एकरूप कर आत्मतत्त्वके मूल स्रोतकी ओर सुन्दर बिम्बके माध्यमसे संकेत कियाहै :

छू नखोंकी कान्ति चिर संकेतपर जिनके जला तू
स्निग्ध सुधि जिनकी लिए कज्जल दिशामें हँस चला तू।
परिधि बन घेरे तुझे वे उंगलियां अवदात।

—दीपशिखा, पृष्ठ १३९

तात्पर्य यह है कि जीव, जगत् और प्रकृतिकी अभिन्नताकी स्थापना महादेवीके काव्यमें बहुत स्पष्ट है। हां, कहीं-कहीं वह अवधारणात्मक होउठीहैं। इसीको डॉ.नगेन्द्र Studied efforts मानतेहैं परन्तु ऐसे गीतोंकी संख्या बहुत कम है। महादेवीके काव्यमें प्रकृतिकी भूमिका अनेक प्रकार की है। जीव-जगत् और ब्रह्मकी एकात्मताकी स्थापना उसका एक पक्ष है।

महादेवीके काव्यकी सारी कठिनाई इस बिन्दुसे उठतीहै कि सम्पूर्ण प्रकृतिमें उन्हें उस असीम सत्ताके जो संकेत मिलतेहैं, उन सभी संकेतोंको वे प्रियतमके संकेतोंके रूपमें लेतीहैं। तात्पर्य यह है कि प्रकृतिको ईश्वरके संकेतों का प्राप्त होना दर्शनमें भी स्वीकार्य है और काव्यमें भी, परन्तु कठिनाई तब पैदा होतीहै जब कवयित्री इस असीम

और निराकार शक्तिको माधुर्य-भावसे ग्रहण करतीहैं। यहींसे रहस्यवादकी भावधाराभी प्रारम्भ होतीहै। यहीं यह मतभेद सामने आताहै कि जिस प्रियतमके प्रति महादेवीका सारा काव्य निवेदित है, वह असीम प्रियतम है या लौकिक ?

महादेवीके काव्यमें प्रकृतिकी अनेक भूमिकाएं हैं। प्रथम भूमिका तो यह है कि प्रकृतिके क्रिया-व्यापार उन्हें प्रियतमका सन्देश देतेहैं, संकेत देतेहैं, उसके आगमनका आभास देतेहैं, उस पार चलनेके लिए प्रेरित करतेहैं। दूसरी भूमिका यह है कि वह सखि, सजनि, रूपसीके रूपमें प्रियतमसे मिलनेके लिए शृंगार कर रहीहै परन्तु कवयित्री स्वयंको उससे एक कदम आगे सिद्ध कर देतीहै। एक अन्य भूमिका यहभी है कि कवयित्री प्रकृतिके किसी एक उपकरणके साथ अपना तादात्म्य करतीहै, कहीं यह तादात्म्य पूर्ण है और कहीं थोड़ी दूरतक चलताहै और फिर कवयित्री छिटककर अलग होजातीहै और अपना वैशिष्ट्य सिद्ध करतीहै।

नीहारके गीत ४३में कवयित्रीको अपने स्वप्नोंके मोती प्रकृतिके विभिन्न उपकरणोंमें बिखरे दिखायी देतेहैं और वह अपनी धुंधली प्राण-ज्योतिको लेकर उन्हें ढूंढ़नेका प्रयास करती हैं तो उसे अनुभव होताहै कि उसका प्रियतम धीरे-धीरे उसके मानसमें प्रवेशकर गयाहै, जीवनकी मधुमयी मदिराको लुढ़काकर उसमें विरहकी पीड़ा भर दीहै। गीत ४४ में प्रियतमको प्रकृतिके विभिन्न उपकरणोंके सर्वोत्कृष्ट गुणोंसे निर्मित बतायाहै। प्रकृतिकी विभिन्न क्रियाएं उसका रूप प्रस्तुत करतीहैं :

> उषाके छू आरक्त कपोल
> किलक पड़ता तेरा उन्माद
> देख तारोंके बुझते प्राण
> न जाने क्या आजाता याद ?
> हेरतीहै सौरभकी हाट
> कहो किस निर्मोहीकी बाट ?
>
> —यामा, पृष्ठ ६६

इसी प्रकार गीत ४५ में प्रकृतिके सभी उपकरण जायसीके वर्णनकी तरह उसी असीम शक्तिको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील दिखायी पड़तेहैं। प्रकृतिकी क्रियाओंसे उस अनन्त शक्तिकी अनुभूतिका स्वर 'रश्मि' में औरभी मुखर है। 'चुभतेही तेरा अरूण बान' किस सुधि बसन्तका 'सुमन तीर' 'सजनि! कौन तममें परिचित सा' आदि अनेक गीत इसी प्रकारके हैं।

इस अनुभूतिसे उत्पन्न मिलनाभिलाषाके स्वरोंमें कहीं कातरताहै, कहीं गहरी निराशा, कहीं उपालम्भ है और कहीं मृत्युकी कामना। यही अभिव्यक्तियां कुछ इस प्रकारकी हैं जो कवयित्रीके प्रेमका आधार लौकिक सिद्ध करनेके लिए काममें लायी जातीहै। 'जो तुम आ जाते एकबार' 'फिर एक बार बस एक बार' 'गलाकर मेरे सारे अंग करा दो आंखोंका निर्माण' 'अलि मैं कैसे उनको पाऊं क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?' आदि अभिव्यक्तियोंमें लौकिकताकी गन्ध आतीहै।□□

[महादेवी वर्मा संबंधी अन्य सामग्री पृष्ठ ५५ पर देखें]

महादेवी संबंधी सामग्री तैयार करनेके लिए निम्न प्रकाशकोंने महादेवी वर्माके निम्न प्रकाशन कृपा पूर्वक भेजे हैं, 'प्रकर' प्रकाशकोंका आभारी है :

१. साहित्य भवन प्रा. लि., ९३, के. पी. कक्कड़, रोड, इलाहाबाद

(क) नीहार (सप्तमावृत्ति), मूल्य : ५.०० रु.
(ख) रश्मि (सप्तमावृत्ति), मूल्य : १०.०० रु.
(ग) परिक्रमा (पंचमावृत्ति), मूल्य : ७.०० रु.
(घ) संभाषण, मूल्य : ६.०० रु.

२. भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७ कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-१

(क) महादेवीकी प्रतिनिधि कविताएं—सम्पा. डॉ. रामजी पाण्डेय; मूल्य ३५.०० रु.

महादेवीकी प्रतिनिधि गद्य रचनाएं—सम्पा. डॉ. रामजी पाण्डेय; मूल्य : ४५.०० रु.

३. राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६

(क) आत्मिका—महादेवी वर्मा; मूल्य : ३०.०० रु.
(ख) दीपगीत—महादेवी वर्मा; मूल्य : ३०.०० रु.
(ग) नीलाम्बरा—महादेवी वर्मा; मूल्य : ३०.०० रु.

साहित्यमें मानव-जीवन और लोकवादी विवेचनके द्रष्टा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[1]

—डॉ. प्रेमशंकर.

१९८४ आचार्य रामचन्द्र शुक्लका जन्मशती वर्ष है और इस दृष्टिसे चिन्तामणिके तीसरे भागका प्रकाशन एक प्रासंगिक प्रयत्न है । आचार्य रामचन्द्र शुक्लने हिन्दी समीक्षाको बौद्धिक आधार दिया, कविताके लोकवादी विवेचनका प्रयत्न किया और जन्मशती हमें अवसर देती है कि हम रचनाकी बदली हुई भूमिमें देखें कि उनका व्यक्तित्व आज हमारे लिए कितना उपयोगी है, हम उनसे कौन-सी राह पा सकतेहैं । कुछ ऐसे पक्ष रहेहैं जिन्हें लेकर आचार्य शुक्लपर कभी पूर्वाग्रहके आरोप लगाये गयेथे — जैसे सूरकी तुलनामें तुलसीको अधिक अंक देनेका उनका आग्रह । इसी प्रकार छायावादके विषयमें उनकी टिप्पणियों को अनुदार कहा गया और इस मुद्देपर उन्हें चुनौती मिली अपनेही प्रतिभावान् शिष्य आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी से । पर आज जब हम छायावादी काव्यपर विचार करते हैं तो उसकी सीमाएं स्पष्ट दिखायी देतीहैं और यह विचित्र संयोग है कि दो भिन्न दिशाओंके समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और मुक्तिबोध 'कामायनी'में श्रद्धा-इड़ाके चरित्रोंको लेकर लगभग एक-जैसे विचार व्यक्त करतेहैं ।

डॉ. नामवरसिहने अपनी लंबी भूमिकामें आचार्य शुक्लकी समीक्षाके तीन चरणोंका उल्लेख कियाहै : १९००-१९०७, १९०८-१९१९, १९२०-१९४१ । इसे वे गुणात्मक विकासके रूपमें देखतेहैं और रचनाओंके आधार पर प्रमाणित करतेहैं कि शुक्लजी अपने लेखनमें निरन्तर संशोधन-परिवर्तन करते रहे, जो केवल भाषिक स्तरपर नहीं है, वरन् विचारोंके विकासकी भी सूचना देताहै । आरंभमें शुक्लजी प्रेमघनजीकी छायामें थे, पर यहांभी उनकी दृष्टि सचेत और सजग थी । क्रमशः उन्होंने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्वका निर्माण किया, इतिहास और समयके यथार्थको स्वीकारा । इसे नामवर आचार्यश्रीकी 'लोकबद्ध' दृष्टि कहतेहैं जो अलंकारवादी धारणाका विरोध करती हुई, रीतिवादी शब्दक्रीड़ासे मुक्तिका मार्ग दिखातीहै । इस प्रकार आचार्य शुक्लकी चेतनाका निरन्तर विकास होताहै । यह केवल लेखनकी वयस्कता, अथवा प्रौढ़ताका प्रश्न नहीं है, वरन् जीवन-दृष्टिकी परिपक्वता का है । कुछ लेखक कभी वयस्क नहीं होते, और न समय के यथार्थको ही स्वीकार कर पातेहैं और रचनाकी लंबी यात्राके बावजूद सार्थक नहीं होपाते—एकही बिन्दुपर खड़े जुगाली किया करतेहैं । नामवरसिंहने आचार्य शुक्लको अपनी उदार मार्क्सवादी समीक्षा दृष्टिके निकट पायाहै । उनका कहनाहै : **शुक्लजीने हिन्दीमें विज्ञानसम्मत भौतिकवादी दृष्टिका सूत्रपात किया ।**' और यह बात एडिसनके लेखके सन्दर्भमें कही गयीहै जिसका अनुवाद आचार्य शुक्लने कियाथा । नामवरजी आचार्य शुक्लके लिए रसानुभूतिकी यथार्थवादी धारणा, क्रान्तिकारी सौन्दर्यशास्त्र जैसे शब्दोंका उपयोग करते हुए 'कविता

---

१. चिन्तामणि (तीसरा भाग) : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; सम्पादक : डॉ. नामवर सिंह । प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२ । पृष्ठ : २७६; डिमा. ८३; मूल्य : ५०.०० रु. ।

क्या है' निबंधकी लोकवादी दृष्टिको रेखांकित करतेहैं। शुक्लजीके प्रसिद्ध कथन : 'कवितासे मनुष्य भावकी रक्षा होतीहै।' को उद्धृत करते हुए वे लिखतेहैं : अत्यंत सामान्य प्रतीत होनेवाला यह छोटासा वाक्य वस्तुतः हिन्दी साहित्यमें नये मानववादका बीजमंत्रहै।'

आचार्य शुक्लके जिन छायानुवादोंका विवेचन नामवरसिहने कियाहै : कार्डिनल न्यूमनकी पुस्तक 'दि आइडिया ऑफ ए यूनिवर्सिटी'के 'लिटरेचर' शीर्षक निबंध का अनुवाद 'साहित्य' और दूसरा जोसेफ एडिसनके निबंध 'प्लेजर्स आफ इमैजिनेशन'का अनुवाद 'कल्पनाका आनन्द।' इनका प्रकाशन १९०४-०५ में हुआ—रचनाके पहले दौर में। शुक्लजीने अनुवादके लिए इन्हें क्यों चुना(और अनुवाद करते हुए अपनी मौलिक निष्पत्तियांभी प्रस्तुत कीं) यह एक विचारणीय प्रश्न है। जाहिर है कि शुक्लजीने निबंधोंके विचारोंको अपनी चेतनाके समीप पाया और नामवरजीका विचार है कि आचार्य शुक्लने एडिसनके कुछ सूत्रोंको बढ़ाते हुए रसानुभूतिकी यथार्थवादी धारणासे काव्यशास्त्रको क्रान्तिकारी अवधारणा दी। उनका विचार है कि 'अन्ततः शुक्लजीके काव्यशास्त्रीय चिन्तनके विकास में 'कल्पनाके आनन्द'की नियामक भूमिका स्वीकार करते हुएभी यह तथ्य अनदेखा नहीं किया जासकता कि उनकी मूल्यांकन पद्धतिके ढांचेमें कल्पना काव्यका साधनही है, साध्य नहीं। साध्य तो अनुभूतिही है।'

डॉ. नामवरसिंहने आचार्य रामचन्द्र शुक्लके निबंध 'कविता क्या है' की चर्चा किंचित् विस्तारसे कीहै, जो बार-बार परिवर्तित-परिवर्धित होता रहा। उन्होंने उद्धरणोंसे यह प्रमाणित करनेमें निश्चित सफलता पायीहै कि शुक्लजी अलंकारवादका विरोध करते हुए एक नयी मानववादी अवधारणाकी प्रतिष्ठा करतेहैं और १९०९-२० की स्थितियोंको देखते हुए यह निश्चयही एक प्रगतिशील धारणा है। नामवरजी इस निबंधके विषयमें एक और महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करतेहैं : 'इस प्रकार कविताके द्वारा मनोवेगोंकी उत्तेजनासे मनुष्यमें सौन्दर्यबोधही नहीं बल्कि अन्यायबोधभी जाग्रत होताहै और इसप्रकार उसका जीवन कई गुना अधिक होजाताहै। इसप्रकार शुक्लजीने कविताके संसारमें मनोवेगोंके महत्त्वको प्रतिष्ठित किया।' मनोविकार-संबंधी शुक्लजीके निबंध इसीका एक रचनात्मक पक्ष हैं। नामवरजीकी लंबी भूमिका आचार्य शुक्लके लोकवादी रूपको उभारतीहै और इसे वे शुक्लजीके ही उद्धरणोंसे पुष्ट करतेहैं। 'दूसरी परम्पराकी खोज' पर लिखते हुए जिन लोगोंने टिप्पणी कीथी कि बड़ी लकीर को छोटी करना जरूरी नहीं है, उन्हें संतोष होगा कि नामवरसिंहने आचार्य शुक्लके विकासमान व्यक्तित्वका जायजा लियाहै और हिन्दी समीक्षामें उनकी ऐतिहासिक भूमिकाको सम्पूर्ण स्वीकृति दीहै। मेरा विचार है कि आचार्य शुक्लकी रचनाका अंतिम दौर, जिसमें उनका सर्वोत्तम रचा गया, इस विषयमें नामवरजीने बहुत संक्षिप्त टिप्पणी कीहै। पर संभव है आचार्य शुक्लके समग्र मूल्यांकनका विचार उनके मनमें हो और जिसकी हमें उत्सुक प्रतीक्षा रहेगी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लमें भारतीय समाजके उस युगकी सूचना मिलतीहै जब वह राजनीतिक पराधीनताके बावजूद नई दिशाओंमें सक्रिय होरहाथा। उन्नीसवीं शती में आरम्भ होनेवाला नवजागरण पूर्णतापर पहुंचाथा और भारतीय समाजने अपने लिए चिन्तनके नये सूत्र विकसित कियेथे। धर्म-आश्रित भावुकताका स्थान मनुष्य-केन्द्रित बौद्धिकताको मिल रहाथा और नये जीवन मूल्योंकी तलाश कीजा रहीथी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ऐसेही आन्दोलित समयकी उपज हैं जब राष्ट्रीय आन्दोलन के सामने राजनीतिक स्वतंत्रताके साथ जीवनके अन्य प्रश्नभी उपस्थित थे—समाजकी नयी अवधारणा, नये जीवन-मूल्य आदि। समयके यथार्थका साक्षात्कार और उसकी स्वीकृति इस नयी चिन्तनधारामें देखी जासकती है। कुल मिलाकर इस समयके नेतृत्वके पास यथार्थ-दृष्टि है और एक ऐसा 'विज़न' अथवा स्वप्नभी जिसे वे कर्मके द्वारा रूपान्तरित करना चाहतेहैं।

आचार्य शुक्लके तीन अनुवाद चिन्तामणि (तीसरा भाग) में संकलित हैं : न्यूमनके 'आइडिया आफ ए यूनिवर्सिटी'का 'लिटरेचर' निबंध, जोसेफ एडिसनका 'प्लेजर्स आफ इमैजिनेशन', इसके अतिरिक्त हैकलकी 'रिडल ऑफ द यूनिवर्स' (विश्व प्रपंचकी भूमिका) भी हैं। प्रथम दो अनुवाद 'साहित्य' तथा 'कल्पनाका आनन्द' शीर्षकसे आरंभमें दिये गयेहैं। लगताहै कि शुक्लजीको इन निबंधोंने चेतनाके स्तरपर प्रभावित किया, पर जैसा कि नामवरजीने सही संकेत कियाहै कि जिन बातोंसे वे सहमत नहीं थे, उन्हें अनुवादमें छोड़भी दिया गया है,जैसे न्यूमनका यह वाक्य कि 'साहित्य भाषाका वैयक्तिक उपयोग अथवा अभ्यास है।' शुक्लजीका लेखन प्रमाणित करताहै कि वे रचनाको लेखकका निजी मामला माननेसे इन्कार करतेहैं, उसे वैयक्तिक प्रयत्नके रूपमें नहीं स्वी-

कार करते । इसके विपरीत वे उसकी सामाजिकता और लोकधर्मिताका आग्रह करतेहैं । इस लोकवादी दृष्टिको हम आचार्य शुक्लके चिन्तनकी मुख्य आधारभूमि मानते हैं और इसपर बल देते हुए वे अनुवादोंके वे प्रसंग बदल देतेहैं जो उनकी लोकधर्मी विचारणाका समर्थन नहीं करते । अनुवादोंका एक दूसरा पक्षभी है जिस ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये । शुक्लजीके चिन्तनका चरित्र देशज है और पश्चिमके इन लेखकोंका अनुवाद करत हुए वे कई बार भारतीय संदर्भोंका उपयोग करतेहैं । स्थिति यह है कि यदि शुक्लजीने स्वयं संकेत न किया होता तो सामान्य पाठक इन्हें मौलिक लेखनके रूपमें भी स्वीकार कर लेता ।

चिन्तामणिमें साहित्य, कल्पनाका आनन्द तथा विश्व प्रपंचकी भूमिकासे प्रमाणित होताहै कि शुक्लजी अपने बौद्धिक जगत्को विस्तार देनेकी चेष्टा कर रहेथे । यही कारण है कि एक इन्टरमीडिएट पास ड्राइंगमास्टर हिन्दी साहित्यको एक नया मोड़ देनेमें समर्थ हुआ, जबकि शिक्षा संस्थानोंके ऊँचे पदोंपर आसीन अधिकांश विद्वान् रचनामें कोई कारगर हस्तक्षेप करने अथवा उसे दिशा देनेमें सक्षम नहींहैं । पर यह प्रश्न केवल अध्ययनसे स्वयं को बौद्धिक सम्पन्नता देनेका नहींहै, वरन् मूल्यगत चिन्ताका है । आचार्य शुक्ल क्रोचेके अभिव्यंजनावादपर विचार करते हुए अपने अद्यतन अथवा 'अपटु डेट' होने का दंभ नहीं पालते, वे इस माध्यमसे एक प्रचलित धारणाको अपने ढंगसे चुनौतीभी देतेहैं । सम्पूर्ण स्वीकृति एक प्रकारकी मानसिक बौद्धिक दुर्बलताभी है—खास तौरपर चिन्तनके क्षेत्रमें । आचार्य शुक्लके लेखनमें जो ललकारका स्वर है, वह उन्हें अर्थवत्ता देताहै । आचार्य शुक्ल की सजग बौद्धिक दृष्टिने काफी पहले 'साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद' निबंधमें समापन टिप्पणी की है, जो आजभी प्रासंगिक है: 'योरपमें इधर पचास वर्ष के भीतर रहस्यवाद, कलावाद, व्यक्तिवाद इत्यादि जो अनेक वाद चलेथे, वे अब वहाँ मरे हुए आंदोलन समझे जातेहैं । इन नाना 'वादोंसे ऊबकर लोग अब फिर साफ हवामें आना चाहतेहैं । किसी कविताके सम्बन्धमें किसी 'वाद'का नाम लेना अब फैशनके खिलाफ माना जाने लगा है । अब कोई वादी समझे जानेमें कवि अपना मान नहीं समझते ।'

आज जब हिन्दी समीक्षाकी विश्वसनीयतापर प्रश्न चिह्न लगाये जातेहैं और उसकी प्रासंगिकता संदेहास्पद है तब आचार्य रामचन्द्र शुक्लके समीक्षकपर फिरसे दृष्टि डालनेकी आवश्यकता है । जो बातें उन्होंने बीसवीं शतीके पूर्वार्धमें कहीथीं, वे आजभी हमारे लिए उपयोगी हैं और उनके समयको देखते हुए उन्हें हम प्रगतिशील समीक्षक कहना चाहेंगे । शुक्लजी सर्वप्रथम इस धारणाको अस्वीकार करतेहैं कि साहित्य कोई कल्पित व्यापार मात्र है अथवा वह केवल भावना-प्रक्रिया है । वे साहित्यके 'यथार्थ धर्म'की बात करते हुए स्वीकारतेहैं कि विचारोंका शब्दों में अवतीर्ण होना साहित्य है । रचनाकी यथार्थवादी स्वीकृतिसे शुक्लजीकी लोकवादी चेतनाका गहरा सम्बन्ध है, यद्यपि लेखककी सर्जनात्मक प्रतिभा और कल्पनाके लिए पूरा अवसरहै, पर सब कुछ यथार्थ भूमिसे जुड़ा होना चाहिये । इस दृष्टिसे सबसे विचारणीय निबंध है : कविता क्याहै ? यहां शुक्लजी कविताका एक स्पष्ट, ठोस मानवीय आधार बतातेहैं और निबंधका आरंभही यों होता है : 'कवितासे मनुष्य भावकी रक्षा होतीहै ।' इस सूत्रको विकसित करते हुए वे संकेत करना चाहतेहैं कि कविता हमें उदात्त बनातीहै । हम मनुष्य बने रहतेहैं, अन्यथा हमारे पशु हो जानेका खतराहै । अमानवीकरणके इस दौरमें शुक्लजीका यह निबंध नितान्त प्रासंगिक प्रतीत होता है । उनकी टिप्पणी है : 'कविता मनुष्यके हृदयको उन्नत करतीहै और उसे उत्कृष्ट और अलौकिक पदार्थोंका परिचय करातीहै जिनके द्वारा यह लोक देवलोक और मनुष्य देवता होसकताहै ।' यह है कविताका उदार, उच्च सांस्कृतिक आशय ।

चिन्तामणिके तीसरे भागमें छोटी-छोटी टिप्पणियां हैं जहां शुक्लजीने अपना मन्तव्य संकेतसे, संक्षेपमें कहा है, पर हमारे लिए वे सूत्र विचारणीय हैं । बाबू काशीनाथ खत्री, फ्रेडरिक पिंकाट, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमघन आदिसे सम्बद्ध उनकी टिप्पणियां उन व्यक्तित्वोंकी स्वीकृति हैं जिनके लिए शुक्लजीका आदरभाव है । पर यहां भाषा भावाकुल न होकर, तार्किक स्तरपर चलती है । भारतेन्दु हरिश्चन्दके विषयमें अपनी टिप्पणी उन्होंने १९१० ई. में लिखीथी: 'सबसे बड़ा काम तो इस महात्मा को यह करनाथा कि वह स्वदेशाभिमान, स्वजाति प्रेम, समाज-सुधार आदिके आधुनिक उद्गारोंके प्रवाहके लिए हिन्दीको चुने·· ।' फ्रेडरिक पिन्काटका स्मरण शुक्लजीने एक निष्ठावान हिन्दीप्रेमी यूरोपियन विद्वानके रूपमें कियाहै और उनके शान्त, परोपकारी जीवनका उल्लेख कियाहै । शुक्लजीकी अन्य छोटी टिप्पणियाँ इस दृष्टिसे

विचारणीय हैं कि वे सामयिक संदर्भोंसे उपजीहैं। वे एक ओर क्लासिकीय दृष्टिसे विचार करतेहैं तो दूसरी ओर समयका यथार्थभी उनके सामनेहै। परम्पराकी गहरी जानकारी और समाजसे जीवित सम्पर्कसे ही इस प्रकार की सन्तुलित दृष्टि उपजतीहै और रचना तथा समीक्षाको संयोजित करती हुई समीक्षात्मक कार्यको सर्जनके स्तरपर पहुंचातीहै। आचार्य शुक्ल ऐसीही सर्जनात्मक समीक्षा की नींवमें हैं।

कहा जाताहै कि हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखनके बावजूद शुक्लजीकी समीक्षा कविता-केन्द्रित है। इसके अपन कारण हैं और इसमें सन्देह नहीं कि शुक्लजी कविता को ऊँचे धरातलपर रखकर देखतेहैं, कहतेहैं: 'कविता उच्चाशय, उदार, और निस्स्वार्थ हृदयकी उपज है। सत्कवि मनुष्य मात्रके हृदयमें सौन्दर्यका प्रवाह बहानेवाला है। उसकी दृष्टिमें राजा और रंक सब समान हैं। वह उन्हें मनुष्यके सिवा और कुछ नहीं समझता।' (पृ. ९५)। कविताके प्रति अपनी विशेष रुचि रखते हुएभी शुक्लजी ने १९१० ई. में 'उपन्यास'के विषयमें संक्षिप्त टिप्पणी लिखी तो क्या लूकाचकी तरह वेभी सोचतेहैं कि उपन्यास आधुनिक युगका महाकाव्य है। उन्होंने इस सन्दर्भमें स्वीकार कियाहै कि उपन्यासका काम मानव-जीवनके अनेक रूपोंका परिचय करानाहै। दरअसल वे गद्यके बढ़ते प्रभाव को देखतेहैं और 'गद्य प्रबंधके प्रकार' की संक्षिप्त टिप्पणी में इसे स्वीकार करतेहैं।

चिन्तामणिका तीसरा भाग आचार्य शुक्लजीका क्रमशः विकासमान व्यक्तित्व समझनेमें हमारी सहायता करताहै। आरंभमें वे थोड़ी पूंजी लेकर चले, पर उन्होंने अपने विवेक, संवेदनका निरन्तर विकास किया। उनके पास एक सजग बौद्धिक दृष्टि है और परम्पराके साथ वे अपने समयपर भी ध्यान रखतेहैं। उन्होंने हिन्दीकी अलौकिक, रहस्यवादी मान्यताओं और व्यर्थकी प्रभाववादीकी भावुकताको तोड़ा, हिन्दी समीक्षाको तर्ककी भाषा दी, गहरे संवेदन और उच्च विवेकके सहारे। उन्होंने देवत्वके स्थानपर हिन्दी समीक्षामें लोकवादकी स्थापना की, मनुष्यको केन्द्रीयता दी जिसे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने 'मनुष्य ही साहित्यका लक्ष्यहै' जैसे निबंधोंमें प्रतिफलित किया। आचार्य शुक्लके चिन्तनकी यह लोक-भूमि आजभी हमारे कामकी है। फैजाबादके प्रान्तीय (हिन्दी) साहित्य सम्मेलनमें पठित भाषण--'हिन्दी और हिन्दुस्तानी' साहित्यको परिभाषित करते हुए कहतेहैं: 'साहित्य किसी जातिकी रक्षित वाणीकी वह अखंड परम्परा है जो उसके जीवनके स्वतंत्र स्वरूपकी रक्षा करती हुई जगत्की गतिके अनुरूप उत्तरोत्तर उसका अन्तर्विकास करती चलतीहै।' आचार्य शुक्लका समीक्षा-संसार साहित्य के इसी व्यापक स्वरूपको दृष्टि-पथमें रखताहै। □□

अपनी द्वीप-पुरीकी खोज

कृति : 'कहाँ है द्वारका'१

कृतिकार : अज्ञेय.

समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल.

अज्ञेयके व्यक्तिव्यंजक निबन्ध (जिन्हें वे भावरंजनी कहना चाहतेहैं) गद्यका एक नया स्वाद प्रस्तुत करतेहैं। एक नगण्य बिन्दुसे बातको उठाकर बिना संवादकेभी बतरसका पूरा आस्वादन कराते हुए सुतर्कित परिणति तक रंजकताके साथ पाठकको ले आना—इन निबन्धोंमें सहज घटित होताहै। इस दृष्टिसे हिन्दीके तथाकथित ललित निबन्ध (तथाकथित इसलिए कि इस विशेषण से मैं सहमत नहीं होपाता) इस स्तरपर यह काम नहीं कर पाते, कुछ उपदेशकी मुद्रा ओढ़ लेतेहैं या अतिशय बौद्धिकता और पढ़ाकूपन पाठकपर लाद देतेहैं। अज्ञेय

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी द्वार, दिल्ली-६। पृष्ठ ११०; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

के ये निबन्ध बड़ीसे बड़ी बातको इस तरह पाठकतक पहुंचा देतेहैं जैसे खेल-खेलमें बच्चोंतक उनकी पकड़के बाहरकी दुनियां पहुँचा दी जातीहै।

व्यक्तित्वकी अटूट दृढ़ता और दूब जैसी विनय-भावनाका रिश्ता अनिवार्य होताहै जो अज्ञेयके व्यक्तित्व की एक विशेषता है। अपने इन निबन्धोंके सम्बन्धमें भूमिकामें वे कहतेहैं कि 'भूमिकाके रूपमें मुझे कुछ कहने को है तो केवल इतना कि यह सारी पुस्तक ऐसी है कि उसे पढ़े बिनाभी काम चल जाता, और चलता रह सकता—जैसाकि स्वयं मेरा काम इसे लिखे बिना चल रहाथा और चलता रहता।' इसके बाद वे लिखतेहैं कि 'यह पुस्तक तभी आपको रुचेगी, तभी आपको रस देगी, जब आप अपने अनुभवसे जानतेहों कि जीवनमें उन चीजों का भी एक स्थान होताहै जिनके बिनाभी काम चल जाता है-बल्कि ये गैर-कामचलाऊ चीजेंही जीवनमें चारुता लातीहैं।' सिर्फ भावको रंजित करनेतक इन निबन्धों की सीमा निर्धारित करते हुएभी अज्ञेय इस बातको रेखांकित करतेहैं कि 'भावोंको रंजित करते रहनेका काम संस्कृतिके मुख्य प्रयोजनमें से एक है।' पाठकके अनुभव का समादर करते हुएभी ये निबन्ध उसको किस तरह समृद्ध करतेहैं, और इस प्रकार संस्कृतिके एक मुख्य प्रयोजनकी सिद्धि करतेहैं—इस बातको जाननेके लिए इन निबन्धोंको पढ़ना अनिवार्य है।

संग्रहका पहला निबन्ध है, 'वर्षागम' जिसमें रातकी घिरती बदलीसे लेकर सवेरेकी वर्षाके आरम्भ तक लेखक की आलस मन:स्थितिके बीच इन्द्रियोंकी सूक्ष्मतम संवेदन-शीलताके दुर्लभ क्षण मूर्त हुएहैं। बाहरके बड़े पेड़पर सूखी डालसे लटकी काईकी झूलके साथ कुछ करती फुलचुहीके प्रति द्रष्टाका सहज कुतूहल अपने साथ पाठक को पूरी विश्व व्यवस्था—ऋत् की एक बोधगम्य व्याख्या के सामने खड़ाकर देताहै। स्वतंत्रता, काल-चेतना और सृष्टिके प्रत्येक अणु-परमाणुकी परस्परताको 'ऊँघ'के बहाने उसी रंजित रूपमें पाठकके सामने रख दिया गया है। यह निबन्ध चुपचाप लोगोंकी सृष्टि और काल सम्बन्धी अवधारणाओंका संशोधन करता चलताहै। सम्पूर्ण सृष्टिको एक 'पूर्ण' न माननेवाली दुर्बुद्धि और कुदृष्टिके कारणही मनुष्य अपनेको सृष्टिका 'सर्वश्रेष्ठ', 'स्वतंत्र' और 'शासक' प्राणी मान लेनेके भ्रमका शिकार होगया और अपनी तथाकथित स्वतंत्रताका हासिल उसे अंततः 'महाभीति'के रूपमें मिला। एक सृष्टि-सापेक्ष सानुपतिक बोधही मनुष्यको अपनी सहज और वास्तविक पहचान करा सकताहै, यह विश्वास लेखकसे पाठकतक निबन्धके सहारे सरक आताहै।

'अस्पर्श' व्यक्तित्वकी समग्र संरचना और सनातन से युगनद्ध सत्ताकी अरूप अशरीर उपस्थितिका बोध है जो किसी स्रष्टाके अध्ययन कक्ष, मन्दिर या चर्चमें होताहै। वैज्ञानिक दृष्टिसे उसकी व्याख्या नहीं कीजा सकती किन्तु चेतनाके अजस्र प्रवाहके साथ उसका अनुभव किया जा सकताहै।

भाषाकी खोज मनुष्यकी सबसे बड़ी उपलब्धि है किन्तु वह मनुष्यकी पहुंचकी अन्तिम सीढ़ी नहीं है। अनेक सन्तोंने अपने जीवनमें यह कर दिखायाहै कि पशु-पक्षियोंसे भी बात कीजा सकतीहै। ऐसे सभी लोग भाषा की चरम सम्भावनाओंको आप्त करके उस आयाममें प्रवेशकर जातेथे जिसमें वाक् अकलंक होजातीहै क्योंकि वह शुद्ध नादमें परिणत होचुकी होतीहै। नाद प्रेमका ही दूसरा नाम है और निश्चयही प्रेमको वाणीकी आवश्यकता नहीं होती, वह चेतनाकी परमावस्था है। तभीतो जो उसमें प्रवेशकर जातेहैं, उनकी बात सुनने पशु-पक्षीभी जुटतेहैं। 'खग-भाषा'में लेखक सृष्टिके साथ मनुष्यके सम्वादकी इसी स्थितिकी बात करतेहैं। मनुष्य पशु-पक्षियोंकी बोलीपर अपने अर्थका आरोप करताहै और बच्चोंको भी उसीकी शिक्षा देताहै। बच्चोंमें उनके प्रत्यक्ष ज्ञानका हम कोई अवसर उन्हें नहीं देते। इस प्रवृत्तिको अज्ञेयजी मनुष्यकी एक लाचारी कहतेहैं, जो यह है कि हमारे सोचनेका ढंगभी अनायास हमारेही सांचेमें ढल जाताहै—'जड़ वस्तुओंपर भी हम मानवाकृति की समानताका आरोप करतेहैं। मेजकुर्सीकी भी टांगे होतीहैं, पहाड़का माथा होताहै, नदीका मुँह होताहै, थैली का पेट होताहै, सुईकी आँख होतीहै। स्थूल जड़ पदार्थ पर ही नहीं, हम सूक्ष्म अरूपपर भी वैसाही आरोप करते हैं--बातका भी 'सिर-पैर' होताहै (या अधिकतर नहीं होता)।

अज्ञेयके व्यंग्यकी दुर्लभ विशेषता है कि उसमें कड़वाहट बिल्कुल नहीं होती और बहुत गम्भीर संदर्भमें भी सहज मुस्कानकी तरह उभर आताहै।

'अपनी जमीनपर खड़े होने' की चिन्ताके फैशनपर मुस्कराते हुए अज्ञेय आजके साहित्यकारों और राज-नीतिकारोंकी असली चिन्ता गाड़ी बाड़ीकी—के साथ उन साहित्यकारों तक पहुंचतेहैं जो 'सबै भूमि गोपालकी'

मानतेथे, इसीलिए उन्हें कभी जमीनकी चिन्ता नहीं होतीथी और इसीलिए कभी उन्हें यहभी नहीं लगताथा कि उनके पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक रहीहै। इसी निबन्धमें साधारण-भाषा और काव्य-भाषाका अन्तर 'रूपक' के माध्यमसे बहुत सधे ढंगसे व्यक्तकर दिया गयाहै—"रूपक जबतक जीवित रहताहै, तबतक काव्य भाषाका अंग रहताहै और जब मर जाताहै तब साधारण भाषाका अंग होजाताहै। हमारी सामान्य भाषा अधिकांशतः मर चुके रूपकोंका ढेर है।" नये और पुराने कविका अन्तर करते हुए अज्ञेय लिखतेहैं कि नया कवि जमीनपर खड़े होनेकी दुहाई देताहै और जीताहै फन्तासीमें जबकि पुराना कवि आकाशचारी होताथा और उसके पांव दृढ़तासे जमीनपर टिके रहतेथे। 'पृथ्वी मां है' वाली धारणाका आधार यही है कि हम सब इस जमीनके हैं, जमीन इसमें से किसीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। सृष्टिके साथ मनुष्यके रिश्तेकी सही समझ निष्कासित होनेपर ही लगताहै, 'सबै भूमि गोपालकी'।

भारत और पश्चिमी देशोंके अन्तरको बहुत लोग अनेक तरहसे पहचानते रहेहैं। एक अनाम पश्चिमी बन्धुके साथ संवादके माध्यमसे अज्ञेय उस अन्तरकी पहचान दोनों सभ्यताओंके दो-दो प्राक्चरित्रोंके माध्यमसे करतेहैं। पश्चिमी व्यक्तिकी पहचान 'फाउस्ट' और 'हेमलेट' के व्यक्तित्वों द्वारा कीजा सकतीहै तो भारतीय व्यक्तिकी पहचान हनुमान और नारदके चरित्रोंसे होसकतीहै। फाउस्ट और हनुमानकी तुलना करते हुए अज्ञेय बतातेहैं कि फाउस्ट ज्ञानके द्वारा सत्ताकी खोज करताहै, 'पावर थ्रू नॉलेज' तो हनुमान सेवा द्वारा सत्ताकी खोज करतेहैं 'पावर थ्रू ओबीडियेन्स'। हेमलेटमें अस्तित्व-अनस्तित्वका द्वन्द्व है तो नारदमें भक्तिकी उत्कटताके साथ बौद्धिक जिज्ञासाकी अनिवार्यता और उसका जोखिम है। नारद जहाँ जातेहैं, झगड़ा करवातेहैं, लेकिन उद्देश्य सदा सत्की प्रतिष्ठा होताहै। इन चारों चरित्रोंकी तुलना बहुत मस्तीके साथ कीगयी है।

आस्तिक कहतेहैं कि ईश्वरने अपनी प्रतिमाके आधार पर मनुष्यकी सृष्टि कीहै। नास्तिक कहतेहैं, इस बात को सिद्ध नहीं किया जासकता किंतु इतना निश्चय है कि आदमीने अपनी प्रतिमाके आधारपर ईश्वरकी सृष्टि (या खोज) कीहै। 'चेहरेका मन्दिर' नामक निबन्धमें अज्ञेय मिस्रके अज्ञात प्रदेशमें स्थित एक ऐसे चेहरेके मन्दिरका विवरण देतेहैं जो एक मूर्तिकार द्वारा बनाया गयाथा। उस चेहरेकी विशेषता थी कि जोभी चेहरा उसमें कोई देखना चाहे, वही दीखताथा। अपना, प्रियका, शत्रुका, यहाँतक कि कल्पनामें निर्मित चेहरेभी उस चेहरेमें दीख जातेथे। वह भूत, भविष्य, वर्तमानमें स्थित सभी मनुष्योंका चेहरा था। अज्ञेयजी कहतेहैं, "कहीं वह मन्दिर अभी हो तो···क्या मेरा चेहरा भी उस चेहरेमें होगा? याकि बातको असलमें यों कहना चाहिये कि उसमें जो चेहरा है (या था?) वही मेरा चेहरा है, वही सबका चेहरा है, क्योंकि शायद वही भगवान्का चेहरा है—फिर चाहे भगवान्ने अपनी प्रतिमामें मनुष्य बनाया हो, चाहे मनुष्यने अपनी प्रतिमामें भगवान्।"

मनुष्य और मनुष्यके बीच भगवान्को न भी आने दें, तोभी सभी चेहरे क्या एकही नहीं हैं? खोजकी वस्तु है वह दृष्टि जो उसमें अपने चेहरेके साथ सबके चेहरे पहचान सके।

बाहरसे आनेपर अपने घर (या कमरे) के बन्द तालेके सामने असहाय खड़े व्यक्तिकी स्वगतोक्ति, 'ताली तो छूट गयी' से शुरू होकर बात 'घर', 'बाहर', 'भीतर' 'सूक्ष्म' 'विराट्' 'प्रेम' और 'रहस्य' तक पहुंचतीहै। उमर खैय्याम, फिटजेराल्ड, अज्ञेय, रहीम (बिहारी?) गालिबकी काव्य-पंक्तियों और मूर्तिकार रोदेंकी दो कलाकृतियोंके सहारे तालीका अर्थविस्तार पाठकको प्रेमतक लेजाताहै जहां सिर काटकर भीतर प्रवेश होताहै और घर फूंककर ही कबीरके साथ निकल जाना पड़ताहै।

इस घरफूंक तमाशेतक पहुंचनेसे पहले अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था कर लेनेवालों और उनकी प्रवृत्तिपर एक छींटा यों है, "अब कह लीजिये अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था करलेना हिन्दी कवि बल्कि हिन्दी समाजके स्वभावमें ही है और इसके लिए वह सबकी पा-लगीको ही स्वस्थ उपाय मानताहै। द्वारपालको धोक देना शुरू किया तो हर देहरीपर धोक देता हुआ सीधे भीतरके भी भीतरतम तक पहुंच गया—मन्दिर हो तो गर्भगृहमें विराजमान देवता तक और राजमहल हो तो अन्तःपुरमें विराजमान राज-व्यक्ति तक: वह व्यक्ति राजा हो तो, और रानी हो तो; उसे कोई पकड़नेवाला नहीं है—वह तो अब सुरक्षाकी परिधिमें आगयाहै और एक बार फिर कार्निस करके एक तरफ खड़ा होजायेगा। हिन्दी समाजका यह स्वभाव न होता तो क्या हिन्दी प्रदेशकी राजनीतिका वह रूप हमें देखनेको मिलता जो आज

प्रत्यक्ष है।"

राजनीतिकों और मनोविश्लेषणवादियोंपर मीठी चुटकी इस निबन्धमें है।

कुछ भिन्न व्यक्तित्व है संग्रहके शीर्षकवाले निबन्ध, 'कहां है द्वारका' का जिसमें एकाएक हृदयमें किसी अनपहचानी व्यथाके उभर आनेपर गहरी बातचीत कीगयीहै। समूहगत व्यक्तिगत, संस्कृतिगत और वैश्विक प्रतिबिम्बोंकी गहन चर्चा व्यक्तिगत दिवास्वप्नों तक आतीहै, जहां अज्ञेय स्वीकार करतेहैं कि मेरे मनमें बार-बार जो बिम्ब उभरताहै, वह है "विस्तीर्ण नीलिमाके बीच फेनोर्मि-मेखलासे घिरी शिलारूढ़ द्वीप-पुरी" जिसे 'शिशुपालवध' का द्वारकापुरी वर्णन पढ़नेके बाद मैंने समझा कि 'यही तो है मेरे दिवास्वनकी द्वीप-पुरी।' इस द्वीप-द्वारिकाका घण्टों नहीं युगावधि साक्षात्कार करता हुआ लेखक निरवधि कालके महाप्रांगणमें विचरण करता रहताहै और वह ज्योतिष्मती दिव्य द्वारका उसे इस तरह अनुप्राणित कर देतीहै कि उसके बादभी एक आश्वस्तिका ही बोध होताहै और मनमें अप्रश्न भाव उठताहै, 'कहां है द्वारका'।

मानव-मनके चिरविरह, पर्युत्सुकी भाव, आश्वस्ति और अप्रश्नको समझनेके साथ साथही पाठकको अज्ञेयके रचनाकारके भीतरका एक चित्र देखनेको मिलताहै, जिसमें सागर और पर्वतका विशेष स्थान है। अज्ञेयपर एक पुस्तकके सहलेखकके रूपमें उनके सौन्दर्य-बोधकी पहचान करते हुए इन पंक्तियोंके लेखकने सागर और शिखरको विशेष रूपसे रेखांकित कियाहै। यह निबन्ध (और संग्रहके सभी) पाठकको अपने मनकी द्वारिकाकी खोजके लिए प्रेरित करताहै।

नयी पीढ़ीके दर्पण-मोह और यथार्थसे दूरतर पड़ते जानेकी चर्चा करते हुए अज्ञेय सभ्य मानवको एक पहचान बतातेहैं—'सभ्य मानवकी पहचान अनुभव-प्रत्यक्ष नहीं रही, दर्पण-प्रत्यक्ष होगयीहै। लगताहै कि सभ्य समाजोंमें आत्माका उतना महत्त्व नहीं, जितना दर्पणका होगयाहै।' दर्पण मोहके सहारे लेखक आजकी लोभ-वृत्तिकी पहचान करतेहैं और संकेत करतेहैं कि व्यक्तिगत सम्पत्तिवाली सभ्यता हो अथवा उसके विपरीत समानताका दावा करनेवाली हो, दोनोंमें दर्पणका हस्तक्षेप है, इसलिए यथार्थसे दोनोंकी दूरी है। बाइबिलकी कथा, जिसमें शैतान ईसाको दुनियांके साम्राज्यका प्रलोभन देताहै, का उल्लेख करतेहुए, अज्ञेय बतातेहैं कि हम अपने दर्पणमें झांक सकें तो शैतानभी दीख सकता है और आत्मासे साक्षात्कारभी होसकताहै। इस आत्म-साक्षात्कारको रचनात्मकताके साथ जोड़ते हुए वे कहतेहैं कि 'दीप्तिका वास्तविक और विकार रहित मुकुर तो दीप्ति ही है और होसकताहै, बाकी सब तो शैतानके आइनेहैं।'

'मरुस्थलकी सीपियां' मनुष्य, विशेषतः कवि द्वारा रूपक-रचना-प्रक्रियापर एक जीवंत चिंतनहै जो शुरू होताहै बच्चे द्वारा कानसे सीपी लगाकर उसमें सागरका स्वर सुननेसे और पूरा होताहै चेतनाके महासागरसे व्यक्तिके सम्बन्धकी मुक्तोपलब्धिमें। लहरीले सागर और लहरीले मरुस्थलकी रचनात्मकता हो, व्यक्ति-सीपी और चेतना-समुद्रका सम्बन्ध हो, रूपकोंकी खोजमें रत कविकी भाषा और सामान्य भाषाका शिलित रूप हो, शीतनिद्राके बाद पुनरुज्जीवित होती हुई बर्फकी गिलहरी हो या संस्कृति हो—शब्द-शब्दमें रचती हुई अज्ञेयकी भाषा पाठकको सबका साक्षात्कार करा देनेमें समर्थ है।

संग्रहका अन्तिम निबन्ध 'छोड़नेका सुख' है, जिसमें बात-बातमें भारतीय संस्कृतिके चरम मूल्य 'मोक्ष' तक पहुंचकर भी लेखक इतना हलका फुलका बना रहताहै और पाठकको बनाये रखताहै कि एकाएक इतनी बड़ी बाततक पहुंच जानेका सुखद अचरज होताहै। बचपनसे ही कुछ-न-कुछ छोड़नेकी ओर प्रेरित करनेवाली इस जीवन-पद्धतिमें धीरे-धीरे सब कुछ छोड़कर मुक्त होजानेकी ही दीक्षा दीजातीहै। इसी दीक्षाका एक रूप है यह धारणाभी, कि जब कभी तीर्थमें जाइये तो अपनी कोई प्रिय चीज (आदत, पदार्थ) हमेशाके लिए छोड़ दीजिये। संसारको ही अन्तमें छोड़ने (और इस प्रकार इससे छूट पाने) की तैयारी है यह। अज्ञेय अपने एक मित्र द्वारा तीर्थमें शेरकी सवारी छोड़ देनेकी घटनाका उल्लेख करते हुए पूछतेहैं—'शेरकी सवारी तुम करते कब थे, जो छोड़ी? । मित्रका उत्तर है—'करतेथे कि नहीं करतेथे इससे क्या? करना चाहते तो थे! और कोई बहुत प्रिय चीजही छोड़नी होतीहै, इसलिए शेरकी सवारी छोड आये।"

लेखकके मित्रका उत्तर भरपेट हँसनेका अवसर देताहै लेकिन साथही यह विचारभी देताहै कि, 'महत्त्वाकांक्षा छोड़नाभी निश्चयही बहुत बड़ा छोड़ना होताहै।'

'कहां है द्वारका' के सभी निबन्ध इसी कोटिके हैं। वे पाठकको हंसा देतेहैं, मुस्कुरानेको उकसा देतेहैं, अधूरी दृष्टिके प्रति सचेतकर देतेहैं, मानवीयताके सूक्ष्मतम

स्पर्शोंसे समृद्धि कर देतेहैं, संवेदनाका अछोर प्रसार कर देतेहैं, अविचारित अभ्यासों (शारीरिक या मानसिक) पर चोटकर देतेहैं, परम्पराके श्रेष्ठ अंशोंसे, मूल्योंसे साक्षात्कार करा देतेहैं और विकृतियोंकी ओर खुला इशारा कर देतेहैं, और सबसे बड़ी बात यह कि, यह सब कुछ करते हुए, पाठकको बहुत हल्की-फुल्की मन:स्थितिमें बनाये रखतेहैं।

पठनीयताका गुण अज्ञेयके इन निबन्धोंमें एक नये स्वादके साथ विकसित हुआहै। बतकहीका जो सुख है, वह पढ़कर नहीं मिलता, किन्तु वे निबन्ध पाठकसे बतियाते हुए उसे यह सुख प्रदान करतेहैं और अन्तमें एक सुतर्कित बिन्दु मनमें छोड़ जातेहैं। इसीलिए इन निबन्धोंका पढ़ना जितना सुखद है, उतनाही अप्रीतिकर कार्य लगताहै इनपर कोई टिप्पणी करना या उनकी समीक्षा करना।

ये निबन्ध इतने खुले हुएहैं कि पाठकको खोलते चलतेहैं और उसको अपने तथा अपने परिवेशके प्रति नयी खुली दृष्टिसे सम्पन्न करते चलतेहैं। जो लोग व्यक्ति अज्ञेयके चुपसे आहत होते रहतेहैं, वे उनके निबन्धोंमें उनके बातूनी रचनाकारके साथ शरीक होकर अपनी शिकायत दूरकर सकतेहैं। यह बतकही जितनी रंजक है, उतनीही सार्थक और सृजनात्मकभी।

'कहां है द्वारका' अप्रश्न है, इसका अनुभव संग्रहके निबन्धोंको पढ़कर ही किया जासकताहै। पुस्तक 'आचार्य तात कामिल बुल्के' को सादर निवेदित है, इस कसकके साथ कि उनके जीवित रहते उनके हाथोंमें न दीजा सकी। □

साहित्य : भाषा

भारतीय धर्म साधना[१]

लेखक : डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
समीक्षक : डॉ. राजमल बोरा

मध्यकालीन भक्ति साहित्यका पुनर्मूल्यांकन आगमिक आधारपर किया जाये, इस स्थापनाके संदर्भमें डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीने प्रस्तुत पुस्तक लिखीहै। यह पूरी पुस्तक भक्तिसे सम्बद्ध चिन्तन पक्षको उजागर करतीहै। पुस्तकका नाम 'भारतीय धर्म साधना' रखा गयाहै। वस्तुतः पुस्तकके नामकरणमें 'भक्तिका स्वरूप' या 'भक्ति उद्भव और विकास' या 'भक्ति : आगमिक साधनाके आलोकमें' जैसे शब्द चाहिये थे। भक्तिको हम 'भारतीय धर्म साधना' कह तो सकतेहैं किन्तु कुछ रूप तो औरभी रह जायेंगे। पुस्तकके आरम्भमें 'पातनिका' में भी न शीर्षक का स्पष्टीकरण है और न ही पुस्तककी सामग्रीका। 'पातनिका' पढ़नेसे लगताहै हम दर्शनकी पुस्तक पढ़ रहे हैं। दर्शनको धर्म मान लेना और फिर धर्मको भक्ति मान लेना, यह और बात है। लेखकको 'पातनिका' में इस सबका स्पष्टीकरण अवश्य करना चाहियेथा। यह इसलिएभी आवश्यक है कि लेखक स्वयं भक्तिके चिंतन पक्षको उजागर करना चाह रहाहै। पातनिकाके अन्तिम अनुच्छेदमें लेखकने लिखा है—

> 'प्रस्तुत कृति पारम्परिक और मध्यकालीन भारतीय दर्शन और साधनाका अपनी सीमामें उपस्थापन करतीहै।' (पृष्ठ. ५)

अब यह दर्शन और साधना 'धर्म' का अंग है, यह मान लेना चाहिये और तदनुसार इस साधनाको भक्तिसे जोड़ना चाहिये।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीने पूरी पुस्तक योजनाबद्ध रूपमें और बड़े परिश्रमसे लिखीहै। पुस्तकका बाना दार्शनिक है। वैदिक साधनासे आरम्भकर तंत्र साधना और बाउल साधनातक इसमें पारम्परिक और मध्यकालीन धर्म साधनाओंका गंभीर विवेचन है। वैदिक साधनाका निरूपण पारम्परिक रूपको स्पष्ट करनेके लिए किया गयाहै आठवें

१. प्रकाशक : किताब महल, १५, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ : २३८; डिमा. ८४; मूल्य : ५०.०० रु.।

पृष्ठपर ही—दूसराही शीर्षक—आगम—आगयाहै । और यह आगम फिर अन्ततक—अन्य-अन्य साधनाओंके संदर्भ में भी—चलता रहताहै । पृष्ठ १२से पृष्ठ सोलहतक की सामग्री फिरसे पृष्ठ ८९ से ९३ तक उसी रूपमें मिलती है। दोनोंही स्थानोंपर शीर्षक अलग-अलग हैं । इन पृष्ठों को दोहरानेका एक कारण यह होसकता है कि लेखक 'आगम' से सम्बन्धित अपनी स्थापनाओंको पुष्ट करना चाहताहै । मूल बात यह है कि लेखक व भक्ति-साहित्य का विवेचन आगमिक चिन्तनाके आलोकमें करना चाह रहाहै । पुस्तककी अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

'यदि आगमिक चिन्तनाके आलोकमें समस्त भक्ति साहित्यका पुनर्मूल्यांकन औरभी आरोहण तथा अवरोहण-भूमिकाओंपर किया जाये तो इसकी ठीक-ठीक संगति तो लगही जायेगी, साथही उसी परम्परामें रीतिकालीन शृंगारके भी कुछ रहस्यमय परदे उघड़ सकतेहैं ।' (पृ. २३८)

सच्चाई यह है कि पुस्तकका सम्बन्ध भक्तिकालीन साहित्यकी दार्शनिक पृष्ठभूमिसे है । भक्तिकालीन साहित्यको आधार मानकर पुस्तक लिखी गयीहै। पुस्तकमें भक्तिके विविध रूपोंका सटीक विवेचन है । यह विवेचन भक्तिसे सम्बन्धित दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावलीका है। सिद्ध-साहित्य, नाथ-साहित्य, नामदेव, ज्ञानेश्वर आदिसे लेकर बंगालके बाउल साहित्यतक के विविध साहित्य—जिनका सम्बन्ध भक्तिसे किसी-न-किसी रूपमें रहाहै —के चिन्तन पक्षका विश्लेषण लेखकने कियाहै । पुस्तककी मूल सामग्री साहित्यसे सम्बन्धित है, किन्तु उसका विवेचन दार्शनिक है । इस नाते एक प्रश्न सहजमें उभरताहै कि दर्शन और साहित्यमें किसको प्रधान माना जाये ? लेखक ने नाम कवियोंके दिये हैं, विवेचनका आधार साहित्य को मानाहै और उदाहरणभी साहित्यसे दियेहैं—कविताएं, साखी, पद आदि—किन्तु उनका विवेचन आचार्यके रूपमें कियाहै । किसीभी कविको किसी विशेष दार्शनिक विचारधारासे जोड़ना बड़ा कठिन काम है। गोस्वामी तुलसीदासको ही हम किसी एक विचारधारासे नहीं जोड़ पाते । प्रायः उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी माना जाताहै । किन्तु माननेवाले उन्हें अद्वैतवादी भी मानतेहैं कहना यह है कि कवियोंको किसी एक विशेष दार्शनिक विचारधारासे जोड़कर उनका मूल्यांकन करना बड़ा कठिन और जोखिमका कामहै । ठीक यही बात सूरदास, कबीर तथा जायसीके सम्बन्धमें भी कही जासकतीहै । एकही कविके काव्यमें विविध प्रकारके चिन्तनकी प्रवृत्तियां मिलती रहीहैं । चिन्तनकी प्रवृत्तियोंको पहचानना तो चाहिये किन्तु उन्हें विशेष विचार-धारासे युक्त बतलाना कठिन है । डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीजी इस स्थितिसे अवगत प्रतीत होतेहैं । वे समस्त भक्ति-साहित्यको नये आलोकमें परखनेका प्रयत्न करतेहैं । वे चिन्तनकी मूलधाराको पहचाननेमें लगे हुएहैं । उस मूलधाराके उत्ससे आरम्भकर उसका पल्लवन और विकास विविध रूपोंमें किस तरह हुआहै, यह दिखलाना उन्हें इष्ट है । कवियोंको विशिष्ट विचार-धारासे जोड़नेके बजाय वे विशेष विचारधाराको कवियों में खोजनेका प्रयत्न अधिक करतेहैं ।

भक्ति साहित्यके सम्बन्धमें लेखककी मूल स्थापनाएं संक्षेपमें निम्न हैं :

''हिन्दी प्रदेशके 'निर्गुण' संत-साहित्यपर अबतक जो कुछभी लिखा गयाहै,प्रायः उन समस्त प्रयासों,शोध-प्रबन्ध, स्वतंत्र कृति, प्रकीर्णक निबन्ध तथा भूमिका सम्मत आदि का अध्ययन और मनन करनेपर ऐसा प्रतीत हुआ कि इस साहित्यकी व्याख्याके लिए जिस 'आगमिक दृष्टि' की अपेक्षा थी, वह अपेक्षित व्यापकतामें अपनायी नहीं गयी । इसके दो कारण हैं--एकतो भौतिक सिद्धियां और चमत्कारों में व्याप्त साधकों द्वारा विकृतिके कारण तंत्रों-आगामोंके प्रति उपेक्षा भाव और दूसरे इस साहित्यके साथ जीवित सम्पर्कका अभाव । मध्यकालकी समस्त आध्यात्मिक साधना आगमसम्मत है, इस तथ्यकी पुष्टि आगम और अध्यात्म-साहित्यके सम्पर्कमें आनेपर उत्तरोत्तर होती जा रहीहै ।'' (पृ. ८५)

''शुक्लजीकी शांकर अद्वैतपरक कबीरकी निर्गुण भक्तिको जोड़ना और फिर उसे असंभव माननाही गलत दिशाका प्रमाण है । पर जिधर प्रमाण है उधरकी समझ ठीक है । वेदान्तका अद्वैत कबीरका निर्गुण नहीं है, अतः उसकी उपास्तिका समर्थन करना व्यर्थ है । उनकी भक्ति तो आगमिक धाराकी भक्ति है, अतः उसी आलोकमें समझना चाहिये । जाने-अनजाने लोग मुड़ेभी इसी दिशा में है । रही बात सूफियोंकी, सो इस विषयमें भी यह जानना चाहिये कि भारतीय गुरुवादसे सूफी मत अत्यधिक प्रभावित है । साधनाके क्षेत्रमें सूफियोंके बीच गुरुका जो स्थान पाया जाताहै वह इस्लाममें नहीं है । इस्लामपूर्व अरबमें भी नहींहै । यूरोपमें भी इस प्रकार

गुरु-शिष्य सम्बन्ध देखनेको नहीं मिलता। गुरु-भक्तिका जो रूप भारतमें है, वहाँ कहीं नहीं है।"(पृ. १४६)

"रामचन्द्र शुक्लने लोकमंगलको ही साध्य माना और उसके लिए भक्तिको धर्मका रसात्मक रूप बताया। आत्मवादी भक्तिके पक्षधर दार्शनिक लोकमंगलको आत्म-मंगलका साधन बताया। उनकी दृष्टिमें आत्ममंगलका रास्ता लोकमंगलसे ही होकर गयाहै। अतः कतिपय चिन्तकोंकी यह धारणा कि मध्यकालीन भक्तिका स्वरूप और उसका स्वर नितान्त वैयक्तिकहै—सर्वथा विचारणीय है।" (पृ. १५५)

"प्रेमा पुमर्थो महान्की उद्घोषणा। आत्मसत्त्व या निजस्वरूपको किसी-किसीने परम प्रेमास्पद और किसी-किसीने परमप्रेमात्मकही कहाहै और इसलिए उस कालके साधक धर्मार्थकाममोक्ष—जैसे चार पुरुषार्थोंसे भिन्न प्रेमको पंचम पुरुषार्थ मानते हुए उसेही साध्य तथा सर्वाधिक स्पृहणीय मानाहै।" (पृ. २३६)

"भक्ति तत्त्वतः शक्तिहीहै।" (पृ. २३६)

इस तरहसे औरभी विचार मिल जायेंगे। लेखकका यह प्रयास रहाहै कि भक्ति सम्बन्धी चिन्तनकी अविरल धाराको जो मध्यकालीन भक्ति-साहित्यमें फिर वह ज्ञानाश्रयी हो, प्रेमाश्रयी हो, रामभक्ति हो या कृष्ण भक्तिहो – वर्तमान रहीहै, उसकी पहचान स्पष्ट करे। भक्तिके सामान्य स्वरूपको उजागर करनेका प्रयत्न लेखकने कियाहै। और यह सारा प्रयास चिन्तन-मूलक है।

लेखकका दृढ़ विश्वास है कि आगमिक ईश्वराद्वयवाद तथा शांकर अद्वैतवाद या ब्रह्मवादमें भेद है। लेखककी यह मान्यता है कि भक्तिको शांकर अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद से नहीं जोड़ना चाहिये। इन दोनोंका भेद न समझ पानेके कारण कहिये या शंकराचार्यके अद्वैतवादकी ओर झुक जानेके कारण भक्तिका स्वरूप ठीकसे स्पष्ट नहीं हो सकाहै। लेखकके शब्दोंमें बहुत संक्षेपमें अद्वय और अद्वैतका भेद निम्न है :

(क) आगम-सम्मत अद्वयके दो पक्ष हैं—पहला निष्क्रिय और दूसरा सक्रिय। पहला निष्पंद और दूसरा सस्पंद, पहला ऋणात्मक और दूसरा धनात्मक दोनों अपनी समरस दशामें हैं अद्वयात्मक। आगमिक इन दोनों पक्षोंको 'प्रकाश' और 'विमर्श' नामसे पुकारतेहैं, दोनोंको वे अविच्छेद्य मानतेहैं, चांद और चांदनीकी भाँति।

शांकर अद्वैतमें द्वैतों या भेदोंका अभाव है। वहाँ कोई विशेष नहीं, कोई भेद—सजातीय, विजातीय, विगत नहीं, इसीलिए वह निर्विशेष है। वहसब तरफसे सत् चित् एवं आनन्दमय है। सत् चित् एवं आनन्द नामतः भिन्न होते हुएभी स्वरूपतः भिन्न नहीं है। इसीलिए ये विशेषण नहीं, लक्षण हैं—क्योंकि वह निर्विशेष है। लगताहै कि शांकर अद्वैतको द्वैतसे भीति है, आगमिक अद्वयवादको नहीं। इसलिए जहाँ शांकर अद्वयवाद (अद्वैतवाद कहना चाहिये) निवृत्तिमूलक है वहां आगमिक अद्वय सबको कुक्षिसात् करनेवाला—एकत्र त्याग है, अपरत्र ग्रहण है।

(ख) आगमिक अद्वय जहाँ स्वाभाविक (पंच) कृत्यकारी है, वहाँ शांकर ब्रह्म या अद्वैत औपाधिक कर्त्ता है, फलतः जहां पहलेका 'कर्तृत्व' उसके स्वातंत्र्य-समय स्वभावका विलास होनेसे स्वरूपलक्षणभी कहा जासकताहै वहां शांकर ब्रह्मका 'कर्तृत्व' तटस्थ लक्षण माना जाताहै। आगमिक अद्वय विमर्शयुक्त है, शांकर ब्रह्म विमर्शहीन है। इसलिए आगमिक शांकर ब्रह्मवाद को शांत ब्रह्मवादभी कहतेहैं। आगमिक अद्वयमें ज्ञान और क्रिया समरस है—शांकर ब्रह्ममें क्रिया नहीं है और है तो औपाधिक या आगन्तुक। इसलिए शांकरी क्रिया या कर्तृतासे आगमिक क्रिया भिन्नभी है। आगमिक क्रिया ज्ञानात्मकही है—क्योंकि आगमिक अद्वयकी स्वातंत्र्यमूलक क्रिया ज्ञानस्वरूपही है।

(ग) आगमिकोंकी शक्ति चिन्मयी तथा परतत्त्वसे अभिन्नहै,जबकि शांकर शक्ति जड़ात्मिका फलतः ब्रह्माश्रित होती हुई ब्रह्माभिन्न नहीं है।

(घ) आगमिक ईश्वराद्वयवादमें ईश्वरका ऐश्वर्य और कर्तृत्व उसकी स्वाभाविक विशेषता है। वह विश्व-वैचित्र्यके अवभासनमें अन्यनिरपेक्ष है, स्वतन्त्र है। वह अपनीही स्वातंत्र्यात्मा विमर्श शक्तिसे केवल लीलाके लिए विश्वावभासन करताहै—आत्माराम होनेके कारण उसमें कोई स्पृहा नहीं है। इसलिए यहाँ किसी अभाव-मूलक प्रयोजनकी भी बात नहीं कीजा सकती।

(ङ) शांकर अद्वैतवादकी सारी साधना जहां 'अहं ब्रह्मास्मि'की अखंडाकार विद्यात्मक वृत्तिसे अविद्यात्मिका (माया) वृत्तिकी निवृत्तिमें ही पर्यवसितहो जातीहै और निरावृत्त विमर्शहीन चित् प्रकाशित होजाताहै, वहां आगमिक साधना उसके बादभी चलती रहतीहै और विमर्श शक्तिके पूर्ण विकासके साथ समाप्त होतीहै। यहीं

एक अन्तर आरोहण और अवरोहण बेलामें और है। आगमिक महामाया राज्यकी गतिसे शांकर स्तरके माया-राज्यकी गतिभी ठीक विपरीतहै। अवरोहण प्रक्रियामें महामाया राज्यके अन्तर्गत जागरणसे स्वप्नके भीतर सुषुप्तिकी ओर है पर यह जागरण सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर बढ़ताहै। प्रत्यावर्तनमें वेलामें इसी प्रकार उल्टा क्रम हैं।

(च) शांकर अद्वैत जड़जगत्की निवृत्तिपूर्वक स्वरूपप्रतिष्ठ होताहै—आगमिक अद्वय अचिदंशकाभी चिन्मयीकरण करता हुआ सब कुछके साथ स्वरूपप्रतिष्ठ होताहै। यही कारण है कि शांकर अद्वैतवादीके जीवन्मुक्तकी अनुभूतिसे आगमिक अद्वयवादीके जीवन्मुक्तकी अनुभूतिमें अन्तर होताहै।

और भक्तिके सम्बन्धमें :

(छ) आगमिक ईश्वराद्वयवाद न तो शुष्क ज्ञानमार्ग ही है और न ज्ञानहीन भक्तिमार्ग है—इसमें दोनोंका सामंजस्य है। शांकर अद्वैतवादके अनुसार भक्ति भेदकी ही भूमिकापर संभव है। अतः अभेद ज्ञान या स्वरूप प्रतिष्ठा होनेपर केवल ज्ञानकी ही सर्वातिशायी स्थिति संभव है, वहांकी पार्यन्तिक दशामें भक्तिका स्थान नहीं है पर आगमिक अद्वयवादमें ज्ञानके बादभी भक्तिकी स्थिति कही गयीहै। वस्तुत: यहां चिदंश शिव एवं आनन्दांश शक्तिके समरस रूपकी स्थितिके कारण ज्ञान और भक्तिका सामंजस्य संभव है, शांकर अद्वैतवाद में नहीं। यद्यपि भक्तिमात्रके लिए द्वैतकी अपेक्षा है, तथापि ज्ञानोत्तराभक्तिके लिए अपेक्षित द्वैत कल्पित है। यह साध्य भक्ति है और इस पराभक्तिके फलस्वरूप अद्वैतमें भी कल्पित द्वैतकी तरंगें उठती रहतीहैं, जिससे भक्तिकी स्थिति संभव होजातीहै। (पृ. १६६ से १७० तक)

बहुत संक्षेपमें अद्वय और अद्वैतके चिन्तनका भेद समझानेका प्रयत्न लेखकके ही शब्दोंमें ऊपर कियाहै। राममूर्ति त्रिपाठीजीकी यह दृढ़ धारणा है कि तंत्र-वाद, संत-साहित्य, गोरखनाथ, नामदेव, कबीर, ब्रजकी सांस्कृतिक चेतना, राधा, रासलीला, सूफीमत, बाउल मत या किसीभी मध्यकालीन प्रचलित धर्मसाधनाका विश्लेषण किया जाये तो उसके मूलमें आगमिक चिन्तन की धारा प्रवाहित मिलेगी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और परवर्ती विचारकोंने, जिनमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और परशुराम चतुर्वेदीभी आजातेहैं, अबतक भक्ति-साहित्य को आगमिक आलोकमें नहीं परखा है। आचार्य शुक्लके विचारोंसे लेखक सहमत नहीं है। इस तुलनामें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके विचारोंसे अधिक सहमत है। इसमें भी लेखकका कहनाहै—'भक्ति साहित्यकी वैचारिक विश्लेषणा प्राय: निगममूलक आस्तिक दर्शनोंके आलोकमें की गयीहै। म. म. कविराज तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रभृति कतिपय आगमन मनीषियोंने इस साहित्यको विश्लेषित करते हुए आगमिक पीठिका पर पुनर्मूल्यांकन करनेका संकेत कियाहै। डॉ. द्विवेदीका इस दिशामें प्रयत्न प्राय: निर्गुनिया साहित्यको लेकर अधिक है। मेरा प्रस्ताव है कि समस्त मध्यकालीन भक्ति साहित्यका विवेचन आगमिक आलोकमें ही किया जाना चाहिये।' (पृ. २३५)

कुल मिलाकर प्रस्तुत पुस्तक अपनी मौलिक स्थापनाओंसे युक्त है और विचारकोंको चिन्तनके लिए तर्कपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करतीहै। भक्ति-साहित्यको नये आलोकमें परखनेके लिए एक नयी दिशाका संकेत इस दिशामें है। यद्यपि इस प्रकारके संकेत इससे पूर्व (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं म. म. कविराज आदि) भी मिलेहैं किन्तु एक सम्पूर्ण पुस्तकके रूपमें इस प्रकारका चिन्तन हिन्दीमें प्रथम बारही आयाहै। लेखक का विश्वास है कि भक्ति-साहित्यकी तरह रीतिकालीन साहित्यको भी आगमिक आलोकमें देखना चाहिये। विश्वास है इस पुस्तकका समुचित स्वागत होगा और चिन्तनकी दिशा आलोकित होगी।

पुस्तकके प्रकाशक किताब महलके मालिक भी साधुवादके पात्र हैं जिन्होंने इस प्रकारकी गंभीर पुस्तक उत्तम रूपमें प्रकाशितकर चिन्तनके द्वार खोलनेमें महत् काम कियाहै। □

साहित्य और कलाको पहचान[1]

कृतिकार : डॉ. जगदीश शर्मा.

समीक्षक : डॉ. रमाकान्त शर्मा

समकालीन लेखनकी कलाहीन वस्तुपरकता और उसके विपरीत कलावादी तिलिस्मकी अन्त:गुहाओंने एक

---

१. प्रकाशक : किताब महल, १५ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२११-००३। पृष्ठ : ७९; डिमा. ८२; मूल्य : १६.०० रु.।

बार फिर वस्तु और रूपके अन्तःसंबंधोंपर गहराईसे विचार करनेकी जरूरतको केन्द्रमें रख दियाहै। वस्तु और रूपके अविच्छेद्य रिश्तेको जानबूझकर नकारनेका हरजाना साहित्यमें गिरावटका कारण बनता जारहाहै। वस्तु या रूपके प्रति जुनूनकी हदतक बढ़ा हुआ एकांगी उत्साह साहित्यके सामने सैकड़ों खतरे पैदा कर रहाहै। कभी यह खतरा अतिशय रूपवादके चक्करमें साहित्यको रहस्यमय बना देताहै तो कभी यह खतरा वस्तुवादके प्रति अतिरिक्त मोहके कारण कविताके कवितापन और कहानीके कहानीपनको ही खत्म करने लगताहै।

साहित्य जगत्‌में गहराते ऐसे संकटके दौरमें राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा **'डॉ. देवराज उपाध्याय आलोचना पुरस्कार'** से सम्मानित **डॉ. जगदीश शर्मा** की कृति 'साहित्य और कलाकी पहचान' निश्चित रूपसे एक स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करतीहै। इस पुस्तककी सार्थकता इस बातमें निहित है कि डॉ. शर्मा न केवल अनेक जटिल प्रश्नोंसे रू-ब-रू ही होतेहैं, वरन् गुत्थियां सुलझानेमें पहल भी करतेहैं। पुस्तकको पढ़ लेनेके बाद ऐसा महसूस होता है कि डॉ. शर्माने साहित्य और कलाके आपसी रिश्तोंकी पड़ताल बड़ी गहराई और बारीकीसे कीहै।

यह पुस्तक तीन खण्डोंमें विभाजित है। प्रत्येक खण्ड एक दूसरेसे जुड़ा हुआ होनेके बावजूद अपने आपमें पूर्ण होनेके साथ-साथ महत्त्वपूर्णभी है। 'कला और नन्दतिक मूल्य' शीर्षक प्रथम खण्डमें 'सर्जनका अभिप्राय,' 'कला कृतिके वस्तुपरक मूल्यांकनका प्रश्न' और 'रूप और रूपवाद' जैसे विषयोंपर गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया गयाहै। 'साहित्य और कलानुभव' शीर्षक द्वितीय खण्डमें 'साहित्यके माध्यमकी प्रकृति' तथा 'कविता और अर्थ' पर सोदाहरण चिन्तन हुआहै। सबसे अन्तमें 'सौन्दर्य शास्त्रका स्वरूप' शीर्षक तृतीय खण्डमें 'सौन्दर्यशास्त्र और समीक्षा' तथा 'सौन्दर्यशास्त्र : संज्ञाकी उपयुक्तताका प्रश्न' जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर सैद्धान्तिक विवेचन-विश्लेषण किया गयाहै। कुल मिलाकर ये तीनों खण्ड आलोच्य कृतिको सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचनाका ठोस आधार प्रदान करतेहैं।

डॉ. जगदीश शर्माने 'साहित्य और कलाकी पहचान' पुस्तकमें विविध कलाओंके परिप्रेक्ष्यमें अध्ययन प्रस्तुत कियाहै। संगीत, कविता, चित्र, मूर्ति, भवन, फिल्मकी रचना-प्रक्रियाओंपर एकसाथ विचारकर विद्वान् लेखकने विभिन्न कलाओंको सर्जनके सम्बन्ध से एक ही कोटिमें रखाहै। इस दृष्टिसे डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीकी आलोचना दृष्टिका विकास डॉ. जगदीश शर्मामें देखा जासकताहै। विभिन्न कलाओंकी एकात्मताकी पहचान निश्चयही एक खास तरहकी समझकी दरकार रखतीहै। डॉ. शर्माने कला-सर्जनाकी बारीकसे बारीक परतोंको खोलकर उसके मर्मको उद्घाटित कियाहै। उदाहरणके लिए डॉ. शर्माने कलाकी पहचान सर्जनात्मकतामें बतलाते हुए उसे कारीगरीसे अलगायाहै : 'कला और कारीगरीका भेद दृष्टिपथमें न रह जानेसे कला मूल्योंकी समझमें कठिनाई उत्पन्न होजातीहै। वस्तुतः प्रकृति-सौन्दर्यसे कला-सौन्दर्यको अलगानेमें जिस प्रकार 'निर्माण' की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार 'कारीगरी' से 'कला' को अलगानेमें 'सर्जन' की भूमिका निर्णायक है। 'कला' में 'निर्माण' या निर्मिति अन्तर्भूत है और इस दृष्टिसे 'शिल्प' 'कला' का अपना एक अविभाज्य अंग है, लेकिन 'कला' 'शिल्प' में निहित नहीं है। इसीलिए मात्र 'निर्माण' कलाके सन्दर्भमें अपर्याप्त है। 'निर्माण' कोईभी सिद्धहस्त व्यक्ति कर सकताहै, जबकि सर्जनके लिए हाथके सधावके साथ उद्भावना-शक्ति अपेक्षित है।'

इसी प्रकार सरस्वतीके विग्रहकी प्रतीकात्मकताको खोलते हुए डॉ. शर्माने 'विधा' से 'कला' के स्वरूपकी भिन्नतापर प्रकाश डालते हुए लिखाहै : जो लोग कलाको ज्ञानके साधनके रूपमें देखतेहैं वे वीणासे पुस्तकका काम लेनेका प्रयत्न करतेहैं। वीणा कलाकी प्रतीक है और पुस्तक ज्ञानकी। पुस्तक वीणाका स्थान नहीं ले सकती। इसी प्रकार वीणा पुस्तककी स्थानापन्न नहीं होसकती।

डॉ. शर्माकी यह स्थापनाभी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि वस्तु और रूपको पृथक्-पृथक् देखनेकी बजाय वस्तु को रूपमें देखा जाना चाहिये। वे लिखतेहैं : 'कलामें कल्पनात्मक परिणतिसे वंचित 'वस्तु' का अपना कोई मूल्य नहीं होता और कल्पनात्मक परिणति 'वस्तु' को 'वस्तु' न रहने देकर 'रूप' में ढाल देतीहै। उसे 'रूप' से अलगाकर जब सामग्रीकी दृष्टिसे ही देखा जाने लगताहै तो कलाके नाते उसका मूल्यांकन नहीं होपाता, क्योंकि 'रूप' से निचोड़ी गयी 'वस्तु' में कला रह ही नहीं जाती। कल्पना, दृष्टि, अभिव्यक्ति और सम्प्रेषणपर भी आलोच्य कृतिमें विस्तृत विचार किया गयाहै। इन विषयोंपर पाश्चात्य कलाचिन्तकोंके उद्धरणोंके साथ लेखकके मौलिक निष्कर्ष विषयोंको खोलने और समझने

में बहुत हदतक सहायक सिद्ध हुएहैं। यदि मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और कलामूल्योंपर भी विस्तारसे विचार कर लिया गया होता तो पुस्तककी उपादेयता और अधिक बढ़ जाती।

आलोच्य पुस्तकमें डॉ. जगदीश शर्माने कल्पना और यथार्थके द्वन्द्वात्मक सम्बन्धोंपर भी गहराईसे विचार कियाहै। रचनामें कल्पनाके महत्त्वको बतलाते हुए लेखक अपने सोचकी सजगताको बनाये रखनेमें सफल हुआहै। इसका कारण यह है कि डॉ. शर्मा ने 'आलोचनात्मक नियंत्रण' को रचना-प्रक्रियाका आवश्यक अंग माननेपर बल दियाहै। वे लिखतेहैं कि—'सच्चा कलाकार अपनी रचनामें स्वप्नोंको अंकित करते हुएभी स्वप्नोंमें खो नहीं जाता।' अपने समर्थनमें उन्होंने चार्ल्स लैम्बका यह कथन उद्धृत कियाहै : 'सच्चा कवि समग्रतापूर्वक स्वप्न देखताहै।' इसलिए वे संदृष्टि या विजन कोटिके होतेहैं।

सर्जनके अभिप्रायको विश्लेषित करते हुए डॉ. शर्मा जिस निष्कर्षपर पहुंचतेहैं, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। सर्जनको सक्रिय कर्म मानते हुए वे लिखतेहैं : 'सर्जन निष्क्रिय दिवास्वप्न दर्शनके विपरीत एक सक्रिय कर्म होताहै। कलाकारकी सूझोंकी शृंखला अन्तःप्रेरित और सुविचारित और दोनों प्रकारकी होसकतीहैं, यहांतक कि वह किसी विचारधारासे निर्दिष्ट और उसकी पोषकभी होसकतीहै। हर हालतमें कलाकारकी सूझ एकसाथ दो काम करतीहै : 'एक ओर वह कलाकारको अन्तर्दृष्टि, प्रत्यक्षके मर्ममें बैठनेकी क्षमता प्रदान करतीहै तो दूसरी ओर उसे उन साक्षात्कारोंमें रमातीहै जो अन्तर्दृष्टिकी देह बनकर, उसे प्रत्यक्षीकरणका विषय बनातेहैं। इस प्रकार अवलोकन और प्रत्यक्षीकरणकी सम्मिलित प्रक्रिया सर्जनका अपरिहार्य अंग है।' यथार्थ कलाकारकी कल्पना से उद्भासित होकरही सर्जनके किसी कामका होताहै। वरना महज यथार्थाभिमुखता कलाका धर्म नहीं माना जासकता। यहीं डॉ. शर्माका चिन्तन मुक्तिबोधकी काव्य समझके बहुत निकट प्रतीत होताहै। रचनामें सर्जनात्मक कल्पनाके महत्त्वपर बल देते हुए डॉ. शर्मा बहुत सही लिखते हैं : 'सर्जनात्मक कल्पनाका कार्य बहुमुखी होताहै। वह साक्षात्कार-प्रसवा होतीहै। साक्षात्कारोंको संयोजित करतीहै उन्हें माध्यममें डालनेकी सूझ देतीहै जो एक ओर सार्वजनिक माध्यमको निजी साक्षात्कारोंके संस्पर्शसे अपूर्व दीप्ति प्रदान करतीहै तो दूसरी ओर साक्षात्कारोंको माध्यममें उतर सकने योग्य बनानेके लिए उनमें आवश्यक संशोधन सम्पादन करतीहै। इस प्रकार सर्जनात्मक कल्पना कथ्य और कथनकी एकात्मताकी दिशामें कार्य करतीहै। रचना कर्मके दौरान इस एकात्मताके लिए किये जानेवाला संघर्ष निष्पन्न कृतिमें 'वस्तु' और 'रूप' को अविच्छेद्य बना देताहै।'

'साहित्य और कलाकी पहचान'की इस प्रकार कई स्थापनाएं और निष्कर्ष बहुतही महत्त्वपूर्ण होनेके साथ-साथ विचारणीयभी हैं यथा—

☐ सर्जन एक गतिशील संश्लिष्ट प्रक्रिया है जिसमें 'यथार्थ', 'अनुभव,' 'जीवन' या प्रतिपाद्य विषय केवल कच्चा माल होताहै।

☐ कलाकार रचनाके साथ मनमानी नहीं कर सकता; करताहै तो रचना भ्रष्ट होजायेगी।

☐ सर्जन अन्ततः कल्पना और माध्यमकी अन्तःक्रिया रह जाताहै। ऐसी स्थितिमें कलाकृति रचनाकार की उस साधनाको सामने लातीहै जो उसने कल्पना और माध्यमके तनावोंमें से रास्ता बनाकर दोनोंके पारस्परिक विलयके लिए कीथी।

☐ भौतिक वस्तु और कला वस्तु दो भिन्न कोटियों की वस्तुएं हैं। कला वस्तु भौतिक वस्तु नहीं होती, भौतिक वस्तुमें होती है।

☐ कोई कलाकृति 'रूप' का महत्त्व अस्वीकार नहीं करती, कोई नहीं कहता कि 'रूप' की उत्कृष्टताके बिना कोई कलाकृति महान् होसकतीहै।

☐ कला और कलाबाजीमें अन्तरहै। रचनाकारको कलाबाजीसे बचना चाहिये।

☐ 'असल जीवन' से विच्छिन्न कल्पना मनकी हवाई उड़ानही रह पातीहै।

☐ वास्तविकता यह है कि रूपवादियोंने अपना ध्यान रचनाके उद्भावना पक्षके स्थानपर उसके कलेवरपर केन्द्रित कर दियाहै।

☐ कलामें महत्त्व यथार्थका नहीं यथार्थ-बोधका होताहै।

☐ साहित्यमें भाषा रचनाका उसी प्रकार उपादान होतीहै जिस प्रकार चित्रमें रंग या कंठ-संगीतमें कण्ठ-स्वर। इसीलिए वह रचनाका अविच्छेद्य अंग होतीहै।

☐ कलाके 'अर्थ' का जो भी मूल्य हो, उसका 'होना' इसमें निहित नहीं रहता। जिसे आवश्यकता हो, वह कवितासे अर्थ दुहले, कलाका सरोकार रचनासे उत्पन्न

काव्यानुभवसे है, अर्थसे नहीं।

□ सौन्दर्यशास्त्र कलाधर्मकी पहचान है। सर्जनात्मक मूल्योंको सर्वोपरि रखकरही किसी कलाकृतिकी समीक्षा सौन्दर्यशास्त्रीय होसकतीहै।

डॉ. जगदीश शर्माकी उपर्युक्त स्थापनाएं और निष्कर्ष विचारोत्तेजकभी है और बहस-तलबभी। ये तमाम स्थापनाएं डॉ. शर्माको रूपवादी-कलावादी घोषित करतीहैं। वस्तुत: वे हैंभी कलावादी आलोचक। लेकिन इतना तय है कि उनका रूपवादी रुझान अन्य उग्र रूपवादियोंकी बजाय अनुशासित और संयत है।संभवत: इसीका परिणाम है कि डॉ. शर्मा वस्तु और रूपके स्थानपर आगे चलकर रचनाकारकी सूझ और उद्भावना-शक्तिको तरजीह देतेहैं।

हिन्दी आलोचनामें कलामूल्यों और सौन्दर्यशास्त्रपर बहुत कम काम हुआहै। डॉ. शर्माकी आलोच्य कृति उस कमीको एक हदतक पूरा करतीहै। निश्चयही 'साहित्य और कलाकी पहचान' हिन्दी आलोचना-जगत्में अपनी पहचान कायमकर सकेगी। □

राष्ट्रीयताकी अवधारणा[1]

[**'राष्ट्रीयताकी अवधारणा और पं. श्यामनारायण पाण्डेयका काव्य' शोध-प्रबन्धका पूर्व भाग**]

लेखक : डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य

समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

आज देशकी जो स्थिति बनती जा रहीहै उसमें देशकी एकताके लिए खतरा पैदा होता जारहाहै। हालमें ही पंजाब, भिवंडी, असम, अहमदाबाद आदि विभिन्न स्थानों पर उसके लक्षण दिखायी देही चुकेहैं। अब हमारे नेतागण भारतमें "राष्ट्रप्रेम," "राष्ट्रीय एकता" की कमीका रोना रोने लगेहैं; पर कठिनाई यह है कि सत्तारूढ़ दल सहित सभी राजनीतिक दल यह मानतेहैं कि अगर सारे देशकी बागडोर निर्द्वन्द्व रूपसे हमारे हाथमें आ जाये तो सारी समस्याओंका हल निकल आयेगा। इसीलिए देशमें "म्युजिकल चेअर" का खेल चल रहाहै। सारा देश तमाशागाह बनता जारहाहै, और लोग या तो तमाशागर बनते जा रहेहैं या तमाशाई। ऐसे माहौलमें लेखकने समीक्ष्य पुस्तकमें शास्त्रीय दृष्टिसे राष्ट्रीयताके स्वरूपको स्पष्ट करनेका, और ऐतिहासिक दृष्टिसे भारतमें राष्ट्रीयताकी अवधारणा खोजनेका प्रयास कियाहै। दोनोंही प्रयासोंमें उसे काफी सीमातक सफलता मिलीहै।

पुस्तक दो अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें 'राष्ट्र और राष्ट्रीयता' की अवधारणाको लेखकने शास्त्रीय दृष्टिकोणसे देखाहै। इसके लिए विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदसे उसने चर्चा प्रारंभ कीहै। अन्य वेदों और ब्राह्मण ग्रंथोंमें अवगाहन करते हुए और व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे भी विचार करते हुए लेखकने पश्चिमी विद्वानोंकी मान्यताओंकी भी विस्तारसे चर्चा कीहै और राष्ट्रीयताके संघटकोंको पहचाननेका प्रयास कियाहै। इस प्रकार पश्चिममें फ्रांसीसी क्रान्तिके बाद विकसित राष्ट्रीय अवधारणाका भारतीय संदर्भमें परीक्षण स्वत: होगयाहै। लेखकका यह निष्कर्ष ठीकही है कि "राष्ट्रीयताकी भावनाकी पृष्ठभूमिमें अनेक तत्त्व विद्यमान रहतेहैं जिनमें से एकाधिक तत्त्वोंके संयोगसे राष्ट्रीयताका निर्माण होताहै। इनमें भावात्मक एकता अनिवार्य तत्त्व है क्योंकि जबतक किसी विशिष्ट भूभागके प्रति अविचल मानसिक निष्ठाका उदय नहीं होता तबतक राष्ट्रीयताके केन्द्र राष्ट्रका उदय संभव नहीं।" (पृ. १६)

दूसरे अध्यायमें लेखकने राष्ट्रीयताके विकासकी अवधारणाका इतिहास वैदिक काल, वैदिकोत्तर काल, मध्य काल और आधुनिक कालके आयाममें खोजनेका अच्छा प्रयास कियाहै। आधुनिक कालके अन्तर्गत लेखकने राष्ट्रीयताके विकासमें सांस्कृतिक चेतना और राजनीतिक चेतनाकी भूमिकाका किंचित् विस्तारसे अध्ययन कियाहै। हमारी राष्ट्रीयताको चुनौती देनेवाली कतिपय समस्याओंका भी लेखकने उल्लेख कियाहै और यह निष्कर्ष निकालाहै कि "इन समस्त समस्याओंके समाधान के लिए यह आवश्यक है कि युगकी आवश्यकताओंके अनुरूप राष्ट्रवादकी परिकल्पनाओंमें धार्मिक एवं सांस्कृतिक आधारकी अपेक्षा आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक आधारको प्रधानता दीजाये। (पृ.७६) प्राक्कथनमें भी लेखकने कहाहै, "राष्ट्रीयताकी वर्तमान अवधारणा मुख्यता आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक एकतापर आधारितहै।" राष्ट्रीय एकताका निर्माण करनेवाले संघटकोंपर विचार करते समयभी लेखकने स्वीकार कियाहै," इस तथ्यकी अवहेलना नहीं कीजा सकती कि

---

१. **प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली। पृ. ८८; डिमा. ८४; मूल्य : २५.०० रु.।**

समान आर्थिक आकांक्षाओंवाले मनुष्य एक सूत्रमें सुगमतापूर्वक बंध जातेहैं। यहभी सत्य है कि किसी राष्ट्रके उत्थानमें उसके आर्थिक सूत्रोंका पर्याप्त प्रभाव पड़ताहै तथा वे सूत्र कालान्तरमें और अधिक प्रभावी होसकतेहैं।'' (पृ.१८) इसके बावजूद भारतमें राष्ट्रीयताके विकासमें जिस आर्थिक चेतनाकी चर्चा अपेक्षित थी, वह पुस्तकमें नदारद है। इसकी विशद चर्चा आवश्यक है।

समीक्ष्य पुस्तक लेखकके शोध-प्रबंध'' राष्ट्रीयताकी अवधारणा और पं. श्यामनारायण पाण्डेयका काव्य'' का पूर्वार्ध भाग है, अतः शोध शैलीमें लिखा गयाहै अर्थात् उद्धरण, मूल शब्द, उनके स्रोत, पृष्ठ संख्या आदि और अंतमें विभिन्न भाषाओंके सन्दर्भ ग्रंथोंकी सूची। इस सूची में कुछ पुस्तकोंके प्रकाशक दियेहैं: कुछके नहीं, कुछके संस्करण दियेहैं कुछके नहीं,। पृष्ठ ८७ पर लास्कीकी पुस्तक ''ए ग्रेमर ऑफ पालिटिक्स'' की प्रविष्टि सूचीमें दो बार होगयीहै। इन सब बातोंको ठीक करनेकी आवश्यकता है।

आज जब देशमें विघटनकारी प्रवृत्तियां बढ़ती जारहीहै तब इस पुस्तकके प्रकाशनका महत्त्व औरभी बढ़ गया है। आशा है इसके अध्ययनसे राष्ट्रीयताका स्वरूप समझने, और विघटनकारी प्रवृत्तियोंको पहचाननेमें पाठकोंको मदद मिलेगी। □

हिन्दी साहित्य: बंगीय भूमिका[1]

सम्पादक : डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र,
रामव्यास पाण्डेय

समीक्षक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया.

यह सर्वविदित है कि सैंकड़ों वर्ष पूर्व कलकत्तामें बोली जानेवाली हिन्दीके स्वरूपपर ही लेबेदवने हिन्दीका व्याकरण लिखा। सन् १८०० ई. में स्थापित फोर्ट विलियम कालेज और उसके अध्यापकोंका योगदान राजभाषाके विकासमें एक प्रकाश-स्तम्भके रूपमें स्वीकार किया जाताहै, यद्यपि उससे पहलेही गिलक्राइस्टने कलकत्तामें स्थापित सेमीनरीके माध्यमसे हिन्दीका प्रशिक्षण प्रारंभ कर दियाथा। नागरी टाइपकी दृष्टिसे हिन्दी टाइपके जनक विलकिन्स (सन् १७४९ से १८३६) का नाम अमर रहेगा, जिन्होंने सन् १७७० में पंचाननकी सहायतासे नागरी टाइपके पंच तैयार कियेथे जिससे आगे चलकर सन् १७७८ में प्रिंटिंग प्रेसकी स्थापना करनेमें सहायता मिली। हिन्दी पत्रकारिताका इतिहासभी कलकत्तासे ही प्रारंभ होताहै। मई १८२६में 'उदन्त मार्तण्ड' और १० मई १८२९ में प्रकाशित 'बंगदूत' में बंगलाके साथ हिन्दीको भी स्थान दिया गया। रामानन्द चटर्जी तथा चिन्तामणि घोषकी सेवाएं सर्वविदित हैं। सन् १८५७ भारतके स्वतन्त्रता संग्रामके रूपमें जाना जाताहै लेकिन यही वह वर्ष था जबकि श्री केशवचन्द्र सेनने गुजरातके श्री दयानन्द सरस्वतीको हिन्दीमें बोलनेके लिए उत्प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप हिन्दीतर क्षेत्रोंमें हिन्दीका प्रचार-प्रसार हुआ। यहभी उल्लेखनीय है कि सन् १८६८ में सर्वप्रथम बंगालके ही नवीनचन्द्र रायने पंजाबमें और सन् १८८६ में श्री भूदेव मुखर्जीने बिहारमें हिन्दीकी वकालत की। कलकत्ताको ही यह गौरव प्राप्त है कि यहाँ सन् १९०५ में जस्टिस शारदाचरण मित्रने 'एक लिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना की और भारतीय भाषाओंको समीप लानेकी दृष्टिसे 'देवनागर' शीर्षक पत्रका प्रकाशन प्रारंभ किया। हिन्दीका पठन-पाठन भी सन् १९१७ में श्री आशुतोष मुकर्जीके प्रयत्नोंसे विश्वविद्यालयमें प्रारंभ हुआ। इस परिप्रेक्ष्यमें पुस्तकके फ्लैपके ये वाक्य सर्वथा सार्थक हैं; ''खड़ी बोली भाषा-साहित्यकी आधुनिक यात्रा बंगालसे प्रारंभ हुईथी।... अहिन्दीभाषी प्रदेश बंगालका महानगर कलकत्ता विशिष्ट विद्या-साधकोंकी समृद्ध साधनाके बलपर हिन्दीका प्रमुख केन्द्र बन गया।'

इस दृष्टिसे कलकत्ताकी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'मणिमय' के तत्त्वावधानमें प्रकाशित तथा डॉ. मिश्र-व्यास संपादक-द्वय द्वारा संपादित ग्रंथ '**हिन्दी साहित्य:बंगीय भूमिका**' सन् १९८३ की महत्त्वपूर्ण कृति है जिसे निम्नलिखित खंडोंमें विभाजित किया गयाहै: १. भित्ति २. कृती पुरुष ३. प्रमुख पत्र ४. विविध विद्या ५. प्रवास-स्मृति.

उक्त खंडोंके अतिरिक्त प्रारंभमें डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र की लम्बी भूमिका २२ पृष्ठोंमें है जिसमें'बंगाल'की भूमिका स्पष्ट की गयीहै। ग्रंथके अंतमें दो महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट हैं। पहले परिशिष्टमें विशिष्ट कृतियों—वैश्वानर(मृत्युंजय उपाध्याय,लंबी कविता), व्यतिक्रम(सकलदीपसिंह, काव्य-संकलन), सृजनका सुख-दुःख(डॉ. प्रतिभा अग्रवाल, रंग-

१. **प्रकाशक : मणिमय, ४२-बी, रवीन्द्र सरणि, कलकत्ता-५। पृष्ठ : २८+५११; डिमा. ८३; मूल्य : ८५.०० रु.।**

कर्म), हिन्दी ही क्यों तथा अन्य निबंध (डॉ. माचवे, निबंध संग्रह), ठंडा आदमी (शंकर माहेश्वरी, उपन्यास), अप्रस्तुत (सं. नवल, कविता संकलन), हिन्दी पत्रकारिता: जातीय चेतना एवं खड़ीबोलीकी निर्माण भूमि (डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र, (शोध ग्रंथ) तथा परिशिष्ट-२ में सन् १९८०-८१ में कलकत्ताकी साहित्यिक-सांस्कृतिक परम्परा तथा हिन्दीके परम हितैषी पं. भूदेव मुखोपाध्याय तथा सांस्कृतिक एकताकी सहज राह : देवनागरी लिपिपर पठनीय निबंध हैं।

'भित्ति' शीर्षक खंडके अन्तर्गत डॉ. रमेन्द्रनारायण सेनगुप्तका 'बांग्ला माटी : बांग्ला सुर', डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याका 'हिन्दीकी महत्ता और बंगाल', डॉ. शिवमंगल रायका 'कम्पनीके शासनान्त तक के ईसाई धर्मप्रचारक और हिन्दी', डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेयका 'खड़ीबोली साहित्यका प्रथम चरण और बंगाल', डॉ. कृष्णबिहारी मिश्रका 'हिन्दी पत्रकारिता : बंगीय भूमिका' तथा डॉ. रायका 'बंगालके विद्यालय और विश्वविद्यालयमें हिन्दी भाषा-साहित्यका अध्यापन' शीर्षक निबंध संकलित हैं।

'कृती पुरुष' स्तम्भके अन्तर्गत कलकत्ता (बंगाल) निवासी-प्रवासी सुप्रसिद्ध साहित्यकारोंके जीवन एवं साहित्यपर सामग्री प्रस्तुत की गयीहै और वहभी सुधी लेखकों द्वारा। कृती पुरुषोंकी श्रृंखलामें हैं पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र (आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा कृष्णबिहारी मिश्र), बाबू बालमुकुन्द गुप्त (डॉ. रामविलास शर्मा), पं. गोविन्दनारायण मिश्र (आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र), पं. रुद्रदत्त शर्मा (पं. बनारसीदास चतुर्वेदी), पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर (पं. लक्ष्मीशंकर व्यास), पं. जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी (पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी) पं. अमृतलाल चक्रवर्ती (रामव्यास पाण्डेय), पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी (डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र), पं. माधवप्रसाद मिश्र (डॉ. शिवनाथ) पं. लक्ष्मणनारायण गर्दे (डॉ. रामचन्द्र तिवारी), झाबरमल्लजी शर्मा (कलानाथ शास्त्री), हनुमानप्रसाद पोद्दार (डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह), पं. ईश्वरीप्रसाद शर्मा (डॉ. विश्रान्त वशिष्ठ), आचार्य शिवपूजन सहाय (डॉ. सिद्धिलाल माणिक तथा वागीशदत्त तिवारी), निराला (रामवृक्ष चन्द्र तथा डॉ. प्रेमशकर) पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा भगवतीचरण वर्मा (मृत्युंजय उपाध्याय), इलाचन्द्र जोशी (डॉ. रामबली तिवारी), मूलचन्द्र अग्रवाल (डॉ. रामप्रीत उपाध्याय), पं. सकलनारायण शर्मा (पं. रामदयाल पांडेय), आचार्य सुकुल (आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तथा डॉ. शशिभूषण दासगुप्त) तथा पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी (डॉ. शिवप्रसाद सिंह)। इनमें से अधिकांश विशिष्ट पत्रोंके संपादक-पत्रकार हैं। बालमुकुन्द गुप्त उन वरिष्ठ पत्रकारोंमें से थे जिनकी धूम द्विवेदी युगके पहलेसे होचुकीथी। यह सर्वविदित है कि पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीसे उनकी पटती न थी और उन्हें 'वे झक्की और व्यवहारमें ढीठ तक मानतेथे (पं. श्रीधर पाठकको प्रेषित पत्र दिनांक २२-११-१९००) पर कई बार उनकी-सी शैली लिखनेके लिए पाठकजीने द्विवेदीजीको प्रोत्साहितभी किया। "मैं कोई नवीन प्रणाली निकालना नहीं चाहता, परन्तु शिष्ट, सूक्ष्म प्रथाका परम पक्षपाती हूं—X X लाला बालमुकुन्द गुप्तकी लेख-शैली बहुत रुचतीहै और मुझे असीम प्रसन्नता होगी यदि आप इन लेखकोंका अनुसरणकर सकें।" (पत्र दिनांक २२-८-१९०५) संभवतः इसी परिप्रेक्ष्यमें राय कृष्णदासजीसे द्विवेदीजीने कहा होगा 'अच्छी हिन्दी बस एक आदमी लिखताथा—बालमुकुन्द गुप्त।' इस खंडमें उन सभी साहित्यकारोंको स्थान दिया गयाहै जिन्होंने अपनी दधीचि अस्थियोंसे हिन्दीको सजाया संवाराहै अतएव हिन्दीके प्रत्येक पाठक/अध्यापकको इनके जीवनसे प्रेरणा मिलेगी। पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीपर तो डॉ. कृष्णबिहारी मिश्रने स्वयं लिखाहै। काश, हम वाजपेयीजीकी शताब्दी समारोहपर उनकी फुटकर सामग्रीको प्रकाशित कर पाते। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवनपर प्रेरक संस्मरण लिखेथे जो धारावाहिक रूपसे साप्ताहिक हिन्दुस्तानमें (नवम्बर १९५९ से २३ अक्तूबर १९६० तक) प्रकाशित हुएथे। लखनऊसे प्रसारित वार्ता 'जिन्दगीकी कहानी' में उन्होंने अपने पत्रकार जीवनपर प्रकाश डालते हुए स्वीकार कियाथा : 'हिन्दीका पुराना केन्द्र कलकत्ता था। वहींसे पहले पहल हिंदी पुस्तकें निकलीं और समाचार पत्र प्रकाशित हुए। **कलकत्तेने ही हिंदीको अखिल भारतीयता स्वीकृत की थी।**'

'प्रमुख पत्र' के अन्तर्गत 'विश्वभारती पत्रिका', 'भारतमित्र', 'मतवाला', 'विशाल भारत', 'नया समाज' तथा लघु पत्रिका आन्दोलनपर क्रमशः डॉ. भोलानाथ मिश्र, अनिलकुमार शुक्ल, घनश्याम तिवारी, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. शिवनारायण खन्ना तथा सकलदीपसिंहने प्रकाश डालाहै। इन पत्रोंके योगदानपर तो पृथक्-पृथक् शोध कार्य तत्काल सम्पन्न होना चाहिये। पुरानी फाइलोंके रहते इन पत्रोंकी महत्त्वपूर्ण सामग्री विशेषतः

संपादकीय टिप्पणियोंकी फोटो प्रति करवाकर किसी संस्था/संस्थान/विश्वविद्यालयमें सुरक्षित रखना चाहिये।

'विविधा विधा' में परशुरामने 'हिन्दी कविता' पर, डॉ. प्रतिभा अग्रवालने 'हिन्दी रंगमंच', डॉ. नगेन्द्र चौरसिया ने 'बंग प्रवासी हिन्दी कथा शिल्पी' तथा अलख नारायणने 'हिन्दी लेखनमें नयी संचेतना' पर प्रकाश डालाहै। यहां यह उल्लेखनीय है कि 'हिन्दी रंचमंच' से डॉ. प्रतिभा अग्रवाल सक्रिय रूपसे जुड़ी हुईहैं। उनका सौभाग्य यहभी है कि वे हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, नाटकोंको ही नहीं, लंदन, न्यूयार्क, पेरिस और मास्कोमें भी नाटकोंके विभिन्न मंचोंको देखती रहीहैं। इस विशालपटीय अनुभवके गहरे संस्पर्श उनके नाटकोंमें हैं और अपने अनुभवोंपर आधारित 'सृजनका सुख-दुःख' शीर्षक पुस्तकभी प्रकाशित हुईहै। उनका लेख 'हिन्दी रंगमंच: बंगीय भूमिका' न केवल पठनीय है वरन् अन्य प्रदेशोंके लिए भी प्रेरणाप्रद है। हिन्दी रंगमचको 'अनामिका' के माध्यमसे हिन्दीतर क्षेत्रमें प्रतिष्ठित करनेका श्रेयभी प्रतिभाजीको है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खण्ड है 'प्रवास स्मृति' जिसमें हिन्दीके सिद्धहस्त लेखकोंने अपनी लेखनीसे अपने कलकत्ता प्रवासकी खट्टी-मीठी स्मृतियाँ दीहैं। उल्लेखनीय नाम हैं: आचार्य शिवपूजन सहाय, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, मोहनलाल वाजपेयी, अज्ञेय, कल्याणमल लोढ़ा, हर्षनाथ, सीताराम सेकसरिया तथा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी। प्रो. लोढ़ाने 'पत्र' विधाके माध्यमसे बहुतही रोचक शैलीमें स्मृति आलेख भेजा। आलेखके माध्यमसे कलकत्ताके हिन्दीके चार दशकोंके इतिहासपर प्रकाश पड़ताहै। सबसे वयोवृद्ध जीवित साहित्यकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदीके संस्मरणोंके माध्यमसे पिछले सत्तर वर्षका इतिहास उजागर होताहै साथही गुरुदेव रवीन्द्र द्वारा हिन्दी-भवन' बनानेका इतिहास।

अन्तमें बंगीय भूमिकामें नेताजी सुभाषचन्द्र बोसकी उन पंक्तियोंको भी उद्धृत करना चाहताहूं जो उन्होंने २९ दिसम्बर १९२८ को कलकत्तामें हुए राष्ट्रभाषा सम्मेलनकी स्वागत समितिके अध्यक्षके नाते कहेथे: ''प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेषको दूर करनेमें जितनी सहायता इस हिन्दी प्रचारसे मिलेगी उतनी किसी अन्य चीजसे नहीं मिल सकती।''

ऐसे ग्रन्थोंके प्रकाशनसे निश्चित रूपसे 'हिन्दी साहित्यके इतिहास' के पुनर्लेखनकी आवश्यकता पड़ेगी। हिन्दी जगत्में इस प्रकाशनका स्वागत किया जायेगा। यहभी सुखद संयोग है कि कलकत्ताके महान् हिन्दी पत्रकार प. बाबूराव विष्णु पराड़करजीके शताब्दी समारोहके अवसरपर यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। □□

भारतीय साहित्य : आदान-प्रदान

उल्लंघन[1]

[कन्नड उपन्यास 'दाटु' का हिन्दी अनुवाद]

उपन्यासकार : एस. एल. भैरप्पा
रूपान्तरकार : वासु बी. पुत्रन
समीक्षक : डॉ. विवेकी राय

कन्नड़के सिद्ध कथाकार भैरप्पाका साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास 'दाटु' का प्रस्तुत हिन्दी-अनुवाद कई अर्थोंमें बहुत महत्त्वपूर्ण है। जाति-पाँतिकी व्यर्थताके संदर्भमें ऐसा विद्रोही और व्यापक प्रभावोंवाला क्रांतिकारी स्वर हिंदीमें अभी नहीं उभराहै। सचमुच, यह उपन्यास एक जबरदस्त भूकम्प है, परम्परित मान्यताओंको जड़से उखाड़ देनेवाला चक्रवात है। उत्तर भारतका हिन्दी-पाठक दक्षिण भारतकी जातिगत वैषम्य-विभीषिकाको इस कृतिके माध्यमसे अवश्यही विशेष चावसे पढ़ेगा और वह अखिल भारतीय स्तरपर इसके

1. प्रकाशक शब्दकार, २२०३ डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ५२८; क्रा. ८३; मूल्य : ६५.०० रु.।

विरुद्ध संघर्ष करनेके संदर्भमें समाजशास्त्रीय निष्कर्षों तक पहुंच सकेगा। ठेठ आधुनिक युगमें भी इस सामाजिक कोढ़से लोग मुक्त नहीं होपायेहैं और राजनीतिक कपट व्यूहसे जुड़कर उसकी सड़न औरभी गहरी होगयीहै। कन्नड़ समाजकी समूची संस्कृतिके बीचसे ब्राह्मण और शूद्रके अन्तरालका तथा उसके विरुद्ध संघर्षका जो मोर्चा कथाकारने इस कृतिमें प्रस्तुत कियाहै वह कृतित्वका एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

उपन्यासका आरम्भ तिरुमलापुर गाँवको उसके प्राचीन ऐतिहासिक संदर्भोंसे जोड़कर और विशेष रूपसे इस सांस्कृतिक बहससे आरम्भ होताहै यह शैव मन्दिर है या वैष्णव ? इसी बहसके बीच मंदिरके अर्चक वैंकट-रमणैयाके घर चलते एक भोजके बीच गृहपतिके मनमें एक चिन्ता उभरतीहै कि उनकी शिक्षिता पुत्री मैसूरसे वापस न आकर बैंगलूरमें क्यों घूम रहीहै ? और तभी उपन्यासकार पाठकोंकी भेंट उस विद्रोही पुत्रीसे करा देताहै जो फैसलाकर चुकी है कि मंत्री मेलगिरि गौड़ (शूद्र) के पुत्र श्रीनिवाससे अन्तर्जातीय विवाह करेगी। इस स्थलपर इस सूचनाके प्रति जो प्रतिक्रिया घोर संस्कारी ब्राह्मण-पिताके मनमें होतीहै वह पाठकोंको दहला देतीहै। वह देखताहै कि यह बदहवास पिता किस प्रकार बैंगलूर पहुंच बेतहाशा अपनी बेटीको तबतक पीटता जाताहै जबतक स्वयं बेहोश होकर गिर नहीं जाताहै और बेटी परम अहिंसक सत्याग्रहीकी भांति उसकी सारी मारको अंगीकार करतीहै। फिर इस कांडका साक्षी होताहै एक गाँधीवादी हरिजन विधायक बेट्टय्या और जातिगत ऊँचाई-निचाईके संदर्भमें एक ऐसी कसमसाती, विद्रोहपूर्ण रोमांचक पृष्ठभूमि बन जातीहै जो पूरे उपन्यासको अत्यन्त रोचक, उत्तेजक और ध्यानाकर्षक बना देतीहै।

उपन्यासमें स्थितियोंका चित्रण बहुत कसावटके साथ हुआहै। मंत्री मेलगिरि गौड़का पिता तिरुमलै गौड़ जो गाँवका वृद्ध पटेल है, कट्टर ब्राह्मण-विरोधी चरित्रसे सम्पन्न है। मंत्री अपने चुनाव-प्रचार और चुनाव भाषणका केन्द्रीय मुद्दा बनाता है ब्राह्मण-विरोधको। वह तोड़मोड़ कर पौराणिक लोक-कथा उड़ाताहै जिसमें रामराजके संदर्भमें शूद्रोंके शोषण-चक्र-प्रवर्तनको बहुत उत्तेजक ढंगसे पेश किया जाताहै। ब्राह्मण-पुत्री होकर शूद्र-पुत्रसे प्रेम-विवाह करनेके निर्णयके कारण सत्याको समाजकी ओरसे नाना प्रकारकी अवरोध-विरोध सम्बन्धी यंत्रणा झेलनी पड़तीहैं। उसे ब्राह्मण मकान मालिक घरसे निकाल देताहै। उसे ब्राह्मण-प्रभुत्व सम्पन्न विद्यालयसे निष्कासित होना पड़ताहै। उसके परिवारवालोंका ब्राह्मणत्वाभिमान बार-बार पिटताहै। लोककथाओं और रूढ़ियोंके चलते देखतेहैं जिसके अनुसार चमारबाड़ीमें यदि ब्राह्मण जाये तो वहाँकी लक्ष्मी चली जातीहै, अतः उसे मार-मार कर खदेड़तेहैं। कुल मिलाकर ब्राह्मण-संस्कृतिके विरुद्ध जेहाद जैसा कृतिमें छिड़ाहै, किन्तु विरोधाभास यह है कि ब्राणह्म-विरोधियोंके परिवारोंमें ठीक वैसेही मंदिर और पूजा-पाठके तामझाम हैं जैसे ब्राह्मणोंके यहां। शूद्र विधायक कहताहै 'मैसूरसे पुरोहितोंको बुलाकर लाउड-स्पीकरपर मंत्रोच्चार कराऊंगा।' (पृष्ठ १७६) उसे एक प्रकारसे गर्व है कि पढ़ लिखकर वे ब्राह्मणोंके रिवाजोंका अनुसरणकर रहेहैं। वास्तवमें प्रतिक्रियावादकी प्रवृत्ति दोनों ओर है और इसी स्थितिका चित्रण करनेके कारण उपन्यासमें एक गंभीर और तटस्थ संतुलन आगयाहै। अन्ततः वह ऊंच-नीचके भेद-अलगावको पाटनेवाली महान रचनात्मक कृति बन जाताहै।

इस उपन्यासमें सामाजिक क्रान्तिकी अगुवाई एक नारी ब्राह्मण-कन्या कर रहीहै और उसकी अविचल निष्ठासे हृदय-परिवर्तनके आयाम उजागर होतेहैं। यह सामाजिक क्रांति अर्थात् समाजकी कसी, रूढ़ियों, जकड़ी परम्पराओं और जीवनकी जड़में गहराईसे धंसी मान्यताओंसे लड़ना कितना कठिन है, इसका अनुमान आसानीसे नहीं होसकता। इसकी भयंकरता लड़ाई छिड़नेपर सामने आतीहै और दिल दहला देतीहै। इस उपन्यासमें लड़की सत्या और लड़का श्रीनिवास दोनों अपने-अपने समाजमें लड़ रहेहैं, मगर लड़का कुछ दूर चलकर लड़खड़ा जाताहै। उसमें पिताके विरोधके प्रति विरोध है, माँके अंधविश्वास—तरल आंसुओंके प्रति विरोधहै परन्तु माँकी फांसी लगा लेनेकी धमकी वज़नी पड़तीहै। फिर लड़की ब्राह्मण-पिता यानी गुरु-विरोधका मोर्चा! अपने दादाके सामने वंशाभिमानका मोर्चा! इस दुर्बल मानसिकताकी मनोवैज्ञानिक परिणति कथाकार चित्रित करताहै कि मंदिरकी आरतीके समय एकदम हिप्नोटाइज्ड होकर भगवानका चरणामृत लेताहै। पाठक उसके उच्चाटनका अनुमान कर लेताहै। और ऐसा लगताहै कि क्रांतिका मोर्चा लड़केका ओरसे ढीला होकर ढह गया! ऐसी स्थितिमें लड़कीका निष्ठाको एकतरफा कसौटीपर चढ़ाकर लेखक अत्यन्तही संवेदनशील रोमांचक स्थितियों

का सृजनकर देताहै।

समाजके विरुद्ध संघर्ष कितना कठिन होताहै इसका जीता-जागता उदाहरण लेखक द्वारा सत्याके संदर्भमें प्रस्तुत किया जाताहै। उसका अनन्य और निष्ठावान् प्रेमी जब विचलित होजाताहै तबभी वह न केवल मोर्चेपर डटी रहतीहै बल्कि उसके लिए नयी प्रेरणा बन जातीहै। ब्राह्मण मालिकों द्वारा किरायेके मकानसे और नौकरीसे निकालकर उसके भविष्यको पूर्ण अन्धकारमें डुबो दिया जाताहै। उसके हितैषी सुविधाओंकी प्राप्तिके लिए समाजसे समझौतेकी राजनीतिक सलाह देतेहैं। किन्तु यहां विद्रोहिणी नारी तमाम-तमाम प्रकारकी विरोधी शक्तियोंसे असीम साहसके साथ जूझती चलतीहै। उसके इस उत्कट आत्म-विश्वासका प्रथम प्रभाव स्वयं उसके पितापर लक्षित होताहै। उसका आमूल रूपान्तर होजाताहै। इस रूपान्तरका चित्रण उपन्यास लेखककी महती-महती मनोवैज्ञानिक सूझ और कलात्मक सफलताका सूचक है। उसके आत्मसाक्षात्कार का चित्रण अन्तर्विरोधोंके अत्यन्त सूक्ष्म ताने-बानेमें कराताहै। पाठक चकित होजाताहै कि कट्टर सनातनी पितामें अपनी पूरी परम्पराके प्रति घोर अनास्थाके बीज किस प्रकार जड़ जमा लेतेहैं। वह सोचने लगताहै, 'अन्तःकरण सत्य कहताहै।......रूढ़ि अन्तःकरणको ढक देती है।' वह यहांतक कहताहै कि 'भगवान-वगवान सब झूठ है। पूजा ढकोसला है।'

कथाकार बूढ़े पिता पुजारीके रूपान्तरका और गहरी तहोंमें पाठकोंकी सैर कराकर मातंगीके संदर्भमें उसकी काम-कुंठाकी प्रतिक्रियाओंके विविध मनोरंजक और विचारोत्तेजक प्रकरणोंकी सृष्टि करताहै। उसकी घोषणा, कि 'यह भगवान निरा पत्थर है। इसकी पूजा नहीं होनी चाहिये। कलसे यह सेवा नहीं करूंगा।' (पृष्ठ १८७), घर छोड़ बाड़ीमें झोंपड़ा बनाकर रहना, चमारबाड़ीमें अपमानित होना, मातंगीसे साक्षात्कार होनेपर झटका खाना, फिर यह सुनकर कि बेटी नौकरी छोड़ सेलसगर्ल का काम कर रहीहै, वहां दौड़े-दौड़े पहुंच जाना, सब कुछ द्वन्द्वग्रस्त चित्तका अद्भुत आलेखन है। वास्तवमें कृतिका अन्तर्द्वन्द्व चित्रण बेजोड़ है। यह समूची द्वन्द्वधारा जिस सुदृढ़ शिलासे टकरातीहै वह है बेटी सत्याकी सत्य-निष्ठा। वास्तवमें यह गांधीवादी जैसी निष्ठा है। इस निष्ठामें पाठकोंको आकुलकर देनेकी शक्ति है। यह आकुलता जातिवादके विरुद्ध भीतरसे उठतीहै। लगता है जातिवादके रोगोंकी जड़ें भारतीय संस्कृतिकी अतल गहराइयोंमें जमीहैं और गाँधीवादी व्यवस्था उसे उखाड़ नहीं पातीहै। समाजवादी व्यवस्थाही उसका समाधान होसकतीहै।

उपन्यासमें जो सामाजिक क्रांति होरहीहै उसका केन्द्र सत्या है। उसके द्वारा किसी-न-किसी स्तरपर रूपान्तर सबके भीतर हुआहै। मगर यह रूपान्तर गांधीवादतक रुक नहीं गयाहै, नयी आवश्यकताओंके अनुरूप ना ही वह हिंसक क्रांति तक पहुंचाहै। इसलिए हरिजन समस्याका नया हल एक सूत्रमें निकलताहै कि 'शक्तिही सम्मान है।' (पृष्ठ ४०१) इसी आधारपर व्यापक क्रांतिके लिए 'शक्तिवर्धक संघ' का संगठन उछल आताहै। इस नयी सक्रिय क्रांतिका सूत्र गाँधीवादी बेट्ट्या के पुत्र मोहनदासमें है। उसके लिए पुस्तक लिखकर प्रतिरोध, तोड़फोड़ और अराजकताकी प्रेरणा स्वयं सत्या देतीहै। इस प्रकार एक घृणाकी, हिंसाकी, तिरस्कारकी प्रतिक्रियात्मक आंधी उपन्यासके अन्तिम भागको अपनी चपेटमें ले लेतीहै। मोहनदास (नये युगका नया गाँधी-नाम?) सोचताहै, 'ऊंची जातियोंको रौंदकर शासन करनाहै।' वह बलपूर्वक मंदिरमें हरिजनोंके साथ प्रवेश करताहै। उसकी वहाँकी बेहोशी असफलताका प्रतीक है तो पूरे मंदिरको तोड़फोड़पूर्वक पानीमें डुबा देना सफलताके लिए अन्तिम प्रयासका प्रतीकहै। इस प्रकार जातिपाँतिकी समस्या, ब्राह्मण-प्रभुत्व और दलित-क्रांतिका एक चरण पूर्ण होताहै।

प्रश्न है कि क्या लेखकने इस पुस्तकके माध्यमसे ऊँची जातियोंके प्रति घृणा फैलानेका प्रचार कियाहै? वास्तवमें ऐसा सोचना इसकी कलात्मक ऊँचाइयोंके प्रति अन्याय करना होगा। ब्राह्मण संस्कृतिपर प्रहार अवश्य है पर स्वयं नीची जातियोंके छोटेसे छोटे अन्तर्विरोधोंको लेखकने बख्शा नहीं है। हरिजन एम. एल. ए. इस स्थितिपर रोता है। (पृष्ठ १८६) शूद्र मन्त्री कहताहै, 'मैसूरसे ब्राह्मण पुरोहितोंको बुलाकर लाउडस्पीकरपर मंत्रोच्चार कराऊंगा।' (पृष्ठ १७६) दूसरी ओर वह इस बातपर रोताहै कि हम लोग पढ़ लिखकर ब्राह्मणोंके रिवाजोंका अनुकरण करतेहैं। (पृष्ठ १७७) मोहनदास जो यह सोचताहै कि हरिजन आन्दोलन उठताभी है तो उसका नेतृत्व उच्च वर्गके हाथोंमें होताहै। उसका सोच सही है। इस कृतिके आन्दोलनको भी ब्राह्मण कन्याने ही बल दियाहै। लेकिन ऐसा लगताहै कि नयी हरिजन

पीढ़ी उसे धीरे-धीरे अपने हाथोंमें पूर्णरूपसे लेरहीहै। नयी पीढ़ीमें गांधीवादी-पुत्र मोहनदास और मातंगीके अवैध पुजारी-पुत्र होन्नेशमे घृणा और हिंसाका जटिल अतिवाद है। इसी पीढ़ीका श्रीनिवास अन्तमें पागल होजाताहै क्योंकि वह प्रतिक्रियावादी परिवेशकी उपज है। उसका पिता अवसरवादी मंत्री है। उसकी मां और दादामें शूद्र अभिजातका उभार है। दोनोंमें आत्मविश्वासभी चरम सीमापर है। क्रांति इन सब वस्तुओंके पारवाला कदम है।

कुल मिलाकर 'उल्लंघन'में महान कथाकार भैरप्पाने एक जबरदस्त काम यह कियाहै कि जतिपाँतिकी समस्यासे सम्बन्धित कोईभी ऐसा पहलू नहीं जो उसकी कलमकी गिरफ्तसे छूट गयाहो तथा इससे जुड़ा कोईभी मुहावरा या मिथ ऐसा नहीं जो मिस होगयाहो! इस सामाजिक विचार-क्रांतिके समानान्तर सत्यभामा, वेंकटेश, मातंगी, मोहनदास, श्रीनिवास, मारम्मा, होन्नेश, मत्री मेलगिरि, तिरुमलै गौड़, पुजारी वेंकट रमणैय्या, और बेट्ट्या आदि जो अति सजीव और मनोवैज्ञानिक चरित्र सृष्टि हुईहै वह कृतिकी महान् उपलब्धि है। भारतीय साहित्यमें जातिवादके बूढ़े विष-वृक्षको पूरी शक्तिसे झकझोरने-वाली ऐसी कोई दूसरी कृति मेरे देखनेमें नहीं आयीहै।

अनुवादक वासु बी. पुत्रनके अनुवादकी विशेषताओंपर भी ध्यान जाना स्वाभाविक है। कन्नड़ भाषाके भावोंको हिन्दीकी सहज धारामें ढालनका, उसके मुहावरोंको सटीक ढंगसे घोलनेका काम जो अनुवादकने सहज ढंगसे कियाहै उससे कृतिमें हिन्दीका अपना सहज-स्वाभाविक प्रवाह आगयाहै। □

हरदत्तका जिंदगीनामा[1]

[पंजाबीसे अनूदित उपन्यास]

लेखिका : अमृता प्रीतम
समीक्षक : डॉ. अरविन्द पाण्डेय.

'हरदत्तका जिन्दगीनामा' एक जिन्दगीनामाके शिल्प-विधानपर आधारित उपन्यास है। यह शिल्प-विधान पाठकके समक्ष एक विश्वासका हस्ताक्षर लेकर आताहै। मदनमोहन हरदत्त (हरिदूत) के जिन्दगीनामेको लेखिका वर्णनात्मक अन्दाजमें उपन्यासकी शक्ल देतीहै। मदन-मोहन एक उच्च ब्राह्मण परिवारका गरीब बालक है। बचपनमें ही गुलामीसे नफरत उत्पन्न होजातीहै। उसके भीतर जो आजादीकी मशाल जल उठतीहै वह उसे शहादत के लिए तैयार कर देतीहै। जार्ज पंचमके चित्रकी होली लगाने और सच्चाईके साथ उस कृत्यको स्वीकार करने तथा दण्डस्वरूप मासूस उम्रमें छः बेंत खानेसे कथाका आरम्भ होता है। 'नमक कानून तोड़ो' आन्दोलन एवं प. जवाहरलाल नेहरूकी तकरीरसे उसकी भावनाको बल मिलताहै। इसी दरम्यान घटित घटनाओंके आधारपर वह इस निष्कर्षपर पहुंचताहै—कि—'जोभी करना चाहिये ताकतके बलपर करना चाहिये।'''अगर लाठियाँ बरसानवाले अपनी इस मजबूरीको पहचान सकते हैं—तो देशको कोई खतरा नहीं है।"

गरीबीकी मार और पिताकी आंखें चली जानेवाली घटनासे वह इस निर्णयपर पहुंचा कि 'कि भगवान् कोई नहीं—कहीं नहीं'''।' नौकरी करते हुए वह सोचता है 'सुबह-शामका वक्त, उसका अपना वक्त उसके देशका वक्त है। तिरगे झडेके बीच हंसिया-हथौड़े चित्रितकर बाँहपर लगाताहै, पूछनपर कहताहै—'इसे मैंने आने वाले वक्तसे खरीदाहै।' गांधीजीके संबधमें उसका विचार है कि 'उसने लोगोंको यह पहचान दीहै कि वह गुलाम है। पर इस पहचानको हथियार सिर्फ कर्म दे सकते है।'

उसने 'ट्रिब्यून' में अब्दुल्ला सफदरका लेख—'साइंटिफिक सोशलिज्म' पड़ा। वह अब्दुल्ला सफदरसे मिलने को बेताब होगया। अब्दुल्ला सफदरसे मिलकर उसमें सोशलिज्मकी समझ आने लगी। सफदरकी मुलाकातोंने मदनके सुलगते हुए जज्बोंको दिशा दी। मदनकी पढ़ाई गरीबीने छुड़ा दीथी पर पढ़नेकी ललक वर्तमान थी। मास्को यूनिवर्सिटीमें पोलिटिकल ट्रेनिंग लेनेकी उसकी बलवती इच्छा जागी। रूस पहुंचनेकी इस अभिलाषा और देशको आजाद करानेके उत्साहमें सफदरका सन्देश मिलने पर जिस कम्पनीमें काम कर रहाथा, उसके डेढ़ हजार रुपये लेकर वह फरार होगया। इसके बाद सीमाप्रान्त और अफगानिस्तानके कबायली इलाके और रूस प्रवेशकी यातनाका प्रारंभ होताहै। खानोंके लालची स्वभाव और रूसी जेलोंकी यातनाओंका चश्मदीद गवाहके रूपमें वर्णन किया गयाहै।

---

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १४३; का. ८३; मूल्य : २०.०० रु.।

द्वितीय विश्व महायुद्ध युद्धकी परिस्थिति और रूसियोंकी अत्यधिक सतर्कताके कारण ब्रिटिश जासूस समझकर हरदत्तको यातना दीगयी। युद्ध समाप्त होनेपर हरदत्तको कड़ी मशक्कतके स्थान-स्थानपर काम करने पड़े। इस बीच दो-तीन स्थानोंपर नारी प्रेमने भी उसे आकर्षित किया। प्रेमकी विवशता और उसकी भौतिक दृष्टिका भी लेखिकाने चित्रण कियाहै। प्रेमका एक स्वस्थ दृष्टिकोणभी सामने आताहै।

पं. जवाहरलाल नेहरू, वजीरे आजम हिन्दुस्तान, की रूस यात्राका समाचार पाकर हरदत्तको गुज्जरांवाला की तकरीर याद आतीहै। "हरदत्तका चीखकर रोनेका मन हुआ—आज वही उसका जवाहरलाल उसके पाससे गुजराहै, पर वह एक दीवारके पीछे बैठा हुआ उसे आवाज नहीं दे सकता···।"

'१९५६के मई महीनेकी तीस तारीख थी, जब दोपहरको तफतीश अफसरने हरदत्तको बुलाकर कहा—'क्या हाल है कामरेड हरदत्त।'

"सूरजकी आखिरी लाली अभी आसमानपर थी जब हरदत्तने रिहा होकर जेलके बाहर दरवाजेमें से पैर बाहर निकाले। सामने दिख रहाथा कि रात पड़नेवाली है—पर हरदत्तकी तीसरी आँखने लम्हा-लम्हा काले होते जा रहे आसमानकी ओर देखा, और कहा—इस रातके दामनमें से नया सूरज चढ़नेको है उसकी मोहब्बतके आसमानपर भी, और समाजवादी निजामपर भी······।" उपन्यास इसी अनुच्छेदके साथ समाप्त होजाता है।

क्रान्ति और आजादीके शहादती अरमानोंको संजोये हुए हरदत्त बिना अपराधके लगभग १४-१५ वर्ष रूसी कैंपों में नारकीय यातना भोगता रहा फिरभी उसके भीतर सोशलिज्मका चिराग बुझा नहीं। यह उसकी सैद्धान्तिक दृढ़ताका प्रतीक है। साथही वह अपनी मोहब्बतको भी याद करताहै, जो उसकी मानवीयताकी साक्षी है। यातनाओं और कष्टोंने हरदत्तके शरीरको चाहे जितना तोड़ा और जर्जर कियाहो पर उसके विवेक और उसकी भावनाको कहींसे भी क्षत-विक्षत नहीं कर पायेथे। यही हरदत्तकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उसका राष्ट्रीय भावभी ज्योंका त्यों था। उपन्यासके माध्यमसे लेखिका ने जिस आदमीको प्रस्तुत किया, वह हरदत्त है और यही लेखनकी उपलब्धिभी है।

लेखिकाके 'कैमरेका फोकस' निरन्तर हरदत्तका पीछा करता रहताहै। हरदत्तके निकट आनेवाले दृश्योंको ही वह कैद करता रहताहै। दूसरोंको उतनाही कैद करता है जितना उनका ताल्लुक हरदत्तसे होताहै। अब्दुल्ला सफदर-सा व्यक्तिभी हरदत्तको भारतसे रूसी सीमामें प्रवेश कराकर गायब होजाताहै। लेखिकाके शिल्पकी यह सबसे बड़ी उत्कृष्टता है।

लेखिकाने अपनी वर्णनात्मक उर्दू-भाषिक शैलीके लिए एक बड़ा बेहतरीन माहौल गढ़ लियाहै। कथानक पंजाब, दिल्ली, सीमाप्रान्त, अफगानिस्तान और रूस जैसे क्षेत्रोंको अपने आगोशमें समेटे हुएहैं। अधिकतर स्थानोंपर उर्दूकी बहुलताहै। हरदत्तभी अब्दुल्ला सफदर के संगमें मियाँ मोहम्मद हुसेन बनकर नमाजी होजाताहै। इस सृजनात्मक कल्पनाने उर्दू जुबानमें बयाँको मौजूं रुख अख्तियार करनेका भरपूर अवसर दियाहै। इससे भाषिक स्वाभाविकताका पूर्ण निर्वाह होजाताहै। 'खानों' की मेहमाननवाजी और मस्जिदोंका नमाजी वातावरण जहां सांस्कृतिक स्वरूपको उजागर करताहै वहीं आदमी के सोचकी मानसिकताको भी। खान-पान लिबास बातचीतका लहजा, स्वार्थी और लालची स्वभाव, रहन-सहन, जीवनयापन, इबादत आदिके तौर-तरीके सभी कुछ सांस्कृतिक स्वरूपको विस्तारसे पाठकके समक्ष उपस्थित करतेहैं। रूसी जेलों और कैंपोंकी यातना शासकों द्वारा कितनी अमानवीय बनादी गयीहै—इसकाभी हृदय-विदारक दृश्य उपन्यास प्रस्तुत करताहै। तानाशाहों के बूटोंके नीचे कुचली जाकर मानवीय भावनाएं कैसी निरीह, विवश और बेचारी होगयीहैं—इसपर भी प्रकाश पड़ताहै।

वैचित्र्योंके मोड़-दर-मोड़पर—घटनाओं, परिस्थितियों और आदमीकी मानसिकताका अद्भुत नजारा देखनेको मिलताहै। वैचित्र्योंका सिलसिला उपन्यासको आगे बढ़ाता रहताहै। उपन्यासकी पठनीयताको बढ़ानेमें इसका बहुत बड़ा हाथ है। संभव है विशुद्ध हिन्दी पाठकके लिए उपन्यास में प्रयुक्त कुछ अल्फाज कठिन लगें, पर प्रारम्भमें पंजाबी लोक-गीतोंकी कुछ भावनाएँ और कड़ियां पंजाबी मानसिक सोचको उभारनेमें अत्यधिक सक्षम हैं। इसके अतिरिक्त भाषिक रवानगी, जुमलों और मुहावरोंकी छटा भी प्रशंसनीय है।

उपन्यास एक बड़े उद्देश्यको लेकर एक या कुछ व्यक्तियोंके प्रयासोंको रेखांकित करताहै। आज जब समाजसे बड़े उद्देश्य और उनके प्रति शहादतकी ललक गायब होगयीहै, राष्ट्रीयता खंड-खंड हो बिखर गयीहै

तब नयी पीढ़ीके सामने उपन्यास अपनी एक नयी पहचान लेकर आताहै, कुछ अजनबी-सा लगताहै। अजनबी इसलिए कि भाषा, क्षेत्र और धर्मके अधिकारके नामपर इतनी लम्बी-चौड़ी खाइयां खोदी गयीहैं या खोदी जा रहीहैं कि उसमें राष्ट्रीयता, धर्मनिरपेक्षता, जैसे तत्त्व चौंधिया गयेहैं। शहादत आजभी दी जारहीहै, पर स्वार्थी-संकीर्ण मनोवृत्तिके लिए।

लेखिकाने मोहब्बतको मानवीयताके आधारके रूपमें चित्रित कियाहै। उसका दर्जा जाति, धर्म, भाषा, देशकी सीमाओंसे परे है। आदमीकी भावना, आदमीके स्तरपर आदमीयतको पहचानतीहै। यह स्थापना उपन्यास अपने दृढ़ स्वरमें प्रस्तुत करताहै। इसी मुद्देपर उपन्यास किसी देश, राष्ट्रके आदमीकी पहचानकी आवाज बन जाताहै।

भारतीय कांग्रेस और क्रांतिकारियोंकी नियतिका भी लेखिका अप्रत्यक्ष रूपसे रेखांकन करतीहै। मतान्तर, सफलता-असफलसा अलग बातें हैं, पर मतको ईमानदारी से क्रियान्वित करनेका प्रयासही सराहनीय होताहै। यद्यपि हरदत्त अपने फैसलेके कारण भटक जाताहै और असफलभी होताहै फिरभी उसकी आस्था—सोशलिज्मका निजाम और मोहब्बत दोनों दृढ़ हैं। यही उसकी उपलब्धि हैं। पं जवाहरलाल नेहरूके प्रति उसकी प्रदर्शित निष्ठा, राष्ट्रीयता एवं ईर्ष्याहीन मानसिकताका परिचायक हैं। एक बहादुर सिपाहीकी तरह हरदत्त अपने हर निर्णयके प्रति उत्तरदायी है। उसे इसके लिए कहीं ग्लानि या पश्चातापसे हम अभिभूत होते हुए नहीं पातेहैं। वह जिस पंजाबकी मिट्टीको मत्थेसे लगाताहै, उसके ऋणको चुकानेके लिए पूरी ईमानदारीसे निरन्तर तत्पर रहताहै। बुआके दूधका ऋण तो उसने चुकाया कि नहीं पता नहीं, पर देशके ऋणको उसने अपने प्रयासोंसे निश्चित रूपसे चुकाया, इसमें सन्देह नहीं किया जासकता। काश, आज भी बुआके दूधके ऋणसे माटीके ऋणको अधिक तरजीह दीजा सकती।

अच्छे उद्देश्योंके लिए मर मिटनेकी भावनाका आज अकाल क्यों पड़ गयाहै? यह उपन्यास इस सोचको भी हमारे भीतर जगाताहै। यह अतीतका कथानक वर्तमानके द्वारपर दस्तक देताहै। क्याही अच्छा होता, कि वर्तमान कसमसाता। सोशलिज्मकी ललक शायद सम्पूर्ण भारतके सोचकी ललक है, परहर दलीय सोचका सोशलिज्म भिन्न-भिन्न है। संभव है यही कारण हो कि भारतीय धरती सोशलिज्मसे अछूती रह गयीहो और हममें से आशावादी, सोशलिज्मके सबेरेका इन्तजार कर रहेहों।

अमृताजी मंजी हुई लेखिका हैं। भावनाओंके तंतुओं को जोड़ना, उभारना और रूपायित करना उनकी कलम का कौशल है। उनका मानवीय आदर्श आसमानी नहीं, बल्कि कठोर धरतीकी सतहपर खड़ा दीखताहै। इसी स्तरपर भावनाएं वायवी न होकर यथार्थ होजातीहैं। उन्होंने हरदत्तके भावानात्मक निर्णयोंमें जो पृष्ठभूमि मुहैया कीहै वह निहायतही सर्जनात्मक है। 'हरिदूत' को सत्यकी दृढ़तासे जोड़कर आनुवांशिकताको सही जगह पर नत्थी कर दियाहै। आनुवांशिक संस्कारही आदमीके 'मूड' को गढ़तेहैं। यही वह प्रस्थान बिन्दु है जहांसे हरदत्त हरिदूत बनताहै। फिर तो एकके बाद दूसरी भावनाकी कड़ी निरन्तर जुड़ती चली जातीहै और बन जाताहै—'हरदत्तका जिन्दगीनामा'। हरदत्तकी भावनाओं में सोचका अभाव नहीं है, पर सोच कहीं हावी नहीं है। भावनाओंकी ताजगी कहीं सूखती नहीं।

हरदत्त जिन्दगीके अनुभवोंसे सबक सीखता रहताहै और उसके निर्णय उन्हीं अनुभावोंपर निर्भर हैं। मनोविश्लेषणकी बुनावटको पसन्द करनेवाले पाठकोंको शायद यह उपन्यास सपाट लगे। वह इसे घटनाओं और संयोगों का जालभी कह सकताहै। वैसी हालतमें मेरे विचारसे यह जिन्दगीनामा न होकर 'डायरी' होजाता। वस्तुतः 'जिन्दगीनामा' के स्वभावको देखते हुए इसका शिल्प और शैली दोनों उपयुक्त हैं। मनोविश्लेषणकी स्थितिमें यह उपन्यास अपने वैचित्र्यों, विविधताओं और सांस्कृतिक बुनावटसे वंचित रह जाता।

यह एक नाटकीय अन्तवाला आशावादी उपन्यासभी है, जो पाठकको भटकाकर छोड़ नहीं देता, बल्कि आशाके सूरजकी नयी किरणका आलोक देताहै। इस तरह जिन्दगीनामा जिन्दगीको एक सोच देकर पाठकसे अलग होजाताहै।

पूरी पाठ-प्रक्रियामें उपन्यास कहीं उबाऊ नहीं लगताहै। दृश्यों, घटनाओं कातिलों-लुटेरोंकी मानसिकता आदिके विविध दृश्यों और अब्दुल्ला सफदरके किरदारके विनोदी लहजोंमें पाठक रमता चलाजाताहै। पर रूसी जेलों कैंपोंके यातना-प्रसंगोंको लेकर एक प्रकारका मानसिक त्रासभी पाठकको आ घेरताहै, यद्यपि वहांभी आदमीकी कशिश और जिन्दादिलीके सबूत तो मिलही जातेहैं। □

विश्वंभरा[1]

[तेलुगु काव्यका हिन्दी रूपान्तर]

कवि : डॉ. सी. नारायण रेड्डी
रूपान्तरकार : डॉ. भीमसेन निर्मल
समीक्षक : डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै.

'विश्वंभरा' तेलुगुके मूर्धन्य कवि डॉ. सी. नारायण रेड्डीके प्रौढ़ कालकी प्रौढ़ रचना है, जिसका काव्यानुवाद हिन्दी तथा तेलुगुके मौलिक लेखक एवं अनुवादक डॉ. भीमसेन निर्मलने प्रस्तुत कियाहै। सन् १९८१ में प्रकाशित 'विश्वंभरा'पर डॉ. नारायण रेड्डीको अबतक महाकवि कुमारन आशान पुरस्कार (केरल), भीलवाडा पुरस्कार (कलकत्ता) तथा सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुएहैं, जो इस काव्यकी महत्ता एवं श्रेष्ठताके परिचायक हैं।

डॉ. सी. नारायण रेड्डी एक सिने गीतकारके रूपमें भारत-भरमें प्रख्यात हैं। किन्तु उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व वहांतक सीमित नहीं है, वे बहुमुखी प्रतिभाके धनी साहित्यकार हैं। अपनी साहित्य-साधनाके पिछले पैंतीस वर्षोंमें डॉ. रेड्डीने अपने काव्यों, नाटकों, समीक्षात्मक ग्रन्थों, अनूदित रचनाओं, यात्रा-संस्मरणों तथा वाग्मिता के द्वारा तेलुगु जन-मानसमें शाश्वत प्रतिष्ठा प्राप्त की है। प्रस्तुत 'विश्वंभरा' काव्य तेलुगुके आधुनिक काव्य साहित्यका शिखर है; यह एक ऐसा काव्य हैं जो सांकेतिक अर्थमें विश्व-मानवके विकासका रूपक कहा जा सकताहै। रूपक काव्यके चार प्रकारोंमें यह ऐसा काव्य हैं जहां पात्र तथा घटनाएं प्रतीकात्मक हैं। प्रौढ़ चिन्तन, उदात्त भाव-स्फीति तथा सरस कल्पनासे निःसृत इस काव्यमें सहमानव हननसे प्रारम्भकर सहमानव गमन तकको मानवकी जैत्र-यात्राका इतिहास संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत है। कविके अपने शब्दोंमें इस काव्यका नायक हैं मानव, रंगमच हैं विश्वंभरा और नेपथ्य है प्रकृति। इस काव्यमें प्रतीकात्मक भाषामें प्रस्तुत सिकंदर, ईसा, अशोक, सुकरात, बुद्ध, लिंकन, लेनिन, मार्क्स, गांधी आदि इस रंगमंचपर अभिनेता विश्व-मानवके नाना रूप हैं, जो उसकी नाना मनोभावनाओं, अन्तःस्फूर्तियोंका प्रतिविधान करतेहैं।

पांच सर्गोंके इस काव्यमें अपनी जिजीविषा शक्तिके सहारे आदि मानवने जो कलात्मक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक त्रिमुखी विकास प्राप्त कियाहै, उस विकासपथके उतार-चढ़ाव, संकल्प-विकल्पात्मक अनुभूतियां, स्वीकारात्मक-नकारात्मक उत्तेजनाएं सब कुछ बिम्ब रूपमें अवतरित हैं। प्रथम सर्गमें सृष्टि-पूर्व प्रकृतिकी, वर्जित ज्ञान-फलके उपभोगके परिणामस्वरूप आदि-मिथुनोंके मनमें उद्भूत भावनाओं, कल्पनाओं तथा मनस्तत्त्वोंकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुईहैं। उनके परस्पर एक दूसरेमें तल्लीन होने तथा दो शरीर एक मन होनेकी मनोवांछाकी प्रभावकारी अभिव्यक्ति दिनकरकी 'उर्वशी' का स्मरण दिलातीहै। दिनकरकी 'उर्वशी' जहां 'पढ़ो रक्तकी भाषाको' 'विश्वास करो इस लिपिका आह्वान देतीहैं', वहाँ डॉ. रेड्डी आदि मिथुन समस्त सुन्दरताओंको एकदम पी जाना (चाक्षुषको आस्वाद्यके धरातलपर पकड़ना) चाहतेहैं और फलतः प्रकृतिके प्रति उनकी रागात्मक अनुभूति उत्तरोत्तर बढ़ती जातीहै। 'नीचेकी माटीको अम्बरके सिरपर उछालनेकी अहंकृति' से उनमें संस्कृतिका जन्म होताहै। आगे थोड़ी-सी पंक्तियोंमें कविने नाखूनों, भालोंसे आत्मरक्षारत आदि मानवके भौतिक विकासकी आकाशको मुट्ठीमें दबोच डालनेतक की परिणति एवं प्रवृत्ति का उल्लेख कियाहै। आदि मानव तथा वर्तमान मानवके बीचके अन्तराल एवं विकासको थोड़ी सी पंक्तियोंमें समेटने के फलस्वरूप जीवनकी स्फीति एवं बहुआयामी स्वरूपका दर्शन नहीं होता। सर्गारंभ प्राकृतिक पृष्ठभूमिमें हुआ और आदि मिथुनोंकी प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रति रागात्मक अनुरक्तिका भी चित्रण हुआ, पर कविके वैचारिक तत्त्वने अनुभूति पर विजय प्राप्त की, इसलिए प्रकृति-चित्रणमें वह कल्पना विलास नहीं, जो डॉ. रेड्डीको प्रकृतिका कवि घोषित कर सके।

द्वितीय सर्गमें मानवकी कला-साधनाकी ऊर्ध्वमुखी चेतना और सफलताका सांकेतिक चित्रण हुआहै। झंकार, वृषभ स्वर, मेष स्वर, कुहू स्वरकी परिणति बांसकी बाँसुरी, लोह वीणा तथा चाम मढ़ा ढोल जैसे वाद्य यंत्रोंसे युक्त सप्तस्वरमय संगीतमें हुई; खुरदरी एवं अनगढ़ शिलाओंको तराश-तराशकर उसने भावभीनी मूर्तियोंकी सृष्टि की जिनमें आनन्द-तांडव हेलाएँ तथा दीप्त चैतन्य मुद्राएँ-लीलाएँ साकार होउठीं, रेखाओंमें

---

1. प्रकाशक : भारतीय भाषा परिषद, ३६ शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता- ७००-०१७। पृष्ठ : ९१; डिमा. ८४; मूल्य : ३०.०० रु.।

रंग-शबलिमा भरकर सुन्दर चित्र बनाये; चित्रगीति एवं काव्यकी साधनाकी परिणति निष्काम कर्मोंके भाष्योंकी सृष्टिमें हुई। इस प्रकार मानव-मानसकी छाया-छवियाँ अनेक ललित कलाओंमें मूर्तिमत होउठीं।'

तृतीय सर्गमें मनुष्यकी पशुताके द्योतक अहंकृति स्वरूप काम, क्रोध, मोह, लोभसे उद्भूत असंगतियों, कुरूपताओं, विषमताओंके दुष्परिणामोंका बीभत्स रूप प्रस्तुत करके कविने मानवको सावधानकर दियाहै कि मानवकी वास्तविक प्रगति रक्त-नदियोंके प्रवाह या लाशोंके अंबारमें नहीं, किन्तु सत्य, सत्त्व, शांति, दया अहिंसा एवं प्रीतिजन्य देवत्वकी सृष्टिमें है। यह सर्ग आद्यन्त अपनी प्रतीकात्मकताके कारण सहजही हृदयंगम नहीं होपाता।

चतुर्थ सर्गका प्रतिपाद्य मानवकी वैज्ञानिक प्रगति एवं उद्योगशीलता है। कविने मानवको अपनी सीमाओंसे अवगत रहनेकी चेतावनी दीहै। मनुष्यकी वैज्ञानिक प्रगतिने उसे गुफासे महलतक, पैदलसे रोदसी नौकातक, मशालोंसे बिजलीके दीपोंतक तथा बाणोंसे बमोंतक पहुंचायाहै। पर जल थल नभके परे झांकनेकी क्षमता रखनेवाला मानव आज अशांत है, अपने भाग्यको धिक्कार रहाहै। अध्यात्मको जीवनका चरम साध्य माननेवाला कवि दृष्टिके परेकी सृष्टि, सृष्टिके परेकी दृष्टि, गिरातीत अर्थ तथा अर्थातीत गिराकी ओर संकेत करताहै और उस ओर उन्मुख होनेकी आवश्यकता समझाताहै। पंचम सर्ग मानव विकासकी जैत्रयात्रामें सफल हुए विश्वमानवतावादी महापुरुषों द्वारा प्रचारित साम्य, स्वतन्त्रता एवं सह-अस्तित्वपर आधारित सिद्धांतों तथा आन्दोलनोंका मूल्यांकन करताहै। मानवकी स्वतन्त्रता एवं समताके समर्थक लिंकन, वर्गहीन सामाजिक व्यवस्थाके क्रान्तदर्शी मार्क्स, अहिंसा एवं सत्यके द्वारा स्वतन्त्रता-प्राप्तिके अग्रदूत महात्मा गांधी आदि प्रतीकात्मक शैलीमें अवतरित होतेहैं और कवि काव्यांतमें अपनी विश्वंभराका स्वरूपभी दर्शाताहै।

ऋषिताका, पशुताका
संस्कृतिका, दुष्कृतिका
स्वच्छंदताका, निर्बंधताका
समाद्रताका, रौद्रताका
पहला बीज है मन
तुला रूप है मन।
मनका आवरण मानव
मानवका आच्छादन जगत्।
यही है विश्वंभरा तत्त्व
यही है अनंत जीवन सत्य।

'विश्वंभरा' काव्य अपनी प्रतीक-योजना एवं बिम्ब-विधानकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। कविने मानव-मनोवत्तियोंको प्रतीक रूपमें प्रस्तुत कियाहै। 'रागात्मा' जर्मन भाषाके प्रसिद्ध गीतकार बीथोवेनका, 'तपस्या' विश्वामित्रका, 'अहंकार' इन्द्रका, 'शंपलता' सुन्दरी मेनकाका, 'मन' गौतम बुद्धका, 'धरालोभ' विश्वविजयाकांक्षी सिकंदरका, 'प्रश्न चिह्न' सुकरातका, 'परमधर्म' अशोकका, 'सत्यका प्रबोध करनेवाली कांति' ईसाकी दिव्यताका, 'चरण चिह्न' लिंकन, लेनिन, मार्क्स, गांधी जैसे महापुरुषोंका प्रतीक है। कविके ये सारे प्रतीक जीवनसे गृहीत हैं, किसी देश-काल या प्रकृतिसे संबंधित नहीं; अतः विश्व जीवनके द्योतक हैं। रेड्डीजीने संज्ञा-पदों, विशेषणों तथा क्रिया-पदों द्वारा अपने वर्ण्य विषयके बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। उनके ये बिम्ब चाक्षुष, श्रव्य या आस्वाद्य धरातलपर अवस्थित हैं। स्मृति-विहग, रसना-शुक, देह-लट्टू, दूधिया चांदनी, विद्युत वल्लरियाँ, तिमिर पत्रपर पूंछोंसे अक्षर तराशनेवाले खद्योत, गंडूषित मंडूक ध्वनि, जड मौनकी अंगड़ाई, जम्हाई लेता दुग्ध वलय, हजार बल खाती लताएं, आकाशी आलिंगन आदि प्रयोग इतने बिम्बात्मक हैं कि हठात् पाठकके मानस-पटलपर वस्तुके बिम्ब अंकित होउठतेहैं।

तेलुगुके 'विश्वंभरा' काव्यका हिन्दी काव्यानुवाद हिन्दी एवं तेलुगुके मौलिक लेखक एवं अनुवादक डॉ. भीमसेन निर्मलने प्रस्तुत कियाहै। डॉ. निर्मलका दोनों भाषाओंपर समान अधिकार है और अनुवादके क्षेत्रमें उनका दीर्घकालीन अनुभव है। फुटकर कविताओं, कहानियोंके अनुवादके अतिरिक्त डॉ. निर्मलने तेलुगुके मध्यकालीन भक्तिरसात्मक दो ग्रंथ 'रंगनाथ रामायण' तथा 'पोतना महाभागवत' के अनुवाद प्रस्तुत कियेहैं, जो बहुप्रशंसित हैं। 'विश्वंभरा' के अनुवादके समय इस दीर्घकालीन अनुभवने उनका विशेष साथ दिया, जिस कारण डॉ. रेड्डीकी काव्यानुभूति एवं काव्य-शैलीकी वे रक्षा कर सके। मूल ग्रंथके प्रास एवं लयकी ओरभी वे यथासंभव ध्यान देते रहे। "उस परसकी बरसती अनुभूति, अथाह सुप्त सागर-तरंगोंकी उद्धति" जैसी पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत कीजा सकतीहैं। लय एवं प्रवाहयुक्त सरसताकी रक्षाके लिए एकाध स्थानपर

मूरत, परस, दरस जैसे शब्दोंका सहारा लेना पड़ाहै। अपनी प्रतीकात्मकता एवं वैचारिक गंभीरताके कारण 'विश्वंभरा' काव्यका रसास्वादन करना सामान्य पाठकके लिए कष्टसाध्य है। इस तथ्यसे अवगत डॉ. निर्मलने भूमिकाके रूपमें डॉ. नारायण रेड्डीके जीवन एवं साहित्यिक व्यक्तित्वपर प्रकाश डालते हुए प्रस्तुत काव्यकी प्रतीक योजनाका तात्पर्य और अर्थवत्ता समझायी है। फलतः डॉ. नारायण रेड्डीके वैचारिक गुंफनको समझना सरल होगयाहै। डॉ. निर्मलने प्रस्तुत अनुवादके द्वारा तेलुगुके कवि डॉ. रेड्डीको हिन्दी पाठकोंके सामने प्रस्तुत करके जहां उनका क्षितिज व्यापक बनाया, वहां राष्ट्रीय भावात्मक एकताका सेतुकरण करके बड़ाही स्तुत्य कार्य कियाहै। □

मनुष्यका यथार्थ आदर्श

कृष्ण चरित्र[1]

लेखक : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
छायानुवाद : डॉ. ओम्प्रकाश
समीक्षक : सन्हैयालाल ओझा.

हिन्दीके पाठकोंको यह जानकर शायद सुखद आश्चर्य होगा कि बंगलाके स्वनामधन्य प्रसिद्ध उपन्यासकार और राष्ट्रगीत 'वन्देमातरम्' के प्रणेता स्व. श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय उतनीही उच्च श्रेणीके तत्त्व-चिन्तक, प्राचीन शास्त्रोंके मर्मज्ञ, भारतीय संस्कृतिके उद्भट् विद्वान् और तत्त्वान्वेषक थे,जो उनके अन्य चार गवेषणात्मक ग्रन्थों— धर्मतत्त्व, श्रीमद्भगवद्गीता, देह-तत्त्व और हिन्दूधर्म तथा कृष्णचरित्र,---से स्पष्ट है। तत्त्वान्वेषक होनेके साथही वे परम नैष्ठिक भक्तभी थे, इसीलिए वे ऋषि बंकिमचन्द्रके नामसे प्रख्यात थे। राष्ट्रगान 'वन्देमातरम्' के शताब्दि-समारोहके अवसरपर डॉ. ओम्प्रकाशने उनके 'कृष्णचरित्र' ग्रन्थका हिन्दी छायानुवाद प्रस्तुतकर न केवल ऋषि बंकिमचन्द्रके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित कीहै, बल्कि देशके निकट चिन्तकके रूपमें उनके एक नये आयामका उद्घाटनभी कियाहै। इसके अतिरिक्त देशकी वर्तमान अराजक-अवस्थामें मनुष्यत्वके यथार्थ आदर्शके रूपमें महामानव कृष्णकी मानवोपम भूमिकाकी मीमांसा प्रासंगिकही नहीं प्रेरकभी है।

भारतीय जन-जीवनमें कृष्णचरित्रकी अन्यतम महिमा है। संस्कृति, दर्शन, धर्म, साहित्य आदिके चिन्तनके क्षेत्रही नहीं, व्यवहारके क्षेत्रभी उस चरित्रसे व्यापक और गम्भीर रूपमें प्रभावित हैं। कृष्णकी षोड़श कलाओंसे युक्त पूर्णावतार मानकर उन्हें सब अवतारोंमें श्रेष्ठ, स्वयं सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा कहा गयाहै। उनकी लीलाओंके आकलनमें कल्पनाके प्रशस्ततम भाव, मनोवैज्ञानिक रतिके सूक्ष्मतम अनुभाव, तत्त्व-चिन्तनके गहनतम स्तर और आध्यात्मिक अनुभूतिके गुह्यतम रहस्य उदघाटित हुएहैं। विश्व-साहित्यमें ऐसा सर्वांग सम्पूर्ण चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। स्वाभाविक है कि नितान्त भौतिक प्रतिमानोंसे मापनेपर इस चरित्रमें असंगतियां, असाधारणता और अस्वाभाविकताही दिखायी दें बल्कि, जैसेकि पाश्चात्य आलोचकोंके आक्षेप हैं, इसमें नैतिक और चारित्रिक स्खलनभी खोज लिये जा सकतेहैं। विद्वान् लेखक बंकिमचन्द्रने बड़े अध्यवसाय और महाभारत-पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थोंका सम्यक् अनुशीलनकर कृष्णचरित्रके मूल -स्रोतोंकी साक्ष्यपर इसे प्रस्तुत ग्रन्थमें निष्कलंक प्रतिपादित कियाहै।

कृष्णचरित्र जिन प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलताहै वे हैं, महाभारत, हरिवंश तथा अठारहमें से हैं केवल ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त, स्कन्द, वामन, और कूर्मपुराण। इन सबमें प्राचीनतम ग्रंथ है महाभारत, किन्तु वह वास्तवमें कौरवों और पांडवोंकी कथा है इसलिए उसमें कृष्णका शैशवकालीन चरित्र नहीं है। कहते हैं, इस कमीको पूरा करनेके लिए ही सौति, शौनक आदि ऋषियोंकी प्रार्थनापर उग्रश्रवाःने हरिवंशका कथन किया। स्पष्टही यह महाभारतकी परवर्ती रचना है। पुराणोंमें भी विस्तृत कृष्ण-चरित्र केवल ब्रह्म, विष्णु, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त इन चार पुराणोंमें ही है। ब्रह्म और विष्णुपुराणका चरित्र एक जैसा है। विद्वान् लेखकने प्रचुर प्रमाण देकर यह प्रतिपादित कियाहै कि महाभारतमें वर्णित कुरुक्षेत्रका युद्ध सम्भवतः ईसाके १४३० से लगाकर १५०० वर्ष पूर्व हुआथा। महाभारतकी रचना उस युद्धके बादमें प्रारम्भ हुई हो तबभी वह ईसाके एक हजार वर्ष पूर्व अवश्य अस्तित्वमें आगयी होगी, क्योंकि पाणिनीकी अष्टाध्यायीसे यह प्रमाणित है। महाभारतकी रचनामें भी लेखकने पूर्वापर भिन्न-भिन्न समयोंमें रचित

---
1. **प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : २२४; क्रा. ८३; मूल्य : २५.००** रु.।

तीन स्तरोंका अनुसन्धान कियाहै। प्रथम मूल स्तर सम्भवत: महर्षि व्यास-प्रणीत संक्षिप्त २४००० श्लोकोंकी भारत-संहिता है, 'जिसमें पांडव आदिका वृत्तान्त एवं प्रसंग प्राप्त कृष्ण-कथाके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।' दूसरा स्तर किसी भिन्न व्यक्तिकी, कवित्व-कौशल और कृष्णके देवत्व-गुण-समन्वित रचना है जिसे मिलाकर महाभारतके कुल एक लाख श्लोक होजातेहैं। 'द्वितीय श्रेणीके अंशोंको अलगकर देनेसे महाभारतकी कोई क्षति नहीं होती, केवल कला-कौशल कुछ कम होजाताहै, कथा अखंड रहती है।' द्वितीय स्तरके बारेमें लेखक १८२ पृष्ठपर लिखताहै, 'महाभारत महासमुद्र है। हम अबतक इसकी जलराशिमें मधुर मृदुगम्भीर शब्द सुनते-सुनते नौका-यात्राकर रहेथे। परंतु अब हम सहसा घोर तूफानमें आपड़े, लहरोंका घात-प्रतिघात हमारी नौकाको थपेड़े देरहाहै, क्योंकि इस समय हम विशेष प्रकारके द्वितीय स्तरके कविके हाथमें पड़ गये। इस कविके हाथसे कृष्ण चरित्रमें बड़ा परिवर्तन आगया। जो उदार था, वह क्षुद्र-संकीर्ण बन गया, जो सरल था वह कौशल-युक्त होगया, जो सत्य था वह असत्य एवं प्रवंचनाका स्थान बन गया, जो न्याय और धर्मसे अनुमोदित था वह अन्याय और अधर्मसे कलुषित होगया। द्वितीय स्तरके कविने कृष्णचरित्रमें इस प्रकार विकार उपस्थित कर दिया।···द्वितीय स्तरका कविभी क्षुद्र नहीं था, वह धर्माधर्म शून्य नहीं था।' आगे वे कहतेहैं, 'प्रथम स्तरके कविके हाथसे ईश्वरावतारके रूपमें कृष्णका चित्रण नहीं हुआहै।' किंतु जिस समय समाजमें 'श्रीकृष्णका ईश्वरत्व स्वीकृत और स्थापित होगया, उस समय दूसरे स्तरका कार्य प्रारम्भ हुआ।'···'हम लोग जिसको ईश्वरीय नियम कहतेहैं, द्वितीय स्तरका कवि उसे ईश्वरीय प्रेरणा कहताहै।' तृतीय स्तरकी रचना उनके मतसे बादकी अनेक शताब्दियोंकी रचना है। 'कुछ लिखकर जबभी किसी कविको सुन्दर लगा तो उसने उसको महाभारतमें जोड़ दिया।···इसमें अच्छी-बुरी अनेक बातोंका समावेश होगयाहै। शांति पर्व और अनुशासनिक पर्वोंका अधिकांश, भीष्मपर्वका श्रीमद्भगवद्गीता पर्वाध्याय, वनपर्वका मार्कंडेय समस्या पर्वाध्याय, उद्योगपर्वका प्रजागर पर्वाध्याय, ये सब इस तृतीय स्तरके कालमें रचित जान पड़तेहैं। दूसरी ओर आदिपर्वके शाकुन्तलोपाख्यानके पर्वके अंश तथा वनपर्वका तीर्थयात्रा पर्वाध्याय आदि अपकृष्ट अंशभी इसी स्तरके अंतर्गत हैं।' (पृ: ४६) कृष्णचरित्रके अन्य पौराणिक आधार,—विष्णु, ब्रह्म और भागवत पुराण क्रमश: दसवीं, तेरहवीं और चौदहवीं ईसवी शतीके, तथा वर्तमानमें उपलब्ध ब्रह्मवैवर्त एक आधुनिक रचनाके ग्रंथ माने जातेहैं। अत: लेखकके अनुसार कृष्णके मूल चरित्रके जिज्ञासुओंको महाभारतके केवल प्रथम स्तरका आधार लेनाही समीचीन और प्रामाणिक होगा।

पाश्चात्य और उनसे प्रभावित अन्य धर्मावलम्बियोंका आक्षेप मुख्यत: वृन्दावनमें कृष्णके गोपबालाओंसे संबंध और रासलीलासे है। किंतु महाभारतमें कहींपर भी गोपबालाओंका उल्लेख नहीं है, यहाँतक कि शिशुपालके द्वारा गिनाये दोषोंमें भी उनका उल्लेख नहीं है। और राधाका उल्लेख तो श्रीमद्भागवत पुराणमें भी नहीं है, वह सर्वप्रथम केवल ब्रह्मवैवर्त पुराणमें ही मिलताहै, तथा जैसा कि कहा जाचुकाहै, विद्वान् इसे अत्यन्त अर्वाचीन रचना मानतेहैं। इस पुराणके अनुसार गोलोक-धामकी अधिष्ठात्री देवी कृष्ण-विलासिनी राधा है। आगे रासमंडल और फिर रासमंडलको धारण करनेवाली राधाकी सृष्टि हुई, रासका 'रा' और धारणके 'धा' के मिलनेसे 'राधा' नाम पड़ गया। अर्थात् राधाकी कथा बहुत पीछे कल्पित हुईहै। बंगालके वैष्णव मतपर इसका बहुत प्रभाव है। बंगला काव्य,संगीत, यात्रा आदिमें इस पुराणकी अपूर्व छटा विकसित हुईहै। वस्तुत: ब्रह्मवैवर्त पुराणसे ही समस्त नूतन वैष्णव धर्मका प्रादुर्भाव हुआहै। इसीके आलम्बनपर जयदेवके गीतगोविन्दकी रचना हुई, जिसके अनुसरणपर विद्यापति, चंडीदास आदिकी काव्य रचना और महाप्रभु चैतन्यदेवका कान्तारसाश्रित आधुनिक-भक्तिवाद प्रचारित हुआ। व्रजभूमिमें गोसांई हित हरिवंशने एक नये राधावल्लभी सम्प्रदायकी ही स्थापना कर डाली।

विद्वान् लेखकने इस नूतन धर्मके तात्पर्य और मूलका भी वैज्ञानिक विवेचन कियाहै। महाभारतमें राजसूय-यज्ञके अवसरपर शिशुपाल द्वारा कृष्णके दोष-वर्णनके आधारपर कृष्णचरित्रके महाभारत-बाह्य चरित्रका भी लेखकने सम्यक् वर्णन प्रस्तुत करके यह प्रमाणित कियाहै कि वे अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रीतिमय, दयामय, अनुष्ठेय-कर्मसे अपराङ्मुख, धर्मात्मा वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायनिष्ठ, क्षमाशील, निरहंकार, योगी, तपस्वी हैं। उन्होंने मानवी शक्ति द्वारा निज कर्मका निर्वाह किया, परन्तु उनका चरित्र

अतिमानवीय है। (पृ. २२३-२४)।

कृष्णचरित्रकी प्रामाणिकताका अनुसन्धान करते हुए लेखकने कई धार्मिक-सामाजिक समस्याओंपर अपने निर्णयात्मक विचारभी प्रस्तुत कियेहैं । उनके अनुसार कृष्ण समाज-सुधारक नहीं थे। उनका उद्देश्य था देशका नैतिक एवं राजनीतिक पुनर्जीवन, धर्मप्रचार एवं धर्मराज्य-संस्थापन। इसके होनेपर समाज-संस्कार अपने आप होजाताहै। (पृ. १३४)। यीशु अथवा शाक्य मुनि से कृष्णका वैशिष्ट्य बताते हुए पृष्ठ १४८ पर वे कहतेहैं, 'यीशु अथवा शाक्यमुनिका व्यवसाय धर्मप्रचार था। कृष्णने भी धर्मप्रचार किया, किन्तु धर्मप्रचार उनका व्यवसाय नहीं था धर्मप्रचार तो आदर्श मानवके आदर्श जीवन-निर्वाहका आनुषंगिक फल मात्र है।...... कृष्णका नाम पतितपावन है, परन्तु फिरभी वे इतिहासमें पतित-संहारक विख्यात हैं। यीशु पतितोद्धारक थे, उन्होंने किसीभी दुरात्माका प्राणहरण नहीं किया। उनके व्यक्तित्वमें इस प्रकारकी क्षमताभी नहीं थी। शाक्य सिंह और चैतन्यमें भी यही गुण पाया जाताहै। कृष्णका नाम पतितपावनहै, परन्तु फिरभी वे इतिहासमें पतित-संहारक विख्यात हैं। यथार्थ हिन्दू आदर्शमें श्रीकृष्णही मनुष्यत्वके यथार्थ आदर्श हैं।' आगे एक स्थलपर कृष्णकी इस उक्तिका कि, 'जो व्यक्ति पृथ्वीके समस्त सैन्य-दलको मृत्यु-पाशसे मुक्त कर सकताहै, वही धर्मका अधिकारी है।' संदर्भ लेकर वे कहतेहैं, 'यह वाक्य यूरोपके प्रत्येक राजप्रासादके भीतर स्वर्णाक्षरोंमें अंकित करने योग्य है—शिमलाका राजप्रासादभी इसका अपवाद न हो।' (पृ. १७२)—भारतके वाइसरायका राजप्रासाद तब शिमलामें ही था। और यह वाक्य क्या आजभी भारतकी राजधानी सहित विश्वकी सभी राजधानियोंके लिए उतनाही प्रासंगिक नहीं है?

मूल ग्रन्थ सौसे अधिक वर्ष पूर्व लिखा गयाथा। तबसे महाभारतपर प्रचुर शोध हुआहै। पुणेके भांडारकर शोध-संस्थानने महाभारतका परिशोधित संस्करण भी प्रकाशित कियाहै। कृष्णचरित्रपर भी पर्याप्त अनुसन्धान हुएहैं। मराठीमें स्व. श्रीमती इरावती कर्वे के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'युगान्त'में इस सम्बन्धका 'कृष्ण-वासुदेव' शीर्षकोक्त समाज-शास्त्रीय अध्ययनभी बड़ा विचारोत्तेजक है, जिसका अनायास स्मरण होआताहै। कहना न होगा कि ऋषि बंकिमचन्द्रका यह प्रबन्ध पूर्वाग्रहोंसे मुक्त चिन्तनका उत्कृष्ट उदाहरण है। अनुवाद शाब्दिक न होकर छायानुवाद है, किन्तु तबभी मूल लेखकके भावोंकी पूर्णतया रक्षा करताहै। भाषा प्रवाहपूर्ण तथा प्रांजल है। अनुवादक और प्रकाशक दोनोंही इसके लिए धन्यवादार्ह हैं। हां, दो तथ्योंकी ओर दृष्टि गये बिना नहीं रहती: एक तो पुस्तकमें मुद्रणके दोष हैं, जो यद्यपि बहुत नहीं है, किन्तु इस प्रकारके शोधपरक और सांस्कृतिक ग्रन्थके लिए अशोभनीय हैं। दूसरे, समीक्षकको प्राप्त पुस्तकमें पृष्ठ ११३ से १२८ तक का पूरा एक फर्मा गायब है। शायद ऐसे दोषमें भी हिन्दीके प्रकाशकका ही एकाधिकार है। पुस्तकका हिन्दी-जगत्‌में अधिकसे अधिक प्रचार हो इस दृष्टिसे मूल्यभी अधिक प्रतीत होताहै। पर इसकी शिकायत क्या? □ □

भारतीय साहित्य

समसामयिक तेलुगु काव्य

शेषेन्द्रके प्रेमपत्र[1] : सृजन प्रक्रियाके दस्तावेज

समीक्षक : डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह

ये प्रेमपत्र तेलुगु के विख्यात कवि शेषेन्द्रशर्मा द्वारा अपनी प्रेयसी इन्दिरा धनराजगीरको लिखे गयेहैं। इन प्रेमपत्रोंका प्रकाशन इस देशके बौद्धिक इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। साहित्यिकोंके पत्रोंका प्रकाशन अब कोई नयी बात नहीं रह गयीहै। वे आये दिन प्रका-

१. **प्रेमपत्र : शेषेन्द्र शर्मा; प्रकाशक : इण्डियन लैंग्वेजेज फोरम, हैदराबाद-५०००१२। मूल्य ७.०० रु. मात्र।**

शित होतेही रहतेहैं—कुछ जीवन कालमें और कुछ मरणोत्तर, किन्तु इन पत्रोंका प्रकाशन साहित्यिक-बौद्धिक इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण घटना इस अर्थमें है कि ये सामान्य या साहित्यिक महत्वके पत्र नहीं वरन् सचमुचके प्रेमपत्र हैं और प्रेमपत्रोंका प्रकाशन अबभी इस देशमें नहीं होताहै। इस बातका महत्त्व इस कारण औरभी अधिक है कि ये एक जीवित व्यक्तिके प्रेमपत्र हैं और ऐसे पत्रोंके प्रकाशनके अपने खतरे हैं। यदि खतरे न भी हों तबभी इन्हें प्रकाशित कर देना जोखिमका काम तो हैही। अनुभवी लोग जानतेहैं कि हर प्रेमपत्र कुछ-न-कुछ मूर्खताओंसे भरा होताहै और उन मुर्खताओंको सामने लाना साहसका काम है। इसलिए मैंने यह कहा कि इन पत्रोंका प्रकाशन इस देशके बौद्धिक इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

कवि शेषेन्द्र शर्मा यह स्वीकारते हैं कि उनकी सृजन शक्तिको उनकी प्रेयसीने जगाया। सृजनका कहीं-न-कहीं नारीसे कोई-न-कोई सम्बन्ध जरूर है। जर्मन सौंदर्यशास्त्री विंकलमानने लिखाहै कि यदि कविकी प्रेरणा चुकती-सी दीखतीहो तो उसे घुड़सवारी करनी चाहिये, परिमित मात्रामें शराब पीनी चाहिये और किसी सुन्दरी को निहारना चाहिये बशर्ते कि वह असतो नहीं हो। पुरुषका हृदय जब नारीके हृदयसे सचमुच जुड़ताहै तब पुरुष केवल उसी नारीसे नही जुड़ताहै वरन् वह समाजसे जुड़ जाताहै, शेष प्रकृतिसे जुड़ताहै और अन्ततः अपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डसे जुड़ जाताहै। इस प्रकार उसे पूर्णता प्राप्त होतीहै और वह व्यक्ति-बद्धतासे मुक्त होकर कवि बन जाताहै। कवि उस व्यक्तिको कहतेहैं जिसकी चेतना अपने परिवेशसे सम्पूर्णतः जुड़कर पूर्णता पालेतीहै। सर्जन प्रक्रियाका यही उद्‌गम है। प्रेम वस्तुतः एक शक्ति है। इससे चित्तका विस्फार होताहै। चित्तके विस्फारसे कल्पनाके पंख खुल जातेहैं। हम साधारणतया दैनन्दिन जीवनके पिंजरेमें बंधे रहतेहैं। प्रेम इस पिंजरेसे मुक्त होनेका सामर्थ्य देताहै। यह सामर्थ्य शेषेन्द्रमें इस प्रेमसे उत्पन्न हुआ। इसे रेखांकित करते हुए उन्होंने अपने एक पत्रमें स्वीकार कियाहै कि "कई स्वप्नोंको कविता-नौकाओंपर चढ़ाकर तुम्हारे तटोंतक पहुंचाया। इन हाथों, लौह दण्डोंने कई पर्वतों को उखाड़ दिया। द्वीपों और उपमहाद्वीपोंको बांधकर लाया"। यह अतिरंजनाकी भाषा है किन्तु इस भाषाके बिना न कोई कवि बनताहै और न प्रेमी। "कवि-प्रेमी एकही तत्त्व हैं—"-दिनकर। यह शक्तिके जागरणकी भाषा है और जब एक बार कल्पनाके पंख खुल जातेहैं तब सृजनकी शक्ति सन्नद्ध होजातीहै। यही कविता है। कविता मनुष्यकी कल्पनाका सबसे दूरस्थ ध्रुवान्त है पर इसका एक छोर अनुभवसे बंधा रहताहै। इस प्रकार कविता है तो कल्पना, किन्तु अनुभवसे उद्दीप्त कल्पना। इसलिए यह वास्तव और माया दोनोंही है।

शेषेन्द्र जब यह कहतेहैं कि "मैं व्यक्ति नहीं हूं, मैं एक आन्दोलन हूं" तब यह अहंका विस्फोट नहीं वरन् वह विनय है जो सृजनकी गरिमासे उत्पन्न होती है। सृजनके वास्तविक क्षणोंमें व्यक्ति तिरोहित होने लगताहै और रचयिता विनय और शीलकी भूमिकामें पहुंच जाताहै। किन्तु, अपनी काव्ययात्रामें शेषेन्द्रको व्यक्तित्वकी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। उन कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखाहै कि "लेकिन इसमें—कविताओंमें —तमाम व्यक्तिगत बातें रहतीं, अपने प्रति, अपनी पीड़ाओंके प्रति, अपने देशके प्रति, अपने शत्रुओंके प्रति और कितनीही चीजें- मेरा आक्रोश,मेरे आनन्दोद्रेक, ये सब मेरे बिना बुलायेभी इसमें आकर सम्मिलित होजाते। ये सब मेरी व्यक्तिगत बातें अन्तमें आकर मेरी कविताको आत्मकथा बना देतीं"। यह एक कविकी क्लेश-गाथा है। किन्तु जिस प्रकार प्रेम व्यक्तित्वका, अहंका समर्पण मांगताहै, उसी प्रकार कविताभी अहंका समर्पण मांगती है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि व्यक्ति शेषेन्द्र जब प्रेमके द्वारा अहंपर विजय प्राप्त करताहै, तब कवि शेषेन्द्रभी काव्यमें निजी तत्त्वोंसे मुक्त होताहै। यह है भोगनेवाले प्राणी तथा सृजन करने वाले कलाकारका वह पार्थक्य जिससे रचनाकी ऊर्जा निःसृत होतीहै। प्रेमी जिन गुणोंसे अहसे पलायन करता है, कवि उन्हीं गुणोंसे व्यक्तित्वसे मुक्ति लाभ करता है।

व्यक्तित्वसे मुक्तिमें सृजन प्रक्रियाका रहस्य निहित है। प्रेम स्वयं ऊपर उठानेवाला तत्त्व है। यह व्यक्तिमें जन्म लेताहै पर इसकी ऊर्जा व्यक्तिका अतिक्रमणकर सार्वजनीन बन जातीहै। प्रेमी शेषेन्द्रने इसलिए लिखाः "ऐ शेषेन्! इग्लैंडमें तुम्हारा नाम एडवर्ड है। इटलीमें तुम्हारा नाम रोमियो और अरेबियामें मजनूं, और इण्डियामें तुम्हारा नाम है देवदास।' और यहाँ यह जोड़ना प्रासंगिक माना जायेगा कि दक्षिणमें,

तेलुगु देशमें, तुम्हारा नाम है शेषेन्द्र शर्मा। यही कारण है कि व्यक्तिगत आसंगोंके बावजूद कविता व्यक्तिगत आसंगोंसे मुक्त होजातीहै, और जब वह व्यक्तिगत आसंगोंसे मुक्त होतीहै, तभी वह रचना होतीहै कविताओंमें हम जिस नारीका बखान पढ़तेहैं वह किसी की भी बेटी, बहन या भार्या नहीं होतीहै। इसलिए वह इन्दिरा धनराजगीर भी नहीं होतीहै। वह नारी मात्र होतीहै। जो हर पुरुषके हृदयमें प्रसुप्त रहतीहै और कहीं शकुन्तला, कहीं श्रद्धा, कहीं इन्दिरा धनराजगीरके रूपमें पुरुषके शाश्वत प्रेमीको उत्कोचितकर उसे कवि बना देतीहै। इसी अर्थमें शेषेन्द्र शर्माकी प्रेयसीने उसके सृजन-लोकको जगाया।

इन प्रेमपत्रोंकी प्रस्तावनामें कवि शेषेन्द्रने लिखा है कि " मैं प्रेम कविताएं अपनी प्रियतमाके लिए लिखताहूं, परन्तु कुछ लोग भाड़के लिए लिखतेहैं। कवि एकही हृदयको पिघलानेके लिए गाताहै पर उससे लक्षाधिक हृदय पिघल जातेहैं। भाड़ेपर लिखी कविताएं मॉडल सामने रखकर लिखी जातीहैं। इसलिए वे मीडियाकरकी लिखी कविताएं होतीहैं। उनमे सृजनशील व्यक्तित्वकी अद्वितीयताकी छाप नहीं होतीहै। हर मौलिक रचना अद्वितीय होतीहै। प्रेमीकी आवाज एक व्यक्तिकी आवाज होतीहै। पर कविकी आवाज व्यक्तित्वान्तरकी आवाज होतीहै। व्यक्तित्वान्तर लाने वाला रासायनिक द्रव्य है प्रेम। इसलिए प्रेम कविताएं चिरतन आकर्षणकी कविता होती है। प्रेम इन्द्रियोंकी राह प्रवेश करताहै, पर यह प्रवेश इतना गहन होताहै कि वह इन्द्रियोंके बाहर निकल जाताहै। इसलिए यह ऐन्द्रिक होकर भी इन्द्रियातीत होजाताहै। यह उसकी उभयमुखता है। उसी प्रकार कविता भी उभयमुख होतीहै। इन्द्रियोंकी राहसे ऐन्द्रिकताके लोकसे बाहर निकल जातीहै।

ये प्रेमपत्र शेषेन्द्रकी गहन मनुष्यताके प्रमाण हैं। जैसे आदमी बननेके लिए नारीकी आवश्यकता होतीहै, वैसेही कवि बननेके लिएभी। कविताकी रचना अंतस्तल में उत्कोचके कारण होतीहै। ये प्रेमपत्र रोमाण्टिक भावबोधके दस्तावेज नहीं हैं। रोमाण्टिक प्रेम आकस्मिक विप्लवकी तरह होताहै। वह आंधीकी तरह, तूफानकी तरह आताहै। पर शेषेन्द्रका प्रेम साहचर्यका परिणाम है: "तुम जानतीहो कि एक रातमें प्रेम पैदा नहीं होता, एक रातमें नक्षत्र पैदा नहीं होता।" ये प्रेमपत्र दो आत्माओंके शनैः शनैः विकसनशील, वर्धनशील आकर्षणकी कथा कहतेहैं।

इसलिए इन प्रेमपत्रोंका प्रकाशन मनुष्यके भावात्मक और बौद्धिक इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। कविकी रचना-प्रक्रियाको समझनेमें जो चीज थोड़ीभी सहायता करतीहो वह बहुतही महत्वपूर्ण होतीहै। जो चीज आत्माकी यात्राके सूत्रको रेखांकित करतीहो वह औरभी महत्त्वपूर्ण होतीहै। इन प्रेमपत्रोंमें एक संवेदनशील आत्माकी यात्राके सत्र रेखांकित हैं। इसलिए ये हैं आत्माके दस्तावेज! □

गुजरातीका सोद्देश्य आद्य नाटक

ललिता दुःखदर्शक

नाटककार : रणछोड़ भाई उदयराम
समीक्षक : प्राचार्य डॉ. अब्दुर्रशीद शेख.

श्रीरणछोड़भाई उदयराम गुजरातीके आद्य नाटयकार हैं। आपने मौलिक व अनूदित नाटककी रचना स्वयं तो कीही है, अपने समकालीन अनेक लेखकोंको भी नाटय-लेखन प्रेरणा दीहै। श्री रणछोड़भाई जागरूक और सुधारक दृष्टिके व्यक्ति थे। अपने नाटकोंमें कोई न कोई उद्देश्य सिद्ध करना आवश्यक मानतेथे। श्री रणछोड़भाई उदयराम कृत नाटक 'ललिता दुःखदर्शक' सोद्देश्य रचना है, रचनाकाल सन् १८६५ है। यह नाटक संस्कृत नाट्य परम्परासे प्रभावित है, 'नीति', 'प्रस्तावना' और 'नान्दी' के सम्बन्धमें संस्कृत नाट्य-परम्पराका अधिकांश पालन किया गयाहै। नाटककी प्रस्तावनामें लेखकने अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखाहै कि ललिता अनमेल विवाहके परिणामस्वरूप पाखंडी, धूर्त, चोर, परस्त्रीगामी, चरित्रहीन पतिके हाथों बरबाद होकर अन्तमें मर जातीहै। ललिताको योग्य पति मिल जाता तो उसकी ऐसी दुर्गति न होती। ऐसे अनमेल विवाहके प्रति लेखकरोष प्रकट करताहै और समाजसे अनुरोध करताहै कि वह ऐसे अनमेल व बाल-विवाहका विरोध करें। प्रारंभिक 'गीति' में 'दांपत्य जीवन स्नेह सम्बन्ध' की तथा 'पुस्तक अर्पण विधि' की चर्चा कीगयीहै। प्रारंभिक 'नान्दी' 'धनाश्री' रागपर आधारित है। प्रारंभमें आये हुए 'पद' में नाट्य-वस्तुकी ओर संकेत किया गयाहै।

प्रस्तुत नाटकमें 'अंक' और 'प्रवेश' सम्बन्धी किसी निश्चित नियमका परिपालन नहीं किया गया। एक "अंक" में अनेक "प्रवेश" की योजना इस नाटकका लक्षण है। संपूर्ण नाटकमें पांच अंक हैं। प्रथम अंकमें पांच प्रवेश, द्वितीय अंकमें चार प्रवेश, तृतीय अंकमें दस प्रवेश, चौथे अंकमें सात प्रवेश तथा पाँचवे अंकमें छः प्रवेशकी योजना नाटकको विस्तार प्रदान करतीहै जो नाटकके लिए सार्थक सिद्ध नहीं हुआ। प्रस्तुत रचनामें 'प्रवेश' शब्दका प्रयोग मिलताहै। नाटकमें आये सभी प्रवेश लघु हैं। प्रत्येक प्रवेशके साथ दृश्य परिवर्तन दिखाया गयाहै।

'ललिता दुःखदर्शक' सामाजिक नाटक है। प्रस्तुत रचनामें ललिताके अनमेल विवाह तथा इसके पति नंदके परस्त्रीगमनके दोषों तथा तत्कारण 'ललिता' को भुगतने पड़े संतापपर प्रकाश डाला गयाहै। अनमेल तथा बाल-विवाहके दुर्भाग्यपूर्ण परिणामोंको दिखाकर उसकी खिल्ली उड़ाना लेखकका प्रस्तुत नाटकमें अभिगम रहाहै। अच्छा खानदान देखकर जो लोग अपनी लड़कियोंका विवाहकर देतेहैं ऐसे लोग अपनी लड़कीको आजन्म काल कष्ट-सागरमें डालतेहैं, उन्हें शिक्षा देनेके लिएही यह नाटक लिखा गयाहै। खानदान देखकर ललिताका विवाह एक ऐसे अशिक्षित, परस्त्रीगामी, दुष्ट, अत्याचारी और चरित्र-हीन व्यक्तिसे कर दिया जाताहै जो ललितासे नफरत करताहै, उसकी उपेक्षा करताहै, उसे गालियाँ देताहै, उसे पीटताहै, उसके गहने चुराकर प्रियंवदाको दे देताहै और अन्तमें गणिका प्रियंवदा और उसके साथी छलदासके साथ मिलकर ललिताकी हृत्या करनेकी योजना बनाताहै। पर अपने जालमें स्वयं फंसकर कुत्तेकी मौत मरताहै। उसके साथी छलदास और वेश्या प्रियंवदाकी भी दुर्गति होतीहै। "पूरणमल 'पर्वतपुरीके राजा' 'चंद्रावली' तथा कुभांडी' की मायाजालसे बचकर, भागकर दुःख पीड़ा और असह्य शारीरिक वेदनाको सहते हुए ललिता अपने पितृ-गाँव आ पहुंचतीहै। माता-पिताका भी एक पल उसे भूत मानकर उसपर अत्याचार करतेहैं। घरका नौकर ललिताको पहचान लेताहै। माता-पिता किये गये व्यवहारपर पश्चाताप करतेहैं। अंतमें अपनी दुःखद कहानी माता-पिता व पुरजनोंको सुनाते-सुनाते वह देह-त्याग करतीहै। 'ललिता' की मृत्युके कारण नाटकका अंत करुण बन गयाहै।

ललिताकी कथा प्रमुख कथा है। मुख्य कथाके साथ अनेक प्रसंगोंका निर्माण किया गयाहै। प्रसंग योजना मुख्य-कथा विकासमें सहायक बनी है किन्तु वस्तु-विस्तार एवं प्रसंग बाहुल्यके कारण नाटक शिथिल है। 'स्थान' व 'काल'की मर्यादाका ख्याल नाटकमें नहीं रखा गयाहै। नाटकमें एकसे ज्यादा मृत्यु प्रसंग निर्मित हैं फलतः नाटक की वास्तविकताको भी क्षति पहुंचीहै। ललिताके राजा के महलकी छतसे नदीके पानीमें कूदना, शेरका आगमन हरिणीपर ललिताका बैठकर जाना, जंगल तथा यमघट जैसे दृश्योंका रंगमंचपर प्रस्तुत करना संभव नहीं है। ऐसे दृश्योंके कारणभी नाट्य-क्षति हुईहै। ऐसे प्रसंगोंने नाटकको कहानीका रूप दे दियाहै। उपर्युक्त दृष्टिसे इस नाटकको परखा जायेतो यह बात स्पष्ट होजाती है कि नाटककी वस्तु-संकलना कमजोर है।

ललिताका चरित्र प्रमुख चरित्र है। ललिताके पीड़ित एवं अबला रूपका चित्र अंकित है तो दूसरी ओर धूर्त नंदका चित्र है। दोनोंकी चारित्रिक विशेषताएं सहज एवं स्वाभाविक ढंगसे स्पष्ट होपायीहैं। पंथीरामका चरित्र समग्र कथाका वाहक है। ललिताका वह सेवक है। ललिताके रक्षण हित अपने प्राणोंकी आहुति देनेवाले इस पात्रकी कथा नंदकी मृत्युके साथ समाप्त होजातीहै। पंथीराम-मालीकी जोड़ीने नाटकमें विनोद-तत्त्वको साकार कियाहै। नाटकके सभी पात्रोंका नामकरण उनके गुणोंके अनुसार हुआहै। कजियाबाईका चरित्र झगड़ा-खोर औरतके रूपमें प्रस्तुत है। कर्कशाका स्वभाव कर्कशहै। छलदास महाधूर्त है। प्रस्तुत रचनामें पुरुष-पात्र संख्या अल्प है। स्त्री-पात्र संख्याकी अधिकता है।

नाटकका संवाद-पक्ष शिथिल है, पंथी-मालीके मार्मिक संवादोंकी योजना है, लम्बे स्वगत कथनोंके प्रयोगके कारण नाटकका विकास नहीं होपायाहै। उसकी गति रुक-सी गयीहै। संस्कृत एवं पारसी नाटकोंके प्रभावके कारण इस कालके नाटकोंमें गीतोंके प्रयोगको अनिवार्य माना गयाथा। दर्शकभी ऐसे गीतोंका मुक्त मनसे रसास्वादन करतेथे। प्रस्तुत नाटकमें भी गीतोंका प्रयोग किया गयाहै। गीतोंके विस्तारके कारण नाटककी प्रभावोत्पादकता कम होगयी है। गीतोंमें धनाश्री, पीलु खरवो, परज महाउ, कलिंगड़ों, आनंद, भैरवी तथा दादरों जैसी तत्कालीन परिचित रागोंपर गीत आधारित है। रोला, सवैया, हरिगीतिका, गीत, सरिका, मालिनी, शिखरिणी, मंदाक्रान्ता, जैसे छंदों का प्रयोगभी गीतोंमें मिलताहै। नाटकके कुछ प्रवेश मंच-

संवादोंपर आधारित हैं। अंतमें प्रभावित द्वारा गाया गया गीत सोद्देश्य-गीत-रचनाका उदाहरण बन गयाहै। प्रस्तुत रचनामें गीतोंके माध्यमसे लेखकने ललिताकी अंतः मनःस्थितिको उजागर करनेका प्रयत्न कियाहै।

नाटककी भाषा परिमार्जित एवं सक्षम नहीं है। चलती-फिरती गुजराती भाषाका विकसित रूप मिलताहै। कुछ स्थानोंपर पात्रोचित भाषाका प्रयोग मिलताहै। 'नागी', 'रांड', शंखणी, जैसे शब्दोंका प्रयोग नंदकी ललिताके प्रति घृणाको सार्थक करतेहैं। पुरण द्वारा बोली गयी हिन्दी भाषा अपने शुद्ध रूपका परिचय देतीहैं।

ललिताके चरित्र एवं उसकी दर्द-भरी कहानी प्रस्तुत कर लेखकने अनमेल विवाहके कारण—उसकी दुर्गतिको दर्शकके सामने रखकर ऐसा विवाह लड़कीके लिए घातक सिद्ध होता है—यह दिखानेका यत्न कियाहै। नाटकका यही उद्देश्य है।

नाटकका अंत करुणहै। नाटकमें कौतूहल बना रहताहै। नाटकका शीर्षक नाटकमें प्रयुक्त विचारको ललिताकी मृत्युसे सिद्ध कर देताहै। शीर्षक अपने आपमें स्पष्ट है।

इस नाटकके बारेमें ऐसा कहा जाताहै कि इसकी विषय-वस्तुने अनेक व्यक्तियोंका हृदय परिवर्तन कियाथा। यह पढ़कर और देखकर लोगोंने अनमेल-विवाहका तथा अनमेल विवाह करनेवाले लोगोंका सामाजिक बहिष्कार भी कियाथा। रंगमंचकी दृष्टिसे असफल कृति हैं, फिर भी सामाजिक सुधारकी दृष्टिसे यह तत्कालीन युगकी उत्तम पाठ्य रचना हैं।□□

काव्य संकलन

अपराधिता[1]

[खण्ड-काव्य]

कवि : रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी.

'अंचल' का आरंभिक काव्य मांसल सौन्दर्य, उद्दाम यौवन और प्रेमकी आत्माभिव्यक्तिका मधुमय काव्य माना गयाहै। उनके काव्यकी आंतरिकता मूलतः सौन्दर्य पिपासा, अल्हड़ ऐन्द्रिकता और व्यक्ति-स्वातंत्र्यका प्रमाण देताहै। समीक्षकोंने व्यक्ति और समाजके द्वन्द्वको अंचलके काव्यमें परखनेकी कोशिश कीहै और शोषण तथा दमनके खिलाफ विद्रोही स्वरको भी रेखांकित कियाहै। उन्हें क्रांतिदूतभी कहा गया।

दरअसल, अंचलके काव्यका सही मूल्यांकन उनके प्रगतिशील जीवन-मूल्योंसे अलग हटकर नहीं किया जासकता। उनमें करुणाभी है और आक्रोशभी। नूतन अभियान, नवयुगकी वर्गविहीन समानता, मजदूरोंका उत्पीड़न, संघर्षशील आस्था, और मानवतावादी चेतना उनमें विप्लवके स्वर लेकर आयीहै। जीवनकी ऊर्ध्व शिखा और सामाजिक विकासकी प्रेरणा उन्हें प्रगतिशील भावभूमिपर ले आतीहै इस तरह उनकी आत्मपरक कवितामें सबल जनहितैषी तत्त्वोंका सहज समाहार होजाताहै।

'अपराधिता' प्रबंध-काव्यमें कविकी प्रगतिशील नारी चेतनाके दर्शन होतेहैं। काशिराज-पुत्री अम्बाकी करुण कथासे लेकर भीष्मके मरणतक पूरा आख्यान कविने काव्यात्मक भूमिपर ग्रहण कियाहै और अभिशप्त नारी

1. प्रकाशक : भारतीय साहित्य प्रकाशन, २८६ चाणक्यपुरी, सदर, मेरठ-२५०-००१। पृष्ठ : ९८; डिमा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

जीवनके उत्पीड़नको सटीक स्वर दे दियेहैं। सत्यवतीसे लेकर द्रौपदीतक नारी-मनकी मर्मस्पर्शी अन्तर्वृत्तियोंका सूक्ष्म उद्घाटन इस खंडकाव्यकी अपनी विशेषता है। कविने नारी और पुरुषके अवचेतनमें छिपे काम चेतनाके ऐन्द्रिक संवेदनोंको बड़ी बारीकीसे उभाराहै और मनोवैज्ञानिक धरातलपर अहंबद्धता, भोगवादिता, अतृप्ति और अन्यायके विरुद्ध प्रतिशोधकी भावनाको ज्योंका त्यों रूपायित कियाहै। इसमें हर पात्र अपने भीतरके उतार-चढ़ावको, मानसिक घात-प्रतिघातको आत्मकथ्यके रूपमें पेश करताहै।

'अनन्त यौवना, चिर रस नीरा' सत्यवती कामुक, शिथिल, भोगी शान्तनुकी वासनाका शिकार बनी। भीष्मको आजीवन अविवाहित रहनेका व्रत लेना पड़ा। सत्यवती अपनी आंखोंमें भीष्मकी मुखाकृति संजोये रही और असमर्थ राजाकी बांहोंमें उसका यौवन उफनता रहा। उसके पुत्रके लिए भीष्म द्वारा बलपूर्वक अपहृत दो सुन्दरियां अपने जीवनकी आहुतियां देती रहीं क्योंकि पुत्र पाण्डुरोगी था। इस तरह सत्यवतीकी ग्लानि, दाह, संताप आदि गृहयुद्धके विस्फोट देखनेके लिए लालायित हो उठा। युद्धकी विकरालता और भयावह परिणतिको कविने सत्यवतीके माध्यमसे प्रस्तुत करनेकी चेष्टा कीहै।

भीष्म कभी 'प्यारकी धड़कन, रसार्द्र कोमल भावनाओं और ओस-भीगी स्निग्ध चाह' को नहीं जान सके क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा उन्हें निर्लिप्त संन्यासी बना गयी। अंबाको शाल्वने नहीं स्वीकारा क्योंकि बलपूर्वक भीष्मने उसे अपहृतकर लियाथा अपने अनुजके लिए। कविने भीष्मके आलोड़न-विलोड़नमें तीन बातें कहला दीहैं— (i) नहीं गर्हित, बलत्कृत पाप है कन्याहरण जैसा (ii) पिताकी रूपलिप्साका विषम फल भोगना सबको (iii) नहीं कोई जघन्य कुकर्म परपीड़न सदृश जगमें।

अपने अशांत जीवनका अभिमानी शक्ति-मद इन पंक्तियोंमें भीष्मने साकार कियाहै—घुलेगाभी न जननी जाह्नवीकी पुण्य धारामें कलंकित कृत्य मेरा जो बना अध्याय जीवनका, विफल होगा न यह प्रतिशोध पुंजीभूत अंबाका करेगा भस्म होमानल उसीके तापसी प्रणका। (पृ. २५)

कविने भीष्मके अंतर्द्वन्द्वको, उनकी आंतरिक वेदनाको निर्व्याज अभिव्यक्ति दीहैं। सत्धर्मका जय-स्तंभ और इंद्रिय-विजेता भीष्म अपनीही नजरोंमें कितना गिरा हुआ सिद्ध होताहै—(i) 'बना अन्यायका ही मौन अंगीकार यह जीवन (ii) जगत्की रंगशालामें थका अभिनीत यह जीवन (iii) बना विकलांग मन मैं आत्मदंशित, पर-विवश प्राणी (iv) समर्थक मूक था अन्यायका सब शब्द जालोंमें (v) प्रस्तरित देखूं विवस्त्रा कुलवधू मैं पातकी। (vi) हृदयको बींधता कुरुराज तीक्ष्ण विषाक्त वचनोंसे (vii) हुई वैराग्नि सब साकार अंबाकी शिखंडीमें।'

जब कोई पात्र खुद अपने मुखसे अपना गहन विश्लेषण करता हुआ जीवनके रेशे-रेशेको पेश करने लगताहै तब उसका कथन जितना विश्वसनीय और ग्राह्य होताहै उतना रचनाकारके द्वारा कहनेमें मर्मस्पर्शी नहीं होता। इस खंडकाव्यमें आत्मकथ्यकी यह खूबी रचनाको और ऊंचा उठा देतीहै।

विचित्रवीर्य तो आत्म-ग्लानिका पारावार है। चिर-रोगीके लिए भीष्मने दो लावण्य पुंज ला दिये लेकिन वे किस कामके। वह सोचताहै 'किया उन्होंने धर्मध्वजी होकर भी कैसा गर्हित कार्य ?' और खुद अपने बारेमें—'जिया न मैंने जीवन, केवल जिया अभीतक औषधि शास्त्र।'

'अंबा' प्रतिशोधकी साकार मूर्ति है क्योंकि पराजित शाल्वने अपनी वाग्दत्ताको पुरुषत्वमदमें इसलिए नहीं स्वीकाराकि वह भीष्मकी 'परस्पर्शिता' थी, अपहरणके समय। भीष्मने अपनी प्रतिज्ञाको अखंड रखने हेतु अंबाको स्वीकार नहीं किया। उसका अभिशप्त झंझानल कह उठताहै कि—

'किया है जन्म पूरा नष्ट हम तीनों भगिनियोंका/नराधम भीष्मने जीवित हमें वैधव्य देडाला/पिता द्वारा रमित धीवर-सुताकी कोखसे जाये/अनुजकी ब्याह-वेदीपर हमें बलि-पशु बना डाला। (पृ ३८) यही कारण है कि वह शिखंडीके रूपमें इस बातकी चिंता नहीं करती कि नरयोनि या नारीयोनिका उसे कुछ सुख मिलेगा कि नहीं। वह नराधम भीष्मसे प्रतिशोधका संकल्प लेतीहै—'बने प्रति श्वास मेरी प्रेतिनी प्रति कल्पमें जलकर।'

अंबिका, अंबालिकाको कविने 'बुझी निष्प्रभ शिखा, भग्न भोगेच्छा, एक जीवित वंचना, राजकुल उत्पीड़िता आदि शब्दावलीसे गहन व्यथासे परिपूर्ण अभागिन बहनोंके रूपमें उपस्थित कियाहै। पाण्डु रोगीकी दोनों पत्नियां वैधव्य-सा भोगती कह उठतीहैं 'हैं ऋचा कारुण्यके हम एकही अध्यायकी/हैं तरसती रंजना हम एकही पर्यंककी/हैं विसर्जनकी कड़ी हम एकही असहायकी।' (पृ. ३८)

अंचलने कुलीनता, पुरुषकी निरंकुशतापर भी इस सर्गमें तीखा आक्रोशभरा व्यंग्य कियाहै। शूद्र मातासे जन्मे पुत्रका दोष मिटानेके लिए उन्हें (कुलीनबालाओं) बलपूर्वक लाया गया—

(i) प्रज्वलित होती नहीं होमाग्नि क्यों कौलीन्यकी
तीन अबलाएं बनी समिधा उसीकी त्रस्त जब।
(पृ. ४०)

(ii) परवशा-परक्रीत है नारी, निरंकुश है पुरुष
याचिका बनती उसीकी भक्तिके वरदानको। (पृ.४१)

'शिखंडिनी' के रूपमें द्रुपद राजाके यहाँ नारी रूपमें अंबाका जन्म हुआ, लेकिन भीष्मसे बदला लेने दहकती हुई उसकी आत्मा पुरुष रूप परिवर्तन चाहती रही। इसलिए संतप्ता नारीके घटसे पुरुष रूप पैदा हुआ—शिखंडी।

'द्रौपदी' की व्यथा-कथाके लिए कुछ पंक्तियां नमूनेके तौरपर पर्याप्त होंगी -

(i) व्यंग थी मैं क्रूरतम नारी-नियतिके छद्मकी।
(ii) पांच स्वादोंमें बँटी पर एकही की मैं प्रिया।
(iii) लग रहा संसार मुझको रक्तलिप्त पिशाच-सा।
(iv) क्रीत सब नीतिज्ञ, सब धर्मज्ञ थे नतमुख मसय।
(v) क्षुद्र गणिकाभी नहीं इस भांति हो अपकर्षिता।

कविने द्रौपदीके माध्यमसे 'द्यूत व्यसनी' युधिष्ठिर और तमाम धर्म, व्यंग्य, नीतिपर प्रश्नचिह्न लगाते हुए युगों-युगोंसे पीड़ित नारीको पुनर्विचारके लिए सामने रख दियाहै।

'शिखंडी' ने राजयोगी, सदाचारी पितामहके चरित्रकी धज्जियां उड़ा दीहैं। भीष्म आत्मछली, स्वार्थ लीला मग्न नृप-दासत्वके प्रतीकके रूपमें चित्रित हुआहै। अवध्या भामिनी, पूर्वजन्मा छद्म नारी (शिखंडी) से न लड़कर जब भीष्म शर-आघातसे पूर्णतः विद्ध होगये तब शिखंडीने नारी हरण और अपमानकी बात कहते हुए भीष्मके कर्म और सिद्धांतोंका द्वैत उजागर किया—

न छोड़े जा रहेहैं प्राण इतनी यातनापर भी
नहीं कुछ सत्य अंतसका तुम्हारे आप्त वचनोंमें,
रहे चिर पक्षधर तुम न्याय-भक्षक आततायीके
किया पर न्यायका जयघोष अपने नीति कथनोंमें।
(पृ. ६८)

इस तरह अंचलजीने उपेक्षिता अंबाके चरित्रको पूरे नारीत्व और दुःख-दाहकी काल-ज्वालाके रूपमें प्रस्तुत कियाहै।

कविके पास बिम्ब, प्रतीक और शब्द-साधनाकी ऐसी सामर्थ्य है कि रूप, आसक्ति, यौवन, अतृप्ति, उतार-चढ़ाव आदिके साथ युगीन संदर्भोंकी समाहिति अपने-आप हो गयोहै। वृद्धावस्थाकी कामुकताके परिणाम, कुलीनताका मद, युद्धकी विभीषिका, बलपूर्वक अपहरण, विके हुए नीतिज्ञ और धर्मज्ञ, कथनी-करनीके भेद, नरकी पैशाचिकता आदिका समाहार पौराणिक और महाभारतके प्रसंगोंके बीच समकालीन वस्तुस्थितिको रूपायित करताहै। रचना वर्तमानकी जमीनसे कतराकर नहीं चली।

जहांतक भाषाका प्रश्न है, कविके विशेषण बहुत आकर्षक और जानदार हैं। उसकी भाषा शालीन, साहित्यिक और कविके व्यक्तित्वकी छाप लिये एकदम विशिष्ट है। 'अरे मेघ-सा युवा पुत्र, रमण उष्ण सुखकी साँसें, मंचबद्ध मैं कीलित सांप, बौरते तारुण्य क्रुद्ध अपनेपर खिची शमशीर-जैसी, शौर्यकी अरुणा धवल, समयकी श्वास थी अवरुद्ध अपनी श्वासनलिकामें' जैसी शब्दावली स्वतः वस्तुस्थिति और मनःस्थितिको साकार करनेमें समर्थ है। उनका शिल्प अन्यतम है।

एक विशेषता और नजर आतीहै कई रचनाकारोंने पौराणिक नारी-पात्रोंको लेकर समकालीन तेवर देनेके लिए उन्हें आधुनिकाके रूपमें प्रस्तुतकर अपनी संस्कारशीलताकी जमीनसे च्युतकर दियाहै। गोया, वे अपने अधिकारोंकी माँगमें अधिक वाचाल और निर्लज्ज हो उठतीहैं, लेकिन अंचलजीने ऐसा नहीं किया। उनकी नारी-पात्राएं हृदयगत भावोंकी सच्चाई, सूक्ष्मता, यथार्थताके साथ अपने संस्कार और प्रतिष्ठाके परिप्रेक्ष्यमें ही हमें तार्किकताके साथ प्रभावित करतीहैं। उनकी भावभूमि आधुनिकाका तरह वकालत करती नजर नहीं आती। पात्रोंका स्वतः स्फूर्त व्यक्तित्व अपने प्रगतिशील नारी चिंतनके साथ 'अंचल' में अभिव्यक्त हुआहै, यह कृति इसका ठोस प्रमाण है। अंचलजी एक लम्बी साहित्य साधनाके धनीहैं और उस निरंतरतामें कोई विराम चिह्न नहीं लगाहै, यह उनके सृजन कर्मका एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। □

रोशनीके मैदानकी तरफ[1]

कवि : चन्द्रकांत देवताले
समीक्षक : डॉ. हरदयाल.

देवतालेने जब कविता लिखना प्रारम्भ किया तब

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ६६; डिमा.८२; मूल्य : २५.०० रुपया।

'अकविता' का दौर था। अकविता कविताको 'घोर वैयक्तिक रचना-प्रक्रिया' मानतीथी। स्वाभाविक है कि उनका प्रारम्भिक काव्य-संस्कार वैयक्तिक या व्यक्तिवादी कविका बना। आठवें दशकमें नवप्रगतिवाद का दौर आया, तब वे भी उसमें शामिल होगये। तब उनकी विवशता जन सामान्यके दुःख-दर्द शोषण इत्यादि को कविताका विषय बनाना बन गयी। अतः इस समय वे जो कविता लिख रहेहैं, उसमें व्यक्तिवादी और जनवादी कविताका द्वन्द्व और अन्तर्विरोध विद्यमान है। उनके समीक्ष्य कविता-संग्रहमें भी यह द्वन्द्व विद्यमान है। यही द्वन्द्वात्मक स्थिति प्रशंसात्मक तानके साथ फ्लैप-लेखक विष्णु खरेके शब्दोंमें इस प्रकार व्यक्त हुईहै—"जो चन्द्रकान्त देवतालेकी कविताओंको प्रारम्भसे ही पढ़ते रहेहैं, उनसे यह छिपा हुआ नहीं है कि देवतालेने प्रतिबद्ध कविता लिखते हुएभी अपने एक व्यक्ति-विशेषभी होनेसे न शर्म महसूस की और न पलायन किया।"

देवतालेकी कविताओंमें व्यक्ति-विशेषत्व इतना है कि समीक्ष्य संग्रहकी कविताओंको पढ़कर उनसे सर्वथा अपरिचित पाठक उनके व्यक्तिगत जीवनके अनेक तथ्योंसे अनायास परिचित होजाताहै। उदाहरणके लिए 'उसके सपने' कविताको देखा जासकताहै। इस कविता का सन्दर्भ सर्वथा निजी है, किन्तु उसे 'ऐसे दिनों' के माध्यमसे व्यापक शोषित समुदायसे जोड़नेका प्रयास किया गयाहै। यह प्रयास वैसाही है जैसा छायावादी कवियोंके द्वारा निजी प्रसंगोंको अध्यात्मके साथ जोड़कर रहस्यवादी बनानेका प्रयत्न किया जाताथा। आप इस कविताकी निम्नलिखित पंक्तियाँ पढ़ें, फिर कविका चित्र देखते हुए उसका परिचय पढ़ें—

वह कहतीहै उसने
आँगनमें बँधी गाय देखी श्यामा
बच्चियाँ दूध पीती हुईं गुनगुना ताजा
हँसते हुए
मैंने पूछा—दूध कितना था पानीमें
वह गुस्सा होगयी,
उसने मुझे देखा मूँछों सहित
हँसते हुए महीनेके अन्तिम दिन
मुसीबतमें फँसे अपने दोस्तको
सौ-सौके कुछ नोट देते हुए

(पृष्ठ २१)

इन निजी प्रसंगोंवाली कविताओंमें रति, वात्सल्य, मैत्री आदिकी भावनाएँ गहरे रंगोंके साथ व्यक्त हुई। इन कविताओंमें स्थानीय रंगभी है। स्थानीय रंग, स्थानीय प्रकृति, जीवन-पद्धति आदिके सन्दर्भोंके रूपमें प्रकट होनेके साथ-साथ स्थानीय शब्दोंके रूपमें भी व्यक्त हुआहै; जैसे—कँदराया हुआ, बोगदेमें, पुरती, पुरता, ढीग, डोचरा-ककड़ी इत्यादि। कविको कई बार निजी सम्बन्धोंकी एकान्त सघनतामें बाहरी हस्तक्षेप अखरताहै; जैसे 'हमारे बीच' कवितामें।

कवि अपनी प्रतिबद्धतासे प्रेरित होकर जब उपर्युक्त वैयक्तिक सन्दर्भोंसे हटकर सामूहिक सन्दर्भोंपर दृष्टिपात करताहै तब उसके सामने शोषण, भ्रष्टाचार, कुशासन, लूटपाट तथा सामान्य जनकी निरीहताके चित्र आतेहैं और वह उन्हें अपनी कवितामें अंकित करताहै। कविको लगताहै कि सब तरफ मूल्यहीनता और समझौतापरस्ती व्याप्त है। यहाँ मैं एक बातकी ओर संकेत करना चाहूंगा कि कविका मूल्यहीनता और समझौतापरस्तीका अनुभव करना एक ऐसे सत्यकी ओर संकेत करनाहै जो असदिग्ध है। यह हम रोज देखतेहैं कि विद्रोह और विरोधकी बात करनेवाले तमाम भारतीय बुद्धिजीवी सरकार और सेठ दोनोंकी गोदमें बैठनेके लिए उत्सुक दिखायी देतेहैं। कारण, राजनीतिक-आर्थिक शक्तियाँ तो इन्हींमें निहित हैं और यही बुद्धिजीवीको उपकृत कर सकतेहैं। आजका बुद्धिजीवी भी पूँजीवादी या उपभोगवादी समाजकी महत्त्वाकांक्षा का शिकार है—उसके लिएभी सबसे बड़ा मूल्य सत्ता और धन है। सत्तामद और धनमदमें मस्त बुद्धिजीवी हमारे देशमें अपवाद नहीं हैं; अपवाद हैं वे बुद्धिजीवी, जो अपनी भावना सिद्धान्त और कर्त्तव्यके लिए त्याग-तत्पर हैं, जो लोभ-संवरणकर सकतेहैं, जिनमें आत्म-सम्मानकी भावना सर्वोपरि है। लेकिन इसके साथही सत्य यहभी है कि मूल्यहीन और समझौतापरस्त बुद्धिजीवियोंमें भी थोड़ा-बहुत अपराधबोध रहताहै। चन्द्रकान्त देवतालेकी निम्नोद्धृत पंक्तियाँ इसी स्थितिको व्यक्त करतीहैं।—

पर धीरे-धीरे दिन-दहाड़े
चलन बढ़ा खोटे सिक्कों
और चश्मपोशीका
उसे देखकर आँखें फेरने लगे सज्जन तक
तो वह शर्मिन्दा होने लगा
बेबात निर्धन और ठहाकोंके बीच
कमजोर
बेजगह और बेमतलब जान पड़ने लगा
उसे अपना सब-कुछ
ठीकरे और जंग-लगे चाकू-सा
चमकना और खनकना
चेहरे और आवाजका

फिर एक दिन सड़कपर

उत्साही लोगोंको देखा उसने गाते-बजाते
वे कन्धोंपर थामकर लेजा रहेथे
जय-जयकारमें उछालते एक
अपराधी चेहरा (पृष्ठ ६३-६४)

शोषण, भ्रष्टाचार, लूटपाट, कुशासन इत्यादिसे मुक्तिका रास्ता क्या है? कविने एक रास्ता यह सुझायाहै कि सब ओर व्याप्त यह भयावह स्थिति हमें असमर्थ बनादे, हमें समाप्त करदे इससे पहले हमें प्रश्न करना चाहिये, सब कुछको चुपचाप सहते नहीं रहना चाहिये। 'कीचड़की दीवार' कविता यही बात कहतीहै।

'रोशनीके मैदानकी तरफ'की कविताओंकी यह वक्तव्य-वस्तु है। जो द्वन्द्व वक्तव्य वस्तुमें मौजूद है वही द्वन्द्व अभिव्यक्तिशिल्पमें भी है। अमूर्तन, विचलन, निजी प्रतीक-विधान; और इन सबका उपयोग करते हुए फन्तासीकी सृष्टि चन्द्रकान्त देवताले और उनके समानधर्मा अन्य कवियोंकी कविताको इतना दुरूह बना देती है कि वह सामान्य पाठकके लिए ही नहीं, प्रबुद्ध पाठकके लिए भी अग्राह्य होजातीहै। उनकी कविता को समझनेके लिए बहुत बौद्धिक व्यायामकी आवश्यकता पड़तीहै। बौद्धिक व्यायाम करनेके बाद जो अर्थ सामने आताहै, वह हमें कवितामें गहरे नहीं उतारताहै बल्कि बड़े सामान्य तथ्यों और सत्योंतक पहुंचाताहै। ऐसी स्थितिमें इन कविताओंको लेकर किया जानेवाला बौद्धिक व्यायाम अखरने लगता है।

आज यह समझना बहुत आवश्यक है कि सरलता या सादगी कविताका अवगुण नहीं गुण है। श्रेष्ठ कविताका एक अर्थ-स्तर ऐसा अवश्य होताहै जो सरलतासे पाठक-श्रोताकी पकड़में आजाता है। यहां सरलता और सपाटताको कविता, और वक्तव्यको एकही नहीं मान लेना चाहिये। सरलताको रेखांकित करनेके उपरान्त पाठकोंके बौद्धिक व्यायामके लिए चन्द्रकान्त देवतालेकी एक कविता प्रस्तुत है—

चिड़ियाको अपनी जगहपर
घोंसला नहीं मिला
और अपने रुदनको वह
आकाश और कमरेके बीच
बाँटने लगी
बच्चेकी माँ
बर्तन माँजने जा चुकीथी
वह खाली कटोरदानमें
मुँह घुसेड़ पेट बजाते
सड़कपर आ निकला
अज्ञात भयकी पगडंडीसे लुढ़कते हुए
एक अण्डा मेरे भीतर गिरा
और आँखोंमें आफूट गया। (पृ. ६)

इन कविताओंको लेकर हमारा कहना यह है कि ये जनवादी-प्रगतिवादी कविताके लक्ष्यको पराजित कर देतीहैं। □ □

महादेवी वर्मा साहित्य

[पृष्ठ २० से आगे]

महादेवी वर्माका गद्य साहित्य

—डॉ. हरदयाल

यद्यपि महादेवी वर्मा कवयित्रीके रूपमें अधिक प्रसिद्ध हैं, किन्तु उनका गद्य उसके काव्यसे कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है। परिमाणमें तो वह निश्चयही काव्यसे अधिक है। उनकी मुख्य गद्य-कृतियां ये हैं—अतीतके चलचित्र (१६४१), शृंखलाकी कड़ियां (१६४२), स्मृतिकी रेखाएं (१६४३), पथके साथी (१६५६), क्षणदा (१६५६), साहित्यकारकी आस्था तथा अन्य निबन्ध (१६६०), संकल्पिता (१६६६), मेरा परिवार (१६७१), ओर, सम्भाषण (१६७४)। इन गद्य कृतियों में उनका विविध प्रकारका गद्य रेखाचित्रात्मक, संस्मरणात्मक, ललित निबन्धात्मक एवं साहित्य और

१. **महादेवी प्रतिनिधि गद्य रचनाएं—सम्पादक : डॉ. रामजी पाण्डेय; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१। पृष्ठ : ३२८; डिमा. ८३; मूल्य : ४५.०० रु.।**

२. **सम्भाषण लेखिका : महादेवी; प्रकाशक : साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद-३। पृष्ठ : १२२; डिमा. ७६; मूल्य ६.०० रु.।**

समाजसे सम्बन्धित आलोचनात्मक-विवेचनात्मक--संगृहीत है। १९८२के ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान करनेके अवसर पर उनकी प्रतिनिधि गद्य रचनाओंका एक संग्रह उपर्युक्त गद्य रचनाओंसे चुनकर प्रकाशित किया गया, जिसमें ६ रेखाचित्र, ६ साहित्य-चिन्तन सम्बन्धी निबन्ध, ६ संस्कृतिके विविध आयामोंसे सम्बन्धित संभाषण और निबन्ध, ५ नारी सम्बन्धी निबन्ध, ३ पशुओं सम्बन्धी रेखाचित्र तथा ५ संस्मरण--कुल ३१ रचनाएं रखी गयीहैं। उनके भाषणोंका प्रतिनिधि संग्रह 'संभाषण'है।

सबसे पहले आलोचनात्मक-विवेचनात्मक गद्यको लें। महादेवी वर्माने स्वतन्त्र निबन्धों एवं अपने काव्य-संकलनोंकी लम्बी-लम्बी भूमिकाओंके रूपमें प्रचुर और महत्त्वपूर्ण गद्य लिखाहै। अपने इस गद्यके द्वारा छायावाद सम्बन्धी अनेक समस्याओंको सुलझानेमें उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायीहै। उन्हें यह गद्य क्यों लिखना पड़ा, इसके सम्बन्धमें उनका कहनाहै--'छायावादको तो शैशवमें कोई सहृदय आलोचकही नहीं मिल सका। द्विवेदी युगके संस्कार लेकर जो आलोचना चल रहीथी, उसने नवीन कवियोंको विक्षिप्त प्रमाणित करनेमें सारी शक्ति लगादी और नये कवियोंने अपने कठिन-हृदय आलोचकोंको प्राचीनताका भग्नावशेष कहकर सन्तोष कर लिया। जब ये कवि अपने विकासके मध्याह्नमें पहुंच गये तब उन्हें भक्त मिलनाही स्वाभाविक होगया।' स्पष्टतः छायावादी कवियोंको या तो विरोधी मिले या भक्त; सही और सच्चे आलोचक नहीं मिले। इसलिए आलोचकका कार्य छायावादी कवियोंने अपने-अपने ढंगसे स्वयं किया। ऐसी स्थितिमें महादेवी वर्माके प्रतिनिधि गद्य-साहित्यके संकलनमें 'छायावाद' 'रहस्यवाद' तथा 'सामयिक समस्या' (जिसमें उन्होंने 'प्रगतिवाद'का विवेचन कियाहै) जैसे निबन्धोंको छोड़ देना अखरनेवाली बात है। अस्तु, जो निबन्ध संकलित है, उन्हींमें एक-दो का विश्लेषण करके साहित्यके प्रति उनके दृष्टिकोण को समझनेका प्रयत्न करना उचित होगा। 'साहित्य-चिन्तन' खण्डमें संकलित एक निबन्ध हैं 'काव्य-कला'। इस निबन्धके सूत्र वाक्य हैं—"सत्य काव्यका साध्य है और सौन्दर्य उसका साधन है। एक अपनी एकतामें असीम रहताहै और दूसरा अपनी अनेकतामें अनन्त, इसीसे साधनके परिचय-स्निग्ध खण्ड रूपसे साध्यकी विस्मयभरी अखण्ड स्थितितक पहुंचनेका क्रम आनन्दकी लहर-पर-लहर उठाता हुआ चलताहै।" इन वाक्योंमें महादेवीका कला-दर्शन समाहित है। इसका विश्लेषण करनेपर सत्य, सौन्दर्य अथवा कलाके उपयोगकी कई समस्याएं उत्पन्न होतीहैं और उनके साथ काव्य एवं कला सम्बन्धी कई प्रश्न--कलाकारका जीवन-दर्शन, यथार्थवाद एवं आदर्शवाद, बौद्धिकता और भावना, आधुनिक युग और कलाकार, धर्म और कला, काव्यकी उत्कृष्टता तथा कलाओंमें काव्यका स्थान आदि—उलझे हैं। महादेवीजीने अपने इस निबन्धमें इन प्रश्नोंपर विस्तार के साथ विचार कियाहै। सत्यके स्वरूपका निर्णय कठिन है; क्योंकि सत्य केवल नामरूपात्मक बाह्य संसारही नहीं है, वरन इसके अन्तरंगमें अविरत प्रवाहित चेतना-स्रोतभी सत्य है। इसलिए "काव्य-कलाका सत्य जीवन-सौन्दर्यके माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है।" अभिव्यक्तिका माध्यम सौन्दर्य जीवनकी पूर्णतम अभिव्यक्तिपर आश्रित है, केवल बाह्य रूपरेखापर नहीं। इसलिए उपयोगी कला और ललित कला मूलतः एक हैं। अभिव्यक्ति और आधारकी विविधताके कारण उपयोग अनेकरूपी है। केवल स्थूल और भौतिक उपयोग,जो यन्त्र-युगका भ्रम है, को महत्त्व देकर ललित कलाओंको अनुपयोगी ठहराना गलत है। कलाको यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनोंका अनुगमन करना चाहिये अर्थात् उन्हें सामंजस्यपूर्ण ढंग से ग्रहण करना चाहिये। आज युगकी परिस्थितियोंके कारण कलाकारपर अनेक सीमाओंके बन्धन हैं। धर्मका समन्वयात्मक अध्यात्मवाला स्वरूप नष्ट होगयाहै। ऐसी दशामें काव्य तथा अन्य कलाओंकी स्वस्थ गतिशीलता असम्भव है। वे पतित होरहीहैं। वैज्ञानिक उन्नतिके कारण होनेवाले बौद्धिकताके प्राधान्यने कलाओंके पतनमें सहायता कीहै। श्रमिक और बुद्धिजीवीका सम्बन्ध इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इस निबन्धके अन्तमें महादेवीजीने काव्यपर विशेष रूपसे विचार कियाहै। उनकी स्थापना है कि काव्यकी उत्कृष्टता किसी विशेष विषयपर निर्भर नहीं है, उसके लिए रचनाकारके हृदयको ऐसा पारस होना चाहिये, जो सबको अपने स्पर्शमात्रसे सोना करदे। काव्य सभी कलाओंमें सर्वोत्कृष्ट है, क्योंकि वही एक ऐसी कला है जिसमें बुद्धि और भावनाके संयोगसे एक तीसरी चीज मानसिक वृत्तियोंकी सामंजस्यपूर्ण एकता मिलतीहै। अन्यत्र इसका मिलना असंभव है। कविता न केवल साहित्यमें, वरन् सम्पूर्ण ललित कलाओंमें, 'जीवनकी विविधतामें सामंजस्य खोज लेनेके कारण' उत्कृष्टतम है। उसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा आजतक नहीं दीजा सकीहै, क्योंकि युगानुसार मानव-मनोवृत्तियोंकी दिशाएं बदल जातीहैं और उसकी चिरन्तन विशेषता उसकी संवेदनीयता है।

'काव्य-कला' शीर्षक निबन्धका उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन इस बातको स्पष्ट कर देताहै कि महादेवी वर्मा जिस विषयपर भी लिखतीहैं, अत्यन्त गम्भीरताके साथ लिखतीहैं। वे विषयकी तहतक पहुंचना चाहतीहैं और उन तत्त्वोंको खोजने और रेखांकित करनेका प्रयत्न करतीहैं,

जिन्हें 'चिरन्तन' कहा जासकताहै। अपनी इस दृष्टिके कारण वे हमारे सामने एक सामंजस्यवादी या समन्वय-वादी विचारकके रूपमें सामने आतीहैं। उन्हें अतिवादी दृष्टियां पसन्द नहीं हैं। यह बात उनके 'यथार्थ और आदर्श' शीर्षक निबन्धसे और अधिक स्पष्ट होजातीहैं। उनके अनुसार, सृजनके लिए, स्वस्थ काव्यके लिए केवल यथार्थ अथवा केवल आदर्श, दोनों अनुपयुक्त हैं। इतिहास इस बातका प्रमाण है कि "जब हमने आदर्शको अमूर्त और यथार्थको एकांगी कर लिया, तब एक बौद्धिक उलझनोंमें बिखरने लगा, और दूसरा पाशविक वृत्तियोंमें, अस्वस्थ प्यासमें सीमित हो घिरे जलके समान दूषित हो चला।" क्योंकि "चरम सीमापर यथार्थ जैसे विक्षिप्त गतिशील है वैसेही आदर्श निष्क्रियतामें स्थिर होजाताहै।" इससे बचनेका रास्ता यह है कि दोनोंमें समन्वय या सामंजस्य स्थापित किया जाये। सृजनके लिए आवेगके अतिरिक्त समन्वयात्मक दृष्टिकी व्यापकताभी आवश्यक है। "जीवनमें वह यथार्थ, जिसके पास आदर्शका स्पन्दन नहीं केवल शव है और वह आदर्श जिसके पास यथार्थका शरीर नहीं है, प्रेतमात्र है।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रेमचन्दकी 'आदर्शोन्मुख यथार्थवादी' दृष्टिसे यह दृष्टि भिन्न नहीं है। वस्तुतः यह दृष्टि मूलतः आदर्शवादी है। महादेवीजीके आलोचनात्मक-विवेचनात्मक निबन्धोंमें ऐतिहासिक दृष्टिभी हमें देखनेको मिलतीहै। इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'गीतिकाव्य' शीर्षक निबन्ध है इस निबंधमें वैदिक कालसे लेकर अपने समयतक के गीतिकाव्यका सर्वेक्षण और विवेचन महादेवीजीने प्रस्तुत कियाहै। इन निबन्धोंमे कहीं-कहीं महादेवीकी दृष्टि एकांगी भी हो गयीहै।

महादेवीजीके विवेचनका रूप उनके सामाजिक प्रश्नोंसे सम्बन्धित निबन्धभी हैं, इन निबन्धोंमें उनकी सहानुभूति मुख्यतः समाजके दलितों, शोषितों और नारीके प्रति है। उनकी यह सहानुभूति एक ओर उन रेखाचित्रोंमें अभिव्यक्त हुई है जिनमें उन्होंने निम्न वर्गके स्त्री-पुरुषोंका चित्रण कियाहै, दूसरी ओर उन निबन्धों या भाषणोंमें इसकी अभिव्यक्ति हुईहै जो इनको लेकर लिखेहैं या जिनमें इनका प्रसंग आयाहै। 'प्रतिनिधि गद्य-रचनाए' के 'रेखाचित्र' खण्ड में संगृहीत रामा, घीसा, बदलू, भक्तिन, चीनी भाई, तथा बिबिया, एवं 'नारी' खण्डमें संगृहीत तीन निबन्धों —युद्ध और नारी, नारीत्वका अभिशाप, आधुनिक नारी तथा दो भाषणों स्त्रीके अर्थ-स्वातन्त्र्यका प्रश्न, तथा नये दशकमें महिलाओंका स्थान—में इसे प्रचुरतासे देखा जासकताहै। यह सहानुभूति अनेक बार उच्च वर्गके प्रति तथा स्त्रीके प्रसंगमें पुरुष-वर्गके प्रति आक्रोशका रूप धारण कर लेतीहै। महादेवी वर्मा स्त्रीको पुरुषसे श्रेष्ठ मानतीहैं। 'सुभद्राकुमारी चौहान' शीर्षक संस्मरणमें उन्होंने लिखाहै, 'नारीके हृदयमें जो गम्भीर ममता-सजल वीर भाव उत्पन्न होताहै, वह पुरुषके उग्र शौर्यसे अधिक उदात्त और दिव्य रहताहै। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत राग-द्वेषके लिएभी वीर धर्म अपना सकताहै और अहंकारकी तृप्ति मात्रके लिएभी। पर नारी अपने सृजनकी बाधाएं दूर करनेके लिए अथवा अपनी कल्याणी सृष्टिकी रक्षाके लिएही रुद्र बनतीहै। अतः उसकी वीरताके समकक्ष रखने योग्य प्रेरणाएं संसारके कोशमें कम हैं। मातृशक्तिका दिव्य रक्षक उद्धारक रूप होनेके कारणही भीमाकृति चण्डी, वत्सला अम्बाभी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियोंको चरणोंके नीचे दबाकर अपनी सृष्टि के मंगलकी साधना करतीहैं।' अपनी श्रेष्ठताके बावजूद हमारे समाजमें नारीकी स्थिति बड़ी दयनीय है। हिन्दू स्त्रीकी स्थिति तो औरभी दयनीय है। 'नारीत्वका अभिशाप' शीर्षक निबन्धमें महादेवीजीका कहनाहै—'हिन्दू नारीका घर और समाज इन्हीं दोसे विशेष सम्पर्क रहता है। परन्तु इन दोनोंही स्थानोंमें उसकी स्थिति कितनी करुण है, इसके विचारमात्रसे ही किसीभी सदस्यका हृदय कांपे बिना नहीं रहता। अपने पितृगृहमें उसे वैसा ही स्थान मिलताहै जैसा किसी दुकानमें उस वस्तुको प्राप्त होताहै जिसके रखने और बेचने दोनोंमें ही दुकानदारको हानिकी संभावना रहतीहै। जिस घरमें उसके जीवनको ढलकर बनना पड़ताहै, उसके चरित्रको एक विशेष रूप-रेखा धारण करनी पड़तीहै, जिसपर वह अपने शैशवका सारा स्नेह ढलकाकरभी तृप्त नहीं होती, उसी घरमें वह भिक्षुकके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ···पतिगृह, जहां इस उपेक्षित प्राणीको जीवनका शेष भाग व्यतीत करना पड़ताहै, अधिकारमें उससे कुछ अधिक, परन्तु सहानुभूतिमें उससे बहुत कम है, इसमें सन्देह नहीं। यहां उसकी स्थिति पलभर भी आशंका से रहित नहीं। यदि वह विद्वान् पतिकी इच्छानुसार विदुषी नहीं है तो उसका स्थान दूसरीको दिया जा सकता है, यदि वह सौन्दर्योपासक पतिकी कल्पनाके अनुरूप अप्सरी नहीं है तो उसे स्थान रिक्तकर देनेका आदेश दिया जासकताहै। यदि वह पति-कामनाका विचार करके सन्तान या पुत्रोंकी सेना नहीं देसकती, यदि वह रुग्ण है या दोषोंका नितान्त अभाव होनेपर भी पतिकी अप्रसन्नता की दोषी है तोभी उसे उस घरसे दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा।' नारीकी, विशेषतः हिन्दू नारीकी ऐसी स्थिति होनेपर भी महादेवीजी नहीं चाहती कि वह पूर्णतः 'आधुनिक' बने।

महादेवी वर्माके भाषणोंकी भी विवेचनात्मक गद्यके

अन्तर्गतही मानना पड़ेगा, क्योंकि मूलतः उनकी प्रकृति भी वही है। 'संभाषण' में संगृहीत १४ भाषणोंमें साहित्य समाज, राजनीति, शिक्षा, संस्कृति, भाषा, नारी, स्वाधीनता, शासन, राष्ट्रीयता इत्यादि अनेक विषयोंपर महादेवी जीने अपना चिन्तन प्रस्तुत कियाहै। 'भाषाका प्रश्न' शीर्षक भाषणमें उन्होंने राष्ट्रकी परिभाषा इसी प्रकार दीहै 'राष्ट्रकी गरिमा पानेके लिए भूमि-खण्ड विशेषकी नहीं, एक सांस्कृतिक दायभागके अधिकारी और प्रबुद्ध मानव-समाजकी भी आवश्यकता होतीहै जो अपने अनुरागकी दीप्तिसे उस भूमि-खण्डके हर कणको इस प्रकार उद्भासित करदे कि वह एक चिर नवीन सौन्दर्य में जीवित और लयवान होसके।' स्पष्ट है कि किसी विशेष भूखण्ड और मानव-समूहको राष्ट्र कहलानेके लिए उसकी एक संस्कृति होना आवश्यक है। संस्कृतिकी आवश्यकता इसलिए औरभी होतीहै क्योंकि संस्कृति एक विशेष प्रकारकी जीवन-पद्धति है, 'संस्कृति शब्दसे हमें जिसका बोध होताहै, वह वस्तुतः ऐसी जीवन-पद्धति है... जो एक विशेष प्राकृतिक परिवेशमें मानव-निर्मित परिवेश सम्भव कर देतीहै और फिर दोनों परिवेशोंकी संगति में निरन्तर स्वयं आविष्कृत होती रहतीहैं। यह जीवन-पद्धति न केवल बाह्य स्थूल और पार्थिव है और न मात्र आन्तरिक, सूक्ष्म और अपार्थिव। वस्तुतः उसकी ऐसी दोहरी स्थिति है, जिसमें मनुष्यके सूक्ष्म विचार, कल्पना, भावना आदिका संस्कार चेष्टा, आचरण आदि बाह्याचारकी परिष्कृति उसके अन्तर्जगत्पर प्रभाव डालती है।' ('संस्कृति और प्राकृतिक परिवेश' शीर्षक भाषण) संस्कृतिका अपनी भाषाके साथ गहरा सम्बन्ध है, इसी लिए महादेवी वर्माने अपने भाषणोंमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय संस्कृति इत्यादिका अक्सर पक्ष लिया है। वे भाषा, शिक्षा, साहित्य और संस्कृतिके विकास को भौतिक विकाससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानतीहैं। इसलिए उनके पतनपर और शासन द्वारा इनकी उपेक्षाको लेकर वे क्षुब्ध हैं।

महादेवी वर्मा अब हिन्दीकी एकमात्र ऐसी साहित्यकार हैं जिनकी वक्तृत्व कला समाजके विभिन्न वर्गोंको समान रूपसे आकर्षित करतीहै। इसका कारण यह है कि वे अपने श्रोताओंके साथ तादात्म्य स्थापितकर लेतीहैं। उन्होंने भाषणकर्त्ताओंके सामने रहनेवाले तीन मार्गोंकी चर्चा 'सम्भाषण' की भूमिकामें कीहै—"वह अपने सिद्धान्त विशेषकी जानकारी देनेके लिए उपयुक्त तर्कों तथा प्रमाणोंकी ऐसी सेना सन्नद्ध करले कि श्रोताओं को सोचने-विचारनेका अवसरही न दे। श्रोतागण ज्ञान-वर्धनकी विश्वसनीयताही लेकर लौटें। दूसरी पद्धतिमें कुतर्कको तर्क तथा असत्य (को सत्य) बनाकर इस कुशलतासे उपस्थित किया जाये कि सुननेवाले दोनोंका अन्तर ही न समझ सकें। परिणामतः चमत्कृत होकर ही रह जायें। तीसरी पद्धति अधिक मानवीय और संवेदन सम्प्रेषणकी स्थिति है। बोलनेवाला, सुननेवालोंसे तादात्म्यकी स्थितिमें रहकर इसमें सफल होसकताहै। अतः उसे गम्भीर संवेदनमें डूबकर 'एकोऽहम् बहु स्याम'का अनुभव करना होताहै। मानो वह स्वयंसे स्वगत भाषण कर रहा है।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि महादेवी वर्मा इनमें तीसरी पद्धतिको अपनातीहैं। इसीलिए वे भाषणकर्त्रीके रूपमें अत्यधिक सफल हैं।

अभीतक हमने महादेवी वर्माके जिस गद्य-साहित्यकी चर्चा कीहै, वह आलोचनात्मक-विवेचनात्मक गद्य है। यह गद्य सामान्य पाठकको दुरूह प्रतीत होताहै, क्योंकि इस गद्यकी भाषा संस्कृतके तत्सम शब्दोंसे परिपूर्ण है, वाक्य लम्बे-लम्बे और जटिल है, अलंकारोंकी भरमार है। इस गद्य-शैलीके दो प्रतिनिधि उदाहरण क्रमशः 'काव्य-कला' शीर्षक निबन्ध एवं 'मातृभूमि देवो भव' शीर्षक भाषणसे प्रस्तुत हैं—(१) "जीवन का जो स्पर्श विकासके लिए अपेक्षित है, उसे पानेके उपरान्त छोटा-बड़ा, लघु-गुरु, सुन्दर-विरूप, आकर्षक-भयानक कुछभी कला-जगत्से बहिष्कृत नहीं किया जाता। उजले कमलोंकी चादर जैसी चाँदनीमें मुस्कराती हुई विभावरी अभिराम है। पर अन्धेरेके स्तर-पर-स्तर ओढ़ कर विराट बनी हुई काली रजनीभी कम सुन्दर नहीं है। फूलोंके बोझसे झुक-झुक पड़नेवाली लता कोमल है, पर शून्य नीलिमाकी ओर विस्मित बालक-सा ताकनेवाला ठूँठ कम सुकुमार नहीं है। अविरत जलदानसे पृथ्वीको कंपा देनेवाला बादल ऊँचा है,पर एक बूंद आंसूके भारसे नत और कम्पित तृणभी कम उन्नत नहीं। गुलाबके रंग और नवनीतकी कोमलतामें कंकाल छिपाये हुए रूपसी कमनीय है, पर झुर्रियोंमें जीवनका विज्ञान लिये हुए वृद्धभी कम आकर्षक नहीं। बाह्य जीवनकी कठोरता, संघर्ष, जय-पराजय, सब मूल्यवान् हैं पर अन्तर्जगत्की कल्पना, स्वप्न, भावना आदिभी कम अनमोल नहीं।" ('काव्य-कला' निबन्ध) (२) 'बन्धन तो हृदयका बन्धन है, बन्धन तो भावनाका बन्धन है। और कोई बड़ा बंधन मनुष्यको नहीं बांधता, और सारी जंजीरें मनुष्यको तोड़-फोड़ दे, लेकिन बड़ी रेशमी कोमल जान पड़नेवाली स्नेह की जंजीरें वह नहीं तोड़ पाता। उसीसे आप उसे

...र्थ। ('सम्भाषण'—'मातृभूमि देवी भव')

महादेवी वर्माका दूसरे प्रकारका गद्य सृजनात्मक गद्य है। इसमें उनके द्वारा लिखित रेखाचित्र, संस्मरण और ललित निबन्ध आतेहैं अर्थात् 'अतीतके चलचित्र','स्मृति की रेखाएं', 'पथके साथी', 'मेरा परिवार,' 'शृंखलाकी कड़ियाँ' और 'क्षणदा' में संगृहीत रचनाएं इस प्रकार की गद्य-रचनाएं हैं। 'महादेवी : प्रतिनिधि गद्य-रचनाएं' में इस प्रकारकी १९ रचनाएं संगृहीत हैं। रेखाचित्रों और संस्मरणोंमें जैसा कलात्मक परिरूप महादेवीजीने रखाहै, वैसा हिन्दीमें अन्यत्र दुर्लभ हैं। विश्लेषण करने पर हम देखतेहैं कि प्रत्येक रेखाचित्र या संस्मरणमें छोटी-सी कथा या घटना, पात्रका लेखिकाके परिचयमें आनेका प्रसंग, उसकी रूपरेखा, वेश-भूषाका चित्रण, उसके चरित्र की विशेषताओंका उद्‌घाटन इत्यादिका एक निश्चित कलात्मक परिरूप हमें मिलता है। ललित निबन्धोंका परि-रूप ऐसा निश्चित नहीं है, किन्तु उनमें लालित्य अवश्य पर्याप्त मात्रामें है। रेखाचित्रों, संस्मरणों और ललित निबन्धोंका गद्य अधिक सहज है। इसमेंभी तत्सम शब्दों की प्रधानताहै, किन्तु तद्‌भव शब्दोंको भी उसी तत्परता के साथ स्वीकार किया गयाहै। इस गद्यमें मुहावरों, लोकोक्तियों और सन्दर्भोंका भी अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग है।

सारांश यह है कि महादेवी वर्मा गद्यकारके रूपमें भी कवयित्रीकी तुलनामें कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।□

मेरे प्रिय संस्मरण[1]

लेखिका : महादेवी वर्मा
समीक्षक : डॉ. कमलकिशोर गोयनका.

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि महादेवीजीका गद्य-साहित्य आधुनिक हिन्दी गद्यको एक महत्त्वपूर्ण अवदान है और साहित्यकी एक बड़ी उपलब्धिभी। पद्यके आधुनिक संसारमें महादेवीका काव्य अविस्मरणीय है, लेकिन समय-समयपर लिखे गये उनके आत्मीय संस्म-रणभी उन्हें हिन्दी गद्यमें अद्वितीय स्थानकी अधिकारिणी बनातेहैं। छायावादके अधिकांश कवियोंने गद्यमें भी लिखाहै लेकिन महादेवीके गद्यमें जो सहज सौन्दर्य, लालित्य एवं मर्मस्पर्शिता है वह दूसरे छायावादी कवियोंमें उस रूपमें विद्यमान नहीं है। जिन पाठकोंने महादेवीकी गद्य-पुस्तकें—'स्मृतिकी रेखाएं' (१९४३) 'अतीतके चलचित्र' (१९४१), 'शृंखलाकी कड़ियां' (१९४२) तथा 'पथके साथी' (१९५६) पढ़ीहैं वे उनके गद्यात्मक सौन्दर्यको अभीतक भूले नहीं होंगे। महादेवीने रचनात्मक एवं विवेचनात्मक गद्य दोनोंमें ही रचनाएं कीहैं। उनके काव्य-संग्रहोंमें उनकी जो भूमिकाएं हैं वे उनकी आलोचनात्मक प्रतिभाकी उदाहरण हैं।

महादेवीजीने गद्यमें रेखाचित्र एवं संस्मरण दोनोंही लिखेहैं और दोनोंही गद्य-विधाओंमें वे अद्वितीय हैं। इधर उनके कुछ चुने एवं प्रिय संस्मरणोंका संकलन 'मेरे प्रिय संस्मरण' शीर्षकसे प्रकाशित हुआहै। इसकी भूमिकामें महादेवीजीने रेखाचित्र एवं संस्मरणको स्पष्ट करते हुए लिखाहै कि रेखाचित्रमें लेखक कुछ गिनी-चुनी रेखाओंके स्थानमें शब्दोंको रखकर तटस्थ भावसे किसीका व्यक्तित्व स्पष्ट करताहै. लेकिन इसके विपरीत संस्मरण लेखककी स्मृतिसे सम्बन्ध रखताहै और स्मृतिमें वही अंकित रह जाताहै जिसने उसके भाव या बोधको

1. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १२०; डिमा. ८१; मूल्य : २६.०० रु.।

कभी गहराईमें उद्घाटित कियाहो। महादेवीका कथन है कि संस्मरण तटस्थ भावसे नहीं लिखा जासकता, क्योंकि कोईभी गम्भीर सुखद या दुःखद स्मृति किसी भावकी आवृत्तिभी करतीहै। रेखाचित्र परोक्ष या सुना हुआभी होसकताहै, किन्तु संस्मरणमें अपनी अनुभूतिका अनुभव-संस्कार अपेक्षित है। इसी कारण वेही संस्मरण अधिक प्रभावशाली बनतेहैं जिनमें अनुभव-संस्कारका घनत्व होताहै। महादेवीने भी उन्हीं व्यक्तियों, पशु-पक्षियों आदिपर संस्मरण लिखेहैं जिन्होंने उन्हें 'किसी भावके पर्व-स्नान' का अवसर प्रदान कियाहै।

'मेरे प्रिय संस्मरण' में कुल १३ संस्मरण हैं। इनमें ५ संस्मरण सामान्य व्यक्तियोंपर हैं, ३ पशु-पक्षियोंपर, ४ हिन्दीके साहित्यकारोंपर तथा १ राष्ट्रपिता महात्मा गांधीपर है। इस प्रकार इस संकलनको प्रतिनिधि संकलन बनानेके लिए उनके विभिन्न प्रकारके संस्मरणोंमें से इन्हें चुना गयाहै। यद्यपि महादेवीजीका कथन है कि उन्हें सभी संस्मरणोंके आधार प्रिय हैं, परन्तु संग्रहके कलेवरको ध्यानमें रखकर इन्हें चुना गयाहै। इसका स्पष्ट अर्थ है कि महादेवीजीकी रुचि-प्रियताके आधारपर इन्हें संकलनमें प्रकाशित नहीं किया गयाहै जैसाकि पुस्तकके शीर्षकसे व्यंजित होताहै, बल्कि इसे पाठकोंकी दृष्टिसे प्रिय एवं रुचिकर बनानेकी चेष्टा अवश्यही कीगयीहै। संभवतः इसी कारण महात्मा गांधी जैसे महामानवपर लिखे संस्मरणके साथ सोना हिरण एवं नीलू कुत्तेपर लिखे संस्मरणोंको संकलित किया गयाहै। महादेवीजीके संस्मरणोंकी यह बड़ी विशेषता है कि वे केवल महापुरुषोंपर ही नहीं लिखतीहैं, बल्कि मूक, निरीह पशु-पक्षियोंको भी संस्मरणका आधार बनातीहैं। वास्तवमें यह सत्य है कि महादेवीकी स्मृतिमें जो बार-बार आकार ग्रहण करते और मनको अनेक अनुभूतियोंसे अभिव्यक्त करते रहेहैं, उन्होंने उन्हें शब्द-चित्रों द्वारा पाठकतक पहुंचा दियाहै। महादेवीके कथनानुसार इन शब्द-चित्रोंमें उनका आत्मकथ्य आलोकवाही है, क्योंकि उसके अभावमें वे आलोकित नहीं होसकतेथे। उन्हें घटनाओंके बीचमें उपस्थित करके इसलिए प्रस्तुत किया गया है जिससे वे परिचयहीन न होजायें और महादेवी स्वयंको इसलिए निर्लिप्त नहीं कर सकीहैं जिससे वे निर्जीव न हो जायें। इस संकलनके पशु-पक्षियोंपर लिखे संस्मरणोंको ध्यानमें रखते हुए, महादेवीजीके दृष्टिकोणको समझा जासकताहै कि उनके सम्पर्कमें आनेवाले पशु-पक्षीभी

किस प्रकार सजीव बन जातेहैं।

महादेवीके आरम्भिक पांच संस्मरणोंके शीर्षक हैं— 'रामा', 'घीसा', 'भक्तिन', 'चीनी फेरीवाला', तथा 'पर्वतपुत्र'। रामा उनके घरका नौकर है। महादेवी जब शैशव कालमें थी तब विमाताके अत्याचारसे भागे एक बुन्देलखंडी ग्रामीण बालकको उनकी माँने उसे नौकरके रूपमें अपने यहाँ रख लिया। यह नौकर जो महादेवीके बाल जीवनका सेवक, साथी, संरक्षक आदि सब कुछ था, बड़े होनेपर भी अतीतमें खड़े रामाकी विशाल छाया वर्तमानके साथ निर्वाक्, निस्तन्द्र पर स्नेह तरल रूपमें बढ़ती जातीहै। महादेवीकी स्मृतिमें सबसे पहले रामाकी मुखाकृति उभरतीहै, कभी स्पष्ट और कभी धुंधली, "रामाके संकीर्ण माथेपर की खूब घनी भौंहें और छोटी-छोटी स्नेहतरल आँखें कभी-कभी स्मृति-पटपर अंकित होजातीहैं और कभी धुंधली होते-होते एकदम खोजातीहैं। किसी थके झुंझलाये शिल्पीकी अन्तिम भूल जैसी अनगढ़ मोटी नाक, सांसके प्रवाहसे फैले हुए-से नथुने, मुक्त हंसीसे भरकर फूले हुए-से ओठ तथा काले पत्थरकी प्यालीमें दहीकी याद दिलानेवाली सघन और सफेद दंतपंक्तिके सम्बन्धमें भी यही सत्य है।" महादेवी धुंधली होती स्मृतिको भी कितनी बारीकीसे शब्द चित्रोंमें व्यक्त कर देतीहैं। 'रामा' संस्मरण इसी प्रकारके शब्द-चित्रों और विशेष रूपसे बाल जीवनकी घटनाओंके शब्द-चित्रोंसे पूर्ण है। ऐसेही शब्दचित्र उनके 'घीसा', 'भक्तिन,' 'चीनी फेरीवाला' तथा 'पर्वतपुत्र' संस्मरणोंमें मिलतेहैं। महादेवी इन संस्मरणोंमें न केवल रामा, घीसा, भक्तिन, चीनी फेरीवाले, पर्वतपुत्रकी बाह्य आकृतिको उद्घाटित करतीहै, बल्कि उनके आन्तरिक सौन्दर्यको भी बारीकीसे बुनतीहैं। वे अपनी अनुभूतियोंसे उन्हें आत्मीय बनातीहैं और अपने शब्द सौन्दर्यसे सजीव प्रतिमा।

पुस्तकमें संकलित 'नीलकंठ' 'सोना' तथा 'नीलू' संस्मरण उनके पशु-पक्षी प्रेमके जीवन्त उदाहरण हैं। प्रयागमें नखासकोने प्रसिद्ध बाजार है जहां घास काटने की मशीनसे लेकर खरगोश, कबूतर, मोर आदितक मिल जातेहैं। महादेवी पिंजड़ेमें बन्द इन जीवोंको देखतीहैं तो दुःख पातीहैं और उनकी मुक्तिका कोई उपाय न सूझनेपरभी वे फिर उस बाजारमें चली जातीहैं। वे तब किसी पिंजड़ेमें पानी न देखकर उसमें पानी रखवा देती हैं, दानेका अभाव हो तो दाना डलवा देतीहैं, और कभी

कुछ चिड़ियां खरीदकर उड़ा देतीहैं। इस बार वे जब पहुंचतीहैं तो बड़े मियांके लाये हुए मोरके बच्चे ले आती हैं। ये बच्चे नीलकंठ और राधा कहलातेहैं। एक दिन एक और मोरनी आजातीहै जिसका नाम रखा जाताहै कुब्जा। इन तीन पक्षियोंसे महादेवीको पक्षी-प्रकृतिकी विभिन्नताका जो परिचय मिला वह उनके लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण था। सोना हिरणी और नीलू कुत्ते के संस्मरण भी इसी प्रकार जीवन्त हैं। ये दोनोंही पशु जन्मसे मृत्यु तक महादेवीके पास रहतेहै और वे अपने अनेक मर्म-स्पर्शी चित्र उनके मनपर अंकित कर जातेहैं। नीलूकी मृत्युपर महादेवी जिस रूपमें उसे स्मरण करतीहै, वह उसे बहुत ऊंचा उठा देताहै। उन्होंने लिखाहै'...यदि नीलूके समान शान्त-निर्लिप्त भावसे कोई मृत्युका सामना करे तो ऐसी मृत्यु मनुष्यको भी काम्य होगी। मेरे पास अनेक जीव-जन्तु हैं, परन्तु जिसके बुरा मान जानेकी मुझे चिन्ता हो, ऐसा अब कोई नहीं हैं।'

पुस्तकके शेष पांच संस्मरण क्रमशः मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, निराला, प्रेमचन्द और महात्मा गांधीपर लिखे गयेहैं। इन संस्मरणोंकी विशेषता यह है कि बाह्य आकृति, वेशभूषा, आदिके साथ स्वभाव एवं चरित्रकी प्रमुख प्रवृत्तियांभी उभरकर सामने आती हैं। मैथिलीशरण गुप्त बाह्य दर्शनमें असाधारण नहीं थे लेकिन उनकी स्वभाव एवं चरित्रगत विशेषताएं असाधारण थीं। उनकी बंधी दृष्टि और मुक्त हंसी विनोदी एवं प्रसन्न स्वभाव लोकसंग्रही प्रवृत्ति, दो पत्नियों एवं नौ पुत्रोंके देहान्त होनेपरभी उनका आस्था जनित संयम पुरातन और नवीनताका संगम, स्पष्टवादिता एवं सरल विश्वासी, भावुकतापूर्ण कर्मशीलता आदि ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें विशिष्ट बनातीहैं। महादेवी के अनुसार वे 'पूर्णकाम' एवं 'मुक्त कवि' थे।

महादेवीके अन्य संस्मरणभी इसी प्रकार व्यक्तिवको शब्द-चित्रोंमें उद्घाटित करतेहैं। सुभद्रा उनकी सहेली थी निराला उनके मुखबोले भाई थे और प्रेमचन्द साहित्यिक गुरु जैसे और महात्मा गांधी सर्वकालीन मूल्योंके प्रतीक। सभी संस्मरणोंमें शब्दचित्रोंकी सजीवता, भाषा का लालित्य वर्णनकी आत्मीय एवं मर्मस्पर्शी शैली अनुभूतियोंको बारीकीसे उकेरनेकी प्रतिभा सर्वत्र दृष्टिगत होती है। वास्तवमें महादेवीके ये अंतरंग संस्मरण किसीभी कालके पाठकोंके मर्मको छूने और उसे आन्दोलित करनेकी क्षमता रखतेहैं। □

साहित्यकार महादेवी वर्मा[1]

लेखिका : डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया
समीक्षिका : सुधारानी श्रीवास्तव

नारी मनकी अनुभूतिको जितनी अच्छी तरह नारी समझ सकतीहै, उतना पुरुष नहीं। तुलसीने भी लिखाहै :

'खग जाने खग ही की भाषा'

ठीक यही बात मुझे लेखिकाकी इस पुस्तकमें मिली। वैसे महादेवीजी तो स्वयं एक सूर्य हैं और सूर्यकी ऊष्मा को देश और कालकी सीमा नहीं बांध पायीहै किन्तु इसी ऊर्जा (जी हां! जो हृदयसे साहित्य सृजनमें संलग्न हैं, वे इस सत्यसे भलीभांति अवगत हैं कि उनके लिए साहित्य ऊर्जाही है) के कुछ कण लेखिकाने पुस्तकमें संजो लियेहैं, जिनका उपयोग मुझ जैसे व्यस्त लोगोंके लिएही होसकताहै।

यद्यपि मैं स्वयं महादेवीजीके निकट ही हूं, क्योंकि मेरा ननिहालही इलाहाबाद है फिरभी पुस्तकमें जिन सन्दर्भोंको लेखिकाने छुआहै मैं उनसे नितांत अनभिज्ञ थी। मुझे पता नहीं था कि आदरणीया पाक कलामें भी अभिरुचि रखतीथीं। वैसे कायस्थ परिवार खाने-पीनेके लिये मशहूर हैं। सब्जी बनाना तो दूर, सब्जी बराबर कटीहै या नहीं, यहभी हमारे यहांकी लड़कियाँ सीखती हैं। लेखिकाने पुस्तकके पृष्ठ १० पर जो झलकियां 'स्मृतिकी रेखाओं' से ग्रहण कीहैं वे बेमिसाल हैं। ऊपर कहही चुकीहूं कि नारीही नारीको जानतीहै। शिवानी दीने भी लिखाहै कि महिलाको पाक कुशल होना चाहिये। दालमें बघारका, सब्जीमें नमक मिर्चका संतुलन ही जीवनमें समन्वय स्थापित करताहै।

लेखिकाने 'कविता' अध्यायमें आदरणीयाके काव्यकाल का प्रारंभ अभिव्यक्त कियाहै। वास्तवमें सूक्ष्म निरीक्षणही तो अनुभूति है। जहां साहित्यकार प्रकृतिकी लयमें लय मिलाताहै वहीं काव्य प्रसूत होजाताहै। बाल्मीकीके स्वर भी तो क्रौंच पक्षीके क्रंदनमें समवेत हो फूटेथे। लेखिका ने महादेवीके काव्य जीवनपर क्रमबद्ध दृष्टि डालीहै। नीहार (१९२४ से २८) से प्रारम्भकर 'वेदनाभाव' तक चित्रण आदरणीयाजीके जीवन-पथकी अनुभूतियोंका

१. प्रकाशक : कन्दर्प प्रकाशन, २१ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ: १३६; डिमा. ८४; मूल्य: ३५.०० रु.।

क्रमबद्ध जीवन है। प्रसिद्ध अंग्रेज कवि वर्डस्वर्थने भी प्रकृतिके लयमें तीन अवस्थाओंका वर्णन कियाहै : बाल्यकालमें प्रकृति उत्सुक भावकी पूरक थी, बच्चा प्रत्येक वस्तु उत्सुकतासे देखताहै, यौवनमें प्रेमभाव प्रमुख होताहै और वृद्धावस्थामें प्रकृति पथ-प्रदर्शक, शिक्षक और परिचारिका होतीहै। ठीक यही स्थिति आदरणीया जी ने अभिव्यक्त कीहै :—

आओ प्यारे तारे आओ,
मेरे आँगनमें बिछ जाओ। (बाल्यकाल)

चुभतेही तेरा अरुण बाण
बहते कन-कनमें फूट-फूट
मधुके निर्झरसे सजल गान

अथवा

मैं नीरभरी दुखकी बदली,
इन सांसोंको, आज जला मैं (युवावस्था)
जपटीकी माला जपतीहूं
दीप लौ-सी अंगुलियां तम-भार लेती थाम
(प्रौढ़ावस्था)

लेखिकाने कविके हृदयगत भाव, जोकि समयके साथ बदलतेहैं और उसीके अनुरूप उसका सृजन चलताहै, उसे आदरणीयाकी कृतियोंमें से छांट-छांटकर मोती-सा इस पुस्तकमें सजा दियाहै।

काव्यगत प्रतिभाके साथही आदरणीयाके गद्यपर भी लेखिकाने दृष्टिपात कियाहै रेखाचित्रके अनुच्छेदमें लेखिकाने बहुतही सुलझे तरीकेसे रेखाचित्र और कथामें अन्तर स्पष्ट कियाहै। यद्यपि लेखनमें रेखाचित्र शब्दका प्रयोग प्रथम दृष्टिमें असंगत लगताहै किन्तु वर्णनकी रेखा द्वाराही तो किसी चरित्रको साहित्यमें बांधा जाताहै। आदरणीयाके संस्मरण यही रेखाचित्रही तो हैं, स्वयं वे भी तो एक कुशल चित्रकार हैं।

लेखिकाने आदरणीयाकी सभी साहित्यिक गतिविधियों का इस पुस्तकमें सफल संकलन कियाहै। वास्तवमें यह पुस्तक आदरणीयाके कृतित्वको झलकियोंके रूपमें प्रस्तुत करनेमें पूर्ण सफल हुईहै। पुन: मैं प्रारम्भपर आतीहूं कि नारी-मनकी अनुभूति नारीही समझ सकतीहै। लेखिका के उच्च शिक्षणने आदरणीयाके कृतित्वको उसी दृष्टिसे देखा परखा है जिस दृष्टिसे स्वयं आदरणीयान लिखाहै। इसे संयोगही कहिये कि नारीकी अभिव्यक्तिको नारीने आलोचककी दृष्टिसे देखा और उसकी समीक्षाभी नारी ही कर रहीहै।□□

प्रस्तुत अंक

हम स्वाधीन हैं, गत ३७ वर्षोंमें विघटनशील प्रवृत्तियाँ और विखण्डनवादी शक्तियां प्रबल रूपसे उभरकरभी देशको खण्डित नहीं कर पायीं, इसलिए ३८ वें स्वाधीनता दिवसका हम उल्लासके साथ स्वागत करतेहैं। हमारी कामना है कि देश अखंड रूपमें, सशक्त रूपमें लोकतांत्रिक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बन सके।

सविधान द्वारा निर्धारित देशके इस रूपकी ओर ध्यान खींचनेके पीछे पिछले कुछ वर्षोंमें उत्पन्न वे समस्याएं हैं,जिनसे हमें जूझनेकी आवश्यकता है। लोकतन्त्रके नामपर धर्मों-जातियों-विशिष्ट वर्गोंके रूपमें वोट बैंक संगठित किये गये हैं। वोट बैंकोंकी शक्तिमें वृद्धि करनेके लिए नित नयी जिन गन्दी बस्तियोंकी सृष्टि की गयीहै,वोट बैंकोंके विस्तारके लिए विदेशियोंको नागरिक अधिकार प्रदान किये गये है, धर्म-परिवर्तन द्वारा अधिकाधिक वोट बटोरनेके आयोजन किये गये हैं, निश्चित रूपसे वोट प्राप्त करनेके लिए अपराधी वर्गोंको संगठित किया गयाहै, वोट खरीदनेके लिए तस्करों और अर्थवानोंसे अर्थ निचोड़नेके नये-नये उपाय किये गये हैं, मजदूर संगठनोंको नियन्त्रण मुक्त किया जा रहा है; इन सब उपायोंसे गत ३७ वर्षोंमें लोकतन्त्र और मतदाता अर्थहीन होगये हैं।

वोटाधिपति अर्थ-संग्रहके लिए कृपापात्र अर्थाधिपतियोंको नियन्त्रण मुक्त कर रहेहैं, अर्थाधिपतियोंको नियन्त्रित करनेवाले विधान नौकरशाहोंकी दराजोंमें बन्द हो गयेहैं, उत्पादन-लागत और वितरण-मूल्योंमें पृथ्वी-क्षितिज मिलनका संबंध हो गयाहै, अर्थपति आकाशचारी होगया है तो अर्थहीन सिकुड़ते उदरके साथ ककालमालीकी मालाका मनका बना दिया गयाहै। तस्कर वोटाधिपतिका सहभागी बन गयाहै। समाजवादी उद्योग समाजके अर्थसे मुक्त होतेजा रहेहैं। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था भारतीय सामाजिक अव्यवस्थाका मूर्त्त रूप हो गयीहै। हम समाजवादसे व्यक्तिवादपर उतर आये हैं।

धर्म-निरपेक्षता धर्मापेक्षी हो गयीहै। यह निरपेक्षता-सापेक्षताभी वोट-संग्रहका रूप ले चुकीहै। वोटके लिए विशिष्ट धर्म-बहुल जिले, प्रदेश और राज्य बना दिये गयेहैं, लोक-भाषाओंका स्थान धर्म-भाषाएं लेने लगीहैं। धर्म-परिवर्तन धर्म-विशेषकी वोट संख्या और अर्थार्जनकी दृष्टिसे सह्य-असह्य हो गयाहै। धर्म-निरपेक्षता धर्म विशेषकी वोट-शक्तिके आधारपर उसे प्राप्त संरक्षणपर निर्भर हो गयीहै।

स्वाधीनताके ३८वें वर्षमें निकटस्थ निर्वाचनोंको ध्यानमें रखते हुए हमारी कामना है कि देश लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्म-निरपेक्षताको अर्थहीन बनानेवाली शक्तियोंसे मुक्ति पासके और आर्थिक, सांस्कृतिक पुनर्निर्माणकी ओर अग्रसर होसके।

पुनर्निर्माण विशेषत: साँस्कृतिक पुनर्निर्माणके क्षेत्रमें 'प्रकर' भी अपनी मूषकांजलिसे सहयोग कर रहाहै। जिस प्रकार राजनीतिक स्वाधीनताके लिए देशका जन-जन इतिहासके सुदीर्घ कालसे प्रयत्नशील रहाहै,इसी प्रकार साँस्कृतिक निर्माणके लिए मनीषी वर्गभी सतत प्रयत्न करता रहाहै। ऐसे अवसरपर उन मनीषियोंका स्मरण अपने प्रयत्नोंके लिए उत्साहवर्धक होताहै। हमारे युगके ऐसे अग्रणी मनीषियोंमें महादेवी वर्मा हैं। जिस मनन-चिन्तनको उन्होंने व्यापकता प्रदान कीहै,जिसकी उद्भावनाके लिए हमारी अन्तश्चेतनाको आत्मनिर्भर बनायाहै, उसकी सार्वजनिक स्वीकृति तो ज्ञानपीठ पुरस्कार द्वारा प्रदान की गयीहै, 'प्रकर'भी अपनी श्रद्धा अर्पित करता हुआ उस चेतनाको प्रचारित करनेको उत्सुक है जिससे संस्कृति-सम्पन्न अखण्ड देश अपने सभी जीवन-मूल्यों, सामाजिक-सांस्कृतिक रूपोंको अखण्डित रख सके।□□

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित.

प्रकर

आश्विन : २०४१ (वि.) :: सितम्बर १९८४ (ई.)
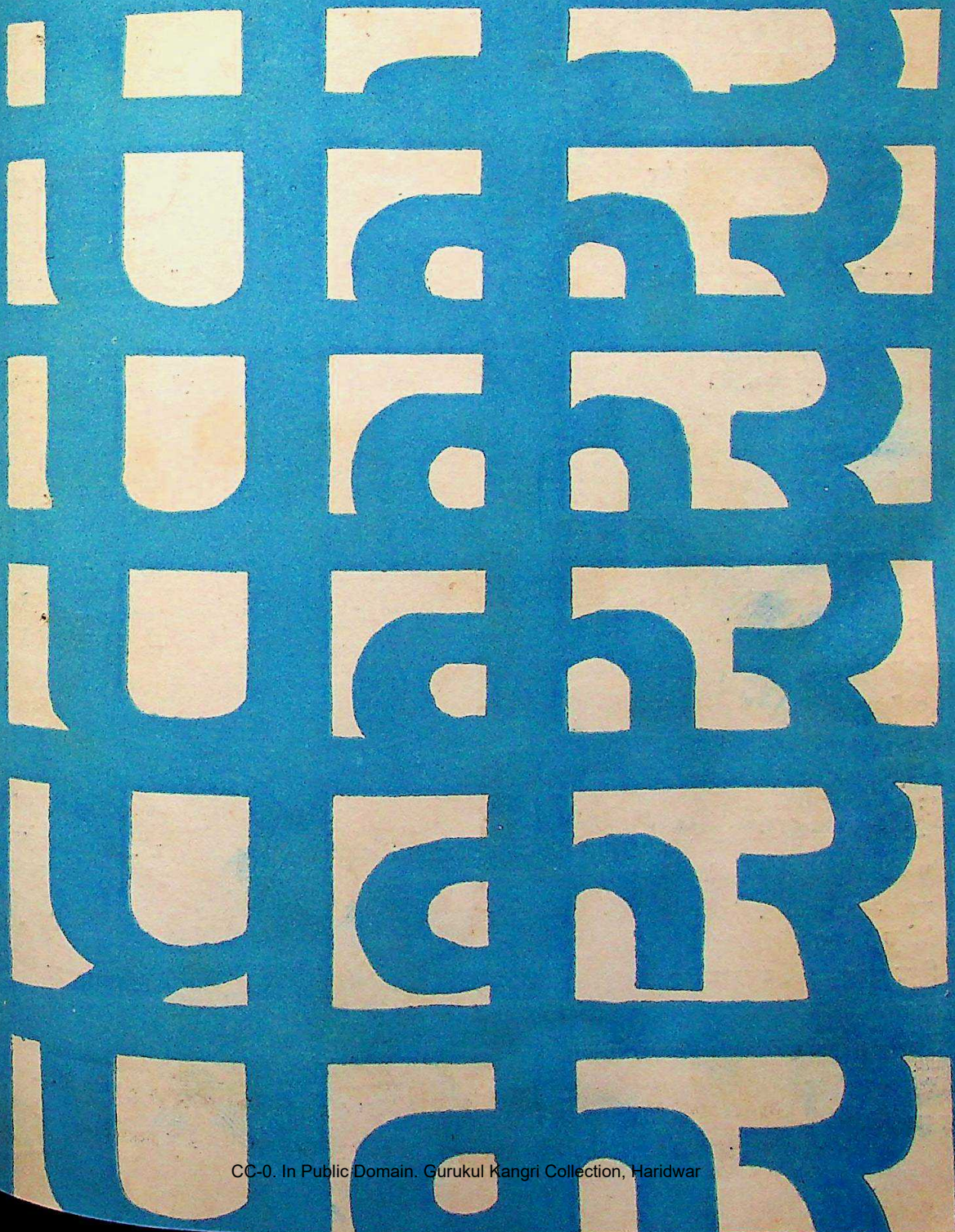
समीक्षित कृतियां

सम्पादकीय

अपदस्थ हिन्दीका दिवस — २ — वि. सा. विद्यालंकार

उपन्यास

रांगेय राघवके चार उपन्यास—(घरौंदे, हुजूर, आखिरी आवाज, मुर्दोंका टीला) — ५ — डॉ. भैरूलाल गर्ग

बिना दरवाजेका मकान—डॉ. रामदरश मिश्र — ६ — श्रीप्रकाश

सचिवालय—राजकृष्ण मिश्र — १२ — त्रिभुवननाथ

बहते फूल नदीके—हृदयनारायण — १३ — रमेश दवे

सेठ बाँकेमल—अमृतलाल नागर — १४ — डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

असीमकी सीमा—अम्बिकाप्रसाद दिव्य — १५ — सूर्यप्रकाश गोस्वामी

उजली पीली धूप—तिलकराज गोस्वामी — १६ — डॉ. मान्धाता राय

धूप और कोहरा—राजीव शर्मा — १७ — डॉ. नारायणस्वरूप शर्मा

कहानी संग्रह

पहली बरसी—यशपाल वैद — १८ — डॉ. शंकर पुणतांबेकर

निशाचर—भीष्म साहनी — २० — डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी

विग्रह बाबू—मिथिलेश्वर — २१ — प्रा. यशपाल वैद

अंधेरे—डॉ. परमलाल गुप्त — २२ — प्रा. सुमेरसिंह शैलेश

पपीतेका पेड़—डॉ. अज्ञात — २३ — रामस्वरूप दुबे

जिस्मपर उगा कफन—कृष्णशंकर भटनागर — २५ — डॉ. अशोक जेरथ

नाटक एकांकी

जसमा ओडन—शान्ता गांधी — २६ — डॉ. अज्ञात

मैं नारी तुम पुरुष—डॉ. अज्ञात — २८ — डॉ. नरनारायण राय

काव्य-संकलन

बोधिसत्त्व सुनें—अनिल राकेशी — २९ — डॉ. विजय

संवेदनाओंके स्वर—महेशचन्द्र पुरोहित — ३० — डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

अवस—नीतीश्वर शर्मा नीरज — ३१ — डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी

शोध : आलोचना

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : व्यक्तित्व और कृतित्व—सम्पा. डॉ. प्रकाश आतुर — ३२ — डॉ. रामस्वरूप आर्य

गुलेरी साहित्यालोक—डॉ. मनोहरलाल — ३३ — डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

आलोचक पन्त—डॉ. मंगो रानी — ३६ — डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

राजनीतिक चिन्तन

हिन्दू राज्य—प्रो. बलराज मधोक — ३७ — डॉ. रामप्रसाद मिश्र

वेद-वेदान्त

लोक, वेद और वेदान्त—रामप्रसाद पाण्डेय — ४० — विराज

किशोर बाल साहित्य — ४१ — —

प्राप्ति-सूचना — ४३ — —

वर्ष : १६ आश्विन : २०४१ (वि.)
अंक : ९ सितम्बर १९८४ (ई.)

प्रकर

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
संपर्क : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.
प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रकर शुल्क

भारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन (व्यक्तिगत)	३०१.०० रु.
आजीवन (संस्थागत)	५०१.०० रु.

(जनवरी '८५ से वार्षिक मूल्य : ३५.०० रु.)

विदेशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.०० रु.
हवाई डाकसे	२००.००रु.

मत अभिमत

☐ लेखकीय प्रतिक्रिया : यथाप्रस्तावित

'यथाप्रस्तावित' पर समीक्षक डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्तने जो शंकाएं उठायी हैं उसका उत्तर वैसे तो समीक्षाके अन्तिम पैरेमें उन्होंने स्वयं दे दिया है। (देखें, 'प्रकर' मई) यदि अवसाद, निराशा और सिनिसिज्मका वातावरण पाठकपर हावी होजाताहै तो क्या पाठकको वह यह सोचनेके लिए मजबूर नहीं करता कि ऐसा क्यों होरहाहै ? कौन इसके लिए जिम्मेदार है ? इससे मुक्त होनेका क्या रास्ता है ? अगर उपन्यास इस तरहका वातावरण बना सकनेमें सफल न हुआ होता तो मैं इसे लेखककी असफलताही मानता।

जहांतक दफ्तरी माहौलका जाल बुननेका सवाल है जो जहां काम करताहै उसके पास वही माहौल होताहै। वैसे जो प्रश्न उठाये गयेहैं वे उठने चाहियें। लेकिन अच्छा हो उनका उत्तर अनुभवोंके माध्यमसे मिल सके। लेखकपर उस दायित्वको न छोड़िये। पता नहीं लेखक क्या-क्या तरीके निकालकर अपनी गलतियोंको न्यायोचित ठहराने लगे। मुझे मालूम नहीं कि समीक्षक-पाठकका अपना या उनके किसी साथीका किसी ऐसे बड़े अधिकारीसे काम पड़ाहो, जो उनकी बातके प्रति आश्वस्त हो, मदद करनेके लिए ईमानदारीसे प्रयत्नशील हो और किसीको उसकी ईमानदारीमें शंकाभी न हो। लेकिन इस सबके बावजूद एक दिन एकदम विपरीत निर्णयभरा पत्र मिल जाये। अगर ऐसा नहीं हुआ तो शायद यहाँ शंका करनेवालोंको उनके प्रश्नोंका उत्तर मिलनेमें अभी समय लगे। क्योंकि ऐसे प्रश्नोंका उत्तर व्यक्ति कम देताहै अनुभव अधिक। यदि उपन्यास गौरसे पढ़ा गया होगा तो दस्तखत करते समय लाल स्याही बिखरनेकी स्थितिसे भी पाठक गुजरे होंगे। क्या उसने पाठकसे कुछ नहीं कहा ? खैर। समीक्षक-पाठक अपना मत रखनेके पूर्ण अधिकारी हैं और रखनाभी चाहिये। अपनी रचनाके बारेमें मत जानना हर लेखकके लिए अनिवार्य होताहै, सो मैंने जाना।

—गिरिराजकिशोर, ५०७ आई. आई. टी., कैम्पस कानपुर (उ. प्र.)

☐ लेखकीय प्रतिक्रिया : 'मासूम चांदनी : क्षितिजके स्वर'

अपने उपन्यास 'मासूम चांदनी : क्षितिजके स्वर' ('प्रकर' मई', ८४) पर डॉ. विजय द्विवेदीकी समीक्षा पढ़कर कुतूहल-मिश्रित आनन्द हुआ कि उन्होंने उपन्यासको एक दर्शन-ग्रन्थके रूपमें देखा। कई पाश्चात्य दार्शनिकोंके नाम एकसाथ देखकर मुझे अपनेही आत्म-विश्लेषणकी अपेक्षा मालूम देतीहै, किन्तु डॉ. द्विवेदीकी समीक्षाकी प्रतिक्रिया-स्वरूप नहीं। इसे फिर कभी यदि अवसर मिला तो लिखूंगा। -- ईसाई धर्मकी उदारता या पश्चिमके प्रति सहानुभूति

(शेष पृष्ठ ३८ पर)

अपदस्थ हिन्दीका दिवस

औपचारिक रूपसे इस वर्षभी १४ सितम्बरको हिन्दी-दिवस मनाया गया। कुछ गिने-चुने हिन्दी-प्रेमियों और हिन्दीभक्तोंने कुछ गिने-चुनेही समाचारपत्रों द्वारा सुने जा सकनेवाले तार-स्वरमें हिन्दी भाषा और साहित्यकी श्रेष्ठता, उसकी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य सृजनकी व्यापकता और उसके अन्तर्राष्ट्रीय रूपके गीत गाये। यह सब सुनकर यह निश्चय करना कठिन था कि देशके वर्चस्वका प्रतिनिधित्व करनेवाली किसी कीर्तिमती भाषाके यशोगीत गाये जाये जारहेहैं हैं अथवा संविधान द्वारा 'राजभाषा' घोषित होनेके बाद विभिन्न नवनिर्मित विधि-विधानोंकी सहायतासे एवं राजकीय आदेशों तथा राजकीय प्रचार माध्यमोंकी सहायतासे हिन्दीके प्रति उत्पन्न उपेक्षा भावके कारण 'अपदस्थ हिन्दी' के शोक-गीत गाये जारहेहैं। संभवतः इस प्रकारके आयोजनोंके व्यवस्थापक और उसमें भाग लेनेवाले हिन्दी-प्रेमी और भक्तभी यह निर्णय करनेकी स्थितिमें नहीं हैं कि वे यशोगीत गा रहेथे अथवा शोक-गीत; पर वे इस दिशामें कुछ चिन्तनके लिए अवश्य प्रवृत्त होसकतेहैं।

राजकीय स्तरपर हिन्दीकी स्थितिके अवमूल्यनका मुख्य कारण हिन्दीभाषियोंमें भाषा-चेतना और राजनीतिक चेतनाका अभाव है। भाषा-चेतना केवल भाषा विशेषके प्रति आकर्षण या लगाव नहीं है, इस प्रयोजनसे यहभी आवश्यक नहीं कि वह भाषाविशेष मातृभाषाही हो, बल्कि भाषा-चेतनाके लिए उस भाषा विशेषके प्रति प्रतिबद्धता और आन्तरिक संलग्नताकी आवश्यकता है। इसी प्रतिबद्धता और आन्तरिक संलग्नताके कारणही जागरूकताकी वृत्ति उत्पन्न होतीहै। जो केवल भाषाके साहित्यिक वर्चस्व, उसकी सृजन-क्षमताकी वृद्धितक सीमित नहीं होती, अपितु उसके राजनीतिक वर्चस्व और भौगोलिक व्यापकताके प्रतिभी सचेत रहतीहै। देश में हिन्दीकी स्थितिको देखकर ऐसा प्रतीत होताहै कि हिन्दीभाषियोंकी भाषा-चेतना इन दोनों स्तरोंपर तटस्थ रहीहै। यह मनोवृत्ति, हम अनुभव करतेहैं, राजनीतिक प्रचार द्वारा निर्मित कीगयीहै। इसी कारण संलग्नता और प्रतिबद्धता आहत हुईहैं। अन्यथा कोई कारण नहीं था कि दो धर्म, दो जिले, दो प्रदेश, दो देश की राजनीतिके परिणाम देख-भुगतकर दो भाषाएं, दो जिले, दो प्रदेश, दो देशकी दिशामें बढ़ती राजनीतिसे भाषा-चेतना अप्रभावित रह जाती। स्पष्ट रूपसे भाषा के साथ धार्मिक कट्टरताके जुड़ जानेसे भी भाषा-चेतना बाधित हुईहै और इसका कारण सत्ता दलकी राजनीति है। देशकी इस दलीय राजनीतिकी विडम्बना यह है कि धार्मिक कट्टरताका साहसके साथ सामना करने और उसका स्थायी समाधान करनेकी अपेक्षा किसी प्रश्नके साथ धार्मिक कट्टरता जुड़ जानेपर साम्प्रदायिकता का 'हौवा' खड़ाकर समस्याको टालनेका प्रयत्न किया जाता है, चेतनाको दुर्बल बनाया जाताहै। चेतनाके दुर्बल होजानेपरभी 'हौवा' की अविश्वसनीयता स्थापित रहतीहै। तो क्या राजनीतिका उद्देश्य यही है कि अनिश्चियतता और कृत्रिम भयका वातावरण उत्पन्न कर जनसाधारणके मनोबलको गिराना और किसी समस्याको विकराल रूप धारण करनेका अवसर प्रदान कर अन्ततः विघटन और विखण्डनकी प्रक्रियाको सम्पन्न करना?

सम्भवतः भाषा-चेतनाकी दुर्बलता और भ्रमित मनोवृत्तिही कारण है कि हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें राजकीय स्तरपर एक नहीं दो भाषाओंको समान स्थिति प्रदान की जारहीहै। वस्तुतः इन दोनों भाषाओंकी तुलनामें वरीयता तीसरी भाषा—अंग्रेजी (इंडियन-इंग्लिश)की है। इस स्थितिको इस प्रकार रखा जासकताहै कि संविधान द्वारा संकल्पित देशकी प्रथम भाषाको पहले अपदस्थकर उसे गौण (हिन्दीभाषी राज्योंमें द्वितीय) स्थान दिया जा चुकाहै और अब उर्दूको द्वितीय भाषा का स्थान देकर हिन्दीको इस स्थानसे भी हटाने का उपक्रम किया जा रहाहै। जिन लोगोंकी भाषा-चेतना दुर्बल पड़ चुकीहै, उनके लिए कुछ थोड़े विस्तारसे इस प्रक्रियाको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है। यह सभीको

स्पष्ट है कि हिन्दी उर्दू में बाह्य रूपसे अन्तर शब्दावली और लिपिका हैं । अरबी-फारसीकी शब्दावलीका प्रश्न केवल भाषामें कुछ शब्दोंको खपाने या समझौतेके रूप इन्हें हिन्दीपर चस्पां करनेका नहीं है, ऐसे अनेक शब्द 'हिन्दी' कही जानेवाली भाषामें भरे पड़ेहैं और उन्हें हिन्दी से निकाला नहीं जासकता, क्योंकि वे आत्मसात् होकर हिन्दीकी प्रकृतिसे एकाकार होगयेहैं । 'हिन्दीकी प्रकृतिमें आत्मसात्' होनेकी अनिवार्यता परिवेश और वातावरणकी सृष्टिसे भी है । । उर्दू कोशोंमें प्रस्तुत और उर्दू-साहित्य में प्रयुक्त सभी अरबी-फारसी शब्द हिन्दीकी प्रकृतिसे तादात्म्य बिठानेमें असमर्थ हैं, इसलिए देशमें अपने आगमन कालसे अबतक आत्मसात् नहीं होपाये । इनसे साहित्यके जिस परिवेशकी सृष्टि होतीहै, जो वातावरण बनताहै, (आजकल दूरदर्शन अधिकाधिक गजल और कव्वाली कार्यक्रम प्रस्तुतकर यह परिवेश और वातावरण बनानेके लिए प्रयत्नशील है), वह केवल शासक-सम्पर्क-अभ्यार्थियोंतक सीमित रह गया, जनसाधारण इससे अछूताही रहा । अभ्यार्थीवर्ग भी अरबी-फारसी शब्दबहुल साहित्य में उपेक्षितही नहींरहा, अपितु इस वर्गपर पर्याप्त छींटा-कशीभी कीगयी, इसलिए कि इस वर्गने उर्दू साहित्यके परिवेश और वातावरणकी उपेक्षाकर अनेक ऐसे नये प्रयोग किये जोकि उसे शब्द-मोहसे अपरिचित जनसाधारण के निकट लेआते । इसका मुख्य कारण धार्मिक कट्टरता एवं धर्म और धर्मकी सम्बद्धता रही । इसी वृत्तिने पृथक्ता की भावनाको भी जन्म दिया । यह पृथक्तावाद धार्मिक क्षेत्रसे प्रारंभ होकर राजनीतिके क्षेत्रमें भी आगया । इससे सबसे अधिक प्रभावित हुए साम्यवादी और कांग्रेसी । स्वाधीनतापूर्व साम्यवादी दलको राहुल सांकृत्यायन जैसे लोग भाषाके आधारपर अमान्य रहे, जबकि वे सदा अपनी साम्यवादी निष्ठाको असंदिग्ध शब्दोंमें व्यक्त करते रहे। कांग्रेस दलमें गांधीजीके प्रयत्नशील होनेपर भी 'हिन्दीवाला' शब्द व्यक्तिके अस्पृश्य होनेका द्योतक रहा। यह संयोगकी बातहै कि यही 'अस्पृश्य हिन्दीवाला' कांग्रेस की शक्ति बना रहा । इसप्रकार लंबे समयसे हमें इस समस्याका सामना करना पड़ रहाहै कि अरबी-फारसी शब्दबहुल भाषाको स्वीकार किया जाये या नहीं । जन-साधारण बार-बार इसे अस्वीकार करताहै । राजनीति इसे बार-बार उछालतीहै और इसके साथ पृथक्तावादको उभारतीहै और जनसाधारणको विभाजित करतीहै । जिन लोगोंने अरबी-फारसी शब्दबहुल पृथक् लिपिकी भाषाको अपनी 'धर्मभाषा' के रूपमें स्वीकार कियाहै, उनकी इसे धर्मभाषाके रूपमें स्वीकृतिकी पृष्ठभूमि और इसके पृथक् रूपको ठीकसे हृदयंगम करनेके लिए इस भाषाके साहित्यिक, सांस्कृतिक रूप और उसकी मानसिकताका ठीक-ठाक अध्ययन एवं इससे उत्पन्न स्थितिका विश्लेषण करनेकी आवश्यकता है । परन्तु राजनीति इस धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिक रूपको भविष्यमें धधकनेके लिए छोड़कर उसपर राख डाल रहीहै ।

यह स्वीकार करना चाहिये कि अरबी-फारसीबहुल भाषा और उसकी पृथक् लिपिके धार्मिक और साम्प्रदायिक पक्षपातियोंमें भाषा-चेतना अधिक प्रबल है और राजनीतिक दृष्टिसे अधिक चातुर्य है। हिन्दीभाषियोंमें भाषा-चेतना भी प्रबल नहीं है, और राजनीतिक चातुर्यभी इस सीमातक नहीं पहुंचा कि किसी अन्य भाषाके माध्यमसे देशमें नये सिरेसे विकसित किये जा रहे पृथक्तावादके प्रवाहको थाम सके । इसी कारण जब कुछ हिन्दीभाषी राज्योंमें हिन्दीके साथ उर्दू को द्वितीय भाषा के रूपमें जोड़ा गया तो किसी व्यापक क्षोभ, आक्रोश, आन्दोलनके दर्शन नहीं हुए । पृथक्तावादके इस प्रवाहको रोकनेका साहस इसलिए नहीं किया गया कि कहीं उन्हें साम्प्रदायिक घोषित न कर दिया जाये । उन्हें यह स्मरण करानेकी आवश्यकता है 'साम्प्रदायिकता' का महत्व मात्र 'हौवा' जितना है, राजनीतिक अस्त्रके रूपमें यह भोथरा हो चुकाहै । प्रत्येक अग्रणी राजनीतिज्ञ इसी साम्प्रदायिकता से घिरा हुआहै और प्रयत्नशील है कि प्रत्येक भ्रष्ट साम्प्रदायिक व्यक्ति उससे जुड़ा रहे, और इसका मूल्य वह पैसे और पृथक्तावाद दोनोंसे चुकाताहै ।

आजकी राजनीतिमें 'चेतना' नामकी वस्तुका भी पूर्ण बहिष्कार हो चुकाहै क्योंकि वह 'द्रव्य' रूप नहीं है। 'द्रव्य' भाव जगत्की नहीं, स्थूल जगत्की वस्तु है । वह आदान-प्रदानकी वस्तु है, यह चेतनाका क्षेत्र नहींहै । भाषा संबंधी निर्णय करनेवाले मण्डलोंमें वे लोग हैं जिन्होंने स्थूल वस्तुओंके आदान-प्रदानसे मत-वोट प्राप्त कियेहैं, इस आदान-प्रदानसे कार्य-सिद्धि नहीं हुई तो बन्दूककी नली कुछ दूसरे कंधोंपर तैनात थी । इन्हें सत्ता, शक्ति चाहिये थी । चेतना इस कार्यमें बाधक है, इस प्रकारकी बाधाओंको ये लोग अपने पास कैसे आने दे सकतेहैं । इस देशमें विदेशी राज्य या साम्राज्य इन्हीं चेतनाहीन वर्गोंके भरोसे जमे रहे । भाषा जैसी क्षुद्र चेतनात्मक वस्तुको पहलेभी इन्होंने कभी पास नहीं फटकने दिया, अब कैसे उसे अपने निकट आने देते । इसीलिए देशमें प्रत्येक आक्रान्ताकी भाषा शासनारूढ़

रही। आक्रान्ताकी भाषा ही नहीं, उसका साहित्य, संस्कृति, सभी श्रेष्ठ होजाताहै। विजित और आक्रान्त इस श्रेष्ठताको स्वीकार करनेको बाध्य है। यही युग-धर्म है। इसी धर्मको आजके चेतनाहीन राजनीतिज्ञने भी अपना लियाहै, अंगीकार कर लियाहै। आजकी यही परम्परा है। इसी कारण आजभी ऐसे जीवित 'फाँसिल' मिल जातेहैं जो बात-बातमें फारसीके शेर सुना देतेहैं। लगताहै पत्थर बोल रहेहैं, जो स्वयं अचेतन हैं, दूसरोंकी चेतनताका ज्ञान उनके इन्द्रिय-बोधके लिए अगम्य है। ये लोग केवल राजनीतिक चेतना संपन्न राजनीतिज्ञोंके मोहरे होतेहैं, मात्र सत्ता, शक्ति या अर्थके अंशमात्रसे संतुष्ट हो जानेवाले। सत्तामें इन लोगोंके बाहुल्यके कारण भाषाका प्रश्न प्रश्नही बना रहा, संवैधानिक व्यवस्थाओंके विद्यमान रहतेभी। ऐसे चेतनाहीन पंगु लोगोंके कारणही न केवल केन्द्रमें सवैधानिक राजभाषा 'हिन्दी' अपने पदसे च्युत कर दी गयीहै, बल्कि राज्योंमें भी वहांकी भाषाएं गौण हैं, प्रमुख और प्रथम भाषा अंग्रेजी यानी इण्डियन इंगिलश। और, हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें बन्दूक ताने उर्दू हिन्दीको अस्तित्वहीन बनानेमें सन्नद्ध।

ऐसा प्रतीत होताहै कि योजनाबद्ध व्यूह-रचना की गयीहै। इसीका अंग है कि गत ३४-३५ वर्षमें वैज्ञानिक विषयों एवं अनेक मानविकी विषयोंके शिक्षणका माध्यम हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाएं नहीं बन पायीं। यदि जनता पार्टीकी सरकार प्रशासनिक प्रतियोगी परीक्षाओंके लिए हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओंको मान्यता प्रदान करते हुए वैसी व्यवस्था कर गयी तो कांग्रेस सरकारने इसके लिए अंग्रेजीकी अनिवार्यता थोप दी। उच्च न्यायालयोंमें हिन्दी या भारतीय भाषाओंका प्रवेश वर्जित है, फिरभी जिन हिन्दीभाषी राज्योंमें न्यायाधीशोंको हिन्दी में सुनवाई करने या हिन्दीमें निर्णय लिखनेकी वैकल्पिक सुविधा है, वहां उनके लिए अपने निर्णयका अंग्रेजी रूपान्तर प्रस्तुत करना अनिवार्य है। उच्चतम न्यायालय में तो हिन्दीका प्रवेशही निषिद्ध है, वहाँ काले-भूरे लोगों और कुत्तोंके प्रवेश-निषेधकी भांति हिन्दी-प्रवेश निषेध है। भाषा-चेतनाहीन हिन्दीभाषी भी इस दृष्टिसे सचेत नहीं हैं। कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयके तत्त्वावधानमें पारिभाषिक शब्दोंके निर्माणका कार्य और उच्च शिक्षण के लिए स्तरीय शिक्षणके उपयुक्त पुस्तकें तैयार करने का कार्यक्रम प्रारंभ किया गयाथा, अब यह पूरा कार्यक्रम ही 'शीतागार' में बन्द हो गयाहै। रोचक स्थिति यह है कि इस कार्यक्रमके अन्तर्गत तैयार शब्दावलीके प्रयोगका सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके आकाशवाणी और दूरदर्शन विभाग पूर्णतया बहिष्कार करतेहैं, अन्य सरकारी विभाग इन शब्दोंके नामपर खीसें निपोरतेहैं, देशकी किसी शिक्षण संस्थामें न तो इस शब्दावलीका व्यवहार किया जाताहै, न इस कार्यक्रमके अन्तर्गत तैयार पुस्तकें पाठ्यक्रमोंमें स्वीकार की गयीहैं, न संदर्भ ग्रंथोंके रूपमें उनका उल्लेख होताहै। यह इसलिए है कि हिन्दीवालोंमें भाषा-चेतना ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओंकी भाषा-चेतनाभी मृतप्राय हो चुकीहै। इसका प्रमाण प्रतिदिन व्यापकसे व्यापकतर होते, दूरदर्शनके वे 'नेशनल प्रोग्राम' हैं जिनमें भारतीय भाषाओंका नहीं अंग्रेजी कार्यक्रमोंकी संख्या शैतानकी आंतकी तरह बढ़ती जा रही है। इन कार्यक्रमोंको देखकर प्रतीत होताहै कि इस देशमें अंग्रेजीभाषी दो प्रतिशत नहीं बल्कि नब्बे प्रतिशत हैं। इस देशके लिए आदर्श रूपमें धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलनेवाले ब्लैकी बच्चे प्रस्तुत होतेहैं और यहांके ब्राउनी बच्चोंका मुंह चिढ़ानेके लिए कि ब्लैकी बच्चे तक अंग्रेजी बोलतेहैं, तुम ब्राउनी वह क्यों नहीं बोलते? जड़ कठपुतलियां अंग्रेजी बोलतीहैं, ब्राउनी तो उन कठपुतलियोंसे भी गये बीतेहैं। यदि इस देशके लोग अंग्रेजी नहीं सीख पाये तो उन्हें कमसे कम रोमन लिपिका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। इसलिए दूरदर्शन अपने कार्यक्रमोंके शीर्षक हिन्दी फिल्मोंकी भांति रोमन लिपिमें देने लगाहै। यदि अंग्रेजी कार्यक्रम नहीं चल रहा होता तो गजल-कव्वाली कार्यक्रम चलता है। दूरदर्शनके अधिकारियोंकी धारणा है कि देशमें संगीतकी एकमात्र यही शैली प्रचलित है, अथवा यहभी उसी योजनाबद्ध व्यूह-रचनाका एक अंग है जिसके अन्तर्गत देशके जन-जनको रंजित करनेवाले गीतों और भजनोंके स्थानोंपर उर्दू गजलोंको उनके गलेके नीचे उतारा जाताहै।

इस विहगावलोकनसे स्पष्ट है कि वर्चस्व हिन्दी या भारतीय भाषाओंका नहीं, अंग्रेजी और उर्दूका है। अंग्रेज इसीकी नींव डालकर गयेथे। ऐसी स्थितिमें यदि यह प्रतीत होने लगे कि १९वीं शती अथवा उससे पूर्व जिस भाषा-चेतना अथवा राजनीतिक चेतनाका अभाव था, वह अबभी जारी है। बीच-बीचमें चेतनाके जो उफान आये, वे शान्त हो चुकेहैं। अब इस उफानके लिए महती शक्तिके साथ समुद्र-मन्थनकी आवश्यकता है। इस देशकी सामूहिक चेतना यह कार्य कर सकतीहै, यह विश्वास होते हुएभी, 'महती शक्ति' की प्रतीक्षा है। पर इस 'महाशक्ति' को जागृत करनेका कार्य भाषा-चेतना सम्पन्न लोगही कर सकेंगे। तबतक 'पदच्युत हिन्दी' का दिवसही मनाते रहनेमें क्यों संकोच किया जाये। ☐

रांगेय राघवके चार उपन्यास

—समीक्षक : डॉ. भैरुंलाल गर्ग

रांगेय राघवका अतिलेखन निःसंदेह उनके साहित्यके सम्यक् मूल्यांकनमें बाधक रहाहै। बयालीस उपन्यास लिखनेके बादभी हिन्दी औपन्यासिक यात्रामें रांगेय राघवको समुचित स्थान न मिल पाना उनकी सृजनशक्ति की उपेक्षाही कही जा सकतीहै। गुलेरीजी मात्र तीन कहानियां लिखकर कहानी साहित्यमें अमर होगये और लगभग तीन सौ कहानियां लिखनेके बावजूद प्रेमचन्द उपन्यास-सम्राट्‌की उपाधिसे विभूषित किये गये। यह तो मानना पड़ताहै कि साहित्यका मूल्यांकन विपुलताके आधारपर नहीं, वैशिष्ट्यके आधारपर होताहै। फिरभी ऐसी बात नहीं है कि रांगेय राघवका उपन्यास साहित्य विपुल भले हो लेकिन वैशिष्ट्य नहीं रखता। वह विशिष्टभी है और लेखककी सृजन शक्तिका पुष्ट प्रमाण भी। यह बात अलगहै कि उनको इस प्रकारके अतिलेखन की आवश्यकता क्यों पड़ी? कुछ दिनों पहले एक गोष्ठी में हिन्दीके एक प्रगतिवादी कथाकारने रांगेय राघवके सम्यक् मूल्यांकनमें सबसे बड़ी बाधा यह बतायी कि वे पैसेके लिए लिखनेथे। यही उनकी सबसे बड़ी कमजोरी थी। जोभी हो निष्पक्ष भावसे बिना किसी पूर्वाग्रहके उनके उपन्यास-साहित्यपर दृष्टिपात किया जाना चाहिये, नितान्त वैयक्तिक स्थितियोंको नजरंदाज करते हुए।

एक अन्य आरोप लगाकर कि वे प्रतिक्रियावादी थे, उनकी मौलिकतापर प्रश्नचिह्न लगा दिया जाताहै। कुछ उदाहरणभी दिये जातेहैं कि उन्होंने 'आनंदमठ' के उत्तरमें 'विषादमठ' लिखा और 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के उत्तरमें 'सीधा सादा रास्ता' हो सकताहै, इस तरहकी आंशिक धारणा उनकी रहीहो लेकिन उनकी मौलिकताको इस तरह उपेक्षित कर देना न्यायसंगत नहीं। वे प्रगतिवादी थे इसमें कोई संदेह नहीं, कम्यूनिस्ट विचारधारासे भी पर्याप्त प्रभावित थे यहभी सत्य है, लेकिन तत्कालीन परिवेश, व्यवस्था-विसंगतिके प्रति आक्रोश और शाश्वत जीवन-मूल्योंके प्रति उनमें गहरी आस्था थी, इस बातसे इन्कार नहीं किया जासकता। यह बात सही है कि साहित्य में इस गुट सापेक्षताने निष्पक्ष मूल्यांकनमें बड़ी बाधा पहुंचायीहै। सत्यको बिना किसी लाग-लपेटके स्वीकारा जाना चाहिये। फिरकापरस्तीके घेरेमें बंधकर तो एक पक्षीय मूल्यांकनही होसकताहै। लेकिन इस समझके विकास और स्वीकारमें लगताहै अबभी समय लगेगा।

घरौंदे :

'घरौंदे' (१९४१) रांगेय राघवकी सर्वप्रथम औपन्यासिक कृति है? विद्यार्थी जीवनमें लिखे गये इस उपन्यासमें कॉलेज जीवनकी विभिन्न स्थितियोंके साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक और सामन्ती व्यवस्थाकी विसंगतियोंमें फंसे मेधावी छात्र भगवतीके जीवनका लेखा-जोखा है। संभवतः कॉलेज जीवनपर लिखा गया यह अपने ढंगका पहला उपन्यास है: जहां कृतिमें कामेश्वर और नादानी, रानी, हरी और विनोद, राजेन्द्र और लवंग, लीला और इन्दिरा आदिके उन्मादपूर्ण सम्पन्न-वर्गीय अतिरंजित रेखाचित्र हैं वहीं भगवतीके माध्यमसे सहज-सरल ग्रामीण चेतनाकी मार्मिक अभिव्यंजनाभी है। शहरी और संपन्न वर्गके छात्र पढ़ना कम और कॉलेज जीवनकी रंगरेलियां अधिक चाहतेहैं। यही कारण है कि इन शहरी छात्र-छात्राओंके हाथों पड़कर भगवतीकी स्थिति बड़ी दयनीय होजातीहै। वह उन सभी गतिविधियोंसे नितान्त अनभिज्ञ है जो उसकी दृष्टिमें हेय हैं, लेकिन शहरी छात्र वर्गके लिए तो ये बड़ी साधारण बातें हैं। वे साथ बैठकर शराबभी पीतेहैं और प्रेमालापों में संलग्न होकर उचित-अनुचितका ध्यान रखे बिना सब कुछ करनेके लिए स्वतंत्रभी हैं।

कथा संग्रथनके आधारपर उपन्यास दो भागोंमें बहुत स्पष्ट रूपसे विभाजित दिखायी देताहै। एक ओर कॉलेज जीवन की वे सब गतिविधियां हैं जैसी अक्सर देखी जातीहैं, दूसरी ओर भगवतीके माध्यमसे निम्नवर्गीय और ग्रामीण

परिवेशकी सहजता । लेखकने पूर्वार्द्ध में अधिकांशत: कॉलेज जीवनकी पृष्ठभूमिको कथाका आधार बनायाहै, लेकिन बादमें भगवतीके परिप्रेक्ष्यमें ग्राम्य जीवनकी सहजताके साथ-साथ जमींदारी और सामन्ती व्यवस्थाकी विसंगतियोंपर भी पर्याप्त प्रकाश डालाहै । भगवती विधवा सुन्दरका लड़का है जिससे जमींदार वृन्दावनसिंह के अवैध सम्बन्ध हैं । अभावग्रस्त जीवन जीती सुन्दर जमींदार साहबकी हवसका शिकारी होगयी और भगवती को जन्म दे डाला । जमींदार साहब भगवतीको अपने पुत्र की तरहही प्रेम करने लगे । यही नहीं, जब उनका पुत्र राजेन्द्र शिकारके समय मारा गया तो अपना उत्तराधिकारी भगवतीको ही बना दिया । इस प्रकार यह उपन्यास टूटते सामन्ती मूल्योंकी कथा बन गया ।

उपन्यासका विस्तृत कथाक्रम जिस रूपमें चरम सीमाको प्राप्त हुआहै उससे लेखकका दृष्टिकोण स्पष्टत: व्यंजित है ।सामन्ती संस्कारोंकी हार और मानवीय दृष्टिकोणकी परिणतिही शायद लेखकका उद्देश्य रहाहै । लेखक मार्क्सवादी चिन्तनसे उन दिनों प्रभावित होरहाथा जो उपन्यासमें कई स्थानोंपर इस सन्दर्भमें व्यक्त हैं—'मैं जानताहूं,लेकिन मुझे एक बात बता सकतेहो कॉलेजमें कौन सोशलिस्ट, कौन कम्यूनिस्ट नहीं है ।' (पृ. ३५) 'वे गद्दार हैं । तुम्हारी कुर्बानीपर मार्क्स आंसू बहायेगा । काकेशस के पारका वह कामरेड, वह पामीरके उस तरफका मसीहा वह आदमीयतका एक मात्र बचानेवाला स्तालिन तुम्हारे गोशे-गोशेके लिए'' (पृ. ६३)। यही नहीं भारतीय समाज के विभिन्न चित्रभी उपन्यासमें देखे जासकते हैं और समाज तथा धर्मकी व्यवस्थापर पैने-तीखे व्यंग्यभी ।

अन्तमें श्री प्रकाशचन्द्र गुप्तके शब्दोंमें यही कहा जासकताहै—'घरौंदे' एक विद्रोही युवककी रचना है जिसके विचारोंकी पुरानी नींव टूट चुकीहै और नयी अभी बन ही रहीहै । सबल भाषामें साम्राज्य, पूंजी और सामन्त आदि वादोंपर आक्षेप कियेहैं । उच्चतम वर्गकी विलास लहरियां उसके चट्टान सरीखे व्यक्तित्वसे टकराकर पीछे गिर पड़तीहैं ।इस नष्टप्राय अभिजात समाजमें वह पुनर्जीवनका प्रतीक है । उपन्यासमें दृढ़ता है और शक्ति है । उसमें जीवनके प्रति कितनी घुटी, कुंठित मर्म-व्यथा है, तीव्र-विद्रोहकी भावना है, जो मस्तिष्कको चौंका देती है ।'

हुज़ूर :

प्रस्तुत उपन्यास सर्वप्रथम सन् १९५२ में प्रकाशित हुआथा । बात जब सीधे-सीधे अभिधामें कही जाये तो अधिक प्रभावी नहीं होती, विशेषकर जब विडम्बनाओंपर चोट करनीहो । अभिव्यक्तिको टेढ़ापन ग्रहण करना पड़ताहै और तब व्यंजनाके माध्यमसे वह बात सशक्त रूपसे ही प्रकट नहीं होती अपितु पाठकके मन-मस्तिष्कको झकझोरतीहै । यहांतक आते-आते राघवकी सृजन-शक्ति नि:संदेह परिक्वताको प्राप्त हुईहै और एक लघु कलेवर वाले उपन्यासमें जो बात वह जिस ढंगसे कह गये उनकी लेखकीय समझ और दक्षताका सबसे बड़ा प्रमाण है ।

'हुज़ूर' की शैली कुछ भिन्न प्रकारकी है । अंग्रेजों का शासन उठ गयाथा । देश आजाद था, लेकिन शासक और समाजके ठेकेदारोंकी मनोवृत्तिमें कोई परिवर्तन नहीं था । वे सभी विसंगतियां अपने शासनमें भी विद्यमान रहीं जो अंग्रेजी शासनमें हुआ करतीथीं । सबसे बड़ी अद्भुत बात यह लगी कि उपन्यासका प्रधान कोई स्त्री पुरुष नही अपितु एक कुत्ता, जिसने अपने जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखेहैं । आत्मकथात्मक शैलीमें अपनी बात करता चला जाताहै । जानवरोंके माध्यमसे कई उपदेशात्मक कथाएं हमारे पौराणिक साहित्यमें बिखरी पड़ीहैं ।औरभी उदाहरण हैं जैसे पंचतंत्रकी कथाएं आदि लेकिन वहां नीति और उपदेशकी बात है । यहां तो कथानायक कुत्ता जैसा देखताहै और जिन स्थितियोंसे गुजरताहै निरपेक्ष भावसे उनका बयान करता चला जाता है और पाठक उस कुत्तेकी दयनीयावस्था और सूझ-बूझ से प्रभावित हुए बिना नही रहता । अगर इस कुत्तेके स्थानपर कोई पुरुष पात्र होता तो शायद उपन्यासका कथ्य इतना प्रभावी नहीं बन पाता ।

लेखकने ६६ पृष्ठीय इस लघु उपन्यासमें शासन, शोषक, पूंजीपति और पेशेवर नेताओंका यथार्थ व्यंग्यात्मक रूप उभाराहै । शासन बदलनेसे कोई परिवर्तन नहीं आया । ऊपरी परिवर्तन चाहे उस बीच हुएहों लेकिन शोषित मानव और प्रपीड़ित नारी पहलेसे भी हीनतर जीवन बिता रहेहैं—'कभी-कभी हरीप्रसाद लाइब्रेरी जाते । यह मंसूरीका ऊंचा स्थान था । वहां इस कदर अंग्रेजियतकी जूती चटकती कि मैं हैरान होजाता। जमींदार मूंछोंपर ताव दिये अकचनें या सूट पहनकर घूमते । लड़कियोंका काम शायद अपनी जवानीकी नुमाइश करनाही था और मेम लोग पी-पीकर झूमतीं । राजा लोग अपने रिक्शोंमें बैठकर निकलते, मूंछोंपर ताव देकर मुस्कराते ।' (पृ.३३) स्थान-स्थानपर सेठों

और तथाकथित महात्माओंपर भी करारे व्यंग्य हैं।

समाजका सच्चा कच्चा चिट्ठा, एक-एक छोटे-बड़े चरित्रकी वास्तविकता और उनकी प्रवृत्तियोंका इस उपन्यासमें अच्छा परिचय मिलताहै। विभिन्न खण्ड-चित्रों को एक कथासूत्रमें पिरोकर समाजवादी अभिव्यक्ति दी गयीहै। कुत्ता इतना क्षुद्र और उपेक्षित जानवर होते हुएभी आदमीसे कितना ऊंचा उठा हुआहै, लेकिन आदमी-आदमी है, कुत्ता उसका दासही होसकताहै। अत: जो शोषित हैं वे स्वामीभक्तही रहे। सदैव उनके मुँहसे 'हुज़ूर' ही निकलता रहा और वे हमेशा पतित और कुंठित रहे। कुत्तेके बहाने लेखकने उत्पीड़न और शोषण के शिकार लोगोंका प्रगतिवादी दिशा निर्देशन कियाहै। उपन्यासकी मूल संवेदना अन्तमें कुत्तेके इस कथनमें व्यंजित है---'मुझे निकाल दिया गया। सड़कपर खड़े होकर देखा, सामने जेल थी। पहले तो अंगरेजी जमानेमें 'सेंट्रल प्रिजन' था अब वह आजादीके बाद हिन्दीमें 'केन्द्रीय-कारागार' होगयाथा, और कुछ नहीं······'(पृ.६६)।

आखिरी आवाज

रांगेय राघवका अन्तिम सामाजिक उपन्यास 'आखिरी आवाज' (१९६२) तत्कालीन समाजकी विवेचना प्रस्तुत करताहै। इसकी भूमिकामें लेखकने लिखाथा---'मेरा नारायण संघर्षका जीवित स्वरूप है तथा मेरी आस्था मानवमें है। उसका शाश्वत कल्याण धर्ममें है। व्यक्ति का व्यक्तित्व युग-युगसे समन्वित होकरभी आदर्शके 'विजन' में सीमित नहीं होजाता—मनुष्यकी पीड़ामें से उठताहै कल्याणका पथ! यदि वह पथ जीवनको सामरस्य नहीं देसकता तो मेरे लिए कुछभी स्तुत्य नहीं रह जाता—'

यद्यपि कथासूत्र सारे ग्रामीण परिवेशसे ही उठाये गयेहैं, लेकिन उनमें रोमांचकता और रहस्यात्मकताके आधिक्यसे सहजता अवश्य आहत हुईहै। कथावस्तु बहुत सादी है। दो नवयुवकों नारायण और माधो, जोकि क्रमश: सरपंच और वार्ड-पंचके लड़के हैं, का गांवकी एक लड़की निहालकौरसे अवैध प्रेम संबंध है एक दिन वे दोनों खेतपर इससे प्रणय लीलाकर एक अन्य लड़की, जो कि निहालकौरकी सहेली है, से भी अवैध प्रेम संबंध स्थापित करना चाहतेहैं। वह इस बातके लिए सहमत नहीं होती और वे दोनों उस लड़कीकी हत्या कर देतेहैं। चूंकि वे गांवके पंच और सरपंचके पुत्र हैं अत: उनके प्रभावके कारण तथा कुछ कांग्रेसी विधायकोंकी सहायता से पुलिसके अधिकारियोंको घूस देकर पक्षमें कर लिया जाताहै। अपराधके प्रमाणित होनेमें कठिनाई होतीहै। इसीके साथ गांवोंके चुनाव तथा मुकदेबाजीकी कथा संलग्न होजातीहै। अन्तमें उन दो हत्याकारियोंमें से एक दूसरेको हत्याकर स्वयं आत्महत्या कर लेताहै और उपन्यासका अन्त होजाताहै। इतनी बड़ी कथाका इस तरह संक्षेपण अस्वाभाविक-सा ही लगताहै।

प्रस्तुत उपन्यासके माध्यमसे लेखकने आजके गांवकी एक संदर्भ विशेषमें जो तस्वीर खींचीहै वह सचमुच आजभी उतनीही प्रासंगिकतामें खरी उतरतीहै। गांवोंमें प्रेम सम्बन्ध, बलात्कारके दौरान लड़कीकी हत्या, पुलिसमें रिपोर्ट, पुलिसवालोंका मुकदमेको उलझाना, रिश्वतका दौर, बचावके लिए विधायकों-नेताओंकी शरण, दीन-हीनके प्रति सहानुभूतिका रुख न होना, वकीलोंकी मुंहमांगी फीसें, पटवारीका जमीनकी नकल देनेके लिए विभिन्न प्रकारके बहाने बनाना आदि स्थितियां आजभी ज्योंकी त्यों विद्यमान है। यह कोई नयी बात नहीं है। लेकिन लेखकने मूलकथाके साथ-साथ छोटी-छोटी कथाओंको संलग्नकर सामाजिक सूक्ष्मनिरीक्षणका अद्भुत परिचय दियाहै।

समग्र रूपसे इस उपन्यासमें गांवोंके नैतिक स्खलन और पतितावस्था, अव्यवस्था और स्वार्थसिद्धि आदिके जीवित चित्र अंकित हुएहैं। ग्रामवासी अभी बौद्धिक विकासमें बहुत पिछड़ हुएहैं। गांवोंकी पंचायतोंमें निष्पक्ष न्याय नहीं होता। ग्रामीण आजभी अत्यधिक अभावोंमें जीतेहैं। फिरभी उपन्यासका प्रत्येक पात्र तत्त्वत: प्रगतिवादी है जिसे सही ज्ञान है अपने क्षुद्र संस्कारों, स्वार्थों तथा अज्ञानभरे अहंके पार्श्वका। समाजकी मिटती मर्यादापर उन्हें ग्लानिभी होतीहै। उपन्यासका अन्तभी इसी ग्लानिमें होताहै। जब नारायण अपने मित्र माधोकी हत्याकर स्वयं आत्मग्लानिका शिकार हो आत्महत्या कर लेताहै। अपराध और किये गये अपराधोंके प्रति आत्मग्लानि या पश्चात्तापकी स्थिति तो ठीक है किन्तु आत्महत्या पात्रकी जीवनी शक्तिकी कमजोरीको ही प्रकट करतीहै और पाठक इसे समस्याका समाधान नहीं वास्तविकतासे पलायनही मानताहै और यह स्थिति पाठकपर अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़पाती।

मुर्दोंका टीला

प्रस्तुत उपन्यासका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९४८में हुआ। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें 'मुर्दोंका टीला' काफी

चर्चित रहा। इतिहासका मात्र लेखा-जोखाही प्रस्तुत करना इतिहासको साहित्यकी श्रेणीमें लानेका सफल प्रयास नहीं कहा जाता। ऐतिहासिक आख्यान और तत्कालीन युगबोधका विवेचन-विश्लेषणही किसी कृतिको ऐतिहासिकताकी कोटिमें लापातेहैं। इस दृष्टिसे रांगेय-राघवने भी अतीतप्रेमी उपन्यासकारोंकी भांति गौरव-मण्डित अतीतका चित्रांकनही इस उपन्यासमें नहीं कियाहै अपितु निर्विकार और असंपृक्त भावसे उन्होंने द्रविड़ सभ्यताके स्वर्णयुगकी कहानीको तार्किकताके आधारपर सहज अभिव्यक्ति प्रदान कीहै। प्रकारांतरसे दास प्रथाका स्वरूप और गणतन्त्रात्मक शासनकी समस्याओंको भी लिया गयाहै। उपन्यासकी भूमिकामें रांगेय राघवने इतिहासके प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तटस्थता और निरपेक्षताकी बात कहते हुए अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त कियाहै—'आजकल हिन्दीमें ऐसे बहुतसे उपन्यास निकल रहेहैं जिनमें अद्भुत बातें साबित कर दी जातीहैं, अनेक उदाहरण हैं। खेद है आपको यहां 'दास' दासोंकी-सी बात करता मिलेगा। उसकी परिस्थिति प्रकट है। वह उस कालके दार्शनिकोंकी-सी शिक्षित बहस नहीं कर सकता, न वह वैज्ञानिक भौतिकतावाद मानताहै, न द्वन्द्वात्मक-ऐतिहासिक व्याख्याही। मैं समझताहूं इतिहासको इतिहासकी सफल झलक करके देना ठीक है, न कि अपने आपको पात्र बनाकर किये-करायेपर पानी फेर देना।'

मोहन जोदड़ो (मोएं-जो-दड़ो—मुर्दोंका टीला) सिन्धु नदीके तीरपर स्थित आजसे सहस्रों वर्ष पूर्व व्यापारका एक बहुत बड़ा सुसभ्य केन्द्र था। उस समय पश्चिममें मिस्र, उत्तर-पश्चिममें एलाम और सुमेरु और क्रीट तथा उत्तरमें हड़प्पाकी सभ्यताएं थीं। मिस्र एक अत्यधिक सभ्य देश था। मोहन जोदड़ोसे उसका घना व्यापार था। मोहन जोदड़ोका समय ३५०० ई. पू. का माना जाताहै। प्रस्तुत उपन्यासकी ऐतिहासिकतापर टिप्पणी करते हुए श्री शिवदानसिंह चौहानने अपने इतिहास 'हिन्दी साहित्यके अस्सी वर्ष' में लिखाहै—'मुर्दोंका टीला' संभवतः रांगेय राघवका अबतकका सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें उन्होंने मोहन जोदड़ोके समयके अज्ञात सामाजिक-सांस्कृतिक जीवनकी कल्पना-जन्य कहानी कहीहै। इस प्रागैतिहासिक सभ्यतापर साहित्यिक कल्पनाका यह हिन्दीमें पहला उपन्यास है।'

उत्थान और पतन प्रकृतिका अटल नियम है। इस संसारमें न जाने कितनी संस्कृतियां और सभ्यताएं अपने चरमोत्कर्षपर पहुंचीं और मिटीं। उन्हींमें एक सिन्धु सभ्यताभी थी। उसके वैभव विलास और पतनकी कहानीही प्रस्तुत उपन्यासमें है। कृतिका प्रमुख प्रतिपाद्य गणतन्त्र और स्वतन्त्र शासन प्रणालियोंके समर्थकोंके पारस्परिक संघर्षको चित्रित करनाहै। निःसन्देह यह प्रेरणा उन दिनों हमारी दासताके उन्मूलनकी उद्दाम भावनाका ही परिणाम था। हमारे देशवासी भी 'दास' ही तो थे। यथास्थान सामाजिक-सांस्कृतिक जीवनके चित्रभी बड़ी गंभीरतासे उकेरे गयेहैं। खान-पान, रहन-सहन, वस्त्रा-भूषण, व्रत-त्यौहार, देवी-देवता, पूजा-आराधना आदि समस्त संदर्भ ऐतिहासिक युगके अनुरूप चित्रित हैं।

मोहन जोदड़ोमें गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली थी। मणिबंध अपने मिस्री साथियोंसे मिलकर इस व्यवस्थाको नष्टकर एकतन्त्र शासनकी स्थापना करताहै। मिस्री प्रभावके कारण दासप्रथाका भी उपन्यासमें विस्तारसे वर्णन आयाहै। दो पक्ष उपन्यासमें स्पष्टतः दिखायी देतेहैं—पहला प्रगतिशील और गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्थाका पोषक है और दूसरा एकतंत्र शासनका समर्थक है। पहले पक्षमें महाश्रेष्ठि विश्वजित, कीकट देशका द्रविड़ गायक कवि विल्लिभित्तूर, मिस्रसे खरीदे गये दास अपाप और उसकी संगिनी हेका, राजकुमारी चन्द्रा आदि। दूसरे पक्षमें मणिबन्ध, वृद्ध मिस्री श्रेष्ठि आमेन-रा, बयाद आदि आतेहैं। गणतंत्रात्मक व्यवस्थाकी पराजयही होतीहै। मणिबन्ध एकतंत्रकी स्थापना कर लेताहै लेकिन प्राकृतिक प्रकोपसे सब कुछ नष्ट होजाताहै और देखते-देखते विश्वकी श्रेष्ठतम सभ्यता कालके विकराल गालमें समाविष्ट होजातीहै।

युगसंदर्भमें प्रस्तुत उपन्यास मानव स्वातंत्र्य और जनतंत्रमें हमारी आस्थाको मजबूत करताहै। मोहन-जोदड़ोमें गणतंत्र था अथवा नहीं, यह बात अलगहै किन्तु गणशासनकी लेखककी कल्पना बड़ी आकर्षक है। उस समय नागरिक, दास, स्त्रियां स्वतन्त्रताके लिए संघर्षरत थे—यहभी एक सीमातक पूर्व इतिहासपर आधुनिक दृष्टिका आरोपण हो सकताहै, लेकिन यह कल्पनाभी कितनी प्रेरक है। लेखक कृतिसे निरपेक्ष नहीं रह पाता। वह उसमें कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूपमें अवश्य दिखायी दे जायेगा। यह स्थिति राहुल, यशपाल, भगवतशरण उपाध्यायकी तरह हमें डॉ. रांगेय राघवमें भी देखनेको मिलतीहै। लेकिन एक बात अवश्य है कि हम इतिहासको

नवीन परिप्रेक्ष्यमें देखनेकी प्रेरणा ऐसी कृतियोंसे अवश्य मिलतेहैं और ऐसे ऐतिहासिक आख्यानोंकी उपयोगिताभी तभीहै जबकि वह हमें इतिहासके एक युगको जांचने-परखनेके लिए प्रेरित करे। इस दृष्टिसे कहा जासकताहै कि 'मुर्दोंका टीला' रांगेय राघवका एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है।

रांगेय राघवका नाम बहुधा प्रगतिशील विचारधाराके साथ जोड़ा जाता रहाहै और यह सत्यभी है। किन्तु उन्होंने मार्क्सवादको एक जीवनदर्शनके रूपमें ही स्वीकारा है। मानवतावादी जीवन दर्शनके वे हमेशा पक्षधर रहे और यही बात हमें उनके संपूर्ण उपन्यास साहित्यमें ही नहीं अपितु उनके काव्यमें भी देखनेको मिलतीहै। विवेच्य उपन्यासोंके सीमित परिप्रेक्ष्यमें उनकी संपूर्ण औपन्यासिक विचारधारा और चेतनापर प्रकाश डालना संभव नहीं। उनके उपन्यासोंमें विन्यस्त विचारधारा स्वतंत्र रूपसे शोधका विषय होसकताहै। पर यह अवश्य कहा जा सकताहै कि चाहे 'घरौंदे' हो या 'हुजूर', 'आखिरी आवाज' हो या 'मुर्दोंका टीला' सभीमें मानव अस्मिताके प्रति आस्था व्यक्त हुईहै और मानवीय जीवन जीनेके प्रति संघर्षका संदर्भ तो हैही, विशेषत: 'मुर्दोंका टीला' में।

शिल्प-संधानमें तो रांगेय राघव बड़े दक्ष हैं। घरौंदे' प्रारंभिक कृति होते हुएभी परिवेश और पात्रानुकूल स्थितियोंको अपनी संपूर्णतामें बड़ेही सशक्त ढंगसे अभि-व्यंजित करतीहै। 'हुजूर' का नायक कुत्ता है। यह कुत्ता दासत्वका प्रतीक है। व्यंजनाके स्तरपर इतनी सशक्त कृति अलभ्य नहीं, तबभी दुर्लभ अवश्य है। चाटुकारिता और अंग्रेजी संस्कारोंकी विरासत आजभी हमारे यहाँ मौजूद है। प्रकारान्तरसे यह कुत्ता आजके तथाकथित 'मामूली' आदमी अथवा 'लघु मानव' का प्रतीकभी है। 'आखिरी आवाज' के सूक्ष्म सन्दर्भोंसे प्रभावित होकर डॉ. देवराज उपाध्यायने तो यहांतक लिखाहै—'सच पूछिये तो अदालत की कार्यवाहियोंका ज्ञान, किस तरह जिरह की जातीहै, वकीलोंके कैसे-कैसे हथकंडे होतेहैं, किस तरह बालकी खाल निकाली जातीहै—इन सब बातोंका ज्ञान सर्वप्रथम मुझे इस उपन्यासके द्वाराही हुआ।' 'मुर्दोंका टीला' पहलेसे ही काफी चर्चित रहाहै अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हाँ, एक बात अवश्य है कि नवीन युगसंदर्भमें आजभी यह कृति अपनी उपादेयता और प्रासंगिकतामें कम महत्त्व नहीं रखती। देशकाल और वातावरण तथा पात्रानुकूल भाषा तथा शिल्प-संधान निःसंदेह स्तुत्य है। एक अहिन्दी भाषीका हिन्दीके गहन-गंभीर ज्ञानका और क्या प्रमाण होसकताहै।

राजनीतिक मतवादके कारण कोईभी लेखक हो स्व-तंत्र और तटस्थ आलोचनाका पात्र नहीं बन पाता और रांगेय राघवके साथ यही हुआ। प्रगतिशीलताका घोषित आग्रह नहीं होता तो शायद उनके कृतित्वपर निष्पक्ष रूपसे विवेचन-विश्लेषणकी अधिक गुंजाइश रहती। खैर, जोभी हो साहित्यकारका सोच और उसकी सर्जनाके विस्तारको सीमामें नहीं बांधा जाना चाहिये। चिन्तनके अनेक आयाम होसकते हैं। बिना किसी मतवादके पूर्वाग्रह से मुक्त हो कृतिकारके कृतित्वकी महत्ताके आकलनका प्रयास होना चाहिये। रांगेय राघवका संपूर्ण साहित्य आजभी इस बातकी अपेक्षा रखताहै। उनका अतिलेखन भी इस कार्यमें आड़े न आने पाये। अगर इस प्रकारका प्रयास होतो रांगेय राघवके कृतित्वके साथ न्याय करनेकी संभावना निकल आयेगी।

चर्चित उपन्यास

१. **घरौंदा—रांगेय राघव; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली। पृष्ठ : २४७; डिमा. ८३, मूल्य : ४०.०० रु.।**
२. **हुजूर : लेखक एवं प्रकाशक : उपर्युक्त। पृष्ठ :६६; डिमा. ८३; मूल्य : १६.०० रु.।**
३. **आखिरी आवाज—लेखक एवं प्रकाशक : उपर्युक्त। पृष्ठ : ३१५; डिमा. ८२; मूल्य : ४५.०० रु.।**
४. **मुर्दोंका टीला—रांगेय राघव; प्रकाशक : किताब महल, १५, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ : २९८; डिमा. ८१; मूल्य : १२.०० रु.। □**

बिना दरवाजेका मकान[१]

उपन्यासकार : डॉ. रामदरश मिश्र
समीक्षक : श्रीप्रकाश.

'बिना दरवाजेका मकान' परिस्थितियोंसे जूझती एक निम्नवर्गीय नारीके संघर्षशील जीवनका प्रामाणिक दस्ता-वेज है। सास-ननदके दुर्व्यवहारके कारण अपने पतिके साथ गांवसे महानगर आयी। इस अभिशप्त नारीके माध्यमसे लेखकने समाजके तथाकथित इज्जतदार मुखौटों

१. **प्रकाशक : प्रभात, प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली ११०००६। पृष्ठ: ४०; क्रा. ८४; मू. २५.०० रु.।**

को बेनकाब तो कियाही है, अपेक्षाकृत छोटे कैनवसपर जीवनकी गहन अनुभूतियोंको चित्रित करके समसामयिक जीवनकी विसंगतियों, विकृतियों एवं आर्थिक विषमताओं को भी बखूबी उभाराहै।

जिस नारीको केन्द्रमें रखकर उपन्यास बुना गयाहै वह 'अपने गाँवमें' सारी चिन्ताओंसे उन्मुक्त 'हसती-खिल-खिलाती दौड़ती-उड़ती जिन्दगीकी डगर' पर विचरण करनेवाली अल्हड़ दीपा है, जो स्कूलसे लौटते वक्त गांव के धनी-मानी ठाकुर वंशीलालके लोफर बेटे रूपनसिंहकी हवससे बहादुर द्वारा बचायी जातीहै। संयोग यह, कि इसी बहादुरसे उसका विवाह हो जाताहै। ससुरालमें सास और ननद उसका जीना दूभर कर देतीहैं और एक दिन ऐसा आताहै जब बहादुर रोज-रोजकी झिकझिक तथा घर के नारकीय जीवनसे छुटकारा पानेके लिए अपनी प्यारी पत्नी दीपाको साथ लेकर दिल्ली आजाताहै। रिक्शा चला कर चार-पांच सौ रुपये बटोर लेताहै। अब उनकी एक प्यारी-प्यारी दुनियां बन गयीहै। जहाँ दीपा है, बहादुर है और हैं उनकी प्रेमसे भरी रातें और दिन। लेकिन एक दिन कारकी दुर्घटनामें बहादुर अपंग होजाताहै और यहां से शुरू होताहै—अपनी अस्तित्व-रक्षाके लिए दीपाका जीवन-संघर्ष।

दीपा गुमटियोंमें रहकर बर्तन मांजनेका काम करने लगतीहै। लेकिन छोटी-छोटी बातोंपर गुमटियोंसे बार-बार तथा वक्त-बेवक्त निकाली जानेपर अपनी पहलेसे खरीदी जमीनपर मकान बनानेकी ठान लेतीहै। पैसे नहीं हैं, कर्ज मांगतीहै। काममें से काटनेका आश्वासन देनेपर भी लोग उधार देनेको तैयार नहीं होते। कुछ लोग देते हैं, जो नहीं देते उनका काम छोड़ देतीहै। कुछ बड़े लोग पैसे देनेमें नानुकुर करतेहैं किन्तु जब उनकी इज्जत-आबरू खतरेमें पड़तीहै तथा यह आभास होताहै कि दीपा उनकी बरबादीका कारण होसकतीहै तो ये लोग उसकी गरीबीका नाजायज फायदा उठाकर गुप्त रहस्योंको छिपाने के लिए उसे पैसे दे देतेहैं जिससे इन लोगोंकी पैसेसे मुंह बन्द करनेकी मानसिकता तथा स्वार्थी मनोवृत्तिका पता चलताहै। और दीपाहै कि सब कुछ जानते हुएभी अपनी अन्तरात्माकी आवाज अनसुनीकर पैसोंकी आवश्य-कताके कारण बढ़े हुए हाथको खींच नहीं पाती, तथा सम्पन्न वर्गके शोषणसे अपनी तुलनाकर पैसोंके लेनेको न्यायसंगत ठहरातीहै, और यहींसे शुरू होतीहै, उसकी कर्जदारीकी भूमिका—जिसके दबावोंने उसे संघर्षशील तथा जुझारू बनायाहै।

दीपा इन्सान है और इन्सानकी तरह जीना चाहतीहै। वह मेहनत करके अपनी जीविका चला रहीहै। उसने जिंदगीको बहुत नजदीकसे देखाहै, उसको जियाहै, और उससे बहुत कुछ हासिलभी कियाहै। वह जानतीहै कि ईमानदारीसे कर्ज पाटा नहीं जासकता।' अतः यदि वह दूसरोंका काम छोड़तीहै, कर्ज पट जानेका झूठ बोलतीहै और बहाने बनाकर शादी-ब्याहोंमें काम करतीहै तो यह उसकी विवशता है, मजबूरी है। उसे लगने लगाहै कि 'झूठ बोले बिना जिंदगी नहीं चल सकती।' और फिर 'वह किसीकी चोरी तो नहीं करती, अपनी इज्जत तो नहीं बेचती। दो आदमियोंका पेट भरनेके लिए हाड़ हाड़ तोड़तीहै।' और जब इस स्थितिमें उसके चरित्रपर उंगली उठायी जातीहै, उसकी अस्मतपर कीचड़ उछाला जाताहै, उसे बेइज्जत किया जाताहै अथवा उसकी कोखपर चोट कीजातीहै, उसके मरदको बुरा-भला कहा जाताहै, तो वह फनफना उठतीहै, और साफ-पाक दिखायी देने वाले मुखौटोंका कच्चा-चिट्ठा उसकी स्मृतिमें कौंध जाताहै, जिससे उसे अपने कर्त्तव्यके प्रति आश्वस्ति तो मिलतीही है एक नयी ऊष्मा और शक्ति प्राप्त होतीहै। वस्तुतः उसका पेशाही ऐसा है जिससे इन इज्जतका पर्दा टांगे लोगोंका कुछ छिपा नहीं है। वह कहतीहै "हम गरीब हैं तो दुनियांभरकी तोहमत हमारे ऊपर लगा दी जातीहै और आप लोग कितना कुछ कर-धरके भी साफ पाक बने रहते हैं। बड़े-बड़े लोगोंका हाथी निगलना कोई नहीं देखता, गरीब लोगोंके पांव तले चींटीभी मर जातीहै तो लोग उन्हें हत्यारा कहतेहैं। बीबीजी, हम अगर झूठभी बोलतेहैं तो अपने पेटके लिए बड़े लोग झूठ बोलतेहैं दूसरोंकी बरबादीके लिए।" यह समस्याका मानवीय पहलू है, लेखकने दो जीवन-स्तरोंको आमने-सामने तानकर शोषणके खिलाफ आवाज बुलन्द कीहै तथा शहरी जीवनकी मानसिकता एवं निम्नवर्गकी विव-शताका बड़ाही मार्मिक एवं यथार्थवादी चित्रण कियाहै।

उपन्यासका ताना-बाना इस प्रकार बुना गयाहै कि दीपाका आंतरिक संवेदनशील जगत् एवं समकालीन जीवनकी यथार्थ-स्थितियां पर्त-दर-पर्त स्वयमेव उघड़ती जातीहैं। ताड़काकी चाचीकी पारिवारिक तस्वीर खींचकर मिश्रजीने अत्याचार और उत्पीड़नके कारण नित्य प्रति जलनेवाली हजारों बहुओंकी वस्तुस्थितिपर प्रकाश

डालाहै। मजेदार बात यह है कि जिस सास-ननदकी यातनाओंकी शिकार वह स्वयं है उसी तरहकी शिकार जोगिन्दरकी बहू होतीहै जो अन्तत: जलनेको विवश कर दी जातीहै। इसीप्रकार पानवाली सेठानीकी आचार-संहिता तथा चौधरी-साहबके चरित्रका उद्घाटन करके आजकी विकृत सेक्स-संस्कृतिका पर्दाफाश किया गयाहै। पैसेको चरम ध्येय माननेवाली जिन्दगी कितनी एकांगी एवं खोखली है यह इंस्पेक्टरकी पारिवारिक स्थितिके द्वारा अच्छी तरहसे समझा जासकताहै, जहाँ सबकी जिन्दगी एक दूसरेसे कटी हुईहै। पैसे कमानेकी मशीन बना इंस्पेक्टर पूर्णत: उपेक्षित, सारे सम्बन्धोंसे कटा हुआ तथा अकेलेपनका शिकार है जैसे वह मात्र पैसे कमानेके लिएही बनाहो। बेटा अलग धमकी देताहै। पत्नी लोगोंको प्रेमपाशमें फाँसनेमें व्यस्त है तथा बेटी अपनी वासनाकी पूर्तिके लिए माँके प्रेमियोंकी ओर उन्मुख होकर घरसे भाग निकलनेकी फिराकमें है। लेखकने इन सम्बन्धोंके द्वारा महानगरमें रहनेवाले एक खास वर्गकी तस्वीर पेश कीहै। पुजारिनके माध्यमसे मिश्रजीने समाजके पथ-प्रदर्शकोंकी खबर लीहै। उनके बच्चोंकी जीवन-चर्याके द्वारा सभ्य और शिष्ट कहे जानेवाले परिवारोंके बच्चोंकी मन:स्थितिपर प्रकाश डालाहै। ये बच्चे 'मां-बापके सामने कुछ और होतेहैं और बाहर कुछ और।" उपन्यासकारने ऐसे परिवारोंके बिगड़ते बच्चोंके उन कारणोंकी गहराईसे पहचान कीहै जो उन्हें गलत दिशामें ले जातेहैं।

इसके अतिरिक्तभी ऐसी अनेक स्थितियोंको उभारा गयाहै जो हमारे आसपास बिखरी हुईहैं तथा आम नागरिककी जिन्दगीका अनिवार्य हिस्सा बन चुकीहैं। डी. टी. सी. के क्रिया-कलापोंपर कीगयी टिप्पणी पाठकोंको नित्य-प्रतिकी बस यात्राओंकी याद दिलातीहै। हालांकि यह प्रसंग पर्याप्त लम्बा होगयाहै लेकिन अपनी यथार्थ-दृष्टिके कारण लाजबाब है। परिवहन-सेवापर उभरता निष्क्रिय आक्रोश, अस्पतालका दमघोंटू वातावरण, पुलिसका पैसेके सामने कर्त्तव्य-विमुख होना, हर बातपर सुई भोंकनेवाले डॉक्टर तथा नयी बननेवाली कालोनियोंमें दलालोंकी भूमिका—ये कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिनसे आम आदमी तिलमिलाता तो है, लेकिन करता कुछ नहीं। ऐसी स्थितिमें लेखकका मंतव्य है कि जबतक व्यवस्थाको एक बड़े समूहसे टकरानेका भय नहीं होता, वह कुछ नहीं करती।

मिश्रजीने इसमें कुछ स्थितियोंका बड़ा सार्थक उपयोग कियाहै। देवी जागरण एवं टॉनिक विक्रयको जहाँ एक ओर सामाजिक दृष्टिसे दु:खीजनकी कमजोरीका फायदा उठानेवाला कृत्य घोषित किया गयाहै वहीं दूसरी ओर दीपाके संदर्भमें उसके सुषुप्त मातृ-भावको जगानेमें इसका सर्जनात्मक उपयोग हुआहै। जोगिन्दरके बच्चेको गोदमें लेतेही दीपाके स्तनोंमें दूध उतर आताहै। बिल्लीके बच्चोंको देखते समय 'मां' का प्यार उमड़ पड़ताहै, और जैसेही देवी जागरणके तम्बूसे 'मैया मैंनू लाल बख्श दे' का रिकार्ड बजताहै तथा 'टॉनिक'के फायदोंवाली आवाज माइकपर गूंजतीहै, दीपाको लगताहै जैसे उसकी कोखमें किसीने कोंच दियाहै। उसके भीतर बैठी 'माँ' एकदम तड़प उठतीहै। और तब इस सारे बाह्य-संघर्षके बावजूद उसकी यह आंतरिक पीड़ा अत्यधिक मार्मिक तथा हृदयवेधी लगने लगतीहै, जो इसकी संवेदनाको अधिक जटिल और संश्लिष्ट बना देतीहै।

उपन्यासमें 'बिना दरवाजेका मकान' शीर्षकका प्रतीकात्मक उपयोग किया गयाहै। मकान तो है लेकिन बिना दरवाजेका? इतने पैसे नहीं कि वह दरवाजा लगवा सके। काम चलानेके लिए टाटका दरवाजा है लेकिन उस टाटके दरवाजेकी क्या बिसात! उससे होकर कोईभी अन्दर घुस सकताहै '...कुत्ते, सूअर, बिल्ले और न जाने कौन-कौन...।" लेखकके अनुसार "दीपाकी जिन्दगीभी तो बिना दरवाजेका मकान बन गयीहै" क्योंकि उसकी अपनी जिन्दगीमें दरवाजेकी हैसियत रखनेवाला बहादुर दुर्घटनाग्रस्त होनेके कारण बिना दरवाजे अथवा टाटके दरवाजेकी भूमिका निभा रहाहै। परिणामत: उसमें न जाने कितने मनोभाव, विचार, स्वप्निल कल्पनाएं अनायासही घरकर जातीहैं। तथ्य यह है कि यदि उसकी जिन्दगीमें बहादुरकी दरवाजेके रूपमें अहमियत होती तो लोगोंके इच्छानुसार झांकने, बलदेव द्वारा जबर्दस्ती घुसनेकी कोशिश एवं बसंतकी मानसिक उपस्थितिका सवालही पैदा नहीं होता।

'बिना दरवाजेका मकान' प्रत्यक्षत: दो दिनके क्रिया-कलापोंपर आधारित है। इन दो दिनोंमें पहले दिन लेखकने डी. टी. सी. की कारगुजारियोंके संदर्भमें दीपाकी दैनिक-चर्याका खाका खींचाहै। दूसरे दिन काफी थकी होनेके कारण वह बहुत दिनों बाद घरपर आराम कर रहीहै। लेकिन उस आरामका सुख उसके मालिकोंने

नहीं लेने दिया। बीच-बीचमें कुछ ऐसा घटित होजाताहै जिससे वह स्मृतियोंमें जीने लगतीहै। वस्तुत: दूसरा दिन स्मृतियोंको समर्पित है। उपन्यासकी एक बहुत बड़ी शक्ति इसकी भाषा है—जो काव्यात्मकता और प्रवाह-मयता लिये हुएहै। लेखकके अनुसार "जहां कथा दीपाकी स्मृतियोंसे होकर गुजरीहै वहां अनेक पात्रोंके संवादोंकी भाषा-शैली दीपाकी अपनी भाषागत क्षमताके अनुरूप होगयीहै।" □

सचिवालय[1]

उपन्यासकार : राजकृष्ण मिश्र
समीक्षक : त्रिभुवन नाथ.

'दारुलशफा' के पश्चात् राजकृष्ण मिश्रका सद्य: प्रकाशित उपन्यास 'सचिवालय' है जिसमें आजकी सत्ता की लोलुपता और उसके अवमूल्यनका कच्चा चिट्ठा है। इसकी कथा कुछ घंटोंकी है जिसका केन्द्र-बिन्दु सचिवालय है। सचिवालयही इसके मुख्य पात्रकी भूमिका अदा करताहै। यह सचिवालय एक स्थान विशेष न होकर एक विशेष प्रकारकी भोगवादी संस्कृति का जीवन्त प्रतीक बनकर इस यथार्थवादी उपन्यासमें प्रस्तुत है।

आजकी परिस्थितिमें ईमानदारी सच्चाई, देशभक्ति जैसे मूल्योंका जहां व्यापक स्खलन है वहीं नेतागिरी, चमचागीरी, भ्रष्टाचार, लूटपाट, गुंडागर्दी, नंगई जैसे मूल्य तेजीसे पनप रहाहै। समकालीन समाजमें किस प्रकार विचार और आदर्श अपदस्थ होगये और बच गयी सत्ता-प्राप्तिके लिए जोड़-तोड़, यही 'सचिवा-लय' जैसे उपन्यासकी सार्थकता है। नौकरशाही और असामाजिक तत्त्वोंसे गठजोड़के परिणामस्वरुप सरकारी पैसोंकी लूट-खसोट मची हुईहै। लेखकने प्रस्तुत कथामें जीवनके हर क्षेत्रमें व्याप्त भ्रष्टाचार, अय्याशीसे उत्पन्न इस भोगवादी संस्कृतिकी पड़ताल कीहै। आई. सी. एस. की नौकरीसे रिटायर संकटाप्रसादका चित्र कथाकार सशक्त ढंगसे उभाड़ताहै। संकटाप्रसादके बाप कभी तहसीलदार रहेहैं जो बहुतही रसिया और अय्याश थे। लेखकने बापकी अय्याशीका एक चित्र प्रस्तुत कियाहै: "असलमें घरके कारिन्देकी एक लड़की थी जो अकसर उनके तहसीलदार बापके पैर वगैरह दबाया करती। संकटाप्रसादके बाप थे तो बड़े जालिम, लेकिन मनके रसिया थे। उन्होंने अपने जवानीके दिनोंमें कुटुम्बके कुटुम्ब साफ कियेथे। लेकिन बुढ़ौती तक आते-आते बस कुछ एक कोठेवालियाँ और यही कुछ नौकर-चाकरोंकी बेटियाँही बचीथीं।' (पृ. ८)

इस औपन्यासिक कृतिमें पग-पगपर होनेवाले भ्रष्टाचारका आकलन किया गयाहै। कथा तो कुछ नहीं है। कथाके नामपर कुछ छोटी-मोटी घटनाएँही इस रूपमें नियोजित हैं कि उसकी प्रवाहमयता कहींसे भी खंडित नहीं होतीहै। पात्रोंकी ज्यादा भरमारभी नहीं है। सभी पात्रोंकी मन:स्थितिका जिस रूपमें रेखांकन होताहै उसमें अय्याशीका पुट झलकताहै। मुख्य सचिव बननेके पश्चात् डी. के. गोस्वामीका चित्र: "मुख्य सचिव बननेके बाद डी. के. गोस्वामीने डॉक्टरसे हारमोनके इंजेक्शन लगवाना शुरू कर दिया था।" (पृ.३५)। ऐसा नहीं है कि इस भ्रष्टाचारकी काली क्रूर छायासे कोई बचाहो वरन् इस बहते दरियामें हाथ धोनेमें सभी निपुण हैं। राजनेता, अधि-कारी, पुलिस सभी इसमें माहिर हैं। पाठक इस घटना को देखताहै तो उसकी उत्सुकतामें बराबर अभिवृद्धि होती रहतीहै। मिश्रजीका कथाकार इस भ्रष्टाचार और अय्याशीमें लिप्त बड़े घरानोंकी कलई खोलकर रख देताहै। इसी बीच अभयंकर और मोहिन्दरसिंहके द्वारा लाल सेनाका गठन होताहै। परन्तु यहां तो एकसे एक भ्रष्टाचारी मगर हैं जिनमें वरुण हल्दार जो गल्लेकी दलालीके बाद अब कम्पनीकी एजेन्सी लेलेताहै। उप-न्यासमें नारी पात्रोंमें माधुरी साहा भी कुछ कम नहीं है और आई. ए. एस. में आनेके बाद उनमें व्यापक परि-वर्तन आया दृष्टिगोचर होताहै। इसी बीच कथाकार डॉ. मांगलिकसे पाठकोंका परिचय करवाताहै जिनपर भ्रष्टाचारके दोषी पाये जानेके पश्चात् मुकदमा चलाया जानाथा। वरुण हल्दार जिससे किशनलालका सौदा है। सारे पात्रोंको एकदम नंगा किया गयाहै। ख्यालीराम यदि बनारसी ठग है तो फुक्कन खान अपने समयके शातिर बदमाश। वास्तवमें इन्हीं लोगोंपर यह सचिवालय टिकाहै जो उसे भीतरसे घुनकी तरह खा रहेहैं।

पैसे और सत्ताके लोभमें सदाशिव नारायण बरुआ

---

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ३५०; क्रा. ८४; मूल्य ३५.० रु.।

मुख्यमंत्रीके खिलाफ षड्यंत्र कर रहेहैं। इसी षड्यंत्रके फलस्वरूप वे राज्यपाल बने। उनकी तूती बोलतीथी। सचिवालयमें सचिव, आयुक्त, विशेष सचिव, उपसचिव, संयुक्त सचिवसे लेकर अनुभागके बाबू, चपरासी, पी. ए. पी. एस. फराश और सचिवालयके गारदके सिपाही सभी एकही सिक्केके पहलू हैं। राजनीतिक उखाड़-पछाड़में व्याप्त सारी कारगुजारियों और घटनाओंके साथही वर्तमान जीवनमें व्याप्त चारित्रिक नैतिक विकृतियोंको भी राजकृष्ण मिश्रने उद्घाटित कियाहै। अनेकानेक घटनाएं कथाको एक नवीन आयाम देतीहैं। आजकी स्थितिमें राजनीतिक स्तरपर ही नहीं, चारों ओर हमारा घोर पतन होरहाहै। इस स्थितिके लिए समग्र समाजही जिम्मेदार है अथवा कोई एक व्यक्ति! जो हो, आजादीकी प्राप्तिके पश्चात् हमने सोच लियाहै कि सभी क्षेत्रोंमें कुछभी करनेकी छूट मिल गयीहै। स्वार्थपरताने मनुष्यको मनुष्य नहीं रहने दियाहै। हम बिकते जा रहेहैं और पैसेके लोभने तथा सत्ता-प्राप्तिकी भयंकर होड़में बेहोश होकर हम जीने लगेहैं। कथाकारने इस स्थितिमें उत्पन्न समाजकी विकलताको अंकित कियाहै: "बिका हुआ आदमी और भूखा कुत्ता किसीका नहीं होता।' (पृ. ३२६)। मुनीश, कमलकांत, भीखू और बंसलमें समूचे जीवनका चित्र उरेहा गयाहै और सचिवालयमें होनेवाले दिनोंदिन भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारियोंकी कलई खुल गयीहै। सर्वत्र विशाल अनैतिकताका साम्राज्य है। इसमें कहीं किसीके सच्चे, ईमानदार देशभक्त श्रद्धालु, भक्त बननेकी सुआशा नहीं रह गयीहै। लगताहै कथाकार इन स्थितियोंका स्वयं भोक्ता बनकर प्रस्तुत हुआहै। बकौल इसमें पात्रोंकी विश्वसनीयता नि:संदिग्ध है।

इसी अनैतिकतामें बाछिल मामा जैसे जीवन्त पात्रकी कथा एक कोणसे उठायी गयीहै। अत्यन्त भावुकता और जिन्दादिलीके अनुपम उदाहरण बाछिल मामा जैसे लोग समाजमें नगण्य हैं। यहां तो विमल अहूजा जैसे लोगही जीतेहैं और सर्वत्र सुरक्षित हैं। इस उपन्यासमें कुछ पात्र बेकारमें लाकर इसे लम्बा खींच देतेहैं। वास्तविकता यह है कि जिस समाजमें राष्ट्रके कर्णधारही भ्रष्ट हों, क्या आश्चर्य कि समूची व्यवस्थाही टूट रहीहो। और यही सच्चाई है जो इस उपन्यासको राजनीतिक रंग न देकर उसे समकालीन समाजका उपन्यास बना देतीहै। व्यापक और गम्भीर अनुभवसे अनुप्राणित इस उपन्याससे पाठकोंका व्यापक सन्तोषलाभ होगा। इसमें दो राय नहीं कि प्रस्तुत उपन्यासमें सच्चाईका गहरा बोध जुड़ाहै तो वह बहुत गहरी संवेदनासे भी संपृक्त है।

कुल मिलाकर उपन्यासकारकी बृहद् रूप और बृहत्तर समाजमें जुड़कर जो प्रस्तुति हुईहै उसमें सर्जनात्मक क्षमता और चित्रणीय जीवन खंडोंका अंतरंग परिचय सुस्पष्ट है। भाषा, शैली-शिल्पमें उपन्यास विशिष्ट है परन्तु इसकी कलात्मक उपलब्धिकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण न होते हुएभी पाठकोंको बहुत अधिक निराशा नहीं प्रदान करताहै। कुल मिलाकर राजकृष्ण मिश्रकी प्रस्तुत कृतिमें समकालीन समाजकी विसंगतियाँ स्पष्ट मुखरित होजातीहैं। □

बहते फूल नदीके[1]

लेखक: हृदय नारायण
समीक्षक: रमेश दवे.

कथामें मनुष्यको मनुष्यकी तरह रखकर मानवतावादके विकासका मार्ग प्रेमचंदने चुनाथा। प्रेमचंद भलेही तत्कालीन समाजवादी विचारधाराके प्रवाहमें आगयेहों मगर उन्होंने अपनी कथासे जो चरित्र रचेथे उनकी भारतीयतापर शक नहीं किया जासकता और न ही यह कहा जासकताहै कि इस किस्मकी भारतीयता रचकर प्रेमचंद किसी आदर्श राष्ट्रीयताकी मांग पूरी कर रहेथे। वे मनुष्यको कथामें लाकर उसके अहसास, उसके संवेदन, उसके संवेग, उसके तमाम संघर्ष और संत्रास व्यापक करना चाहतेथे क्योंकि इस व्यापकताका मतलब था वह भारतीय समाज जो इन सबके बीच जीकर भी अपनी मनुष्यताका कोई-न-कोई उदाहरण किसी-न-किसी रूपमें पेशकर रहाथा।

प्रेमचंदके बाद कथा-लेखन और उपन्यास रचनाका सलाब-सा आगया। कथा लिखनेमें कई शैलीगत प्रयोगों के आधीन कहानी व उपन्यास विधाको हर तरहसे आजमाया। प्रेमचंदसे आगे चले जाने या पीछे रह जानेके कई घोषणापत्र जारी हुए। इस सबके बीचसे जहां जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, अमृतलाल नागर, इलाचंद्र

---

१. प्रकाशक: किताब महल, १५, थार्न हिल रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ: १५६; डिमा. ८३; मूल्य: २०.०० रु.।

जोशी, भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा आदि जैसे कद्दावर कथाकारभी आये तो दोयम और तीसरे दरजेके साहित्यने भी कसर नहीं छोड़ी। 'बहते फूल नदीके' इस उपन्यासके पहले कुछ पन्ने पढ़तेही लगताहै कि हम किसी रोमांसकी कोमल दुनियांमें प्रवेशकर रहेहैं और रोमांसमें कथाका सबसे बड़ा रूपान्तरण उत्तम पुरुषमें होजाताहै और इसलिए कथा एक जीवनी या आत्मकथा शैलीमें इस अपनत्वके साथ घटित होतीहै मानो कथाकार या कथाका पात्र अपनीही कहानी एक घटना बनाकर पेशकर रहाहो।

'बहते फूल नदीके' जीवनको एक प्रतीककी तरह एक प्रकारकी छायावादीय रोमांसिकताके साथ देखताहै और इसलिए उपन्यासकारका यह जीवन या मनुष्यका अपना इस जगतमें होना उस फूलकी मानिंद लगताहै जो नदीके प्रवाहमें कभी स्रोतके बीच तो कभी किनारोंको छूता दिखायी देताहै। लेखकने स्वयं इस उपन्यासको अतीतकी स्मृतियोंकी सजावट मानाहै। अगर इस उपन्यासके प्रारंभ में लिखे शब्दोंके आधारपर इसे देखा जाये तो लगेगा कि यह उपन्यास मात्र प्रेम और करुणाका एक कोमल सम्मिश्रण है और प्रेमकी स्मृतियोंके पृष्ठ जब खुलतेहैं तो ऐसा लगताहै कि लेखकका अपना चरित्र, अपना अनुभव अपनी संवेदना सफा-दर-सफा उद्घाटित होरहेहैं। कहानी कुछ हदतक फिल्मी किस्मका रोमांसभी बुनतीहै जिसमें एक ओर स्मृतियोंके अहसासकी चारपायीसे चिपकी कामिनी है। अपने पतिकी दहशतसे सहमी वह एक ऐसी नारी है जिसे खुदकी वितृष्णा, खुदकी मनुष्यता और खुदकी पीड़ाका क्षयरोग लग गया और जिसमें एक और नारी अपने दायित्वकी भावात्मक संवेदनासे बंधकर अर्चनाके जीवनके लिए अपना जीवन निसार रहीहै। कामिनी और शकुन्तला दोनोंका अपने-अपने किस्मका मातृत्व उभारनेमें दो मनोवैज्ञानिक संवेगोंका अच्छा उपयोग किया गयाहै। शकुन्तलाका मातृत्व दायित्व व कर्तव्यका मातृत्व है जबकि कामिनीका मातृत्व करूणा और कोमलताका मातृत्व है। अमृतराय और कामिनीकी स्मृतियोंमें गुंथा हुआ उपन्यास नवलस्वरूप, बालकृष्ण, चिमनलाल जैसे अन्य सहचरित्र भी खड़े करताहै लेकिन ये चरित्र अधिक प्रभावित इसलिए नहीं कर पाते कि न तो इनसे कथानक को कोई विशेष सहायता मिलतीहै और न ये किसी विशेष मानवीय गुणकी रचनाकी मांग पूरी करतेहैं। गीत और मीनू इनमें से गीत एक प्रकारकी समरसता तो रचतीहै मगर वहभी अपना पूरा चरित्र उभार नहीं पाती। अमृतराय दो जिंदगियोंके बीच स्मृतियोंके उतार-चढ़ावमें जी रहाहै। उसके पास अतीत है जिसे वह भूल नहीं सकता और वर्तमान है जिसे वह नकार नहीं सकता। अगर लेखक हृदयनारायण इसे स्मृति-चित्रकी तरह रचना चाहतेथे तो अच्छा होता कि इसमें पात्रोंकी सहनायक, सहनायिका व खलनायक वाली एक फिल्मी भीड़ न रचकर एक इतिवृत्त रचते। मीनूकी हत्यामें खुदका फंसना और बालकृष्ण और चिमनलालका बच निकलना व्यवस्था के छद्मपर आक्रमण तो करताहै मगर यह आक्रमण महज रोमांसकी परिणति बनकर अधिक मुखर और प्रखर नहीं होसकाहै।

उपन्यास एक अच्छी प्रेमकथाके रूपमें अधिक प्रभावशाली कथा कहला सकताथा। इसमें कविताई भावुकता और फिल्मी फारमूला डालकर कथाके अन्दर जिस प्रेम और विरहकी कोमल गाथाको उकेरनेकी संभावना थी वह संभावना अपने-आप शाब्दिक रोमांसमें डायल्यूट होगयी है। लेखक इसे शैलीके रूपमें एक उत्तम पुरुषका आत्मकथ्यही बनाकर पेश करता तो उपन्यास बांधनेमें सफल होजाता लेकिन उपन्याससे उसका कहानी तत्त्व एकदम उस वक्त जाकर कमजोर पड़ जाताहै जहां एक पूरे चरित्र की सामान्यतापर व्यक्तिका वैशिष्ट्य हावी होजाताहै। फिरभी इस उपन्यासको बोझिल या नीरस इसलिए नहीं कहा जासकता कि उसमें प्रेम व करुणा, कर्तव्य और त्यागके उन मानवीय संवेदनोंको रचा गयाहै जिनसे मनुष्यके संवेदनोंकी दुनियां रची जातीहै। इतनी बात जरूर है कि उपन्यासमें कथाका चरित्र-पक्ष उसकी काव्यात्मक संरचना पक्षके सामने कमजोर हुआहै। □

सेठ बांकेमल[१]

लेखक : अमृतलाल नागर
समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त.

नागरजीका कथा साहित्य किस्सागोईपर आधारित हैं। एक दिलचस्प किस्सागोके रूपमें नागरजी विख्यात है। प्रस्तुत कृति इसी किस्सागोईका एक नमूना है जिसमें

---

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ११६; क्रा. ८३ [पुनःप्रकाशित]; मूल्य १५.०० रु.।

लच्छेदार बातें, धाराप्रवाह प्रवचन, बातोंकी लड़ीपर लड़ी ऐसी निकलतीहै कि पाठकसे पुस्तक छूटती नहीं। भलेही वह इसकी प्रामाणिकताके प्रति आश्वस्त न हों या उसे यह सब कुछ लफ्फाजी लगे। लेकिन किस्सा कहनेकी जो कला लेखकने इसमें दिखायीहै, वह पाठक को बांधे रखतीहै।

सेठ बाँकेमलने अपने तथा अपने मित्र चौबेजीके कारनामोंका इसमें बखान कियाहै। जुआ खेलने, साधु बनकर ठगने, शेरो ओ' शायरीकी महफिल सजाने, गोटा-सलमा-सितारेका व्यापार करने, गांवकी लड़कीके बिगड़े हुए व्याहको साधने,डॉक्टरोंके नुस्खोंकी करामात बखानने में इनकी किस्सागोईका कमाल देखतेही बनताहै। एक जांबाज, चलते पुर्जे, हाजिर जवाव,तुरंतबुद्धि, यारोंके यार और मददगार व्यक्तिके रूपमें बाँकेमलको प्रस्तुत किया गयाहै, जो महाजनी सभ्यताके अभिशापोंसे अछूता है, व्यापारिक लूटखसोटसे परहेज करताहै। लोकजीवनमें ऐसे चरित्र मिलतेहैं जो अपनी आनबानके कारण जनतासे वाहवाही लूटतेहैं, उनका बाँकपन मनमोह लेताहै।

आगराकी ब्रजबोलीकी छाप लिये हुए खड़ी बोलीमें लिखे गये ये किस्से आगराके जनजीवनकी सहजताको तो भलीप्रकार व्यक्त करतेहैं पूरी प्रामाणिकतासे, लेकिन आंचलिकताका यही रंग बाधक बन गयाहै सम्प्रेषण में। सहजताके लिए आंचलिक शब्दोंका प्रयोग बाधा खड़ी करताहै बाहरके हिन्दी पाठकोंके लिए। खुस्कैट, तरकैट, फौवस जैसे शब्द एक सीमित क्षेत्रमें प्रचलित होनेसे बाहरके लोगोंके लिए अपरिचित हैं। केवल अनुमानही लगाना पड़ताहैं पाठकको। यदि ये अपरिहार्य थे तो इनका अर्थ संकेत करना चाहियेथा जैसे गुलेरीजीने 'उसने कहाथा' में कियाथा। वैसे तो अच्छा यही होता कि ऐसे सीमित शब्दोंके पर्यायवाची रूपोंका प्रयोग होता जो अधिक बोधगम्य होते।

ये किस्से केवल दिलचस्प है; सामान्य पाठकके लिए, जो समय काटनेके लिएही पढ़ते हैं। जो जीवनकी कशमकशको झेलनेके लिए कुछ गहरी और कामकी चीज चाहतेहैं, उन्हें यह पुस्तक निराशही करेगी। वैसे पुस्तकें प्रायः समय काटनेके ही लिएही पढ़ी जातीहैं।□

असीमकी सीमा[1]

लेखक : अम्बिकाप्रसाद दिव्य
समीक्षक : सूर्यप्रकाश गोस्वामी.

वयोवृद्ध साहित्यकार श्री अम्बिकाप्रसाद दिव्यका नवीनतम उपन्यास 'असीमकी सीमा' पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक सफल उपन्यास है। इस उपन्यासके धीरोदात्त नायक भगवान बाहुबली हैं जिनकी सत्रह मीटर ऊँची विशाल प्रतिमा कर्नाटक प्रदेशमें श्रमणगोलबेलके चन्द्रगिरि पर्वतपर अवस्थित है। दिव्यजीकी वरद लेखनी ने साहित्यकी सभी विधाओंमें बहुमूल्य सामग्रीके द्वारा माँ भारतीको भावनाका भोग अर्पित कियाहै, किन्तु इधर कतिपय वर्षोंसे उपन्यास क्षेत्रमें उन्हें विशेष यश मिला है। दिव्यजीने निमियां, मनोवेदना जैसे सामाजिक उपन्यासोंकी रचनाकर प्रेमचंदकी परम्पराको आगे बढ़ाया है एवं खजुराहोकी अतिरूपा, जयदुर्गका रंगमहल, पीताद्रिकी राजकुमारी, कालाभौंरा, सतीका पत्थर, आदि उनके सफल ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इसप्रकार वृन्दावनलाल वर्माकी स्मृतिको सहजही जगा देतेहैं। गुरूदत्तने आर्यसमाजकी विचारधारापर अनेक उपन्यास लिखेहैं। उसी परम्परामें दिव्यजीका 'असीमकी सीमा' आदर्शवादी उपन्यास है जिसमें श्रमण विचारधाराको आधार बनाकर उपन्यासकी रचना कीगयीहै। कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित 'खजुराहोकी अतिरूपा' उपन्यासमें वाममार्ग की रहस्यमयी साधनाओंकी बानगी प्रस्तुतकर दिव्यजी आचार्य चतुरसेन शास्त्रीकी परम्परासे सहजही जुड़ गयेथे। निस्संदेह उपन्यासके क्षेत्रमें बहुरंगी आयाम प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकारोंमें दिव्यजीका स्थान अप्रतिम है। दिव्यजी जीवनके छिहत्तर वसन्त देख चुकेहैं और वृद्धावस्थामें साहित्य प्रणयनका असीम उत्साह तरुणोंके लिए भी स्पर्धाका विषय है। दिव्यजीकी बहुरंगी चेतनाके स्तरोंमें चिन्तनका गंभीर आन्दोलन छिड़ा हुआहै और उनकी आध्यात्मिक जिज्ञासाने इस उपन्यासके माध्यमसे उनके मानसको 'स्यादवाद एवं अनेकान्त' की श्रमण विचारधारापर केन्द्रित कर दियाहै। उनका यही चिन्तन प्रस्तुत उपन्यासमें रूपायित हुआहै।

'असीमकी सीमा' बाहुबलीके अपरिग्रही जीवनकी

१. प्रकाशक : साहित्य सदन, अजयगढ़ (पन्ना) म. प्र.। पृष्ठ : १६०; डिमा. ८४; मूल्य : ३०.०० रु.।

प्रेरणास्पद अमर गाथा है जो धरतीके वसन्तमें सुरभित एवं अनन्तके संगीतमें मुखरित है। भगवान बाहुबलीने भौतिकवादको तिलांजलि देकर कठोर तपश्चर्या द्वारा अध्यात्मकी उच्चतम उपलब्धियोंको अर्जित किया और द्वादश स्थानीय सिद्ध एवं अर्हन्तके रूपमें जैन धर्ममें पूज्य स्थानको प्राप्त किया। भौतिकवादके इस युगमें जब पूंजीवाद, शोषण, परिग्रहका बोलबाला है, अपरिग्रह और आध्यात्मिक मूल्योंकी स्मृति दिलानेवाला यह उपन्यास कितना महत्त्वपूर्ण है इसे सहजही आंका जासकताहै। दार्शनिक सिद्धान्तपर आधारित होते हुएभी उपन्यासमें नीरसता आकाश कुसुमके समान है, प्रत्युत दिव्यजीकी कल्पनाकी गंगोत्रीमें कहीं उद्दाम वेग है तो कहीं संगमकी गंभीरता। कहीं भाव और भाषामें शास्त्रकी विचारात्मक प्रौढ़ता है तो कहीं काव्यात्मक प्रवाह एवं प्रभाव। पाठककी जिज्ञासा विराम लेना तो जानतीही नहीं और 'आगे क्या होगा' का कौतूहल अन्ततक बना रहताहै। शब्दोंके कुशल शिल्पीके रूपमें दिव्यजीने अपने हृदयके रससे इस उपन्यासको सजाया और संवारा है और सफल उपन्यासकारके रूपमें अपना कीर्तिमान स्थापित कियाहै। उपन्यासकी भाषा सुगठित, प्रवाहयुक्त एवं भावोंकी अनुवर्तिनी है। भाव और भाषाका काव्यात्मक प्रवाह मणिकांचन संयोग है। कथोपकथन स्वाभाविक सूक्तियोंके सदृश सर्वत्र बिखरे हुएहैं। उपन्यासके नायक बाहुबलीका उज्जवल चरित्र 'मनोबल' का जीवन्त उदाहरण है, जिसने महान् उत्सर्ग एवं पौरुष द्वारा अर्जित राज्यको त्यागकर पिता ऋषभदेवके आध्यात्मिक राज्यमें प्रवेश किया। माता यशस्वती इस उपन्यासकी सूत्रधारिणी है जो अपने शतपुत्रोंको कठपुतलीकी तरह नचाती हुई पारिवारिक विघटनके बीज बोतीहै, किन्तु बाहुबलीके उदात्त चरित्रने सर्वस्व त्यागके व्रतको ग्रहणकर भरत एवं यशस्वतीकी भ्रांतियोंका निवारणकर दिया, उसके ज्ञान सूर्यके प्रकाशसे हृदयका तिमिर तिरोहित होगया। उपन्यासके सभी पात्रोंके चरित्रका विकास स्वाभाविक रीतिसे हुआहै और ये सभी मानव मनकी विभिन्न प्रवृत्तियोंका प्रतिनिधित्व करतेहैं। निस्संदेह उपन्यास दिव्यजीकी सशक्त रचना है। □

उजली पीली धूप[1]

लेखक : तिलकराज गोस्वामी

समीक्षक : डॉ. मान्धाता राय.

कृतिके बारेमें प्रस्तावनामें कथाकारने लिखाहै "यह समाजके विभिन्न क्षेत्रोंमें पनप रही विसगतियोंके कारणों की खोज करने तथा सामाजिक जीवनमें उनके खिलाफ जागरूकता उत्पन्न करनेमें प्रेरक सिद्ध होगी" तिलकराज गोस्वामीकी यह प्रथम औपन्यासिक कृति है जिसकी लंबी-चौड़ी प्रस्तावनामें कथाकारने पाठकोंकी लगभग सभी अपेक्षाओंकी पूर्तिका आश्वासन कियाहै। जहांतक कृतिके स्वयं बोलनेका प्रश्न है उसमें सिनेमाके विभिन्न शाट्सकी तरह हर परिच्छेदमें घटनाक्रमको बदलनेका प्रयास किया गयाहै जिसके चलते संवेदनाके जिस धरातलपर उतरने का संकल्प लेखकने किया वहाँतक पाठकोंको नहीं पहुंचा पाता।

उपन्यासमें आजकी ज्वलन्त समस्याओं दहेज, बेमेल विवाह, वेश्यावृति, साम्प्रदायिक दंगा और विधवा विवाहको लेखकने तीन पीढ़ीकी कथा एवं तज्जन्य दृष्टिकोणके माध्यमसे प्रस्तुत कियाहै। किन्तु घटनाक्रममें बदलाव इतना तेज हुआहै कि आरम्भके कुछ पत्रोंको पढ़नेके बादका बना तथाकथित प्रगतिशील विचार अगले परिच्छेदमें ध्वस्त होजाताहै। आरंभिक कथाके नायक-नायिका प्रेमनाथ और नसीमबाई उर्फ अलका अगलेही परिच्छेदमें न केवल अवस्थासे बुड्ढे होजातेहैं अपितु विचारसे भी प्रेमनाथको कथाकारने इतना स्वार्थी और ओछा बना दियाहै कि वह नकली होगया है। कहाँ युवावस्थामें रामबहादुर दयारामका वह पुत्र जो अपने खान्दानकी प्रतिष्ठा एवं अतुल सम्पत्तिको ठोकर मारकर एक वेश्यासे विवाहकर समाजका प्रेम एवं आदर्श विवाह का पथ प्रदर्शक बनताहै और कहाँ वही अपनी बेटीको एक धनाढ्यके लड़केसे प्रेम करती देखकर जल-भुन जाताहै और उसके प्रेमतन्त्रको तोड़कर जबरदस्ती उसका विवाह बुड्ढे बांकेलालसे पांच हजार रुपया लेकर करता है।

प्रेमनाथकी इस तथाकथित कमजोरीको आर्थिक

1. प्रकाशक : स्मृति प्रकाशन, १२४, शहरारा बाग, इलाहाबाद। पृष्ठ : १८२; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।

तंगी दिखाकर यथार्थवादी चित्रणका जामा यदि पहनाया जाये तो तीसरी पीढ़ीमें जन्मे व्यापारी पुत्र राकेशकी भावुकताको कहां आश्रय मिलेगा जो अपनी प्रेमसीको एक बुड्ढेके हाथ मात्र पांच हजार रुपयेमें बिकने देताहै और स्वयं उतनी मदद करके प्रेमनाथको संभाल नहीं लेता। आगे चलकर यही बात अलका राकेशसे कहतीहै "हमने तुमपर बहुत जुल्म किया पर क्या करते, तब हमारी अपनी मजबूरियां थी।" राकेश तब और वायवीय होजाताहै जब वह विधवा रजनीके जीवनमें पुनः पहलेकी तरह सक्रियतासे प्रवेश करताहै। उसका प्रेमनाथके परिवारकी आर्थिक मदद करना, रजनीको टी. बी. होने पर उसे आपरेशन करानेके लिए देहरादून लेजाना, पहाड़ पर घुमाना और इस बीच लगभग १० वर्षोंसे इंजीनियर पदपर कार्य करते हुएभी एक मामूली पिद्दी-सी विधवा औरतके पीछे भावुक बनकर अविवाहित रहनेको घामड़ होनेके सिवाय और क्या कहा जाये ? रजनीके विवाहके बादका राकेशका चरित्र आदर्श एवं वायवीय होगयाहै। जिसका विस्तार लेखकने कथाको रूमानी बनाने आदर्शों की स्थापना एवं रोचकता लानेके लिए किया है। रजनीकी तरह उसकी छोटी बहन निशीको भी विवाहके तुरन्त बाद विधवा बनाकर शिक्षिका बनाने,नाट्य संस्थामें काम कराने और फिर सिने तारिकाका फिल्मी दृष्टिकोण वस्तुतः पूरे कथानकको फिल्मी पटकथाका रूप देदेताहै। सिने तारिकाएं विवाहके बाद समाप्त होजातीहै जिसके कारण ढलानपरही विवाह करतीहैं, वहीं निशीका पुनः प्रदीपसे विवाहका निर्णय उसी प्रकारका है जैसा राकेश का रजनीके लिए आजन्म क्वारा रहना। दोनों कथाओं की विश्वसनीयता अपने पीछे प्रश्नचिह्न छोड़ जातीहै।

अपनी उपर्युक्त सीमाके बावजूद समस्याओंके प्रस्तुतीकरणमें यत्र-तत्र थोड़ी देरके लिए संवेदनाका कथाकारने उभाड़ाहै और वे स्थल कुछ देरतक कुरेदतेहैं। प्रेमनाथका अलकासे विवाह चलते मां-बाप द्वारा घरसे निकाले जानेपर फटेहालीका जीवन बिताना किन्तु अलकाको कभी कुछ न कहना, रजनी और निशीका विधवापन,रजनीकी बीमारीका अन्तिम दृश्य। उपन्यासके आरम्भ और अन्तमें पर्वतीय दृश्योंका ललित वर्णन पढ़कर लगताहै लेखक यात्रा वर्णन कर रहाहो। कश्मीर के सेवके बगीचे, श्रीनगरका सौन्दर्य, गुलमर्गकी बर्फ, दार्जिलिंग, काठगोदाम, भुवाली, रानीखेत, नैनीतालके दृश्योंका वर्णन कृतिको आस्वाद्य बनातेहैं। ☐

धूप और कोहरा[1]

लेखक राजीव शर्मा

समीक्षक : डॉ. नारायणस्वरूप शर्मा.

'धूप और कोहरा' प्रेमके त्रिकोणको आधार बनाकर लिखा गया लघु उपन्यास है। इसमें तीन प्रमुख पात्र हैं— विशाल, अंजलि तथा शीतल। कथा सिंहावलोकन शैलीमें कही गयीहै। पहले परिच्छेदमें अंजलि अपनी अभिन्न सखी शीतलके सामनेही अपने पति विशालसे पिक्चर चलनेका आग्रह करतीहै। विशाल सिर-दर्दका बहाना बना देताहै। शीतल तथा अंजलिके जातेही लेखकने विशालके अतीत जीवनका बहीखाता खोल दिया—"जैसे-जैसे वे दोनों उसकी आंखोंसे दूर होतीहैं, उसके मस्तिष्क में अतीतकी सुनहरी यादें कौंधने लगी……।' उपन्यासके वस्तु-संगठनमें फिल्मी कथा-शिल्पका सा रंग मिलताहै; जिसमें कोई गम्भीर जीवन-दर्शन, भाव-बोध या सन्देश उभरकर सामने नहीं आपाता। शायद लेखकका यह विश्वास रहाहो कि उपन्यासपर 'युवा मानसिकता' का 'लेबल' लगा देनेसे सभी असंगत और अनर्गल बातें सह्य होजायेंगी।

'युवा-मानसिकताके इस मार्मिक उपन्यास' के तीनों प्रमुख पात्र मध्यकालीन बोध और संस्कारोंसे ग्रस्त हैं। तीनोंके मनमें प्रेमकी एक आदर्श अवधारणा है, जिसे साकार करनेकी इच्छाको लेकर वे संघर्ष करतेहैं, जीवनके यथार्थसे टकराकर आहत होतेहैं और अकेलेमें बैठकर प्रेमका सपना टूटते देख आठ-आठ आंसू रोतेहैं। उपन्यास का नायक विशाल द्विधा-ग्रस्त मनस्थितिका व्यक्ति है, जो शीतल और अंजलि नामकी दो लड़कियोंमें से जो सहजही उसे अपनानेको तैयार हैं—किसी एकको दृढ़तासे अपना नहीं पाता—'अंजलि और शीतल उस प्रेम-नदीके दो किनारे थे, जिसमें विशाल गोते लगा रहाथा। कभी वक्तके थपेड़े उसे अंजलिकी तरफ लेजातेथे, तो कभी शीतलकी तरफ।' वह प्रेम तो अपने आदर्शोंकी प्रतिमा-शीतलसे करताहै, परन्तु अपनी स्वाभाविक दुर्बलताके कारण अंजलिकी फैशन-परस्ती, तड़क-भड़क तथा भोग-लिप्साका शिकार होजाताहै। वह जैसे एक व्यक्ति नहीं,

---

१. प्रकाशक : हिमाचल पुस्तक भण्डार, जगत निवास, निकट महावीर चौक, गाँधी नगर, दिल्ली-३१। पृष्ठ : १९६; क्रा. ८३; मूल्य : १६.०० रु.।

अपितु परिस्थितियोंके झोंकोंमें झूलता हुआ एक निर्जीव पिण्ड मात्र है। वह अपने खूनसे शीतलको पत्र लिखताहै, सात सालतक पत्रको अलमारीमें बन्द रखताहै, पर उसे देनेका साहस नहीं कर पाता। यदा-कदा कमरा बन्दकर उस पत्रपर सिर रखकर रोताहै, 'पलंगकी चादरको आंसुओंसे धोताहै', फिल्म देखते हुए शीतलके सामनेही अंजलिके द्वारा चुम्बनोंकी बौछारपर चाहते हुएभी आपत्ति नहीं करपाता। उसके इस संवादको सुन लेनेपर तो वह एक बिना रीढ़का व्यक्ति सिद्ध होताहै, जिसके तन और मनपर धूप शीतल के स्थानपर कुहरे— वासनाकी पुतली अंजलि का घटाटोप छाजाताहै।

'धूप और कोहरे' के तीनों प्रमुख पात्र समाजसे कटे हुएहैं। पेटकी भूखसे अधिक उन्हें प्रेमकी भूख सतातीहै, यद्यपि इस प्रेमका सम्बन्ध आत्मासे भी जोड़ा गयाहै। इसी प्रेमके खेलमें पिटे हुए एक खिलाड़ी, पवनकुमार बेगानाको भी लाकर इन पात्रोंके बीच खड़ा कर दिया गयाहै। नायक विशाल इस पात्रके सम्पर्कमें आतेही सस्ती और घटिया शेरो-शायरीके दौरमें भी भागीदार बन जाताहै। अंजलि और विशालकी तुलनामें शीतलका चरित्र कुछ सावधानीसे चित्रित किया गयाहै। उसमें प्रौढ़ता और गम्भीरताके रंग उभरेहैं। शीतलके सात्विक संयत और गम्भीर प्रेमके मौन आह्वानपर अंजलिकी भोग-लिप्साकी विजय होतीहै। शीतलका चरित्र भारतीय नारीके त्याग और तितिक्षामय आदर्शोंसे अन्वित है। जब अंजलिका विशालके प्रति प्रेमाकर्षण शीतलपर प्रकट होजाताहै, तो वह विशालको मनसे चाहते हुएभी कर्तव्य की वेदीपर अपने वैयक्तिक प्रेमका उत्सर्गकर देतीहै।

उपन्यासकी भाषामें अनेक स्थलोंपर पायी जानेवाली मसखरी वृत्ति प्रभावित नहीं कर पाती। कहीं-कहीं घटना-क्रममें जासूसी फिल्मोंका-सा नजाराभी देखनेको मिलताहै। उपन्यासको 'युवा मानसिकता' का न कहकर बचकाना मानसिकताका कहा गया होता, तो लेखक अनेक पैने प्रश्नोंसे सहजही बच जाता। □ □

कहानी संग्रह

पहली बरसी[1]

कहानीकार : यशपाल बैद.
समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर.

किसी किताबको चर्चित होनेके लिए अच्छे लेखककी नहीं अच्छे प्रकाशककी जरूरत होतीहै। फिर यहभी देखा जाताहै कि लेखक किस स्थानपर विराजमान है— पदकी दृष्टिसे और भूगोलकी दृष्टिसे। दोनों ऊंचे हों तो किताबका कागजभी ऊंचा होगा, उसकी सराहनाभी ऊंची होगी। फिर फ्लैपकी टिप्पणी इधर किताबका परिचय नहीं पोस्टर होतीहै। पोस्टर राजनीतिक शब्द है, विज्ञापन व्यावसायिक तो फ्लैपकी टिप्पणी साहित्यक। तीनोंही इधर एकही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। तीनोंही परिचयके नामसे परिचपत होतेहैं।

कहना न होगा कि यशपाल बैदका प्रस्तुत कहानी संग्रह इसलिए चर्चित नहीं होसकेगा कि नालंदा कोई ऊंचा दरियागंजका प्रकाशक नहीं है। इधर 'हजरत लेखक क्या है, हैतो अध्यापक (प्र के झुनझुनायुक्त इसलिए प्राध्यापक कॉलेजका, यूनिवर्सिटीका यह सुरखाबयुक्त होताहै।) और रहनेवाला कहांका तो अम्बालाका। (राजधानीके बाहरके सभी स्थान देहात होतेहैं।) सो प्रस्तुत पुस्तकका न कागज ऊंचा, न उसकी सराहनाही

1. प्रकाशक : नालन्दा प्रकाशन, भूलभुलैया रोड, नयी दिल्ली-३०। पृष्ठ : १०२; क्रा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

ऊंची। पर ऐसी पुस्तकोंकी एक बात जरूर होतीहै। फ्लैपकी टिप्पणी परिचयही होतीहै पोस्टर नहीं। कहनेको बुरीभी, क्योंकि जमाना पोस्टरका है।

फ्लैपपर कहा गयाहै, कि 'ये कहानियाँ दिलचस्प, मर्मस्पर्शी और समाजके विभिन्न वर्गोंके गहरे संदर्भोंको रेखांकित करनेवाली हैं। इन कहानियोंमें न केवल सामाजिक पारिवारिक विसंगतियोंपर तीखा व्यंग्य है, बल्कि इनमें सोचकी गहराईके साथ लेखकके अनुभव जगत्‌की विस्तीर्णताके भी दर्शन होतेहैं।'

लेखक जिन विसंगतियोंको चुनताहै और उन्हें कहानीमें जिस खूबीके साथ प्रस्तुत करताहै उससे लगताहै हम जैसे अपनेही किसी अनुभवके दौरसे गुजर रहेहैं। ये कहानियाँ दिलचस्प इसी मायनेमें हैं। इस मायनेमें नहीं कि इनमें कौतूहलको चरम सीमापर ले जानेका प्रयास किया गयाहै। ये मर्मस्पर्शीभी इस कारण नहीं कि वे हमारी संवेदनाओंको तीव्रताकी हदतक उभाड़तीहैं। बल्कि मर्मस्पर्शी इस अर्थमें हैं कि इनमें पग-पगपर प्रसंगोंमें हमारे हृदयकी धड़कन विद्यमान है।

लेखकका अनुभव-जगत् व्यापक न हो···शिक्षाक्षेत्र मध्यवर्गीय परिवार, दांपत्य संबंधतक ही उसकी दृष्टि सीमित है, पर अपने इस सीमित जगत्‌में वह इतने गहरे उतराहै कि उसकी अवेक्षण शक्ति और संवेदनशीलताकी दाद देनी पड़तीहै।

मानवीय संबंध और मानवीय प्रकृति लेखककी कहानियोंके केन्द्र-बिन्दु हैं। किसी वाद या प्रतिबद्धता अथवा जानबूझकर ग्रामीण आंचलिकता या शहरी शोषण आदिके मसालेसे वह अपने लेखनको चटपटा बनानेका प्रयास नहीं करता। शिल्पकी दृष्टिसे भी वह कहींभी कारीगरी दिखानेके चक्करमें नहीं पड़ता। भाषाको भी व्यर्थके प्रतीकों-संदर्भों-संकेतोंसे बोझल नहीं बनाता। कहींभी नारेबाजी नहीं, सिद्धांत-निरूपण नहीं। सर्वत्र अत्यंत सहज रूपमें भोगे हुए यथार्थकी अनुभूति विद्यमान है। और मुख्य बात तो यह कि लेखक जानताहै, कथा कहां समाप्तकर देनीहै। किसीभी कथाका कृत्रिम या नाटकीय अन्त नहीं। कथाको योंही क्लाइमेक्समें ले जानेकी भी प्रवृत्ति लेखकमें नहीं है। इन कथाओंको सीधे-सीधे अनुभव-कथा कहना उचित होगा।

पहली बरसी, आकर्षण और जीवन, हार्ट अटैक कथाएं मध्यवर्गीय दोस्तीके संबंधोंमें से बननेवाली कथाएं है। ऐसाही संबंध **सौदा** कहानीमें भी विद्यमान है। दोस्तीको लेखक मानो दिव्य संबंध मानताहै। लेकिन संबंधमें से बननेवाली कथाएं टाइप्ड नहीं हैं। इसमें से जीवनके विभिन्न पहलू झांकतेहैं···व्यक्ति चित्रोंके दर्शन होतेहैं।

पहली बरसी एक ऐसी बूढ़ी औरतका जीवन्त चित्र है जो अच्छे खासे बेटेकी मां होकर भी अपने-आपमें प्रकृतिसे इतनी क्षुद्र और दरिद्र कि समझदार-से-समझदार बेटेभी उसे न झेल सकें। व्यक्ति-चित्रकी दृष्टिसे इस कथाका स्थान **गुलको बन्नोसे** किसी कदर कम नहीं। **आकर्षण और जीवन** कथामें से उस मानवीयताके दर्शन होतेहैं जिसे व्यक्ति अपनी कमजोरियोंमें भी···अपनी पग-पगकी पराजयोंमें भी खो नहीं बैठाहै। अपने दोस्तकी जिस स्थितिका साबका उसे होताहै उसके सामने वह आप परास्त होजाताहै· ऐसा परास्त कि उसकी पराजय एक बड़ी विजय बन जातीहै। **हार्ट अटैक** कहानी उस जीवनानुभवमें से गुजरतीहै जिसमें आर्थिक भावनिक या सैद्धांतिक संघर्ष नहीं है···मानसिक है। पूरी स्थितियोंको लेखकने जिस ढंगसे हैंडल कियाहै और कथाको जिस बिंदुपर समाप्त कियाहै उससे लेखककी सिद्धहस्तताका परिचय मिलताहै। **सौदामें** प्रत्यक्ष जीवन-संघर्ष है। यह कथा जहां शिक्षा जगत्‌के अस्थिर-संघर्षमय जीवनकी झांकी प्रस्तुत करतीहै, वहांपर पात्र गुप्ताके रूपमें पालकोंकी विकृत मनोवृत्तिकी भी।

पहली बरसी जैसा व्यक्ति चित्र **आदमी-आदमीकी पहचान** कहानीमें भी विद्यमान है। इसका एक पात्र जैन आजके तथाकथित सभ्य समाजका ऐसा व्यक्ति है जिसके लिए भोगके हेतु जायज-नाजायज, शिष्टता-अशिष्टता, प्रीति-घृणा सब एक-से हैं। **मनजीतमें** काली-मोटी बदसूरत लड़कीका मनोचित्रण है। अपंगता या कुरूपता आदमीके हाथकी चीज नही, पर इससे वह मन-ही-मन कैसा कुंठित आहत रहताहै इसकी जीवंत झलकही यह कहानी है।

टूटती सीमाएं, समझौता, सुख-दुख दाम्पत्यकी कहानियाँ हैं। **टूटती सीमाएंमें** पति-पत्नीके बीच तीसरी नारी आतीहै जिसे सामान्य वर्गकी नारी अपनी असहाय दशामें पतिको रास्तेपर लानेके लिए प्रभुकी प्रार्थनाके सिवा और कुछ नहीं कर पाती। इसे भारतीय नारीके दकियानूस विचारोंकी नहीं···अटूट विश्वासकी कहानी कहा जायेगा। सुख-दुःखमें नारीकी उस दशाकी ओर संकेत है जिसमें वह बहुत कुछ पुरुषके दयाभावसे ही जी

पातीहै। **समझौता** कहानी दांपत्य जीवनकी अधिक सशक्त एवं मर्मस्पर्शी कहानी है। यहां शिक्षित नारीका अहं पतिके अहंसे टकराता है। इस टकराहटके फलस्वरूप जोभी स्थितियां पैदा होतीहैं वे ऊपरी तौरपर अपने-आपमें अनोखी न हों, पर पति-पत्नी दोनोंके ही मानसिक धरातलपर जिस तरहका उतार-चढ़ाव पैदा करतीहैं वह अवश्यही अनोखा होताहै।

एक और कहानी है **कटी पतंग**। यह ऑफिस बाबूकी एक सामान्य-सी कथा है।

कुल मिलाकर यह संकलन अच्छे-अच्छे नामवर लेखकोंको मात देता प्रतीत होताहै। □

निशाचर[1]

कहानीकार : भीष्म साहनी

समीक्षक : डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी.

'निशाचर' भीष्म साहनीकी चौदह कहानियोंका संग्रह है : चाचा मंगलसेन, कंठहार, सलमा आपा, निशाचर, सँभलके बाबू, मुर्गमुसल्लम, दिवा स्वप्न, ज़हूरबख़्श, विकल्प, पोखर, सरदारनी, नदामत, अतीतके स्वर और दहलीज। इनमें से 'ज़हूरबख़्श' और 'सरदारनी' सच्ची घटनाओंपर आधारित हैं, जिन्हें लेखकने श्रीमती सुभद्रा जोशीके मुंहसे सुनाहै। मध्यप्रदेशके प्रसिद्ध हिन्दीसेवी ज़हूरबख़्शका मकान और यत्नसंचित पुस्तकालय सांप्रदायिकताकी क्रूर अग्निमें किस प्रकार भस्म होगयाथा, यह साहित्य-प्रेमियोंसे छिपा नहीं है। इसी कटु एवं मार्मिक सत्यको भीष्मजीने कहानीका रूप दियाहै। सांप्रदायिक उन्मादकी पृष्ठभूमिमें अंकित ये दो सत्य कथाएं दो विपरीत चरित्रोंको उजागर करतीहैं—'ज़हूरबख़्श' का विश्वेश्वर है, जो किसी पत्रिकाका संपादक है, बुद्धिजीवी है, किंतु आग भड़कनेपर भीड़-मनोवृत्तिका शिकार होकर 'ज़हूरबख़्श' के पुराने संबंधोंको ताकपर रखकर उन्मादियोंके साथ शरीक होजाताहै, किंतु दूसरी ओर है बेपढ़ी गंवार सरदारनी जो नंगी कटार हाथमें लेकर उन्मादियोंकी भीड़को चीरकर अपने पड़ोसी मुसलमानको सुरक्षित स्थानपर पहुंचा देतीहै।

'चाचा मंगलसेन' में लेखकने उच्च मध्यवर्गकी शिष्टाचारोंमें बंधी जीवन-पद्धति और निम्नवर्गकी उन्मुक्त और सहज जीवन प्रणालीको विरोधी रंगोंमें उभाराहै। चाचा मंगलसेनके लिए भतीजे बलरामका बंगला 'मरन कोठरी' है, और उस निम्नवर्गीय वस्तीकी जमीन 'अपनी मिट्टी' है। एक जगह चाचा भतीजेके संबंध कृत्रिमताओंसे घिरे हैं, दूसरी जगह खूनका रिश्ता न होते हुएभी रिश्ते बन गयेहैं जिनमें प्रेमकी सहजता और सहजताका सुकून है।

'कंठहार' में एक उच्चवर्गीय सुन्दरी महिला मालतीका अंतर्द्वन्द्व हैं : एक ओर उसकी असीम आकांक्षाएं और वासनाएं हैं जो कंठहार बनकर उसके चौड़े वक्षपर डोलतीहैं, दूसरी ओर उसकी लड़की सुषमा है जो बचपनसे ही रुग्ण और अविकसित होनेके कारण उसके उन्मुक्त जीवनमें बाधक है। कहानीमें उस अविकसित असामान्य बालिका एवं अंतर्द्वन्द्वमें तपती सुन्दरीका सूक्ष्म मनोविज्ञान बड़ी सफलतासे चित्रित किया गयाहै।

'सलमा आपा' कहानी पहली नजरमें भलेही अंतःप्रेरणाका चमत्कार लगतीहो, किंतु वास्तवमें इसमें लेखकने एक ऐसे शरीफ आदमीका चरित्रांकन करना चाहाहै जो एक नितान्त अपरिचित व्यक्ति द्वारा दिये गये परिचयको अपने ऊपर ओढ़कर उसे अपने यहां ठहरा लेताहै और उसे प्रेमपूर्ण आतिथ्य प्रदान करताहै। कहानी मानों कहतीहै कि इंसान मरा नहीं है, वह सब जगह मिलही जाताहै—हिंदुस्तानमें भी और पाकिस्तानमें भी।

'निशाचर' हैं दरिद्र वर्गकी मां बेटी जो रातके अंधेरेमें कतरने और रद्दी कागज इकट्ठे करके अपनी जीविका चलातीहैं। सर्दीके कारण बेहोश लड़कीको बचानेके लिए मां रातभर इकट्ठे किये कागज जला डालती है। लेकिन सचमुच रातमें विचरण करनेवाले ये गरीब निशाचर हैं, या उस अंधेरेके पीछे छिपा वह वर्ग है जो इन्हें ऐसी जिन्दगी बितानेपर बाध्य करता है?

'सँभलके बाबू' में गृहस्वामी और घरेलू नौकरके बीच दो पीढ़ियोंके बदलते संबंधोंको रेखांकित किया गयाहै। पहली पीढ़ीका नत्थू मार खाकर भी अपनी पूरी जिंदगी उसी घरमें काट देताहै किंतु दूसरी पीढ़ीका नत्थू मारने वाले 'मालिक' का हाथ पकड़कर कहताहै—'सँभलके बाबू' और नौकरी छोड़कर घरेलू नौकर यूनियनके माध्यमसे अपना बकाया वसूल करताहै। 'सँभलके बाबू' कहानी

---

1. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन ८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १९७; क्रा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

निश्चयही वर्गसंघर्षकी प्रचारात्मक कहानी बन गयी होती, यदि उसके स्रष्टाके पास भीष्म साहनीकी सूक्ष्म संतुलित दृष्टि न होती। इसमें लेखकने दोनों पीढ़ियोंको तटस्थ दृष्टिसे अंकित करके उनके बीचका अंतर बड़ी सफ़ाईसे उभाराहै—"वर्षों पहले जब मैंने उस नत्थूको घूंसा माराथा तो मेरी बहन सिसक उठीथीं × × × और मां बार-बार कहेजा रहीथी, भगवानका खौफ़ करो बेटा, गरीबपर हाथ नहीं उठाते ×××पर यहां, हम तीनों, मां बेटी और बाप एकसाथ, कोरस बाँधकर चिल्लाये जा रहेथे—गेट आउट, गेट आउट, गेट आउट।"

'मुर्ग मुसल्लम' तथाकथित राजनीतिक नेताओंको स्वादिष्ट भोजन उपलब्ध करानेके लिए एक होटलके गरीब खानसामेको फँसाकर जेल पहुंचानेके कुचक्रकी कहानी है। 'दिवास्वप्न' जीवनभर लेखनीके लिए समर्पित एक साहित्यकारके आर्थिक और मानसिक संघर्षोंकी गाथा है। 'विकल्प' एक ऐसी स्त्रीकी कहानी है जो स्वतंत्र सम्मानपूर्ण जीवन बितानेके सुझावके स्थानपर एकही घरमें पार्टीशन करके एक ओर स्वयं और दूसरी ओर सपत्नी और पतिके रहनेका प्रस्ताव स्वीकार कर लेतीहै। यशपालने भी अनेक निबंधों और कहानियोंमें इस तथ्यको रेखांकित कियाहै कि भारतीय नारी अबभी परिश्रम, सम्मान और स्वतन्त्रताकी तुलनामें सुरक्षा और संपत्तिको अधिक महत्त्व देतीहै।

भारतीय रेलोंमें धींगामुश्ती, भीड़ और गंदगीका बड़ा सजीव और सांकेतिक वर्णन 'पोखर' में मिलताहै। रेलके एक डिब्बेका यह रेखांकन वास्तवमें हमारी संपूर्ण जातिकी मनोवृत्तिका रेखांकन है और अपनी जातीयताके झूठे गर्वपर एक मार्मिक व्यंग्यभी है। 'नदामत' में हमारे देशके लोगोंकी एक और कुत्सित प्रवृत्तिका चित्रण है। एक हॉकी मैचमें लोगोंका सोच इस प्रकारका है—"आखिर शहरकी इज्जतका सवाल था। अगर अपनेही अखाड़ेमें दुश्मन हमें चितकर गया तो इससे बड़ी बेइज़्ज़ती क्या होगी।" और इज्जत बचानेके लिए आखिरमें विपक्षके सबसे अच्छे खिलाड़ीको 'चित' कर दिया जाताहै। किंतु लेखक कहानीको यहीं नहीं छोड़ देता। उस खिलाड़ीने इधरके लोगोंकी सहानुभूतिभी जीत लीथी और उसे इस प्रकार चोट पहुंचाये जानेसे लोग दुखी थे और उनका उत्साह बुझ गयाथा।

'अतीतके स्वर' में अतीतजीवी मनोवृत्तिपर व्यंग्य है एक ऐसे व्यक्तिपर जिसे समूचे गांवके बाढ़में डूब जानेका कोई मलाल नहीं है केवल इस बातकी खुशी है कि उसने वहाँके एक बहुत पुराने मंदिरको अपने कैमरेमें बंद कर लियाहै और इस प्रकार उसे नष्ट होनेसे बचा लियाहै। 'दहलीज' में एक ऐसे असामान्य व्यक्तिका चित्रण है जो मृत्युभयसे ग्रस्त है। वह कीटाणुओंके भयसे स्त्रियोंके संपर्कसे दूर रहताहै, चिट्ठियां देरतक धूपमें डाले रखकर दस्ताने पहनकर उठाताहै, जो लोग मिलने आतेहैं, उन्हेंभी देरतक धूपमें बैठाले रखताहै और फिर एक निश्चित दूरीपर बैठकर उनसे मिलता है।

भीष्म साहनीकी कहानियोंमें जीवनको देखनेकी एक विशेष दृष्टि है जो उनकी नितांत अपनी है, साथही कहानीकी एक शैली है जिसमें सादगीके साथ-साथ अपेक्षित रोचकताभी है, पाठकको साथ लेकर चलनेवाला औत्सुक्यभी है। कहीं-कहीं उनके वर्णन प्रेमचन्दकी याद ताज़ा कर देतेहैं, जैसे 'नदामत' में—"अभी दिनके ग्यारह बजे हैं, मैच चार बजे शुरू होगा, पर तैयारी अभीसे शुरू हो गयीहै। × × × स्कूल कॉलेज तो कलसे ही बंद हैं। गाड़ीवान गाड़ियोंमें से घोड़े खोल देंगे और लाठी छड़ी हाथमें लेकर मैचके मैदानकी राह लेंगे। तीन बजते-बजते खोमचेवाले भी अपने खोमचे उठाये मैदानके बाहर जा पहुंचेंगे। शर्तें बाँधनेवाले अभीसे एक दूसरेको ललकारने लगेहैं।" वर्णनोंका यह खुलापन आजकी कहानियोंमें दुर्लभ होचलाहै।

प्रस्तुत संकलनकी कहानियां सामान्यतः सफल रचनाएं हैं लेकिन इनमें भीष्म साहनी 'वाङ्-चू', 'रामचंदानी' या 'सागमीट' जैसी कोई कहानी नहीं दे सकेहैं। □

विग्रह बाबू[1]

कहानीकार : मिथिलेश्वर
समीक्षक : यशपाल वैद.

नयी पीढ़ीके सशक्त कथाकारका कहानी संकलन 'विग्रह बाबू' एक स्वागतयोग्य कृति है। मिथिलेश्वर एक चर्चित कथाकार हैं और उन्होंने अपने लेखनसे समृद्ध

---

१. **प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ११४; क्रा. ८२; मूल्य : १६.०० रु.।**

आलोचकों (डॉ. नामवरसिंह—सारिका) को भी टिप्पणी करने पर मजबूर कियाहै।

आलोच्य संकलनमें नौ कहानियां हैं और इन कहानियोंसे यह स्पष्ट है कि मिथिलेश्वर जैसे कथाकारका दृष्टिकोण केवल ग्राम्य-जीवनतक ही सीमित नहीं रह सकता, नगर-जीवनमें व्याप्त बुराइयोंका पोस्ट-मार्टम करनेकी विवशतासे वे अपने अनुभव और परिवेशगत अनुभूतिको सार्थक शब्द प्रदान करनेसे नहीं चूक सकते। 'विग्रह बाबू' एक आदमीकी कहानी है जिसने पारिवारिक विघटनके कारण अपने जीवनको एकाकी बना लिया और लेखकने ऐसे आदमीकी अनुभूतियों—मन:स्थितियोंका यथार्थके धरातलपर सही जायजा लियाहै—लगभग ऐसी ही स्थिति 'सरेआम' की है—जहां यह प्रश्न मुंह बाये खड़ाहै कि—आतंक, गुण्डागर्दी, भय—की मानसिकतासे आजका जीवन कहींभी तो सुरक्षित नहीं—आखिर क्यों?

'मोल ली हुई मुसीबत' तथा 'देरतक' कहानियोंमें अन्तर्द्वन्द्व है—समस्याएं जटिल होजातीहैं, जब समाजमें रह रहे खुंखार कुत्ते—किसीकी जवानी परेशानियोंमें डाल दें और तकलीफोंका ऐसा सिलसिला शुरूहो कि आदमी सेन्टीमेंटल होने और न होनेके अन्तर्द्वन्द्वसे गुजरे (मोल ली हुई मुसीबत)—'देरतक' में गांव और शहरमें बंटी एक ग्रामीणकी जिन्दगीका लेखा-जोखा है।

'जिन्दगीका एक दिन' एक सपाट कथ्यहीन कहानी है जिसमें चारित्रिक विघटन—पारिवारिक, वातावरण, ग्रामीण अंचल—सीमित आयमें निवाहके नुस्खे हैं। 'अपनी-अपनी जगह' में अन्तर्विरोध है। मान्यताओं, आस्थाओं और विश्वासोंके साथ जीवनकी उपयोगिताका दृष्टिकोण - सब्जियां और फूल, गेहूं बनाम गुलाब अत: समन्वयकी आवश्यकता।

'बहादुर' 'सवाल' 'संगीता बनर्जी' में बहादुर एक सच्चा इन्सान है पेटकी मार, कुत्ता और आदमी समांतर खड़ेहैं। आदमीके जीवन-यापनमें कुत्ता आड़े आरहाहै। यहभी एक गम्भीर सवाल है। 'सवाल'—एक सार्थक सवाल निर्धन अपाहिजकी जिन्दगीका नहीं—मौतका सवाल, या प्रकृत वीभत्स रस, कटु यथार्थ। 'संगीता बनर्जी' नारी जीवन और आधुनिकताका प्रश्न—अमूर्तता मूर्त काल्पनिक, यथार्थपूर्ण वास्तविक—एक विश्लेषण।

मिथिलेश्वर एक सधी हुई शैलीके कहानीकार हैं, ऐसा स्पष्ट लगताहै कि शब्द, वाक्य रचनाकी बनावट कहानियोंकी बनावटमें स्वयमेव आजातीहैं, रचनाकारको प्रयास नहीं करना पड़ता हालांकि ऐसा कमही होताहै। 'विग्रह बाबू' की कहानियोंका संसार कहीं-कहीं तिलस्मी संसारका आभास देताहै किन्तु यह आभास मात्र एक प्रतिक्रिया और अनुभूतिकी मानसिक स्थिति है जो वास्तविकतासे कन्नी-काटने या जी चुरानेके लिए उकसातीहै यानी एक नशा और नशेका असर थोड़ी देरके लिएही रहताहै, मतलब कहानियां (विग्रह बाबू) असरदार और जानदार है। □

अंधेरे[1]

कहानीकार : डॉ. परमलाल गुप्त
समीक्षक : सुमेरसिंह 'शैलेश'

'अंधेरे' डॉ. परमलाल गुप्तकी सोलह कहानियोंका एक सुन्दर संकलन है। लेखककी बहुज्ञता और बहुआयामी दृष्टिकोणने कथा-साहित्यपर भी आधिकारिक दृष्टि डालीहै तथा कहानियोंकी बनावटमें वायवीयतासे परे यथार्थकी जीवन्त ऊष्माका संचरण कियाहै। इसी कारण ये कहानियां प्राणवान हैं।

कहानियोंका कथ्य जीवनके अधिक निकट होनेसे थोपे आदर्शोंकी बोझिलतासे बच गयाहै। लेखककी सूक्ष्म दृष्टि और अनुभवसे पकी हुई संवेदनशीलता काल्पनिक भावुकताकी अतिवादी संपृक्ततासे कोई निकटका सम्बन्ध नहीं बना सकीहै, किन्तु जनीन भावनात्मक संस्पर्शका अभावभी नहीं खटकता। विभिन्न शीर्षकोंसे लिखी गयीं कहानियां अपने उद्देश्यको कहींभी ओझल नहीं होने देतीं। अधिकांश कहानियोंकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि अपने संदेशको मुखर अथवा ध्वनित रूपमें पाठक तक पहुंचानेमें सहजही सफल हैं। घटनात्मक ऊहापोह और बेमेल प्रासंगिकताको तिलांजलि देकर लेखकने पाठकको भटकने नहीं दियाहै। कथानक अपने सोपानोंमें बंटकर भी सुसम्बद्ध और काफी हदतक सुलझे हुएहैं। कथ्यका विषयगत बंटाव एकही विचारधाराके उबाऊपन से मुक्ति दिला देताहै। कहानियोंमें प्रामाणिक अनुभूति की तीव्रताने दृश्यहीन वातावरण को भी मूर्तिमान करनेमें

---

1. प्रकाशक : मीनाक्षी पुस्तक मन्दिर, पी.-१०, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ। १३४; क्रा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

भरपूर योगदान दियाहै, जिसके कारण कई कहानियोंका कथ्य पुराना होकर भी नयीं भंगिमामें टटका और जानदार प्रतीत होताहै।

समाजमें वर्ग और जातिभेदके कारण मानवीय सम्बन्धोंमें जो दरारें और खाइयाँ हैं, उनके खोखलेपनको झांकनेका सहज प्रयास लेखकने कियाहै। वर्तमान राजनीतिमें चुनावी माहौलको लेकर शहरसे गांवतक किस तरह ओछे हथकंडोंको अपनाकर विजय हासिल कीजातीहै तथा पूंजीवादी अथवा साहूकारी व्यवस्थाका सहारा लेकर ऊँची जातिके साधन-सम्पन्न लोग व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओंकी पूर्ति करतेहैं और साधनहीन, नीच और गरीबके रूपमें परिभाषित 'मणिधर' जैसे लोग सत्ताका स्वाद चखनेकी इच्छा मात्रसे षडयंत्रके जालमें अपनी जानतक खो बैठतेहैं। चिंतनका आग्रह करते हुए ऐसे कई सोचपूर्ण जलते सवाल लेखकने अपनी कहानियों के माध्यमसे समाज और व्यवस्थाके सम्मुख रखेहैं। ये सब ऐसे गहरे अंधेरेकी साजिशकी धुंधमें हैं जहाँ रोशनी फेंकी तो जासकतीहै किन्तु एकभी किरण उसे बेध पानेकी क्षमता नहीं रखती।

इसी तरह शोषण, अभाव और ओढ़ी हुई शराफत पर भी लेखकने अपनी पैनी दृष्टि डालकर समाजकी विद्रूपताओंको उभारनेका असरदार प्रयास कहानियोंके माध्यमसे कियाहै। समाजमें व्याप्त आडम्बर, पाखण्ड, अंधविश्वास और छद्म आभिजात्यपर जहाँ लेखकने रोशनी डालीहै, वहीं 'सीमाओंसे परे' जैसी कहानियोंमें अधिक तरल भावुकता, करुणाके साथ-साथ मानवीय रिश्तोंके छिन्न-भिन्न होनेसे देशकी सीमाओंका विभाजन और इंसानियतका दम घोंटनेवाली युद्धकी विभीषिकाको अपनी सधी हुई लेखनीसे बहुतही प्रभावशाली ढंगसे चित्रित कियाहै। ये कहानियाँ मस्तिष्कको सोचनेको तो विवश करतीही हैं, हृदयको भी छूतीहैं।

पर्याप्त संक्षिप्तता और भाषाका सहज, सरल रूप कहानियोंकी प्रेषणीयताको स्वाभाविक अर्थवत्ता प्रदान करताहै। कहीं-कहीं भाषाका चित्रमय, कल्पना प्रसूत एवं काव्यगर्भित रूप वातावरणको अधिक मुखर करनेमें सहायक हुआहै, यथा—'धुएं और धूलके सम्मिलित आक्रमणसे भयभीत धूप सुनहली चिड़ियाकी तरह पेड़ोंकी फुनगियोंपर जा बैठीथी।' (कहानी अंधेरे, पृष्ठ २१) अत्यन्त स्वाभाविक परिवेशमें ग्रामीण जीवनके चित्र, आंचलिक विशेषताओंसे भरपूर ग्रामोचित वाक्य-विन्यास और कथोपकथनोंका अकृत्रिम संयोजन शिल्पके धरातल पर भी कहानियोंको एक कसाव और सौष्ठव प्रदान करताहै। संकलनकी कुछही ऐसी कहानियां होंगी, जो अनपचे विचारोंसे बोझिल होनेके कारण पाठकोंके मन और मस्तिष्कको एक साथ न मथ सकें। ऐसी कहानियोंमें भी इंगित अथवा संकेतकी चारुता है।□

पपीतेका पेड़[1]

कहानीकार : डॉ. अज्ञात
समीक्षक : रामस्वरूप दुबे.

आजकी कहानी तथ्यपरक अधिक है, जीवनके अधिक निकट है। अज्ञातमें रोमांचक रहस्योंमें केवल संभावनाके आधारपर विश्वास दिलानेकी चेष्टाकी अपेक्षा स्वाभाविक मनोविश्लेषणकी तत्परता है और उपदेश लादने अथवा आदर्शोंको सीधे-सीधे थोपनेकी जगह यथार्थ को वरीयता है। प्रस्तुत कहानी-संग्रहमें नौ कहानियां हैं। इनमें "पपीतेका पेड़" कहानी सर्वप्रथम है और अनेक दृष्टियोंसे विशिष्टभी। बहुतही सहज भावसे वर्णित, सांकेतिक हास्य और व्यंग्यके पुटसे युक्त यह कहानी एक ऐसे युवकका विश्लेषण करतीहै, जिसे एक बड़े घरकी बेटीके विवाहने भाग्यशाली बना दियाहै। उसका दिमाग इतना चढ़ गयाहै कि वह अपने आपको असाधारण और विशिष्ट समझताहै, उसकी हरकतें और व्यवहार उच्छृंखल, अदमित, अंकुशहीन और मानवता तथा समाजिकताके लिए विरोधी अथवा बाधक हैं। उनका क्रियाकलाप निर्बाध गतिसे इसलिए चलताहै, क्योंकि उसकी पत्नी एक ऐसी भारतीय नारी है, जो कलह नहीं चाहती और अपने पतिकी प्रसन्नताको ही अपनी प्रसन्नता मानती है। उसका प्रणय-मुकदमा जब खारिज होजाताहै और "अपील"की कोईभी गुंजाइश नहीं रहती, तो उसकी मनोदशा तथा कल्पनाके संसारकी जो स्थिति होजातीहै, उसका चित्रण लेखकने आग और झंझावातके समावेश द्वारा अत्यंत कुशलता तथा प्रभावपूर्ण ढंगसे किया है।

---

१. प्रकाशक : समीर प्रकाशन, छायालोक, १११ ए/१८३ अशोक नगर, कानपुर। पृष्ठ: ९२; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

"दो आंखें" एक हताश युवक और एक ऐसी माँकी कहानी है, जो ज्योतिषीको साक्षात् ईश्वर मानतीहै और अपने पुत्रकी कल्याण-कामनाके वशीभूत होकर पुत्र-वधू का अग्निदाह करनेमें नहीं चूकती । यह कहानी अंध-विश्वासपर एक करारी चोट है ।

"पूसी"का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने बडप्पनके अहंको ओढ़े बैठा रहताहै, वह देखता और समझताहै कि पानी किधर बह रहाहै, किन्तु उसमें साहसकी इतनी कमी है कि परिस्थितिकी माँगको देखकर भी अनदेखा कर देताहै और परिणाम यह होताहै कि वह केवल अपने प्रतिही अन्यायी नहीं है, वरन् एक युवतीके सपनोंको भंग करके उसे असहाय छोड़ देताहै । समाजमें इस प्रकारके व्यक्तियोंकी कोई कमी नहीं है । चित्रांकन स्वाभाविक है ।

"दूरीका अभिशाप" एक ऐसी कहानी है, जिसमें साधुके हस्तरेखा-ज्ञान और भविष्य-कथनपर अविश्वास करनेवाले और भविष्य-फलको झूठा सिद्ध करनेका प्रयास करनेवाले घनश्यामके आकस्मिक अंतने उसके मित्रोंको चमत्कृत कर दिया । इस कहानीका पाठकपर यह प्रभाव पड़ताहै कि हस्तरेखाको निस्पृह भावसे पढ़नेकी क्षमता यदि है, तो उसके कथनको झुठलाया नहीं जासकता । ऐसे सत्य कभी-कभी जीवनमें घटित होतेहैं और कल्पना को भी मात दे बैठतेहैं । पर, कल्पनाकी तुलनामें यथार्थके पैर धरतीपर अधिक दृढ़तासे जमें होते हैं ।

"अन्दरवाला" कथानकमें पूर्णतया स्वतंत्र और भिन्न होनेपर भी रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी "काबुलीवाला" और भगवतीप्रसाद वाजपेयीकी "मिठाईवाला" की याद दिला देतीहै । इस कहानीका युवक प्रतिक्रियाका शिकार होकर भावनामें बह जाताहै, एकनिष्ठ प्रेमिका ताराके प्रति अन्याय करताहै और अंतमें एक बंदरवाला बनकर भटकता फिरताहै। इस कहानीमें अतृप्त आत्मा द्वारा अहित किये जानेकी सामर्थ्यमें विश्वास प्रकट किया गयाहै, जिसपर भोगनेवाले अथवा अंधविश्वासीही विश्वास कर सकतेहैं ।

"नया मकान" की नायिका लक्ष्मी समृद्धिके प्रदर्शन की आदी है । मायकेके सहारे वह एक नया मकान तो बनवा लेतीहै, किन्तु इसे भाग्यकी विडम्बनाही कहना चाहिये कि गृह-प्रवेशके बादही पुत्रके चल बसनेके कारण वह ससुरालके पुराने मकानमें लौट जातीहै और जिस सड़कपर नया मकान खड़ाहै, उसपर पैर रखनेमें भी डरती है । इस कहानीमें इस कटु सत्यका उद्घाटन बड़ी कुशलतासे किया गयाहै कि धनी घरकी बहू बनतेही अपने सास-ससुरसे शासनकी बागडोर अपने हाथमें लेने और सबकुछका कायापलट कर देनेके लिए इतनी उतावली हो उठतीहै कि असहिष्णु होकर उनका शान्तिपूर्वक जीनाभी दूभर कर देतीहै ।

"सुनयना" एक ऐसी समृद्धिशाली नारीकी कहानी है, जो बायीं आँखके कुछ दोषके कारण सुहागरातको ही अपने पति द्वारा उपेक्षित तथा अपमानित होकर इतनी तिलमिला उठतीहै कि प्रतिक्रिया-स्वरूप जो रास्ता वह अपनातीहै, वह चारित्रिक पतनका है । तथाकथित उच्च-वर्गके पतनकी जो बात साधारणजन अपने ओंठोंपर लाने का साहस नहीं करता, उसे कथाकारने सहज यथार्थके रूपमें स्पष्ट कर दियाहै ।

"सुहागिन" शौर्य और त्यागकी ऐसी मर्मस्पर्शी कहानी है, जो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और उनकी आजाद हिंद फौजके प्रभावको विश्वासनीय ढंगसे अंकित करनेमें सफल हुईहै । अंतिम कहानी "जीवनका सौंदर्य" द्वितीय विश्वयुद्धके विध्वंसके बीच उसी क्षेत्रमें प्रस्फुटित हुए प्रेमकी एक ऐसी कथा है, जो पाठकको सहजही प्रभावित करतीहै और उसके मनको सुवासित कर देती है ।

'पपीतेका पेड़'की प्रथम सात कहानियां पूर्णतः सामाजिक हैं और इनमें आधुनिक समाजके ऐसे युवक और युवतियोंकी निराशा, भावुकता, अहम्मन्यता, असहिष्णुता, दुभाव, उच्छृंखलता, प्रदर्शनप्रियता, प्रतिक्रियापूर्ण नासमझी, अंधविश्वास आदि उन दुर्गुणोंका पर्दाफाश करनेमें कथाकारने अपनी निष्पक्षता और संवेदनशीलताका परिचय दियाहै, जिनसे आजका वैयक्तिक और सामाजिक जीवन ग्रस्त है । अंतिम दो कहानियों—"सुहागिन" और "जीवनका सौंदर्य"में ऐतिहासिकताका सुन्दर पुट हैं और ये उदात्त भावको जागृत करनेवाली हैं ।□

पत्र व्यवहारमें ग्राहक संख्याका उल्लेख अवश्य करें ।

जिस्मपर उगा कफन[1]

कहानीकार : कृष्णशंकर भटनागर
समीक्षक : डॉ. अशोक जेरथ.

लघु कथाओंका यह संकलन अनेक सामाजिक विसंगतियों, विडम्बनाओं और विरुद्धावलियोंसे उठनेवाली स्थितियोंकी अभिव्यक्तिका संग्रह है। लघुकथाकी सबसे बड़ी खूबी लघुकथानकका अचानक करवट बदलकर नाटकीय स्थिनियोंको जन्म देनाहै। दोहरा व्यवहार, दोगलापन अथवा मुखौटोंसे भरा जीवन विरोधमासको जन्म देताहै जिससे नाटकीय स्थितियां पैदा होतीहैं और अचानक चुक जातीहैं। व्यंग्य, कटाक्ष और गुह्य आक्षेप इन स्थितियोंको प्रवाह देतेहैं तथा इन्हींके कन्धोंपर लघुकथाकी इमारत खड़ी कीजातीहै।

प्रस्तुत संकलनमें कुल छहत्तर लघुकथाएं संकलित हैं। जीवनके हर क्षेत्रसे स्थितियोंको बीनकर लघुकथाओंमें पिरो दिया गयाहै। दूसरोंकी वेदना बहुत दूरकी बात है उसको भुलाया जासकताहै कभी-कभी उसे लेकर व्यंग्यभी किया जासकताहै। पर जब सही वेदना अपने साथ जुड़ जातीहै तो असह्य होजातीहै। 'परिवर्तन' 'मोह' 'अर्थी' 'ब्लैकमेल' आदि कथाओंमें इसी वेदनाका स्वर मुखर हुआहै। सी. आई. डी. ने एक अधिकारीको रंगे हाथ रिश्वत लेते पकड़ा तो उसे यह कार्य बड़ा अच्छा प्रतीत हुआ किन्तु जब पता चलाकि अपनाही श्याम पकड़ा गयाहै तो बड़ा गलत हुआ—'परिवर्तन'; इसी प्रकार 'मोह' में दूसरोंके बच्चोंके साथ दुर्घटना होनीही चाहिये इतने बच्चे जननेका यही परिणाम होगा, पर जब पता चला कि अपना बच्चाही दुर्घटनाग्रस्त हुआहै तो हाथोंके तोते उड़ गये।

अनेक कथाएं नियति, बेबसी और असहायताको लेकर उभारी गयीहैं किन्तु कथाओंमें निहित गाम्भीर्यके साथ-साथ हास्यभी यत्र-तत्र प्रस्फुटित हुआहै। 'कपाल-क्रिया', 'एडजेस्टमैंट' 'मदरलैण्ड', 'आक्रोश', 'पुण्य', 'मोल', 'असभ्य' आदि कथाओंमें ऐसी स्थितियां बार-बार उभरी हैं जिनसे पात्रोंकी बेबसी और असहायताके कारण कथानकने अचानक करवट लीहै। 'कपाल-क्रिया' में अपने पिताकी हत्या करनेवाले बेटेको जब अन्तिम संस्कारके समय दुबारा 'कपाल-क्रिया' करनेके लिए कहा गया तो वह असमंजसमें पड़ गया कि एक बार तो वह पहलेही कपाल-क्रिया कर चुकाहै। पर उसकी बेबसीको कोई समझ नहीं पाया।

'स्वभाव', 'पुष्पहार', 'अपने लिए नहीं', 'अपील', 'समाधान', 'औकात' आदि ऐसी कथाएं हैं जो कथनी और करनीमें अन्तर होनेके कारण कथावस्तुमें करवट लातीहैं। दोहरा व्यक्तित्व लेकर जीनेवाले ऐसे अनेकों बुद्धिजीवी (तथाकथित) तथा राजनीतिज्ञ ऐसी अनेक कथाओंको जन्म देतेहैं। 'औकात' कथामें बेचारेको इसलिए जूते पड़तेहैं कि वह नेतापर हो रही पुष्पवर्षाका अधिकांश भाग ग्रहणकर रहाथा। पर दूसरी बार इस लिए कि अब नेतापर पड़नेवाले जूतों, टमाटरोंमें उसने अपना हिस्सा नहीं बटाया। 'अपने लिए नहीं' कथामें लालाजी हिन्दू, मुस्लिम आदिमें कोई फर्क नहीं पाते पर अपने ग्राहकको खुश करनेके लिए ऐसा करनेके लिए बाध्य हैं।

अनेक कहानियां पात्रोंकी मूढ़ अभिव्यक्तिके कारण अनेक हास्यास्पद स्थितियोंको जन्म देतीहै। 'मेकअप' में चाणक्यका शरीरको जलाना और दांत उखाड़ना छात्रोंको अचूक लगताहै क्योंकि चाणक्य अपना वेष बदलनेके लिए सुभीतेसे विदेशी माइकका प्रयोगकर सकताथा और नंदके प्रति अपने प्रणको याद रखनेके लिए टेप रिकार्डका इस्तेमाल कर सकताथा।

'एक्सचेंज' कहानीमें बिडम्बना यह कि अब नयी पीढ़ीके लोग गांधीको 'बेन किंग्सले' के माध्यमसे स्मरण करेंगे। 'क्या लिखा' कथामें जहाँ लेखककी भयावह स्थितिपर एक ओर सांत्वनाके शब्द कहनेको जी करताहै क्योंकि वह उस्तरेकी धारके बहुत करीब था और लतीफ मियां उस्तरा चलाते-चलाते बहक उठेथे—उनका लड़का वैसा नहीं लिख रहाथा जैसे वे चाहतेथे। तो दूसरी ओर उस हास्यास्पद स्थितिके कारण हँसीभी आतीहै।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट होजाताहै कि जहां भटनागर द्वारा रचित इन रचनाओंमें जीवनके अनेक रंगीन लघु चित्र प्रस्तुत हुएहैं, कहां थोड़े शब्दोंमें व्यवस्थाके उन ढीले वातायनोंकी ओर संकेतभी कियेहैं जहांसे स्वस्थ हवाका प्रवेश नहीं होपाता। किसी किसी लघुकथामें दर्शनका रचनात्मक रूपभी दिया गयाहै—'आपके

---

१. प्रकाशक : मीनाक्षी पुस्तक मन्दिर, पी-१०, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : ९२ : का. ८३; मूल्य : १८.०० रु.।

पांव' कहानीमें मास्टरजीकी आकांक्षाओंकी पूर्ति उनकी कम आयके कारण नहीं होती। सेठके टेपरिकार्डरने उनकी दुखती रगको छू लियाथा। वे उदास होजातेहैं। रात विस्तरपर लेटे चादरसे पूरी तरह ढक नहीं पाते, कभी पांव नंगे होजातेहैं तो कभी धड़। पत्नीने उठकर उनके पांव मोड़ फिर झटकेसे पूरी चादर उसपर ढककर कहा—चादर बढ़ा नहीं सकते तो कमसे कम एडजेस्ट तो कर सकतेहो—वे शांत होगये।

सहज, सरल और सटीक शब्दोंका चयन कथाओंको और चुस्त बना देताहै। वास्तवमें लघुकथाओंमें शब्दोंका चयन और उनका विन्यास बहुत मायने रखताहै। थोड़ेसे शब्दोंके माध्यमसे सारगर्भित वस्तुको भर देनाही इस क्रियाका शिल्प है। कहीं-कहीं कथाओंका अन्त उस ढंगसे नहीं हुआ जैसा होना चाहियेथा। कहानी स्वयं चुककर वस्तुको सही दिशा देतीहै। प्रयास अच्छा है। □□

नाटक : एकांकी

जसमा ओडन[1]

लेखिका : शान्त गांधी
समीक्षक : डॉ. अज्ञात.

पिछले कुछ वर्षोंमें लोकनाट्योंकी नाट्य-शैलीको आधार मानकर नाटकको नया मोड़ देने और/या लोक-नाट्यके कथानकका परिष्कारकर उसकी पुनर्रचना करने के सुन्दर प्रयास हुएहैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना-कृत "बकरी", मुद्राराक्षस-कृत "आला अफसर", डॉ. रामकुमार वर्मा-कृत "सांप" तथा बिजय तेंदुलकर-कृत "घासीराम कोतवाल" को नौटंकी शैलीमें प्रस्तुत करनेके प्रयास भलेही अधिक सफल न हुएहों, चर्चाके विषय अवश्य बनेहैं। परन्तु लोकनाट्यके मूल कथानकोंको लेकर उसी विशिष्ट लोक-शैलीमें लिख और प्रस्तुतकर शान्ता गांधीने "जसमा ओडन, को एक नवीन अनुभूति बना दियाहै। इस नाटकमें गुजराती भवाईके मूल "सती जसमा ओडन वेश"को ही संस्कारित करके शान्ता जीने खतरा उठानेके साहसका परिचय दियाहै—खतरा यह था कि मूल वेश कुछ इस ढंगसे न बदल जाये कि उसे पारंपरिक ग्राम-सामाजिक ही नहीं, भवाई-शैलीसे अप-रिचित सम्भ्रांत नागरिकभी न नकार दें। नगरके अभि-जात्य सामाजिकों और समीक्षकोंने नाटककी प्रस्तुति देखकर उसे सामान्यतः सराहाहै, परन्तु ग्राम्य अंचलोंमें इसकी सफलताका परीक्षण अभी शेष है।

इस नाटककी पुनर्रचनाकर शान्तजीने कथानकको आधुनिक संदर्भोंसे जोड़नेके लिए मूल वेशसे कई अन्तर कियेहैं :

१-भवाईमें गणपतिका अवतरण प्रायः देवताके रूपमें ही होताहै और नायक या रंगला उनसे हास-परिहासभी कर लेताहै, परन्तु नाटकमें नायक उनका परिचय "जन पति" या "नेता" के रूपमें देताहै। तभी रंगला उनके पैर पकड़कर उनसे नौकरी, वेतन और भार्या दिलानेकी माँग करताहै।

२-मूल वेशमें जसमा और रूपा, दोनोंके माता-पिता सोरठ (गुजरात) के ओड-ओडन (दो पृथक्-पृथक् जोड़े) बताये गयेहैं, जबकि नाटकमें ओड जातिके दला-दली (सोरठके) और भांड या दांड जातिके भला-भली (काठियावाड/झालावाडके) को क्रमशः जसमा और रूपा के माता-पिता बताया गयाहै।

---
१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८, अन्सारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ :१४२; डिमा. ८४; मूल्य : ३५.०० रु.।

३-वेशमें जसमा मुख्य रूपसे एक सती साध्वीके रूपमें चित्रित कीगयीहै, जो अपने पति रूपाके वधपर सतीकी भाँति पाटण-पति सिद्धराज जयसिंहको उसकी लंपटताके लिए शाप देतीहै :

एक जसमाके शापसे
महलकी जगह होगा शमशान
सुनो पाटणके पति ! (पृ. १०७-८)

और वहभी मरकर पतिके शवके पास गिर पड़तीहै। अंतमें मक्कासे आया एक फकीर पति-पत्नी, दोनोंको जीवित करताहै। नाटकमें जसमाके सतीत्वके तेजके साथ श्रमिक-नारीका उसका तेजस्वी रूपभी प्रकट हुआहै, कालदेव द्वारा पुनर्जीवित किये जानेपर वह पुनः कामपर जानेको प्रस्तुत होजातीहै, कामकुंडला बनकर स्वर्गलोक नहीं जाना चाहती : "नहीं, रंगला! धरतीका ताजा स्नेह चखनेके बाद मुझे स्वर्गका बासी अमृत नहीं भायेगा। (पृ. ६१)

४—नाटकमें मध्यकालीन फकीरकी जगह कालदेव और लालदेवने लेलीहै, जो इन्द्रके सभासद हैं। यह एक नयी उद्भावना है, जो लेखिकाकी अपनी सूझका द्योतक है। कालदेव मूछित जसमाको जगाता और रूपाको 'जीवित करता' है तथा लालदेव शेष सभी ओड़ोंको पुनर्जीवित करताहै, अतः मध्यकालीन परिवेशसे मुक्ति लेनेके बावजूद उस घटनाको पौराणिक परिवेश और चमत्कारसे मंडितकर लेखिका किसी आधुतिकता-बोधका प्रतिपादन नहीं कर पायीहै। यह अवश्य है कि नाटकमें जसमा मरती नहीं, मात्र मूर्च्छित होतीहै ।

५-जसमाके विरूपांग पति रूपामें नाला ऋषिकी दार्शनिकता, सत्यको जाननेकी जिज्ञासा और सौंदर्य-बोध, सभी कुछ है। उसके सौंदर्य-बोधके कारण नाटककी जसमा उसके प्रति आकृष्ट होती और उसीके साथ विवाह करने पर तुल जातीहै। रूपा काला-कुरूप है और पारंपरिक वेशमें उसे उसके पिता द्वारा "रूपवान,रंग गोरा-बगुलेके पंख जैसा तथा "सातवें दरजे" तक "पढ़ा" बताया गया है, जबकि नाटककी भली उसे "उड़दके दाने-जैसा... काला" और फिर दलीके पूछनेपर रूपाकी आंखमें "राई जितना फूला" भी बतातीहै। उसे चार किताबें पढ़ाभी बताया जाताहै। बादमें दला उसे "बंदर", "भूत" और "कौवा" कहताहै और बारोट उसे "जानवर" कहकर अपमानित करताहै। वेशमें बारोट रूपाको "बंदर" और "जंगली" की संज्ञा देताहै, तो मोड़ उसे "रीछ" कहता है। परन्तु प्रत्येकमें रूपाका चयन उसके पढ़ा-लिखा होनेके कारण किया जाताहै । नाटकमें रूपा द्वारा संतों जैसी वाणी कहलाकर उसे ज्ञानी और संतभी सिद्ध किया गयाहै, जिससे उसे पारंपरिक रूपासे एक भिन्न रूप प्राप्त हुआहै ।

नाटकका रूपा वीरभी है और वह अपनी कुदाल लेकर जयसिंहसे युद्ध करता और लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त करताहै। राजा जसमाको मारने चलताहै, परन्तु जिसके तेजसे राजाकी तलवार हाथसे छूट जातीहै और वह पीछे हट जाताहै। रूपाकी मृत्युपर जसमा दुःखी होकर मूच्छित हो जातीहै।

६-जसमाका वेश, जसमाके चरित्रको छोड़कर, हास-मूलकहै, परन्तु नाटकका प्रधान रस वीर रस है तथा हास्य, शृंगार, करुण, रौद्र एवं अद्भुत रस गौण या सहायक रहकर वीर रसकी ही पुष्टि करतेहैं। प्रस्तुतमें परिधानकी रंग-योजना द्वाराभी रसको अग्रसर किया गयाथा।

उपर्युक्त अन्तरोंका मुख्य उद्देश्य नाटकको आधुनिकता-बोधसे जोड़ना और नये मूल्योंकी स्थापना करना रहाहै। यही कारण है कि एक ओर गणपतिके बहाने आधुनिक नेताको अपने जनोंको सब कुछ देसकनेकी क्षमतापर चोट कीगयीहै, तो जसमा और रूपाके विवाहके मध्य दहेज तय किये जानेके प्रसंग उठाकर आधुनिक दहेज-प्रथाके विरुद्ध प्रहार कियाहै। राजा और बारोटके विरुद्ध जन-आक्रोश जगाकर अपनी मान-रक्षाके लिए संघर्ष करने और बलिदान होनेकी भावना जगायी गयीहै। रूपा और जसमामें कर्मके प्रति निष्ठा और धरतीके प्रति आस्था दिखाकर स्वर्गके सुख और प्रलोभनोंको ठुकराया गयाहै। यही वह नयी भूमि है, जिस पर नाटकको खड़ा करनेमें लेखिका सफल रहीहै ।

लोकनाट्यकी रचना — रूढ़ियोंके साथ प्रस्तुतिकी सभी रूढ़ियोंको अपनाकर लेखिका-निदेशिकाने विश्वसनीयता पैदा कीहै और कथ्यके आधुनिकीकरण द्वारा लोकनाट्य भवाईके प्रति अपनी आस्था और समझका परिचय दिया है। एक ओर इसमें भूंगल, ढोलक, मंजीरा, कांस्य-जोड़ोने खड़ताल आदि पारंपरिक वाद्यों, गणपतिके चोगा, कामकुंडला और जसमाकी चोलियों, लहंगों, जाल-जसमाके बोशलू, राजा और बरोटके अंगरखों, पगड़ियों आदिके पारंपरिक परिधान आदिका उपयोगकर नाटकको यथार्थ बोधसे समन्वित किया गयाहै, तो दूसरी ओर परिधानों,

रंगोपकरणों आदिके चित्र देकर अन्य प्रयोक्ताओं/निर्देशकोंके कार्यको सरल बना दिया गयाहै। पुस्तकके बीच-बीचमें विविध पात्रों और प्रसंगोंके कुछ रेखा-चित्रभी दिये गयेहैं, जिनसे पुस्तककी सज्जामें निखार आया और उसकी उपयोगिता बढ़ीहै।

इस प्रकारके लोक-कथानकोंको लेकर अन्य लोक-नाट्य शैलियोंके अन्तर्गत नये प्रयोग किये जासकते हैं।□

मैं नारी तुम पुरुष[1]

नाटककार : डॉ. अज्ञात
समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय.

डॉ. अज्ञातके चार उपन्यास, एक कहानी संग्रह, दो समीक्षा ग्रंथ, तीन संपादित आलोचना ग्रंथ, तीन एकांकी संग्रह, और दो नाटक पूर्व प्रकाशित हैं। समीक्ष्य कृति डॉ. अज्ञातका पूर्णांगी नाटक है। इस नाटकका मुख्य विषय है पुरुष-प्रधान समाज द्वारा किया जानेवाला नारीका शोषण। आजाद भारतमें जबकि स्त्रियोंको भी पुरुषोंके समान सभी अधिकार प्राप्त हैं, उसकी अस्मिता और स्वतंत्रताका बलात् हरण होता रहाहै। आजादी और हमारी समाज व्यवस्थापर यह विद्रूपभरा व्यंग्य है। यह व्यंग्य तब और तीखा हो उठताहै जब हम देखतेहैं कि लोकसेवाका दंभ भरनेवाले व्यक्तिभी बलात्कार जैसे जघन्य कर्ममें प्रवृत्त होजातेहैं।

नाटक प्रस्तावना खण्डके अलावा तीन अंकोंमें विभाजित है। कथानककी प्रेरणा लेखकको नानावती आहूजा (अप्रेल १९५९) कांडसे मिली। बाइस वर्षों तक यह कथानक लेखकके मनमें पकता रहा और अंततः १९८३ में यह जिस रूपमें सामने आया वह इस प्रकार है : एक संघ है 'लोक सेवक संघ'। लोक सेवाका व्रत लेकर चरणदास इसे चला रहेहैं। देवदास, लोकरंजनदास और धर्मदास उसके मुख्य कार्यकर्ता हैं। सेठ हजारीमल संरक्षक, वकील आत्मानन्द सचिव हैं। संघ संचालक संघकी एक शाखा 'महिला-मंगल' के निमित्त खोलनेके लिए उत्सुक हैं। अतः लोकसेविकाके रिक्त पदपर स्वयंसेविका-के रूपमें एक 'लोक सेविका' की नियुक्तिका विज्ञापन ढिंढोरा पीटनेके अंदाजमें प्रस्तावना खण्डमें प्रस्तुत किया जाताहै। इसी खण्डमें लोकसेवकोंका परिचय और उनकी जिम्मेवारियाँभी स्पष्ट होतीहैं। प्रथम अंकमें एक दुखिया स्त्री जो नदीमें डूबकर आत्मघात करनेको तत्पर थी, देवदास संग लिये संचालकके समक्ष उपस्थित होताहै और बादमें वह लोकसेविका बन जातीहै। संचालक महोदय उसकी रूपराशिपर मुग्ध हैं—इस अंकमें यह स्पष्ट होजाताहै।

दूसरे अंकमें दो घटनाएं मुख्य हैं : भगवती द्वारा देवदासको आपबीती सुनाया जाना और संघ सेविकाका 'यूनिफार्म' पहनानेके बहाने चरणदास द्वारा भगवतीपर अपना अनुराग स्पष्ट कर देना। भगवतीका पति व्यभिचारमें लिप्त था और अपनी प्रेयसीके पति द्वारा मारा गया। हत्याके बाद फरार होगया। वही सैनिक अधिकारी चरणदास, संघ संचालक बन गया और लांछनका जीवन जीते हुए भगवती एक दिन आत्महत्याके लिए निकल पड़ी और संयोगने उसे देवदास फिर पतिघातक चरणदाससे मिला दिया। उधर चरणदास बड़े अनुरागसे भगवतीका शृंगार करवाताहै, ड्रैस पहनवाताहै। भगवतीके लिए आगेकी बात समझनी मुश्किल नहीं रह जाती।

तीसरा अंक अगले दिनका है जब एक कार्यक्रम द्वारा 'महिला मंगल शाखा' का उद्घाटन होना और भगवती का सबसे परिचय कराया जानाथा। पर सुबह होतेही देवदास और भगवती आश्रमसे निकलकर विवाह कर लेते और उनकी अनुपस्थितिमें ही उद्घाटन कार्यक्रम पूरा होताहै। बादमें वे लौटकर चरणदासको नयी परिस्थितिसे अवगत करातेहैं—आश्रम छोड़नेका अपना निर्णय बतातेहैं तो चरणदास हतप्रभ रह जाताहै। लेकिन बड़ी कुटिलतासे वह उन्हें उस दिनके लिए निकटस्थ हजारीमल धर्मशाला में ठहरा लेतेहैं। बादमें और अंतमें पता चलताहै कि उसके साथ जबर्दस्ती कीगयी। इसकी पुष्टिमें उसका लंबा एकालाप प्रस्तुत किया गयाहै जिसका दूसरा प्रयोजन स्त्रियोंके शोषणको भी उभारनाहै। नाटकका दूसरा अंतभी है जिसमें यह बलात्कार प्रसंग नहीं है, केवल चरणदासकी आत्मस्वीकृति है कि उसने भगवतीसे संबंध बनाना चाहाथा, पर इस अंशकी विशेषता इसमें है कि फ़िल्मी अंदाज़में अचानक एक इंस्पेक्टर उसे हत्या एवं हज़ारीमलकी नकली दवाओंके कारोबारमें शरीक होनेके आरोपमें गिरफ्तारकर लेताहै।

१. प्रकाशक: समीर प्रकाशन, छायालोक, १११-ए/१८३ अशोकनगर, कानपुर-१२। पृष्ठ : ५८; डिमा. ८३; मूल्य : १२.०० रु.।

डॉ. अज्ञातने इस नाटकका अंतिम रूप बार-बार सुधार करने उपरान्त तैयार कियाहै इसलिए कृतिमें अभिनेयताका गुण आगयाहै। रंगमंच और रंगकर्मकी तंत्रकको अच्छी जानकारी है और उन्होंने इसका उपयोग भी अपनी रचनामें कियाहै। नाटक साधनविहीन रंग-संस्था द्वारा भी आसानीके साथ खेला जा सकताहै। नारी मुक्तिके विषयको आजभी लोगोंके मनमें उतारनेकी जरूरत है, और इस रचनासे वह जरूरत पूरी होतीहै। आशा है भविष्यमें डॉ. अज्ञात औरभी गंभीर विषयोंपर नाटक देसकेंगे। □

काव्य संकलन

बोधिसत्त्व सुनें ![1]

कवि : अनिल राकेशी

समीक्षक : डॉ. विजय.

'बोधिसत्त्व सुनें!', 'अयाचित प्रसंग' और 'शुरूआत' शीर्षकोंमें विभाजित कृति 'बोधिसत्त्व सुनें!' कुल सत्ताईस कविताओंका संकलन है। प्रथम खंडमें छः दूसरेमें नौ और तीसरे खडमें बारह कविताएं अपनी-अपनी भूमिकामें स्पष्ट हैं। कवि अनिल राकेशीने इन कविताओंके माध्यमसे अपने बाहरी और भीतरी परिवेशका सही लेखा प्रस्तुत कियाहै। कविताको अपनी भूमिकाके प्रति सावधान करते हुए कविका यहां निजी भाव-बोधही प्रबल रहाहै। कवि अनिल राकेशीका अपना रचना-संसार प्रस्तुत संग्रहमें अपनी थाह पागयाहै। अपनी-अपनी मुद्रामें, कुछ एक कविताओंको छोड़कर, सभी कविताएं ध्यान आकर्षित करतीहैं।

'बोधिसत्त्व सुनें!' खंडकी कविताओंमें कहीं कवि स्वयं समिधा बननेको प्रतिक्षण आतुर है, कहीं कविता जैसे किसी और वक्तसे ज़रूरी चीज़ लगने लगीहै और कहीं वह चीख़ और संगीतमें भेद करता हुआ समकालीन संदर्भोंको बटोरता चला गयाहै। अपने बीचमें होते हुए नाटकसे वह बेहद नफरत करताहै। किसीका लौटना और उसकी औकातका भी लौट आना कविको बहुत प्रिय है। बुद्ध कालिदास, भवभूति, व्यास, अश्वघोष, शंकराचार्य और कामूसे बातें करते हुए कुत्तेकी हड्डीको याद-कर के कविने एब्सर्डिटीकी उम्दा तस्वीर प्रस्तुत कीहै :

"मैंने बुद्धसे पूछाथा :
'एब्सर्डिटीपर कुछ कहोगे?'
... ...
सुनो कामू!
मैं एब्सर्ड तो नहीं हूं?"

(कुत्तेकी हड्डी)

'अयाचित प्रसंग' खंडकी कविताओंमें 'एक नहर गंधकी' कविता एक अच्छी कविता बन पड़ीहै। यहां गंधकी नहरका लगातार बहते चले जानाही भीतरतक छू जाताहै। यहाँ द्रष्टव्य यहभी है कि कविने अन्यत्रभी 'नहर' शब्दका प्रयोग नवीन संदर्भोंमें कियाहै :

"यही
हां, यही परिणति है
इस संबंधकी :

बहतीहै
तुमसे मुझतक
एक नहर गंधकी!"

(एक नहर गंधकी)

तथा :

---

[1] प्रकाशक : ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, २१ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ९६; डिमा. ८४; मूल्य : ३०.०० रु.।

"इस साफ शफ्फाफ मौसममें
नहर बंद करनेकी
क्या सूझी तुम्हें ?"

(अयाचित प्रसंग)

'वर्षांतके क्षितिजपर', 'इन्तजार' और आवाज़ कविताओंके माध्यमसे कविने अतीत और वर्तमानकी बढ़ती हुई खाईको पाटाहै। 'कांताके नाम' तथा 'बिडम्बना' कविताओंमें 'हिरनी' और 'कांचका टुकड़ा' का प्रतीकात्मक प्रयोग अत्यधिक सराहनीय है। 'जाड़ोंमें मालपर', 'परिकल्पना' तथा 'अयाचित प्रसंग कविताओंमें व्यक्तिगत जोवनके सुखद चित्र एकदम साफ उभरेहैं।

'शुरूआत' खंड इस संग्रहका अंतिम खड है। यहाँ बीजका सहेजना और उसका पड़े-पड़े नष्ट होजाना चुभताहै। 'लोक/तंत्र', 'निर्णयका क्षण', 'चेतावनी' तथा 'लास्ट पोस्ट' कविताओंमें कवि एकाएक निर्णायककी भूमिकामें आखड़ा हुआहै। त्रासदी और सौन्दर्यबोधको अदृश्य चिमटीसे पकड़ता हुआ वह मछली बाजारकी बदबू छानता फिर रहाहै। 'चमत्कारका इन्तजार' और 'शुरूआत' कविताएं अपनी प्रगल्भताकी वजहसे ज्यादा प्रभावित नहीं करतीं। 'भूल-भुलैयामें' कवितामें भी कवि शब्दोंकी भूल-भुलैयामें ही खो गयाहै। अपनी लम्बी कविता 'मदारी' में कवि इतिहासके बदलते परिवेशसे चिन्तित है। वह इतिहासके निर्णयके इन्तजारमें बैठा हुआहै। वह आसुरी शक्तियों द्वारा फैलाये गये अंधकारको मिटाना चाहताहै। उसे नूतन सृष्टिके आगमनका आभास होताहै।

उसे लगताहै कि इतिहासकी प्रत्येक यात्रा 'मैं'से शुरू होकर 'मैं' पर ही खत्म होजातीहै। 'योंभी होताहै' 'उगते दो जंगल' तथा 'इतिहासकी सुरंग' कविताओंमें कवि प्यार और संघर्षके बीच टहलता हुआ सब कुछ करीनेसे व्यवस्थित करना चाहताहै। और अंधी तथा अंधेरी सुरंगका अन्तर भी समझना चाहताहै। कविका आस्थापरक स्वर इन कविताओंमें अत्यधिक गहराईतक उतराहै।

कवि अनिल राकेशीका प्रस्तुत संग्रह इधरके प्रकाशित कविता संग्रहोंसे अपनी अलग ध्वनि दे रहाहै। यहां भीतर और बाहरका सब कुछ इतना सिमट गयाहै कि कविताका सही सरोकार समझ आने लगताहै। कविने अपने अनुभवोंको सामाजिक स्तरपर कसकर ही कविताका अंग बनायाहै। कविताओंकी सहजतासे जुड़ते चले जानाही इस संग्रहकी उपलब्धि है।

'बोधिसत्त्व सुनें!' की व्यापक ध्वनिने किसीको भी माफ नहीं कियाहै। ऐसा कोई एक उदाहरण देनेसे बेहतर यही होगा कि पाठक स्वयं संग्रहकी सारी कविताओंको पढ़ें और कविताके उस नये मूडसे परिचित हों जोकि अनिल राकेशीने अपनी सहजतामें दियाहै। □

संवेदनाओंके स्वर[1]

कवि : महेशचन्द्र पुरोहित
समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी.

अपने प्रथम काव्य संकलनमें कविकी भावभूमि जिन बिन्दुओंको लेकर चलीहै उसमें प्रणय-गंध, राष्ट्रीय चेतना और विसंगतियोंपर व्यंग्यका तीखा स्वर उभरकर सामने आताहै। कुछ रचनाओंमें अध्यात्मकी झलकभी दिखाई देतीहै।

कविके रोमान तेवर यौवनका उन्माद, रूप-रसका माधुर्य और स्मृतियोंकी कौंध है। कुछ पंक्तियोंपर नीरज का प्रभाव स्पष्ट है। प्रणयपंखोंकी उड़ान, कुआंरी शरमकी कसम, नीरवताका वातायन, सौंदर्यका, कौमार्य, मुखड़े की मासूम पहेली आदि शब्दावली कुछ अंशोंको मोहक और प्रभावशाली बना देतीहैं। लेकिन ये रचनाएं आजकालके माहौलसे दूर बहुत देरतक भरमा नहीं सकतीं। यह कच्ची उमरकी बहकती कायाका इठलाना जैसा है।

इस संग्रहमें वे रचनाएं हमें ज्यादा प्रभावित करती हैं जो प्रतीकोंके माध्यमसे विषमताओं और कुरूपताओंको बेनकाब करतीहैं। उदाहरणके तौरपर

(१) दस नंबरी कमरा वह / गगनचुम्बी होटलका/ दो नम्बरी धुएंसे धुंधला है/ सुरा और साकीसे / खुदको गरम रखनेकी सनकमें / कमरेकी हवाओंने / पी लीहै रम इतनी / कि खिड़ककी रोशनीकी / कै होकर गिरीहै।

(२) एक कटघरेमें मैं था / और मेरे सामने / दूसरे कटघरेमें / मेरी अपनीही छाया / मेरेही खिलाफ गवाही देते /मुखबिर बन खड़ीथी।

---

१. प्रकाशक; राजस्थान प्रकाशन गृह, सीतापारा, उदयपुर। पृष्ठ: ६०; डिमा. ८३; मूल्य: २०.०० रु.।

कविकी रचनात्मक शक्ति, वस्तुस्थितिको व्यंग्यकी तेज धारके साथ प्रस्तुत करनेमें ज्यादा सफल हुईहै, विश्वमें पांच बरसकी काली रातोंमें सौदागरका चरित्र उजागर हुआहै और 'संवेदनहीन सभ्यता' आंतरिक कुरूपता' लेकर व्यक्त हुईहै।

कुछ कविताएं नवनिर्माण और श्रमकी महत्ताका इजहार करतीहैं लेकिन उपदेशपरक और प्रचारात्मक मालूम होतीहैं। कविको 'गुलमोहरका दुलार' और आंखोंके लाल डोरे' जैसी रचनाओंमें अंतर्निहित सत्यको प्रकट करनेमें जो सफलता मिलीहै, वह इन रचनाओंमें नहीं।

इस प्रथम काव्य संकलनको देखकर कहा जासकता है कि व्यंग्यकी जमीनपर अक्खड़ताके साथ चलते हुए इस बातको चरितार्थता दीजा सकतीहै कि—

मौतकी गहराइयोंपर पुल बनाती
जिन्दगी सीटी बजाती जारही। □

अक्स[1]

कवि : नीतीश्वर शर्मा नीरज
समीक्षक : डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी.

युवा सर्जनात्मकताकी काव्यभंगिमा इधर गजलकी गलियोंसे बार-बार गुजरने लगीहै। इसी कारण एक बारगी हिन्दीमें गजलगो युवा कवियोंकी खासी भीड़ हो गयी। इसी मेलेमें एक नाम है नीतिश्वर शर्मा नीरजका। स्वभावतः यह नाम न तो दुष्यंतकुमारके बाद दूसरा उल्लेखनीय नाम है (जैसाकि प्रकाशकीय वक्तव्यमें सूचित किया गयाहै) और न यह नाम बिहारका अकेला प्रतिनिधित्वही करताहै (जैसाकि आचार्य शास्त्रीजीने 'प्रस्तुति' में घोषित कियाहै)। प्रसन्नता इस बातकी है कि युवा कवि नीतिश्वरका यह पहला गजल-संकलन 'अक्स' सम्भावनाओंके एक नये संसारमें पहुंचताहै।

बावजूद इसके कि 'अक्स' में एकत्र अनेक गजलोंमें पारम्परिक आंसुओंकी धारा और इश्ककी बेचैनी मौजूद है, नीतिश्वर बधाईके पात्रहैं कि उन्होंने गजलोंमें मनुष्य की जिजीविषा और कामगरके पसीनेको विस्तार दियाहै। इस संकलनकी बहुतेरी गजलोंमें इंसानियतके लोप और सांस्कृतिक विघटनकी अभिव्यक्ति मिलीहै। इन्सान और जानवरके बीच अन्तर स्थापित करनेकी कोशिश करने वाले इस युवा गजलकारने पूरे सामर्थ्यके साथ रेखांकित कियाहै कि मौजूदा हालातमें भूखसे ऐंठती अंतड़ियोंको उपदेशोंके शब्द लगातार छल रहेहैं। इन गजलोंमें कहीं फाका काटनेवालोंके साथ गहरी सहानुभूति नजर आती है तो कहीं भोरकी किरणका इन्तजार दिखायी पड़ताहै। मजदूरोंके पसीनेकी गंध और बागमें खिली कलीके सुर्ख चेहरेकी चमकके साथ 'अक्स' के कविका सीधा परिचय है। इसी कारण, अवसर मिलतेही व्यवस्थाकी फिसलनों और पीड़ित समुदायकी असहायताओंकी यथातथ्य अभिव्यंजना इन गजलोंमें हुईहै। परिवेशके मायाजालको चीरनेके क्रममें नीतिश्वरने व्यंग्यका सफल इस्तेमालभी कियाहै, जैसे—

'और तो अब पास कुछ अपने नहीं,
जातिका केवल बचा अभिमान है।' (पृ. १८)
'साफ सुथरेहैं वहां वे इसलिए
हैं हमारे हाथ कीचड़में सने।' (पृ. २०)

ऐसी गजलोंका रास्ता किसीको दिग्भ्रमित नहीं करता और यही नीतीश्वरकी मौलिकता है। अपनी बात कहनेके लिए कविने मुहावरों और प्रतीकोंका सटीक इस्तेमाल कियाहै। द्रौपदी (पृ. १८) कौरव (पृ. ३०) जैसे पौराणिक बिम्बोंकी प्रस्तुतिभी 'अक्स' की गजलोंको नवीनता देतीहै। क़फ़स (पृ. ३६), सुर्ख़रू (पृ. ४३) खिजां (पृ. ४८), बशर (पृ. ६०) जैसे शब्दोंकी जगह हिन्दी शब्दावली अधिक उपयुक्त होती। इसमें सन्देह नहीं कि इन ४५ गजलोंमें आकर्षण एवं शक्ति है, जिसके लिए न आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीकी लम्बी भूमिका जरूरी थी और न ग्यारह महानुभावोंकी सम्मतियोंकी प्रासंगिकता थी। □ □

---

1. प्रकाशक : **मानव परिषद प्रकाशन, इमामगंज, मुजफ्फरपुर-८४२००१। पृष्ठ : ९४; डिमा. ८३;** मूल्य : २५.०० रु.।

आवश्यक सूचना

कागज तथा अन्य विभिन्न खर्चोंमें वृद्धिके कारण 'प्रकर' का जनवरी '८५ से वार्षिक मूल्य ३५.०० रु. किया जा रहाहै। नवीकरणके लिए अथवा नये ग्राहक यही शुल्क भेजनेकी कृपा करें।

शोध : आलोचना

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : व्यक्तित्व और कृतित्व

सम्पादक : डॉ. प्रकाश आतुर

समीक्षक: डॉ. रामस्वरूप आर्य.

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरीके जन्मशती वर्षके उपलक्ष्यमें राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुरकी ओरसे 'मधुवती' का जनवरी-फरवरी १९८३ ई. का संयुक्तांक 'गुलेरी जन्मशती विशेषांक' के रूपमें प्रकाशित हुआथा। समीक्ष्य ग्रंथ उसीका पुस्तक रूप है।

स्वनामधन्य गुलेरीजी द्विवेदी-युगके विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार थे। हिन्दीमें उनकी चर्चा 'उसने कहाथा' कहानीके अमर कथाकारके रूपमें हुईहै। यत्र-तत्र उनके 'कछुआ धर्म' और 'मारेसि मोहि कुठांव' निबन्धोंका उल्लेखभी मिलताहै। किन्तु उनका अधिकाँश कृतित्व अंधकारके गर्तमें ही छिपा रहगया। गुलेरी जन्म शती वर्षमें प्रकाशित 'चन्द्रधर शर्मा गुलेरी: व्यक्तित्व और कृतित्व' ग्रन्थमें उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्वके बहुआयामी पक्षोंपर प्रकाश डालनेका प्रशंसनीय प्रयास किया गयाहै।

समीक्ष्य ग्रन्थके आरंभमें गुलेरीजीका आत्म-परिचय दिया गयाहै, जिससे उनके जीवन-क्रमका प्रामाणिक विवरण प्राप्त होताहै। 'कथा' खंडके अन्तर्गत गुलेरीजी की तीन कहानियां 'सुखमय जीवन', 'बुद्धूका काँटा' तथा 'उसने कहाथा' रचनाक्रमके आधारपर दी गयीहैं। 'उसने कहाथा' कहानी हिन्दीकी अनेक पाठ्यपु-स्तकोंमें संकलित है किन्तु इसके कुछ पद्यांशोंको अश्लील समझकर छोड़ दिया जाता रहाहै। प्रस्तुत ग्रन्थमें उसे अविकल रूपमें प्रकाशित किया गयाहै। साथही गुलेरीजीकी हस्तलिपिमें इसके पांच पृष्ठोंके चित्रभी दिये गयेहै। श्री राजेन्द्र सक्सेनाने 'उसने कहाथा' कहानीका रेडियो रूपान्तर कियाहै। समीक्ष्य ग्रन्थमें उसेभी सम्मिलित किया गयाहै।

गुलेरीजी श्रेष्ठ निबंधकारभी थे। समीक्ष्य ग्रन्थमें उनके तीन निबन्ध 'कछुआ-धरम' 'जाल हंसकी सुभाषित मुक्तावलि और चन्द्रकी षट भाषा' तथा बे-सिरकी हिन्दी संकलित किये गयेहैं।

ग्रन्थका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेख 'श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकी साहित्यिक प्रतिभा' (डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी) है। इसमें स्व. गुलेरीजीके निबंधकार, भाषावैज्ञानिक, पुरातत्त्ववेत्ता तथा पत्रकार रूपपर सविस्तार प्रकाश डाला गयाहै। पुन: डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरीने अपने एक अन्य लेख 'समालोचक, सम्पादक एवं पत्रकार गुलेरीजी' में कुछ महत्त्वपूर्ण स्थापनाएं प्रस्तुत कीहै। गुलेरीजीने अपने पत्र 'समालोचक' के वर्ष ४ अंक २ (सितम्बर १९०५ ई.) में 'संगीतकी धुन' शीर्षक लेखके रूपमें संगीताचार्य पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्करपर स्व-लिखित इन्टरव्यू प्रकाशित कियाथा। डॉ. शर्माकी मान्यता है 'इस लेखसेही गुलेरीजीने १९०५ सितम्बरमें पश्चिमकी इस विधा, इन्टरव्यू विधाका हिन्दी साहित्यमें सर्वप्रथम सूत्रपात तथा आद्यप्रवर्तन किया।' (पृ. १०६) उनका यह मन्तव्यभी महत्त्वपूर्ण है—"हिन्दी साहित्यके शोधार्थियोंके लिए यह ध्यातव्य होगा कि १९०४ की सरस्वतीमें पुस्तक समालोचनाके स्तम्भसे पूर्व १९०३ में समालोचक पत्रसे गुलेरीजी 'हमारी अलमारी' 'यत्र-तत्र सर्वत्र' तथा समालोचना स्तंभके अन्तर्गत नियमित पुस्तक समालोचना प्रारम्भ कर चुकेथे।" (पृ. १०६)। इनके अतिरिक्त 'सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी' (डॉ. विजयेन्द्र स्नातक), गुलेरीजीकी बहुमुखी [illegible] प्रतिभा' (अखिल विनय), 'गुलेरी व्यक्ति, कृति, [illegible] (डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय), 'भाषा मनीषी [illegible] गुलेरीजी' (डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन) आदि लेखभी महत्त्वपूर्ण हैं।

१. प्रकाशक : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर। पृष्ठ : १९०; डिमा. ८३; मूल्य : १२.०० रु.।

ग्रन्थमें गुलेरीजीकी प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहाथा' पर एक परिचर्चाभी दीगयीहै, जिसमें सर्वश्री विद्याधर गुलेरी, कमला रंजन, मृत्युंजय उपाध्याय तथा सत्येन्द्र चतुर्वेदीने इसपर विभिन्न कोणोंसे विचार कियाहै।

गुलेरीजीके निधनके उपरांत उनके सुपुत्र स्व. योगेश्वर शर्मा गुलेरीने 'स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरीके अन्तिम क्षण' लेख लिखाथा जो कलकत्तासे प्रकाशित 'नया समाज' के वर्ष २ खण्ड ४ अंक ६ में प्रकाशित हुआथा। समीक्ष्य ग्रन्थमें उसेभी संकलित किया गयाहै। इससे गुलेरीजीके अन्तिम क्षणोंका मार्मिक परिचय प्राप्त होताहै। इसी क्रममें स्व. गुलेरीजीके सहपाठी श्री रघुनन्दन शर्माका लेख 'उसने कहाथा' के अमर लेखक गुलेरी जी मेरे गुरूभाई थे" काभी अपना महत्त्व है।

ग्रंथके अंतमें गुलेरीजीकी एक दुर्लभ कविता 'झुकी कमान' तथा उनके प्रकाशित लेखोंकी 'संदर्भ-विवरणिका' दी गयीहै, जिससे निबंध एवं आलोचक क्षेत्रमें उनके योगदानका परिचय मिलताहै।

इतने महत्त्वपूर्ण एवं सुनियोजित ग्रन्थमें कुछ भूलें खटकनेवाली हैं, यथा—गुलेरीजीका जन्म सन् १८८३ ई. है जबकि समीक्ष्य ग्रन्थके पृ. ८८ पर लिखा गयाहै 'गुलेरीजीका जन्म २५ आषाढ़ सम्वत् १९४० तदनुसार ७ जुलाई १८८५ को जयपुरमें हुआ।' इसी प्रकार पृ. ९५ पर गुलेरीजी द्वारा सम्पादित पत्र 'समालोचक' के संबंधमें लेखकका कथनहै १९०१से '१९०७तककी समालोचक पत्र की पुरानी फाइलोंका पूर्ण अध्ययन करनेसे आपकी सम्पादकीय क्षमता व आलोचन कलाका पूरी तरह आभास हो जाताहै।" जबकि इसी पृष्ठपर आगे चलकर लेखक महोदय बतातेहैं 'समालोचकका प्रथम अंक १९०२ के अगस्त मासमें प्रकाशित हुआथा।' पृ. ९६ पर लेखक महोदय लिखतेहैं 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाकाभी गुलेरीजीने १९२० से १९५० ई. तक सफल सम्पादन किया', पर गुलेरीजीका स्वर्गवास तो १९२२ ई. में ही होगयाथा तथा उन्होंने जीवन पर्यन्त १९२२ ई. तक ही नागरी प्रचारिणी पत्रिकाका सम्पादन कियाथा। (यह भ्रान्ति संभवतः मुद्रणकी असावधानीबश हुई है।) सम्पादक महोदय इस प्रकारकी भूलोंका निराकरण प्रकाशनसे पूर्वही कर पाते तो अच्छा रहता।

प्रस्तुत ग्रन्थ स्व. गुलेरीजीके प्रति श्रद्धांजलि है। □

गुलेरी साहित्यालोक[1]

सम्पादक : डॉ. मनोहरलाल

समीक्षक : डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी.

सम्पादकने इस ग्रन्थमें 'अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखी आलोचना तथा उनके (गुलेरीजीके) समग्र कृतित्वका उत्तम प्रतिनिधित्व करनेवाली उनकी मौलिक रचनाए' संकलित कीहैं। यह कार्य दो खंडोंमें है। प्रथम खंडमें चार उपखंड हैं—साहित्यकार, कहानीकार, भाषाविद् और संस्मृतियां। दूसरे खंडमें गुलेरीजीकी तीन कहानियां, तीन निबन्ध, पांच भाषा विषयक लेख, एक विज्ञान विषयक लेख, चार लोक और कला-विषयक लेख, दो कविताएं और आठ टिप्पणियां हैं। 'परिशिष्ट' भी है जिसमें विलम्बसे मिलनेके कारण यथास्थान न दिया जासका 'बुद्धूका कांटा' कहानीपर एक लेख, कुछ सम्मतियां (गुलेरीजीके बारेमें), गुलेरीजीके प्रति चार पत्र-पत्रिकाओंमें छपी श्रद्धांजलियां और गुलेरीजीकी रचनाओंकी सूची है।

शोधकी दृष्टिसे रचनाओंकी सूची, प्रकाशन-कालका असंदिग्ध महत्त्व है, भलेही सामान्य पाठकके लिए ये रोचक न हों। डॉ. मनोहरलालने यह बात शोचनीय मानीहै कि "गुलेरीजीका समग्र कृतित्व उनकी मृत्युके लगभग ६० वर्ष बादतक भी एक प्रामाणिक ग्रंथावली का रूप धारण नहीं कर पाया।" (पृष्ठ २६) शोधमें रुचि रखनेवाले हर जिज्ञासुके लिए यह शोचनीय बात है। इससे भी अधिक शोचनीय बात यह है कि अबतक गुलेरीजीकी प्रकाशित रचनाओंकी भी प्रामाणिक सूची नहीं बन सकीहै। मेरे सामने दो सूचियां हैं इस ग्रन्थमें प्रकाशित डॉ. मनोहरलाल द्वारा तैयार सूची और दूसरी 'मधुमती' पत्रिकाके 'गुलेरी जन्मशती विशेषांक' (जनवरी-फरवरी १९८३) में दीगयी गुलेरीजीके पौत्र डॉ. विद्याधर शर्मा द्वारा तैयार सूची। यह पुस्तकाकार भी छप चुकीहै। समालोचक, सरस्वती, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, प्रतिभा आदि पत्रिकाओंमें गुलेरीजीकी रचनाएं छपीथी। दोनों सूचियोंका अन्तर निम्न है :

---

१. प्रकाशक : किताब घर, मेन बाजार, गांधीनगर, दिल्ली-३१। पृष्ठ : ३६८; डिमा. ८४; मूल्य : ९२.०० रु.।

१. 'ऑन शिव भागवत इन पातंजलि' लेख डॉ. मनोहरलालकी सूचीके अनुसार 'इन्डियन एण्टीक्वरी' में नवम्बर १९१३ में छपा, जबकि डॉ. विद्याधरने इसे नवम्बर १९१२ में छपा, लिखाहै।

२. 'ए पोयम बाई भास' लेख डॉ. मनोहरलालकी सूचीमें 'इन्डियन एण्टीक्वरी' में नवम्बर १९१२ में छपा बताया गया है जबकि डॉ. विद्याधरने इसका प्रकाशन-काल फरवरी १९१३ दियाहै।

३. 'हलवाई' लेख डॉ. मनोहरलालने नवम्बर १९२० (प्रतिभा) में प्रकाशित लिखाहै। डॉ. विद्याधरकी सूचीके अनुसार यह दिसम्बर १९२० है।

४. 'सगीत' लेख डॉ. मनोहरलालके अनुसार मार्च १९११ की 'मर्यादा' में छपाथा जबकि डॉ. विद्याधरके अनुसार १९१० में।

५. 'पुरानी हिन्दी' का प्रकाशन-काल डॉ. मनोहरलालके अनुसार १९२१-२२ (नागरी प्रचारिणी पत्रिका) है जबकि डॉ. विद्याधरके अनुसार १९२७ है।

६. 'रड्डा छंद' टिप्पणी डॉ. मनोहरलालकी सूचीके अनुसार 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में १९२१ में छपीथी जबकि डॉ. विद्याधरके अनुसार १९२० में।

७. 'जालहंसकी सुभाषित मुक्तावली और चंदकी षट्भाषा' का प्रकाशन-काल डॉ. मनोहरलालके अनुसार नवम्बर १९१८ है, जबकि डॉ. विद्याधरके अनुसार १९२० है।

८. डॉ. मनोहरलालकी सूचीके अनुसार 'शिक्षाके आदर्शोंमें परिवर्तन' लेख 'विद्यार्थी' में १९१४ में छपाथा जबकि डॉ. विद्याधरके अनुसार नवम्बर १९०४ में।

९. 'पुराना व्योपार' लेख डॉ. मनोहरलालके अनुसार 'प्रतिभा' में जनवरी १९२० में छपाथा, डॉ. विद्याधरके अनुसार १९१९ में।

१०. 'संस्कृतकी टिपरारी' लेख डॉ. मनोहरलालके अनुसार 'सरस्वती' में अप्रैल १९१२ में छपाथा जबकि डॉ. विद्याधरके अनुसार १९१८ में।

११. 'परीक्षा पत्र निरीक्षण' टिप्पणी डॉ. मनोहरलालकी सूचीके अनुसार 'समालोचक' में अक्तूबर-नवम्बर १९०३ में छपीथी जबकि डॉ. विद्याधरके अनुसार दिसम्बर १९०३ में।

१२. 'काशी' निबन्धकी प्रकाशन-तिथि डॉ. मनोहरलालने जून-जुलाई १९०६ (समालोचक) दी है जबकि डॉ. विद्याधरने मार्च १९०६ लिखीहै।

ये दोनों सूचियोंमें अन्तरके कुछ उदाहरण हैं। निश्चयही इनमें से एकही तिथि शुद्ध होगी शोधार्थी किसका विश्वास करे? यहीं हिन्दी शोधकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो उठतीहै। ऐसीभी अनेक रचनाएं हैं जो डॉ. विद्याधरने अपनी सूचीमें दीहैं लेकिन डॉ. मनोहरलालकी सूचीमें उनका उल्लेख नहीं है।

प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहाथा' को लेकर भी एक भ्रम पैदा होताहै। 'मधुमती' के विशेषांकमें कहानीका प्रकाशन अक्तूबर १९१५ में 'सरस्वती' में हुआ माना गयाहै, लेकिन डॉ. मनोहरलालने 'गुलेरी साहित्यालोक' में जून १९१५ दियाहै।

'मधुमती' में गुलेरीजीका एक आत्मकथ्य मूल अंग्रेजीसे अनूदित होकर छपाहै। इसमें वे लिखतेहैं— "अंग्रेजी, मानसिक एवं नैतिक विज्ञान और संस्कृत विषय लेकर मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे १९०३ ई. में बी. ए. परीक्षा पास की और विश्वविद्यालयके सफल परीक्षार्थियोंमें सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया।" (पृष्ठ १०) 'गुलेरी साहित्यालोक' में डॉ. पीयूष गुलेरीने 'जीवन वृत्त' निबन्धमें लिखाहै कि "उन्होंने सन् १९०२ में इलाहाबाद विश्वविद्यालयकी बी. ए. परीक्षा प्रथम श्रेणीमें, सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके, उत्तीर्ण की। विषय थे— अंग्रेजी, दर्शनशास्त्र तथा संस्कृत।" (पृष्ठ १८)

डॉ. मनोहरलालने 'मधुमती' के विशेषांकका उल्लेख अपने संपादित ग्रन्थमें कियाहै, इसलिए यह तो नहीं कहा जासकता कि यह विशेषांक उन्होंने देखा नहीं था। यदि 'मधुमती' में दिये गये गुलेरीजीके जीवन-सम्बन्धी तथ्य गलत थे या रचनाओंका प्रकाशन-काल त्रुटिपूर्ण था तो 'गुलेरी साहित्यालोक' में अशुद्धियोंका निराकरण करना जरूरी था।

डॉ. मनोहरलालकी स्थापना है कि "गुलेरीजी पहले कवि हैं, बादमें निबन्धकार, कथाकार या अनुसंधित्सु, कुछभी। उन्होंने ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थान तथा संस्कृतमें भी कविताएं लिखीहैं। अंग्रेजी तथा संस्कृत काव्यका ब्रज और खड़ी बोलीमें अनुवादभी कियाहै।" (पृष्ठ ९७) इसका अर्थ है कि गुलेरीजी प्रमुख रूपसे कवि हैं, गौण रूपसे और कुछ। लेकिन 'गुलेरी साहित्यालोक' में उन्होंने मात्र दो कविताएं दीहैं। संभवतः स्थानाभाव इसका कारण हो, लेकिन गुलेरीजीके कवि रूपपर या उनकी काव्य-चेतनापर इस ग्रन्थमें एकभी

लेख नहीं है। 'गौण' कहानीकार रूपपर बारह लेख हैं! गुलेरीजीकी पत्रकारितापर भी एक लेख (कमसे कम) होता तो अच्छा था।

यदि व्यक्तियोंकी तरह रचनाओंकी भी जन्मकुंडली तैयार होने लगे तो समीक्षाके क्षेत्रमें 'जन्मकुंडली स्कूल' शुरू होसकताहै। लेकिन उससे यह भय है कि रचनाकार ज्योतिषियोंसे पूछकर रचनाको जन्म देने लगेंगे और अनायास अभिव्यक्तिका रास्ताही बंद होजायेगा। कुछभी हो, 'उसने कहाथा' का जन्म शुभ घड़ीमें हुआथा कि उससे रचनाकारकी पहचान हुई। जो लोग आजभी इस कहानीको हिन्दीकी 'सर्वश्रेष्ठ' कहानी मानतेहैं, वे हिन्दी कहानीकी विकास-परम्परासे पूरी तरह परिचित नहीं हैं। ऐसे बयान परीक्षाके प्रश्न-पत्रोंके लिए तो ठीक हैं—"सिद्ध कीजिये कि 'उसने कहाथा' हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है।" लेकिन समीक्षाके क्षेत्रमें ऐसे भ्रम फैलना या फैलाना उचित नहीं है। गुलेरीजीके कहानीकार रूपपर स्तुतिपरक लेखोंके बीच डॉ. सुशीलकुमार फुल्लका लेख पठनीय बन पड़ाहै।

डॉ. मनोहरलालका कहनाहै कि अबतक सब संपादकोंने 'उसने कहाथा' का भ्रष्ट पाठही छापाहै और "प्रस्तुत ग्रन्थमें पहली बार 'उसने कहाथा' का प्रामाणिक पाठ, मूल पांडुलिपि तथा 'सरस्वती' में छपे पाठके आधारपर प्रस्तुत कियाजा रहाहै।" (पृष्ठ ३०) अन्यत्र लिखाहै कि "प्रस्तुत ग्रन्थमें पहली बार 'सरस्वती' में छपे पाठको ज्योंका त्यों प्रस्तुत कियाजा रहाहै, वर्तनीभी सरस्वती-सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीकी ही रखीहै।" (पृष्ठ ९) क्या यह मान लिया जाये कि 'सरस्वती' में प्रकाशित 'उसने कहाथा' का पाठही प्रामाणिक है? डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरीके एक लेखसे ज्ञात होताहै कि 'उसने कहाथा' की दो मूल पांडुलिपियां हैं···एक उनके पास है और दूसरी भारतीय कला भवनमें सुरक्षित है। डॉ. मनोहरलाल कौन-सी पांडुलिपिको प्रामाणिक मानकर 'गुलेरी साहित्यालोक' में छपवा रहेहैं, यह कहीं स्पष्ट नहीं है। उन्होंने 'सरस्वती' में छपे पाठको प्रस्तुत करके पाद-टिप्पणियोंमें गुलेरीजीकी हस्तलिखित प्रतिसे भेद तो दर्शायाहै लेकिन यह मूल प्रति है कौन-सी? डॉ. विद्याधरने 'मधुमती' में मूल पाठकी फोटोस्टेट प्रतिभी दीहै—यद्यपि वह पूरी नहीं है। अच्छा यह था कि मूल स्रोतका उल्लेख किया जाता। बहुतसे लोगोंको यह स्मरण होगा कि एक विद्वान्ने अपनी बुद्धिसे विराम अर्धविराम लगाकर 'कामायनी' को संपादित कर दियाथा। अब तो 'कामायनी' की मूल प्रति फोटोस्टेट होकर छप गयीहै। भ्रम पैदा करनेके स्थानपर 'उसने कहाथा' की भी फोटोस्टेट प्रति छपनी चाहिये। 'गुलेरी साहित्यालोक' में यह कार्य होजाता तो अनुसन्धाताओंका भला होता।

गुलेरीजीने अपने आत्मकथ्यमें लिखाहै कि "मैंने प्राचीन एवं आधुनिक गद्य तथा पद्यात्मक हिन्दी साहित्यका विशिष्ट अध्ययन कियाहै और पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओंसे इसके विकासके सम्बन्धमें भी अनुशीलन कियाहै। इतिहास और पुरातत्त्व विषयोंमें मेरी अभिरुचि है और अपने नामसे, बिना नामके अथवा अन्य विद्वानोंके साथ जो लेखादि प्रकाशित कियेहैं, वे सर्व-निवेदित हैं। मैं हिन्दीका प्रसिद्ध लेखक हूं और साहित्यिक जगत्में आलोचक और विद्वान्के रूपमें मेरी ख्याति है।" (मधुमती, गुलेरी विशेषांक, पृष्ठ १२) गुलेरीजीके इतिहास और पुरातत्त्व विषयक योगदानका मूल्यांकन 'गुलेरी साहित्यालोक' में नहीं होसकाहै और उन लेखोंका संकेत भी कहीं नहीं है जो उन्होंने 'बिना नामके' लिखेथे। 'पुरानी हिन्दी' विषयक गुलेरीजीके विचारोंको लेकर लिखा गया डॉ. कैलाशचन्द्र भाटियाका लेख पठनीय है।

'गुलेरी साहित्यालोक' में प्रकाशित कई लेख पूर्व-प्रकाशित हैं—'मधुमती' में ही कई छप चुकेथे।

गुलेरीजीके व्यक्तित्व-कृतित्वको लेकर जितना गम्भीर कार्य किया जाना चाहियेथा, उतना 'गुलेरी साहित्यालोक' में नहीं किया गयाहै। डॉ. मनोहरलालके अनुसार "मात्र पल्लवग्राही पांडित्यका आश्रय लेकर चलनेवालोंके लिए गुलेरीजीको समझना आसान नहीं है। उनकी कृतियोंको पढ़ते समय सावधान और सतर्क रहना बहुत जरूरी है। प्रस्तुत पुस्तकका संपादन करते समय इस बातको बराबर ध्यानमें रखा गयाहै।" (पृष्ठ ७) खेद है कि अधिकतर पिष्टपेषणसे युक्त 'गुलेरी साहित्यालोक' गुलेरीजीको समझनेमें विशेष सहायक संदर्भ ग्रन्थ नहीं बन सकाहै।

एक बात और! गुलेरीजीके बारेमें जो बयान जारी किये गयेहैं, उनमें पूज्य भावना अधिक है। इस बातका विश्लेषण होना चाहिये कि अंग्रेजोंकी प्रशस्ति और स्वागतमें गुलेरीजीने किस प्राप्तिके लिए कविताएं लिखी? वैसे आत्मकथ्य' में उन्होंने स्पष्ट कर दियाहै कि "जब महामहिम ब्रिटिश सम्राट् भारत आये तो मैंने उनके लिए

संस्कृतमें स्वागत-गानकी रचना की। सुप्रसिद्ध उच्च विद्वान् डॉ. केलेंडने एतद्‌निमित्त मेरी बहुत प्रशंसा की।" क्या 'उसने कहाथा' कहानीमें भी अंग्रेजीके प्रति स्वामी-भक्तिका स्वर नहीं है ?

गुलेरीजीके व्यक्तित्व-कृतित्वका निष्पक्ष और गंभीर मूल्यांकन अभी अपेक्षित है। डॉ. मनोहरलाल ही इसे करें लेकिन गंभीरतासे करें—'गुलेरी साहित्यालोक'की पुनरावृत्ति करके, तो उपयोगी होगा। □

आलोचक पंत[1]

लेखिका : डॉ. मंगोरानी
समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी.

आलोच्य कृतिमें लेखिकाने उपसंहार सहित सात अध्यायोंमें प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंतके 'कलाकार-समीक्षक' स्वरूपको प्रस्तुत करनेकी सार्थक चेष्टा कीहै। अधिकांशतः अभीतक पंतके कवि व्यक्तित्वकी ही चर्चा होती रहीहै और उनका समीक्षक व्यक्तित्व विस्तारसे उभरकर हमारे सामने नहीं आया। इस दिशामें डॉ. मंगोरानीका प्रयास सराहनीय है।

पुस्तकके शुरूमें ही यह बात स्पष्ट करदी गयीहै कि रचनाकार अपनी कृतिकी स्वयं आलोचना करते समय उन तथ्योंको अच्छी तरह प्रकाशमें लाताहै जिन्होंने रचनाके सृजनमें सार्थक भूमिका निवाही। लेखिकाके शब्दोंमें "वह आलोच्य कृतिके कृतिकारकी रचना-प्रक्रियाके साथ उसी प्रकार तादात्म्य स्थापित कर लेताहै जिस प्रकार कि उसके अपने मानसिक संवेग रचनाकर्ममें प्रवृत्त होते समय कृतिमें अभिव्यक्त संदर्भोंसे अपना तादात्म्य स्थापित करतेहैं।

लेखिकाने इन प्रश्नोंको भी उठायाहै—जब रचनाकार स्वयं समीक्षक बनताहै तो क्या वह अच्छी तरहसे कृतिमें अनुस्यूत संदर्भोंकी व्याख्या कर पाताहै ? क्या उसके सिद्धांत अधिक प्रामाणिक होतेहैं ? क्या वह अपनी रचना-प्रक्रियाको आरोपित करनेकी कोशिशमें 'साउंड जजमैंट' से दूर हट जाताहै ? लेखिकाने वर्ड्सवर्थ, कालरिज, इलियट लारेंस, हेनरी जेम्स आदिके उदाहरण देते हुए यह स्पष्ट कियाहै कि रचनाकार अपने पाठकोंको सिद्धांतोंके प्रकाशमें रचनाका सम्यक् रसास्वादन हेतु रुचि प्रदान करताहै। इस तरह कलाकार-समीक्षककी आलोचनाके सिद्धांतोंको व्यापक बनाती हुई सर्जनात्मक आलोचनाका स्वरूप बन जातीहै।

इस किताबमें पंतके छायावाद विषयक विचारोंके साथही समकालीन कवियोंकी कृतियोंका सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत किया गयाहै जो पंतको तटस्थ, उदार और तलस्पर्शी समीक्षकका दर्जा प्रदान करतीहै। पंतकी रचना-प्रक्रियाको विस्तारसे लेते हुए लेखिकाने कलाकारके आंतरिक तनाव और बाहरी दबावोंको भी अच्छी तरह स्थापित कियाहै। कल्पना पंतके काव्यकी विधायिका शक्ति है जो विरोधी तत्त्वोंमें संतुलन स्थापित करते हुए बिम्बोंका सृजन करतीहै। बाह्य यथार्थ, आत्मप्रकाश, अंतर्द्वन्द्व आदिको लेकर निर्वैयक्तिक स्थितिमें सौंदर्य बोध, जीवन-बोधके साथ लेखिकाने पंतकी रचना-प्रक्रियाके मिश्रणको साफ-साफ दर्शानेकी कोशिश कीहै।

इस पुस्तककी एक विशेषता यह है कि आलोचकके रूपमें पंतको प्रस्तुत करते हुए लेखिकाने प्रत्यक्ष-परोक्ष कविकी विकास-यात्राका भी सम्यक् निरूपण कियाहै जो समानान्तर उनकी दोनों दिशाओंको रेखांकित करताहै।

मूलतः, निजीपनका संसार ओर सामाजिक चेतनाकी भावभूमिको एक सार्थक कलाकार साथ-साथ समेटकर चलताहै, उसमें कोई भेद नहीं रह जाता। कवि-समीक्षकका मन पूर्वाग्रह मुक्त एवं संवेदनशील होताहै। उसकी परिष्कृत रुचि और सांस्कृतिक चेतना सौंदर्य-दर्शनको ऊर्ध्वमुखता प्रदान करतीहै। अंतरतम-विकास और लोक-समुदायका जीवन-सत्य साथ-साथ चलताहै। प्रकृति-सौंदर्यके बीच मानव मूल्य युगानुरूप चिंतन लेकर रूपायित होतेहैं। पंतकी साहित्य चेतना और कलाका यही प्रयोजन है।

लेखिकाने पंतके छायावाद विषयक पुनर्मूल्यांकनके माध्यमसे उन आलोचकोंकी मान्यताओं और भ्रांतियोंका निराकरण कियाहै जो छायावादको पलायनवादी काव्य कहतेहैं या उसे स्त्रैण काव्य, मधुमय काव्य आदि कहकर छुट्टी पा लेतेहैं। मानव मांगल्य, विश्वचेतना, ऊर्ध्वमूल्य और अंतःसौंदर्यसे अनुप्राणित छायावादी काव्यका ह्रास नहीं होसकता। वह युगानुरूप प्रगतिशील जीवन-मूल्योंमें ढलता गयाहै और आजभी किसी-न-किसी रूपमें विद्य-

1. प्रकाशक : नटराज पब्लिशिंग हाउस, होली मोहल्ला, करनाल। पृष्ठ : १०६; डिमा. ८४; मूल्य : ४५.०० रु.।

मान है। इस तरह पंतकी मान्यताओंको लेकर लेखिकाने हिंदी स्वछंदतावादी काव्यकी विशिष्टताओंको उजागर कियाहै।

पंतने प्रसाद, निराला, महादेवी, दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, मुक्तिबोधपर जो सविस्तार और सारग्राहिणी चर्चा कीहै, वह उनकी व्यावहारिक समीक्षाका श्रेष्ठ उदाहरण है। पंतके मतानुसार प्रसादजीने मुख्य : सांस्कृतिक नये मल्यके ज्ञानपक्ष (काग्नीशन) को वाणी देनेका प्रयास कियाहै, वहां निरालाने शक्ति संकल्प पक्ष (वोलिशन) को, और महादेवीने उसके रागात्मक पक्ष (इमोशन) को अभिव्यक्ति देनेका प्रयत्न कियाहै। और मैंने नये मूल्यके चैतन्य (स्पिरिट) का उद्घाटनकर, उसमें उपर्युक्त तीनों पक्षोंको संयोजित करनेका प्रयत्न कियाहै।' इस तरह पंत कलामूल्यसे ज्यादा जीवन मूल्यको महत्त्व देते हुए गांधी, मार्क्स, अरविंदके दर्शनसे प्रभावित होते हुए सामाजिक यथार्थ, विश्वजीवन और जागतिक जीवनको पूर्ण विकासशील देखना चाहतेहैं।

पल्लवकी भूमिका दरअसल भाषा-शिल्पके क्षेत्रमें अद्वितीय है। लेखिकाने पंतके आलोचक रूपको दर्शाते हुए व्याकरणके नियमोंसे हटकर पंत द्वारा प्रयुक्त शब्दोंकी सूक्ष्मतासे हमें अवगत करायाहै। उन्होंने कवितामें शब्दोंकी श्रुति-मधुरता, सूक्ष्म अर्थवत्ता और अंतः-संगीतकी परख करते हुए खड़ी बोलीको गौरव प्रदान किया। हिन्दी आलोचनामें पंतकी यह भूमिका अपने आपमें एक मानदण्ड है और आलोचनाको वैचारिक गंभीरताकी सही जमीन प्रदान करतीहै।

लेखिकाने पंतके आलोचना-सूत्रोंकी व्याख्या करते हुए कुछ स्थलोंपर अपनी असहमतिभी दर्शायीहै जैसे कामायनीके मनुमें पलायनी वृत्तिके विरोधमें लेखिकाका अपना स्पष्टीकरण, जो ठोस एवं विश्वसनीय प्रतीत होताहै।

डॉ. मंगोरानीकी यह कृति सिद्ध करतीहै कि आंग्ल साहित्यका उनका अध्ययन पंतके आलोचक व्यक्तित्वको सही ढंगसे उभारनेमें सहायक होसकाहै। उनके निर्णय दो टूक हैं और उनके अध्ययनकी छाप हर जगह महसूस होतीहै। हाँ, कुछ स्थानोंपर कुछ उद्धरणोंकी पुनरावृत्ति हो गयीहै। कुछ शब्दोंकी पुनरावृत्ति कई जगह ऊब पैदा करने लगतीहै। फिरभी लेखिकाने अंग्रेजीके उद्धरणोंको हिन्दीमें अनूदित करते हुए काफी बोधगम्य बना दियाहै। पुस्तकके लिखनेमें और उसकी साज-सज्जा तथा छपाई आदिमें पर्याप्त श्रम किया गयाहै। □□

राजनीतिक चिन्तन

हिन्दू राज्य[1]

लेखक : प्रो. बलराज मधोक
समीक्षक : डॉ. रामप्रसाद मिश्र.

प्रखर राष्ट्रवादी चिन्तक एवं अनुभवी राजनीतिज्ञ प्रो. बलराज मधोकने पिछले कई वर्षों में 'हिन्दू राज्य' के औचित्य एवं उसकी उपादेयतापर हिन्दी एवं अंग्रेजीमें ग्रन्थ-रचनाभी की है, भाषणभी दियेहैं और सम्प्रति यह विषय एक विवेच्य बिन्दु बन गयाहै। १९४७में भारतके विभाजनका आधार शुद्ध धार्मिक था। मुसलमानोंके प्रचण्ड बहुमतने पाकिस्तानके पक्षमें मतदान कियाथा। अतः औचित्य एवं यथार्थकी दृष्टिसे हिन्दू (जिनमें बौद्ध, जैन एवं सिख समाहित थे तथा संविधानकी दृष्टिसे अब भी समाहित हैं) हिन्दुस्तान और मुसलमान पाकिस्तानमें रहने चाहिये थे अर्थात् आबादीकी अदला-बदली होजानी

१. प्रकाशक : वैचारिक बिकल्प प्रकाशन, बैंक स्ट्रीट (पटवारीजी कार्नर), नयी दिल्ली-११०-००५। पृष्ठ : १९२; क्रा. ८३; मूल्य : १०.०० रु.।

चाहियेथी। तत्कालीन राजनीतिक दलोंमें मुस्लिम लीग के नेता मि. जिन्ना, अनुसूचित जाति संघ (शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन) के नेता डॉ. अम्बेडकर, हिन्दू महासभाके नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, अकाली दलके नेता मास्टर तारासिंह इत्यादि आबादीकी अदला-बदलीके पक्षमें थे। स्वयं कांग्रेसके सरदार पटेल जैसे नेताभी इसेही चाहतेथे। किन्तु कांग्रेसके प्रमुख नेता श्री गांधी और श्री नेहरू यथार्थकी भरपूर चोट खाकर भी आदर्श की लपेटसे नहीं उबर सके, और उनके दलकी व्यापकता एवं अंग्रेजोंके साथ उनके अपेक्षाकृत मधुर सम्बन्धोंके कारण ऐसा न होसका। इसके भयावह परिणाम तबसे अबतक दृग्गत होते आ रहेहैं और होते जायेंगे। गांधी और नेहरूकी यह भयानकतम भूल भारतीय इतिहासकी घातकतम घटना सिद्ध हुईहै और होती जायेगी।

एक महान् भूल अनेक छोटी-बड़ी भूलोंको जन्म देती और देती रहतीहै। मुसलमानोंकी अधिसंख्या भारतमें ही रहनेमें सफल होगयी तबभी वह अपना संकीर्ण मजहबी दृष्टिकोण नहीं बदल सकी, जिसका कारण इस्लामका मुसलमान और गैर-मुसलमानमें प्रतिपादित घृणावाद है, जिसके विकराल दर्शन लेबनान, विभाजन दर्शन (भारतके अनन्तर) साइप्रस, और भयावह दर्शन फिलिपाइन्स इत्यादिमें होते रहतेहैं। स्वयं विभाजित भारतमें साम्प्रदायिक दंगे बिल्कुल नहीं रुक सके। मलेशियामें मुसलमान लगभग बावन प्रतिशत हैं, किन्तु सर्वाधिकारवादी अवश्य हैं। बांग्ला देशमें लगभग बीस प्रतिशत अल्पसंख्यक (हिन्दू, बौद्ध, ईसाई) हैं किन्तु उनका कोई राजनीतिक अस्तित्व विद्यमान नहीं है। पाकिस्तानमें तो खैर हिन्दू नहीं के बराबरही हैं—या तो भारत भगा दिये गये या कत्ल कर दिये गये या धर्मान्तरित कर लिये गये किन्तु जो हैंभी वे मताधिकारसे वंचित हैं, नये मंदिर नहीं बनवा सकते, पुराने मंदिरोंका नवीकरण नहीं करा सकते, सामाजिक स्तरपर धर्मोत्सव नहीं कर सकते। मजा तो यह है कि पाकिस्तान या बांग्ला देशमें हिन्दुओं पर पैशाचिक अत्याचारोंके विरोधमें भारतका मुसलमान मौन रहताहै, जिसका कारण इस्लाममें मोमिनकी हर तरहसे तारीफ और काफिरकी हर तरहसे मजम्मतका सुनिश्चित प्रतिपादन है। स्वयं भारतमें मुस्लिमबहुल राज्य कश्मीरमें आये दिन मंदिर तोड़े जातेहैं, उनमें आग लगायी जातीहै, उनकी मूर्त्तियोंको विरूप किया जाताहै। वहांका हिंदूबहुल जम्मू क्षेत्रीय डोडा खण्ड महज इसलिए 'जिला' बनाया गया कि इस प्रकार वह मुस्लिमबहुल हो जायेगा। वहांका बौद्धबहुल लद्दाख क्षेत्रीय गिलगित जनपद बड़े कौशलसे मुस्लिम बहुलकर लिया गयाहै। और-तो-और केरलमें पहले एक खण्डको मुस्लिमबहुल जिलेका रूप दिया गया, अभी हालमें दूसरेको। मुसलमान धार्मिक संकीर्णताकी सांसोंमें जीता है, भलेही सोवियत संघ, चीन इत्यादिमें शक्तिसे आतंकित होनेके कारण शांतिसे रहनेकी विवशताका सम्मान करले। प्रो. मधोकने अपने ढंगसे इस तथ्यपर ऐतिहासिक एवं राजनीतिक विवेचन प्रस्तुत कियाहै। स्वयं प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी मुसलमानोंके परिवार नियोजनको निष्ठापूर्वक न अपनानेकी आलोचना कर चुकीहैं, 'वन्देमातरम्' कहनेको 'कुफ्र' माननेवाले संसत्सदस्यको फटकार चुकीहैं। स्वयं स्वर्गीय श्री संजय गाँधी मुसलमानोंके अलग और अपने-आपमें इकट्ठे रहनेकी संकुचित प्रवृत्तिका विरोध करतेथे।

विभाजनके बाद कुछ वर्षों तक तो मुसलमान ठीक-ठीक रहे क्योंकि विभाजन-क्षुब्ध हिन्दू कठोर होसकताथा, सरदार पटेल एक सुदृढ़ यथार्थवादी महानेता थे तथा सिख इत्यादिभी बहुत रुष्ट थे। किन्तु ज्योंही उन्हें पता

(पृष्ठ १ का शेष)

मुझमें हो, किन्तु पक्षपात मेरे चैतन्य मनमें तो नहीं है; हां, सभी धर्मोंके उच्च आदर्शों और विचारोंका मैं सम्मान करताहूं। इसीके फलस्वरूप पौर्वात्य या पाश्चात्यकी चिन्ता किये बिना दार्शनिक तथा धार्मिक दृष्टिमें मेरी समन्वयकी चेष्टा रहीहै। मुझे खेद है कि डॉ. द्विवेदीको मेरी यह चेष्टा आलोचनाके योग्य प्रतीत हुई। —मुझे यही उचित नहीं लगा कि उन्होंने एक उपन्यास को उपन्यासके रूपमें नहीं पढ़ा।—मानों, मैंने उपन्यास के चरित्रोंका गठन अपने पूर्व निर्धारित मन्तव्योंको उचित ठहरानेके लिए कियाहै! मनुष्यका चरित्र तो पश्चिम या पूर्वके सिद्धांतोंकी परवाह न कर अपनी गतिसे बहता है। एक समीक्षकका दायित्व तो यह है कि वह देखे कि चरित्रकी प्रगति व्यक्तिके स्वभावके अनुकूल स्वाभाविक हुईहै या नहीं, और उसके प्रकाशमें चाहे तो दार्शनिक विचारोंका निर्धारण करे। वहरहाल, मैं कृतज्ञ हूं कि उन्होंने पुस्तकको अपना ध्यान दिया।

—सन्हैयालाल ओझा, ८/ए, नन्दन रोड, भवानीपुर, कलकत्ता-७०००२५.

चला कि कांग्रेसकी धर्मनिरपेक्षता मत-अधिकोषपर आधारित (वोट बैंक-ऑरिएन्टेड सेक्युलरिज्म) है, त्योंही उन्होंने ब्याजकी दर बढ़ानेकी मांगें शुरू करदीं। यदि हमारी धर्मनिरपेक्षता निष्ठा निष्पन्न होती तो व्यक्तिगत कानून एक-जैसे होते (बहुविवाहपर अनेक मुस्लिम देशोंमें भी रोक लगीहै), परिवार नियोजन सबपर एक-जैसा लागू किया जाता, धर्मोत्सवोंमें साम्प्रदायिक प्रतिबन्ध (मस्जिदके सामने जुलूस नहीं, मूर्त्तियोंका प्रदर्शन नहीं, संगीत नहीं, इत्यादि-इत्यादि) न लगाये जाते रहते। हमारी निर्वाचनमूलक धर्मनिरपेक्षता साम्प्रदायिकताकी पर्यायवाची बनकर रह गयीहै।

भारतके प्रथम प्रधानमंत्री श्री नेहरू और नेपालके तत्कालीन महाराजाधिराज त्रिभुवनमें एक बार विलयकी बात चलीथी। महाराजाधिराजने कहा कि यदि भारत हिन्दू राज्य घोषित किया जाये तो ऐसा होसकताहै। किन्तु निर्वाचनबद्ध नेहरू इसमें असमर्थ थे। उधर निष्ठावान् एवं यथार्थवादी महाराजाधिराज इस विषयपर ठीकही नहीं झुके ! विश्वमें कम-से-कम एक हिन्दू राष्ट्र एवं हिन्दू राज्य तो विद्यमान रहा !

यदि भारत 'हिन्दू राज्य' घोषित किया जाता, तो साम्प्रदायिकताके लिए अवकाश कम रह जाता क्योंकि संसारके किसीभी देशमें राज्यधर्मकी अवमाननाका साहस कोई वर्ग नहीं करता। ग्रेट ब्रिटेन एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है, किन्तु वहांका प्रतीक-शासक (महाराजा या महारानी) 'आस्थाका रक्षक' (डिफेन्डर ऑफ फेथ) माना जाताहै। संयुक्त राज्य अमरीका धर्मनिरपेक्ष राज्य है, किन्तु वहांकी राजनीतिमें बहुसंख्यक प्रोटेस्टेन्ट्स (सारे राष्ट्रपतियोंमें केवल जॉन केनेडी कैथलिक थे) के वर्चस्वका कोई विरोध नहीं है। सोवियत संघ तो धर्मनिरपेक्षसे भी बढ़कर साम्यवादी राज्य है किन्तु वहाँ बहुसंख्यक कैथलिकों का किञ्चिन्मात्र विरोध नहीं है। भारतकी धर्मनिरपेक्षता मतमूलक होनेके कारण अल्पसंख्यकोंके प्रति अतितुष्टि-करणकी गलत नीतिपर चलती रहतीहै, जिसके परिणाम साम्प्रदायिकतामें वृद्धि, हिंसा, सम्पत्तिनाश इत्यादि हैं। हमारी अल्पसंख्यक-तुष्टीकरण नीति इतनी अधिक पाखण्डपूर्ण हो गयीहै कि राम, कृष्ण, तुलसी, अयोध्या, मथुरा, काशी इत्यादिकी उपेक्षा कीजाती रहतीहै तथा ईसा, मुहम्मद, सारनाथ, अजमेर इत्यादिपर जरूरतसे ज्यादा फोकस डाला जाता रहताहै—आकाशवाणी और दूरदर्शन इस पाखण्डके निलय बनकर रह गयेहैं ! हिन्दी को उर्दू और उर्दूको फारसी बनानेका दुष्प्रयत्न इसी गलत नीतिका परिणाम है। पाकिस्तानकी 'इस्लामी' उर्दू भारतकी 'धर्मनिरपेक्ष' उर्दूसे सरल और सुगम है। उर्दू एक खूबसूरत भारतीय भाषा है, किन्तु खेद है कि वह साम्प्रदायिकताका आखेट बना डाली गयीहै—दिल्लीमें ऐवान-ए-गालिब है, गालिब अकादेमी है, सरकार द्वारा निर्मित गालिबका मजार है, किन्तु विश्वके सर्वाधिक लोकप्रिय महाकवि तुलसीसे सम्बद्ध कुछभी नहीं, राष्ट्रकवि कालिदासपर कुछभी नहीं (गनीमत कि नोबेल प्राइज और विश्वख्यातिके कारण रवीन्द्रपर बहुत-बहुत है)।

प्रो. मधोकने व्यापक ऐतिहासिक ऊहापोह करते हुए भारतको हिन्दू राज्य घोषित करनेका प्रतिपादन कियाहै। प्रतिपादन सतर्क एवं विद्वत्तापूर्ण है। आज भारतीय अथवा भारतमूलक हिन्दू सर्वत्र पिट रहाहै क्योंकि उसका कोई संगठन नहीं, राष्ट्र नहीं, राज्य नहीं ! लंका हो या बांग्ला देश या पाकिस्तान—यहां तककि भारतके जम्मू और कश्मीर, पंजाब, नगालैण्ड और मिजोरममें भी हिन्दुओंकी हत्याएं होतीहैं, उन्हें भगा दिया जाताहै, उनका धर्मपरिवर्तन कर लिया जाता

है; और कोई कुछ विशेष नहीं कर पाता। यदि भारत हिन्दू राज्य हो तो उसकी ऐसी दुर्दशा नहीं होसकेगी। तब 'यथा नाम तथा गुण' के अनुरूप हिन्दू-रक्षण एक विराट् राष्ट्रीय एवं राजनीतिक दायित्व होजायेगा। संसारके अधिकांश देश बहुसंख्यकोंपर आधरित रहेहैं, हैं तथा रहेंगे। केवल हमारा देश एक अपवाद है जहां बहुसंख्यकको हीनभावग्रस्त बनाया जाता रहाहै। अत: हिन्दू राज्यकी मांग सर्वथा उचित है। तत्त्वत: प्रत्येक हिन्दुस्तानी हिन्दू है। वस्तुत: हिन्दू सर्वधर्मसमभाववादी है—उसने कभी बलात् धर्मपरिवर्तन नहीं किया, मस्जिद या गिरजाघर या गुरुद्वारे नहीं गिराये, किसी धर्मकी निन्दा नहीं की। अत: हिन्दू राज्यमें अल्पसंख्यक अकृत्रिम रूपसे सुखी रहेंगे। अल्पसंख्यकोंके प्रति अतितुष्टीकरणकी नीतिसे साम्प्रदायिकतामें जो भयानक वृद्धि हुईहै, उससे हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों—सभी—की क्षति हुईहै। स्वयं प्रधानमंत्री श्रीमती गांधीने स्वीकार कियाहै कि भारतमें अल्पसंख्यकोंके साथ जैसा अच्छा व्यवहार किया जाताहै वैसा संसारमें कहीं नहीं। तो फिर, यह 'लीक से हटने' का पाखण्ड क्यों? एकवत् व्यवहारही वरेण्य है। संसारके प्राय: सभी देशोंके सदृश बहुसंख्यप्रधानता लोकतांत्रिक एव वरेण्य है। □□

वेद : वेदान्त

लोक, वेद और वेदान्त

लेखक : रामप्रसाद पाण्डेय
समीक्षक : विराज.

इस पुस्तकमें तीन खंड हैं: (१) लोक (२) वेद और (३) वेदान्त। प्रत्येक में सात-सात निबन्ध संकलित हैं। लेखकने अलग-अलग समयपर कुछ लेख लिखेथे, जो प्रयागकी विख्यात 'सरस्वती' पत्रिका (अब वह बन्द हो गयीहै) तथा गोरखपुरके लोकप्रिय 'कल्याण' मासिकमें प्रकाशित हुएथे, उन्हें लेकर तथा कुछ नये निबन्ध लिख कर 'लोक, वेद और वेदान्त' नामसे संगृहीत किया गया है। लेखकने 'हिन्दू थाट' नामसे कोई पुस्तक अंग्रेजीमें प्रकाशित करवायीथी। 'उसका अंग्रेजी जाननेवाले पाठकोंने बड़ा स्वागत एवं सम्मान किया। उनमेंसे अनेक सुविज्ञ मित्रोंने यहभी अनुरोध किया कि उसकी विचार-धाराको हिन्दी पाठकोंके लिएभी प्रस्तुत किया जाये तो भारतीय समाजका बड़ा कल्याण होगा।' इन विचारोंसे उत्साहित होकर यह संग्रह प्रस्तुत किया गया।

पुस्तकका 'प्राक्कथन' डॉ. नगेन्द्रने लिखाहै, जिसमें इस लेख संकलनके गुणोंका विवेचन है। इसमें कहा गया है कि 'इसमें सामान्य व्यवहारके विषयसे लेकर उच्च स्तर तकके चिन्तनतकका समावेश है, जो समस्त रचनाको उपादेय एवं संग्राह्य बना देताहै। इन लेखोंकी यह विशेषता है कि सर्वत्र दार्शनिक पुट होते हुएभी, इनकी पृष्ठभूमिमें सुलभ ऐहिक चिन्तन है, जिससे सभी विचार पाठकके हृदयमें सरलतासे उतर आतेहैं,और उसको ओज तथा उल्लास प्रदान करतेहैं। ''अधिकतर निबन्धोंका आधार संस्कृतका धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य है परन्तु मूल वचनोंको लेकर लेखकने अपने निजी विचारोंका ऐसा विमर्श प्रस्तुत कियाहै कि वह वस्तुको सहजही हृदयंगम करा देताहै।' फिर 'ये सभी (लेख) व्यावहारिक जीवनपर आवश्यक प्रकाश डालते हैं और उस प्रकाशमें अनुभवके नये मोती दिखायी दे जातेहैं।' प्राक्कथनके 'लेखकने विनम्रतावश यहभी लिख दियाहै कि 'लोक, वेद

१. प्रकाशक : आर्य बुक डिपो, नाईवाला, करोलबाग, नयी दिल्ली-११०-००५। पृष्ठ : ६४; डिमा.; मूल्य : २५.०० रु.।

और वेदान्तमें संगृहीत अनेक विषय ऐसे हैं, जिनके बारेमें कुछ कहनेका मैं अपनेको अधिकारी नहीं समझता, फिरभी ग्रन्थकारके आग्रहपर यह प्राक्कथन लिखनेमें मुझे प्रसन्नताही हो रहीहै।' बदलेमें 'कृतज्ञता-प्रकाश' करते हुए लेखकने लिखाहै कि 'हिन्दी जगत्के सुविख्यात समालोचक एवं ग्रन्थकार आचार्यप्रवर डॉ. नगेन्द्रके प्रति इन शब्दों द्वारा मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करताहूं, इस पुस्तक हेतु सुन्दर प्राक्कथन लिखनेके लिए। मैं ही नहीं विज्ञ पाठक-वृन्दभी उपकृत हुएहैं, जिनको थोड़े से शब्दोंमें, इस विनीत रचना का तत्काल पूर्वानुमान मिल जायेगा। हम सभी उनके ऋणी बने रहेंगे।'

जैसाकि लेखकके अपने कथनसे स्पष्ट है, यह पुस्तक किसी सुविचारित योजनाके अनुसार नहीं लिखी गयी। 'लोक' शीर्षक के अन्तर्गत ७ लेख हैं: लोककी वास्तविकता, जीवन सुखमूलक है, दुःखाभासका कारण सामान्य भ्रम, भारतीय इतिहासके स्वर्णयुग (४), आधुनिक युगकी सर्वोच्च उपलब्धि (महात्मा गांधी), रामचरित मानसके उपेक्षित अंग, बादरायण व्यास तथा अरिस्टाटिल। इनमेंसे पहले तीन दार्शनिक विवेचनकी सीमामें आसकतेहैं, परन्तु बाकी चारका 'लोक' शीर्षक से किस प्रकार ताल-मेल बैठता है?

इसी प्रकार तीसरे खड 'वेदान्त' में 'कालिदासका अन्तर्जगत्' लेख बेमौजूं जान पड़ताहै।

पुस्तकमें कुल ९४ पृष्ठोंमें, २१ लेख समायेहैं। पढ़कर ऐसा प्रभाव पड़ताहै कि विषयके साथ पूरा न्याय नहीं होपायाहै।

लेखककी अपनी कुछ मान्यताएं हैं: जैसे यह संसार वास्तविक है, अर्थात् दार्शनिक दृष्टिसे मिथ्या नहीं है; जीवन सुखमूलक है, अर्थात् जैसाकि बुद्ध जीवनको दुःखमय बतातेहैं, वैसा वह नहो है, संसार दुःखमय या क्लेशमय है, यह केवल भ्रम है; सन १९४७ में भारतके स्वाधीन होनेके पश्चात् अबतकका काल भारतका चौथा स्वर्णयुग है (पहले तीन राम राज्य, अशोकका राज्यकाल और चन्द्रगुप्त द्वितीयका राज्यकाल थे), आधुनिक युगकी सर्वोच्च उपलब्धि महात्मा गांधी थे; गोस्वामी तुलसीदासका सामाजिक आदर्श सर्वथा प्रगतिशील है; तुलसीदास ब्रह्मदर्शी योगी थे और स्वभावसे ब्राह्मी स्थिति में ही बने रहतेथे; वेदोंमें न प्रकृतिकी उपासनाका विधान है, न बहुदेववादका; वेद अद्वैतका प्रतिपादन करतेहैं; वैदिक समाजकी सबसे आकर्षक सत्ता स्त्रियां हैं; वैदिक ऋषिगण ललना-लालित्यसे सर्वथा अभिभूत थे; भक्ति परम्पराका संकेत वेदोंमें पूर्वसे ही वर्तमान है, इत्यादि। ये मान्यताएं विज्ञ पाठकोंको रोचक प्रतीत होंगी।

शब्दोंके प्रयोगमें भी लेखक असावधानताका शिकार हो गयाहै। उदाहरणके लिए पृष्ठ १५ पर 'भारतका यह परम सौभाग्य था कि स्वतन्त्रता-संग्रामके अभिनेता महात्मा गांधी थे...' में'अभिनेता' शब्दका प्रयोग भूलसे ही हुआ प्रतीत होताहै। 'जिनको हम समझे थे नेता, वे केवल अभिनेता निकले' पंक्तिसे 'नेता' और 'अभिनेता' का वैषम्य स्पष्ट हैं।

अपनी मान्यताओंपर लेखककी दृढ़ता सराहनीय हैं, परन्तु कहीं-कहीं विचारोंकी स्पष्टता, तथा भाषा की सहजताके अभावके कारण पाठक लेखककी विद्वत्तासे लाभ उठा पानेमें असमर्थ रहता है। □□

किशोर बाल-साहित्य

सु-नीति कथा मंजरी

लेखिका : श्रीमती सुनीति। प्रकाशक : हेमगंगा प्रकाशन, एच-१, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : ४०; डबल क्राउन; मूल्य : ८.५० रु.।

'सुनीति कथा मंजरी'में बारह कहानियां संकलित हैं। घरमें बेटी-बेटों,नाती-नातिन,और पोते-पोतियोंको सुनानेके लिए जुटायी गयी इन कहानियोंको लेखिकाने लिपिबद्ध कर दियाहै। कहानी साहित्यकी ऐसी विधा है,जो बालकों और वयस्कों, दोनोंका ही मनोरंजन करतीहै। फिरभी ये कहानियां बालकोंको अधिक प्रिय होंगी।

इन कहानियोंका उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है। जैसाकि पुस्तकके नामसे स्पष्ट है, इनमें किशोर पाठकोंके

मनको सु-नीतिकी राहपर चलनेके लिए प्रेरणा दी गयी है। पहली कहानी 'आमका रस' में इस अन्ध-विश्वासको हटानेका प्रयत्न किया गयाहै कि श्राद्धके रूपमें ब्राह्मणको कराया गया भोजन दिवंगत पूर्वजोंको प्राप्त होजाताहै। गोपालके पिताने मरते समय आमका रस पीनेकी इच्छा प्रकट कीथी, पर वह उन्हें पिला नहीं सका। उसकी इस बेअकलीका लाभ दो धूर्त पंडितोंने उठाना चाहा। उन्होंने श्राद्ध और दानके द्वारा गोपालके पिताकी आत्माको आमके रसकी तृप्ति दिलानेका वचन दिया। पर समझदार साथियोंने उन धूर्त पंडितोंकी चाल विफल करदी।

'गोविन्दका भाग्य' कहानीमें सुन्दर रीतिसे दिखाया गयाहै कि पुरुषार्थही भाग्य है। जो व्यक्ति भाग्यके भरोसे पुरुषार्थ छोड़ बैठताहै, वह विफलही होताहै।

'रूपकला' कहानी धनके संचय और उपयोगपर बड़ा सुन्दर प्रकाश डालतीहै। कंजूसके लिए करोड़ोंकी सम्पत्तिभी व्यर्थ है। धनका लाभ तभी है, जबकि उसका सदुपयोग किया जाये। रूपकलाके ससुर धनी होते हुएभी कंजूसीके कारण कंगालोंका सा जीवन बिता रहेथे। पर रूपकलाकी सूझ-बूझसे उन्हें अपने धनका उपभोग करनेका अधिकार प्राप्त होगया।

'यक्षिणीका मंत्र' में यह दर्शाया गयाहै कि हर व्यक्तिको अपने जीवन-निर्वाहके लिए कोई-न-कोई विद्या, शिल्प या कला अवश्य सीखनी चाहिये, और सदा विवेकसे काम लेना चाहिये।

'तीतर पंडित' परिश्रमी, धैर्यशाली और परोपकारी राजकुमारकी उन्नतिकी कहानी है। इन गुणोंसे सम्पन्न व्यक्ति विपत्तिमें पड़नेपर भी घबराता नहीं और देर-सवेरमें अवश्य सफल होताहै।

'धर्मात्मा शुकराज' में सद्गृहस्थके कर्त्तव्योंपर प्रकाश डाला गयाहै - माता-पिताकी सेवा, सन्तानका पालन-पोषण और अभागे दीन-दुखियोंपर दया।

'सोनेकी वंशी' को 'पेड़ोंको काटो मत' आन्दोलनके प्रसारके लिए लिखी गयी जान पड़ती है। पेड़को काटनेसे जो लाभ हो सकताहै, उससे कहीं अधिक लाभ उसे न काटनेसे होताहै।

'वसुमित्र' में वृद्ध माता-पिताकी सेवा करनेकी प्रेरणा बहुत रोचक ढंगसे दी गयीहै और 'खाई खोदे और को, ताको कूप तैयार' में दिखाया गयाहै कि दूसरोंका अपकार करनेके लिए बेचैन लोगोंको स्वयं विपत्तिका शिकार बनना पड़ताहै।

'अभिमानका फल' में हाथी और शेरको हरा देनेवाले घमंडी मच्छरकी मकड़ीके हाथों हुई दुर्गतिका मजेदार चित्रण है।

उपकार करनेवाले व्यक्तिका ही अपकार करनेवाले लोगभी इस संसारमें हैं। पर उनका क्या हाल होताहै यह 'गूलर बाबा' कहानीसे मालूम होगा।

इस संकलनकी अन्तिम कहानी 'सुरपुरकी राधा' में सौजन्यका महत्त्व बड़े मार्मिक रूपमें दिखाया गयाहै। शारदा एक गरीब लकड़हारिन है, पर अपने सास-ससुरकी सेवा करतीहै। 'मंहगाईके जमानेमें उनका बोझ क्यों ढोतीहो? घरसे निकाल बाहर करो' यह सलाह दिये जानेपर वह बहुत बुरा मानतीहै। अकस्मात् उसके दिन फिर जातेहैं और उसकी सुभावना अच्छा फल देतीहै।

कहानियोंकी भाषा सरल और सुबोध है। पाठकोंके मनपर ये मधुर छाप छोड़तीहैं। यह जानते हुएभी, कि इस युगमें अच्छेका अच्छा फल कमही मिलताहै, लोगोंको अच्छे काम करनेकी प्रेरणा तो देनीही होगी। लेखिकाने वही काम किया है।

—विराज

स्वर्ण हंस तथा अन्य जातक कथाएं

लेखिका : उषाबाला दुबे; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ७०; मूल्य : ६.०० रु.।

यह संग्रह लेखिकाके पूर्व-प्रकाशित जातक कथाओंके दो संग्रहोंका एकीकृत रूप है। शब्दानुवादकी यांत्रिकतासे मुक्त ये कथाएं अर्थके मनोरम वर्णन-विस्तारसे युक्त हैं। कथानक और मूल-संवेदनाही इनकी जातकीय है, शेष सब कुछ लेखिकाका अपना है। प्रकृतिका सुरम्य पृष्ठभूमीय चित्रण, दृश्योंका बिम्ब-बिधान, मार्मिक प्रसंगोंका हृदय-ग्राही अभिव्यंजन आदि विशेषताएं, जो इन कथाओंमें उजागर हुईहैं, लेखिकाकी भावप्रवण रचनाधर्मिताको रेखांकित करतीहैं। स्थितियोंकी भावात्मक अभिव्यक्ति उसका एक ऐसा अन्तरंग वैशिष्ट्य है जिसने इन कथाओंको मूलसे भी अधिक रोचक एवं प्रभावशाली बल दियाहै। 'माँकी ममता' में जब वृषभ बोधिसत्व बड़े कष्ट उठाकर अपनी निर्धन वृद्धा मांके लिए एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं लातेहैं तो माँकी वत्सलता किस प्रकार शतधा होकर उमड़ पड़तीहै, यह इस कथामें देखने लायक है।

शीर्षक कथा 'स्वर्ण हंस' भी एक अत्यन्त मार्मिक कथा है। स्वर्णहंस पूर्वजन्ममें एक निर्धन ब्राह्मण था, जो अपनी पुत्रियोंका विवाहभी नहीं कर पाया था कि उसकी मृत्यु होजातीहै। पूर्वजन्मकी इस स्मृतिके जागनेपर स्वर्णहंस अपने पूर्व-परिवारकी सहायता समय-समयपर अपने एक-एक सोनेके पंख देकर करने लगताहै। एक दिन उसकी पत्नी लालचमें आकर उसके सारे पंख नोच लेतीहै। लेकिन हंसके सोनेके पंख बगुलेके पंखमें बदल जातेहैं। एक करुणापूर्ण भाव-भूमि तैयारकर यह कथा सीख देतीहै कि मनुष्यको यथालाभ संतुष्ट रहना चाहिये। भावात्मकता केसाथ सीखका समावेश इन कथाओंको हृदयग्राहीभी बनाताहै और उपादेयभी।

'श्वेत मंगल' एक अन्य रोचक कथा है जो अपनी उदात्ततासे हृदयको अभिभूत कर देतीहै। 'महातुण्डिल और चुल्लतुण्डिल' कथा जहाँ शूकर रूपमें जन्मे बोधिसत्त्व की उच्चाशयताको रेखांकित करतीहै वहां मानवीय गुणों को ध्वस्तकर देनेवाले मदिरा-पानके दोषोंको भी बड़े प्रभावपूर्ण ढंगसे उजागर करतीहै। संग्रहकी किसीभी कथाको उठा लीजिये, प्रत्येक कथा लेखिकाके भाव-बोध एवं कलात्मक संस्पर्शसे दिप्तिमंत हो उठीहै। कथाओंके आरंभकी रोचकता, अन्तकी मार्मिकता और इनके बीच का औत्सुक्यपूर्ण क्रम-विकास तन्मयकर देनेवालाहै। बच्चोंके लिए लिखी गयी होनेपर भी मार्मिक प्रसंगों एवं सत्त्वको उद्रिक्त करनेवाले गुणोंके कारण यह संग्रह प्रौढ़ पाठकोंके लिए भी समान रूपसे मनोरंजक एवं उपादेय हो गयाहै।

अन्तमें कुछ अशुद्धियोंकी ओर इस उद्देश्यसे ध्यान खींच रहाहूं, ताकि द्वितीय संस्करणमें उनका निराकरण किया जासके। वे हैं—जामात (जामाता; पृ. १), हस्तीशाला (हस्तीशाला; पृ. १२), चतुरंगिनी (चतुरंगिणी, पृ. ७), छत्रछाया (छत्रच्छाया, पृ. १२) स्वागत (स्वागत, पृ. १६, ४१), श्रृगालराज (श्रृगाल-राज, पृ. २१) धूर्त (धुर्त्त, पृ. २२), विनंती (विनती, पृ. २७), तथागत (तथागत, पृ. ७०)। फिरभी संग्रह रोचक एवं प्रबोधक होनेसे पठनीय एवं संग्रहणीयहै। □

—डॉ. श्रीविलास डबराल

प्राप्ति सूचना

[समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकोंकी सूची। चुनी पुस्तकोंकी समीक्षाएं आगामी अंकोंमें प्रकाशित होंगी। समीक्षार्थ पुस्तककी दो प्रतियाँ भेजें। एक प्रतिकी प्राप्ति-सूचना प्रकाशित कर दी जायेगी।]

आलोचना: निबन्ध

उठता चांद डूबता सूरज-डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर। प्रकाशक: स्वाति प्रकाशन, २६/२०३५, कालेज लेन, त्रिवेन्द्रम् (केरल)—६९५-००१। पृष्ठ: १२६; डिमा. ८४; मूल्य: १६.०० रु.।

कविताओंके बीच—डॉ. रमाकांत शर्मा। प्रका. लतेश प्रकाशन पोलो-२, प्लाट ३५, जोधपुर (राज.)। पृ. ९५ डिमा. ८३; मू. २५.०० रु.।

कविता समकालीन कविता—डॉ. रवीन्द्रनाथ दरगन, डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया। प्रका. कुमार प्रकाशन, २०/३०, मोतीनगर, नयी दिल्ली-१५। पृ. १५२; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु.।

किरात नदीमें चन्द्र मधु—कुबेर नाथ राय। प्रका. विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-१। पृ. १५६; डिमा. ८३; मू. २५.०० रु.।

नामदेव कृष्णदास: व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ. सोहन लाल पाटनी। प्रका. अर्चना प्रकाशन, अजमेर। पृ. १४०; डिमा. ८४; मू. ३२.०० रु.।

निरालाकी 'रामकी शक्ति पूजा' का शैली वैज्ञानिक अध्ययन—डॉ. टी. के नारायण पिल्लै। प्रका. बी. डी. एस. एन्टरप्राईजेज, १९८२, गली नं० १५४, त्रि-नगर, दिल्ली। पृ. १०८; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु. (पेपरबैक)।

रामवृक्ष बेनीपुरी और उनका साहित्य—डॉ. गजानन चव्हाण। प्रका. साहित्य भवन प्रा० लि., ९३ के.पी. कक्कड़ रोड़, इलाहाबाद-३। पृ. ३७२; डिमा. ८४; मू. ८०.०० रु.।

श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी': व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ. पीयूष गुलेरी। प्रका. ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, २१ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. ४२०; डिमा. ८३; मू. १२५.०० रु.।

काव्य संकलन

आस्थाके झरोखोंसे—कैलाशचन्द्र अग्रवाल। प्रका. हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर। पृ. ११३; डिमा. ८४; मू. ३०.०० रु.।

कागजका घर—नवल बीकानेरी। प्रका. सुरजीत प्रका-

शन, व्यापारियोंका मोहल्ला, बीकानेर (राज.)। पृ. ११२; डिमा. ८४; मू. ३०.०० रु.।

तारीख नहीं बदलेगी—उमेश अपराधी। प्रका. अर्थ प्रकाशन, खेड़ा, हिण्डौल, सवाई माधोपुर (राज.)। पृ. ६६; डिमा.; मू. २५.०० रु.।

तुर्की कविता—सम्पा. कृष्ण खुल्लर, विनोद शर्मा। प्रका समकालीन प्रकाशन, २७६२, राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-५५। पृ. १०४; डिमा. ८२; मू. ३०.०० रु. (पेपर बैक)।

दुविधाका द्वैत—पद्मनाथ प्रभास। प्रका. विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी। पृ. ८२; डिमा. ८८; मू. २०.०० रु.।

नदीने मझसे कहा (तेलुगुसे अनूदित)—डॉ. दाशरथी, अनुवाद : डॉ एम. रंगय्या। प्रका. महान्ध्र प्रकाशन, १०४-सी, मातृश्री अपार्टमेंट्स, हैदरगूडा, हैदराबाद—५००-००१। पृ. ८२; डिमा. ८४; मू. २०.०० रु (पेपर बैंक)।

मन्थन (प्रबन्ध काव्य) आजाद रामपुरी। प्रका. कमलादेवी प्रकाशन, ललितपुर-कालोनी, ग्वालियर-९। पृ. ११६; डिमा. ८४; मू. २५.०० रु.।

सोनेकी चिड़िया—डॉ. श्रीविलास डबराल। प्रका. वाणी विलास, धामपुर (बिजनौर) उ. प्र.। पृ. ६७; क्रा. ८४; मू. ८.०० (पेपरबैक)।

स्मेकलकी प्रतिनिधि कविताएं—डॉ. ओदोलन स्मेकल। प्रका. श्री शांतिकुन्ज प्रकाशन, ए-२०/४, मीरा मार्ग, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७। पृ. ६४; डिमा. ८३; मू. २५.०० रु.।

उपन्यास

अपना अपना आकाश—तिलकराज गोस्वामी। प्रका. सत्येन्द्र प्रकाशन, ३० पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-६। पृ. १३८; डिमा. ८४; मू. २५.०० रु.।

नया सवेरा—तिलकराज गोस्वामी। प्रका. सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, ६९ नया बैहराना, इलाहाबाद। पृ. १७९; का. ८१; मू. २५.०० रु.।

प्रजातंत्र जंगलकी ओर—रामनिवास शर्मा मयंक। प्रका. प्रसाद प्रकाशन, २०५. सुन्दर निवास, अजमेर-३०५००१। पृ. २८; डिमा. ८४; मू. ५.०० रु.।

बाबा कहि कहि जाहि—इकबाल बहादुर देवसरे। प्रका. साहित्य भवन, प्रा. लि., के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद। पृ. ३०८; डिमा. ८४; मू. ५०.०० रु.।

मुठभेड़—शैलेश मटियानी। प्रका. शारदा प्रकाशन, ५४२, के. एल. कीटगंज, इलाहाबाद-३। पृ. ३०७; क्रा. ८४; मू. ४०.०० रु. (पेपरबैक)।

सच्चा झूठ—चन्द्रभानु आर्य। प्रका. न्यामती प्रकाशन, १४१ हाउसिंग बोर्ड, भिवानी (हरियाणा)। पृ. १६६; डिमा. ८२; मू. २४.०० रु.।

सज्जिका—आशुतोष मुखोपाध्याय। प्रका. साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद। पृ. २०३; डिमा. ८४; मू. ३०.०० रु.।

समयान्तर—तिलकराज गोस्वामी। राजीव प्रकाशन, १८९-ए/१, अलोपी बाग कालोनी, इलाहाबाद-६। पृ. २१०; क्रा. ८३; मू. २५.०० रु.।

कहानी-संग्रह

आधुनिक तुर्की कहानियाँ—सम्पा. तलत सैत हाल्मैन, अनु. कृष्ण खुल्लर। प्रका. समकालीन प्रकाशन, राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-५५। पृ. १६२; डिमा. ८४; मू. ३०.०० रु. (पेपरबैक)।

ऊंचे पर्वत गहरी घाटियाँ—डॉ. श्रीविलास डबराल। प्रका. वाणी विलास प्रकाशन, धामपुर (बिजनौर) उ. प्र.। पृ. १०९; क्रा. ८४; मू. १५.०० रु.।

एक कदम आगे—(लघुकथा-संग्रह) सम्पा. जितेन्द्र प्रताप सिंह, नरेन्द्रकुमार सिंह। प्रका. वसुन्धरा प्रकाशन, मु. पो. महथी (जि. समस्तीपुर) बिहार-८४८-२११। पृ. ६६; डिमा. ८४; मू. १०.०० रु.।

चौराहेका आदमी—डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'। प्रका. शिल्पी प्रकाशन, लालजी सांडका रास्ता, एस. एम. एस. हाइवे, जयपुर-३। पृ. ७२; क्रा. ८३; मू. १५.०० रु.।

छिद्दा पहलवानवाली गली—शैलेश मटियानी। प्रका. शारदा प्रकाशन, कीटगंज इलाहाबाद। पृ. १०२; क्रा. ८३; मू. २०.०० (पेपरबैक)।

निरन्तर इतिहास—(लघुकथा संग्रह) पूरण मुद्गल। प्रका. हेमन्त प्रकाशन, १/२२४८ रामनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृ. ७७; क्रा. ८२; मू. १०.०० रु.।

विद्रोही कोंपल—दुर्गा हाकरे। प्रका. साहित्य वाणी, २८ पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-६। पृ. १११; क्रा. ८३; मू. २०.०० रु.।

नाटक : एकांकी

इक्कीसवीं सदी—डॉ. अज्ञात। प्रका. समीर प्रकाशन, १११-ए/१८३, अशोक नगर, कानपुर-१२। पृ. ९०; डिमा. ८४; मू. २०.०० रु.।

पोस्टर—शंकर शेष। प्रका. पराग प्रकाशन ३/११४ कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृ. १८४; क्रा. ८३; मू. ३०.०० रु.।

च्यवनप्राश
चरक संहिता अष्टवर्ग युक्त हिमालय की दिव्य जड़ी बूटियों से तैयार, शरीर की क्षीणता तथा फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध आयुर्वेदिक रसायन। बाल, युवक तथा वृद्ध सबके लिये हितकर।
गुरुकुल चाय
खांसी, जुकाम, इन्फ्लूएन्जा, बदहज़मी तथा थकान में मादकता रहित उत्तम पेय।
भीमसैनी सुरमा
आँखों को निरोग व शीतल रखता है।
पायोकिल
दाँतों का दर्द व टीस
मसूढ़ों का फूलना
मसूढ़ों में खून व पीप आना
पायोरिया को जड़ से मिटाने के लिए उत्तम आयुर्वेदिक औषधि
गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी
ओ३म्
हरिद्वार
गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी
हरिद्वार
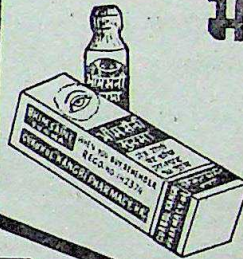
"अहं राष्ट्री स[illegible]नी वसूनाम्"

हिन्दी अकादमी दिल्ली

(दिल्ली प्रशासन)

द्वारा

हार्दिक अभिनन्दन व शुभकामनायें

हिन्दी भाषा व साहित्य के विकास की दिशा में अकादमी के बढ़ते कदम

"साहित्यकार पुरस्कार/सम्मान/पेंशन व आर्थिक सहायता, साहित्य सृजन/संवर्धन संरक्षण व प्रकाशन, हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार : प्रोत्साहन तथा वित्तीय सहायता/अनुदान, संगोष्ठी/परिचर्चा/भाषा सम्मेलन, कवि सम्मेलन व गोष्ठियां-गणतंत्र दिवस व स्वाधीनता दिवस कवि-सम्मेलन सहित, छात्र-पुरस्कार व छात्रवृत्ति, नवोदित लेखक प्रोत्साहन-कहानी, कविता एकांकी प्रतियोगिता, "उभरते स्वर"—युवा कवि मंच, संदर्भ पुस्तकालय व वाचनालय, हिन्दी-केन्द्रों की स्थापना, भाषायी अनुवाद, भाषा कार्यशाला, हिन्दी अनुवाद प्रशिक्षण, पाण्डुलिपियों का संग्रह और संरक्षण, दिल्ली के लोक-गीतों/कहानियों/अन्य साहित्य का संग्रह और प्रकाशन, दिल्ली साहित्यकार निर्देशिका, राष्ट्रीय एकता तथा भाषायी संस्कृति के कार्यक्रम, विभिन्न अकादमियों व संस्थाओं से संपर्क व तालमेल, तथा अन्य विविध।

अनुरोध :—

हिन्दी के प्रयोग एवं प्रचार-प्रसार का हम सब का राष्ट्रीय कर्तव्य और उत्तरदायित्व है। हिन्दी अकादमी की योजनाओं व कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए कृपया अपना नाम व पता निम्न पते पर सूचित करने की कृपा करें। आपके अन्य सुझाव व विचार भी सादर आमंत्रित हैं।

डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव, हिन्दी अकादमी,
सनलाईट इन्श्योरेन्स बिल्डिंग,
ए-२६/२७, आसफअली रोड,
नई दिल्ली-११०००२

"हिन्दी में काम करना आसान है"

हिन्दी अपनाइये : देश का गौरव बढ़ाइये।

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित.

प्रकर

कार्त्तिक : २०४१ (वि.) :: अक्तूबर : १९८४ (ई.)
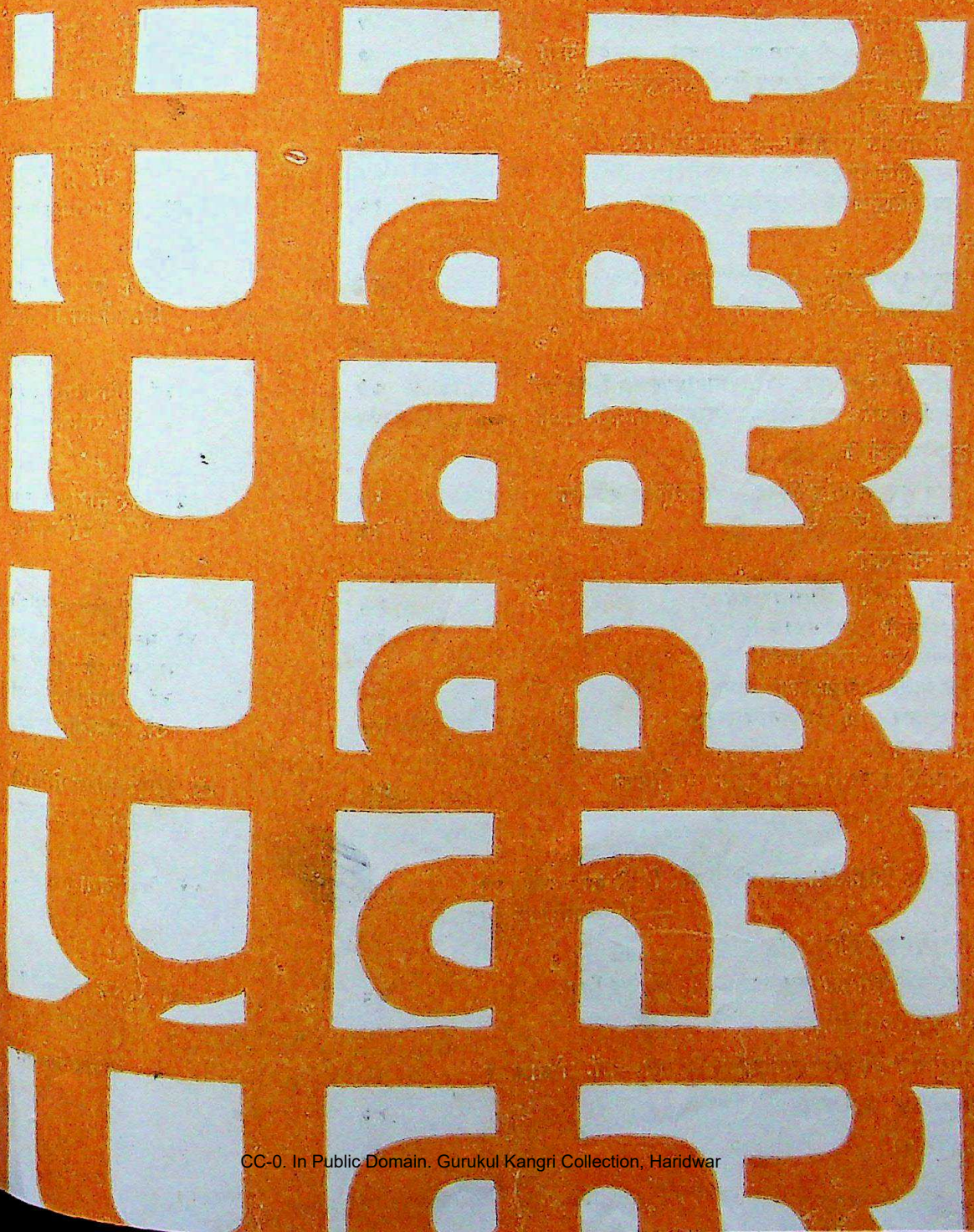
समीक्षित कृतियां

सम्पादकीय	२	वि. सा. विद्यालंकार
पाश्चात्य संगीत : भारतीय संगीत		
अध्ययन : आलोचना		
समकालीन अफ्रीकी साहित्य—रमेश दवे	५	डॉ. देवेन्द्र दीपक
आधुनिक हिन्दी कवितामें विचार—बलदेव वंशी	७	डॉ. जगदीश शर्मा
गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य—डॉ. कमलसिंह	१०	डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया.
आदान-प्रदान		
निशान्तके सहयात्री—कुर्रतुल ऐन हैदर	११	कन्हैयालाल ओझा
अन्तहीन अन्त—हेलेना होदाचोवा	१४	डॉ. प्रेमकुमार
जय सिद्धनायक - चन्द्रशेखर कम्बार	१६	डॉ. नर नारायण राय.
उपन्यास		
कुरु कुरु स्वाहा—मनोहर श्याम जोशी	१८	डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त
अभिज्ञान—नरेन्द्र कोहली	२०	प्रा. कौशल किशोर.
कहानी संग्रह		
चौराहेका आदमी डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'	२३	डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा
नयी धरती : नये बीज—अमरनाथ चौधरी 'अब्ज'	२४	डॉ. रामजी सिंह.
नाटक : एकांकी		
युग युग या पांच मिनट—भारतभूषण अग्रवाल	२५	डॉ. नर नारायण राय
पोस्टर शंकर शेष	२६	डॉ. अज्ञात.
काव्य संकलन		
इस यात्रामें—लीलाधर जगूडी	२७	डॉ. प्रयाग जोशी
संजीवनी सोहनलाल द्विवेदी	३०	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
वनबाला—ललन तिवारी	३१	प्रा. महेशचद्र पुरोहित
अनुभूति—कैलाशचंद्र अग्रवाल	३२	डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा
एकलव्य—डॉ. शोभानाथ पाठक	३३	डॉ. रमेशचंद्र मिश्र.
हास्य-व्यंग्य		
कामजी सुलतान—डॉ. सुदर्शन मजीठिया	३४	डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी
व्याकरण		डॉ. महेन्द्र भटनागर.
आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिन्दी भाषा व्याकरण —डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन	३६	डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल.
अर्थ : समस्या और नीति		
भारतकी आर्थिक समस्याएँ—डॉ. चन्द्रदेव सिंह	३८	डॉ. ओम्प्रकाश मिश्र.
भारत एवं समाजवाद		
आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन—डॉ. शोभाशंकर	३९	वीरेन्द्र मोहन.
किशोर-बाल साहित्य	४२	—
प्राप्ति-सूचना	४३	—

वर्ष : १६ कार्तिक : २०४१ (वि.)
अंक : १० अक्तूबर : १९८४ (ई.)

प्रकर

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
संपर्क : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग
दिल्लो-११०-००७
[दूरभाष ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.
प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रकर शुल्क

भारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन (व्यक्तिगत)	३०१.०० रु.
आजीवन (संस्थागत)	५०१.०० रु.

(जनवरी'८५ से वार्षिक मूल्य : ३५.०० रु.)

विदेशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.०० रु.
हवाई डाकसे	२००.००रु.

मत अभिमत

□ 'अपदस्थ हिंदोका दिवस'

'प्रकर' (सितम्बर'८४) के सम्पादकीय लेख 'अपदस्थ हिन्दीका दिवस'में आपने बहुत महत्त्वपूर्ण बातोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित कियाहै। समस्त देशसे भाषा-चेतनाका लोप होताजा रहाहै। हिंदीही नही, अन्य भारतीय भाषाएं भी अपना अस्तित्व नष्ट करनेकी प्रक्रियामें हैं। अंग्रेजीका तम्बू बढ़ता चलाजा रहाहै। हिंदी क्षेत्रोंसे तो हिंदी गयीही (राज-काज और शिक्षा-माध्यमके क्षेत्रोंसे), अन्य राज्योंसे भी उनकी क्षेत्रीय भाषाएं अपना आसन छोड़कर अंग्रेजीको प्रतिष्ठित करतीजा रहीहैं। उत्तर भारतका कोईभी राज्य ऐसा नहीं, जहां विश्वविद्यालयोंके समस्त नाम और सूचनापट्टभी हिंदीमें हों। दक्षिणी भारतकी स्थितिका आप इससे अनुमान लगा सकते हैं कि धारवाड़का मुख्य विशाल भवन, जो विद्या-सौधके नामसे जाना जाताहै, केन्द्रीय अनुदानकी इसी शर्तपर बनाथा कि स्नातक स्तरपर हिंदीकी अनिवार्य शिक्षा दीजायेगी। आज स्थिति यह है कि हिंदी तो यहां किसी स्तरपर अनिबार्य रहीही नही, इस राज्यकी भाषा कन्नड़भी अनिवार्य नहीं रही। दोनोंको कुचल कर अंग्रेजी भाषा अनिवार्य हो गयींहै। सब कहतेहैं कि केन्द्रीय सरकारही अंग्रेजीको बढ़ावा दे रहीहै, तो हमारे छात्र जीवन-संघर्षमें मातृभाषा कन्नड़ या राष्ट्रभाषा हिंदी पढ़कर भुखमरोंमें अपना नाम क्यों लिखायें।

आपने सही समयपर भाषा चेतनाकी बात उठायी है। उत्तर-प्रदेश और बिहारकी सरकारोंने अपने राज्योंकी जनताके प्रति भयंकर अपराध किया है। आजादीसे पूर्वतक इन राज्योंमें लिखे हुए अदालती कागज जब देहातके आदमीके पास पहुंचतेथे, तो वह उन्हें पढ़वानेके लिए पासके कस्बे या शहरमें किसी-न-किसी वकीलकी तलाश करता फिरता रहताथा, जो उसे पढ़कर समझादे। इस कार्यके लिए उसे फीस देनी पड़तीथी। यही गुलामी वहां फिर लौट रहीहै।

वस्तुत: हिंदीके अपदस्थ होनेका ही प्रश्न नहीं है, देशकी ९८ प्रतिशत जनताकी सही स्वाधीनता खतरेमें है। अपनी भाषाके बिना राष्ट्र गूंगा और बहरा हो जाताहै। अत: केवल हिंदीभाषियोंमें ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के लोगोंमें अपनी भाषाकी चेतना उत्पन्न होनी चाहिये और अंग्रेजीका विदाई समारोह शीघ्रातिशीघ्र आयोजित होना चाहिये।

—डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर.
(कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ शिविरसे)

(शेष पृष्ठ ३७ पर)

पाश्चात्य संगीत : भारतीय संगीत

अपरिचय किसी स्तरपर हो, अपने स्तरके अनुपातसे दूरी, विशेषतः मानसिक दूरी, बनाये रखताहै। यह स्थिति तब औरभी असंगत प्रतीत होतीहै जब समान स्रोतसे होनेवाले प्रबल राजनीतिक आक्रमणोंके साथ सांस्कृतिक आक्रमण कुछ क्षेत्रोंमें क्षीण होतेहैं। आकस्मिकता और मात्र सम्पर्कपर निर्भर न करनेवाली राजनीतिक शक्ति और शस्त्र शक्ति योजनाबद्ध ढंगसे सांस्कृतिक क्षेत्रको भी आप्लावित करतीहै। आजकी हमारी शिक्षा-नीति, भाषा-स्थिति, साहित्य, कला, इस के उदाहरण हैं, सबका लगभग पाश्चात्यीकरण होचुका है, अवशिष्ट प्रक्रियाको स्वतंत्र भारतका पाश्चात्य पद्धति से निर्मित प्रशासनतंत्र अपने राजनीतिक प्रशिक्षकोंकी तुलनामें कहीं अधिक निष्ठासे सम्पन्नकर रहाहै। पाश्चात्यीकरणकी इस सम्पूर्ण प्रक्रियामें अवज्ञापूर्वक यदि किसी क्षेत्रने अपना सिर ऊपर उठा रखाहै तो वह 'भारतीय संगीत' है। इसमें उत्तर भारतकी संगीत शैलियां और दक्षिणकी कर्नाटक पद्धति दोनों सम्मिलित हैं। साहित्य और कलासे सम्बद्ध भारतीय 'सहृदय' लोग अपने क्षेत्रोंकी स्थितिसे परिचित हैं, और पाश्चात्य (इस शब्दमें मार्क्सवादी साहित्य और कलाभी सम्मिलित है) साहित्य और कलाकी नवीनतम गतिविधिसे निरंतर सम्पर्क साधे रहतेहैं, अथवा साधनेके लिए प्रयत्नशील रहतेहैं, जिससे वे पुरातनपंथियोंकी श्रेणीमें न आने पायें।

भारतीय संगीतके इन पुरातनपंथियोंको पाश्चात्य संगीतकी शास्त्रीयता, कलात्मकता, उसकी भव्यता, उस की रचनात्मकता एवं कला रूपको संप्रेषित करनेकी पद्धति तथा उसकी अद्यतन प्रवृत्तियोंसे परिचित करानेके लिए गत मास न्यूयार्क फिलार्मॉनिकके वाद्यवृन्दके आयोजन दिल्ली, कलकत्ता और बम्बईमें किये गये। घोषित मुख्य प्रयोजन भारत और अमरीका दोनों देशोंकी जनता को एक दूसरेकी सांस्कृतिक विभूतिका परिचय देनाथा। वाद्यवृन्दमें भाग लेनेवाले कलाकारोंकी संख्या १३० थी, और सबसे बढ़कर इस वाद्यवृन्दके नायक, निदेशक और कंडक्टर ज़ुबीन मेहता थे जो आजभी नागरिकताकी दृष्टि से भारतीय हैं परन्तु पाश्चात्य शास्त्रीय संगीतके अधिकारी एव मान्यताप्राप्त संगीतज्ञ हैं। दिल्लीके कार्यक्रमको दूरदर्शनकी कृपासे देखने-सुनने और उसका कुछ आनन्द लेनेके बादभी पाश्चात्य संगीतसे अपरिचयके कारण कार्यक्रमके कलापक्षपर किसी प्रकारकी टिप्पणी अनधिकृत चंचुपात होगा। फिरभी इस कला शैलीसे अपरिचय और उससे दूरीकी ओर, तथा इस संगीतके पारखियोंकी कार्यक्रममें उपस्थित भारतीय श्रोताओंकी प्रतिक्रियापर उन टिप्पणियोंकी ओर खींचना चाहेंगे जो कि देशभरके समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुईहैं। इन्हें पढ़कर संस्कृतकी यह उक्ति स्मरण हो आतीहै 'अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख, मा लिख।' ऐसाभी प्रतीत होताहै कि श्रोताओंकी करतलध्वनि वाद्य-वृन्दके कलाकारों और उसके कंडक्टरको खिजानेवाली लगी। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि श्रोता और प्रशंसक रूपमें जो वर्ग आयोजनमें जमा हुए वे प्रशासक और नवधनाढ्य तथा पाश्चात्य संगीतसे अपरिचित वर्गोंके थे। परन्तु संगीतमें गहरी रुचि होने के कारण हम इन कार्यक्रमोंको नितान्त भिन्न दृष्टिसे देखतेहैं और वह है भारतीय और पाश्चात्य संगीतके आदान-प्रदानकी ओर उससे कुछ ग्रहण करनेकी भारतीय संगीतकी सामर्थ्यकी।

आजसे लगभग तीन दशक पूर्व भारतीय संगीतके पण्डित, मर्मज्ञ, विवेचक एवं गायक **बालकृष्ण रघुनाथ देवधर**से संगीत सम्बन्धी चर्चा होनेपर उन्होंने हमसे कहा था 'भावपक्षकी दृष्टिसे पाश्चात्य संगीत हमारे संगीतसे बहुत आगे है। मनुष्यकी मूल प्रवृत्तियां सर्वत्र लगभग एक जैसी है। भावोंके प्रति मानवकी प्रतिक्रियाभी लगभग एक जैसी है। इसलिए यदि किसी भावपूर्ण पाश्चात्य गायनको आप सुनेंगे तो बिना किसीकी सहायताके गीत और स्वरोंकी भावना आपके मनको छूलेगी।" आधुनिक पाश्चात्य संगीत मर्मज्ञ इसके आध्यात्मिक पक्षपर बल नहीं देते, न किसी आध्यात्मिक रूपान्तरणकी चर्चा करते

हैं, वे केवल इस अनुभूत तथ्यकी चर्चा करते हुए कहते हैं कि वह श्रोताको भावाभिभूत कर देताहै, वह आवेग उत्पन्न करताहै और उसीके माध्यमसे वह श्रोताको अपने अधिकारमें ले लेताहै। वस्तुतः यह दोनों संगीत शैलियों की भावोत्पादक क्षमता और सामर्थ्यका प्रश्न है। श्री देवधरने भारतीय संगीतके इस भावपक्षको लेकर स्वर्गीय पंडित विष्णु दिगम्बरके प्रयत्नोंकी चर्चा करते हुए बताया था कि शास्त्रीय संगीतको लोकप्रिय बनानेके लिए भाव और रसकी सदा सहायता लीजाती रहीहै। प्रारम्भमें स्वर्गीय पण्डितजीने लोकमानसको आकृष्ट करनेके लिए भक्ति-पूर्ण गीतोंको रागोंमें बांधाथा। भक्ति रससे परिपूर्ण राग-बद्ध गीतोंने जनताको आकृष्ट किया, क्योंकि वे न केवल कलात्मक और शास्त्रीय दृष्टिसे सुन्दर थे, अपितु उनमें लोगोंको भक्ति रससे आप्लावित करनेकी सामर्थ्यभी पूर्ण रूपसे विद्यमान थी। आजके भारतीय संगीतके साथ यह दुर्घटना घटित हो गयीहै कि उसके आध्यात्मिक पक्षकी शास्त्रीय चर्चा होतीहै, परन्तु प्रस्तुतिमें भाव और कल्पना पक्ष आहत हो जातेहैं। उसका मुख्य कारण है हमारे शास्त्रीय गायनमें गीत और स्वरोंकी भावनामें सामंजस्य का अभाव। गीत यदि नायिकाकी विरहावस्थाका चित्रण है तो स्वर-विस्तार द्वन्द्व-युद्धका प्रतिरूप। यह स्थिति-संगीत शब्दका ही विपर्यय है।

उत्तर भारतके शास्त्रीय संगीतमें स्वर-विस्तारका बहुत महत्त्व है। स्वर-विस्तारकी विविधतासे गायकके स्वरोंपर अधिकारको पारखी लोग कसौटी मानते हैं। परन्तु सामान्य श्रोता इस स्वर-वैविध्यकी सूक्ष्म पकड़में असमर्थ होताहै। उस विस्तारमें ताल और लयका वैविध्य गुणीजनोंकी रोचकता निस्सन्देह बढ़ा देताहै, परन्तु श्रोता इस कला-साधनामें भागी-दार नहीं होपाते। कारण यही है कि विस्तारमें स्वर-संयोजन और वियोजन रस-निष्पत्तिमें सहायक नहीं होता। यह स्वर-साधना भाव-साधनाकी संगतिसे दूर है। यह दूरी स्वरके प्रति अतिसंलग्नता और चित्तवृत्ति के क्षेत्रको अति-सीमितकर देनेके कारण है।

इस व्यक्तिवादी वृत्तिको सामन्ती परिवेशने भी बहुत प्रोत्साहित किया। लोक-संगीत, मन्दिर-संगीत और कीर्तनोंकी प्रवृत्ति समूह-गान या समष्टि-गानकी ओर है। सामन्ती वृत्ति समष्टिसे दूर रहना चाहतीहै। परिणामतः हमारे देशमें समष्टि-गानके सभी रूपोंमें लोक-तत्त्वकी प्रबलता रही, स्वच्छन्दता रही, उसने कभी शास्त्रीय रूप धारणकर स्थिरताको प्रश्रय नहीं दिया, इसलिए उसकी सहजताने लोक-मानसको ही सदा आकृष्ट नहीं किया, बल्कि शास्त्रीय संगीतके अनेक राग इन्हींमें से ग्रहण किये गये। इनमें सिन्धु भैरवी एक उदाहरण है। राग-निबद्ध शास्त्रीय संगीतका प्रेमी आजभी राजस्थान-गुजरात तथा अन्य क्षेत्रोंके लोक-संगीतमें अनेक रागोंकी छायाके दर्शन कर सकताहै।

भारतीय संगीतको समृद्ध करनेकी जब चर्चा होतीहै तो हमें केवल पाश्चात्य संगीतकी आवेगमयी भाव-सम्पदा से अभिभूत होनेकी आवश्यकता नहीं। हमारी पद्धतिमें भी समय-समयपर अनेक प्रयोग हमारे जीवन-कालमें हुएहैं और इन प्रयोगोंका सार्वजनिक प्रदर्शनभी हुआहै। पंडित ओंकारनाथ ठाकुरकी भावप्रवण भैरवी निबद्ध 'जोगी मत जा' कृति आजभी मनपर छायी रहतीहै। महाप्रभु चैतन्यकी परम्पराके भावस्निग्ध कीर्त्तनोंका चरमोत्कर्ष किसीभी वैष्णवको भावाभिभूत कर देताहै। वस्तुतः भावोत्कर्षके इन प्रयोगोंको व्यापकता प्रदान करनेकी ओर नये-नये प्रयोगोंकी आवश्यकताहै।

जहांतक वाद्यवृन्द संबंधी प्रयोगोंका प्रश्न है, न्यूयार्क फिलामॉनिक वाद्यवृन्दके कंडक्टर जुबीन मेहता भारतीय संगीतके वाद्य-वृन्दीकरणके समर्थक नहीं है। इसके कारणों की जानकारी हमें उपलब्ध नहीं होसकी, परन्तु वाद्य-वृन्दके जो प्रयोग हमने देखेहैं और आकाशवाणीसे सुनेहैं, उनकी चर्चा यहां इस दृष्टिसे उपयोगी है कि उनपर हमारे संगीतप्रेमी पत्रकार अन्तसकी प्रतिक्रियाकी जुबीन मेहताकी सम्मतिसे संगति नहीं बैठती। १९५६ में आकाशवाणीने वाद्य-वृन्दकी दृष्टिसे जो प्रयोग किये और उन्हें प्रस्तुत किया, उनमें प्रमुख कृतियां 'मेघदूत' (स्वरकार टी. के. जयराम अय्यर और निर्देशक गोपालकृष्ण), 'अभिज्ञान शाकुन्तल' (टी.के.जयराम अय्यर) और 'कलिंग विजय' (निर्देशन : पन्नालाल घोष) हैं। 'मेघदूत' कृति पांच खण्डोंमें विभाजित है। वाद्य यंत्रोंके स्वरों द्वारा उमड़ते-घुमड़ते बादलोंकी पृष्ठभूमि, कुछ अन्तरालके बाद नृत्य-तालके स्वरों द्वारा कुबेरकी राजसभाकी सूचना, स्वर परिवर्तन द्वारा एक यक्षका कुबेरके क्रोधका शिकार होना, अभिशप्त यक्षका निर्वासन, ये चित्र प्रथम खंडमें उभरतेहैं। दूसरे खण्डमें निर्वासित यक्षकी पीड़ा, उसकी विरहव्यथा, मानसिक व्यथाका मेघोंसे निवेदन, पुनः प्रार्थनाके स्वर-चित्र हैं। ये स्वर-चित्र बांसुरी, बेला और वीणाके स्वरोंकी सहायतासे तीव्र रूपसे उभरकर सामने आतेहैं। तीसरे खंडमें संदेश-वाहक मेघोंके मार्गकी अवतारणा, मेघदूत काव्यमें वर्णित स्थानोंकी संगीत-प्रियता, ग्रामबालाओं—ग्रामवधूटियों

के चित्र, महाकाल मंदिरकी संध्याकालीन आरती और नगाड़ोंकी ध्वनि, प्रदोष नृत्यमें पैरोंकी ठुमकन, कटि-किंकिणीका रणन, शिवके तांडव-नृत्यका आभास देते हुए मेघोंके अलकाकी ओर प्रस्थानका संकेत देकर वाद्यवृन्द चतुर्थ खण्डमें प्रवेश करताहै। यह खंड शृंगारप्रिय अलका की एकमात्र अर्द्ध-विक्षिप्त विरहिणी यक्षिणीका स्वर-चित्र है। पांचवें खण्डमें कातर यक्षकी उस स्थितिका चित्रण है जोकि अपनी पीड़ा-वेदनाके निवेदनमात्रसे हलका हो गया है, जो आशाके उदयसे सुनहले भविष्यकी कल्पना करने लगाहै। सभव है कि इस समीक्षात्मक विवरण में समीक्षकपर मूल कृति (कालिदासका 'मेघदूत') हावी रहीहो, इसलिए समीक्षाके अनेक स्थलोंपर समीक्षकने वाद्य-वृन्दपर कालिदासके वर्णन आरोपितकर दियेहों, पर यह स्पष्ट है कि संगीत कृति आकर्षक प्रयोग रही। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और 'कलिंग विजय' अपेक्षाकृत कम सफल रहीं। यह तो निश्चित है कि यदि ये प्रयोग जारी रखे जाते तो गत तीन दशकोंमें ही वाद्य-वृन्दकी कृतियों ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की होती।

व्यक्तिगत स्तरपर ये प्रयत्न अबभी जारी हैं। सितारवादक रविशंकरके प्रयोगोंमें जुबीन मेहताने भी योगदान कियाहै और कर्नाटक शैलीके बेलावादक सुब्रह्मण्यमके प्रयोगोंमें जुबीन मेहता योगदानके लिए तैयार हैं। परन्तु ये प्रयोग और प्रयत्न केवल तभी सफल हो सकतेहैं या प्रगतिकर सकतेहैं जब कोई प्रतिभा-शाली और प्रभावशाली संगठन इन्हें अपना सहयोग प्रदान करे। पिछले दिनोंसे दूरदर्शन समूह-गानके प्रयोग कर रहाहै, पर प्रतीत होताहै, दूरदर्शन इस कार्यमें प्रतिभाशाली संगीतज्ञोंका सहयोग प्राप्त नहीं कर सका। इस क्षेत्रमें मन्दिर संगीत और कीर्तनोंकी शैलीमें परिमा-र्जन, परिवर्तन, संवर्द्धन द्वाराभी सफलता प्राप्त कीजा सकती हैं। यह कार्य तो निजी कीर्तनोंके आयोजकभी सफलतापूर्वक कर सकतेहैं।

इसी प्रसंगमें बैंडवादनकी चर्चाभी उपयुक्त होगी। सैनिक बैंड तो पाश्चात्य संगीतकी धुनोंसे ही चिपके हैं, सम्भव है उनका पाश्चात्य अनुशासन इस परिवर्तनमें बाधक हो, परन्तु अन्य बैंड संगठनोंमें भारतीय धुनों—फिल्मों और शास्त्रीय दोनोंके प्रयोगकी मनोवृत्ति है। परन्तु ये प्रयोगभी अभी पूर्णरूपसे विकसित नहीं हुए। स्वर्गीय श्री विनायक राव पटवर्धनने पुरानी बड़ौदा रियासतके महाराजाके अनुरोधपर बैण्डवादनके अनेक प्रयोग पर्याप्त समयतक किये थे। परन्तु इन प्रयोगोंके परिणाम हमें उपलब्ध नहीं हैं। कोई संगीत संगठन इन परिणामों को प्राप्त करनेका प्रयत्नकर सकताहै।

इन प्रयोगोंमें पाश्चात्य संगीतकी विकसित पद्धति सहायक हो सकतीहै। कुछ अंश अपनी अनुकूलताके अनुसार स्वीकार और अंगीकृतभी किये जा सकतेहैं। अंगी-कारके प्रबल समर्थक तो कर्नाटक शैलीके महान् संगीत-कार त्यागराजका उदाहरण देतहैं, जिन्होंने बताया जाता है, पाश्चात्य बैंडकी एक आकर्षक धुन सुनकर एक नये रागकी रचना कीथी। आदान-प्रदानकी इस प्रक्रियाको पर्याप्त सुविचारित ढंगसे गति प्रदान करनेकी आवश्यकता है। हमें जापानी संगीतके मार्गपर जानेकी आवश्यकता नहीं है जिसने पाश्चात्य संगीतके सामने घुटने टेककर उसके लिए अपना पूरा संगीत क्षेत्र खोल दिया। हमारी संगीत परम्परा बहुत विकसित है और समृद्ध है। केवल गतिहीनताकी स्थिति पैदा हो गयीहै, साधनोंके अभावसे अथवा देशके सम्पूर्ण साधनोंपर पाश्चात्य अंधानुकारियों का एकमात्र आधिपत्य होजानेसे। यह वर्ग नियंत्रित और सुनियोजित रूपसे गतिहीनताको समाप्त करनेके स्थानपर जापानी संगीतकी भांति भारतीय संगीतसे भी आत्मसमर्पणकी आशामें है। देशकी और चोटीके संगीतज्ञों की जागरुकतासे इस स्थितिसे बचाजा सकताहै।□

समकालीन अफ्रीकी साहित्य[1]

सफेद पिंजरेकी काली चिड़ियाकी चीखका परिणाम

लेखक : रमेश दवे

समीक्षक : डॉ. देवेन्द्र दीपक

रमेश दवेकी 'समकालीन अफ्रीकी साहित्य' पुस्तक मुझे उस समय पढ़नेको मिली, जब दिल्लीमें राष्ट्रमण्डल का अधिवेशन चल रहाथा। राष्ट्रमण्डलकी कार्यवाहीके समाचारोंके साथ दवेकी पुस्तकको पढ़ते जाना एक विचित्र अनुभव था। राष्ट्रमण्डलके अधिकांश देश उप-निवेशवादकी यातनाओंको भुगत चुकेहैं, लेकिन रंग-भेद की समस्यापर चर्चाको राष्ट्रमण्डलमें जिस प्रकार औप-चारिक हल्केपनके साथ लिया गया, उसने मुझे उत्प्रेरित किया कि मैं दवेकी समकालीन अफ्रीकी साहित्यकी इस गाथाको गंभीरतासे लूं।

नामीबियाकी स्वतंत्रताको लेकर राष्ट्रमण्डलने मात्र एक आम सहमति दिखानेकी औपचारिकता बरती। दस लाखकी जनसंख्यावाले नामीबियामें एक लाख दक्षिणी अफ्रीकी सैनिकोंकी उपस्थितिके प्रति अपेक्षित बेचैनीका कोई माहौल दिल्ली और गोआमें नहीं बना। गौरांग महाप्रभुओंकी लीलाका आलमही ऐसा है।

इस समय दक्षिण अफ्रीकामें चार करोड़ पचास लाख श्वेत, दो करोड़ पचास लाख रंगीन (जो न काले हैं न गोरे) और दो करोड़ बीस लाख काले व्यक्ति हैं। ८० लाख भारतीय हैं। २ नवम्बर १९८३ का दिन दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण दिन है। इस दिन रंग-भेदमें विश्वास रखनेवाली दक्षिण अफ्रीकी सरकारने एक नया संविधान पेश किया। (यह अब लागू हो चुकाहै) इस नये प्रस्तावके अनुसार ३८० सदस्योंवाली संसदमें १७८ श्वेत, ८५ रंगीन, और ४५ भारतीय होंगे और काला आदमी कोईभी नहीं होगा। यानी दक्षिण अफ्रीकाकी संसदमें उन्हें आजभी प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा यानी दो करोड़ बीस लाख काले आदमी अपनी लड़ाई संसदसे बाहर लड़ें तो लड़ते रहें, संसदमें उनकी आवाजही नहीं होगी।

यह है गोरोंकी शतरंजपर काले लोगोंका रंज। यह है गोरे पिंजरेमें बन्द काली चिड़ियाकी छपपटाहट। उपेक्षा, अवमानना और अवहेलनाका अनवरत सिलसिला।

इस सब पृष्ठभूमिमें रमेश दवेकी पुस्तक 'समकालीन अफ्रीकी साहित्य' पढ़नेमें बहुत आनंद आया। विदेशी साहित्यके नामपर भारतके लोगोंके सामने या तो यूरोपीय साहित्य था या रूसी साहित्य। अफ्रीकी काले साहित्य की ओर हम हिन्दीवालोंका ध्यान बहुत बादमें गया। तीसरी दुनियांकी संकल्पनाके उदयके बादही हमारे मनमें काले साहित्यके प्रति रुचि जागी। रमेश दवेकी यह कृति हमारी इस रुचिको बौद्धिक आधार प्रदान करेगी।

अफ्रीकाका काला हब्शी हो या भारतका अन्त्यज, दोनोंके संघर्ष और शोषणकी स्थिति प्रायः एक जैसी है। इसीलिए दवेकी इस पुस्तकके दो चार पृष्ठोंको पढ़ने के बाद मैं बार-बार अपनेमें डूबता रहाहूं। मेरे लिए रागात्मकताके अनेक सेतु दवेने प्रस्तुत किये। क्या यह कोई कम सफलता है? ऐसा एक सेतु है:

जब दुर्भाग्य करताहै /हमला
पूरी जाति/उठ खड़ी होती है/एक साथ
चढ़ातीहै बलि/पूर्वजोंके नाम.

ओकोलने अपने नाट्य-गीतमें जातिके खड़े होनेकी जो यह बात कहीहै, सो क्या हमभी कभी इस तरह बलि चढ़ानेके लिए खड़े नहीं हुएथे? काश आगेभी उसी तरह खड़े रहनेकी आवश्यकता हमारे बीच बनी रह सकती। लेकिन यहीं यह प्रश्न उठताहै कि क्या काले सर्जकों की तरह हमारे सर्जकभी उतनी शिद्दतके साथ, अपने देशके वंचितोंके साथ अपनेको जोड़ पारहेहैं?

आम आदमीका दर्द, आम-आदमीके सामने आम-आदमीकी अपेक्षाके अनुरूप क्या हमारे सर्जक रख पारहे हैं? शायद नहीं। मुझे भय है कि इस कसौटीपर दवे

१. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ११०; डिमा. ८३; मूल्य : २२.०० रु.।

और उनकी यह कृतिभी खरी न उतरे। काले आदमीकी चीखकी यह दास्तान हमें भीतर तक चीर क्यों नहीं पाती ? इस प्रश्नपर तो हमारा ध्यान जानाही चाहिये।

रमेश दवेका यह कहना सही है कि काला सर्जक केवल यातना, संघर्ष, गुलामी और उससे मुक्तिका सर्जक ही नहीं, बल्कि वह एक समूची काली संस्कृतिका सर्जक ठीक उसी तरह है जिस तरह वाल्ट व्हिटमन एक पूरा अमरीकी या खालिस अमरीकी सर्जक है। भाषा चाहे अंग्रेजी हो या फ्रेंच, डच हो या पोर्चुगीज या फिर उनकी अपनी छोटी-छोटी समूह भाषाएं, काले सर्जकने बहुत बार अपनी लड़ाई दुश्मनकी भाषामें ही लड़ी। यह उसकी विवशता रही हो या कूटनीति, लेकिन इसके परिणाम अच्छे निकले। जहां लड़ाई तेज और सार्थक होसकी, वहीं आज स्वयं अमरीकामें काला साहित्य फ्रेज बनता जारहाहै। दुश्मनपर दुश्मनकी भाषामें चोट करनेपर ही वह मनके क्षोभको समझेगा, समझदार और न्यायप्रिय होगा तो बंधन-मुक्तिकी प्रक्रियामें योगभी देगा।

रमेश दवेकी इस कृतिमें सात अध्याय हैं। अध्याय होते तो कृतिकी प्रस्तुति भिन्न रूपमें होती। सात निबन्ध हैं - अफ्रीकी साहित्य और काली चेतना, कविता : योरुबासे यूयू तक, उपन्यास : काली दुनियांका दस्तावेज, नाटक : अतीत और आजका द्वन्द्व, गद्य : आत्म संघर्ष में आत्मकथ्य, सात क्लासिक उपन्यास, एवं नायजीरिया का दर्द और वोल सोयिकाके नाटक।

अफ्रीकी साहित्य और काली चेतनामें दवेका कहना है-- अफ्रीकामें सामाजिक विघटनके कारण कुछभी रहे हों, फ़िरभी उनका समाज आपसमें गुंथा हुआ समाज है। इस गुंथे हुए समाजसे निकलकर बाहर खड़े होना काले सर्जककी सृजनात्मकताके लिए एक मुश्किल काम है। इसीलिए उसकी वैयक्तिकता समाजमें विलीन हो जातीहै।

'कविता:योरुबासे यूयू तक' में दवेकी लेखनी अधिक मुखर हुईहै और उस मुखरतामें अनेक प्रखर वक्तव्य पाठकके सामने आयेहैं—अगर उपनिवेशवादियोंके पास स्थापित लेखक हैं तो आजका अफ्रीकी साहित्यभी यह कहनेकी स्थितिमें है कि उसके पासभी सेंघर और सोयिका, अचिबी और ओकिगबो हैं और अपनी रचना-धर्मिताका एक पूरा साहित्यिक और कलात्मक आन्दोलन है जिसे काला सौन्दर्य कहा जाये या नेग्रीट्यूड, वह यूरोप या अमरीकाके किसी कला आन्दोलन या सौन्दर्यवादकी प्रतिलिपि नहीं है।

"अफ्रीकी कविताकी थीम लोक-जीवनकी थीम है। अफ्रीकी सर्जकोंने कविताके माध्यमसे आत्म-अन्वेषण और सार्थक जीवनकी खोज प्रारंभ की। इन खोजोंमें काली और सफेद राजनीति, शोषण और वे तमाम घटनाएं शरीक थीं, जिन्हें अफ्रीकी मनुष्य दिन-ब-दिन भोग रहाथा।"

"लिखित कविताकी अपेक्षा मौखिक कविताके अधिक श्रोता काली कविता" के पास हैं/ क्या यही स्थिति हमारे यहांभी नहीं है ?/ तोभी काली कविताको सर्जनात्मक ऊंचाइयां देनेवालोंमें ओकारा, सोयिका, नोरोत्जे, डेनिस ब्रूटस, सेंघर, डेदिये आदिको भुलाया नहीं जासकता।"

"आजकी पूरी कविता यथार्थके प्रति चेतनावान है। वह कविताके जरिये युद्धकर रहीहै अपनी अस्मिताका, और अपने संस्कार और संस्कृतिके साथ साबितकर रहीहै कि वह आगामी मनुष्यके उस आक्रमणकी कविता है जो कविताके जरिये एक नयी मनुष्यता रचनेको बेकरार है।"

ये थीं काली कविताके बारेमें दवेकी कुछ टीपें। अफ्रीकी उपन्यासपर चर्चा करते हुए श्री दवे कहतेहैं कि यदि आजके अफ्रीकी उपन्याससे यह प्रश्न किया जाये कि उसका वास्तविक विषय क्या है और उसका नायक कौन है, तो हमें उपन्यासका वर्गीकरण अपने आप मिल जायेगा और जवाब मिलेगा, लेखक उसका नायक है, और समाज उसके विषयका केन्द्र है। इसलिए वह आत्म-कथ्यभी है और साथमें आत्मकथाभी, जिसमें व्यक्तिगत जीवन-मूल्यभी हैं और समाजगत लोक-मूल्यभी।

इतिहासको उपन्यास, कविता, नाटक सभी जगह प्रयोगमें लानेकी परम्परा सार्वभौमिक रहीहै। अफ्रीकी इतिहासका भी उनके नाटकोंमें काफी प्रयोग हुआहै। गोरे आतंकवादसे लम्बी लड़ाईही उसका इतिहास है। न्याय शाफेलियर्सका यह कथन सही है काले नाटक अपने सही रूपमें अपनी संस्कृतिका ही हिस्सा लगतेहैं।

'गद्य:आत्मसंघर्षमें आत्म-कथ्य' में दवेने अफ्रीकी गद्य साहित्यका अच्छा सर्वेक्षण प्रस्तुत कियाहै। इस सर्वेक्षणमें पत्रकारिता, समीक्षा, इतिहास-ग्रन्थ, आत्म-कथा, बाल-साहित्य आदि क्षेत्रमें किये गये कार्यका ब्यौरा प्रस्तुत किया गयाहै। अचिबी ने अपने निबंध आय नो माय ब्रदर्स में काले सर्जकों

को अपने लोकसे जुड़नेका आग्रह करते हुए सावधान किया है कि वे अपने जनसे हटकर यूरोप या अमरीकाकी उस आधुनिकतामें न फंसे जिससे उनके सृजनका संसार उनके हाथोंसे निकल जाये। अचिबीकी यह चेतावनी क्या कुछ भारतीय सर्जकोंके लिए भी नहीं है?

अचिबीने यह प्रखरता दिखाकर **'कला कलाके लिए'** वाले सिद्धान्तपर प्रहार किया। वह **कला कलाके लिए** सिद्धान्तको **कुत्तेके मलका निर्गन्ध और सूखा टुकड़ा** कहताहै। उसकी दृष्टिमें कला सदैवही मनुष्यकी सेवक रहीहै।

अंग्रेजीमें लिखे काले साहित्यने अंग्रेजों और अमरीकियोंकी अंग्रेजीपर जो दबाव डाला उसके विषयमें प्रो. डगलस बुशको लिखना पड़ा कि काले साहित्यने हमारी भाषाको दूषित कर दियाहै। जान केलीने लिखा कि अफ्रीकाने हमारी भाषामें दाखिल होकर हमें अपनी रुचियोंके मुकामसे हटा दियाहै। मैं इन वक्तव्योंको प्रकारान्तरसे अफ्रीकी साहित्यकी प्रभविष्णुताही मानताहूं।

दवेने सात प्रमुख उपन्यासोंकी सुन्दर समीक्षाएं भी प्रस्तुतकी हैं। ये समीक्षाएं 'उपन्यास : काली दुनियां का दस्तावेज' वाले निबंधके अन्तर्गतभी रखीजा सकतीथीं। दवेकी यह बात बहुत सही है कि काली कवितामें एक ाजीब चीत्कार पैदा हुआ, काला नाटक एक आन्दोलनकी तरह छाने लगा और काला उपन्यास काले स्वाभिमानकी विचार-भूमि बन गया। समूचे काले उपन्यास साहित्यको देखनेसे लगताहै कि वहांकी लेखकीय चेतना आत्म-यंत्रणासे उद्भूत चेतना है। जंगल, जमीन, जीवन और जनसे जुड़े तमाम प्रश्नोंको एक विशिष्ट किन्तु सामान्य भाषाही नहीं बल्कि व्यवहारभी मिलाहै।

वोल सोयिकाके नाटकोंपर दवेने विस्तारसे रोचक चर्चा कीहै। सोयिका एक सर्जकभी हैं और एक सैनिक भी। सोयिकाने अनेक विधाओंमें लिखा लेकिन उसके नाटकोंका कमाल यह है कि पाठक सीधा नाटकीय माध्यमसे नाटकके बारेमें सोचने व अनुभव करने लगताहै।

दवे बधाईके पात्र हैं कि उन्होंने हिन्दीको इस विषय पर इस प्रकारकी पहली सम्पूर्ण कृति दी। स्थान-स्थान पर व्यक्त संभावनाएं यह सिद्ध करतीहैं कि वे इस कृति को और अधिक बेहतर ढंगसे प्रस्तुत कर सकतेथे। इस रचनाको प्रस्तुत करनेसे पहले अफ्रीकी इतिहास और भूगोलको लेखकने पढ़ा लेकिन उसकी कुछ जानकारी पाठकको देना उसने जरूरी नहीं समझा। छात्रोपयोगी और सरलीकरण जैसे मुहावरोंके चिपका दिये जानेकी ग्रंथि आज हमारे अधिकांश साहित्यकी पठनीयताको समाप्त करती जारहीहै। अनेक वांछित सूचनाओंके अभाव में उद्धृत लेखकोंके साथ आत्मीयता स्थापित नहीं हो पाती। इस पुस्तकके आस्वादनके लिए अंग्रेजीका ज्ञान होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। हिन्दीकी अभिव्यक्ति-क्षमताको बढ़ानेके लिए लेखकने बिल्कुल मेहनत नहीं की जबकि रमेश दवेके अध्यापकके लिए यह काम कतई मुश्किल नही था।

एक बात और। अफ्रीकासे ही महात्मा गांधीकी अहिंसक लड़ाई शुरू हुई। गांधीने काले लोगोंकी लड़ाई को बहुत दूरतक प्रभावित किया। मारकस, गारवे, जिनका सम्पूर्ण वाङ्मय छः खण्डोंमें प्रकाशित होरहाहै, गांधीसे बहुत प्रभावित थे। १९२२ में गांधीकी गिरफ्तारीके समय गारवेने हरलेममें गिरफ्तारीके विरोधमें आमसभा कीथी। कमसे कम एक भारतीय लेखकके रूपमें दवेसे यह अपेक्षा थी कि वह गांधीके प्रभावकी दृष्टिसे भी अफ्रीकी साहित्यकी पड़ताल करते।

एक गंभीर पूर्वाग्रह-मुक्त कृतिके लिए दवेको मेरा साधुवाद। भविष्यमें और अधिक समग्रतासे उपस्थित होनेकी अपेक्षा दवेसे गलत अपेक्षा नहीं मानी जासकती। □

आधुनिक हिन्दी कवितामें विचार[१]

लेखक : बलदेव वंशी

समीक्षक : डॉ. जगदीश शर्मा.

बलदेव बंशी आजके प्रबुद्ध कवियोंमें से एक हैं और 'विचार कविता' आंदोलनसे उनका लगाव रहाहै। इसलिए इस काव्यांदोलनकी प्रतिष्ठाके लिए उनकी ओर से प्रयत्न स्वाभाविक है। उनकी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कवितामें विचार' पहली दृष्टिमें ऐसाही एक प्रयत्न प्रतीत होतीहै, लेकिन विस्तारमें जानेपर लगता

१. **प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, २/१०, अंसारी रोड, नई दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २५४; डिमा. ८२; मूल्य : ६०.०० रु.।**

है कि यह पुस्तक किसी विचारशील रचनाकारके अनुभव-निष्पन्न काव्य चिन्तनका परिणाम न होकर एक शोधग्रन्थ है। इसमें बलदेव वंशी एक कवि-विचारकके रूपमें नहीं, अध्येताके रूपमें सामने आतेहैं।

पुस्तकमें दस अध्याय हैं जो शीर्षक देखनेपर दस स्वतंत्र लेख प्रतीत होतेहैं, लेकिन लेखकने उनका उल्लेख सर्वत्र अध्यायोंके रूपमें कियाहै। ये दस अध्याय तीन कोटियोंमें विभाजित कियेजा सकतेहैं। प्रथम चार अध्याय सैद्धान्तिक हैं, अगले चार अध्यायोंमें आधुनिक हिन्दी कविताके विकासके विभिन्न चरणोंमें 'विचार' की स्थितिका आकलन किया गयाहै तथा अन्तिम दो अध्यायोंमें लम्बी कविताको विचार-केन्द्रित मानकर उसके विषयमें लेखकने अपना मत प्रकट कियाहै।

बलदेव वंशीने सिद्धान्त-चर्चा 'आधुनिकता, आधुनिकीकरण और विचार-तत्त्व' शीर्षक अध्यायसे आरम्भ कीहैं। उन्होंने कवितामें विचारोंका वर्चस्व आधुनिकता का परिणाम मानाहै। 'आधुनिकता' की व्याख्या करते हुए 'विचार' से उसके सम्बन्ध स्थापनके लिए उन्होंने अपने विस्तृत अध्ययनका साक्ष्य प्रस्तुत कियाहै।

इस समस्याके अध्ययनमें सबसे अधिक उलझा हुआ प्रश्न विचारके स्वरूपका है। यदि 'विचार' की अवधारणा निर्भ्रान्त हो तो कवितामें उसकी स्थितिका आकलन सुलझा हुआ होसकताहै। 'विचार' शब्दकी एकाधिक रंगच्छटाएँ हैं। सबसे पहले यह स्पष्ट होना आवश्यक था कि इस शब्दका प्रयोग किस अर्थमें किया गयाहै। समीक्ष्य पुस्तकमें समस्याके इस भाषिक पक्षकी ओर ध्यान नहीं दिया गयाहै। फिरभी मनोविज्ञानकी पुस्तकोंके आधारपर उसका स्वरूप-निर्धारण विस्तारपूर्वक किया गयाहै।

लेखकने जहां कवितामें विचारका स्थान महत्त्वपूर्ण मानते हुए यह कहाहै कि 'विचार-परिपक्वताही साहित्यकारकी प्रौढ़ताका परिणाम हुआ करतीहै।' (पृष्ठ६६) वहीं यहभी स्पष्ट कर दियाहै कि 'विचारपरक कवितामें विचार कवि द्वारा संवेदित विचार होताहै न कि दार्शनिक द्वारा प्रेषित विचार। अतः विचारपरक कविता जहाँ एक ओर भाववादी कविताके उत्तेजनात्मक संवेदनोंमें कविताके फंस जानेके खतरेसे भिन्न है, उसे टालतीहै, वहां दूसरी ओर यह यंत्रवत् किसी विचारधाराके स्वीकारसे उत्पन्न होनेवाले भयसे भी मुक्त हैं।' (पृष्ठ ८८)

कवि होनेके फलस्वरूप बलदेव वंशी 'विचार' की हिमायत करते हुएभी कवितामें बौद्धिक शुष्कताके पक्षमें खड़े होनेके लिए तैयार नहीं हुएहैं। उन्होंने 'विचार' को बुद्धि तत्त्वसे अलगाकर कर्मके साथ जोड़ाहै। उनका कहनाहै 'विचार बुद्धि-तत्त्वसे भिन्न अस्तित्व रखताहै। बुद्धि-तत्त्वमें जहां मात्र वस्तु-परिगणना, विश्लेषण, जिज्ञासा-तत्त्व, प्रत्यक्षात्मक बोधतक सीमित रहतेहैं, वहां विचार-तत्त्व इन स्थितियोंसे आगे किन्हीं संकल्पों निर्णयोंपर पहुंचकर **सक्रियता उत्पन्न करताहै**—कर्मकी ओर प्रेरित करताहै। बुद्धि-तत्त्वमें सज्ञानात्मक सीमाएं हैं जबकि विचार तत्त्व उन सीमाओंको लांघकर कर्ममें हिस्सेदारीकी लालसा उद्बुद्ध करताहै, वस्तुतः विचार कर्म और कर्म विचारको प्रमाणित करतेहैं। × × × कवितामें विचारकी भूमिका बौद्धिकतासे आगे सक्रियता, मूल्यचेतना कर्मशीलताके रूपमें प्रतिफलित होरहीहै।' (पृष्ठ ६३-६४)। लेकिन पुस्तककी प्रस्तावनामें लेखकने "विचार' को कहीं अधिक व्यापक अर्थमें प्रस्तुत कियाहै: 'विचार तत्त्वका प्रसार अत्यंत व्यापक है। वह बिम्ब, प्रतीक, मिथक, व्यंग्य और भाषाके साथ अंतःसंबंधित होकर नये अर्थों, संकेतों और ध्वनियोंको गुंजाकर युगीन विसंगतियों, विडम्बनाओं, विरोधाभासों और आधुनिक स्थितियोंकी अनेक तहों चेहरोंको उद्घाटितकर रहाहै।" 'विचार' संबंधी विचारकी सुनिश्चितताका अभाव यहां स्पष्ट है जो पूरी पुस्तकमें सैद्धांतिक धरातलपर दिखलायी देताहै जबकि आकलनमें बलदेव वंशीने अधिकांशतः संवेदनात्मक ज्ञान या आलोचनशील भाव-दृष्टिकी खोज कीहै।

फिरभी यह नहीं कहा जासकता कि आधुनिक हिन्दी कवितामें विचारोंकी खोज इस पुस्तकमें सर्वत्र ज्ञानात्मक संवेदन या संवेदनात्मक ज्ञानके अर्थमें ही कीगयी है। बलदेव वंशी अनेक बार अपनी इस स्थापनासे भी हट गये हैं कि कवितामें विचारकी सार्थकता सक्रियता उत्पन्न करनेमें निहित होतीहै। उन्होंने पृष्ठ-१५४-५५ पर धर्मवीर भारतीकी निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कीहैं:

इन फीरोजी होंठोंपर बरबाद
मेरी जिन्दगी।
गुलाबी पांखुरीपर एक हलकी सुरमई आभा
कि ज्यों करवट बदल लेती कभी बरसातकी दुपहर।
इन फीरोजी होठोंपर
गुनाहोंसे कभी मैली हुई बेदाग तरुणाई?

सितारोंकी जलनसे बादलोंपर आँच कब आयी !
न चंदाको व्यापी अमाकी घोर कजराई ।

इसके बाद धर्मवीर भारतीकी कविताओंसे तीन और उद्धरण देकर उन्होंने टिप्पणी कीहै :

"उक्त चारों उद्धरणोंमें एक वेबाकी है जो मांसल सौन्दर्यमें कहींभी अन्यत्र देखनेको नहीं मिलती। न यहां छायावादी रहस्यमय या आध्यात्मिक सांकेतिकताहै न कुंठित प्रणय-प्रसंग है, बल्कि पारदर्शी खिलते-खुलते यौवनके सहज उद्गार हैं, जिन्हें सौन्दर्यके नये रंग रूपोंमें प्रतीक बिम्बोंमें अभिव्यक्ति मिलीहै। अत्यंत सूक्ष्म पर्यवेक्षणका परिचय देती हुई कवि-दृष्टि गुलाबी पंखुरीपर पड़ी हल्की सुरमई आभाको शब्दोंमें बाँध लायीहै । **कोमल भावके साथ यह बेखौफ विचारभी** व्यक्त हुआहै कि **तरुणाई कभी मैली नहीं हुई यानी सामाजिक मान्यताओंमें जो गुनाह हैं, वे वास्तवमें तरुणाईका गौरव हैं।**

इस टिप्पणीमें विचारकी कर्म प्रेरकता 'पारदर्शी खिलते-खुलते यौवनके सहज उद्गारोंसे कुंठित होकर रह गयीहै और कविताके सामाजिक सरोकारकी चिंता गुनाह सम्बन्धी सामाजिक मान्यताओंकी अवहेलनाकी उत्फुल्लतासे टकराकर ध्वस्त होगयीहै। वैसेभी पूरी टिप्पणीमें 'विचार' की चर्चा कुल मिलाकर एक वाक्यमें की गयीहै जिसकी स्थिति इस टिप्पणीमें आनुषंगिकही है। भारतीकी कवितासे उद्धृत पंक्तियोंमें 'उद्गार' और 'विचार' के अन्तर्विलयका अभाव और ज्ञानात्मक संवेदनमें उनके परिणत न होपानेके बोधसे बलदेव वंशी कतई परेशान नहीं हुएहै।

'ज्ञानात्मक संवेदन' और 'संवेदनात्मक ज्ञान' की अवधारणा मुक्तिबोधकी देन है, लेकिन उन्होंने न तो उसके स्वरूपकी व्याख्या कीथी न उदाहरण देकर ही उसे स्पष्ट कियाथा। बलदेव वंशी चाहते तो आधुनिक काव्यके प्रकाशमें इस अवधारणाकी व्याख्याकर सकतथे। यह एक बहुतही सार्थक कार्य होता, लेकिन इसपर उन्होंने ध्यान केन्द्रित नहीं कियाहै। शमशेरकी कविता में उन्हें अनुभूति और विचारकी चरम अन्विति दिखलायी दीहै। (यद्यपि मेरी मान्यता ऐसी नहीं है), लेकिन इस स्थितिसे वे खुश नहीं हुएहैं। इस विषयमें उन्होंने टिप्पणी कीहै :

'भावना रूप जिन अनोखे बिम्बोंमें प्रयुक्त हुएहैं उनके क्रमको—बिम्बोंसे भावना और फिर भावनासे विचारोंतक आपानेकी क्षमताको **कलाभावना थकाकर** तोड़ देतीहै, [illegible] के रंग-मनोविज्ञान तो कहीं उर्दू-अंग्रेजीके क्लासिकों की नजाकतके कई-कई पेंच दिये गये होतेहैं। उनके काव्यमें **विचार कभी-कभार ही वैचारिक पहचानके रूपमें मिलताहै, वरना भावनात्मक पहचानमें घुला खिलाहुआ, बिम्ब प्रतीकोंमें अति सूक्ष्म विश्व झिलमिलाता हुआ मिलेगा।'**

इसके विपरीत 'बात बोलेगी' के उन अंशोंकी अज्ञेय द्वारा अवहेलना कीजानेपर उन्होंने अपनी अप्रसन्नता व्यक्त कीहै जिनमें विचार बहुत उघड़े रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। ऐसा करते समय वे लेनिनके उस मंतव्यको भी भूल गयेहैं जो उन्होंने अपने विचारोंकी पुष्टिके लिए इस पुस्तकके पृष्ठ ९५ पर चंद्रभूषण तिवारी के हवालेसे प्रस्तुत कियाहै : "लेनिनने इस तथ्यपर बार-बार बल देते हुए कहाहै : 'चेतना वस्तु-जगत्को बिम्बित करतीहै। यह समस्त वस्तुवादी दर्शनका आधारहै।' पुनः चेतनाके स्तरपर बिम्बित होनेके क्रममें उसकी समग्रता, उनके अन्तर्संबंध और सार-तत्त्वकी जानकारी उन्हें प्रगाढ़ करतीहै और अन्ततः व्यक्त होनेके लिए यह सारी सामग्री और इस अर्थमें इनकी समग्रता **रूपात्मक होकर ही** सामने आतीहै—यह कार्य बिम्बविधान द्वाराही संपन्न होताहै।"

फिरभी चूंकि बलदेव वंशी मूलतः कवि हैं और काव्य सौन्दर्यकी उन्हें पहचान है, इसलिए कवित्वहीन विचारोंकी अभिव्यक्तिके लिए उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तकको नहीं बख्शाहै और डॉ. रामविलास शर्मा जैसे दिग्गज समीक्षकतक से अपनी असहमति प्रकट कीहै इसी कारण वे समकालीन कवितासे विचाराभिव्यक्तिके बड़ेही सुन्दर उद्धरणभी दे सकेहैं। लेकिन कविताके सामाजिक सरोकारके प्रति आग्रही होनेके कारण वे कई बार काव्यकी रमणीयताकी अनदेखी करके उसके विचार-पक्षकी प्रशंसा कर गयेहैं। इसी प्रकार अपनी कलाभिरुचिसे विवश होकर काव्यकी वैचारिक क्षीणता या विचारशून्यताकी चिन्ताभी कई बार उन्होंने छोड़ दी है। सचेत रूपसे वे विचारकी काव्यात्मक परिणतिके पक्षधर रहेहैं लेकिन उनके अचेतन मनमें विचारोंके सामाजिक सरोकारों और कलाभिरुचिके मध्य द्वन्द्व बना रहाहै जिसका शमन पुस्तकके अंततक नहीं होसका। □

लेखक : डॉ. कमलसिंह
समीक्षक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया.

गोरखनाथ आदिकालीन हिंदीके प्रमुख कवि हैं। यद्यपि गोरखनाथ और उनके युगपर कई शोध कार्य तथा आलोचनात्मक ग्रंथ उपलब्ध हैं पर प्रस्तुत कृति सर्वथा भिन्न प्रकारकी है। यह शोध कार्यभी है, और आलोचनात्मक कृतिभी, फलतः अध्येताओं तथा विद्यार्थियोंके लिए सामान्य रूपसे उपयोगी।

प्रारंभमें 'गोरखनाथ' से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण अध्याय हैं—गोरखनाथ और उनकी हिन्दी रचनाएं, गोरखनाथकी योग साधना, गोरखनाथका शिल्प-विधान, गोरखनाथका परवर्ती हिन्दी साहित्यपर प्रभाव, विशिष्ट हिन्दी रचनाएं।

प्रथम अध्याय 'गोरखनाथ और उनकी हिन्दी रचनाएं' के अन्तर्गत उनका आविर्भाव काल, उनकी हिन्दी रचनाओंका परिचय, खड़ी बोलीकी आदिकालीन श्रृंखला में गोरखका योगदान, उनकी रचनाओंकी प्रामाणिकता आदिपर अबतक कीगयी शोधोंके आधारपर विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विवेचन है 'खड़ी बोलीकी आदिकालीन श्रृंखलामें गोरखका योगदान' जिसमें लेखकने बिखरी हुई कड़ियोंको जोड़कर खड़ी बोली श्रृंखलाको पूर्ण करनेका प्रयास कियाहै।' इस श्रृंखलाकी प्रथम कड़ी है 'राउलवेलकी टक्की' और दूसरी शक्तिशाली कड़ी है, 'गोरखनाथकी बानियां'। तीसरी कड़ी खुसरोकी 'हिन्दवी', चौथी कबीरकी भाषा, पाँचवी कुतुबशतककी हिन्दुई और छठी कड़ी है दक्खिनी हिन्दी। इस प्रकार ११वीं शताब्दीसे १७वीं शताब्दीतक की खड़ी बोली श्रृंखला तैयार होतीहै। 'राउलवेल' पर स्वयं समीक्षकने कार्य कियाहै जो अत्र पुस्तकाकार (तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली-२) में उपलब्ध है। इसी परम्परामें संदेश रासक तथा दोहा-कोशभी महत्त्वपूर्ण है जिनसे तुलनात्मक अध्ययन समीक्षकने किया है। गुलेरीजीने जिस 'पुरानी हिंदी' की ओर विद्वानोंका ध्यान आकर्षित कियाथा उसमें 'राउलवेल' का सर्वोपरि स्थान है। इस दृष्टिसे डॉ. कमलसिंहने 'गोरखनाथ' को इस श्रृंखलाकी दूसरी कड़ीके रूपमें स्थापित कियाहै। 'गोरखबानी' का संपादन डॉ. बड़थ्वालने कियाथा। इस बीच पर्याप्त सामग्री प्रकाशमें आयीहै जिसके परिप्रेक्ष्यमें 'गोरख रचनाओंकी प्रामाणिकता' शीर्षकसे लिखा गयाहै। गोरखनाथके समयपर पर्याप्त विवाद (सातवीं शतीसे बारहवीं शतीतक) है जिसका युक्ति-युक्त विवेचनकर (पृ. २-४ तथा २१-२२) दसवीं शताब्दी निश्चित किया गयाहै। यही सर्वमान्य होना चाहिये। दूसरे अध्यायमें 'गोरखनाथकी योग-साधना' (पृ. ३०-५८) में सिद्ध-सिद्धान्त, हठयोग प्रक्रिया, योगासन, योग साधनामें आहार-विहार, नारी-भावना शीर्षकसे विवेचन प्रस्तुत किया गयाहै। 'हठयोग' की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयीहै। गोरखने 'मन' पर विशेष रूपसे प्रकाश डालाहै। मनको विश्वासमें लेनेसे शरीर तर जाताहै। मनमें ही वह कुम्भ और कलश है जो अमृत रससे भरा हुआहै। इस अमृत रसको पहचाननेवाला साधक मनमें ही अलक्ष्य परमात्मासे साक्षात्कार करताहै।

मन मांहैं तेणैं तन तर्‌यां/मन बिसवासैं मिलणां।
मनमें कुम्भ कलस रस भरिया/तेणैं मनवैं अलख लाखाया मेरे ज्ञानी।
(गोरखबानी, पृ. ८९)

गोरखका युग तांत्रिकों एवं साधकोंका युग था। गोरख सुधारवादी तथा दूरद्रष्टा थे, अतएव उन्होंने तत्कालीन समाजमें व्याप्त कुरीतियोंपर कुठाराघात किया। लेखकने गोरखके इस पक्षको बहुत स्पष्ट रूपसे उद्घाटित कियाहै।

तीसरे अध्याय 'गोरखनाथका शिल्प विधान' में भाषावैज्ञानिक विवेचन है। लेखकने पृ. ५६ पर अन्य शोध कार्योंकी ओरभी निर्देश कियाहै। 'गोरखबानीका आलोचनात्मक अध्ययन' (डॉ. श्रीमती मनीषारानी शर्मा) शीर्षक शोध कार्य समीक्षकके निर्देशनमें सन् १९७१ में सम्पन्न हुआ जिसमें भाषापरक अध्ययन बड़े विस्तारसे प्रस्तुत किया गयाहै। संभवतः लेखकने इस कार्यको नहीं देखाहै। लेखकने स्वयं **'गोरखनाथकी भाषा'** पर शोध कार्य सम्पन्न कियाहै जिसका सार संक्षेप यह अध्याय है। 'संधा भाषा' का बड़े विस्तारसे पहली बार स्पष्ट विवेचन चार शीर्षकों—रूपात्मक, प्रतीकात्मक, विरोधात्मक, अद्भुत रसात्मकसे किया गयाहै। गोरखकी 'वाणी' को समझनेके लिए प्रतीकोंको समझना अत्यन्त आवश्यक है

१. **प्रकाशक : सुधाकमल ग्रंथालय, मुजफ्फरनगर। पृ. ८+१५८; डिमा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।**

जिसके विस्तृत विवेचन (पृ. १००-१०३) के लिए डॉ. सिंह बधाईके पात्र हैं। बिना इस विवेचनके गोरखबाणीके मर्मको समझना दुष्कर है। डॉ. कमलने बड़े श्रमसे गोरखबाणीके सूत्रोंको पकड़ाहै। यही कारण है कि पुस्तक के दूसरे भागमें नमूनेके तौरपर पचास 'शब्दी' तथा पच्चीस **पद** दिये गयेहैं जिनकी टीका व अर्थभी दिया गयाहै। भविष्यमें डॉ. कमलसिंहसे आशा है कि सम्पूर्ण 'गोरखबाणी' का भाष्य इसी प्रकार प्रस्तुतकर गोरखके अध्येताओंका मार्ग प्रशस्त करेंगे और जो कार्य डा. बड़थ्वाल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डा. रांगेय राघवने प्रारंभ कियाथा उसको हिंदीके व्यापक हितमें आगे बढ़ायेंगे।

'गोरखनाथका परवर्ती हिन्दी साहित्यपर भी व्यापक प्रभाव पड़ाहै जिसपर एक अध्यायमें संक्षेपमें प्रकाश डाला गयाहै।

पुस्तकके प्रारंभमें गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुरके महन्त श्री अवेद्यनाथने 'शुभाशिष' दियाहै और डॉ. रामचन्द्र तिवारीने 'प्रस्तावना' में गोरखनाथके महत्त्वको प्रतिपादित कियाहै जिनसे पुस्तकका मूल्य बढ़ गयाहै।

पुस्तकके साफ-सुथरे शुद्ध मुद्रणके लिए प्रकाशकको बधाई। गेट-अप आकर्षक है और विद्यार्थियोंको ध्यानमें रखकर पेपरबैकका मूल्य मात्र दस रुपये रखा गयाहै। आशा है, हिन्दी जगत्में इस महत्त्वपूर्ण कृतिका व्यापक रूपसे स्वागत होगा। □□

आदान प्रदान

निशान्तके सहयात्री[1]

[उर्दूसे रूपान्तरित]

लेखक : कुर्रतुल ऐन हैदर
रूपान्तर : असगर वजाहत
समीक्षक : सन्हैयालाल ओझा.

ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत भारतीय उपमहाद्वीपमें आधुनिक भारतके अतिरिक्त पश्चिममें पाकिस्तान, पूर्वमें बंगलादेश और बर्मा तथा दक्षिणमें श्रीलंकाभी शामिल थे। बर्मा सन् १८८६ से १९३५ तक तथा अन्य देश १९४७ में भारतकी स्वाधीनता-प्राप्तितक ही भारत साम्राज्यके अंग रहे। भारतके स्वाधीनता-संग्राममें शायद एक लंका और बर्माको छोड़कर समस्त भारतने धर्म, जाति, भाषा आदिके भेद भुलाकर भाग लियाथा। पाकिस्तानकी माँग एक बादकी और अंग्रेजोंकी भेद-नीतिका अध्याय है, बल्कि पाकिस्तानके निर्माताभी पहले तो भारतकी आजादीके लिएही संघर्षमें आगे आयेथे। धार्मिक-उग्रवादिताके कारण स्वाधीनता-प्राप्तिके समय भौगोलिक और ऐतिहासिक एकताको चुनौती देता हुआ देशके पूर्व और पश्चिममें एक नया देश पाकिस्तान उदित हुआ। स्वाधीनताके लिए मर मिटनेवालोंके दिलमें देशके इस अप्राकृतिक-विभाजनकी शायद कल्पनाभी नहीं थी, उन्होंने तो देशकी अखंड स्वाधीनताके लिए ही अपने प्राणों की बाजी लगायीथी। स्वाधीनता-संघर्ष विषयके भारतीय उपन्यासोंमें प्रायः वर्तमान भारतकी ही पटभूमि और वहींके वस्तु-चित्र उभारे गयेहैं। यदि कहीं पंजाबकी पटभूमि आयीहै तो उनमें स्वाधीनताकी अपेक्षा विभाजनकी पाशविकताही अधिक मुखर हुईहै। इस पृष्ठभूमिमें श्रीमती कुर्रतुल ऐन हैदरका उर्दू उपन्यास 'आखिरे-शबके हमसफर', जिसका कि प्रस्तुत समीक्ष्य उपन्यास हिन्दी-रूपान्तर है, एक सुखद भावभूमि प्रदान करताहै। इसकी पटभूमि ढाका शहर है, जो अब बंगलादेशकी

१. **प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी-४५/४७, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : ३४५; डिमा. ८२; मूल्य : ४०.०० रु.।**

राजधानी है और जो स्वातन्त्र्य-पूर्व भारतके बंगाल प्रान्त का कलकत्ताके बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और औद्योगिक केन्द्र था। लेखिकाको इस तथ्यका बोध है, इसीलिए पुस्तकका शीर्षक है 'सहयात्री', यात्री नहीं! पटकथाकी अवधि द्वितीय विश्वयुद्धके प्रारम्भसे सम्भवतः १९७७ तक की है, जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और ब्राह्म, चार परिवारोंकी तीन पीढ़ियोंके माध्यमसे तत्कालीन अभिजातवर्गके राजनीतिक और सांस्कृतिक अपकर्ष (डिकेडन्स) का इतिहास प्रस्तुत किया गयाहै। इस डिकेडन्सके केन्द्र हैं इन परिवारोंके आवास-स्थल, क्रमशः चन्द्र कुंज, आर्जुमन्द मंजिल, लिलि कॉटेज और वुडलैन्ड्ज।

प्रथम पीढ़ीमें हैं चन्द्रकुंजके स्वामी डॉ. विनयचन्द्र सरकार और उनकी बहन भवतारिणी देवी, आर्जुमन्द मंजिलके नवाब कमरुज्जमां चौधरी और उनकी बेगम, लिलिकॉटेजके मूल नामके श्री मनमोहन बनर्जी और परिवर्तित-धर्मके नामके रेवरन्ड श्री पॉल मैथ्यू बनर्जी अपनी पत्नी ईस्थर गिरिबाला बनर्जीके साथ और वुडलैण्डजके ब्राह्मसमाजी सर परितोष रॉय और उनकी पत्नी लेडी अर्चना रॉय। इस पीढ़ीके ये सभी सदस्य अंग्रेजी सल्तनतके वफादार और दृढ़ स्तम्भ कहेजा सकतेहैं। केवल डॉ. विनयचन्द्र सरकार इस मानेमें उदासीन हैं, क्योंकि उनके भाई दिनेशचन्द्र सरकार एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे, जो अंग्रेजोंके दमनके शिकार होकर मारेजा चुकेथे। दूसरी पीढ़ीके प्रमुख पात्रोंमें डॉ. विनयचन्द्र सरकारकी पुत्री दीपाली है, नवाब कमरुज्जमांकी लड़की जहांआरा और बहिनका लड़का रेहानुद्दीन हैं, पादरी रेवरंड मैथ्यू बनर्जीकी लड़की रोजी है, और है सर परितोष रॉयकी लड़की उमा राय। उपन्यासका सारा ताना-बाना इन्हीं कुछ पात्रोंके इर्दगिर्द बुना गयाहै। उमा राय और रेहानुद्दीन अपनी समृद्ध पारिवारिक पृष्ठभूमिके कारण इंग्लैण्ड जाकर उच्च शिक्षा प्राप्तकर आयेहैं और स्वदेश लौटकर देशकी स्वाधीनताके लिए आतंकवादी दलमें सक्रिय योगदान देने लगतेहैं। दीपाली और रोजीभी उनसे प्रेरित होकर उनके निर्देशमें उनका अनुसरण करतीहैं। इसके अतिरिक्त इनमें परस्पर प्रेमके चक्करभी हैं। रेहानुद्दीन एक खूबसूरत प्रतिभाशाली युवक है। बचपनसे ही जहांआरा और उसके निकाहकी बात तय होनेसे दोनोंमें प्रेमका अंकुर फूट निकलताहै, किन्तु कुछ तो पारिवारिक-मनोवैज्ञानिक उलझनों और कुछ रेहानके क्रान्तिकारी विचारोंके कारण जब उनके विवाहकी सम्भावना टल जातीहै तो रेहान और दीपालीके बीच लगाव पैदा हो जाताहै। उमा रायभी रेहानकी ओर आकृष्ट है, किन्तु अपने प्रति रेहानकी उदासीनतासे भी परिचित है। अतः वह अनायासही उसके प्रति एक दबंग व्हैम्प (खलनायिका) की भूमिका अख्तियार कर लेतीहै। बादमें वह कुछ आसक्ति विधुर डा. विनयचन्द्र सरकारमें दिखातीहै, किन्तु अपनी आदतसे मजबूर वह सफल नहीं होपाती। दीपाली को भी जब यह पता चलताहै कि रेहानकी अनुरक्ति जहांआरामें थी तो वह अपनी सखीके मार्गसे हट जातीहै यद्यपि इससे जहांआराको लाभ नहीं मिलता।

लेखिकाका उद्देश्य इन चरित्रोंके माध्यमसे किसी विशेष राजनीतिक मन्तव्य, स्वाधीनता-प्राप्ति या विभाजनकी विभीषिकाके तथ्यको उजागर करनेका उतना नहीं है, जितना जीवनकी अतर्क्य और अबूझ पहेलियोंको प्रस्तुत करनेका प्रतीत होताहै। भारतकी आजादी और पाकिस्तान के बन जानेके पहलेसे ही दूसरी पीढ़ीके प्रायः सभी पात्र अपने लक्ष्यसे विच्युत होने लग जातेहैं। जहांआरा अपनी इच्छाके विपरीत अपनीसे दुगनी उम्रके एक शराबी ऐयाश और बदसूरत किन्तु धनी, दीनाजपुरके नवाब अजमल हुसैन मुर्शिदजदाके साथ निकाह करनेको मजबूर होतीहै, और एक बेटे अकमलकी मां बनकर पतिव्रताका जीवन बिताती हुई जल्दीही वैधव्य ढोनेको विवश होतीहै। गरीब ईसाई पादरीकी लड़की रोजी बनर्जी एक आतंककारी जुलूसमें आहत और कैद होनेके बाद, अपने मां बापकी इच्छाके खिलाफ एक धनी हिन्दू बसन्तकुमार सान्यालसे, राधिका सान्यालके हिन्दू नाम रूपमें विवाह कर लेतीहै और एक लड़के कमलकी मां बनकर अपनी सम्पन्नताका प्रदर्शन करने लगतीहै। दीपाली सरकारभी तब पीछे क्यों रहे? रेहानसे वह निराश होही चुकीहै। पाकिस्तान बन जानेपर वह अपने परिवारके साथ कलकत्ता और फिर वहांसे एक बिलकुल दूसरी दुनियां त्रिनिदाद पहुंच जातीहै। यह मानकर कि जहांआरा और रेहानके विवाहका मार्ग प्रशस्त है, वह त्रिनिदादमें ही एक तलाक-प्राप्त बैरिस्टर ललित सेनसे विवाहकरके सद्गृहस्थ बन जातीहै। रह गया रेहानुद्दीन, समयकी कसौटी पर वह सबसे अधिक मौकापरस्त प्रमाणित होताहै। प्रारम्भमें वह शरच्चन्द्रके प्रसिद्ध क्रांतिकारी उपन्यास 'पथके दावेदार' के डाक्टरकी याद ताजा करताथा, किन्तु भारतकी आजादीके साथ वह पुरानी सियासत छोड़कर

कांग्रेसमें शामिल होजाताहै, तथा तिकड़म लड़ाकर कुछ समयके लिए मिनिस्टरभी बन जाताहै ! उमा रायभी अपने भाई निर्मलेन्दु रायके साथ पाकिस्तान बन जानेपर ढाका छोड़कर कलकत्ता आचुकीहै। रेहानने वहां निर्मलेन्दु और उमा रायके कारोबारको बहुत फायदा पहुंचाया, जिसके फलस्वरूप बादमें वह उनका जनरल मैनेजर बन गया। पार्टीशनके दो-ढाई साल बाद एक बार शराबमें धुत निर्मलेन्दुने कार चलाते हुए एक गरीब जरदोज बूढ़े को टकराकर मार दिया, उसकी एक इकलौती बेटी थी। उमा रायने उस अनाथ लड़की जोहरीकी शादी रेहानुद्दीनसे करवाकर तिकड़मसे अपने भाई निर्मलेन्दुको पुलिस की झड़पसे बचा लिया। बादमें उमाकी बदमिजाजीसे तंग आकर रेहान अपने परिवारके साथ सन् १९६८में पूर्व पाकिस्तान लौट आताहै और किसी तरकीबसे अपना सारा रुपया कलकत्तेसे ले आकर खुलनामें बिजिनेस शुरू कर देताहै। इधर आर्जुमन्द मंजिलके नवाब कमरुज्जमां का पूरा घराना शेख मुजीबका समर्थक बन चुकाथा। फलस्वरूप एक आधी रातको 'वे सब जने मेम साहब, बड़े नवाब साहब, नैयर मियां उनकी बीवी-बच्चे, जहांआरा बेगम उनकी बहू और पोता, सब मारे गये। सब बन्दूकका निशाना बने। यहीं कोठीके अन्दर !—जब आर्जुमन्द मंजिलपर हमला हुआ, रेहानुद्दीन और उसका परिवार खुलनाके एक गांवमें छिपे हुएथे। और फिर वही 'रेहानुद्दीन' नवाब कमरुज्जमां चौधरीका भांजा शहीद नवाबके अकेले कानूनी वारिस, जो कत्ले-आममें जिन्दा बचेथे, आर्जुमंद मंजिलके नये मालिक, मौजूदा नवाब बन गये।' इसी पीढ़ीकी एक और महिला है यास्मीन मजीद, जो एक गरीब दीनदारकी बेटी है, और आर्जुमन्द मंजिलमें आकर नृत्यगानमें महारत हासिलकर लेतीहै। इंटरनेशनल डान्सर बननेकी हविसमें वह विदेश जाकर पहले एक लम्पट ईसाई जीरल्ड बिलमौंटसे जाली निकाहमें फंस जातीहै। उसके द्वारा असहाय छोड़ दिये जानेपर वह वहीं एक पंजाबी मकबूलके फन्देमें फंसतीहै और निहायत गरीबीमें फटेहाल दिलके मर्जमें मुब्तला एक दिन एल्पसके किनारे टहलती हुई नदीमें गिरकर खुदकशी कर लेतीहै।

और तीसरी पीढ़ीके प्रमुख पात्र हैं : यास्मीन मजीदकी ईसाई बन गयी बेटी शहरजाद क्रिस्टीना बिलमौंट, जो उसके ही शब्दोंमें, 'एक बहुत सफल मॉडल हूं। और अबतक हर धर्म और जातिके इतने आदमियोंके साथ सो चुकीहूं कि उनकी गिनती मुझे याद नहीं।' एक है रेहानुद्दीनका लड़का फुरकान, 'वह ड्रग्ज खाने लग गया। घरसे निकल गया, हिप्पी बन गया—फिर लड़का यूनिवर्सिटीमें दाखिल होगया। सुधर गया। फिर रेहान साहबने उसे आगे पढ़नेके लिए लन्दन भेज दिया।' और एक पात्र है रेहानुद्दीनकी बहन राबियाकी बेटी नासिरा नज्मुस्सहर कादिरी, जो पहले आजादीकी लड़ाईमें लड़ रहीथी और अब एक गर्ल्स कॉलेजमें पोलिटिकल साइन्स पढ़ातीहै। वह दीपालीसे कहतीहै, 'माफ कीजियेगा दीपाली दी, हम लोग एक बहुत बड़े आग और तूफानसे होकर गुजरेहैं, जिसके मुकाबलेमें आप लोगोंकी अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई और हिन्दुस्तानके बंटवारेकी मारकाट एक पिकनिक थी।' और इस तरह जेनरेशन-गैपकी चर्चा में बात खत्म हो जातीहै। तीसरी या वर्तमान पीढ़ी वस्तुतः क्या चाहतीहै, यह वह खुद नहीं जानती। मानों तेज आँचमें एक उबाल आताहै, और फिर धीरे-धीरे ठंडा हो जाताहै पहले जैसाही !

स्पष्ट है कि लेखिकाका उद्देश्य इतिहासके परिप्रेक्ष्य में वस्तुस्थितिका यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करनाही है, किसी कल्पित-आदर्शकी स्थापनाका नहीं। 'इतिहासकी शिक्षाओंसे आदमीकी नसीहत न लेनेका नाम इतिहास।' संयोगोंका सिलसिला अक्ल चकरा देताहै। 'सारी जिन्दगी 'संयोगोंका एक लम्बा सिलसिला है। शायद यही लेखिका का भी मन्तव्य है, और इस सम्पूर्ण कथाको एक कटु किन्तु निराशावादी यथार्थ कहाजा सकताहै।

उपन्यासमें कहानीहै, डायरीहै, स्वगत-कथन हैं, पत्र हैं, काव्य है, और, औरभी बहुत कुछ है; जिसका सिर-पैर ढूंढनेमें पाठकको कठिनाई होसकतीहै। ''इस कठिनाईको मुद्रणकी जघन्य अशुद्धताने चार चांद और लेखिकाकी कल्पना-प्रवणताके पूर्ण-चन्द्रको ग्रसनेके लिए राहु लगा दियाहै। जहांतक भाषाका सवालहै, उर्दूको हिन्दीकी ही एक शैली कहा जाना चाहिये लिपिकी पृथक्ताके बावजूद। शायद इसीलिए इसे अनुवाद न कहकर 'रूपान्तर' कहा गयाहै। यदि अनुवाद होता तोही शायद अंग्रेजी शब्दों और कविताओंका अनुवाद दिया जाता। लेखिका, और रूपान्तरकारने भी, पाठककी जानकारीको अपने तुल्यही मान लियाहै इसलिए कई तथ्य पाठकके लिए अस्पष्ट, बेतुके और असम्बद्ध रह जाते हैं। उन्हें अनुवाद या फुटनोट द्वारा समझाना जरूरी था। अंग्रेजी शब्दों और पदोंका जगह-जगह अनावश्यक प्रयोग,

उनकी अशुद्ध मुद्रित वर्तनी, आदिसे खेद है कि, आधी पुस्तक पढ़नेतक पाठक पुस्तकके साथ तादात्म्य ही नहीं करपाता। भारतीय ज्ञानपीठ जैसी संस्थाके लिए मुद्रण की यह लापरवाही लज्जाजनकही कही जायेगी, जिससे भाषा अवरुद्धही नहीं होती, विकृतभी होतीहै। हिन्दी-प्रकाशनमें यह दोष इस सीमातक पहुंच गयाहै कि स्वयं लेखकको इसके विरुद्ध आवाज उठानी चाहिये यद्यपि तथ्य यहभी है कि आवाज उठाकर भी लेखक कर भी क्या लेगा ! □

अन्तहीन अन्त[1]

[मूल चेक भाषासे अनूदित]

लेखिका : हेलेना होदाचोवा
अनुवादिका : डॉ. दागमार मारकोवा
समीक्षक : डॉ. प्रेमकुमार

प्रस्तुत कृति लेखिकाके मूल चेक भाषामें 'बीले नेवे, चेर्ना जेम'नामसे प्रकाशित उपन्यासका हिन्दी अनुवाद है। यह अनुवाद चूंकि हिन्दी और चेकपर लगभग समान अधिकार रखनेवाली अनुवादिकाके द्वारा किया गयाहै, अतः इसमें बहुत हदतक चेकके शब्दोंकी मूल भावना और शक्तिको हिन्दीके शब्दों द्वारा व्यक्त करनेके सफल प्रयत्न स्पष्ट दिखायी देतेहैं। यह अनुवादिका डॉ. दागमार मारकोवाके श्रम और प्रतिभाका ही परिणाम है कि उसने लेखिकाके मन्तव्यको बड़ी सहजता और सफलताके साथ हिन्दी पाठकोंतक पहुंचा दियाहै। एक दो स्थानोंपर सर्वनामोंके प्रयोगोंकी हिन्दीसे भिन्न प्रवृत्तिके अतिरिक्त प्रत्येक स्तरपर बहुत सावधानीपूर्वक अर्थद्योतन और सम्प्रेषणके लिए हिन्दी शब्दोंका प्रयोग किया गयाहै।

उपन्यासके केन्द्रमें एक मां है। ऐसी मां जो शुरूमें अपनी और अपने देशकी विशेष परिस्थितियोंके कारण मां नहीं बनना चाहती, परन्तु उसकी चाहना पूरी नहीं होती। वह एक बच्चीकी मां बन जातीहै। इस मातृत्व को बच्चीके साथ आठ सालतक जिन विभिन्न प्रभावों और तनावोंके साथ जियाहै, उन स्थितियोंका चित्रण उपन्यासका विशेष आकर्षण है। अनचाहे मां बनी इस नारीके जीवनकी जबर्दस्त त्रासदी यह है कि जब उसे मां होनेपर गर्व होने लगा, मातृत्व उसे अपनेको दूसरी स्त्रियोंसे पृथक् समझनेको मजबूरकर रहाथा तथा जब वह बच्ची और उसका जीवन उसके लिए अनिवार्य बन गयेथे, उन क्षणोंमें मौत एक बीमारीका बहाना बनाकर उस बच्चीको मांसे छीन ले जातीहै। एक बच्चीके जन्मसे पूर्वके तनावोंसे प्रारम्भ हुआ यह उपन्यास उसके जन्म, उसके पालन, उसकी शिक्षा आदिके प्रसंगोंको कभी मांके द्वारा कभी स्वयं बच्चीके द्वारा कथासूत्रोंमें समेटता हुआ अन्ततः बच्चीकी मृत्युकी सूचनासे सम्बद्ध दिये गये एक विशेष सन्देशमें समाप्त होताहै। निःसन्देह उपन्यासमें स्थल-स्थलपर रोमांचक क्षण और सिहरन पैदा करने वाली स्थितियां आतीहैं, किन्तु बच्चीके अस्पताल पहुंचनेके उपरान्त उपन्यासमें करुणा और व्यंग्य एक साथ चलते दिखतेहैं। अन्तिम बिन्दुपर मातृ हृदयकी बेहिसाब पीड़ा के साथ-साथ उसकी उदारता और मानवतावादी दृष्टि को भी लेखिकाने पर्याप्त कुशलताके साथ अभिव्यक्त कियाहै।

यद्यपि उपन्यास मूलतः मातृ-हृदयकी अभिव्यक्ति से ही विशेषतः सम्बद्ध है, किन्तु नारी मनोविज्ञानको नारी होनेके कारण, बालमनोविज्ञानको एक संवेदनशील मां होनेके कारण तथा अपने परिवेशको एक रचनाकार होनेके नाते लेखिकाने जिस प्रकार जिम्मेदारी और अर्थवत्ताके साथ कथा सूत्रमें पिरोयाहै, उससे यह उपन्यास एक गम्भीर और स्थायी महत्त्वकी रचना बन पड़ीहै। उपन्यासमें द्वितीय विश्वयुद्धके आतंक, विभीषिका और सामाजिक व व्यक्तिगत जीवनपर पड़े उसके प्रभावको आद्यन्त देखाजा सकताहै। लड़ाईके जमानेमें होरहे नरसंहार तथा भयकी व्याप्तिके अनेक दृश्य उपन्यासमें उपलब्ध हैं। लड़ाईके दिनोंमें मंहगाई, बीमारी, असुरक्षा आदिकी समस्याओंको समग्र सामाजिक जीवनमें देखाजा सकताथा। जिस काल-खण्डकी विशेष मनःस्थितियोंपर यह उपन्यास आधारित है वह "युद्धका जमाना था। बहुत बुरा जमाना था। दुकानें बन्द पड़ीथीं और उनके शीशोंपर कागज चिपचाये हुएथे, क्योंकि दुकानदारोंको जर्मनीके फायदेके लिए बेगार करनी पड़तीथी। शिशुओं लिए साधारण आहार, कपड़े वगैरा मिलना दुश्वार था।" (पृ. ३१) युद्धके समय मटरके दानोंकी तरह व्यक्तियोंके समाप्त होने, बमोंके गिरने, बमुश्किल जीवित रह पानेके लिए अनेक प्रकारकी यातनाएं झेलनेके विविध

१· प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, एन ७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : २३१; क्रा. ८३; मूल्य : १५.०० रु.।

विश्वस्त चित्र उपन्यासमें हैं । युद्ध समाप्त होकरभी जो निशान छोड़ जाताहै, क्या उन्हें व[illegible] है? शायद नहीं । विद्यार्थियों, मजदूरों और अन्य नागरिकों द्वारा युद्धकी समाप्तिके बाद शांति, व्यवस्था और पुनर्निर्माणका जिक्र उपन्यासमें हुआहै । यह चित्र किसी भी देशके स्वतंत्रताके आकांक्षी युवा नागरिकोंकी कर्त्तव्य भावना और देश भक्तिको प्रदर्शित करताहै । युद्धके बाद स्थान-स्थानपर बिखरी-फैली बर्बादीको अनदेखा नहीं किया जासकता । युद्धके बादकी इससे अधिक त्रासद स्थिति और क्या होगी—लेकिन यहां तो इन्सान घूमते-रोते और बिलखतेथे । ये कागजपर छपे हुए भाषण नहीं थे। यहां मांएं रोतीथीं, जिनके बेटोंने युद्ध क्षेत्रमें अपनी जानें दीथीं । छोटे-छोटे बच्चे मांओंके घुटनोंसे लिपटते थे। यहां मांएं रोतीथीं, जिनके बच्चोंके बाप युद्ध क्षेत्रों से वापस नहीं आये थे । मुझे ऐसे पुरुष मिलतेथे, जिनके हाथ-पांव युद्ध में कट गयेथे, जो युद्धमें पागल हो गयेथे । मुझे बूढ़े लोग मिलतेथे, जिनको भविष्यका डर था ।' (पृ. ७९) घरपर कामको बुलायी स्त्री इस युद्धके प्रभाव को इतना तो बता सकीहै कि उसकी बहिन अपनी दो बच्चियों सहित बम गिराये गये इलाकेमें दब गयी । उस का एक भाई युद्धमें मारा गया दूसरा कहीं खोगया, लेकिन इससे अधिक वह केवल यही कह सकीहै—'हम लोगोंपर जाने क्या-क्या बीतीहै ।' इस युद्धने केवल जान-मालही नष्ट नहीं किये हैं, बल्कि लोगोंकी संवेदनाओंको भी जड़ बना दियाहै । इस युद्धके दुष्प्रभावको विश्वभरने सामाजिक जीवन और साहित्यमें तरह-तरहसे झेला और व्यक्त किया गयाहै ।

आधुनिकता और स्वतन्त्रताके नामपर नारियोंने मातृत्वविहीन दाम्पत्यतक का नारा पिछले समयमें काफी जोर-शोरसे लगायाथा । असामान्य लगनेवाला यह नारा कभी किन्हीं परिस्थितियोंके कारण हो सकताहै, लेकिन बहुत बार महज फैशन, उन्मुक्तता व उछृंखलताके कारणही दिया गया । उपन्यासकी पात्रा प्रारम्भमें इस-लिए मां बनना नहीं चाहती कि अपने देशकी व अपने रचनाकारकी मांग उसे मां बनना नही लगती, अपितु जिस सर्जनात्मक स्तरपर वह जीना और स्वयंको अभि-व्यक्त करना चाहतीहै, उसमें मातृत्व उसे बाधा नजर आताहै । लेकिन मां बननेकी प्रथम सूचनाके साथही उस में गम्भीर परिवर्तन आने शुरू होजातेहैं । गर्भावस्थामें बच्चोंके जन्मके समय, जन्मके बाद हर स्थलपर उसका मातृ-प्रेम प्रगाढ़से प्रगाढ़तर होता दिखता है । बच्चेके [illegible] उसकी शिक्षा-दीक्षा, उसके मनोरंजन, व्यक्तित्व निर्माण, बीमारियों आदिके प्रति वह अतिरिक्त रूपसे सतर्क रहने लगतीहै । अन्य मांओंकी अपेक्षा कभी वह अपने आपको भिन्न और विशिष्ट महसूस करतीहै और कभी दुनियांकी तमाम मांओंकी तरह सामान्य । बच्चेकी हर क्रियापर रीझने, उसकी बुद्धिमत्ता और समझ-दारीपर गर्व करने, उसके निरन्तर बड़े होते जानेमें अपना अतीत और भविष्य देखने व उसकी हरकतोंपर खीझकर धमका व पीटकर अपने मातृत्वको सार्थक समझने तथा दूसरोंके स्वस्थ व प्रसन्न बच्चोंको देखकर अन्दर कहीं परेशान होने जैसे अनेक चित्र उपन्यासमें माताओंके अनुभवोंपर आधारित हैं । स्वप्नमें पावलाका एक्सीडेंट देखकर विचलित होजाना, उसके हाथसे पानीमें पैसे न गिर पाना, अकेली ननको मार्गमें देखना या फिर पावला की स्थितिके निरन्तर बिगड़ते जानेपर जड़ीबूटियोंवाले अन्य व्यक्तिसे चिकित्सा-सेवा लेना मातृहृदयकी अपनी संततिके प्रति उदारता, कष्टसहिष्णुता, संशयशीलता आदिको बखूबी व्यक्त करतेहैं । चेकमें ही नहीं विश्वके किसीभी कोनेमें माताओंका अपनी संतानके प्रति प्रेम दुनियांके अन्य किसीभी प्रकारके प्रेमसे भिन्न और विशिष्टही होताहै ।

बाल-मनोविज्ञानपर अपनी पूरी पकड़के साथ पावला के माध्यमसे लेखिकाने बच्चेके सूक्ष्मसे सूक्ष्म मनोभावको भी कुशलतापूर्वक चित्रित कियाहै । जिज्ञासा, कुशाग्रबुद्धि, स्वाभिमान, स्वावलम्बन, जिजीविषा, कष्टसहिष्णुता, आत्म-सम्मान, संशयशीलता, परिश्रम, सहजता, आदि विभिन्न विशेषताओंसे युक्त पावलाका अंकन कुछ इस प्रकारसे हुआहै कि प्रत्येक मां-बापको पावलामें कहीं न कहीं अपनी सन्तति नजर आयेगीही । जीवन-मृत्यु, युद्ध-शांति, डाक्टर-अस्पताल, बीमारी आदिके सम्बन्धमें मांसे किये जानेवाले प्रश्नोंमें बाल सुलभ जिज्ञासा, सहजता व भोलापन झलकताहै । सम्मानको ठेस लगनेपर दूसरोंसे न बोलनेका निर्णय, बाजारसे सामानको खरीदने जानेकी उत्सुकता और बीमारी दौरान कष्ट सहकरभी मांको दुःखी न करनेकी कोशिश आदि पावलाको अपनी उम्रसे बड़ा बनकर जीता दिखाते हैं । उसकी समझदारी, संवे-दनशीलता निश्चयही 'बहुत-बहुत अच्छे' कहे जा सकने वाले बच्चोंकी श्रेणीकी हैं । अपने जीवनमें घटनेवाली घटनाओं व कीगयी यात्राओंके सम्बन्धमें पावलाकी

सहज सार्थक और अभिव्यंजनापूर्ण टिप्पणियां व प्रतिक्रियाएं डायरी आदिके माध्यमसे बखूबी व्यक्त हुईहैं।

लेखिकाकी जीवन-दृष्टिपर अस्तित्ववादी मान्यताओं का प्रभाव अनेक बार देखाजा सकताहै। यह प्रभाव केवल अस्तित्ववादी मान्यताओंके समर्थन या वकालतके रूपमें न होकर पात्रों, घटनाओं और मन:स्थितियोंकी मांगके अनुरूपही कभी परिवर्तित और कभी अपरिवर्तित रूपमें दिखायी देताहै। मृत्युका बोध और मृत्युसे सम्बन्धित चिन्तन उपन्यासमें शुरूसे अन्ततक व्याप्त है। संत्रास, अकेलेपन, अजनबीपन, आत्म-निर्वासन, वरणकी स्वतन्त्रता आदिपर सार्थक टिप्पणियां लेखिकाने यथोचित स्थलोंपर कीहैं। मातृत्वको एक शक्ति, एक तप, एक साधना, एक परीक्षा, एक सौभाग्य और उत्तरदायित्वके रूपमें मानते हुए लेखिकाने माताओंके सुखो-दुखोंको अनेक पक्षोंसे देखा-समझाहै। यह भाग्यकी विडम्बनाही है कि कभी मृत संतानकी मांओंसे बचनेवाली पावलाकी मां स्वयं उनकी पक्तिमें आखड़ी हुईहै। नर्स द्वारा मांजी का सम्बोधन उसे अच्छा नहीं लगता क्योंकि वह केवल अपनी बच्चीकी माँ है। और कोई उसे मां क्यों कहे? किन्तु तभी उसके मनमें संभावनासे जुड़ा एक प्रश्न आताहै—'जिस मांका बच्चा जीवित नहीं उसे फिर क्या कहतेहैं?' बादमें माँ द्वारा अपनी मृत बेटी और स्वयके सम्बन्धोंपर विचार करते समय इस प्रश्नका बड़े अच्छे ढंगसे उत्तरभी दिया गयाहै। लेखिकाने ऐसी मांको जिस की बच्चीका देहान्त होगयाहै 'एक चिह्नांकित मां' कहा है। समग्र उपन्यासमें ऐसी चिह्नांकित मांओंके हृदयोंकी पीड़ा और मर्मको छूनेका सफल और सार्थक प्रयत्न हुआ है। उपन्यासका एक अंश चिकित्सकों व चिकित्सालयों की स्थिति, कार्यपद्धति, और उनसे मानवतावादी आधारों पर की जानेवाली अपेक्षाओंसे सम्बद्ध है। इस अंशमें पावला और मां दोनोंके द्वारा व्यंग्यका सहारा लेकर वस्तुस्थितिका मूल्यांकन कराया गयाहै।

उपन्यासके अन्तिम पृष्ठोंपर संदेशके रूपमें जो कुछ कहा गयाहै, उससे लेखिकाकी उदार, आशावादी व मानवतावादी जीवन दृष्टिके दर्शन होतेहैं। मृत्युकी घटनाके बाद संदेशमें पावलाकी मां इस बातके लिए उसकी कृतज्ञ है कि पावलाने उस जैसी चंचल लड़कीको स्त्री बनाया। उसे नि:स्वार्थ सुखसे भर दिया। उसे नहीं लगता कि पावलाका जीना या मरना कुछभी व्यर्थ या प्रयोजनहीन था। वह निर्णय लेतीहै—'मुझे उन माताओंसे मिलनाजुलनाहै, जिनके बच्चे नहीं रहे। मनुष्य अपना हैरे दूसरे मनुष्योंके रूपमें खोजताहै। मैं तुम्हारी कहानी लिख रहीहूं। जो उनकीभी कहानीहै, उनके दुःख सुख की कहानी है, क्योंकि तुम्हारी कहानी उन सबकी कहानियोंसे मिलती-जुलतीहै। सब बच्चोंके जीवन एक दूसरेसे मिलते-जुलतेहैं।' (पृ. २३०) लेखिका पावलाके संदेश को अपने और अपनी कृतिके संदेशके साथ घुलामिलाकर एकमेक करते हुए इन पक्तियोंमें स्पष्टत: देखीजा सकती है—'तुम्हारी कहानी सारे अकाल-मृत बच्चोंकी जैसी है। वह बिल्कुल वैसी है और मेरा दु:ख सब अकेली पड़ी माताओंके दु:खके समान है। उन सब बच्चों और माताओं के नामपर यह पुस्तक लिख रहीहूं। यह तुम्हारी, मेरी, उनकी और हमारी पुस्तक है। यह तुम्हारा संदेश है, प्रिय पावला।'

भाषा और अभिव्यक्तिके स्तरपर उपन्यास आकृष्ट करताहै। आत्मकथा, संस्मरण, डायरी, स्वप्न, फैंटेसी आदिके न्यूनाधिक प्रयोगसे शिल्पके स्तरपर विविधता बनाये रखी गयीहै। यह विविधता उपन्यासमें व्यवधान पैदा नहीं करती, बल्कि उपन्यासको सहज, सम्प्रेष्य और विश्वसनीय बनातीहैं। उपन्यास पठनीय, स्तरीय, प्रशंस्य है। □

जय सिद्धनायक[1]

[कन्नडसे अनूदित]

नाटककार : चन्द्रशेखर कम्बार
अनुबादक . बी. आर. नारायण
समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय.

संभवत: हिन्दीमें चन्द्रशेखर कम्बारका यह प्रथम प्रकाशित अनुवाद है। इस कन्नड़ नाटकके केन्द्रमें है भारतीय ग्रामीण जीवन, यद्यपि नाटकका घटनाकाल 'जागीरदारों' के जमानेका है और देश अब आजाद होचुकाहै। आजादीने बहुत कुछ बदलाहै, पर ग्रामीण जीवनमें बहुत कुछ जैसेका तैसा आजभी बना हुआहै। जीवनकी यह यथास्थिति है जीवन-दर्शनकी स्थितिमें। ग्रामीण जीवन शोषण, संत्रास और भूखसे मुक्ति पाना चाहताहै। जबभी कोई छोटा बड़ा नेता सामने आताहै,

---

१. प्रकाशक : सरस्वती विहार, जी. टी. रोड, शाहदरा दिल्ली-३२। पृष्ठ : १०६; क्रा. ८४; मूल्य : २५.०० रु.।

इन्हें वही मसीहा लगने लगताहैं और भेड़की तरह वे उसके पीछे चल पड़तेहैं। एक व्यक्तिके रूपमें उनमें जीवन मूल्योंके बारेमें सोचने और अपने लिए एक जीवन-दर्शन गढ़नेकी दृष्टि अभीभी उनमें नहीं आपायीहै। रोजी-रोटीसे आगे कोई उनकी चिन्ताही नहीं और न चिन्ता करनेसे उनकी 'रोटीकी समस्याही हल होतीहै। नाटकमें स्त्रियोंकी नियतिपर भी सवाल उठाया गयाहै और यह नाटकका दूसरा विषय है जो एक बार फिरसे आजादीकी निरर्थकता समझाताहै। "असामाजिक तत्त्वों की शिकार स्त्री किस प्रकार पूर्णतया निर्दोष होनेपर भी न घरकी रहतीहै न घाटकी। घटनाचक्र किसीभी देशकालका हो, अबला उसका शिकार होतीही है और दमित वासनावालोंके हाथोंका खिलौना बन जातीहै।" आज हमारा देश भलेही आजाद होगयाहो लेकिन पुरुषोंके भीतरकी यह अनुदारता आजभी तो कम नहीं हुईहै।

नाटक शुरू होताहै एक दरिद्र गांवके एक अति दरिद्र परिवारके आँगनसे। जागीरदार देसाईके गुर्गे बन्दूकके जोरपर उरनिंगकी जवान पत्नी चिन्नीको बकाया लगानके सूदके एवजमें उठाले जातेहैं। लगान चुकानेमें असमर्थ किसान जमींदारके शोषण-दमनसे ऊब-कर गांव छोड़कर जाने लगतेहैं तभी मसीहाकी तरह आ पहुंचताहै सिद्धनायक। बाहरसे पढ़ लिखकर आयाहै सिद्धनायक—उसकी नयी-नयी बातें उन्हें उत्तेजित करतीहैं। सिद्धनायकके नेतृत्वमें ग्रामीणोंका दल देसाईको समाप्तकर देताहै--सर्वहाराकी एक क्रांति पूरी होतीहै। जटिलताएं शुरू होतीहैं इसके बाद। पुलिसका भय सबको सताने लगताहै। सिद्धनायक किसानोंमें जमीन बाँटना चाहताहै पर कोई लेना नहीं चाहता क्योंकि तब पुलिस उन्हेंही देसाईका हत्यारा समझेगी। गांवकी व्यवस्थाके लिए जो पंचायत कायम होतीहै वे आपसमें सारी जमीन बांटलेना चाहतेहैं। उरनिंग इसका विरोध करताहै तो उसे बांध दिया जाताहै और उसके सामने उसकी बीबी चिन्नीसे वे छेड़-छाड़ करतेहैं। गुरुवय्याने क्रांतिके दिन शास्त्रास्त्रोंसे ग्रामीणोंकी मदद कीथी—यहांभी करतेहैं। वे एक रास्ता निकालतेहैं कि जाली कागजात तैयारकर सिद्धनायकको देसाईका दत्तक पुत्र बताकर जागीरदारीका उत्तराधिकारी बना दिया जाये और बादमें सिद्धनायक किसानोंमें जमीन बांट दे। पर सिद्धनायककी ईमानदारीमें भी लोगोंको शक है। यहां फिर गुरुवय्या मदद करतेहैं। उनके बंदूकची सामने आतेहैं और सबकी जुबांन बंद होजातीहै। सिद्धनायककी [illegible] दूसरी है। वह चिन्नीको पतिके पास वापस भेज-कर अपने नैतिक दायित्वसे मुक्त होना चाहताहै। उरिनिग उसके आदर्शपर विश्वास रखताहै इसलिए उसे उम्मीद है कि पंचकी बात भलेही उसने काट दीहो पर उसकी बातपर वह चिन्नीको रख लेगा। गुरुवय्या शर्त लगातेहैं कि उरनिंग ऐसा नहीं करेगा। सिद्धनायक अपने आदर्शोंके साथ जीना चाहताहै और जाली कागजातोंके बूतेपर जागीरदार नहीं बनना चाहता। गुरुवय्या उसेभी बंदूकसे धमकातेहैं। अंततः सिद्धनायक इस शर्तपर राजी होताहै कि यदि उरनिंग चिन्नीको रखले तो उसे अपने आदर्शोंपर चलनेके लिए गुरुवय्या स्वतंत्र छोड़ देंगे अन्यथा वह गुरुवय्याके तैयार कागजोंपर हस्ताक्षर कर देगा। और सिद्धनायक शर्त हार जाताहै। उरनिंग दूसरेके घर रही स्त्रीको फिर पत्नीके रूपमें स्वीकार नहीं करता और सिद्धनायकको जागीरदारी स्वीकार करनी पड़तीहै। सिद्धनायक ऐसे व्यक्तिका उदाहरण बन जाताहै जो जागरूक और आदर्शवादी तो है पर अवसर-वादियोंके षड्यंत्रमें फँसकर न केवल अपने आदर्शोंकी हत्या अपनेही हाथों गला घोंटकर (ओंकारी) कर डालताहै बल्कि उनके हाथोंका (गुरुवय्या) खिलौना बनकर रह जाताहै।

नाटकमें कुछ रंगयुक्तियों और बिडम्बनाओंका सटीक साभिप्राय और नाटकीय प्रयोग हुआहै। देसाई अपनी पगड़ी उतारकर ओंकारीके माथेपर रखकर उसे 'जज' बना देतेहैं तो वह देसाईकी भाषा बोलने लगताहै। भविष्यके सपनों और वर्तमानके जीवनादर्शोंका प्रतीक है ओंकारी जिसकी हत्या गला घोंटकर सिद्धनायक कर देताहै—जब उसके स्वयंके स्वप्न टूट जातेहैं और अपने आदर्शको लेकर वह शर्त हार जाताहै। ओंकारीकी हत्या वस्तुतः आदर्शवादी और भविष्यके स्वप्नद्रष्टा सिद्धनायककी आत्महत्या है। इस हत्याके बादही वह सभी अर्थोंमें देसाईका उत्तराधिकारी बन जाताहै। क्रांतिका नेतृत्व स्वीकार करनेके क्षणसे सिद्धनायककी जयका नारा लगना शुरू होताहै वह अंततक चलता रहताहै। इसी आधारपर नाटकका शीर्षक जय सिद्धनायक रखा गयाहै जो उसके नायकत्व, नेतृत्व और उत्तराधिकारकी विडंबनाको रेखांकित करताहै।

अनुवादोंके माध्यमसे हिन्दीमें विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओंकी श्रेष्ठ नाट्य कृतियां आने लगीहैं।

इससे हिन्दी रंगमंचका अनुभव और अधिक पुष्ठ होगा। बी. आर. नारायणका अनुवाद सराहनीय है पर मूलकी नैकट्य बनाये रखनेके प्रयासमें इतने प्रश्नवाचक वाक्य आते गयेहैं कि भाषाकी सहजता नष्ट होती चली गयी है। विश्वास है इस नाटकका हिन्दी रंगमंचपर स्वागत किया जायेगा। □□

उपन्यास

कुरु-कुरु स्वाहा[1]

लेखक : मनोहर श्याम जोशी

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त.

'कुरु कुरु स्वाहा' मनोहर श्याम जोशीका फ़िल्मी पटकथा-सिनेरियो-और फिल्मांकन--शूटिंग-शॉर्ट-सीन पद्धति पर लिखी उपन्यासनुमा कथाकृति है। बम्बईके अधिकांश फिल्मी जीवनके माध्यमसे आधुनिकताके नामपर होनेवाली हर गंदगी, बेहूदगी बकवासको इसमें दिखाया गयाहै। योग-तन्त्र एवं सेक्सकी विकृतियोंका पूरा एलबम है यह! लेखकका 'तिमंजला व्यक्तित्व है एक ग्रामीण संस्कारी पहाड़ी ब्राह्मण युवकका, दूसरा एक साहित्यकारका आधुनिक साहित्यकारका और तीसरा एक निहायत चालू किस्मके फिल्मी कलाकार टाइपका। इससे मनोरंजनभी हुआ है पाठकका और कहीं-कहीं बोरियतभी। वास्तवमें यह व्यक्तित्वके विभाजित खंडोंकी घालमेल है जिसे प्रायः अन्तर्द्वन्द्वके नामसे जाना जाताथा अबतक, लेकिन लेखकने 'मैनरिज्म' का एक नया चमत्कार दिखायाहै इसके माध्यमसे। काफी दिलचस्प लेकिन कहीं-कहीं बोर।

दूसरा चमत्कार है शिल्पका। फिल्मांकन और औपन्यासिक शिल्पका घालमेल। फिल्मांकन शिल्प हावी होगयाहै—शब्दावलीभी वही है-साउंड ट्रैक, शॉट, सीन, रीटेक, कट, फ्लैश बैंक, बैकग्राउंड म्यूजिक, कास्टिंग-मिस कास्टिंग, क्लोज अप आदि आदि। कथ्यको पाठ्यसे अधिक श्रव्य और दृश्य बनानेका प्रयास। यह प्रायः प्रभावशाली है लेकिन कहीं-कहीं अस्वाभाविक अतः बोर होगयाहै। पूरी कृतिही फिल्मांकनकी पद्धतिमें लिखी गयीहै। हिन्दी कथासाहित्यमें अजूबा है यह। अजूबा इसलिए कि यह शिल्प लक्ष्य बन गयाहै लेखकका। फ्लैश बैंक पद्धति और नाटकीय दृश्य संयोजन कोई नया या अजीब स्टाइल नहीं है हिन्दीमें। १९१५ में 'सरस्वती' में प्रकाशित 'उसने कहाथा' में गुलेरीजीने यही पद्धति अपनायीथी, लेकिन वहां यह माध्यम थी, यहाँ यह लक्ष्य होगयीहै। अतः चमत्कारही पाठकतक पहुंचताहै।

इससे भी अधिक हावी होताहै लेखकका भाषा और शैलियोंका ज्ञान। खड़ी बोली हिन्दीकी कथा-कृतिमें भोजपुरी, हरियाणवी, लखनवी उर्दू तो हैही बंगला, गुजारती, मराठी स्टाइल हिन्दी है, बम्बईया फिल्मी दुनियांकी हिन्दी है, ईसाइयोंकी अंग्रेजियतमें डूबी हिन्दी है, यहांतककी जर्मनफ्रेंच मार्का हिन्दीभी है कहीं-कहीं। शायदही हिन्दीके इतने रूप और रंग किसी एक कृतिमें अबतक आयेहों। अंग्रेजी शब्दोंका भोजपुरी रूप और हिन्दीकरण देखकर तो लेखककी प्रतिभाका लोहा मानना पड़ताहै, भलेही उसका अर्थ समझनेमें कितनाही सर क्यों न खपाना पड़े और होसकताहै तबभी कुछ पल्ले न पड़े। लेखक बहुभाषाविद है। लगातार संस्कृत, जर्मन, फ्रेंच, बंगला, गुजराती, मराठी, भोजपुरी, हरियाणवी, इंगलिश शब्दोंके प्रयोग। पाठक और वहभी हिन्दी पाठक कहांसे लाये इतनी सारी भाषाओंका ज्ञान। प्रोफेसरोंको भी एक साथ इतनी भाषाएं शायदही आतीहों, और जिन्हें आतीभी हैं वे उपन्यास तो शायदही पढ़तेहों।

तो यह भाषा-ज्ञानका विश्वकोशीय संस्करण केवल अजूबाही पैदा करताहै कभी-कभी आतंककी सीमातक। दुर्गा सप्तशती, उपनिषद्, कर्मकांडके ग्रन्थोंके उद्धरणपर उद्धरण लेखकके विस्तृत और सूक्ष्म ज्ञानके परिचायक हैं। अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, उर्दू साहित्यके उद्धरण, फ्रायड,

[1] प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाषचन्द्र मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२।

सार्त्र, कामू, मार्क्सके उद्धरणोंको देखकर सामान्य क्या [illegible] विशिष्ट पाठककी भी सिट्टीपिट्टी गुम होने लगतीहै। शायदही किसी हिन्दी कथाकारने अपने इतने विशाल ज्ञानका परिचय दियाहो। उद्धरण प्रासंगिक है, सहजभी हैं, लेकिन हिन्दीके अधिकाँश पाठकों क्या विद्वानोंकी पहुंचके परे हैं। तो ये उद्धरणभी अजूबा बनकर ही रह जातेहैं। 'फिलस्टीन' और 'क्लीशे' शब्द अबूझेही रह जातेहैं सामान्य क्या विशिष्ट पाठकोंके लिएभी।

तो शिल्प और भाषाके चमत्कारके बाद कथ्यको लें। आत्मकथात्मक शैलीमें लिखी गयी इस कृतिमें लेखकका मैं, अपने तीनों रूपोंमें—मनोहर, जोशी और मनोहर श्याम जोशी-ही नायक है, नायिका है तारा झवेरी, जिसे 'पहुंचेली' नाम दिया गयाहै। 'पहुंचेली' अर्थात् पहुंची हुई—पारंगता—सिद्धा। इसीके सहारे तन्त्र-योग-अध्यात्मका भी जाल बुना गयाहै। उसके साथ बलात्कार होताहै तेरह सालकी उम्रमें—फिर होताहै एक तथाकथित साधकके द्वारा और फिर नायकभी उसीसे संभोग करताहै। सलीबपर जड़ी हुई मुद्रामें, समुद्रके किनारे चट्टानोंके पीछे रेतपर फैली हुई इस पहुंचेलीके साथ, जिसे रंडी, महामाया दिव्य शक्ति सम्पन्न देवी, लेखिका, अभिनेत्री, प्रेमिका औरभी न जाने कौन क्या क्या समझताहै। इसके साथ हुए पहले बलात्कारको दिव्य बलात्कार—डिवाइन रेप—शाश्वत बलात्कार' कहकर महिमा-मंडित भी किया गयाहै।

सारे कथानकमें फिल्मी स्टाइलके मोड़ हैं, हास्यास्पद स्थितियां हैं, अविश्वसनीय दृश्य हैं, फूहड और बदमाशी वल्गरीके अनेक रंगरूप हैं, जिन्हें बड़े चटखारे लेकर प्रस्तुत किया गयाहै, जिनमें गुदगुदानेकी ही नहीं 'वीर्यपात' करानेतककी क्षमता है। कहीं कुछभी सहज विश्वसनीय स्वस्थ नहीं है। जितने पात्र हैं सब अधिकांशतः मानसिक रोगी यौनविकृतिके शिकार अहंसे ताड़ित, हीनभावनासे ग्रस्त मनोग्रंथियोंमें उलझे हुए। रथिजित भट्टाचार्य जैसे पढ़े हुए फिल्मी निर्देशक, खलीक जैसे फिल्मी कथा लेखक, मिस नटेशन जैसी आधुनिक समाज सेविकाएं, डामनवाला जैसे भोगविलासमें लिप्त युवा उद्यमी, स्नेहवत्सला जैसी आधुनिकतम सोसायटी गर्ल। मिस्टर तलाटी और मिस्टर तिरखा जैसे बुजुर्गवारभी जो नायकके साथ एकही कमरेमें रहतेहैं, वेभी इसी रागरंगमें डूबे हुएहैं बुढ़ापेमें भी।

बम्बईया जिन्दगीकी सारी सड़ांध भरी हुईहै

आखिर लक्ष्य क्या है या क्या होसकताहै इस कृतिको लिखनेका ?

मुखपृष्ठके पीछे ऋत्विक घटक—प्रसिद्ध सिने निदेशकका उद्धरण दिया हुआहै—

'पता नहीं क्यों, किन्तु ऐसी प्रतीति होतीहै मुझे कि आधुनिक सभ्यता एक अबोध बच्ची है, जिसका चंडिकाकी मिथककी आदि छबिसे हठात् सामना हो गयाहै और समूची सभ्यताका अस्तित्व और भविष्य इस भयंकर साक्षात्के परिणामपर निर्भर है।''

शायद समूची सभ्यताके आधुनिक रूपकी भयावहता दिखाना लेखकका लक्ष्य हो। लेकिन क्या बलात्कार और यौन विकृतिके अलावा और कोई भयावहता इस सभ्यताकी नहीं है। किसी और समस्या या त्रासदीसे ग्रस्त नहीं है यह आधुनिक सभ्यता ? चंडिकाका मिथक इच्छा या अनिच्छापूर्वक यौन क्रियामें ही सिमटकर रह गया है। इसका कोई उत्तर लेखकके पास हो तो, वह कृपया दे।

आधुनिक सभ्यताकी विभीषिकाको दिखानेके नामपर केवल अस्वाभाविक और विकृत यौन तांडवही रह जाताहै लेखकके पास ? या केवल उसे यही दिखायी पड़ताहै ? अगर यह 'सच' भी मान लिया जाये तो, इतनी बड़ी दुनियांके इतने-इतने लोगोंमें से कितनोंका 'सच' है यहां ? और कितने 'सत्यों' में से एक सत्य है यह! और क्या महत्ता है इसकी ?

ऋत्विक घटक के साथ-साथ हजारीप्रसाद द्विवेदीको भी समर्पित कीगयीहै यह कृति—इस आभारके साथ—'सागर ये आप ! घड़ेमें, किन्तु, घड़े जितनाहो समाया।'

घटकके कृतित्वसे तो मेरा परिचय नहीं है लेकिन द्विवेदीजीके बारेमें तो मैं कह सकताहूं कि यौन-विकृतिकी यह नुमायश, ये अस्वाभाविक घटना प्रसंग, ये अविश्वसनीय 'चरितावली' और सबसे बढ़कर यह जीवन दृष्टि या 'आस्था' तो उनमें नहीं है। लेखकको द्विवेदीजीके सागर जैसे गम्भीर व्यक्तित्व और कृतित्वमें कहां और कैसे मिली ?

लेखकके कथनानुसार द्विवेदीजी 'मार्डन गप्प' लिखनेकी इच्छा रखतेथे जैसेकि उन्होंने ओल्ड गप्पें 'बाणभट्टकी आत्मकथा, चारुचन्द्र लेख, पुनर्नवा और अनामदासका पोथा' लिखीहैं। इनमें उद्दाम प्रेमका चित्रण है, विघ्न-बाधाओंको सामाजिक नीतियोंको परों

तले रौंदनेवाली क्रांतिकारी मनोवृत्तिके [illegible] युवक-युवतियोंके प्रेमका चित्रण है लेकिन यह सैक्स तांडव, देहभोगका यह अध्यात्मीकरण, यह यौन-विकृति तो नाममात्रको भी नहीं है उनकी किसी कथा-कृतिमें। तब कहांसे अपनी गागर भर लाये जोशीजी। इन्होंने अपनी गागर भरीहै बम्बईया जिन्दगीके फिल्मी समुद्रसे और कृतज्ञता ज्ञापित करदी द्विवेदीजीको। कैसी अपूर्व गुरुदक्षिणा हीहै! शायदही किसी 'चेले' ने उन्हें अबतक दीहो।

आश्चर्य तब औरभी होताहै जब हम जोशीजीकी एक भेंटवार्ता पढ़तेहैं हजारीप्रसाद द्विवेदीसे, उनकी षष्टिपूर्तिके अवसरपर और उनके मरणपर फिर यही साप्ताहिक हिन्दुस्तानमें पुनर्प्रकाशित होतीहै। मेरी सीमित जानकारीमें हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ इंटरव्यू है यह, जिसमें द्विवेदीजीके व्यक्तित्वको मथकर रख दियाहै लेखकने। इस व्यक्तित्वके सागरमें तो कहीं एक कणभी दिखायी नहीं पड़ता इस 'योगा एंड सैक्सा लीला' का। द्विवेदीजीको तो माफ कर दिया होता जोशी भाई!

एक प्रश्न और शेष रह जाताहै—आधुनिक सभ्यताकी विकृतिको केन्द्रमें रखकर साहित्य रचनाका। क्योंकि अपनी यौन विकृतियों, कुंठाओंके फफोले फोड़नेवाले आधुनिकतावादी लेखकोंने यह काम खूब कियाहै। लेकिन इस सभ्यताकी विकृतिसे अधिक वे अपनीही विकृतियोंको बढ़ाचढ़ाकर तथा विश्वसनीय बनाकर प्रस्तुत करते रहेहैं। लेकिन इसमें कुछ अच्छे और अनुकरणीय प्रयासभी हुए है इस दिशामें।

वेश्यावृत्तिपर अनुसंधान प्रकल्पके इस सृजनात्मक रूप 'कुरु कुरु स्वाहा' को पढ़नेवालोंको अलैक्जेंडर कुप्रिनका 'यामादि पिट'या उसका हिन्दी अनुवाद 'यामा' एवं 'गाड़ीवालोंका कटरा' देखना चाहिये। जगदम्बाप्रसाद दीक्षितका 'मुरदाघर' तो भारतीय क्या बम्बइया जीवनपर ही है। इनके अलावा कुछ अन्य कालजयी रचनाएं लिखी गयीहै बंगलामें—यथा शंकरकी चौरंगी, विमल-मित्रकी 'खरीदी कौड़ियोंके मोल', 'इकाई दहाई सैकड़ा' 'जन गणमन', महाश्वेतादेवीकी भटकाव और अग्निगर्भ'। औरभी कृतियां होगीं इनके अलावा।

दुर्भाग्यसे हिन्दीमें प्रेमचन्दकी परंपरा अपने सर्वांगीण रूपमें विकसित नहीं हुई। कारण? वैसा सर्वांगीण दृष्टिसम्पन्न कथाकार नहीं मिला। 'गोदान' आजभी आधुनिक सभ्यतापर सबसे तीखी और पूर्ण कृति है क्योंकि आधुनिकता केवल महानगरोंकी मीठी या कड़वी महांधतक ही तो सीमित नहीं है।

जोशीजीमें प्रचंड प्रतिभा है, जो शिल्प और भाषाके चमत्कार, रुग्ण मनोवृत्तिसे ग्रस्त लोगोंकी बायोग्राफी क्या 'बायोलोजी' के कूड़ेकचरेके ढेरमें दब गयीहै। 'वर्नी' 'नेताजी कहिन' जैसे धारदार व्यंग्य और सहज हास्य लिखनेवाले लेखककी सामाजिक चेतना तथा हजारी-प्रसाद द्विवेदी और नागार्जुन जैसे साहित्यकारोंका मथनेवाली सूक्ष्म साहित्यिक चेतनासे सम्पन्न व्यक्ति 'कामधेनु' तजकर सूअरको क्यों दुह रहाहै? क्यों? यह समझमें नहीं आरहा है जिसकी समझमें आरहाहो कृपया मुझे बताये, आभारी रहूंगा। □

अभिज्ञान[1]

उपन्यासकार : नरेन्द्र कोहली

समीक्षक : कौशल किशोर.

'सुदामा' के पौराणिक चरित्रको विज्ञापित करनेवाली दो पुरानी कृतियां उपलब्ध हैं पहली नरोत्तमदास कृत 'सुदामा चरित' और दूसरी नंददास रचित 'सुदामा-चरित'। किन्तु इनमें ख्याति नरोत्तमदासके 'सुदामाचरित' को ही मिली. जिसमें कविने सुदामा की निर्धनताकी त्रासदीको कृष्णके मैत्री-लाभसे धन्य होते दिखायाहै। परन्तु सुदामा और श्रीकृष्णकी पुराणकथाको दुहराना समीक्ष्य उपन्यासके उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं, उपलक्ष्य मात्र है। उनकी अनन्य मैत्री एवं अन्य पौराणिक प्रसंगोंका वर्णन इस उपन्यासके स्थूल उपादान हैं जबकि असली सूक्ष्म उपकरण तो वे हैं, जिसके (मिथकीय सच) भीतरसे आधुनिक भारतकी कहानी उभरतीहै। जिसमें उपन्यासकारने भारतकी सदियों पुरानी 'दास्य-मनोवृत्ति, राजनीतिक उठा-पटक, निजी स्वार्थ-परताएं और क्षुद्रता, बुद्धिजीवियोंका मुखौटाधारी चेहरा और दुहरे मानदंडयुक्त जिन्दगी, राजनीतिको सर्वत्र वर्चस्वता एवं व्यापक मूल्य स्खलन आदिका समाज-वैज्ञानिक विश्लेषण कियाहै। इस प्रकार यह उपन्यास अतीतसे सम्बद्ध होकरभी अपनी संवेदना, दृष्टि, विचार, चिन्तन और विश्लेषणमें पूर्णतः नया और आधुनिक है। इसी अर्थमें यह एक विशिष्ट उपन्यास है, जिसकी फैंटेसीमें पुनर्रचित भारतीय समाज और संस्कृति पूरी तरह प्रति-

---

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। पृष्ठ २३६; क्रा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

विस्मित होउठतेहैं।

इस उपन्यासका सबसे सबल पक्ष है—कृष्ण द्वारा कर्मयोग, ज्ञान, सकाम और निष्काम भक्ति, दर्शन और अध्यात्म, वैराग्य, परिग्रह-अपरिग्रह, आस्तिकता-नास्तिकता, ब्रह्मज्ञानकी उपयोगिता-अनुपयोगिता, पाप और 'ईश्वरीय क्षमा'—आदिके सिद्धान्तोंकी व्यावहारिक व्याख्या। कृष्णने अपने समयमें कर्म एवं फल तथा अन्य धार्मिक-आध्यात्मिक विषयोंके प्रति जो मत प्रतिपादित और अभिस्थापित किये, सुदामा उसके प्रति घोर शंकालु बने हुएथे। वे कृष्णसे जानना चाहतेथे कि क्या कर्त्ताका फलपर कोई अधिकार नहीं होता? (पृ. १६२) क्या कर्म 'अच्छे' और 'बुरे' दोनों नहीं होते? कर्म कोई करताहै और उसका फल (लाभ) कोई अन्य प्राप्तकर लेताहै। आखिर यह कैसे सम्भव होताहै? (पृ. ६६) यदि यह संभव है तो क्या कर्मयोगका सारा सिद्धान्तही गलत और त्रुटिपूर्ण नहीं है? (पृ. ६१) कृष्णका यह कहना कि मनुष्य केवल कर्म करे, फल उनपर छोड़दे—यह उद्घोषणा दंभमात्र नहीं है क्या? (पृ. ६६)।

'अभिज्ञान' के कृष्णकी दृष्टिमें प्रकृति और मनुष्य तत्त्वत: एक है। उनमें अभिन्नता और तादात्म्य है (पृ. ६२)। वह जो कुछभी करता और कहताहै—प्रकृति के आदेश और इंगितपर। पर यह उसीके लिए सभव है, जो उससे अभिन्न है। लेकिन जब अहंकारवश मनुष्य शेष सृष्टिसे कटकर स्वयंको कर्त्ता घोषित करताहै, तब वह भूल करताहै (पृ.६३)। मनुष्य स्वयं कर्त्ता नहीं है, इतिहासकी कड़ियां उससे कोई कर्म करवातीहै (पृ. ६३)। और एक बार जब वह कोई कर्म कर लेताहै, तब वह स्वतंत्र नहीं रह जाता अपितु उसी एक कर्मके माध्यमसे वह अनन्त कर्म-शृंखलाको जन्म देकर उसीमें बंध जाताहै। (पृ. ८८)। ऐसो स्थितिमें फलके प्रति आसक्ति प्रकट करना उचित नहीं है। अत: यदि वे (श्रीकृष्ण) फलका निर्णय अपने ऊपर छोड़ देनेको कहतेहैं तो यह कोरा दंभ नहीं, बल्कि प्रकृतिकी विराट् सत्ताकी ओरसे दिया गया आश्वासन है (पृ. ६३)।

अच्छे और बुरेके खानेमें कर्मका बंटवारा अनुचित है। कर्म वस्तुत: एक 'क्रिया' है—पूरी या अधूरी और तदनुसार फल एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है—उसकी अवश्यंभावी परिणति मात्र। इनमें कार्य-कारणका तर्क-संगत सबध है, जबकि व्यक्ति द्वारा सोचे गये कर्म और फलमें इस संबंधका अभाव होताहै। (पृ. ६७)।

यदि यह सच है कि कर्मका फल अवश्य मिलताहै तो तो अकर्मका दंडभी निश्चित रूपसे मिलताहै। वही अकर्म किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्रको पतन ओर विघटनकी ओर ले जाताहै—लेकिन सदा एकरस स्थिति नहीं बनी रहती। प्रकृतिकी द्वन्द्वात्मकताके अनुरूप इस स्थितिमें संक्षोभ उत्पन्न होताहै चाहे बाहरसे या भीतरसे। तब यह जड़ता टूटतीहै और समाज पुन: पुनर्निर्माणकी दिशा की ओर बढ़ताहै। इस तरह जीतनेवाली शक्तिभी प्रकृति होतीहै और हारनेवाली भी वही होतीहै (पृ. ७६)।

श्रीकृष्णने भक्तिको एक भावना मानाहै, जिसकी उपलब्धिभी भावात्मक धरातलपर ही मिलतीहै और इसी स्तरपर वह सर्वथा निष्फलभी नहीं है। उनका विश्वास सकाम भक्तिमें नहीं है। भक्तिके बदले ईश्वर ऐश्वर्यका प्रसाद बांटताहै—यह एक भ्रामक धारणाहै (पृ. १४४-४५) भौतिक उपलब्धि भौतिक कर्मसे ही सम्भव है। भावात्मक भक्तिका अर्थ स्वयंको तपाकर स्वच्छ बनानेका एक प्रयत्न है। स्रष्टाको पानेके प्रयत्नमें सम्पूर्ण सृष्टिसे तादात्म्य स्थापित करनाहै और इस प्रकार एक ऊंचे धरातलपर जीनेकी कोशिश करनाहै (पृ. १४५-४६)। पापके दंडसे मुक्तिके लिए 'ईश्वरीय क्षमा' की आकांक्षा करनेका अर्थ यह है कि व्यक्ति ईश्वरकी शरणमें जाकर अपने अपराधोंके दंड स्वीकार करनेके लिए अपनी मानसिक तैयारी पूरी कर रहाहै (पृ. १४७-४८)।

उपन्यासकारने परम्परित अर्थमें 'ब्रह्मज्ञान' को समाजके लिए अनुपयोगी मानाहै। उसी प्रकार वह वैराग्यवादके भी विरुद्ध है। उसके अनुसार अध्यात्म और दर्शन दो पृथक् वस्तुएं हैं। समाजका सारा आक्रोश निष्क्रिय आध्यात्मिक-(ब्रह्म) चिन्तनके विरुद्ध है। वह बैठेठालेके शुगलकी वस्तु है, परजीवियोंके जीनेका एक साधनभर। जिससे समाज और समूहको कुछ लेना-देना नहीं [पृ.५८)। वैराग्यका स्वीकार सामाजिक आत्महत्या है। प्रकृति वैराग्य नहीं अनुराग सिखातीहै—आत्म प्रसार और सृष्टिके विस्तारके लिए (पृ. ५५)। जबकि दर्शन सृष्टिके एक-एक पदार्थका सूक्ष्म निरीक्षण और परीक्षण है जो मानव मात्रके लिए कल्याणका पथ प्रशस्त करता है। भौतिकवेत्ताओं, कृषिशास्त्रियों और देहविज्ञानियों आदिके शोध और निष्कर्ष इसीके परिणाम है, जो समाज के लिए बेहद उपयोगी हैं (पृ. ५८)।

समीक्ष्य उपन्यासमें नरेन्द्रजीने सुदामा और श्रीकृष्ण के चरित्रको अभिनव रूपमें प्रस्तुत कियाहै। उनके स्व-

भाव, अवस्था, कार्यपद्धति, तर्कशैली, मेधा और प्रतिभामें आरम्भसे ही गुणात्मक अंतर लक्षित होतेहैं। फलस्वरूप अध्ययनोपरांत वे अपने-अपने स्वभावके अनुरूप अंगीकृत कार्योंमें न्यस्त होजातेहैं। सुदामाका मन गहन दार्शनित चिन्तन-मनन, उच्चत्तर ज्ञानार्जन एवं अध्ययन-अध्यापनमें रम जाताहै, जबकि श्रीकृष्ण देशकी तत्कालीन राजनीति समाजनीति, एवं धर्मनीतिके सूत्र संचालन और व्यवस्थापनका दायित्व स्वीकार करतेहैं। शास्त्रीय ज्ञानकी अपेक्षा, श्रीकृष्ण स्वतः अनुभूत मौलिक चिन्तनको प्रधान मानतेहैं। उनकी यही प्रवृत्ति उन्हें भविष्यमें कर्मयोग के व्यावहारिक व्याख्याता और प्रतिष्ठाता बननेमें सहायक बनातीहै। परन्तु सुदामा निर्धनताकी कंटीली बाड़ी में उलझते हुएभी स्वाध्याय और चिन्तन स्वातन्त्र्यका परित्याग नहीं कर पाते। उनके चरित्र और शीलमें एक निर्लोभी, निस्पृह तत्त्वचिन्तक और बुद्धिजीवीके बीज अंकुरित होतेहैं तथा जीवनकी भागदौड़में आगे बढ़ जानेके लिए वे किसी इतर क्षेत्रकी बैसाखीका सहारा नहीं लेते। परन्तु आचार्य ज्ञानेश्वर और धर्मेन्द्र दूसरे प्रकारके तथाकथित छद्मवेशधारी बुद्धिजीवी है जो निर्लज्ज चाटुकारिता और दुरभिसंधियोंके सोपानपर चढ़कर, ऊंचे चढ़ जातेहैं (पृ. ८६) तथा सुदामा जीवनकी भागदौड़में पिछड़ जातेहैं। उपन्यासकारका कथन है कि मूल्योंकी गिरावटके लिए भ्रष्ट राजपुरुष जितने दोषी नहीं होते, उससे ज्यादा ये नकली बुद्धिजीवी होतेहैं, जो ज्ञानकी सौदेबाजी (पृ. ३०-३१) करते नहीं थकते। ज्ञानको ही बेचकर द्रोणाचार्य, परशुराम, सांदीपनि और गर्गाचार्यने अपनेको धन्य कियाथा। (पृ.१०६) यह क्रम आजभी जारी है। बुद्धिजीवियोंकी अहम्मन्यता तथा प्रतिगामी शक्तियोंके साथ सांठगांठकी प्रवृत्तिके कारण ही कोई समाज पतनोन्मुख होताहै।

श्रीकृष्णके चरित्रको नया आयाम देते हुए उपन्यासकारने उनके रसिकबिहारी, लीलाप्रिय, सहस्त्ररमणीरमण रूपका प्रत्याख्यान कियाहै तथा रामकी तरह उन्हेंभी मर्यादा-पुरुषोत्तम तथा एक नयी नैतिकताको स्थापित करनेवाले महान् व्यक्तित्वके रूपमें प्रस्थापित कियाहै। भीमासुरके विनाशके पश्चात् उसके द्वारा बन्दिनी बनायी गयी सोलह सहस्र रमणियोंकी मुक्ति और उनके सामाजिक मुक्ति और भविष्यके संदर्भमें कृष्ण द्वारा उन सबका स्वीकार उन्हें एक नयी मर्यादाके निर्माताके रूपमें प्रतिष्ठित करताहै (पृ. ३१)। गोपियोंकी मटकियोंके फोड़नेके प्रसंगको भी उन्होंने तत्कालीन समाजकी एक गहरी आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकता बतलायाहै (पृ. ६३)। इस प्रकार श्रीकृष्ण प्रथम समाजवादी दार्शनिक, विचारक, राजनीतिज्ञ, लौकिक और बेहद मानवीय, विनम्र, कर्मयोगीके रूपमें चित्रित हुएहैं। अन्य चरित्रों की ईषत् चर्चाभर है।

सुदामाका जीवन यह सोचनेको विवश करताहै कि भारतमें आर्थिक विषमता कोई नयी चीज नहीं है। इसकी जड़ें कहीं बहुत गहरी हैं। इसके लिए उत्तरदायी मात्र शोषक-सामंतवादी व्यवस्थाही नहीं, प्रत्युत् जन. सामान्यकी उदासीनता, उनकी संतोषवृत्ति, भाग्यवादिता और कर्त्तव्यहीनता आदिभी हैं। सुशीलाका चरित्र और सोच न केवल सुदामाके लिए बल्कि अत्याधुनिक समाज के लिए भी चुनौतीपूर्ण और वरेण्य बना है।

सम्पूर्ण उपन्यासपर सुदामाका चिन्तन छाया हुआहै। यह चिन्तन एक सचेत और जागरूक बुद्धिजीवीका है, जिसमें अपनी दशा और देशकी दुर्दशा, दोनोंका वस्तुगत आकलन और विश्लेषण है। इस चिन्तन और विचार प्रधान उपन्यासकी भाषा कहींसे बोझिल बनने नहीं पायी है। एक चिन्तनसे दूसरा चिन्तन फूट निकलताहै और निरंतर उसका पूर्वापर संबंध बना रहताहै। उपन्यासकार ने यह काम अपनी भाषा शक्तिसे लियाहै। जिस लेखक को निजी भाषा और शैलीपर ऐसा एकाधिकार नहीं होता, वह इतनी सफलताके साथ चिन्तनोंकी ऐसी शृंखलाकी सर्जना नहीं कर सकता। तिसपर भी इसकी खूबी यह है कि भाषाका प्रवाह अनवरुद्ध, सरस और रोचक बना रहता है। सुदामाके चिन्तनमें वह व्यंग्य और आक्रोशभी शामिल है जो चाटुकारों, बिचौलियों, दंभियों, सत्ता-लोलुपों और अवसरवादियोंपर फूटेहैं।

अबतकके विचारकों या साहित्यकारोंने मार्क्सके सिद्धांतके आलोकमें जब-जब भारतीय संस्कृति, दर्शन और मनीषापर विचार कियाथा, तब-तब उन्होंने उसे या तो भारतीयताके विरुद्ध पायाथा अथवा उसे विरूपित करके प्रस्तुत कियाथा। फलस्वरूप ऐसे चिन्तन लोकग्राह्य नहीं बन पाये। किन्तु नरेन्द्र कोहलीने अपने इस उपन्यास में जिस नवीन दृष्टिसे कर्मयोगका तालमेल समाजवादी चिन्तनसे जोड़ा है, वह उसे अधिक-से-अधिक लोकग्राह्य बनानेका प्रयत्न है। मेरा विश्वास है कि लेखक इस प्रयत्नमें बहुत दूरतक सफल हुआहै।

कर्ममें अविभाजित निष्ठा और संलग्नता परिश्रमके द्वारा उत्पादनमें वृद्धि और उसका न्यायपूर्ण वितरण (पृ. १३७) इस मार्गमें आनेवाले अवरोधसे विकट संघर्ष आदि इस उपन्यासके मूल निष्कर्ष हैं। अन्यायी शक्ति मनुष्यके संघर्षके समक्ष टिक नहीं पाती (पृ. २३६)। आत्मनिर्भर व्यक्तिही स्वतंत्र होताहै, शेष परतंत्र। सबसे बड़ी आत्मनिर्भरता आर्थिक आत्मनिर्भरता है (पृ. ३९)। आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता पानेके लिए मनुष्यको अपनी नियतिको पहचानना पड़ेगा और जो

व्यक्ति अपनी नियतिको जितना अधिक पहचानेगा, वह उतनाही अधिक समर्थ होगा (पृ. १८६)। फिर कोई आसुरी शक्ति उसका दमन नहीं कर पायेगी (पृ. २३४)। नियतिकी यही पहचान मनुष्यकी अस्मिताका 'अभिज्ञान' है। यह 'अभिज्ञान' ही महत्त्वपूर्ण है और इसकी उपलब्धि ही मानव जीवनका लक्ष्य है। □□

कहानी संग्रह

चौराहेका आदमी[1]

कहानीकार : डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

समीक्षक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'.

लब्धप्रतिष्ठ कवि, नाटककार, समीक्षक एवं संवेदनशील कथाकार डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' का सद्यःप्रकाशित कथा-संग्रह "चौराहेका आदमी" कई दृष्टियोंसे उल्लेखनीय कहाजा सकताहै। प्रथम दृष्टि है कि इस संग्रहकी प्रायः सभी कहानियां जीवनसे कहीं बड़े गहरे जाकर जुड़ जातीहैं और पाठक इस जुड़ावसे बंधकर कथा-पात्रों एवं घटनाओंके साथ तादात्म्यकर लेताहै। दूसरी उल्लेखनीय बात है कहानियोंका शिल्प— मुख्यतः भाषा, जो कविताकी सी भावुकता और तरलतासे अनुप्राणित है और उपमाओं तथा रूपकोंसे सजी ये कहानियां कई बार 'प्रसाद' की याद करा देतीहैं।

संग्रहकी शीर्षक कहानी 'चौराहेका आदमी' प्रतीक शैलीमें कहीं राष्ट्रपिता महात्मा गांधीको जीवित करके देशमें रोज कहीं-न-कहीं 'नोआखाली' बना देनेवाले तंगदिल, वहशी, सम्प्रदायवादियोंसे जूझनेकी ताकत देतीहै। इस कहानीकी सांकेतिकता जैसे बापूको साकार कर देतीहै—"उसे लग रहाहै कि वह लंगोटीवाला चिल्लाता आरहाहै—तुम पीछे क्यों लौट जातेहो? मृत्युसे इतना क्यों डर रहेहो?···तुम आदमीके हैवानसे डरकर लौटेजा रहेहो।···पर आदमीके भीतर ईश्वरभी तो होताहै। उसे जगानेके लिए पीछे लौटो, मौतका सामना करो।" (पृ.४)

सामाजिक जीवनके अभिशाप 'दहेज' को लेकर इस संग्रहकी कहानी 'कुहरेसे घिरी आवाज' अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन गयीहै। कथा-नायिका रेणु जाने कितनी विवाहित युवतियोंकी प्रतीक बनकर पाठकको झकझोर देतीहै। खूबी यह है कि कहानी प्रचारात्मक न होकर सीधे मर्मको बेध जातीहै। नारीके धैर्य, सेवा-परायणता एवं कर्मशीलताके बादभी उसे समाजमें क्या स्थान प्राप्त है, यह डॉ. 'दिनेश' की एक अन्य कहानी—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते" में मुखर हुआहै। नारी-स्वातंत्र्यका आदर्श कैसे नारीकी दासताके यथार्थसे पिस जाताहै, इसे कथाकारने 'छोटी बहू' के माध्यमसे बेहद प्रभावपूर्ण ढंगसे उकेराहै। ये दोनों कहानियां जहां परिवारमें नारीके शोषणका सजीव अंकन करतीहैं, वहीं "सवेरा होनेतक" कहानीमें कथा-नायिका मिस निम्बोके माध्यमसे कथाकारने नारीके अस्तित्व-बोध, हीनता एवं मजबूरीको सशक्त ढंगसे अभिव्यक्ति दीहै। यह कहानी सही अर्थोंमें आजके तथाकथित सभ्य एवं प्रगतिशील समाजकी विद्रूपताको उजागर करतीहै। इस कहानीके पात्र समाजके तथाकथित श्रेष्ठिवर्गपर करारी चोटही नहीं करते, बल्कि सांकेतिक रूपमें कानून एवं पुलिसकी कारगुजारीपर भी व्यंग्य करतेहैं! कथा-नायक श्यामका जीवन कहीं-न-कहीं इसी खोखलेपनकी देन है जो समाजको अनजानेही अपराधका नासूर दे देताहै।

[1] प्रकाशक : शिल्पी प्रकाशन, लालजी सांडका रास्ता, एस. एम. एस. हाईवे, जयपुर-३०२-००३। पृष्ठ : ७२; क्रा. ८३; मूल्य : १५.०० रु.।

डॉ. 'दिनेश' के इस कथा-संग्रहकी और कहानी है—'निर्वासिता', जिसमें उन्होंने पुरुषकी स्वेच्छाचारिता, उच्छृंखलता, कापुरुषता एवं अहंवादिताकी तुलनामें नारीके समर्पण तथा चारित्र्यको विजयी बनायाहै। यहाँ लेखककी भाषा और शिल्प कविका सा होगयाहै—"नारीके लिए संशय मात्रसे कलंक! और नरके लिए? प्रत्यक्ष और सिद्ध अपराधपर भी कलंक नहीं! ऐसा क्यों? वह नर है, स्वामी है, सब कुछ है इसलिए?…आह! तभी वह नारीको अपनी रमणी, अपनी भोग्या बनाये हुएहै।…क्या नारी सचमुच उतनीही कामिनी है, जितना कामी नर उसे समझताहै और बनाये हुएहैं?…" (पृष्ठ-४१)

इस कहानीमें लेखक नाटकीयता ले आयाहै, जो शायद किसी पाठकको अनावश्यक अथवा असहज लगे, लेकिन कथाके प्रभावमें यह नाटकीयता वृद्धिही करतीहै; साथही उससे कथाकारके उद्देश्यकी सिद्धि हुईहै।

संकलनकी एक कहानी—"सुहागकी रक्षा" सबसे अलग है। इतिहासके पन्नोंपर कहीं खोयी घटनासे राजस्थानमें कार्यरत डॉ. दिनेशने अनूपसिंह, जार्जसिंह और क्षत्राणी रूपाके चरित्र लेकर वीरत्व एवं वचनके प्रति दृढ़ मेवाड़की परंपराको अभिव्यक्ति दीहै। यह कहानी उदात्त भारतीयताका दर्शन कराती है।

और शेष कहानियोंमें एक 'रोशनीकी ओर' इस दृष्टिसे मूल्यवान् है कि उसमें प्रेरणाका तत्त्व अन्तर्हित है। अभावोंसे टूटा हुआ कथा-नायक आत्महत्याके लिए तैयार है, लेकिन कथाकारका जीवन-दर्शन जैसे उसकी जिजीविषाको जगा देताहै—"वह सोचने लगा, पलायन नहीं, कर्तव्य करते हुए परिवार और समाजके बीच रहनाही उसकी सार्थकताहै। ठीक है, दुनियां पापोंसे भरीहै, किन्तु अपना कर्तव्य यह नहीं है कि उससे घबराकर अपनी सार्थकता मिटा दीजाये।" (पृष्ठ-७१). संग्रहकी कहानी 'कीचड़-समाधि' में व्यंग्य-स्वर प्रधान है तो 'लाल निशान' कहानीमें आदमीके भीतर बैठे शैतानको लेखक प्रत्यक्ष करताहै।

डॉ. दिनेशका यह कथा-संकलन कथ्य एवं शिल्पकी श्रेष्ठताका बेजोड़ उदाहरण है और जीवनसे जुड़ी हुई कहानियां पाठकको बांधे रखनेमें सफल हैं। मुद्रणकी अशुद्धियां भलेही कम हैं, पर हैं जरूर! कहानियां परिवारकी हैं, परिवारके लिएभी हैं। □

नयी धरती : नये बीज[1]

कहानीकार : अमरनाथ चौधरी 'अब्ज'
समीक्षक : डॉ. रामजी सिंह

'नयी धरती : नये बीज' पैंसठ लघुकथाओंका संग्रह है। आजके संक्रान्त परिवेशमें, जीवनकी पेचीदगी इतनी बढ़ गयीहै कि आजकी कहानी उसे अभिव्यक्ति देनेमें अपनेको अक्षम पा रहीहै, इसलिए कहानियां टूट रहीहैं और कहानी-विधाकी बाढ़ प्राय: अवरुद्ध-सी होगयीहै। जीवन अपने समग्र रूपमें उपन्यासोंका कथ्य बना हुआहै। ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न बार-बार सामने आताहै कि आज जीवन समग्र या संपूर्ण रह कहां गयाहै? वह तो खण्ड-खण्डमें बिखरा-फैलाहै। कथाकारने इन रचनाओंके माध्यमसे मानों दर्दकी अलग-अलग मीनारोंसे घिरी जिन्दगीको एक विराट् फलकपर उठाकर रख दियाहै। ये कहानियां आजके समयका दर्पण बन जातीहैं, जिसमें मध्यवर्गीय जीवनकी शुष्क और विनाशकारी रिक्तता, अधकचरी राजनीतिक चालबाजियां, स्वार्थसिद्धिमें लगी सामाजिक व्यवस्था संबंधोंके सतहीपन, दिशाहीनता, ढहती सामाजिक मान्यताओं और इसी प्रकार मूल्य-भ्रष्ट युगका बहुआयामी चित्र प्रतिबिम्बित होजाताहैं।

दो चार पंक्तिकी इन रचनाओंमें कथाकारकी अपने समाजके प्रति सूक्ष्म-अंतर्दृष्टि, अनुभवकी गहराई, अभिशप्त पात्रोंकी सही पहचान और भाषाकी तीखी मार देखतेही बनतीहै। छोटे-छोटे चुटकुले और लतीफेके रूपमें ढली रचनाएं अस्थायी प्रभावही डालतीहै किंतु युग-सत्यको तो बेनकाब करतीहीहैं। एक खंडित-सत्य जीनाही आजके जीवनकी नियति है, जो इन लघुकथाओंमें है। 'आधुनिक द्रौपदी', 'संरक्षण', 'गुरुदक्षिणा', 'प्रोन्नति', 'उपाय', 'वोट', 'गुण्डा', 'मंहगाई', और 'आपसी समझौता' आदि रचनाएं अपने युगकी रंगीन तस्वीरका सही प्रतिनिधित्व करतीहैं।

इन लघुकथाओंमें सामयिक सामाजिक-राजनीतिक विकृतियोंकी क्रूरतम अभिव्यक्ति कृति और कृतिकारको परंपरित जमीनसे आगेकी जमीनपर प्रतिष्ठित करतीहैं। जीवनके बड़े आदर्श और मानदण्ड टूटकर छोटे होतेजा रहेहैं, जीवनसे सीधा जुड़नेवाला साहित्यकार और उसका यह कृतित्व अपने समयकी पहचान और आवश्यकताके सर्वथा अनुरूप एवं ग्राह्य है। □□

---

१. प्रकाशक : ऋचा, ६-डी/१०६१, बोकारो स्टील सिटी-८२७.००६। पृष्ठ : ४०; डिमा. ८३; मूल्य : ५.०० रु.।

युग-युग या पांच मिनट[1]

एकांकीकार : भारतभूषण अग्रवाल
समीक्षक : डॉ. नर नारायण राय.

इस कृतिमें नौ रेडियो एकांकियोंका संकलन है। इसके पूर्व भारतभूषण अग्रवालका एक ऐसाही और संकलन 'पलायन' शीर्षकसे प्रकाशित है। पुस्तकके प्रारम्भमें संख्यामें दोपर वस्तुत: एक पृष्ठकी नेमिचन्द्र जैनकी अत्यन्त संक्षिप्त प्रस्तावनासे यह स्पष्ट होजाताहै कि श्री जैनको रचना और रचयिता दोनोंकी अन्तरंग पहचान है। इस संकलनमें संकलित रचनाएं हैं : अजंताकी गूंज, और खाई बढ़ती गयी, युग-युग या पांच मिनट, परछांई, दृष्टिदोष, गीतकी खोज, इन्ट्रोडक्शन नाइट, नींदकी घाटियां और बीमारी। श्री जैन ने अपनी प्रस्तावनामें लिखाहै कि 'ये सब नाटकभी उनके पहले खण्डमें संग्रहोत नाटकोंकी भांति रेडियोके लिएही लिखे गयेथे और कई प्रकारसे ये हिन्दीके कुछ समृद्ध और मौलिक रेडियो-नाटकोंमें गिनेजाने योग्य हैं। किन्तु इनमें सहज मानवीय प्रतिक्रियाओंका ऐसा रूप है जो मंचके लिए भी कम उपयुक्त नहीं। जिस फंतासी शैलीमें 'अजन्ताकी गूंज'और 'नींदकी घाटियां'प्रस्तुत हैं वह केवल रेडियोसे ही प्रसारित हो सकताहै या फिर फिल्म के द्वारा। दूसरी ओर 'बीमारी' विशुद्ध मंच नाटक है, दीगर बात है कि रेडियोसे उसका प्रसारणभी होजाये पर तब 'परदेको हटाकर विनोदके प्रवेश करने और प्रतिमाकी उदास मुद्रा देखकर उसकी मुस्कुराहटके गायब होजाने जैसे' क्षणोंका प्रसारण नहीं होसकेगा। यह तो मंचपरही सामने लाया जासकताहै। पर क्या कुछ रेडियो संकेत देनेसे ही एक मंच नाटक रेडियो नाटक बन जायेगा? याकि क्या केवल वार्त्तालापोंके संयोजन मात्रसे ही एक मंचीय नाटक पूरा होजाता है?

संगृहीत रचनाओंमें बेशक विषय वैविध्य है। 'अजंताकी गूंज' में एक कलाकारकी आत्म-साक्षात्कारकी छटपटाहट और मुक्ति मूल विषय है तो 'और खाई बढ़ती गयी' में पिताके पुत्रके प्रति किये गये स्वार्थमें पूर्ण आचरणसे उत्पन्न होनेवाली और निरंतर चौड़ी होती जानेवाली पिता-पुत्रके बीचकी संबंधहीनताकी खाई का वर्णन किया गयाहै। शीर्षक कृति 'युग-युग या पांच मिनट' वस्तुतः यह दिखलाताहै कि युग-युगतक चलनेवाले प्यारके किस्से आजकी चकाचौंधवाली दुनियांमें किस प्रकार बेमानी होगयेहैं : एक प्रतिभाशाली गरीब ट्यूटरके पांच मिनट पूर्व किये गये प्रेम-निवेदनको ठुकरा देनेवाली शीला उसके आई. ए. एस. होजानेकी खबर सुनतेही स्वयं प्रेम निवेदन करने लगतीहै। 'परछाई' की घटना ठीक इसके विपरीत है, यहां धोखा और स्वार्थ पुरुषकी ओर है। मोहन अपने प्रथम विवाह की बात छुपाकर शीलासे शादी कर लेताहै और असलियत जाननेके बाद शीलाका अन्तर्दाह, उसकी आत्मघात की विफल कोशिश और तज्जन्य उसके लंबे-लंबे एकालापों में फूट पड़ताहै। 'दृष्टिदोष' प्रहसन प्रकृतिकी रचनाहै— रमेश अपने पड़ोसमें आये एक नये परिवारकी स्त्रीसे आंखें लड़ाताहै और एक दिन उसका मित्र वीरेन्द्र बड़े नाटकीय ढंगसे उसे लज्जित करता हुआ यह रहस्य खोलताहै कि वह स्त्री उसीकी पत्नीहै जो रमेशकी आशिकमिजाजीसे आजिज आचुकीहै। 'गीतकी खोज' वस्तुत: 'विकृत मूल्योंके संदर्भमें एक कवि मनकी बिडम्बना'को उजागर करताहै तो 'इन्ट्रोडक्शन नाइट' में कॉलेजमें पढ़नेवाले मस्त ऊधमी और विनोदी लड़कोंकी प्रकृतिकी रोचक झलक 'रेगिंग' के एक अनूठे प्रयास द्वारा प्रस्तुत की गयीहै। 'नींदकी घाटियां' एकाकीपन

1. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १५४; क्रा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

और निस्संग एकांतके कारण मानसिक रूपसे बीमार होजानेवाली एक स्त्रीकी करुण गाथा है तो 'बीमारी प्रेमके मोहभंगकी।

प्रसारणके लिए रेडियो नाटकोंका चुनाव विशेष नीतियोंके अन्तर्गत किया जाताहै इसलिए प्राय: सभी रेडियो नाटक मनोवैज्ञानिक आधारोंपर तैयार किये जातेहैं जहां विषयके कारण उनके चयनकी बाधा सबसे कम होतीहै। इस संकलनके भी नाटक प्राय: ऐसेही हैं जिनमें मानसिक अंतर्द्वन्द्व मुख्य विषय है या फिर वे मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे व्यक्ति-चरित्रकी किसी विशिष्ट भंगिमाका चित्रण प्रस्तुत करतेहैं। पर 'इन्ट्रोडक्शन नाइट' और 'दृष्टिदोष' जैसे नाटकभी हैं जिनमें मनोविनोदकी ही प्रधानता है। संग्रहकी कई रचनाएं काफी अच्छी हैं और दो सबसे प्रभावशाली रचनाएं वे हैं जो मूलत: फंतासीपर आधारित है: अजंताकी गूंज, नींदकी घाटियां। दोनों नाटक मनोविश्लेषण शैलीकी रुचिकर कृतियांहैं। निश्चयही यह संकलन भारतभूषण अग्रवाल का एक रेडियो नाटककारके रूपमें महत्त्व स्थापित करताहै।

पिछले वर्षों प्रकाशन जगत्में लेबिल बदलकर रेडियो नाटकोंको मंच नाटकके रूपमें प्रस्तुत करनेकी प्रवृत्तिका जोर रहाहै। इस पृष्ठभूमिमें इस संकलनको अपने मूल रूपमें प्रस्तुत करनेके प्रकाशकीय प्रयासकी प्रशंसा होनी चाहिये। □

पोस्टर[१]

नाटककार : शंकर शेष
समीक्षक : डॉ. अज्ञात.

कीर्तनमें कथा-पुराणके तत्त्वोंके साथ संगीत और अभिनयके तत्त्वभी उभरे। यही कारणहै कि कीर्तनकारों ने अपने आध्यात्मिक ज्ञान और दर्शनके रूपायनके लिए अभिनय अर्थात् नाट्य-लेखन और उसके मंचनकी शैली को बड़ी आजिजीके साथ अपनाया। नेपालके कीर्तनियां नाटकों, असमके अंकिया नाटकों तथा महाराष्ट्रके कीर्तनों के मूलमें, जिसमें एक कीर्तनकार अपने साथी/साथियों तथा सहयोगी वादकोंके साथ ब्रह्म निरूपणकर इतिहास पुराणसे कोई कथाखण्ड चुनकर उसका गायन-कथन करताहै, संभवत: एकही प्रयोजनशीलता, एकही भाव-धारा प्रवाहित होतीहै। कीर्तनकी लोकशैलीने सोलहवीं शती या इसीके आस-पास नेपाल तथा असमको एक समृद्ध नाट्य-परंपरा दी। महाराष्ट्रमें कीर्तनकारोंने ऐसी किसी नाट्य-परंपराको जन्म दिया या नहीं, यह तो ज्ञात नहीं, परन्तु शंकर शेषने अपने 'पोस्टर' नाटकमें कीर्तन शैलीको अपनाकर नाटकको एक नया आयाम दिया है।

इस नाटकके प्रारम्भमें ब्रह्म-निरूपण करके लेखकीय मतव्यकी पुष्टिके लिए व्यास, सूर, तुलसी, कबीर, आदि के उद्धरणभी दिये गयेहैं, परन्तु तभी एक बलात्कार-कांडकी चर्चाके साथ एक गांवकी कथा प्रारम्भ होजाती है, जो एक ओर श्रमिक समस्या और वेतन-वृद्धिके संघर्ष से तो, दूसरी ओर श्रमिक-महिलाके साथ हुए बलात्कारकी घटनासे भी संवद्ध है।

नाटकके कथ्यका एक संशोधित प्रारूपभी पुस्तकमें दिया गयाहै। प्रथम प्रारूप और संशोधित प्रारूपमें नाटकका मूल कथ्य वही है, पर कुछ अन्तर हैं :

(१) मूल प्रारूपमें सद्गुरू तथा रामकी स्तुतिके बाद गणेश-वंदना शुरू होतीहै, जबकि संशोधित प्रारूप में सद्गुरूकी स्तुतिके बाद विष्णुकी स्तुति और तब गणेश-वंदना की जातीहै। तमाम देवोंकी जय-जयकार के बाद नेता-रूपी आधुनिक परब्रह्मकीभी वन्दना की जातीहै। इस नेताके सिरपर टोपी, गलेमें मोटी माला तथा चार हाथोंमें क्रमश: कुर्सी, पिस्तौल, थैली और टेलीफोन रिसीवर है।

(२) मूल प्रारूपमें एक श्रोता और संशोधित प्रारूप में एक युवा आकर ब्रह्म-निरूपण बंद करनेको कहता है और इसीके बाद झाड़ीमें हुए बलात्कारका प्रसंग सामने आताहै और कीर्तनकार कल्लू और उसकी पत्नी चैतीकी कथा सुनाता है। प्रत्येक प्रारूपमें चैती पटेलकी हवेलीमें जबरन पहुंचा दी जातीहै, परन्तु दूसरे प्रारूपकी कथाका युवा और वृद्ध तथा कुछ और लोगभी बलात्कारीके पीछे भागतेहैं। इस प्रकार इस प्रारूपमें विद्रोहका स्वर प्रबल है! मूल प्रारूपमें कीर्तनकारके प्रबोधनके बावजूद श्रोता १ में विरोध शक्ति जागृत नहीं होने पाती।

(३) दूसरे प्रारूपमें स्वामी अखंडानंदका आविर्भाव

---

१. प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : १८४; क्रा. ८३ मूल्य : ३०.०० रु.।

कर स्वर्ग-नरकके चित्र दिखाये जाते और श्रमिकों को 'संतोषं परमं सुखम्' का पाठ पढ़ाया जाताहै —इसलिए कि वे पटेलके विरुद्ध विद्रोह न करें और अधिक मजदूरीकी मांग न करें।

(४) दूसरे प्रारूपमें चैंती असली विद्रोहिणीके रूपमें उभरतीहै, परन्तु दोनों 'प्रारूपों' में उसका अन्त एक जैसाही होता है।

कीर्तन शैलीमें लिखे गये इस नाटकमें कथा-कथन की सरसता, संगीत और काव्यका पुट तथा लोक-शैलीकी ताजगी है। मराठी नाटकोंकी गाली-परंपराको यदि इसमें न अपनाया गया होता, तो नाटकमें चार-चाँद लग जाते। 'यहाँ नहीं मराते...' 'साला' (पृ. ३९) 'कुत्तों' 'हरामजादों' (पृ. ४१ तथा १३१-१३२) आदिका खुला प्रयोग संस्कारी नाटकोंके लिए शोभनीय नहीं है।

नाटकमें किसी विशिष्ट रंग-सज्जाकी आवश्यकता नहीं। पोस्टर और स्वर्ग-नरकके चित्रभी अमूर्त हैं और माइम द्वारा चित्रकोभी दिखाये जातेहैं। इस प्रकार कीर्तन-कथा शैलीके इस नाटकमें रंगोपकरणों या नाटकीय ताम-झामकी आवश्यकता नहीं है। बस कीर्तन-संगीतके महत्त्वपूर्ण अंग होनेके कारण कीर्तनकारके साथियोंके पास इकतारा तथा मंजीरा और वृंद-वादकोंके पास हारमोनियम, तबला और वायलिनका होना आवश्यक है।

इस नाटककी दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एकही नारी-पात्र है चैंती। पुरुष-पात्रोंकी संख्या बारहसे लेकर अठारह-बीस तक बढ़ाई जा सकतीहै। मंचपर बैठे श्रोताही मजदूरोंकी भूमिकाभी कर सकतेहैं। इसी प्रकार कथाके पात्रही अपनी-अपनी भूमिकामें उतरते और जीतेहैं।

नाटकके प्रथम प्रारूपकी अपेक्षा दूसरा प्रारूप अधिक पुष्ट और सबल है। नाटकका प्रथम मंचन आविष्कार, बम्बई द्वारा कियाजा चुकाहै। □□

काव्य संकलन

इस यात्रामें[1]

कवि : लीलाधर जगूड़ी
समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

जगूड़ी द्वारा छठे-सातवें दशकमें रची ३५ कविताओंका यह संकलन उनकी जन्मभूमिके परिवेशसे जुड़ी संवेदनाओंका शब्द-मूर्तन है। यह परिवेश मूलत: विराट् हिमालयकी परिस्थितिकीने निर्मित कियाहै परन्तु उसमें आजके सर्वव्यापी यथार्थका सीधा प्रतिबिंब है। पानी-हवा, चट्टानों-पत्थरोंके अकूत मुहानेपर बैठा कवि प्रकृतिका जो रूपांकन कर रहाहै, वह बाहरी प्रकृतिभी है, उसके अपने निजके भीतरका भी। प्रकृतिके परिदृश्यके साथ जो दूसरी चीज उसमें मौजूद है वह 'सेक्स' है जिसे प्रेममें परिणत कियाजा सकताथा परन्तु कविका, उसके साथका सलूक अटपटा और विचित्र रहाहै। उसने उसे 'संवेदन' के स्तरपर ही जिया, उससे आगेके स्तरोंपर नहीं। कविताके 'सनातन' में उसका जैसा अधिग्रहण होताहै मसलन रोमानी, छायावादी, प्लेटोनिक अथवा उसका सनातन मनुष्यके उस अध्यात्मसे जुड़ाव जिससे रागानुगा-रागात्मिका वृत्तियोंका उदय होता देखा

---

१. **प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ७९; डिमा. ८३; मूल्य : २०.०० रु.।**

जाताहै वैस जगूड़ीमें नहीं है। वह समर्पणहीन और केवल शरीरी है। शरीरके स्तरपर भी वह मात्र संवेद दंश देकर चलता बनताहै। यह 'दंशानुभव' जगूड़ीकी उस दौरकी कविताओंकी एक खास चीज रहीहै। धीरे-धीरे कवि सामाजिक यथार्थके अन्य स्तरोंको आत्मसात् करता गयाहै। बलदेव खटीक' सदृश सशक्त रचनाओंसे यह बात प्रभावित होतीहै।

प्रकृति और सैक्स (प्रेम?) के अतिरिक्त जगूड़ीकी कविताओंमें तीसरे स्तरकी साझेदारी 'एक आक्रोश' की रहीहै। यह आक्रोश उन्हें किसी उपलब्धियुक्त परिणति तक नहीं पहुंचाता। इसमें 'पुंसत्वहीनता' है। वह जगूड़ीको हर शब्दमें बचाता आयाहै। यदि यह नहीं होता तो जगूड़ी अपनेको 'झोंकते'। यदि ऐसा हुआ होता तो जगूड़ी बादलकी तरह फटे होते और 'तवाघाट' की तरह एक भारी हिस्सेको बहानेमें सफल हुए होते। ऐसा होनेपर उनका रूप 'जनकवि' के मानिंद सामन आनेवाला था। परन्तु रीढ़हीन 'आक्रोश' ने उनके व्यक्तित्वको मसस-मससकर रखा। उसने, एक ओर 'संवेद' का अनुभव, सहज रूपमें व्यक्त नहीं होने दिया दूसरी ओर वह कविको बचाकर रखता रहा क्योंकि वह कविके लिए 'ढाल'की तरह था। एक कृत्रिम ढाल जो इस्पातसे बनी हुई नहीं थी।

इन्हीं दो सीमाओंमें, बहुत लम्बे अन्तरालतक कवि मानसिक छटपटाहटसे जूझता रहा। उनकी छटपटाहटकी गवाह उस काल-खंडकी रचनाएं हैं। उनकी रचनाएं, उनकी स्थितियोंकी गवाह बन सकीं—यह अपनेमें एक अहम चीज़ है। सर्जनाके साथ जुड़ी यथार्थ-स्थितियोंके अंकनका अपना महत्त्व है परन्तु जगूड़ी इससे ऊंचे स्तरकी काव्य-क्षमताओंसे युक्त हैं जो अभी पल्लवित नहीं हो सकीहैं।

वस्तुतः इस समूचे दौरमें जगूड़ीकी छटपटाहट अभिव्यक्तिकी छटपटाहट तो हैही, पारंपरिक भाषाको छोड़ नयी भाषाके गढ़नेकी तल्ख जरूरतसे जुड़ी छटपटाहटभी है। वे उस दौरके उन चंद कवियोंमें हैं जिन्होंने भाषाके संकटको गहरे ढंगसे महसूस कियाहै और उससे अपने ढंगसे जूझनेकी कोशिश कीहै। क्योंकि उनकी काव्य-भाषाको आम सहृदयकी 'समझ' नहीं मिल पायी; वे उसके व्याख्याकार किसी शिविर या खेमेके सदस्यभी नहीं रहे; उसने, स्वयंकी कविताकी पृष्ठभूमिको समझानेकी जरूरतभी नहीं समझी जो एक सही और स्वस्थ [illegible] उपज थी। परिणामतः वे उस 'जूझन' में नितांत अकेले होते गये जबकि वे भाषाकी अर्थवत्ताकी गहरी खोजमें निरत थे और उसे अपनी प्रतिभासे अर्थवत्ता देभी रहेथे। 'आत्मविलाप' कवितामें स्पष्ट संकेतित है—

> अपनी छोटी और अन्तिम कविताके लिए
> मुझमें जो थोड़ा-सा रक्त शेष है
> मैं कोशिश करूंगा
> वह दौड़कर
> शब्दके उस अंगको
> जीवित करदे
> जो भाषाकी हवासे मर गयाहै।

अपने दूसरे काव्य-संकलन 'रात अभी मौजूद है' में, अपनी इस नयी काव्य-भाषाको रचनेके दौरान पैदा हुए क्लिष्टत्व (जो वस्तुतः भाषाके स्तरका न होकर शिल्पके स्तरकी अक्रम-दुष्क्रम जैसी कोई चीज है) को जगूड़ीने महसूस कियाहै और स्वयंके साथ-साथ अपने पाठक—सहृदय-आस्वादकको भी आश्वस्त करना चाहाहै ..

मुझे काम है/सरल भाषा बोलना/सरल भाषा बोलना/बहुत कठिन काम है/जैसे कोई पूछे/ठीक-ठीक बोलो/तुम्हारा क्या नाम है/और वह बिना डरे बोल जाये/तो इनाम है।

कविताकी भाषाके बारेमें दिया गया यह सही वक्तव्य, कविताके कलेवरमें घटित हो जाये, जगूड़ीके पाठक अभीभी उस प्रतीक्षामें हैं।

दरअसल भाषाको भी इतिहासके अनुमोदनकी जरूरत होतीहै। इतिहासका अनुमोदन नहीं मिलता तो भाषा अटपटी, उलटबासी समझ ली जातीहै। हिन्दीकी कविताका पारंपरिक-संस्कार 'अंदाज और अदाकारी'का नहीं है। पाठक और सहृदय, हर कविताको, उसके सनातन सांस्कृतिक स्रोतोंसे फूटती नयी-नयी कलियोंके रूपमें ही देखनेका आग्रही रहाहै।

हिन्दीकी पाठ्य कविताने इस संस्कारको बदला और बदले हुएके प्रति लोगोंका रुझान पैदा किया। नयी संस्कारिताका संधान होताजा रहाहै परन्तु श्रव्य कविताके अनुपातमें उसके आस्वादकोंकी संख्या नगण्य होतीहै। प्रतिभाशाली कवियोंको श्रव्य कविताके ढर्रेकी पटरीपर नये संस्कारोंकी गाड़ी चलानेका प्रयास नहीं छोड़ना चाहिये। लय, गेयता और छन्दविहीन होकर हमने अपना, आस्वादकोंकी जुबानमें मिलनेवाला स्थान खोया।

हमें लोगोंने याद करना छोड़ दिया तो हम उदधृत होते रहनेसे मिलनेवाली लोक-प्रियतासे वंचित हुए। गैर-टिकाऊ और तात्कालिक चीजोंपर टिके रहनेसे हमने चिरंतनता खोयी। उसपर भी केवल 'विचार' को ही पूंजीते रहे तो इतिहासमें हमारी हस्ती कितनी असरदार हो पायेगी ?

इधर कविताके रचयिताओंका एक वर्ग अदाकारी और अंदाजको ही अहम बनाता गयाहै। नफ़ीसी और मात्र यथार्थको शब्द देनेके लिए जो कविता 'बनायी' जाने लगीहै वह 'नया रीतिकाल' निर्मित करनेका ही एक अभिनव प्रयास प्रतीत होताहै। उसमें न तो व्यापक जन-सम्पर्ककी क्षमता है और न पढ़े-लिखोंमें ही बहुमत पा सकनेकी अर्हता। इस तरह कविको छोटे और छोटे और छोटे दायरोंमें सीमितकर देनेवाला कविकर्म क्या कविताको कालातीत बना पायेगा ? सृजनका तकाजा कहताहै कि 'मुझे चिरन्तनसे जोड़ते चलो'। नयी भाषा, शिल्प, लय और छन्द-तालमें आवद्ध होकर कविताकी लम्बी परम्परामें हर नयी कविताको अपना स्थान बनाना चाहिये। कविताके शास्त्र और कालजयी काव्य कृतियोंके 'अधीत' जनोंको यह सब ज्ञात है तो 'ज्ञातास्वाद' होकर भी उस विवृत-शरीर जैसे सुन्दर सत्यको नजरंदाज किये रहें ? मुझे तो लगताहै आजके प्रकाशकोंकी पीढ़ियां जैसे हर रचनाकारकी समग्र कृतियोंको खोज-खोजकर मोटी 'ग्रथावलियों' के आकार-प्रकारमें छाप रहीहैं वैसे ही भविष्यकी पीढ़ियां आजके मोटे-मोटे पोथोंमें से 'शाश्वत कविताओं' को खोजती जायेंगी और एकही कविकी तमाम काव्य-कृतियोंसे सही अर्थमें सही कविताओं को पुनः प्रकाशित करती जायेंगी। जगूड़ी जैसा 'अधीत' और 'शास्त्री' कवि अपने रचनाधर्मको सनातनसे नहीं जोड़ यों अटपटा, बेगाना और छोटी-छोटी चीजोंका 'क्लोजअप' लेनेतक ही सीमित रखताहै तो कविताका दुर्भाग्यही कहा जायेगा।

जगूड़ी, साठके बादकी कविताको नया अप्रस्तुत विधान देनेवाले कवियोंमें हैं। यथार्थके विभिन्न स्तरोंको उन्होंने बहुत खूबीसे चित्रित कियाहै। चाहे सम्बन्धोंके व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक स्तर हों या व्यवस्थासे उत्पन्न विसंगतियां और विद्रूपताएं ; उनकी कविता, उनके प्रति हममें नयी संवेद्यता और समझ पैदा करतीहै।

यह केवल जगूड़ीकी कविता है जहां 'समय लगातार पत्तियोंको चाटता हुआ घरोंके बीचसे गुजर रहाहै।' 'नगपनपर झर चुकनेके बाद मिट्टी फोड़कर निकलनेका दर्द तमाम शाखाओंसे फूटना चाहताहै। कविका 'जहाज परिवारकी खाड़ीमें लंगर डालकर खड़ा है' और उसे अपनी नियतिकी पक्की जानकारी है कि वह 'इस बारभी कहीं नहीं पहुंचेगा'। नये जमानेके हड़बगमें जो पुराना बेशकीमती और संवेद्य छूटताजा रहाहै, उसका कविको दर्द है —

हमने यहां सब कुछ खो दियाहै
अंग्रजोंका विरोध और अनुजोंकी निशानेबाजियाँ
पूर्वजोंके सारे धार्मिक द्वन्द्व
नयी फसल बोते हुए पुराने अन्नके बुखने
और उनके स्वाद
हमने सब कुछ खो दियाहै
तेलके चुपड़े बैलोंके सींग
और उनके बीचसे उगता हुआ सूर्य
और उनकी पीठपर बनते हुए समकालीन भंवर

कितनी तकलीफदेह है यह संवेदना कि जिन्दगी हवन कीजाये ओर उसमें से जो धुआं निकले उसमें सूर्य की किरण झाड़की सींकसे बढ़िया' न मांगी जासके।

जगूड़की कविताका अपना 'क्लैसिकल' है जहां 'रात उछलकर पेड़ोंपर, रास्तोंपर, मकानोंपर···हर कहीं पड़तीहै'। 'हर साल दो जंगलोंके बीच पिताकी तरह खड़ा आसमान दिखताहै' और 'छोटे-छोटे खेतोंतक नहर मांकी तरह दौड़तीहै'।

जगूड़ी यथार्थको नयी फेण्टेसी देनेवाले कवि हैं। ये फेण्टेंसियाँ कहीं-कहीं तो उक्तियोंको मंत्र जैसा असरदार बना डालतीहैं। जब जगूड़ी कहतेहैं कि 'नदियां कहींभी नागरिक नहीं होतीं और पानीसे ज्यादा कठोर और काटनेवाला कोई दूसरा औजार नहीं होता' तो अनुभवको प्रमाणित करनेवाले शब्द-शोधक द्रष्टाओंका ख्याल आता है। संस्कृत साहित्यमें ऐसी शैलियां खोजीजा सकतीहैं जो हिन्दीमें एकदम विरल जैसी रहीहैं।

'इस यात्रामें' संकलित कविताओंकी व्यञ्जकता उसकी भाषाके अन्वयमें निहित है। प्रकृति-चित्रणका कितना अनूठा उदाहरण है—

विस्तरके मुहानेपर / जंगली नदीका शोर हो रहाहै/ और थपेड़े/ मकानकी नींवसे / मेरे तकिये तक आरहे/ ××× मेरे उठतेही /खिड़कीके रास्ते / कमरेसे हाथ मिला रहाहै /गांवका आकाश।

'इस यात्रामें' की सभी रचनाएं एकदम नये चाक्षुष-बिम्बोंको प्रत्यक्ष करती हैं। ... लिक-संस्कृतिका कितना सुन्दर बिंब, पूर्ण संवेदनाके साथ उकेरा गयाहै --

जब कोई मेला जुड़ेगा / लोग नाचेंगे / चांदी-सोनेके देवताको / हर बूढ़ा कंधा देगा / मैं तुम्हारी अनुपस्थिति पर / छत्रकी झालरका हिलना / देखता रहूंगा ।

इस तरहके तमाम दृश्यों और दृश्य-बिंबोंसे भरी हुई कविताएं इस संकलनमें हैं। कुंवारी 'संवेदना' की प्रेषणीयताका सहज रूप है—

यह आषाढ़/जो तुमने मांके साथ रोपाथा / हमारे खेतोंमें / घुटनोंतक उठ गयाहै ।

समकालिक कविताके पाठकों, अध्येताओं और नौसिखियोंके लिए यह संकलन संग्रहणीय है तो क्लैसिकल और शास्त्रीय कविताके मर्मज्ञोंके लिएभी उसकी उपादेयता समान रूपसे है। □□

संजीवनी[१]

[खण्ड काव्य]

कवि : सोहनलाल द्विवेदी
समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय.

समीक्ष्य कृति पौराणिक गाथा (कच-देवयानीकी कथा) पर आधारित एक खंड काव्य है। 'वासवदत्ता' 'कुणाल गीत' आदिकी काव्य परंपराका विकास 'संजीवनी' में दिखायी पड़ताहै। कच-देवयानीकी गाथा भारतीय वाङ्मयकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है जिसे आधार बनाकर कविने महान् चरित्रोंकी अवतारणा और मानवीय आदर्शोंकी प्रतिष्ठापनाका स्तुत्य प्रयास कियाहै। 'संजीवनी' पढ़कर प्रसादके नाटक 'चंद्रगुप्त' का वह गीत बरबस याद आजाताहै : 'तुम कनक किरणके अंतरालमें लुक छिपकर चलतेहो क्यों'..., जो छायावादी प्रेम, सौंदर्य बोध आदिका अप्रतिम उदाहरण है। जिस प्रकार प्रसादने 'कामायनी' को मानव मनके विकासके विविध सोपानों और घटकोंको दृष्टि पथमें रखकर अलग-अलग सर्गोंमें (चिन्ता, श्रद्धा, स्वप्न, संघर्ष, मन, इड़ा, आदि) विभाजित कियाहै, उसी प्रकार कविने 'संजीवनी' को भी इन सर्गोंमें बांटा हैं स्वर्ग, संघर्ष, प्रयाण, तपोवन, संशय, प्रतिशोध, सिद्धि, अनुताप, अंतर्द्वन्द्व, अभिशाप और विराम। 'कामायनी' मानव मनके विकासकी यात्रा है, तो समीक्ष्य कृति उच्च चरित्रादर्श और देव-विषयक काव्य है। कहना नहीं होगा कि इस काव्यमें कथाके सहज प्रवाहके साथ मानवीय संकल्प, संघर्ष, प्रयत्न, आस्था और प्रेमका भव्य और महिमामंडित रूप व्यंजित हुआहै।

कविने प्रतीकके माध्यमसे विराट् सत्यकी अभिव्यंजना कीहै। शनैः शनैः प्रतीकके द्वारा जीवन-दर्शन स्पष्ट होकर विरामकी अवस्थापर पहुंच जाताहै--

'कच ब्रह्मचर्य संकल्प शक्तिका बल है,
कामना देवयानीका मन दुर्बल है।'
'जो त्याग प्रेयको श्रेय वरा करतेहैं,
वे कच हैं, जो ध्रुव ध्येय धरा करतेहैं।'

(विराम, पृ. ७५)

श्रेय और प्रेयका द्वन्द्व चिरंतन है। कचका देवलोकसे दानवलोकमें प्रयाण श्रेयकी सिद्धि हेतु हुआहै, जिसे देवयानीका आकर्षण, प्रणय निवेदन गति तो देताहै, पर उससे बाधाभी होतीहै। अंततोगत्वा श्रेय और प्रेयके वरणमें कचको श्रेयका वरण करना पड़ताहै, देवयानीका मोह त्यागना पड़ताहैं। कच कहताहै 'इष्ट था मेरा विद्या प्राप्ति, / साध्य करना जो रहा असाध्य,/ लोक-कल्याण, शोक-निर्वाण, / सतत गुरुवर मेरे आराध्य, ('अभिशाप' सर्ग, पृ. ७२) कवि इस कथनकी देवयानीपर हुई प्रतिक्रियाका कितना जीवंत और मनोवैज्ञानिक चित्र आंकताहै 'भृकुटीमें बंक, अधरमें कंप,/प्रताड़ित प्रेम बना विद्रोह/क्रोधमें ढह जाताहै बोध,/असह प्रियका जब बने विद्रोह (अभिशाप, पृ. ७३)। साथही भयंकर शाप 'करे जबभी आवाहन मंत्र, / व्यर्थ हो तेरा स्वर-संधान / योगके योग्य न हो तू कभी,/ प्रतिष्ठित हो न मृतकमें प्राण ?' (अभिशाप, पृ. ७३)

इसका काव्य संसार इतना मोहक और मादक है कि मनको बांधे बिना नहीं रहता, हृदय विरमता चलताहै, साथही एक अनुरणन छोड़ जाताहै। एक ओर स्वर्गके अपार वैभव और सुखका चित्रण, दूसरी ओर लगे हाय असुरोंके कारण पल-पल बढ़ती शंका चिंता—'घिर गयी पलकमें प्रलय घटा। उल्लास हास सारा सिमटा,/ वासंती दृश्य हटा, / सबका न समय रहता समान

---

१. **प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ७५; क्रा. ८३; मूल्य : १५.०० रु.।**

(स्वर्ग, पृ. १२) और 'संघर्ष' सर्गमें देवयानीसे अनुरोध है कचका दृढ़ संकल्प 'मैं उठा लूंगा हथेलीपर/ निखिल ब्रह्मांड,/चूर्णकर दूंगा दनुज-कुल--/ रक्तपूरित खंड' (पृ. १९) ।

इसका काव्य-वैभव, देखतेही बनताहै । लगताहै कवि समाधिकी अवस्थामें पहुंच गयाहै । देवतागण कचको जिस प्रकार आशीर्वाद देतेहैं, उसका बिंब विधान और प्रकृतिमें मानवीकरण मनको मुग्ध किये बिना नहीं रहते उषा लेकर के कुंकुम थाल,/ करे चर्चित केशरसे भाल, निशासे नक्षत्रोंकी माल / सजाये दीपावलिकी भाल, (पृ. २३) । सांसरिक पीड़ाको हरनेके लिए नीले बादल की छांह और मनके उत्साह देख दुर्गम राहके सुगम होनेकी कल्पना कितनी कोमल है, प्राणदायिनीभी— जहां हो भव आतपकी वाँह, / नील नीरद बन जाये छांह, / बढ़ाये पग मनका उत्साह, / सुगम बन जाये दुर्गम राह' (पृ. २३) । यह महादेवीकी पंक्तियोंकी अनायास याद दिला देतीहै ''मेरे प्रियतमको भाताहै तमके पर्देमें आना / ओ नभकी दीपावलियो तुम क्षणभर को बुझ जाना ।''

मनोवैज्ञानिकोंका दावा है कि चारों ओरसे संकटापन्न होनेपर ही बुद्धिका वैभव और चरित्रका उत्कर्ष दिखायी पड़ताहै । कविने ऐसी स्थिति उत्पन्नकर देवयानीको इस निकषपर परखाहै । कचको क्षार-क्षार कर मदिराके साथ पिलाया गयाहै शुक्राचार्यको । देवयानी अपने प्रेमी सहचरके लिए इतनी अधीर है कि वह चाहतीहै कि संजीवनी विद्यासे कच जी जाये और उनका पेट फाड़ निकल आये ।वह करुणा जगानेके लिए अपनी मां को भी याद करतीहै—'न जननीका स्नेहांचल आज,/अंक भर देती मुझे सहाय'(पृ. ५५) शुक्राचार्य मानों परीक्षार्थ पूछ बैठतेहैं—'तुम्हारी अभिलाषा क्या यही,/ पिताकी ममताका उपहार,/ तुम्हें प्रिय मिले, अप्रिय होगया,/तुम्हें अपनाही जनक उदार ?' (पृ. ५६) । इस निकषपर शत-प्रतिशत खरी उतरती है देवयानी--'नहीं,यह नहीं, यह नहीं तात! घोर पातक एकांग विचार,। तुम्हें तजकर न चाहिये स्वजन, /साक्षी पारब्रह्म साकार । (पृ. ५६) ऐसेही भव्य आदर्श चरित्रके अप्रतिम उदाहरण हैं शुक्राचार्य, देवयानी, कच । आदर्श पिता गुरु, आदर्श पुत्री प्रेमिका और आदर्श शिष्य, प्रेमी, पर श्रेयके लिए प्रेयका त्यागी—इन्हींके बीच हमारी जीवनधारा अबाध गतिसे बहीजा रहीहै । 'संजीवनी' जो वस्तुतः मृतकको जिलानेकी विद्या है, जिजीविषाकी प्रतीक बनकर आयीहै । कच क्या सुर, असुर, सभी इस विद्याकी पानेको संघर्षरत हैं···अपने अस्तित्व और अस्मिताकी रक्षाके लिए किये गये सारे क्रिया कलापकी प्रतीकहै, संजीवनी । पौराणिक कथाके कलेवरमें तत्कालीन समस्याओंको संजीवनी देना कविका अभीष्ट है ।

ईसमें अतिशयोक्ति नहीं कि कवि काव्य साहित्य का चर्चित हस्ताक्षर है और समीक्ष्य कृति इसकी संभावनाओंकी साक्षी है । पुस्तककी साज-सज्जा, छपाई, आवरण चित्रात्मकता मनोमुग्धकारी है । □

वनबाला[1]

[खण्ड काव्य]

कवि : ललन तिवारी
समीक्षक : महेशचन्द्र पुरोहित.

कवि श्री तिवारीकी प्रस्तुत कृति एक छन्दयुक्त खंड काव्य है । यह तीन सर्गोंमें बिभक्त है । इस कृतिमें कविने बनबालाके माध्यमसे आदिवासी नारियोंके शोषण का सजीव चित्रण कियाहै । वनबालाओंका शहरोंकी ओर आकर्षित होकर आना और फिर उनके श्रम और शरीरका शहरी सभ्यता द्वारा शोषणही इस कृतिकी कथाका आधार है । कृतिके कथा तत्त्वमें कहीं-कहीं शिथिलता होते हुएभी जिस मुद्देको कविने कथाके माध्यमसे उठायाहै, उसका निर्वाह कृतिके अन्ततक होताहै । यही कारण है कि आलोच्य खंड काव्य पाठककी सहानुभूति बरबसही आकृष्टकर लेनेमें समर्थ है ।

छन्दोंमें बेमेल तुकोंकी भरमार है, जैसे यदि दोगी मिट जायेगी, दीवाना—देना, अछूता—फीता, चली—हरि, मतवाला—कला, प्रतिनिधि—अनुभूति, निधि है—विधि ने है, अन्न—श्रीमन्, हाल—पुमान्, लीला—सिल सिला, देन—चैन, आदि । स्थान-स्थानपर लय भंगभी है ।

यद्यपि पृष्ठोंके अन्तमें कठिन शब्दोंके अर्थ दिये हुएहैं फिरभी काव्यमें ऐसे संस्कृतनिष्ठ शब्दोंका बाहुल्य है जिनका प्रयोग भाषाकी प्रकृतिसे मेल नहीं खाता । फलस्वरूप भाषामें जटिलता आनेके कारण वह अनेकों स्थलों पर सामान्य पाठकके अर्थ बोधसे परे रहतीहै ।

यदि कवि भाषा और छन्दके उपरोक्त दोषोंसे बचता

---

१. प्रकाशक : भारती साहित्य परिषद्, बोकारो इस्पात नगर । पृष्ठ : ७०; डिमा. ८२; मूल्य. ६.०० रु. ।

हुआ समाजके ऐसेही संवेदनशील मुद्दोंको अपनी रचनाओं के माध्यमसे उठाता रहे तो वह अधिक प्रभावशाली कृतियां प्रस्तुत करनेमें सक्षम है— इसमें कोई संदेह नहीं। यह खण्ड काव्य उसके कविकर्मके भविष्यके प्रति आश्वस्त करताहै।

पुस्तकका मूल्य कम रखनेके लिए प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं। □

अनुभूति[1]

कवि : कैलाशचन्द्र अग्रवाल

समीक्षक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

लब्धप्रतिष्ठ गीतकार एवं छन्दबद्ध कविताके उन्नायक साधक कवि श्री कैलाशचन्द्र अग्रवालके दो अनुपम गीत-संग्रहों—"सुधियोंकी रिमझिममें" तथा "प्यारकी देहरीपर' की परम्परामें यह मुक्तक-संग्रह 'अनुभूति' निःसंदेह हिन्दी-काव्यकी लोकप्रिय मुक्तक-परंपराकी अनुपम कृति कहीजा सकती है। प्रख्यात कवि डॉ. रामकुमार शर्माके शब्द मैं यहां उद्धृत करना अपना दायित्व मानताहूं—"यह 'अनुभूति' आकाश-गंगाकी भांति हृदयाकाशपर छा जातीहै। प्रत्येक मुक्तक भावनाका एक संसार है,जिसे अनुभूतिकी रश्मियां आलोकित करतीहैं।"

प्रस्तुत मुक्तक-संग्रहमें कविवर श्री अग्रवालके जो ३५१ मुक्तक संग्रहीत हुएहैं, वे विषयगत विविधताके कारण जहां कविके गहन चिन्तन एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षणका परिचायक बनतेहैं, वहीं भाषाकी कसावट, लाक्षणिकता, आलंकारिकता एवं सहज बिम्बात्मकताके कारण अत्यधिक संप्रेषण-क्षमताभी उनमें आगयी है। इन मुक्तकों में एक ओर जहां कलात्मक दृष्टिसे भाव-भाषा और शिल्पकी अनूठी त्रिवेणीका संगम है; वहीं इन्द्रधनुषके मोहक सात रंगोंकी भांति इन मुक्तकोंमें मुख्यतः चिन्तन की सात धाराएं प्रवाहित हो रहीहैं; जो ये हैं : (१) प्यारकी निश्छल-पावन अभिव्यक्ति (२) सामाजिक मूल्य (३) नैतिकता (४) राष्ट्रीय-चेतना (५) मानवता (६) काव्य-तत्त्व एव (७) प्रकृति-सौन्दर्य!

'अनुभूति' के मुक्तकोंकी छन्द-योजना भावानुरूप चलतीहै जिससे पाठक सहजही अभिभूत हो उठताहै। प्यार तो जैसे 'अनुभूति' का प्राणतत्त्वही है! कविका दृष्टिकोण देखिये—

"प्यारका अपना स्वरूप विराट् है।
उच्चतम इसका प्रशस्त ललाट है॥
कब किसीके सामने यह झुक सका?
प्यार सचमुचही स्वयं सम्राट् है॥" (पृष्ठ-१५)

वस्तुतः कवि प्यारके उदात्त रूपका पक्षधर है! उसका चिन्तन मानताहै—'प्रीतिही संसारमें है साधना सबसे बड़ी', लेकिन कवि इस प्रीतिको सामान्य नहीं मानता, बल्कि कह उठताहै—

"हर हृदयको प्रीतिकी अनुभूति होपाती नहीं।
हास पुतलीमें लिए हर आंख रो पाती नहीं।"(पृ.८)

प्यार निःसर्गका अनुपम वरदान है।

"मिल नहीं पाती सभीको दर्दकी सौगात!
दृगोंको सबके मिला करती नहीं बरसात!
उर-सरोवरमें न हो जबतक सलिल भरपूर—
प्यारका तबतक खिला करता नहीं जलजात!!"
(पृ. ३)

'अनुभूति' के मुक्तकोंमें मात्र कल्पना-कौशल नहीं है, प्रत्युत कवि महत्तर सामाजिक-मूल्योंकी स्थापनाके प्रति सचेष्ट लगताहै! यों भी, 'मुक्तक' की शैली इस दृष्टिसे संभवतः सर्वाधिक उपयुक्त है! कवि एक यथार्थ को जब वाणी देताहै, तो वह गहरे जाकर कुरेदताहै—

"हृदयसे भी हृदयको मिलती नहीं ममता यहां!
खोजनेपर भी कहीं मिलती नहीं समता यहां!
दीखता कोई नहीं चिन्तित किसीके कष्टसे,
मनुजका मन वासनाओंमें सदा रमता यहां!"
(पृ. ११)

लेकिन इस यथार्थको कवि-हृदय स्वीकार कैसे करे? वह तो एक उच्च आदर्श और सनातन-समाज-सत्य अपनी वाणीसे मुखर करताहै—

"लक्ष्यको पाना नहीं होता सरल!
स्नेह अपनेमें हुआ करता तरल!
मृत्युको जो मानता जीवन सदा;
मुस्कराकर पी वही सकता गरल!" (पृ. १४)

यही महनीय जीवन-दृष्टि तब मुखर होतीहै जब कवि कहताहै—'मनुजका जीवन स्वयं संघर्ष है'। समाजमें व्याप्त शोषण, उत्पीड़न और विषमताके प्रति कवि विलक्षण ढंगसे अपना रोष व्यक्त करताहै, जिसमें युग-

---

१. प्रकाशक : हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ. प्र.)। पृष्ठ : ८६; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

सत्य ध्वनित हैं—

"भड़कती अन्यायसे ही क्रान्ति है !
चेष्टा उसके दमनकी भ्रान्ति है !
जन हुए बलिदान हैं जब जब यहाँ,
विश्वको तब-तब मिली चिर शान्ति है।" (पृ. ३२)

राष्ट्र-चेतनाकी सार्थक अभिव्यक्ति कविके कई मुक्तकोंमें हुईहैं, यहाँ एक मुक्तक मैं उद्धृतकर रहाहूं—

"फूट आपसकी मिटाती देशको
आत्म-संयम हैं अपेक्षित क्लेशको !
है पुजारी शान्तिका केवल वही;
पी सके जो रोषके आवेशको।" (पृ. २८)

कवि कसौटी देताहै—'देशपर जो हो निछावर राष्ट्र-उन्नायक वही'। तब सुखद लगताहै, जब कवि मुक्तकों के माध्यमसे 'जन चेतना' जागृतकरके परिवार-कल्याणके प्रति आस्था जगाताहै। एक मुक्तक द्रष्टव्य है—

"भोगतीहै अधिक जनसंख्या कभी बिखराव !
सामने इसके रहा करता सदैव अभाव !
सरल होपाती नहीं इसकी कठिन आपूर्ति,
रह न पाता राज्यके धन-कोषमें ठहराव ! पृ. (६७)

इस प्रकार 'अनुभूति'के मुक्तकोंमें जहाँ प्यारकी उदात्त अभिव्यक्ति हैं, वहीं सामाजिक, नैतिक एवं राष्ट्रीय-मूल्योंकी स्थापनाका स्तुत्य एवं सफल प्रयास भी कविने कियाहै। दर्द है, तो जागरणकी महौषधिभी साथ कवि देता चलताहै। निःसंदेह, यह मुक्तक-संग्रह हिन्दीकी 'मुक्तक विधा' को सशक्त देन कहीजा सकती है। □

एकलव्य[1]

कवि डॉ. शोभानाथ पाठक
समीक्षक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र.

प्राक्कथनमें लेखककी उद्घोषणा है कि---'अतीतके इस अछूते प्रसंगको काव्यात्मक शैलीमें गूँथकर मनीषियों के सम्मुख प्रस्तुत करनेका मैंने प्रयास कियाहै कि नीर क्षीर पारखी विद्वज्जन इस समस्याके समाधानसे आजके भारतीय प्रजातन्त्रको संवारें।······इस काव्यके सृजनमें मैंने अपने बीस वर्षीय भोगी क्षेत्रके अनुभवका सम्बल, पुरातन कथानकमें सँजोकर प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है। यह उद्घोषणा कविके द्वारा न भी होती, तोभी आचार्य द्रोण एवं एकलव्य आजके सन्दर्भमें बहुत बड़े प्रश्नवाचक चिह्न लेकर उपस्थित हुएहैं। महाभारतकालीन ही नहीं पूरे भारतीय पुराणेतिहासके चरित्रोंको आजके मनीषी कवि लेखकोंने आजकी दृष्टिसे देखाहै। 'वर्तमान' विगतको सदासे अपने प्रतिमानोंपर परखता रहाहै। इस दिशामें 'विचार कविता काल' में पुराने मिथकोंको सामयिक जीवनकी ज्वलन्त समस्याओंमें सम्पृक्तकर अथवा आधुनिक विचार प्रश्नको मिथकीय पात्रोंके साथ जोड़कर इतिहास-पुराणके प्रसंगोंकी सम्यक् परख हुई है। एकलव्यके साथ द्रोणकी आचरण-पात्रता उसी परख क्रममें एक सार्थक अभिव्यक्ति है।

अबतक एकलव्य अपनी निष्ठा और त्यागके लिए सुधी-सहृदयजनोंकी संवेदना प्राप्त करता रहाहै और करता रहेगा। प्रमुख बात तो द्रोणकी है, कि गुरु होकर भी---'द्रोणचार्य दिव्य पुरुषोंमें/महायशस्वी ज्ञानी /कौरव पांडवके शिक्षक वह / क्षत्रिय कुल अनुगामी /' कैसे इतने निर्ममहो गये ? जब इतने संकीर्ण होगये ? 'गुरु चरणोंमें सब कुछ अर्पित स्वयं समर्पित मैं हूं /क्या आतिथ्य करूं लज्जित हूं, गुरूसे मैं गर्वित हूं /'········'धन्य धन्य एकलव्य तुम्हीं हो अनुपम शिष्य हमारे / दायें करका काट अगूंठा / दे दो बनकर न्यारे /' 'पुलक हुआ रोमांचित बालक / तीक्ष्ण कटार निकाला। काट दिया तत्काल अंगूठा, गुरुचरणोंमें डाला।'

'एकलव्य' के कविने द्रोणके गुरुद्वारा क्रूरतम व्यवहारको, गुरुके प्रति निष्ठापर हुए वज्राघातको एवं अध्यापकके मनकी पीड़ाको झेलाहै और प्रतिकारमें जन्मी मानसिकताको आधार बनाकर मानवीय संवेदनासे जोड़ाहै। गुरूभी पहले मनुष्य है, फिर गुरुत्वका अधिकारी। इस पूरी 'प्रतिशोधकी वृत्तिके पीछे निर्धनताकी अधःपतित मानसिकताका कारण बताताहै 'द्रोण! तुम्हें धिक्कार बहुतहै, व्यर्थ जन्म है तेरा / ऐसे अधम अभागेके घर, प्रतिफल रहा अन्धेरा /'···'पिता पुत्रकी दुग्ध साध, कर सका न पूरी / पौरुषको धिक्कार जहाँ इतनी मजबूरी /'···'द्रोण दर्दसे बहुत दुखी थे, गमका गरल पियेथे / अपमानोंसे आहत होकर, धनकी साध लियेथे /' वास्तवमें भूखने निर्धनताने द्रोणकी मानसिकता को तोड़ाथा, जिसके दंशको वे गुरुत्व पाकरभी त्याग

1. प्रकाशक : राजपाल एन्ड संज, कश्मीरीगेट, दिल्ली-६। पृष्ठ : ६०; का. ८३; मूल्य : १२.०० रु.।

नहीं पायेथे। अपने एकमात्र शिशु पुत्र अश्वत्थामाको दूधके स्थानपर 'आटेका घोल' देकर जो उन्होंने अपने आत्मीयके प्रति कपटाचरण किया और अपने सहपाठी मित्र द्रुपद द्वारा, राजा बन जानेपर जो उनका अपमान हुआ—'राजा रंक मित्रता, कैसे संभव होसकतीहै/ तुम्हें अनर्गल इस प्रलापसे, शर्म नहीं लगतीहै।' एक स्वाभिमानी शिक्षकको जो ठेस लगी, उस ग्रन्थिसे उनका व्यक्तित्व कभी मुक्त नहीं होपाया। लगताहै कि मानव-मनोग्रन्थिकी उसी दारुण छायामें उन्होंने एकलव्य का अंगूठा मांग लियाथा और द्रौपदीके 'चीर हरण' पर राजसभामें मूक दर्शककी तरह बैठे रहना द्रुपदसे प्रतिशोध लेनेका ही परिणाम था।

वास्तवमें समीक्ष्य रचना 'एकलव्य' किशोरोंके मनको ही नहीं सुधीजनोंकोभी 'एकलव्य घटना' का तर्कसंगत आधार प्रस्तुत करती। प्रस्तुत रचना यहभी बतातीहै कि आजभी 'भील समुदाय' शर-सन्धानमें अपने अंगूठेका प्रयोग नहीं करता, अंगुलियोंसे ही लक्ष्य बेध करताहै। अपने पूर्वज 'एकलव्य' को भील जातिकी ओरसे किये गये इस संकल्पसे घटनाकी ऐतिहासिकता और जीवन्तता सिद्ध होतीहै। साथही 'छुआछूतकी धारणा' देशकी सुधाको पीकर किस प्रकारसे आचरणमें विषवमन करती रही, इस व्यंजनाको लेखकने आजके पाठकतक पहुंचायाहै जिससे कि भावी पीढ़ी इस दुष्परिणामसे सावधान रहे। लेकिन, आधुनिकताकी झोंकमें 'द्रोणको बंधुआ मजदूर कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी' यह कहना लेखककीय अपरिपक्वताको ही द्योतित करताहै।

कुल मिलाकर रचना पठनीय और स्कूली पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने योग्य है।□

हास्य व्यंग्य

कागजी सुल्तान[1]

उपन्यासकार : डॉ. सुदर्शन मजीठिया

समीक्षक : (१) डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी

(२) डॉ. महेन्द्र भटनागर

[१]

व्यंग्य चेतनासे सम्पन्न उपन्यासोंको अब सीधे-साधे व्यंग्य उपन्यास कहना शास्त्र-स्वीकृत हो गयाहै। हिन्दी में ऐसेही व्यंग्य उपन्यासोंकी कड़ीमें डॉ. सुदर्शन मजीठियाका पहला व्यंग्य उपन्यास 'कागजी सुल्तान' विसंगतियोंके दर्पणके रूपमें प्रस्तुत हुआहै। काल्पनिक कथा में यथार्थाभासका प्रखर प्रस्तोता यह उपन्यास जम्बूद्वीप के भारतखण्डकी राजनीतिक सच्चाइयोंका आईनाहै। प्रचार सत्य और वस्तु सत्यका अन्तराल कितनी सफाईके साथ सत्ताका समर्थन करताहै और जनताको छलताहै, यह 'कागजी सुल्तान'की इस आत्मकथासे स्पष्ट है। व्यंग्यकार डॉ. मजीठियाने साम्प्रत राजनीतिक परिदृश्यको पूरी सतर्कतासे उपस्थित कियाहै इस उपन्यासमें शैलीकी उड़ानें कम हैं,लेकिन प्रहारकी हलचलें असंख्य हैं।

'कागजी सुल्तान' में सुल्तान आगा हैदर जलालुद्दीन शाह फकीरे आजमकी राजनीतिक दास्तान है जिन्हें तीन सितम्बरकी रातमें विदेशियोंने सुल्तनत सौंपदी और प्रजातंत्रकी स्थापना हुई। सुल्तान फकीरे आजमके घुड़सवार रिसालेका इन्चार्ज रुद्रप्रतापसिंह पहले तो सीधा कमांडर इन चीफ बना और इस ओहदेसे हटा तो सीधा नेता बन गया। उन दिनों देशपर महामंत्री रामभरोसे की लोकशाही चल रहीथी। एक दिन सुल्तानने देखा कि रामभरोसेके मंत्रीमडलमे एक मंत्री तो बिलकुल पागल

१. प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद-३। पृष्ठ : २००; क्रा. ८३; मूल्य : २०.०० रु.।

है जो बातें करता-करता सहसा कपड़े उतार लेताहै और जैसेही उसे नग्नताका बोध होताहै--वह कपड़े पहन लेता है। और,एक दिन इस अनोखे भ्रष्ट मंत्रीमंडलका पतन हो गया। नये चुनाव हुए तो एकबार फिर रामभरोसे महामंत्री बन गये। भ्रष्टाचार और विसंगतियोंके खिलाफ जब आंदोलन तेज होगये, तब देशमें इमरजेंन्सी लागू कर दीगयी।महामंत्रीने सुल्तानको बताया कि इमरजेंन्सी में लोकतंत्रकी आधी हवा निकाल दी जातीहै, सिर्फ टायर रह जाताहै। दूसरे सालसे पालतू कुत्तेकी तरह रहनेवाली इमरजेंन्सीका बर्त्ताव जंगली सुअर जैसा होगया और जनतामें बहुत क्षोभ छागया। नये चुनाव हुए तो रामभरोसे हट गये और रुद्रप्रताप सिंह महामंत्री बन गये। इस नये दौरमें इमरजेंन्सीके दोषियोंको अपमानित किया गया और महामंत्री रुद्रप्रतापको मूत्र-प्रेम प्रचारित हुआ। सुल्तान फकीरे आजमके परिवारमें लोकतंत्रकी लहर आयी तो एकबार फिर चुनाव हुए। इस बार महामंत्री रुद्रप्रतापसिंहकी, बड़ी बेगम और शाहजादा सबकी करारी हार हुई। प्रचण्ड बहुमतके साथ एकबार फिर रामभरोसे महामंत्री बने। इस बार रामभरोसेने अपने आपको राष्ट्रपति बनानेकी तिकड़में शुरू कीं, तो सुल्तान फकीरे आजमने स्वयंको राष्ट्रपति घोषित कर दिया। सुल्तानके अपने किलेसे राष्ट्रपति निवास प्रयाण करनेके दृश्यके साथ यह उपन्यास समाप्त हुआ।

'कागजी सुल्तान' का यह कथाफलक सूचित करताहै कि डॉ. सुदर्शन मजीठियाने आजकी राजनीतिक गतिविधियोंको ही उपन्यासका जामा दियाहै। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिमें उत्थान और पतन, चुनाव और गुटबाजी, सत्ताप्रेम और नौकरशाहीके जितने नाटक हुए हैं, इन सबको समेटनेकी कोशिश २०८ पृष्ठोंके इस उपन्यासमें की गयीहै। उपन्यासकारने इसी क्रममें विसंगतियों और राजनीतिक स्खलनोंकी व्यापक परिक्रमा कीहै। सुल्तान फकीरे आजमका अलिखित सविधान मौजूदा भारतीय जनजीवन और व्यवस्थाका ही परिचायक हैं। कुत्ता-प्रेम, पीत पत्रकारिता, आश्वासनी भाषण, चढ़ती हुई कीमतें और प्रेसकांफ्रेंस आदिकी सच्चाइयोंके सहारे व्यंग्यको सबलता मिलीहै। वस्तुत: 'कागजी सुल्तान' के फकीरे आजमका हर आचरण और हर ऐलान विद्रूप एवं विसंगतियोंकी पेशकश करताहै। उद्घाटन मंत्रालयका प्रारम्भ, चौर्य विश्वविद्यालयकी शुरूआत, हरसाल एक सालकी छुट्टी करनेका फरमान और अंतर्राष्ट्रीय चमचा सम्मेलनका आयोजन उन आश्चर्यकारी आचरणोंमें से कतिपय उल्लेखनीय अजूबे हैं जिनसे सुल्तानका राजनीतिक जीवन लिपटा हुआहै। इसी कारण वे पेट्रोलकी जगह 'मूत्रमेल' और बिजलीकी जगह शोर शक्तिके उपयोगकी अपीलभी करतेहैं। समूचे उपन्यासमें समसामयिक राजनीतिक सामाजिक परिदृश्यका व्यंग्य मिश्रित जायजा कथाकारने लियाहै। इधरके व्यंग्य उपन्यासोंके परिप्रेक्ष्यमें अपेक्षाकी जासकती थी कि डॉ. सुदर्शन मजीठियाकी कलम अपने व्यंग्य-उपन्यासके लिए शैलिकीय धरातलोंका व्यापक विनियोग उपस्थित करेंगे। 'मूत्रोल' (पृ. १२६) एक नया शब्द है, अन्यथा व्यंग्यकारकी भाषा सपाट और सीधीहै। वक्रताको उपन्यासकारकी सर्जनामें स्थान नहीं मिलाहै। आशाहै, 'कागजी सुल्तान'के रचयिताकी कलम अपने परवर्ती व्यंग्य उपन्यासोंमें अधिक हरजाई बनेगी। प्रस्तुत उपन्यासका व्यंग्यानुभवभी कम तीखा और स्पर्शी नहीं है।

[२]

रचना कागजी सुल्तान उर्फ हिज हाईनेस द फकीरे आजमका हैरत-अंग्रेज किस्सा है। यह सल्तनत के उस सुल्तानकी कहानी है, जहां गुलामीके बाद फिरंगियोंकी मेहरबानीसे प्रजातंत्रका आरोपण हुआ। रचना वस्तुत: उपन्यास नहीं है। किन्तु उसमें एक विशिष्ट कथा है, उस कथाका क्रमिक विकास है और नाना तिकड़मोंसे प्राप्त फल हैं। रचनाकी पृष्ठभूमि राजनीतिक है। सम्पूर्ण कथानक, प्रजातन्त्र, चुनाव, सत्ता और राजनीतिक छल-प्रपंचोंपर आधारित है। कृति समसामयिक इतिहाससे सरोबार है। व्यंग्य-चित्र-रचनाकी कला 'कागजी सुल्तान' में द्रष्टव्य है। व्यंग्य-चित्रकार अपने उद्देश्य, मन्तव्य, आक्रोश और आक्रामक चेतनाका जिन साधनों और युक्तियोंसे प्रतिफलित करताहै, वह सब प्रस्तुत कृतिमें निहित है। कृतिका व्यंग्यार्थ ही प्रमुख है, यद्यपि आदिसे अंततक हास्यभी विद्यमान है। लेखकने बड़ी निर्भीकता और स्पष्टतासे अपने युगका खाका खींचा है। सत्ता-दल और राजनीतिज्ञोंकी कलई खोलीहै उनकी विरूपताओंकी खिल्ली उड़ायीहै। किन्तु सत्ता अन्धी होतीहै। राजनीतिज्ञ चिकने घड़े होतेहैं। उनपर कोई असर नहीं पड़ता। व्यंग्य चित्र घायल जनताके घावों पर मरहमका काम जरूर करतेहैं। उनके त्रस्त मनका मनोवैज्ञानिक उपचारभी वे करतेहैं। शोषितों-पीड़ितोंके

विश्वासोंको बल पहुंचातेहै तथा सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनके लिए जमीन तैयार करतेहैं। 'कागजी सुल्तान' के लेखकमें राजनीतिक सजगता, सूझ-बूझ और सार्थक भाषिक व शाब्दिक चमत्कार उत्पन्न करनेकी क्षमता भरपूर है। उसके व्यंग्य-वाण तेज व तीखे हैं। वे सही निशानेपर सीधे प्रहार करतेहैं। 'कागजी सुल्तान' सशक्त जानदार और अत्यधिक रोचक रचना है।□□

व्याकरण

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिंदी भाषा व्याकरण[1]

लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'
समीक्षा : डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल.

प्रस्तुत कृति मेरठ विश्वविद्यालय द्वारा स्व. आचार्य किशोरीलाल वाजपेयीकी पुण्य स्मृतिमें आयोजित व्याख्यानमालाके अन्तर्गत दिये गये डॉ. अम्बाप्रसाद सुमनके तीन लिखित व्याख्यानोंका संग्रह है। लेखकने तीनों निबन्धोंमें तटस्थ दृष्टिसे आचार्यजीकी मौलिक स्थापनाओंको प्रस्तुत कियाहै। साथही उनके व्यक्तित्व कृतित्वका उद्घाटनभी कियाहै।

प्रथम निबन्ध 'आचार्य किशोरीलाल वाजपेयीका व्यक्तित्व एवं उनकी हिन्दी सेवा'---में आचार्य वाजपेयीके जीवन दर्शनको अनेकशः प्रमाणोंके साथ प्रस्तुत किया गयाहै। उनके व्यक्तित्व दर्शनके लिए "व्याकरणके सिद्धांत और शब्द निरुक्तिपर अंगदका-सा पैर जमानेवाले, अपनी बातको मनवानेमें कटिबद्ध — इन सबके समष्टिगत बिम्बात्मक स्वरूपका नाम है आचार्य पण्डित किशोरीदास वाजपेयी" द्रष्टव्य हैं (पृ.१४)।

आचार्यकी लेखनीसे लिखी गयी कृतियों---रस और अलंकार (१९३१) साहित्यकी उपक्रमणिका (१९३२), सुदामा नाटक (१९३८), ब्रजभाषाका व्याकरण (१९४५), राष्ट्रभाषाका प्रथम व्याकरण (१९४९) हिन्दी शब्दानुशाशन (१९५७), हिन्दी शब्द मीमांसा (१९५८), भारतीय भाषा विज्ञान (१९६८), तरंगिणी (ब्रजभाषाके दोहोंकी कविता-पुस्तक) और संस्कृति का पांचवां अध्याय, मेरे मौलिक विचार तथा 'ब्राह्मण सावधान' जैसी उनकी पच्चीस कृतियोंका उल्लेख किया गयाहैं (पृ. १५)। इसमें आचार्यजीके कई मौलिक विचारोंको संग्रथित किया गयाहै।

द्वितीय निबन्ध 'हिन्दी व्याकरणका इतिहास और आचार्य किशोरीदास वाजपेयी'में डॉ. सुमनने संस्कृत व्याकरणका परम्पराके साथ हिन्दीके सभी व्याकरणोंका संक्षेपमें परिचय कियाहै। संस्कृत-हिन्दीकी इस लम्बी व्याकरणिक परम्पराके संदर्भमें आचार्य किशोरीदास वाजपेयीकी व्याकरणिक स्थापनाओंपर यथायथ प्रकाश डाला गयाहै।

आचार्यजीका व्याकरणिक चिन्तन उनके व्याकरणके तीन ग्रन्थोंमें क्रमशः पुरस्सर हुआहै। ये ग्रन्थ हैं---ब्रजभाषाका व्याकरण, राष्ट्रभाषाका प्रथम व्याकरण और हिन्दी शब्दानुशासन। इन ग्रन्थोंमें संग्रथित आचार्यजीकी व्याकरण और हिन्दी स्थापनाओंका उल्लेख करते हुए लेखकने यथावश्यक अपना अभिमत दियाहै।

आचार्य वाजपेयीने ब्रजभाषाका व्याकरणकी भूमिकामें यहभी सिद्ध कियाहै कि ऐतिहासिक शब्द समूह हिन्दीमें तीनही प्रकारका माना जाना चाहिये (१) तत्सम, (२) तद्भव (३) देशज। हिन्दीमें अग्नि, जलाल, मजबूर कोट आदि तत्सग हैं। ये शब्द अपनी मूल भाषाओंसे हिन्दीमें ज्योंके त्यों आगयेहैं, अतः तत्सम। यदि संस्कृत, अरबी, फारसी अंग्रेजी आदि भाषाओंसे कुछ शब्द परिवर्तित होकर हिन्दीमें आते हैं, तो वे तद्भव कहे जायेंगे। मजदूरको हिन्दीमें मजदूर बोलेंगे, तो हिन्दीमें मजदूर तद्भव है। लेन्टर्नको हिन्दीमें लाल्टेन बोलते हैं, यह तद्भव है। उसी भाषामें जो बनेहैं देशज

१. प्रकाशक : कुसुम प्रकाशक, मुजफ्फरनगर। पृष्ठ : ३९; मूल्य : ८ रु.।

है। ठंडाई शब्द देशज है। मोटर साइकिलके लिए फटफटिया' देशज है (पृ. ३०)

आचार्य वाजपेयीजीका मत यह है कि जब वाक्यमें दो भिन्न लिंगी कर्त्ता हों तो क्रिया पुंलिग बहुवचनमें आनी चाहिये--जैसे कश्यप और अदिति प्रणाम करतेहैं। लिंग पर शासन पुमान्‌का है। 'हिरन वनमें घूमतेहैं--यहां एकशेष समासमें पुंलिग प्रधान है। हिरनियां इन्हीं हिरनोंमें समाविष्ट हैं (पृ. ३२)। विद्वान् लेखकने बड़ी सावधानी से उपर्युक्त स्थापनाओंके साथही आचार्यजीकी विभक्ति सम्बन्धी (पृ. २५) एवं क्रिया सम्बन्धी (पृ. २६) स्थापनाओंको स्पष्टतः व्याख्यायित कियाहै। लेखककी यह मान्यता बहुतही सार्थक है कि डॉ. ज. म. दीमित्सकी व्याकरण पुस्तक 'हिन्दी व्याकरणकी रूपरेखा' (१९६६) में भी क्रियापदोंकी ऐसी गहरी विवेचना नहीं हुईहै जैसीकि आचार्य बाजपेयीके हिन्दी शब्दानुशासनमें की गयीहै। हिन्दी शब्दानुशासन हिन्दीका महाव्याकरण है (प.२६)। इसी निबन्धमें आचार्यजीकी मान्यता---'आचार्य वाजपेयी अरबी, फारसी और अंग्रेजीकी हूबहू ध्वनियोंको हिन्दी शब्दोंमें प्रयुक्त करना स्वीकार न करते हुए उनका स्पष्ट मत था कि हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपिमें हमें कातिल, गालिब, जरूर, जोर, जबर, आदि शब्दोंको नीचे बिन्दी लगाये बिनाही लिखना चाहिये। इनके मत में डॉक्टर नहीं, डाक्टर लिखना शुद्ध था (पृ. २६)।' पुस्तकके लेखक हिन्दी व्याकरण और भाषाविज्ञानके स्वतः ख्यातिलब्ध विद्वान् हैं अतः इस संदर्भमें उनका अभिमत अपेक्षित था। मेरी दृष्टिमें आचार्यजीकी उपर्युक्त मान्यतासे सहमत होना संभव नहीं है। कारण कि हिन्दी वर्तनीके सम्बन्धमें अब यह निश्चय हो चुकाहै कि जिस प्रकार संस्कृतसे तत्सम शब्द 'तत्त्व' आदिको मूल रूपमें (अर्थात् जैसा संस्कृतमें है) अपनाया गयाहै, उसी प्रकारसे अरबी फारसी और अंग्रेजीके तत्सम शब्दोंको उसी रूप में ग्रहण करना चाहिये। अतः आचार्यजी द्वारा निर्दिष्ट अरबी फारसीके शब्दोंको देवनागरी लिपिमें लिखते समय उनके नीचे बिन्दी लगाना अपेक्षित होगा।

तृतीय निबन्ध 'हिन्दी-व्याकरणके क्षेत्रमें पं. कामता प्रसाद गुरु और आचार्य किशोरीदास बाजपेयी' में दोनों वैयाकरणोंकी व्याकरणिक मान्यताओंका तुलनात्मक विवेचन किया गयाहै। लेखकने पं. कामताप्रसाद गुरूकी कारक, लिंग और वाच्य संबंधी मान्यताओंकी और तुलनात्मक विवेचन करते हुए अनेक संदर्भोंमें यह प्रतिपादित कियाहै कि पं. गुरु द्वारा कीगयी भूलोंकी आचार्य बाजपेयीने संशोधित एवं परिष्कारत कियाहैं। गुरूजीकी व्याकरणिक परम्पराको आगे बढ़ानेका कार्य आचार्य बाजपेयीने किया। इस प्रकारके विवेचनोंके लिए समीक्ष्य कृतिकी पृष्ठ संख्या ३५, ३६, ३७, ३८ और ३९ द्रष्टव्य है। अपने इन विवेचनोंके आधारपर लेखक ने यह प्रतिपादित कियाहै कि पं. कामताप्रसाद गुरू हिंदीके व्याकरणके यदि मान्य व्यवस्थापक है, तो आचार्य किशोरीदास वाजपेयी उसके मान्य परिष्कारक (पृ. ३८)।

लेखकने भर्तृहरिको अष्टाध्यायीका टीकाकार बताया है। जबकि ऐसा उल्लेख अन्यत्र कहींभी नहीं मिलता। कदाचित् 'वाक्यपदीयम्' के स्थानपर लेखकने भूलसे अष्टाध्यायीका उल्लेख कर दियाहै। इसी प्रकार पृष्ठ-२७ और पृष्ठ ३७ पर कुछ मुद्रण संबंधी त्रुटियाँ होगयीहैं। इन अत्यल्प भूलोंके बावजूद यह कृति आचार्य वाजपेयीके व्यक्तित्व-दर्शन और उनकी व्याकरणिक मान्यताओंका परिचय कराने तथा भाषिक एवं व्याकरणिक चिन्तनको प्रोन्नत करनेमें पूर्णतः सक्षम है। □□

(पृष्ठ १ का शेष)

□ प्रकर सम्पादकीय

इधर कुछ समयसे समसामयिक विषयों और राष्ट्रीय महत्त्वके ज्वलंत प्रश्नोंपर 'सम्पादकीय' के रूपमें आपका सुचिन्तित और सतर्क अभिमत 'प्रकर'को एकमात्र एक पुस्तक-समीक्षावाली पत्रिकासे अलग स्वरूप देता जा रहाहै। 'प्रकर' की उपयोगिता पहचानी जाने लगीहै।

—डॉ. जवाहरसिंह, रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, काँचीपुर, इम्फाल.

'अपदस्थ हिन्दीका दिवस' सम्पादकीय हिन्दी साहित्य के अनुरागियोंकी आँखें खोल सकेगा, ऐसा विश्वास है।

—नीतीश्वर शर्मा 'नीरज', ढेकहाँ, काँटी, मुजफ्फरपुर (बिहार).

□ 'प्रकर', : स्वाधीनता दिवस अंक

डॉ. जवाहरसिंह, इम्फालसे लिखतेहैं: "यह अंक बहुतही उपयोगी और पठनीय बन गयाहै। महादेवी वर्माके संबंधमें इतनी ढेर सारी सामग्री एकही जगह उपलब्ध करानेके लिए धन्यवाद। सारी रचनाएं स्तरीय और प्रौढ़ हैं।" **डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी एवं भाषा विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय** ने लिखाहै: "इस अंकमें महादेवी वर्मा और चिन्तामणि भाग ३ पर अच्छी सामग्री है।"

अर्थ समस्या और नीति

भारतकी आर्थिक समस्याएं[1]

लेखक : डॉ. चंद्रदेव सिंह तथा अन्य
समीक्षक : डॉ. ओमप्रकाश मिश्र.

समीक्ष्य पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालयोंमें उच्चतम स्तरों तक हिन्दी माध्यमसे शिक्षा पानेवाले अध्येताओंके लिए लिखी गयीहै। भारतकी आर्थिक समस्याओंका विवेचन इन दो भागोंमें सामान्यत: विशद तथा आधिकारिक रूपसे किया गयाहै। जो विषय सामग्री दी गयी है वह भारतीय तथा विदेशी विद्वानोंकी श्रेष्ठ पुस्तकोंसे चयनित है। इस सम्बन्धमें प्रो. रोस्टो, प्रो. लीवेन्स्टीन, डॉ. चन्द्रशेखर, प्रो. डी. आर. गाडगिल, प्रो. सी. एन. वकील आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त समय-समयपर प्रकाशित होनेवाले सरकारी प्रकाशनोंसे भी सामग्री संजोते समय उपयुक्त सहायता ली गयीहै। कुछ अध्याय बहुत अच्छे ढंगसे लिखे गयेहैं जैसे भारतीय अर्थ-व्यवस्थाकी विशेषताएं, खाद्यान्न समस्या, सामुदायिक विकास योजना, विदेशी पूंजी, योजनाबद्ध विकास आदि। बिहार प्रदेशके छात्रोंके लिए 'बिहारकी अर्थ-व्यवस्था'नामक अध्याय अपनेमें पर्याप्त तथा विषय-वस्तु की दृष्टिसे समृद्ध है। पुस्तकमें आदिसे अंततक प्रयुक्त भाषा सहज और प्रवाहपूर्ण है। यथासम्भव पारिभाषिक शब्दावलीका प्रयोग किया गयाहै।

पुस्तकमें जो दुर्बलताएं हैं उनकी ओर संकेत कर देनाभी उचित होगा। पुस्तकमें कहीं-कहीं जो आंकड़े दिये गयेहैं, वे बासी पड़ गयेहैं। १९७६ में प्रकाशित पुस्तकमें १९७५ तकके आंकड़े जुटाये जा सकतेथे। इस समय जब हम १९८४के अन्तमें हैं तब पुराने आंकड़े उपयोगी कम भारस्वरूप अधिक लगतेहैं। भारतीय अर्थव्यवस्था, भारतीय आर्थिक विकास, भारतकी आर्थिक समस्याएं ऐसे विषय हैं जिनपर विद्यार्थी और शिक्षक अद्यतन (अप टू डेट) आंकड़े और नवीनतम सामग्री चाहतेहैं।

'सहकारी आन्दोलन : प्रगति एवं समस्याएं' नामक अध्यायमें सहकारिताका अर्थ भली प्रकार स्पष्ट नहीं किया जासका। इस सम्बन्धमें जो परिभाषाएं लेखकोंने उद्धृत कीहैं वे अपूर्ण हैं। प्रो. एस. एस. टालमकीने अपनी पुस्तकमें सहकारिताकी परिभाषा देते हुए पवित्र साधनों पर बल दियाहै और यही विशेषता सहकारी समिति तथा डकैतोंके गिरोहकी विभाजक रेखा है क्योंकि दोनों अपने सदस्योंके आर्थिक हितोंका सवर्द्धन करतेही हैं। प्रो. टालमकीका कहीं नामोल्लेख तक नहीं है। इसी प्रकार 'औद्योगिक संघर्ष'नामक अध्यायमें संघर्षके केवल आर्थिक कारणकी विवेचना कीगयी किन्तु राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक कारण अछूते रह गये। मजदूरों तथा मिल मालिकोंमें झगड़ोंका कारण जितना आर्थिक है उतनाही राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक है। आर्थिक दृष्टिसे संतुष्ट मजदूरभी राजनीतिक तथा मनोविज्ञानके शिकार होकर हड़तालका रास्ता अपना लेतेहैं।

पुस्तकमें कुछ जगहोंपर शब्दोंका प्रयोग और वर्तनी खटकतीहै जैसे मानक ग्रन्थोंके निर्माण (देखें प्रस्तावना) सग्रहित (भूमिका), औद्योगीकरण (पृ. १६) अलावे (पृ. १०३), ववसने (पृ. ६८४)। इनके स्थान पर क्रमशः रचना, संगृहीत, उद्योगीकरण, अलावा, केतेका प्रयोग होना चाहियेथा।

पुस्तकके लेखकों और प्रकाशकसे अपेक्षा है कि वे यथाशीघ्र पुस्तकका नवीन संस्करण प्रकाशित करायें और उसमें उपर्युक्त कमियोंको दूर करनेका प्रयास करें ताकि पुस्तक और उपयोगी होसके। □□

---

1. प्रकाशक : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना। पृष्ठ : १२६० (प्रथम एवं द्वितीय भाग संयुक्त); डिमा. ७६; मूल्य : ४८.६० रु.।

आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन

लेखिका : डॉ. शोभाशंकर
समीक्षक : वीरेन्द्र मोहन.

'भारतीय समाजवादी चिन्तन' विस्तृत जानकारी और सूचनाओंके सहारे वैचारिक और व्यावहारिक पृष्ठ-भूमिपर लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । भारतीय समाजवादी चिन्तनको इतने समग्र रूपमें इसके पूर्व नहीं देखा-परखा गया । प्रस्तुत ग्रंथ आरम्भिक कालसे आज तक की सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक और राजनीतिक समाजवादी चेतना और समाजवादी आन्दोलनकी व्यापक पड़ताल करताहै ।

ग्रंथ आठ प्रमुख अध्यायोंमें विश्व परिप्रेक्ष्यमें समाजवादी चिन्तनका विकास, भारतीय समाजवादकी यात्रा तथा महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, नरेन्द्रदेव, राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि भारतीय समाजवादी चिन्तकों तथा समाजवादी चिन्तनके समग्र स्वरूपका मूल्यांकन करता हुआ कुछ महत्त्वपूर्ण स्थापनाओं और निष्कर्षोंको उद्घाटित करताहै ।

यह माना जाताहै समाजवादी विचारोंका प्रथम प्रवर्तक प्लेटो है, लेकिन लेखिकाके अनुसार समाजवादी चिन्तनका सही विकास आधुनिक युगमें हुआ । वैसे १८२७ में ओवेनने समाजवादी चिन्तनके बीज डाले और थामस मूर, सेण्ट साइमन, मौसियर, राबर्ट ओवेन आदि के समाजवादी चिन्तन काल्पनिक है जो आधुनिक समाजवादी चिन्तनकी पृष्ठभूमि मात्र है । फ्रांसीसी क्रान्ति (१७८९) समाजवादी चिन्तनकी दिशामें एक महत्त्वपूर्ण स्थानबिन्दु माना जा सकताहै । इसके पश्चात् कार्ल मार्क्स-एंजेल्सने उस समाजवादी चिन्तन और आन्दोलन का सूत्रपात किया जो सही अर्थोंमें आजकी आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियोंके मूलमें है । लेनिन, माओत्से तुंग आदि वे समाजवादी चिन्तक हैं जो मार्क्सकी गतिशील ऐतिहासिक, आर्थिक और सामाजिक मान्यताओंको व्यावहारिक रूपमें परिणत करतेहैं और एक गतिशील विज्ञान तथा जीवनदर्शनके रूपमें उसे व्याख्यायित करतेहै । सभी समाजवादी विचार-धाराओंका लक्ष्य समान है, फिरभी उसकी प्राप्तिके मार्ग भिन्न-भिन्न होनेसे उनमें अनेकता पायी जातीहै । फैबियनबाद-श्रमसंघवाद, श्रेणी समाजवाद, लोकतांत्रिक समाजवाद आदि इसीके रूप हैं । ये विचारधाराएं अलग अलग परिस्थितियोंमें जन्म लेतीहैं, लेखिकाने इन सभी का विवेचन करते हुए तुलनात्मक रूपसे प्रकाश डालाहै और इस पृष्ठभूमिके पश्चात् भारतीय समाजवादी चिन्तनपर विचार कियाहै ।

लेखिकाने भारतीय समाजवादकी यात्रामें नवजागरण की विशिष्ट भूमिका स्वीकार करते हुए यह स्पष्ट किया है कि जो उदारपंथी, सुधारवादी विचारधारा प्रारम्भ होतीहै,उसका मुख्य स्वर भलेही आध्यात्मिक रहाहो परन्तु इसमें सामाजिक सुधारोंकी भावनाभी है । राजा राममोहन राय, विवेकानन्द आदिका चिन्तन इस दृष्टिसे महत्त्व-पूर्ण हैं । विवेकानन्दकी दरिद्रनारायण सम्बन्धी बातोंको आगे आनेवाले चिन्तकोंने भी ग्रहण किया और कांग्रेस की स्थापना (१८८५) के साथ समाजवादी राजनीतिक दृष्टिकोणभी विकसित होताहै । आजादीके आन्दोलनके तहत राष्ट्रवाद और समाजसुधार तथा स्वदेशी जैसे समाजवादी विचार अंकुरित और विकसित होतेहैं । इस संदर्भमें लेखिकाने दादाभाई नौरोजी, रमेशदत्त, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले, अरबिन्द घोष और तिलककी क्रान्तिकारी समाजवादी विचारधारा की चर्चा कीहै । स्पष्ट किया गयाहै कि गांधीके पूर्व कांग्रेसमें सुधारवादी प्रवृत्तियां अधिक रहीहैं । कांग्रेसके गरम दल और नरम दलकी चर्चा करते हुए लेखिकाने इन

१. प्रकाशक : साहित्य भवन (प्रा) लि., ९३ के. पी. कक्कड़ रोड़, इलाहाबाद-३ । पृष्ठ : २६४; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु. ।

समाजवादी विचारकोंकी आरम्भिक स्थापनाओंको स्वीकार कियाहै जिनके कारण बीसवीं शताब्दीमें भारतीय समाजवादी आन्दोलन तेजी पकड़ताहै। स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है—तिलकका वक्तव्य भारतीय समाजवादी आंदोलनको एक सही राजनीतिक दिशा प्रदान करताहै। पुनः गांधी, सुभाष, नेहरूके समाजवादी विचारों की चर्चा करते हुए समाजवादी दल, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, सोपा तथा संसोपा, भारतीय साम्यवाद आदिकी आजादीके पूर्व और पश्चात्‌की प्रवृत्तियों, मान्यताओं और अन्तर्विरोधियोंकी पड़ताल कीगयीहै। यहां लेखिका ने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक संदर्भोंकी चर्चा करते हुए दो टूक बातें कहीहैं। साथही भारतीय परिस्थितियोंके संदर्भमें विभिन्न सुधारों, परिवर्तनोंको समाजवादी चिन्तनके विकासका अंग मानाहै। आचार्य कृपलानी, नरेन्द्रदेव, राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन आदिने समाजवादी चिन्तनमें गांधीके विचारोंकी स्पष्ट छापकोभी स्वीकार कियाहै, भलेही ये चिन्तक गांधीसे कई बातोंमें असहमत रहेहों। साम्यवादी विभाजन, कांग्रेसका विभाजन, जनता पार्टीका गठन और फूट तथा एम. एन. रायके क्रांतिकारी मानवतावाद सम्बंधी लेखिकाका विश्लेषण समाजवादी आंदोलनके यथार्थ पक्षसे सम्बंधित है।

भारतीय समाजवादी चिन्तनको समझनेके लिए गांधी, नेहरू, नरेन्द्रदेव, लोहिया और जे. पी. की विचारधारा महत्त्व रखतीहै। इसीलिए चिन्तनकी पूर्णताके लिए इन पर स्वतंत्र अध्यायोंमें विचार किया गयाहैं। महात्मा गांधीके चिन्तनमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी प्रकारके विचारोंका समावेश दिखायी देताहै। कांग्रेस और गांधीका व्यक्तित्व अलग नहींहै और बादमें भलेही कुछ दूरी आगयीहो, परंतु गांधीका विराट् व्यक्तित्व बार-बार सहेजनेका प्रयास करताहै, नेहरूके उदाहरणसे यह बात समझी जासकती है। समाजवादको सत्य-अहिंसा, असहयोग गांधीकी महत्त्वपूर्ण देन है। विश्व स्तरपर गांधीका प्रदेय है कि उन्होंने अहिंसक समाजवादकी बात की। स्वतंत्रता आन्दोलनके साथ भारतीय समाजवादी चिन्तनका विकास होताहै। सभी लोग प्रारम्भमें कांग्रेससे जुड़े रहे। विभिन्न दलोंकी रचना इसी यात्रामें और आजादीके बादभी होती रहीहै। लेखिकाकी मान्यता है कि गांधीके बिना आधुनिक भारत की कल्पना नहीं कीजा सकती। गांधीवाद और मार्क्सवादकी तुलना करते हुए लेखिकाने गांधी-दर्शनकी सकारात्मक भूमिकाको स्वीकार कियाहै। गांधीकी स्वराज्य कल्पना, ग्राम-समाजकी अवधारणा, कुटीर उद्योग, सर्वोदयका सिद्धांत, ट्रस्टीशिप, आदि विभिन्न सिद्धान्तों की चर्चा समतावादी समाज और रक्तहीन क्रान्ति जैसे समाजवादी तथ्योंकी सविस्तार विवेचना करते हुए गांधीवादी समाजवादको स्थापित किया गयाहै।

नेहरूका समाजवादी चिन्तन गांधीसे जुड़ा होनेके बावजूद कई बातोंमें भिन्न, ज्यादा आधुनिक और वैज्ञानिक कहाजा सकताहै। लेखिकाने नेहरूके व्यक्तित्वके माध्यमसे उनके सामाजिक, साम्यवादी विचारोंकी तलाश कीहै। कांग्रेसके विभिन्न अधिवेशनोंमें उनके वक्तव्योंका हवाला देते हुए नेहरूकी आर्थिक नीतियोंको स्पष्ट किया गयाहै। नेहरू आर्थिक समानता और फासीवादके विरोध की बात करतेहैं। आजादीके पूर्व और आजादीके पश्चात् नेहरूकी नीतियों और विचारोंके द्वैतको लेखिकाने राष्ट्रीय आवश्यकताके रूपमें प्रतिपादित कियाहै और उन्हें किसी सीमातक स्वाभाविक मानाहै। निश्चित रूप से नेहरूके विचार साम्यवादी विचारधाराके करीब पड़तेहैं परन्तु वे गांधीको भी नहीं छोड़ना चाहते। साम्यवाद की कुछ बातोंसे व्यावहारिक रूपसे असहमत भीहैं इसीलिए सम्पूर्ण वामपंथको न स्वीकारकर भारतीय समाजके लिए एक नयी समाजवादी विचारधाराका निर्माण करतेहैं। वे साम्यवादकी साम्राज्यवाद विरोधी नीतिके समर्थक हैं नेहरू साम्यवादसे लोककल्याणकारी राज्यकी ओर यात्रा करतेहैं। लेखिकाने उन तथ्योंकी ओरभी संकेत कियाहै जिनके कारण नेहरू साम्यवादी नहीं होपाते और धीरे-धीरे उनके विचार राष्ट्रवादी होजातेहैं। नेहरूकी विदेश यात्राएं, लखनऊ, त्रिपुरी, झांसी, लाहौर आदि अधिवेशनोंके ब्यौरे, नेहरूकी समाजवादी नीतियां, उद्योगीकरण, साम्राज्यवादकी समाप्ति, सामंती प्रथाकी समाप्ति तथा कांग्रेसके समाजवादी दलकी ओर झुकाव नेहरूके व्यक्तित्वके महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। लेखिकाने स्पष्ट कियाहै कि 'नेहरू मुख्य रूपसे प्रजातान्त्रिक अथवा लोकतान्त्रिक समाजवादी हैं।"

भारतीय समाजवादी चिन्तकोंमें आचार्य नरेन्द्रदेवका विशिष्ट स्थान है। वे मार्क्सवाद, लेनिनवाद और गांधीवादके गहन अध्येता हैं। वे कांग्रेसके गरम दलसे प्रारम्भ में सम्बद्ध रहे। इसीलिए वे विदेशी मालके बहिष्कार और राष्ट्रीयताके कट्टर समर्थक हैं। उनकी विचारधारा

पर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और अरविन्द घोषका काफी प्रभाव है। नेहरू और नरेन्द्रदेवकी सामाजिक विचार-धारा काफी मिलती-जुलतीहै और इस अर्थमें वे गांधीके विचारोंको भी महत्त्व देतेहैं कि वे नैतिकतापर बल देतेहैं। वे मार्क्सवादी, लेनिनवादी विचारधारासे भी प्रभावित हैं। इसीलिए वे मार्क्सवादी आधारपर मानव समाजका विश्लेषण करतेहैं। फलत: वे वर्गोंको भी मानतेहैं और पूंजीवादकी विकृतियोंको तलाशते हुए वर्ग संघर्षको अनिवार्य मानतेहैं। परन्तु लोकतंत्रमें आस्था रखनेके कारण साम्यवादसे अलग होजातेहैं। वे फासीवादके विरोधीभी हैं। राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोणके साथही नरेन्द्रदेवका सांस्कृतिक दृष्टिकोणभी महत्त्वपूर्ण है। 'बौद्ध-धर्म दर्शन' के साथही वे भारतीय संस्कृतिके प्रबल व्याख्याता हैं और प्रजातांत्रिक समाजवादके समर्थक। इस प्रकार नरेन्द्रदेवका व्यक्तित्व जनतांत्रिक समाजवादको स्वीकार करताहै। इस संदर्भमें लेखिकाने गांधीवाद और मार्क्सवादपर तुलनात्मक रूपसे विचार करते हुए नरेन्द्रदेवकी विचारधाराको स्पष्ट कियाहै। ये तथ्य उनके उन १२ सूत्रोंसे प्राप्त किये जासकतेहैं जो उन्होंने १९५५ में प्रजा सोशलिस्ट पार्टीके अधिवेशनमें प्रस्तुत कियेथे।

राममनोहर लोहिया प्रखर विचारोंके लड़ाकू व्यक्तित्वके रूपमें पूरे भारतीय समाजवादी चिन्तकोंमें अपनी अलग पहचान रखतेहैं। भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष, समाजवादी आन्दोलन तथा समाजवादी दलके निर्माणमें आजादीके पूर्व और आजादीके पश्चात् लोहिया के जनवादी व्यक्तित्वको तलाशा गयाहै। वास्तवमें लोहियाने भारतीय संदर्भों और परिस्थितियोंमें एक नया समाजवादी चिन्तन बनानेका प्रयास किया। क्रान्तीकरण, सात क्रांतियां, चौखम्भा योजना, निजी और सार्वजनिक क्षेत्र, जाति प्रथा उन्मूलन, नारी समस्या, साम्प्रदायिकता और भाषा सम्बन्धी उनकी नीतियां इसीका परिणाम हैं। इनसे लोहियाके आर्थिक चिन्तनको समझाजा सकता है। उनकी उद्योग, राष्ट्रीयता और मूल्य-नीतियाँ, सिविल नाफरमानी आदि नीतियाँ समाजवादी चिन्तनके विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखतीहैं। इस प्रकार लोहिया न केवल भारतके लिए बल्कि विश्व विशेषतया एशिया-अफ्रीकाके लिए एक नये समाजवादकी बात करतेहं। पुस्तकमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्षोंकी विवेचना कीगयीहै।

आजादीके आंदोलनमें मार्क्सवादी-साम्यवादी विचारों के साथ जयप्रकाश नारायण कांग्रेस और पुन: समाजवादी दलमें अपना सक्रिय योगदान देतेहैं। जयप्रकाशके क्रान्तिकारी व्यक्तित्वका हवाला देते हुए लेखिकाने उनके विचारोंपर प्रकाश डालाहै। बिहार आन्दोलन, सम्पूर्ण क्रांति आदि जनतंत्रके लिए किये गये उनके कार्य उन्हें विश्व समाजवादी चिन्तकोंमें महत्त्व प्रदान करतेहैं। निश्चित रूपसे जयप्रकाश जनचेतना, युवाचेतना और लोक-चेतनाके प्रतिरूप हैं जो सत्ताके लोभी नहीं रहे। जयप्रकाशका क्रांतिदर्शन उन्हीं लक्ष्योंकी ओर इंगित करताहै जो एक समाजवादी समाजके लिए आवश्यक कहे जासकतेहैं। लेखिकाने सम्पूर्णानन्द, अशोक मेहता और एम. एन. रायके समाजवादी विचारोंपर भी प्रकाश डालाहै।

भारतीय समाजवादी चिन्तनके समग्र रूपपर चर्चा करते हुए लेखिकाने तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कियाहै, जो पुस्तकको न केवल उपयोगी वरन् विशिष्ट बनाताहै। निश्चित रूपसे भारतके विभिन्न समाजवादी, साम्यवादी और तथाकथित समाजवादी कहे जानेवाले दलों तथा चिन्तकोंके विषयमें यह ग्रन्थ आधारका काम करेगा और भारतीय समाजवादी चिन्तनको समझनेमें कारगर सिद्ध होगा। वर्तमानकी राजनीति और दलोंकी टकराहट, बिखरावको जिन प्रामाणिक तथ्योंके सहारे विश्लेषित किया गयाहै वह लेखिकाके गंभीर अध्ययन चिन्तन और निर्भ्रान्त दृष्टिका परिचायक है। □□

आवश्यक सूचना

कागज तथा अन्य विभिन्न खर्चोंमें वृद्धिके कारण 'प्रकर'का वार्षिक मूल्य जनवरी'८५ से ३५.०० रु. कियाजा रहाहै। नवीकरणके लिए अथवा नये ग्राहक यही शुल्क भेजनेकी कृपा करें।

किशोर बाल-साहित्य

आदिवासी बालक

लेखक : प्रभाकर माचवे; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली। पृष्ठ : ४३; क्रा. ८२; मूल्य : ३.०० रु.।

इस पुस्तकमें दक्षिण नीलगिरि पर्वतके 'टोडा,' मध्य-प्रदेशके पूरबकी तरफके 'गोंड' और पश्चिमकी तरफ के 'भील,' बिहार और बंगालके बीच संथाल परगनाके 'संथाल' और 'मलेर'' दक्षिण-पूर्वी भारतके 'हो', छोटा नागपुरके 'मुंडा' या 'मुंडारी', 'ओरांव' और 'कोल', उड़ीसाके 'खोंड' तथा असमके खासी, गारो, लुशाई, नागा आदि आदिवासियोंका परिचयात्मक विवरण दिया गयाहै । आदिबासियोंका रीति-रिवाज, नृत्य-गान, विश्वास या मान्यताएं, आजीविका पहनावा आदिकी सरल सुबोध भाषामें जानकारी देनेवाली यह पुस्तक यद्यपि बच्चोंके लिए लिखी गयीहै पर वयस्क पाठकोंके लिएभी यह समान रूपसे उपादेय है। बीच-बीचमें दिये गये चित्रोंसे उसका आकर्षण औरभी बढ़ गयाहै । छोटे-छोटे सरल वाक्योंमें आदिवासियोंके विषयमें हर छोटी-बड़ी बातको संक्षेपमें पूरी तरह सुस्पष्ट सामने रख देना, लेखककी एक बहुत बड़ी विशेषता है, जो एक तरफ भाषापर उसके अधिकारको सूचित करतीहै तो दूसरी ओर विषयकी स्पष्टताको ।

'आदिवासी बालक' अभिधानमें प्रतिपादित विषयको देखते हुए संज्ञा गौण और विशेषण प्रधान होगया लगताहै । 'बालक' के विषयमें इसमें बहुत कम कहा गयाहै । पुस्तकका अधिकांश भाग आदिवासियोंसे सम्बधित है । फिर यह नाम प्रथम दृष्टिमें किसी आदिवासी बालककी कहानीका भ्रम जगाता है । फिरभी यह मानना होगा कि पुस्तक अत्यन्त उपादेय हैं—हर वर्गके पाठकके लिए पठनीय और संग्रहणीय ।

—डॉ. श्रीविलास डबराल

जन्तर-मन्तर

लेखक : रमण; प्रकाशक : नटराज पब्लिशिंग हाउस, होली मोहल्ला, करनाल-१३२००१। पृष्ठ: ५०; मूल्य : १२.०० रु.।

यह बाल कविता संग्रह डॉ. एम. आर. तिवारी (रमण) द्वारा लिखित बच्चोंकी कल्पना शक्तिको ध्यानमें रखकर प्रस्तुत किया गयाहै । हमारे यहाँ श्रेष्ठ बाल साहित्यका बहुत अभाव है । जो कुछभी लिखा जाताहै उसमें लेखक अपने सयानेपनसे बचकर नहीं लिख पाता। कभी रचनाएं उपदेशकी पिटारी हो जातीहैं और कभी बाल साहित्यकी खपतके नामपर भरतीकी ऊलजलूल रचनाएं लिखा जातीहैं ।

दरअसल बाल साहित्यके अंतर्गत जिज्ञासा प्रधान कल्पनायुक्त, खटमिठ्ठे स्वादभी रोचक कहानियां कविताएं होनी चाहियें। इस दृष्टिसे जन्तर-मन्तर एक अच्छा संग्रह है । बेहतर होता यदि प्रत्येक कविताके साथ एक भावानुरूप मोहक चित्रभी होता । एक-दो रचनाएं कुछ संस्कार देनेवाली, महापुरुषोंके चरित्रसे भी संम्बद्ध होती। फिरभी 'जन्तर-मन्तर' एक अच्छी किताबके रूपमें नन्हें-मुन्नोंके लिए पठनीय और संग्रहणीय है ।

—डॉ. सन्तोष कुमार तिवारी

अनोखी सूझबूझ

लेखक : आनन्दकुमार; प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, एन. ७०, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-११०००१। पृष्ठ : ३८; मूल्य : ४.०० रु.।

बाल-साहित्यकी यह पुस्तक बहुतही मनोरंजक है। एक बार पढ़ना आरंभकर देनेपर पूरी पुस्तक पढ़ जानेकी इच्छा होतीहै । आठों कहानियोंमें आदिसे अन्ततक जिज्ञासा बनी रहतीहै । अधिकांश कहानियोंके प्रसंग मौलिक प्रतीत होतेहैं। अन्तमें घटना अथवा पात्रके माध्यमसे शिक्षाभी देदी गयीहै । ''अनोखी सूझ-बूझ,

अपनेको मत भूलो, जान बची लाखों पाये" जैसी कहानियोंमें पात्र अपनी सूझ-बूझ द्वारा कठिन समस्याओंका समाधान ढूंढ़ निकालतेहैं। निःस्संदेह ये सभी कहानियां पाठकोंकी कल्पना शक्तिके विकासमें भी सहायक सिद्धि होंगी।

संकलनकी कहानियोंकी भाषा सरल तथा सुबोध है। एक स्थानपर मुद्रण सम्बन्धी त्रुटि है 'दिल' के स्थानपर 'दल' छपा है। संन्यासी द्वारा रामदेवको दिया गया उपदेश 'ओह! तब तो तुम कमा नहीं रहेहो···कहीं रेंगते घूमोगे (पृष्ठ संख्या ९)। तथा सच्ची पूजामें रामदेवका स्वगत कथन "मेरेभी बच्चे···किस दशामें हैं।" कुछ लम्बे हो गयेहैं। छोटे वाक्य अधिक उपयुक्त होते। आशा है प्रकाशक-लेखकका रोचक बाल साहित्य बच्चोंको प्रदान करते रहेंगे।

आओ नाटक खेलें

लेखक : ओम्प्रकाश सिंहल; प्रकाशक : अम्बर प्रकाशन, ८८८ ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग, नयी दिल्ली-११०००५। पृष्ठ : ४३; मूल्य : ५.५० रु.।

लेखकका यह कथन सत्य है कि हिन्दीमें बच्चोंके लिए अनेक कहानियां लिखीजा रहीहैं किन्तु बाल-एकांकी अभीतक बहुत कम लिखे गयेहैं। छः पौराणिक पात्रों ध्रुव, अभिमन्यु, सिद्धार्थ, आरुणि, श्रवणकुमार तथा लव-कुशके जीवनसे सम्बंधित घटनाओंपर आधारित ये लघु एकांकी शिक्षाप्रद हैं तथा पौराणिक ज्ञान प्रदान करनेवालेभी हैं। अभिनयकी दृष्टिसे इन्हें सफल कहा जा सकताहै। साधारण मंच सज्जासे ही इन नाटकोंको खेलाजा सकताहै। ये सभी नाटक मनोरंजकभी हैं।

नाटकोंकी भाषा सरल है, संवाद संक्षिप्त तथा कथानकको प्रवाह प्रदान करनेवाले हैं। नाटकके आरंभमें दिये गये चित्र सजीव तथा कलात्मक हैं।

एक अखरनेवाली बात यह है कि भाषा भावपूर्ण स्थलोंको उभारनेमें असफल रहीहै। कहीं कोई शब्द बढ़ा देनेसे और कहीं संवादके अतिसंक्षिप्त होजानेके कारण मार्मिक स्थल साधारण बातचीत बनकर रह गयेहैं। जैसे सुरुचिके मारनेपर ध्रुव अपनी माता सुनीतिके पास रोते हुए आताहै तो माता उससे पूछतीहै—

"मारा है? पर क्यों? क्या बात थी? बता तो सही।" इससे माताकी विह्वलता चिन्तनमें तर्कसे उलझ गयीहै। इसी प्रकार चक्रव्यूह नाटकमें जब अभिमन्युपर पीछेसे हमला किया जाताहै, वह गिरते हुए आचार्य द्रोणसे न्यायकी मांग करते हुए कहताहै—"यह आपके रहते हुए होरहाहै; और आप चुपचाप खड़े हैं।"

इन शब्दोंसे अन्यायके विरुद्ध चीत्कार करते अभिमन्युके हृदयका विद्रोह प्रकट नहीं होपाया।

कुल मिलाकर एकांकी प्रेरणादायक हैं, अभिनयात्मकताका गुणभी विद्यमान है, छोटे बच्चोंकी पसन्दके अधिक अनुकूल हैं।

—सविता डे

प्राप्ति सूचना

[समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकोंकी सूची। चुनी पुस्तकोंकी समीक्षाएं आगामी अंकोंमें प्रकाशित होंगी। समीक्षार्थ पुस्तककी दो प्रतियाँ भेजें। एक प्रतिकी प्राप्ति-सूचना प्रकाशित करदी जायेगी।]

अध्ययन : आलोचना

आजका हिंदी नाटक : प्रगति और प्रभाव—डॉ. दशरथ ओझा। प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : २१३; डिमा. ८४; मूल्य : ५०.०० रु.।

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र : सिद्धांत और परिदृश्य—डॉ. नगेन्द्र। प्रका. पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, ८८८, ईस्ट पार्क रोड, करोल बाग, नयी दिल्ली-५। पृ. १६६; डिमा. ८४; मूल्य : ५०.०० रु.।

भाषा लिपि और भारत—अराज। प्रका. कुमार प्रका-

शन, २०/३० मोतीनगर, नयी दिल्ली-१५। पृ. ८०; डिमा. ८४; मू. २०.०० रु.।

सत्यदेव परिव्राजक : व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व—डॉ. दीनानाथ शर्मा। प्रका. राजपाल एंड संस, दिल्ली-६। पृ. २६६; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु.।

साहित्य अनुशीलन—डॉ. तपेश्वरनाथ। प्रका. बिहार ग्रन्थ कुटीर प्रकाशन, खजांची रोड, पटना-४। पृ. १२७; डिमा. ८३; मू. २३.०० रु.।

हिन्दी इण्टरव्यू : उद्भव और विकास(१६०५—१६७५) डॉ. विष्णु पंकज। प्रका. विवेक पब्लिशिंग हाऊस, धमाणी मार्केट,चौड़ा रास्ता, जयपुर-३। पृ. २०८; डिमा. ८४; मू. ४५.०० रु.।

हिन्दी कविता : अद्यतन भूमिका—डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया। प्रका. कुमार प्रकाशन, मोतीनगर, नयी दिल्ली-१५। पृ. ६६; डिमा. ८४; मू. २५.०० रु.।

निबन्ध : लेख-संग्रह

भारतीय संस्कृतिके स्वर—महादेवी वर्मा। प्रका. राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृ. ६४; क्रा. ८४; मू. १६.०० रु.।

वन तुलसीकी गंध—फणीश्वरनाथ रेणु; संकलन एवं सम्पादन-भारत यायावर। प्रका. राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-२। पृ. १६०; डिमा. ८४; मू. मू. ३५.०० रु.।

व्यासकी धारा—सुदर्शन वसिष्ठ। प्रका. हिमाचल पुस्तक भण्डार, गांधीनगर, दिल्ली-३१। पृ. १५६; डिमा. ८४; मू. ३५.०० रु.।

हिंदू धर्म : नयी चुनौतियाँ—डॉ. कर्णसिंह। प्रका. राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृ. १२८; डिमा. ८४; मू. ३०.०० रु.।

काव्य

अमलतास—अनन्तकुमार पाषाण। प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. ११८; डिमा. ८४; मूल्य : २५.०० रु.।

इतना जो मिला—श्याम विमल। प्रका. पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्णगली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृ. ८०; डिमा. ८३; मू. २५.०० रु.।

दश्तमें दरिया (उर्दू काव्य) शीन. काफ. निजाम। प्रका. राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. १४०; डिमा. ८४; मू. ३०.०० रु.।

दिन एक नदी बन गया—रामदरश मिश्र। प्रका. नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. ८०; डिमा. ८४; मू. २२.०० रु.।

नरो वा कुंजरो वा—किशोर काबरा। प्रका. साहित्य सहकार, ई-१०/४ कृष्णनगर, दिल्ली-५१। पृ. १३६; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु.।

नीली रेखा तक भवानीप्रसाद मिश्र। प्रका. पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, ८८८, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग, नयी दिल्ली-५। पृ. १५६; डिमा. ८४; मू. ४०.०० रु.।

उपन्यास

धरातल—व्रजभूषण। प्रका. किताब घर, गांधीनगर, दिल्ली-३२। पृ. २४८; क्रा. ८४; मू. ३५.०० रु.।

निवका निमाणा—सुशील कालरा। प्रका. राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नयी दिल्ली २। पृ. २०४; डिमा. ८४; मू. ३५.०० रु.।

निरस्त्र (बंगलासे अनूदित)—विमल कर। राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृ. १६२; क्रा. ८४; मू. २५.०० रु.।

विवर्त्त शिवानी। प्रका. राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृ. १०४; क्रा. ८४; मू. १५.०० रु.।

शेष यात्रा उषा प्रियंवदा। प्रका. राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. १६४; क्रा. ८४; मू. २५.०० रु.।

हैंडपम्प—कृष्णशंकर भटनागर। प्रका. दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-३५। पृ. ११०; क्रा. ८४; मू. २२.०० रु.।

कहानी

खाक इतिहास—गोविन्द मिश्र। प्रका.राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्लीं-६। पृ. १०३; क्रा. ८४; मू. १८.०० रु.।

नमिता—कृष्णशंकर भटनागर। प्रका. आनन्द प्रकाशन, १।१०७१६, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृ. १०६; क्रा. ८४; मू. २०.०० रु.।

बंधे पांवोंका सफर—प्रतिभा वर्मा। प्रका. राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. ११२; क्रा. ८४; मू. २०.०० रु.।

मिट्टीकी गंध चन्द्रभूषण सिंह 'चन्द्र'। प्रका. नूतन साहित्यकार परिषद, काँटी (मुजफ्फरपुर)। पृ. ६१; क्रा. ८४; मू. १०.०० रु.। □□
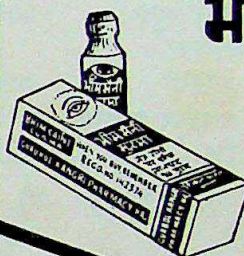
आगामी अंक

'प्रकर' दीपावली अंक : १९८४

१९८३ का पुरस्कृत भारतीय साहित्य

भाषा	समीक्ष्य कृति	लेखक	समीक्षक
हिन्दी (काव्य)	खूंटियोंपर टंगे लोग	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
असमिया (काव्य)	सुदीर्घ दिन अरु ऋतु	निर्मल प्रभा बरदलै	(१) डॉ. धर्मदेव तिवारी (२) नवारुण वर्मा
ओडिया (निबन्ध)	गाँ मजलिस	हरेकृष्ण महताब	डॉ. विजय द्विवेदी
नेपाली (उपन्यास)	नियति	इन्द्र सुन्दास	डॉ. कमला सांकृत्यायन
बंगला (काव्य)	जेते पारि किन्तु केन जावो	शक्ति चट्टोपाध्याय	डॉ. रणजीतकुमार साहा
मणिपुरी (लघु नाट्य)	कर्णगी ममा अमसुङ अरोइबा याहिप	निङोम्बम इबोबी सिंह	डॉ. ई. दिनमणि सिंह
कन्नड़ (कहानी)	कथेयादळु हुडुगि	यशवन्त चित्ताल	डॉ. टी. आर. भट्ट
तमिल (आलोचना)	भारती : कालमुम् करुतुम्	तो. मु. सि. रघुनाथन्	डॉ. एम. शेषन्
तेलुगु (रेखाचित्र)	जीवन समरम्	डॉ. रावूरि भारद्वाज	डॉ. भीमसेन 'निर्मल'
मलयालम (निबन्ध)	तिरञ्ञेटुत्त प्रबंधङ्ङळ्	प्रो. एस. गुप्तन नायर	डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै
कोंकणी (उपन्यासिका)	कार्मेलीन	दामोदर यशवंत मावजो	पुंडलिक नारायण नायक
गुजराती (निबन्ध)	चिन्तयामि मनसा	डॉ. सुरेश जोशी	डॉ. रजनीकांत जोशी
मराठी (उपन्यास)	सत्तान्तर	व्यंकटेश माडगूलकर	(१) डॉ. रू. गो. चौधरी (२) श्याम विमल
सिन्धी (काव्य)	अंधो दूहों	डॉ. अर्जुन शाद	जगदीश लछाणी
डोगरी (कहानी)	आले	वेद राही	डॉ. अशोक जेरथ
पंजाबी (काव्य)	अनिक बिसथार	प्रीतमसिंह सफीर	डॉ. हरमेन्द्रसिंह बेदी
मैथिली (सर्वेक्षण)	मैथिली पत्रकारिताका इतिहास	चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'	प्रा. गौरीकांत झा
राजस्थानी (काव्य)	ग-गीत	मोहन आलोक	बी. एल. माली 'अशांत'

और अन्तमें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त

मास्ति वेंकटेश आयंगारका

उपन्यास : 'चिकवीर राजेन्द्र'

आनुमानिक मूल्य : १५.०० रु.

विज्ञापनके लिए और अपनी प्रति सुरक्षित करानेके लिए लिखें :

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७.

टेलीफोन : ७११३७६३

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए संगीता कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित.

प्रकर

मार्गशीर्ष-पौष : २०४१ (वि.) :: नवंबर-दिसंबर : १९८४ (ई.)

दीपावली अंक
[पुरस्कृत भारतीय
साहित्य : १९८३]

[दीपावली अंक : पुरस्कृत
भारतीय साहित्य : १९८३]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७.

वर्ष : १६ अंक ११-१२ मार्गशीर्ष-पौष २०४१ (वि.) नवम्बर-दिसम्बर : १९८४ (ई.)

सम्पादकीय
श्रद्धांजलि ५
पुरस्कृत भारतीय साहित्य : १९८३ ६

समीक्षित कृतियां

ग्रन्थ नाम	ग्रन्थ-लेखक	समीक्षक	पृष्ठ संख्या
सर्वदेशीय भाषा			
हिन्दी : काव्य			
खूंटियोंपर टंगे लोग	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी.	१०
मध्यांचलीय भाषा			
मैथिली : पत्रकारिता-इतिहास			
मैथिली : पत्रकारिताक इतिहास	चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'	प्रा. गौरीकान्त झा.	१४
राजस्थानी : काव्य			
ग-गीत	मोहन आलोक	बी. एल. माली 'अशांत'.	१६
पूर्वांचलीय भाषाएं			
असमिया : काव्य			
सुदीर्घ दिन आरु ऋतु	डॉ. निर्मलप्रभा बरदलै	(१) नवारुण वर्मा. (२) डॉ. धर्मदेव तिवारी.	२२
ओड़िया : निबन्ध			
गाँ मजलिस	डॉ. हरेकृष्ण महताब	डॉ. विजय द्विवेदी.	२९
नेपाली : उपन्यास			
नियति	इन्द्र सुन्दास	डॉ. कमला सांकृत्यायन.	३६

बाङ्ला : काव्य
जेते पारि किन्तु केन जाबो — शक्ति चट्टोपाध्याय — डॉ. रणजीत कुमार साहा. — ४०
मणिपुरी : नाटक
कर्णगी ममा अमासुङ कर्णगी अरोइबा याहिप — निङोम्बम इबोबी सिंह — डॉ. ए. दिनमणि सिंह. — ४४

दक्षिणांचलीय भाषाएं

कन्नड़ : कहानी
कथेयादळु हुडुगि — यशवन्त चित्ताल — डॉ. टी. आर. भट्ट. — ४६
तमिष : आलोचना
भारती : कालमुम् करुत्तुम् — तो. मु. सि. रघुनाथन — डॉ. एम. शेषन. — ४६
तेलुगु : रेखाचित्र
जीवन समरम् — डॉ. रावूरि भरद्वाज — डॉ. भीमसेन निर्मल. — ५१
मलयालम : निबन्ध
तिरञ्ञेडुत्त प्रबंधङङळ् — प्रो. गुप्तन नायर — डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै. — ५५

पश्चिमांचलीय भाषाएं

कोंकणी : उपन्यासिका
कार्मेलीन — दामोदर यशवन्त मावजो — पुण्डलिक नारायण नायक रूपान्तर : कान्ता पलसाने. — ६१
गुजराती : निबन्ध
चिन्तयामि मनसा — डॉ. सुरेश ह. जोशी — डॉ. रजनीकान्त जोशी. — ६३
मराठी : लघुउपन्यास
सत्तान्तर — व्यंकटेश माडगूलकर — (१) डॉ. रु. गो. चौधरी (२) श्याम विमल. — ६६
सिन्धी : काव्य
अंधो दूंहों — डॉ. अर्जुन शाद — (१) प्रा. जगदीश लछानी (२) डॉ. मोतीलाल जोतवाणी. — ७६

उत्तरांचलीय भाषाएं

डोगरी : कहानी
आले — वेद राही — डॉ. अशोक जेरथ — ८०
पंजाबी : काव्य
अनिक विस्थार — प्रीतमसिंह सफीर — डॉ. हरमहेन्द्रसिंह बेदी — ८२

ज्ञानपीठ पुरस्कार

कन्नड़ उपन्यास
चिकवीर राजेन्द्र — मास्ति वेंकटेश अय्यंगार — डॉ. टी आर. भट्ट. — ८४
ग्रन्थ-लेखक-समीक्षक विवरण परिशिष्ट — ८७

वार्षिक शुल्क : ३५.०० रु. — प्रस्तुत अंक : २०.०० रु.

कुछ विशिष्ट प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
नये हिन्दू मन्दिर	श्रीनारायण चतुर्वेदी	२५०.००
कसौटी	,,	४०.००
पत्नी और धर्मपत्नी	,,	३०.००
मनोरंजक संस्मरण	,,	४०.००
साहित्यिक चुटकुले	,,	३५.००
अखिल भारतीय प्रशासनिक कोश	तिवारी एव भाटियां	१५०.००
प्रेमचन्द विश्वकोश-१	कमल किशोर गोयनका	१२५.००
प्रेमचन्द विश्वकोश-२	,,	१७५.००
भाषा और संस्कृति	भोलानाथ तिवारी	५०.००
शब्दों की कहानी	,,	४०.००
राजभाषा हिन्दी	,,	४०.००
पर हार नहीं मानी	,,	४०.००
कागज का लंकर	शिवसागर मिश्र	५०.००
दिनकर एक सहज पुरुष	,,	८०.००
हिन्दी हम सबकी	,,	४०.००
लागौ रंग हरी	विद्यानिवास मिश्र	३०.००
अंगद की नियति	,,	२५.००
भ्रमरानन्द के पत्र	,,	३०.००
आरोग्य शास्त्र	आचार्य चतुरसेन	१७५.००
यौवन रक्षा	,,	७५.००
गोली	,,	४०.००
धर्मोरक्षति	,,	५०.००
शुभदा	,,	३५.००
एकांकी सुधा	,,	५०.००
रंग दे बसन्ती चोला	,,	३५.००
विकलाँग बालक	जगत सिंह	३०.००
मंदबुद्धि बालक	,,	३०.००
बच्चे क्यों बिगड़ते हैं	,,	३०.००
समस्याग्रस्त बालक	,,	३०.००
बालक और अभिभावक	,,	३०.००
सोना माटी	विवेकी राय	६०.००
विवेकीराय की कहानियां	,,	३५.००
आत्म विज्ञापन	अभिमन्यु अनत	८०.००
बच्चन के विशिष्ट पत्र	बच्चन	३०.००
महायात्रा	अज्ञेय	४०.००
आवाज आ रही है	वीरेन्द्र मिश्र	३५.००
अर्जुन जिन्दा है	मधुकर सिंह	५०.००
शहीद भगतसिंह	के. के. खुल्लर	४०.००
पाणिनीय व्याकरण की भूमिका	आयंगार	४०.००
कुछ नीति कुछ राजनीति	भवानीप्रसाद मिश्र	३०.००
मन पवन की नौका	कुबेरनाथ राय	३०.००
इकसठ कहानियाँ	रामदरश मिश्र	१२०.००
बिना दरवाजे का मकान	,,	२५.००
साहित्य पहचान और पहुँच	भगवती शरण सिंह	३०.००
शब्द श्री	कैलाशचन्द्र भाटिया	५०.००
भारतीय भाषाएं	,,	४०.००
हिन्दू धर्म मानव धर्म	गो. कृ. भुस्कुटे	४०.००
कार्यालय कार्यबोध	हरिबाबू कंसल	५०.००
प्रशासनिक हिन्दी निपुणता	,,	२०.००
भीलों के बीच बीस वर्ष	शोभानाथ पाठक	४०.००
आँखें	डा. एम. एस. अग्रवाल	४०.००
फुलझड़ियां	काका हाथरसी	६०.००
पैरोडियां	,,	६०.००
काकदूत	,,	६०.००
नोक झोंक	,,	६०.००
महामूर्ख सम्मेलन	,,	६०.००
अरविन्द ने कहा था	गिरिराज शरण	२५.००
विवेकानन्द ने कहा था	,,	२५.००
पटेल ने कहा था	,,	२५.००
गांधी ने कहा था	,,	२५.००
सुभाष ने कहा था	,,	२५.००
नेहरू ने कहा था	,,	२५.००
योग द्वारा सौन्दर्य	श्रीमती परवेश हाण्डा	४०.००
हाकी और ध्यानचन्द	दीक्षित/चतुर्वेदी	५०.००
चांद भी अकेला है	श्रीमती अरुण सीतेश	४०.००
अंधा सबेरा	सीतेश आलोक	३५.००

प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

दूरभाष : २६ ४६ ७६

श्रद्धांजलि

धर्मान्धताकी वेदीपर इन्दिरा गांधीकी बलि

यह देशका दुर्भाग्यहै कि देशकी प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधीकी हत्या कर दीगयी। हत्या इसलिए की गयी, क्योंकि हत्याओं, षड़यन्त्रों, अनाचारों और सामाजिक विकृतियों और पुनः देश विभाजनके लिए सक्रिय तत्त्वोंके केन्द्र स्थल बने 'स्वर्ण मन्दिर' को इस प्रकारके असामाजिक तत्त्वोंसे मुक्तकर उसे वस्तुतः 'पवित्रतम' बनाया और उसे पवित्र बनाये रखनेके आश्वासनके साथ पुनः 'स्वर्ण मन्दिर' के भक्तों और अनुयायियोंको सौंप दिया। मन्दिरकी यह पवित्रता सिक्खोंके इन असामाजिक उग्रवादी तत्त्वोंको सह्य नहीं हुई, और उसी स्वर्ण मन्दिरमें श्रीमती गांधीकी हत्याकी शपथ लेकर और वहींसे 'अमृत' ग्रहणकर उनकी हत्या कीगयी। इस जघन्य कार्यकी केवल कुछ असंतुलित और पागल लोगोंका दुष्कृत्य कहकर उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह वस्तुतः पूरे राष्ट्रका अपमान है और उसकी धर्म-निरपेक्षताकी राष्ट्रीय नीतिके अन्तर्गत विभिन्न धर्मों और धर्मावलम्बियोंको प्राप्त अपने धर्माचरणकी स्वतन्त्रतापर ही प्रहार है, व्यक्तिगत धर्माचरणके बारेमें राज्य और प्रशासनकी तटस्थताको यह चुनौती है। जब धर्मान्धता व्यक्तिगत धर्माचरणकी सीमाओंका अतिक्रमणकर सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय अनुशासनको भंग करनेपर तुल जातीहै तो अव्यवस्था जन्म लेतीहै। धर्मान्धता अव्यवस्थासे जुड़कर संकीर्णताके जिस वातावरणका निर्माण करतीहै, उसीके झंझाबातमें वह 'धर्म' के अस्तित्वपर ही प्रश्न चिह्न लगा देतीहै। एक हत्या हत्या-शृंखलाको जन्म देतीहै। इन धर्मान्ध तत्त्वोंको यहभी स्पष्ट रूपसे समझने और हृदयंगम करनेकी आवश्यकता है कि उस स्थितिमें केवल राष्ट्रीय अनुशासन, राष्ट्रीय निरोधक शक्तिही उन्हें रक्षा प्रदान करतीहै। इस रक्षणके लिए सर्वांग आत्म-समर्पणकी आवश्यकता नहीं होती, बल्कि धर्मसे 'अन्धता' को पृथक करनेकी आवश्यकता होती है।

एक सीमातक यह सत्य है कि कुछ व्यक्तियोंके कार्यके लिए पूर्ण धार्मिक समुदायको कलंकित और दंडित नहीं कियाजा सकता। यदि घटनाचक्रके समग्र रूपपर विचार किया जाये और आंदोलनात्मक और भावनोत्तेजक रूपोंका विश्लेषण किया जाये तो यह 'अर्द्ध सत्य' प्रतीत होने लगताहै। कोईभी समाज या सम्प्रदाय जब अपने एक वर्गके अनाचारपूर्ण और अनैतिक कृत्योंको सहन करताहै, अथवा अपेक्षा करताहै तो उसकी प्रतिक्रियाभी उस समाज अथवा धार्मिक समुदाय को झेलनी होतीहै। इतिहास इसका साक्षी है। यद्यपि सहिष्णु भारतीय समाजकी प्रतिक्रिया इतने उग्र रूपमें नहीं हुई कि किसी विस्फोटकी आशंका हो, फिरभी, इस प्रकारकी घटना-शृंखला पूरे राष्ट्रको अकल्पनीय स्थितिकी ओर लेजा सकतीहै। इसलिए भारतीय समाजके प्रत्येक धार्मिक समुदायका यह दायित्व है कि वह अपने समुदायके अनाचारी और अनैतिक तत्त्वों और मन्दिरोंका अनैतिक एवं अनाचारपूर्ण और राष्ट्र विरोधी कार्योंमें उपयोग करनेवाले वर्गोंको नियन्त्रित करे। जब धार्मिक समुदाय अपने इस दायित्वका निर्वाह करनेमें असमर्थ होजाता है तो राष्ट्रीय समाजको और राष्ट्रीय समाजके कर्णधारोंको यह कार्य करनाही पड़ता है। यदि धार्मिक समुदायके उच्छृंखल तत्त्व इस अनुशासनात्मक कार्यका विरोधकर ऐसे राष्ट्रीय कर्णधारकी हत्या करतेहैं तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह समुदाय भी अपनी निष्क्रियताके लिए विशाल राष्ट्रीय समाजके तात्कालिक प्रकोपसे बचनेकी किस प्रकार आशा रखता है!

श्रीमती इन्दिरा गांधी कर्त्तव्यकी वेदीपर बलि हो गयीं। सम्पूर्ण राष्ट्र विचलित होगया। यह विचलन अस्थायी था, शीघ्रही अपनी स्थितप्रज्ञ स्थितिमें आ गया और समवेत स्वरमें राष्ट्रने श्रीमती इन्दिरा गांधी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की, उसी समवेत स्वरमें हम भी सम्मिलित हैं।

हमारी पीड़ा यह है कि ब्रिटिश कालके राजनीतिक दलोंने भारतीय समाजको विखण्डित करनेके ब्रिटिश प्रयत्नोंका कोई व्यावहारिक और नीतिगत निरोध नहीं किया, बल्कि अनेक रूपोंमें ब्रिटिश साम्प्रदायिक नीतियों का समर्थन किया और उनके कार्यान्वियनमें योगदान दिया। इस युगमें राजनीतिक दलोंकी जिस चेतनाका निर्माण हुआ, वही चेतना स्वाधीनता प्राप्तिके बाद क्रियाशील हुई। इसी क्रियाशीलताके कारण संविधानमें प्रतिष्ठित लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षताकी भावनाएं आहत हुई, राजनीतिक, आर्थिक, साँस्कृतिक और धार्मिक स्तरोंपर ऐसे समुदायोंको प्रोत्साहन और संरक्षण प्रदान किया गया जिनका संवैधानिक भावनाओं में बिल्कुल विश्वास नहीं था। संवैधानिक व्यवस्थाओं का उद्देश्य 'सम-लोकभाव' था, परन्तु सत्तारूढ़ दलकी राजनीतिक क्रियाशीलता सदा 'विशिष्टाधिकार सम्पन्न वर्ग-निर्माण' की रही। इसके परिणाम निरन्तर सामने आते रहेहैं। हत्याओं, संघर्षों, दंगों, सामाजिक-आर्थिक तनावोंके रूपमें। वस्तुतः गत सैंतीस वर्षोंमें भारतीय समाजका जो रूप उभरा है, वह है धार्मिक-आर्थिक-जातिक स्तरपर निर्मित निरन्तर टकरावके लिए उद्यत अगणित समुदायोंका। ये समुदाय पण्य पदार्थके रूपमें भी प्रयुक्त होतेहैं। समाजके इस विखण्डित निर्माणने राष्ट्र की एकताको संदिग्ध बना दियाहै। यदि भविष्यमें विखण्डनकी यह प्रक्रिया अधिक उग्र रूप धारणकर गयी तो राष्ट्रका पुनर्विभाजन किसी समुदायकी मात्र कल्पना नहीं रहेगा। टकराव, विखण्डन और विघटनके समर्थक तत्त्वों ने श्रीमती गाँधीकी हत्या कीहै। श्रीमती गाँधीके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि 'सम-लोकभाव' की नीति अपनाकर विघटनके सभी लक्षणों और रूपोंको समाप्त किया जाये, शक्तिशाली, दृढ़ और अखण्ड राष्ट्रकी स्थापना कीजाये। □

पुरस्कृत भारतीय साहित्य : १९८३

गत वर्षसे हमने भारतीय साहित्य—देशभरमें सृष्ट साहित्य—की परिचयात्मक समीक्षाएं प्रस्तुत करनी शुरू कीहैं। भारतीय साहित्यकी सभी श्रेष्ठ, उल्लेखनीय एवं चर्चित कृतियोंका परिचय प्रस्तुत करना 'प्रकर' की अर्थ और श्रम शक्तिकी सीमाओंमें संभव नहीं है, इसलिए यह कार्य केवल अखिल भारतीय स्तरपर पुरस्कृत कृतियोंतक सीमित रखा गयाहै। सभी भारतीय भाषाओंको ध्यानमें रखते हुए पुरस्कार योग्य कृतियोंका चुनाव हमारी जानकारीमें केवल दो संस्थाएं कर रही हैं, भारतीय ज्ञानपीठ और साहित्य अकादमी। भारतीय ज्ञानपीठ केवल सभी भारतीय भाषाओंमें से किसी एक भाषाकी कृतिको पुरस्कार प्रदान करताहै, जबकि साहित्य अकादमी बाइस भाषाओंकी बाइस कृतियोंको पुरस्कृत करतीहै। भारतीय ज्ञानपीठकी पुरस्कार योजना निजी अनुष्ठान है, इस अनुष्ठानने विशिष्ट प्रतिष्ठा अर्जित कीहै। साहित्य अकादमी पुरस्कार योजना राजकीय उपक्रम है, यथासंभव मान्यता प्राप्त प्रत्येक भाषाकी एक कृतिको पुरस्कृत और सम्मानित करनेका प्रयत्न किया जाताहै। दोनों संस्थानों द्वारा १९८३ के लिए पुरस्कृत कृतियोंकी समीक्षाएं इस अंकमें प्रस्तुत कीजा रहीहैं। हमें यह खेद अवश्य है कि संस्कृत, इण्डियन इंगलिश और उर्दू कृतियाँ उपलब्ध न होपानेसे उनकी समीक्षाएं इस अंक में नहीं जासकी।

जैसाकि हम गत वर्ष निवेदनकर चुकेहैं। विभिन्न भारतीय कृतियोंकी समीक्षाएं एक स्थानपर प्रस्तुत करनेका हमारा उद्देश्य भारतीय एकात्मताके दर्शन करनाहै। इस सांस्कृतिक एकात्मता दर्शनमें क्षेत्रीय और प्रादेशिक विशिष्टताके भी दर्शन होजाते हैं। विशिष्टता भाषा और शैलीकी है, तो समानता पृष्ठभूमि और चिन्तनकी है। जीवनकी समान विसंगतियों को उभारनेमें पूरा भारतीय साहित्य सजग है। समान पीड़ाओं, समान अभावों, समान त्रासद स्थितियोंके चित्रण सभीमें हैं। तुलनात्मक रूपसे कहें तो हिन्दी कवि सर्वेश्वर मानवीय त्रासदीके बीच सही व्यवस्थाको

तलाश रहेहैं, राजस्थानी कवि मोहन आलोक मूल्य-हीनता और विसंगतियोंके शब्दचित्र खींच रहेहैं, असमी कवयित्री निर्मलप्रभा बारदलै निरन्तर शोषित होते रहने की वेदना और जन-मनमें बसे भविष्यके आतंककी ओर इंगित करतीहै, बाङ्ला कवि शक्ति चट्टोपाध्यायका स्वर व्यवस्था और सामाजिक नैतिकताके विरुद्ध विद्रोह और विरोधका है, वे मानव-अस्तित्वके अर्थकी खोजमें है, अर्जुन शादके सिन्धी काव्यमें निर्वासन और देश-विभाजनकी पीड़ा मुखरित है, तेलुगुके रावूरि भर-द्वाज रेखाचित्र जीवित रहने और अपने अस्तित्वके लिए संघर्षशील लोगोंकी व्यथा-कथाएं हैं, यंशवन्त चित्तालकी कन्नड़ कहानियां व्यक्ति-व्यक्तिके बीच और जीवन और जगत्के बीच द्वन्द्वके चित्र हैं, मावजोकी कोंकणी उपन्यासिकामें अभाव यौर अर्थपीड़ासे उत्पन्न विचलनकी दिशापर उंगली रखी गयीहै, डॉ. हरेकृष्ण महताबके अनेक ओड़िया निबंध शोषित जन-जीवनका प्रश्न उठातेहैं। इन साहित्यकारों और बुद्धिजीवियोंने चाहे किसीभी विधाको अपनाया हो, कोईभी भाषा अभिव्यक्तिका माध्यम रहीहो, सभीका दुःख दर्द अखिल भारतीय है, सभी राजनीतिक और प्रशासनिक अस-फलता और अव्यवस्थाकी ओर संकेत करतेहैं और सभी परिवर्तनकामी हैं, परन्तु, सभी परिवर्तनके रूप और दिशाका संकेत करनेमें असमर्थ हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि परिवर्तनकी आकांक्षा होते हुएभी यह साहित्यिक वर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग किसी नयी निश्चित चिन्तनधाराका निर्माण करनेमें अलमर्थ रहा है, प्रचलित चिन्तन-दिशाओंके बारेमें अनिर्णीत है। अभी ये वर्ग मसि-लेखनीकी यान्त्रिकतासे मुक्ति नहीं पा सके और आयातित बाह्य चिन्तनों और प्रवृत्तियोंकी नवीनतापर मुग्ध है एवं उनसे अभिभूत हैं। यह प्रवृत्ति भी सर्वदेशीय है। मलयालमके डॉ. गुप्तन नायर अध्य-यनशील एवं गम्भीर चिन्तन-मननके समीक्षक माने जातेहैं, भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियोंके व्यापक अध्ययन एवं स्वतन्त्र चिन्तनसे प्राप्त अपने मौलिक विचार प्रस्तुत करतेहैं, नये ज्ञान-विज्ञानके आलोकमें साहित्य-समीक्षाको प्रकाम्य मानतेहैं, फिरभी उनकी धारणा है कि भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा पद्धतियाँ साहित्यको समझने, मूल्यांकित करनेके प्रयास है। परन्तु यह समस्त समीक्षात्मक 'नीर-क्षीर' विवेक आधुनिक सर्जनात्मक साहित्यकी मुख्य पीड़ा-परिवर्तन-ब्रह्मता

को लक्ष्यकर कोई बौद्धिक आधार या दिशा प्रदान नहीं करता। सर्जकके यथार्थ चित्रोंको पाठकतक प्रेषित करकेभी उसके प्रकाम्यका संकेत नहीं कर पाता। जो वस्तु लक्षित होतीहै वह है मात्र भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा पद्धतियोंके घेरेमें सर्जनात्मक साहित्य को बांधनेकी, जोकि आधुनिक सर्जनात्मक साहित्यकी घेरोंको तोड़नेकी प्रवृत्तिके ठीक विपरीत है।

गुजरातीके मनीषी चिन्तक डॉ. सुरेश जोशी डॉ. नायरकी भांति भारतीय और पाश्चात्यशास्त्रके अध्येता हैं। विश्लेषणात्मक चिन्तनभी समान रूपसे गंभीर है। पर उन्होंने अपनी कृति 'चिन्तयामि मनसा' में मानव केन्द्रित जो चिन्तन प्रस्तुत कियेहैं, वे अर्वाचीन सर्जनकी चिन्ताकी अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार आजकी सर्जन प्रक्रियाके वे अधिक निकट पहुंचतेहैं और भारतीय पाश्चात्य साहित्यशास्त्रके घेरेका अतिक्रमणकर जातेहैं। वे यह स्वीकार करतेहैं कि आधुनिक साहित्यकारोंने 'यथार्थ' की स्थापना तो कीहै, पर साथही साहित्य-कारोंपर अपने आग्रह स्थापित करनेका आरोपभी लगायाहै, जोकि प्रतिबद्ध-साहित्यका ध्यान आतेही तथ्यात्मक प्रतीत होताहै। डॉ. जोशीकी मान्यता है कि अर्वाचीन परिस्थितिमें भी ज्ञान-विज्ञानके विकासके साथ राजनीति-अर्थनीतिके प्रदूषणके बीच धार्मिक श्रद्धाका स्थान एक और श्रद्धाने ले लियाहै जिसे उन्होंने 'राज-नीतिक-श्रद्धा' का नाम दियाहै। इस नयी श्रद्धाने मानव-मानवमें सन्देहकी वृद्धिकर नैतिक आग्रहोंको असंगत बना दियाहै। इस मान्यताकी दृष्टिसे सर्जक अधिक श्रद्धालु है क्योंकि डॉ. जोशीके अनुसार वह अपने आसपासके समाजसे, कल्पनासे एवं इन सबको अतीत एवं वर्तमानसे गुम्फितकर इच्छित सौन्दर्य शब्द-बद्धकर प्रस्तुत करताहै। सर्जककी संवेदना और समी-क्षक-आलोचककी बौद्धिकता और चिन्तनमें विद्यमान विसंगतियोंके बीच यह चिन्तन सेतुका काम करताहै। इसी कारण डॉ. जोशी अर्वाचीनताके साथ 'अनु-अर्वा-चीनता'की चर्चा करतेहैं जहाँ सर्जककी चिन्ता-पीड़ा किसी समाधानकी तलाशकर सके। अस्तित्वके लिए केवल संघर्ष अपर्याप्त है, अस्तित्वको सौन्दर्य और शिव के साथ संयुक्त होनाहै, इसकी चिन्ताभी साहित्यमें आवश्यक है।

स्पष्ट है कि इस चिन्ताके प्रतिभी भारतीय

साहित्य समान रूपसे जागरूक है। फिरभी कुछ पीड़ाएं केवल क्षेत्रीय रूपमें उभरीहैं। चिन्ताके रूपमें ये राजनीतिमें भी प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न रूपमें उछाली गयीहैं। 'निर्वासन' की पीड़ा उनमें से एक है, जिसे लेकर अर्जुन शाद अपने काव्यमें उपस्थित हुएहैं। यह यथार्थ है कि सिन्धसे निर्वासित पुरानी पीढ़ी आजभी अपनी पीड़ासे मुक्ति नहीं पा सकी, एक टीस है जो निरन्तर उसे सालती रहतीहै। यह पीड़ा उसे अपने वर्तमान परिवेश और समाजसे पृथक् रखे हुएहैं। यद्यपि आज उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सुरक्षा पहलेसे अधिक उपलब्ध है, फिरभी एकाकी है। राजनीतिक स्तरपर निर्वासनकी प्रक्रिया नयी नहीं है। ये निर्वासन अधिकतर त्रासद स्थितियोंमें बलात् हुएहैं, इसलिए इनके साथ यातनाओंकी स्मृति जुड़ीहै। इसराईली समाज की क्रूरता पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित ऐतिहासिक स्मृति से जन्मी है, जबकि उस क्रूरताके शिकार फिलस्तीनी अपनी नव-अनुभूतियोंके कारण संघर्षकर रहेहैं। साहित्य की अभिव्यक्तिके क्षेत्रमें फिलस्तीनी सहानुभूति पीड़ा की पात्र मानी जातीहै, अतीत और वर्तमानकी इसराइली पीड़ा उपेक्षणीय। पूर्वी बंगालसे बलात् निर्वासित जन-समाजकी पीड़ाका स्वर सुनायी नहीं देता। सभी वर्गोंकी पीड़ा एक है, पर पीड़ा मुखरित तभी होतीहै जब वह शूल बनकर निरन्तर सालतीहै।

इस निर्वासन और एकाकीपनकी पीड़ाको अपनी विशिष्ट राष्ट्रीयताकी पहचान करानेका प्रयत्न और अस्मिताकी छटपटाहटभी बताया गयाहै। साहित्यमें यह किसी आन्दोलनके श्रीगणेशका संकेत है अथवा मार्क्सवादकी प्रचारित परिकल्पनाका प्रभाव, यह स्पष्ट नहीं है। इसे स्मृतिमें सुरक्षित क्षेत्रीयता, भाषा और पुराने संस्कारोंके आधारपर अपनी पृथक् पहचान और पृथक् 'रूप-स्थापना' का प्रयत्नभी स्वीकार कियाजा सकताहै। संभवतः इसी प्रभावके कारण आजभी सिन्धीकी लिपि अरबी रखनेका आग्रह बना हुआहै, जबकि सिन्धी भाषा की मूल लिपि अरबी नहीं थी। संभव है इस प्रसंगमें इस पीड़ाके लिए यह उक्ति सार्थक सिद्ध हो 'कालः पिवति तद्रसम्।'

एक और पृथक् स्वर प्रीतमसिंह सफीरके पंजाबी काव्य 'अनिक विस्थार' में सुनायी देताहै। इस काव्य के समीक्षकोंने इसे रहस्यवादी कहाहै और रहस्यवादी अनुभवको दर्शन और धर्मकी पृष्ठभूमिमें निर्मित बताया जाताहै। यहभी स्पष्ट किया गयाहै कि सफीर कविताकी दार्शनिक पृष्ठभूमिके लिए 'गुरवाणी वेचार' का सहारा लेतेहैं। काव्यकी व्यापकताकी स्थापनाके लिए अध्यात्म, रहस्य और दर्शन का आश्रय तो लियाही जाताहै, समीक्षक इसे रेखांकितभी करतेहैं, पर यदि यह पृष्ठभूमि ग्रन्थ विशेष और इस कारण धर्म विशेषसे जुड़ जाये तो काव्यमें व्यापकता नहीं रह पाती और उसका भाव क्षेत्र संकुचित होजाताहै। इस संकोचनके कारण साहित्यका स्वरभी प्रभावित होताहै। सफीरकी कविता 'आज की रात' संकोचनके इस स्वरको उदाहृत करतीहै और उसकी व्यापकताके दावेको आहत। पंजाबी काव्यके जो उदाहरण हिन्दीमें समय-समयपर प्रस्तुत होतेहैं, वे अधिक उदात्त और व्यापक पृष्ठभूमि लिये हुएहैं। यहां संभव है यह कविकी विशिष्टता हो। इसे धार्मिक प्रभावका रूपभी स्वीकार कियाजा सकताहै और एक विसंवादी स्वरके रूपमें ग्रहण कियाजा सकताहै।

भारतीय साहित्यकी इन समग्र कृतियोंको एक साथ रखनेपर यह असंदिग्ध रूपसे कहाजा सकताहै कि यह सम्पूर्ण भारतीय साहित्य अपने समग्र रूपमें अपनी 'अस्मिता' की पहचान कराताहै, यत्र-तत्र विसंवादी स्वर भारतीय 'अस्मिता' के रूपको प्रस्फुरितही करतेहैं। भारतीय साहित्यमें आलोचना और समीक्षाका जो रूप अभीतक सामने आयाहै,वह आगत बाह्य प्रभावोंके कारण भारतीय साहित्यमें आत्मसात् नहीं होपाया और हमारी अस्मिताको नकारता प्रतीत होताहै, जिसे सर्जक और आलोचकके मध्य विद्यमान 'विसंगति' भी बताया गया है।□

× × ×

हमें खेद है कि प्रेसकी अव्यवस्थाके कारण प्रस्तुत अंक बहुत विलम्बसे निकल रहाहै। इसी विलम्बके कारण मार्गशीर्ष-पौष (नवम्बर-दिसम्बर) दोनों महीनों के अंक संयुक्तकर देने पड़ेहैं जो आर्थिक दृष्टिसे भी चिन्तनीय है। फिरभी, इस विलम्बके लिए हम अपने पाठकोंके क्षमाप्रार्थी हैं।□

सर्वदेशीय भाषा

□ हिन्दी

समवेतके समीकरणका कवि : सर्वेश्वर

चर्चित काव्य : 'खूंटियोंपर टंगे लोग'
कवि : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
प्रवक्ता हिन्दी विभाग,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
दमोह (म. प्र.)

सर्वेश्वरकी काव्य-यात्रा अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तीसरा सप्तक' से शुरू होतीहै। अपने 'वक्तव्य' में उन्होंने लिखाहै कि 'अभी तो मेरी पूंजी एक व्यापक संवेदना और ऊपरी आक्रोश है जो मेरे अन्तस्की सतह को छील जातेहैं और इसकी अभिव्यक्ति साधारण बोलचालकी भाषासे होजातीहै।' जाहिर है कि कालान्तरमें उनकी संवेदना व्यापकतर होती गयीहै और उनका आक्रोश अंतर्तमकी गहराइयोंमें रचपचकर पूरी पीड़ाके साथ भाषाकी सामर्थ्य लेकर उपस्थित हुआहै।

'तीसरा सप्तक' में 'रात-भर' कविता ध्यातव्य है—'रात भर/हवा चलती रही/मन मेरा स्मृतिके कब्जेपर/कसे हुए खिड़कीके पल्ले-सा/खुलता, बंद होता रहा/छड़ और दीवारके बीच, सिर पटकता, रोता रहा/खूंटीपर लटका/एक चित्र हिलता रहा/सेजपर कोई/चादर तान सोता रहा।'

संभवतः खूंटीपर लटका और हिलता हुआ चित्र कविके मनमें वर्षों उमड़ता-घुमड़ता रहाहै और कालान्तर में 'खूंटियोंपर टंगे लोग' का आधार बिन्दु बन गयाहै। उसने कविके अन्तस्की पर्तोंको बहुत भीतर तक छील दियाहै।

अपने प्रथम, स्वतंत्र संकलन 'काठकी घंटियां' में सर्वेश्वरने इस वैषम्यको अच्छी तरह भांप लियाथा 'एक ओर भूखी गौरैय्या/एक ओर नीला अजगर है।' बावजूद इसके, कविका दूसरा संकलन इस बातकी गवाही देताहै कि 'निडर आगे बढ़ो—/तुम्हारी राहमें/यह एक छोटा-सा बाँसका पुल है।' यह सच है कि 'बाँसका पुल' चरचराता-डोलताहै लेकिन कविकी 'सबल उत्कंठा और नवल आवेग' उसे आगे खींचतेहैं जिससे वह भयाक्रांत होकर पीछे नहीं लौटता। 'एक सूनी नाव' कवि की अंतर्मुखी भावनाओंको अकेलेपन, अवसाद और थकानके विविध स्तरों तक खींच ले आतीहै, फिरभी उसमें परिवेश एकदक छूटा नहीं है क्योंकि कवि कहता है—'आओ, हम अपनी राह बनायें/अपनी गढ़ी प्रतिमाएं/नावोमें भरकर सुदूर द्वीपोंमें ले जायें/शुरू करें नयी यात्राएं।'

'गर्म हवाएं' इस बातका ऐलान करतीहैं कि 'तिरपन करोड़ भौंहोंके बीच मातममें खड़ीहै मेरी कविता।' सत्ता द्वारा दीगयी तहखानोंकी यातना और दमनचक्र की पाशविकतासे क्षुब्ध कवि ईमानदार अभिव्यक्तिका खतरा उठाना शुरूकर देताहै—'एक गलत भाषामें/गलत बयान देनेसे/मर जाना बेहतर है/यही हमारी टेक है।'

'कुआनो नदी' में सर्वेश्वर ग्रामों और महानगरोंके वैषम्यको उजागर करतेहैं तथा उस खतरेके निशानका संकेत देतेहैं जहां हमें दो-टूक निर्णायक स्थितिका अभाव अस्तित्वके लिए घातक बन जायेगा क्योंकि 'फैसलेपर न पहुंचा हुआ आदमी/फैसलेपर पहुंचे हुए आदमीसे ज्यादा खतरनाक होताहै।

'जंगलका दर्द' उस बेतरतीब व्यवस्थाका दर्दहै, जहां शोषक 'भेड़िएकी आंखें सुर्ख हैं और भेड़िया गुर्राता है, इसलिए सर्वेश्वर संगठित सामूहिकताकी बात कहते हैं—'अब तुम मशाल उठा/भेड़िएके करीब जाओ/भेड़िया भागेगा/करोड़ो हाथोंमें मशाल लेकर एक-एक झाड़ीकी ओर बढ़ो/सब भेड़िए भागेंगे।'

इन तमाम संग्रहोंसे जाहिरहै कि सर्वेश्वरकी कविता अनुभूति संपृक्त चिंतन या चिंतन सम्पृक्त अनुभूतिकी देन है। उन्होंने परिवेशको देखा, जिया और भोगाहै।

'खूंटियोंपर टंगे लोग' की रचनाएं इस तथ्यका ठोस प्रमाण हैं कि सर्वेश्वरकी कविता मानवीय साक्षात्कार और संवेदनशील सामाजिक चेतनाकी कविता है। उसमें अपने गलत समयके भयानक परिवेशसे सीधी टकराहट और आक्रामकता है। वह मानवीय त्रासदीके बीच सही व्यवस्थाको तलाशतीहै। समसामयिक सच्चा-

इयोंसे जुड़कर सर्वेश्वरकी कविता विघटित मूल्योंके बीच एक सार्थक जिंदगीकी खोज है। उसमें खुदको नये सिरे से तलाशनेकी एक कोशिश है जिसे 'निजी पहचानका आग्रह' कहा गयाहै। इस संकलनमें सर्वेश्वरका बहुत सीधा किन्तु बेचैनीभरा प्रश्न है—

'खूंटियोंपर ही टंगा रह जायेगा क्या आदमी ?
सोचता, उसका नहीं, यह खूंटियोंका दोष है।'

दरअसल, ये खूंटियां अमानवीय जिंदगीकी शोषक स्थितितोंको बेनकाब करतीहैं जो ठीकसे जीनेभी नहीं देतीं, मरनेभी नहीं देतीं। हमारे एक-एक अंगको निष्प्राण और निर्जीव बना देतीहैं।

कवि यातनाके उस भयावह इतिहासको भूला नहीं है जो इन्सानी सरोकारसे दूर हमारे समूचेपनको खंड-खंड करताहै। यही कारण है कि आक्रोशसे तमतमाये चेहरोंको वह कुछ कर गुजरनेकी सक्रियता देना चाहता है—

'जंगलकी याद/अब उन कुल्हाड़ियोंकी याद रह गयी है जो मुझपर चलीथी/उन आरोंकी जिन्होंने/मेरे टुकड़े-टुकड़े कियेथे / मेरी सम्पूर्णता मुझसे छीन ली थी।'

जब 'हाशियेपर आदमी और जानवरोंकी एक साथ सूरतें' बन जातीहैं; अंधेरा और अपमान उसकी जिंदगी का समानार्थी बन जाताहै तब कविकी रचनाधर्मिता स्वाभिमान और आजादचेतनाकी ललकार बन जाती है। 'कुआनो नदी' में भी सर्वेश्वरने आदमीकी इस्पाती सामर्थ्य और संकल्प शक्तिको भास्वरता प्रदान कीथी —'स्वाभिमानसे मरते हुए आदमीकी/एक उपेक्षाभरी हंसी/बुलेटसे ज्यादा गहरा घाव करतीहै/एक लाशकी छाती/विजेताकी छातीसे ज्यादा चौड़ी होतीहै।'

कवि इस बातको बर्दाश्त नहीं करपाता कि पूरा देश काली अंधेरी खानोंमें बंद चासनाला होजाये। इसलिए उसमें मुक्तिकी छटपटाहट है और कर्मठ, संगठित गतिशीलताभी—

'खामोश मत देखो/भूखी लाशको खाली पड़े कटोरे-सा/या गोली मारे गये आदमीको/खून सने बोरे-सा/ ·· पढ़ो नंगी पीठपर/धूल जमी पसीनेकी धारको/क्रांतिके शिलालेख-सा/और उसे उठाओ जो बोझसे थककर गिर रहाहै लगातार बार-बार।'

कवि धुएँमें छिपी आगको बरकरार रखना चाहता है ताकि जहरीले दाँतोंसे निपटनेकी ताकत बनी रहे। वह समवेतके समीकरणको अच्छी तरह जानताहै—

'आहिस्ता मत चलो/दौड़ो/सब एक साथ/मिलकर/दौड़ो/नहीं वो मालगाड़ी राजधानी पहुंच जायेगी/और लौटनेपर तुम्हें अपनी झोंपड़ियोंमें/बच्चों और वृद्धोंकी लाशेंही मिलेंगी।'

चालाक व्यवस्थाकी हिंसक वृत्तिसे बचना आज सबसे बड़ी अनिवार्यता है क्योंकि 'जेलके भीतर/खड़े होकर उसने देखा/बाहर उससे भी बड़ी जेल है। समकालीन साहित्यमें आतंक,उत्पीड़न, असुरक्षा आदिके भयावह यथार्थको अपने-अपने ढंगसे हर सार्थक रचनाकारने अभिव्यक्तिदी है।

सर्वेश्वरकी कविता 'जुल्मके नक्शेपर आजादीके ठिकाने' खोजतीहै। जिस तरह मुक्तिबोधने 'प्रत्येक वाणीमें महाकाव्यकी पीड़ा' को सुनाथा और व्यक्तिको सामूहिकता देते हुए कहाथा कि 'कभी अकेलेमें मुक्ति नहीं मिलती, यदि वह है तो सबके ही साथ है', उसी तरह तानाशाही और साम्राज्यवादी ताकतोंसे निपटनेके लिए संगठित शक्तिका उद्घोष सर्वेश्वरने किया है—

'अन्यायकी लड़ाईमें/कोईभी नहीं छोड़ा जासकता अकेला/चाहे वह आदमी हो या मुल्क।'

संकलनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं—कोट, मोजा और दस्ताने/कोटकी सार्थकता उसके पहने जानेमें है, तभी उसे संपूर्णता और ऊष्माका एहसास होताहै। वह खूंटीपर टगनेकी संज्ञाहीन आजादी नहीं चाहता क्योंकि उसका अपनत्व और लगाव उसे इन्सानसे है जो भूकम्प लानेवाली ताकतोंकी खोजमें बाहर गयाहै। उसकी सुरक्षाके लिए कोट चाहताहै कि—

'उसकी हर चोट मेरी हो/उसका हर घाव पहले मैं झेलूं /उसका हर संघर्ष मेरा हो/मैं उसके लिए होऊं/ इतनाही मेरा होनाहो।' क्या इंसानकी संवेदनाएं कोटकी इन आकाँक्षाओंकी समानता नहीं कर सकती?

इसी भूमिकापर 'मोजा' अपना दायित्व समझताहै। उसे हर तरहसे पैरोंकी हिफाजत करनीहै—'मैं उन पैरों के साथ रहूं/उन्हें गर्म रखूं/और जूतेके कठोर स्पर्शको खुद झेल सकूं।' लेकिन जूतेमें निष्क्रिय पड़ा मोजा फुदकती चिड़ियासे कहताहै—'मैं खुद इस धरतीका स्पर्श करना चाहताहूं···यदि यह धरती इंसानके लायक न रही हो तो मुझे चोंचमें दबाकर कहीं और लेचलो।' एक मोजा धरतीपर इन्सानियतकी याद दिला रहाहै। कविने बेजान दस्तानोंके बहाने बर्बरता और क्रूरता के खिलाफ शोषितोंको खड़ाकर दियाहै।

ये रचनाएं मानवीय सदाशयता और सामाजिक

आशयकी गहरी पकड़के साथ प्रतीकों और बिम्बोंमें अद्वितीय हैं—

'जिसे तुम/मरी ऊनके रेशे समझ रहेहो/वे अब धड़कती रगें हैं/उनमें खून दौड़ ही नहीं रहाहै/खौल रहा है/तानशाहोंको सबसे बड़ा खतरा दस्तानोंसे ही होताहै/अब तुम बच नहीं सकते/बहुत देर होचुकीहै।'

ग्राम्य जीवनके दहशतभरे परिवेशको सर्वेश्वरने बहुत बारीकीसे उकेराहै। कविका अंतर्मन यहाँके भीतरी-बाहरी यथार्थको पहचानकर आतंक, निराशा और उदासीके बीच जूझते आदमीकी तस्वीर पेश करना चाहताहै क्योंकि अब 'जंगल और वहशी होतेजा रहेहैं और चाबुक और दर्दनाक।' 'गांवका सपेरा' इसी भावभूमिकी कविता है। क्रूरताओं, यातनाओं और कर्जोंके लिबासमें बेइज्जत इन्सानोंकी व्यथा इस रचनामें छुपी हुईहै। कुछ पंक्तियाँ इस तरह हैं।

'अब चारों तरफ रेतही रेत है। और राह बेहद लम्बी होगयीहै/नदी कहीं दूर चली गयीहै/चाँदनी, कोहरा, मछुआरे, बच्चे/नावें अंधेरे जंगल सब निस्तेज होगयेहैं/विदूषक अपना चेहरा भूल गयेहैं/और उदार किसान/शहरकी महिमा नहीं बखानता/वहांसे दवाकी शीशियां लेकर/बैठा अंधी आंखोंसे घूरता रहताहै/फिर भी मैं तुम्हें/अपने गाँवका सपेरा दिखाना चाहताहूं।

बावजूद इसके, सर्वेश्वर आस्था, जिजीविषा और पुरुषार्थ—प्रेरणाके कवि रहेहैं क्योंकि 'मैं हर झरनेका हर पत्थर हटाऊंगा' और 'अब मैं सूरजको नहीं डूबने दूंगा' आदि रचनाएं मानवीय अवमाननाके खिलाफ मुक्तिके संकल्पको रेखांकित करतीहैं : सूरजके रथसे वह स्वाधीनता, साहस, कालातीत प्यार और मानवीय चेतनाका सम्यक् विस्तार इस धरतीपर लाना चाहता है। इसलिए—

'घबराओ मत—/मैं क्षितिजपर जा रहाहूं/सूरज ठीक जब पहाड़ीसे लुढ़कने लगेगा/मैं कन्धे अड़ा दूंगा/देखना वह वहीं ठहरा होगा/अब मैं सूरजको नहीं डूबने दूंगा/'

रचनाकारका मन व्यापक भाव-भूमिपर अपने दुख-दर्दमें समष्टिके दर्दको पाजाताहै—'दुख है मेरा/सूरजकी तरह प्रखर/उसकी रोशनीमें सारे चेहरे देख लेताहूं।'

इस संकलनकी नितान्त निजी रचनाएं भी स्वस्थ सामाजिक परिप्रेक्ष्य लेकर चलतीहैं क्योंकि इनमें कवि प्यारभरी दृष्टिको मशालकी तरह जलाकर उसके प्रकाशमें शत्रुओंके सही-सही चेहरे जानलेना चाहताहै। 'स्वेटर' और 'चलो घूम आयें' इसी तरहकी रचनाएं हैं।

सरलीकरण, सपाट कथन, वक्तव्य, निष्कर्ष और संदेश देनेकी आदतके बारेमें कई समीक्षकोंको सर्वेश्वरसे शिकायत रहीहै। किसीने उनमें 'वैचारिक उत्तेजना और प्रतिक्रियाएं' देखीहैं, किसीने संवेदनाके दबावकी अपेक्षा उनमें नागरिक दायित्वका दबाव' ज्यादा महसूस किया है, किसीने सर्वेश्वरमें 'तमंचाई उग्रता' के स्थानपर हार्दिक सहानुभूतिका इजहार कियाहै' आदि। लेकिन सच्चाई यह है कि सर्वेश्वरमें सहज आत्मीयताके साथ असाधारण अर्थ-संकेत है। नयी कविताके कतिपय कवि दुर्बोध जटिलता और दार्शनिक मुद्राओंके शिकार हुएहैं किन्तु सर्वेश्वरमें सम्प्रेषणकी कलात्मक सादगी है। घनीभूत संवेदनशीलताके साथ भीतरतक धंसने और उद्वेलित करनेकी भाषा-सामर्थ्य है। वे सूत्रोंमें बोलने लगतेहैं जैसे—'जब लाश घरमें पड़ीहो तो आँगनकी चिड़ियोंकी चहचहाट नहीं सुनायी देती, ढोल सुननेवाला मरी खाल के बारेमें कब सोचताहै, वेगसे फेंकी गयी रेतभी चोट करतीहै, उद्वेलनही जीवनका उज्ज्वलतम क्षण है।'

हमें इस तथ्यको ध्यानमें रखना होगा कि सर्वेश्वरमें सामाजिक सत्य और सामाजिक यथार्थका मेरुदंड इतना शक्तिशाली है कि हिन्दी साहित्यके विभिन्न आँदोलनोंके प्रभावमें उनकी कविता कहींभी दलबदल करती प्रतीत नहीं होती। उनकी क्रांतिधर्मी चेतना कमजोर जमीनपर खड़ी नहीं है। कुल मिलाकर, इस संकलनमें वैचारिक खुलेपनके साथ व्यक्तिकी संघर्षशील जनचेतनाका उद्‌घोष है। क्रांतिका शिलालेख है। मानवीय रिश्तोंको तोड़नेवाली उत्पीड़ित जिंदगीके खिलाफ रचनात्मक संभावनाओंकी एक जबरदस्त कोशिश है। जनतांत्रिक मूल्योंकी उभरती तस्वीर है। एक बात और—

'तीसरी सप्तक' में सर्वेश्वरने लिखाथा 'कविता अपना वक्तव्य स्वयं देतीहै। कविकी वकालत उसके लिए जरूरी नहीं है क्योंकि आगेभी यदि उसे (कविता को) कहनाहै तो अपना 'वक्तव्य' स्वयं देना होगा। कवि सदैव साथ नहीं रहेगा।' शायद यही कारण है कि तीसरा सप्तकके अलावा किसी संग्रहमें कविने अपना वक्तव्य नहीं दिया। ठीकभी है, ज्यों-ज्यों समय निकलेगा, ये कालजयी रचनाएं और अधिक अर्थवान् होती जायेंगी यानी शमशेरके शब्दोंमें 'बात बोलेगी, हम नहीं, भेद खोलेगी बातही।' सच है कि अब कवि हमारे साथ नहीं रहा किन्तु रचनाएं बोलती आयीहैं और निरंतर बोलती जायेंगी। □

मध्यांचलीय भाषाएं

- मैथिली
- राजस्थानी

मैथिली पत्रकारिताका इतिहास

कृति : 'मैथिली पत्रकारिताक इतिहास'
कृतिकार : पं. चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'

समीक्षक : प्रा. गौरीकान्त झा,
मैथिली विभाग, पूर्णियां
कालेज, पूर्णियां (बिहार).

साहित्य अकादमीने १९८३ वर्षका मैथिली पुरस्कार प्रदान किया 'मैथिली पत्रकारिताक इतिहास' को। लेखक पं. श्री चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर' की गणना मैथिली भाषा और साहित्यके मूर्धन्य कवियोंमें की जातीहै। मैथिलीके नवजागरणसे इनका निकटका सम्बन्ध जीवनके आरम्भिक कालसे ही रहाहै। समीक्ष्य कृति कृतिकारकी जीवन-व्यापी साधनाकी सिद्धि है (प्रकाशकीय वक्तव्य, मैथिली पत्रकारिताक इतिहास)

समीक्ष्य कृतिमें मैथिली भाषा और साहित्यकी एक बिशाल कालावधिका इतिहास अन्तर्भुक्त है। इसे पत्रकारिताका इतिहासके बदले 'मैथिली पत्र-पत्रिकाओंका सामान्य विवरण' ही कहना उपयुक्त होगा। वस्तुतः इस कृतिमें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंसे मिथिला-मैथिल-मैथिली सम्बन्धी समकालीन गतिविधिका विवरण प्रस्तुत किया गयाहै।

मैथिली भाषा और साहित्यमें पत्रकारिताका विकास नाममात्रका ही हुआहै। ऐसी स्थितिमें पत्रकारिताके ऐसे विशालकाय इतिहासकी प्रस्तुति घोर आश्चर्यका विषय है। समीक्ष्य कृतिमें इतिहासकी प्रस्तुतिके क्रममें उद्धरणोंका आधिक्य सदैव खटकता रहताहै। उद्धरणोंके आधिक्यके कारण साहित्यिक पाठकको अध्ययनकी क्रमबद्धता बनाये रखनेमें असुविधा होतीहै। यह अलग बात है कि अनेक दुर्लभ पत्र-पत्रिकाओंके उद्धरण पुस्तककी उपादेयताको बढ़ा देतेहैं। पुस्तक सरल-सहज भाषामें लिखी गयीहै। एक अनुभवी एवं सधे हुए लेखकके निजी साहित्यिक अनुभवोंका संग्रह होनेके कारण इसकी अपनी एक अलग विशिष्टता है।

आधुनिक युगको पत्र-पत्रिकाओंका युग कहा जाताहै। भाषा एवं साहित्यके विकासमें इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहीहै। वैसे कितनी तो अल्पजीवीही रहीहैं, जिसका पर्याप्त प्रभाव साहित्यपर भी यदा-कदा पड़ता रहताहै। मैथिली पत्रिकादिके अध्ययन-अनुशीलनसे भाषा और साहित्यके अध्येताको इसके विकासक्रमको समझनेमें पूर्ण सहायता और सुविधा मिलेगी। प्रायः इसी उद्देश्यसे कृतिकारने प्रस्तुत पुस्तककी रचना कीहै। मैथिली पत्रकारिताके इतिहास और पत्र-पत्रिकाओंकी स्थितिको देखकर इतना तो अवश्य कहा जायेगा कि अद्यावधि मैथिली पत्रकारिता प्रयोगात्मक प्रक्रियाके जालसे बाहर नहीं आसकीहै। मैथिली पत्रकारिताकी आजतक की उपलब्धियोंकी चर्चा करतेहुए कृतिकारका वक्तव्य, "इसने पत्रकारिताके विकासकी सम्भावनाको जीवित रखाहै"—से मैं पूर्णतः सहमत हूं।

मैथिली पत्रकारिताका इतिहास अपने नवें दशकमें प्रवेश कर चुकाहै। इसका इतिहास प्राचीन नहीं है। फिरभी इतने अल्प समयमें ही इसने भाषाके साहित्यिक मापदण्डको स्थिरता प्रदान करनेमें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कीहै। वस्तुतः मैथिली भाषामें पत्रकारिताका आरम्भ १९०५ से हुआहै। इस आठ दशककी कालावधिमें शताधिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआहै। आलोच्य कृतिमें लेखकने १९०५-७९ तक अर्थात् ७५ वर्षके इस कालखण्डमें प्रकाशित कुल ८७ पत्र-पत्रिकाओंकी चर्चा कीहै। लेखक द्वारा इस पुस्तक में विभिन्न अवसरोंपर प्रकाशित स्मारिकाओंकी चर्चा न किया जाना एक मायने रखताहै, पर हस्तलिखित पत्रिकाओंकी, जो कुछ उत्साही युवजनों द्वारा समय-समयपर निकाली जाती रहीहैं, चर्चा अपेक्षित थी। नेपाल समेत पूर्वोत्तर भारतके भाषा-समूहमें प्राचीनतम, अनेक उपभाषाओं की जन्मदात्री, अनेक क्षेत्रीय भाषाओंकी पथ-प्रदर्शक मैथिली भाषामें अनेक प्रकारकी पत्र-पत्रिकाओंने समय-समयपर जन्म लेकर अपनी ऐतिहासिक महत्ताको स्थापित कियाहै। कुछेकने समाज और राष्ट्रको पर्याप्त प्रभावितभी कियाहै। लेखकने इन सबका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थमें कियाहै ताकि मैथिलीके विकासमें इन सबके योगदानपर प्रकाश पड़ सके। इन पत्रिकाओंने साहित्यिक श्रीवृद्धिके साथ-साथ राजनीतिक अधिकार प्राप्तिकी दिशामें अपनी विशिष्ट भूमिकाका निर्वाह कियाहै। इन सभीका अस्तित्वही समीक्ष्य कृतिकी उपलब्धि है।

आधुनिक युगका श्रीगणेश चन्दा झाके आविर्भावसे माना जाताहै। डॉ. ग्रियर्सनने जो चेतना जागृत कीथी, चन्दा झाको उसे आगे बढ़ानेका श्रेय प्राप्त है। पत्रकारिता का आरम्भभी उन्हींके युगमें हुआथा। लेखकने जिस ७५ [illegible] मैथिली पत्रकारिताकी कालावधिका अध्ययन-अनु-

शीलन प्रस्तुत ग्रन्थमें कियाहै, वस्तुत: इससे कृतिकी उपादेयता बढ़तीहै। आरम्भिक कालके रचनाकारोंने जो मात्र इन पत्रिकाओंके लिएही लिखा करतेथे, इसी बहाने बहुत कुछ लिखा। अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन इसी रूपमें सम्भव हो सका। पत्रिकाओंका वर्ण्य विषय अनमेल विवाह और काटर प्रथाके विरुद्ध आन्दोलनात्मक रुख रहा करताथा। लेकिन इन सामाजिक कुरीतियोंपर पत्र-पत्रिकाओंका प्रभाव नहींके बराबर पड़ा। पर यह तो निश्चित है कि भाषाके संरक्षण और गद्यके विकासमें इन सबका योगदान अमूल्य कहा जायेगा। इन्हीं पत्र-पत्रिकाओंका सहारा पाकर साहित्यिक विभिन्न विधाओंकी रचना विद्यापति युगसे लेकर अद्यावधि होती रहीहै। राजनीतिक चेतनाका संवाहकभी रहनेका गौरव प्राप्त है इन पत्र-पत्रिकाओंको।

समीक्ष्य कृति अनेक शीर्षकोंमें विभाजित है। लेखकने पत्र-पत्रिकाओंकी विभिन्न स्थितियोंकी चर्चा भिन्न-भिन्न शीर्षकोंके अन्तर्गत कीहै। ये हैं--'समाज जीवनपर पत्र-पत्रिकाक प्रभाव', 'स्वरूप पत्र-पत्रिकाक प्रकाशन ओ सम्पादनक उत्तरदायित्व', 'पत्रकारिताक आरम्भ', 'भारतीय भाषा ओ पत्रकारिता', 'मैथिली पत्र-पत्रिका : विवरण ओ विवेचन', आदि। 'मैथिली पत्र-पत्रिका : विवरण ओ विवेचन' मध्य पत्र-पत्रिकाओंका अध्ययन अलग-अलग किया गयाहै। ये हैं, दैनिक पत्र, मासिक पत्र-पत्रिका, त्रैमासिक पत्र-पत्रिका, अर्द्धवार्षिक पत्र-पत्रिका, अनियतकालीन पत्र-पत्रिका, नेपाल से प्रकाशित किछु पत्र-पत्रिका आदि। और अन्तमें उपसंहार है। कुछ महत्त्वपूर्ण बातोंका उल्लेख परिशिष्टमें कर दिया गयाहै।

और अन्तमें, लेखक पत्रकारिताको समाजकी मुख्य धारासे जोड़नेके भी पक्षधर हैं। कतिपय राजनीतिक कारणों से मिथिलाको खण्डित करनेके प्रयासको विफल करनेसे सम्बन्धित अनेक सुझाव लेखकने दियेहैं। समीक्ष्य कृतिके अध्ययन-अनुशीलनके पश्चात् यह कहाजा सकताहै कि मैथिली भाषा और साहित्यकी प्रगति एवं विकासमें इन पत्र-पत्रिकाओंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। ७५ वर्षमें अभूतपूर्व ढंगसे इन पत्रिकाओंने साहित्यकी अभिवृद्धिमें योगदान दिया। इन पत्रिकाओंने साहित्यिक अनुष्ठानका भार अपने ऊपर ले लियाथा। इनके उद्देश्य ऊँचे थे, महान् थे—सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक क्षेत्रमें जनसामान्यमें नयी चेतना, नयी स्फूर्ति जगानेका भार इन्हींका था। इन पत्र-पत्रिकाओंकी सेवा अविस्मरणीय है। आरंभिक कालसे अद्यावधि प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओंका विश्लेषण-विवेचन प्रस्तुतकर लेखकने कृतिकी महत्ताके साथही अनुसन्धित्सुका मार्ग प्रशस्त कियाहै। □

विसंगतियों और मूल्यहीनताका शब्द-चित्र

कृति : 'ग-गीत'

कृतिकार : मोहन आलोक

समीक्षक : बी. एल. माली 'अशान्त'

सम्पादक : 'झुणझुणियों'.

कविता कविकी पहचान है। और कविताके लिए कविता होनाही पहली शर्त है। अगर कविता उस शर्तको स्वीकार नहीं करती तो कविता कविताके मानसे नीचे उतर जातीहै। राजस्थानी कविताकी बहुत सुन्दर एवं सशक्त परम्परा है। कन्हैयालाल सेठिया, मेघराज 'मुकुल', डॉ. नारायणसिंह भाटी, सत्यप्रकाश जोशी, सत्यप्रकाश सिंह देवल, डॉ. गोरधनसिंह शेखावत, प्रेमजी प्रेम, रघुराज सिंह हाड़ा इस परम्पराके सशक्त कवि हैं। कविताकी इस विशुद्ध परम्परामें 'ग-गीत' एक सुन्दर कड़ी कहीजा सकतीहै।

इस कविता संग्रहमें ५२ कविताएँ हैं, जिन्होंने पुस्तकाकार लेकर 'ग-गीत' का रूप लियाहै। कवि अपनी इन रचनाओंको प्रारम्भिक रचनाएँ यानी कविताके 'क ख ग' की तरह मानताहै। कविताएँ शीर्षकविहीन है।

'ग-गीत' के कवि मोहन आलोक राजस्थानमें अपने 'डांखळो' छंदकी वजहसे बहुत लोकप्रिय हैं। इस छंदमें हास्यका पुट होनेकी वजहसे यह गम्भीरतासे अपना अधिक संबंध नहीं रख सकता, इसी 'डांखळो' छंदके रंगका असर 'ग' गीतमेंभी उतर आयाहै। यह छंद तुकबंदीके सहारे चलताहै। मोहन आलोकने इसका कई साल निर्वाह कियाहै और 'ग-गीत' में इस छंदकी छाप बरकरार है। प्रारम्भिक २१ कविताएं इसीसे प्रभावित हैं। तुकबंदी अत्यधिक हावी होकर कविताके रूप-विन्यास एवं साज-श्रृंगारको अपनेमें आत्मसात् कर लेतीहै, फिर कहीं हास्यसे परिपूर्ण टूटे शब्द कविताकी आंतरिक भावनाओंपर भी प्रबल प्रहार कर देतेहैं।

कविकी कविताओंमें समसामयिक सभी समस्याओं, संगतियों-विसंगतियोंको शब्दोंमें ढाला गयाहै। आर्थिक विषमता, गरीबी, सेठ-साहूकारोंपर प्रहार, राजनीति एवं राजनीतिज्ञोंमें मूल्यह्रास, जीवनमूल्य, एवं आत्मनिर्भरताकी आवाजभी कविताओंसे निकलतीहै। परन्तु कहीं-कहीं तो किन्हीं कविताओंकी कुछ पंक्तियाँ क ख ग कविताओंमें अपनी श्रेष्ठता प्रमाणितकर देतीहैं। यहांपर कविका जीवनके प्रति दृष्टिकोण इन पंक्तियोंमें देखाजा सकताहै—

जीमण नै बैठां तो दुनियां दो कोया है
एकमें मांखी, दूजैमें बाल है।

कोया मानि ग्रास, मांखी मानि मक्खी और बाल यानि केश। दुनियां क्या है ? दो ग्रास। एकमें मक्खी और दूसरेमें बाल है। दोनोंही सही और खाने योग्य नहीं—आदमीके लिए। इसी बातको स्पष्ट रूपसे कवि कहताहै—

नाजोगां नै सोक्यां जोगा देख-देख,
दाब-दाब झाळ, भायला दिन काटा !

अर्थात् जो किसी योग्य नहीं उन्हें सबयोग्य देखकर भड़भड़ी आतीहै, परन्तु इस गुस्सेको दाब-दाबकर दिन व्यतीतकर रहेहैं। ऐसा क्यों ? कवि इसका स्पष्ट उत्तर देताहै—

ईं उडीक माथै कै ईं बस्तीमें भी
आवैला भूचाल भायला दिन काटां (पृष्ठ ९७)

इस प्रतीक्षामें कि इस बस्तीमें जहां ऐसा अन्याय हो रहाहै, वहांभी एक दिन भूचाल आयेगा, इसलिए आओ, मित्र ! दिन व्यतीत करें।

कविने गरीबीको भी देखा-परखाहै। गरीबोंके हाल वही है और कविके विद्रोही स्वर कवितामें उभर आये कि ये हाल अभी खत्म नहीं हुए—

मरिया कोनी हाल, भायला दिन काटां।

सर्वहाराके संत्रासको जीते कविने सेठोंके पेटोंकी बढ़ती गोलाईपर भी अपनी गिद्ध दृष्टि रखीहै—

सेठांरै तम्बू सै तण्योड़ै पेटांरी
घटसी कीं गोळाई, आवो भजन करां

भजनही क्यों ? क्योंकि सरकार इस साजिशमें शामिल है। 'भजन करां' में व्यंग्य है। जबकि आदमी मन मारे सब कुछ देखता चल रहाहै, जुबान नहीं खोलता, कवि

आरी मोनकूलड़ी (आत्मा) को कहताहै—लोग घास-फूसकी तरह खड़ेहैं, परन्तु हे कवि ! तू इसमें उजास भर, और खेत-खेतमें दीपक जगा !

आस पास घासनै उजास दे
खेत-खेतमें दिया चास दे ।

जब कवि ग्रामीण मानसको जीताहै और लोक संत्रासको भोगताहै तो कविता पीड़ासे सन जातीहै, दरदसे भर जातीहै । गांवका गरीब आदमी निहायत सीधा है, और सीधेपर सवार हर कोई हो जाताहै । कवि इस बातको अंकित करताहै—

सीधा है रूंख जिका कटसी ई
टेडा नै कारीगर नटसी ई
मांइ सू थोड़ो मुड़ रामूड़ा ।

रामूड़ा यहां जनमानसका प्रतीक है। कवि उसे मुड़ने यानि बदलने हेतु प्रेरित करताहै । और 'रामूड़ा' की हालत भोत खराब है। छ: विकास योजनाओंके बावजूद वह भूखा है । राजनीतिज्ञ उससे वोट हेतु हर साल मजाक करताहै । इसीलिए कवि उसे कहताहै तू जाग ! चेत !

क्यूं करै भूख सूं बांथेड़ा, कीं चेतो कर ।
क्यूं करै मौतरा दिन नेड़ा कीं चेतो कर । (पृष्ठ १०१)

तू जाग ! मौत तेरे नजदीक, और नजदीक आरहीहै। तू भूखकी बांहे घालनेकी क्यों चेष्टाकर रहाहै, कुछ तो जाग ! देख तेरा शिशु कितना दुबला हो गयाहै । उसके शरीरपर मांस नहीं है, केवल हांड दीख रहेहैं, इसका कारण देवी-देवताओंका दोष नहीं अपितु ये 'चेड़ें' चिपके हुए हैं उसके । दूध दवा सबमें मिलावट है—

थारै छोरै रै मोमांया रो दोस नहीं
बींरै चिपरया है ए चेड़ा, कीं चेतो कर ।

और अन्तमें कवि कविको भी कहताहै कि वह शब्दोंसे यथार्थको उजागर करे—

सब्द कांई पत्थर है
लियो
अर कलमरी करणी सू
कालमस मांय चिण दियो ।

शब्द कोई प्रस्तर खंड नहीं कि लिया और कलमकी करनीसे अंधकारमें चिन दिया । साहित्य दिशा देनेवाला होना चाहिये, सहित होना चाहिये, उसमें दिशा-बोध होना चाहिये । समझ और उजास होना चाहिये, परन्तु आज चेतनाको चींटियोंके पंख देदिये गयेहैं और दिशा—

चेतना नै दे' र निबळी
कीड़ियां री पांख
चांद दरसायो
अर आमै थमा दीनी आंख ।

कवितामें प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थामें व्याप्त दोषको भी शब्द दियेहैं—

पणहारां पै बैठग्या पलीत भायला
चिरलियांमें डूबग्या संगीत भायला
जीतग्या चुनाव चोर, च्यानणै नै चोर
खंड-खंड खुरसियां पै ऊगयायी थोर ।

अब अयोग्य और मानवीय मूल्योंके हन्ता लोग सत्तामें आगये तो उनसे मूल्योंकी आशा बेकार होगी, इसी वजहसे मूल्यहीनता सर्वत्र फैलतीजा रहीहै । इन्सानकी हालत तो ये पंक्तियां कह देतीहैं—

छोड़ छोड़ सरवरां पाळ गया हंस
ठोड़ ठोड़ ऊगियाया कागलां रा बंस ।

आदमी ज्योंही विमुख हुआहै जगह-जगह कौवोंके वंश उग आयेहैं ।

कविताओंके अलावा संग्रहमें चार गजल और दो **चतुष्पदियां** हैं । संग्रहकी २९ एवं ३० कविताएं पीड़ा एवं बिछोह भावको सशक्त शब्दोंमें लिये समर्थ कविताएं हैं । कई कविताओंमें दार्शनिकताभी झलकतीहै जैसे—

दिनमें परभात हुवैं-पूरब सूं
आयण नै रात हुवैं-पूरब सूं ।

और

दुखमें दुख री
सुखमें सुख री
बरसात हुवैं-पूरब सूं ।

आदमीकी भक्षण प्रवृत्तिको लेखकने थोड़ेमें ही व्यक्त कर दियाहै जो उल्लेखनीय है—

सांप हां, उन्दरा रै बिलमें बड़ा । (सर्प हैं, चूहोंके बिलमें प्रवेश करें ।

कवि इस भक्षण प्रवृत्तिके खिलाफ है । अपने अन्तर्मन की बात चिड़ियाको सम्बोधितकर कहताहै—

दिनगे-दिनगे आ चिड़ी
म्हारै आलणै गा चिड़ी
रळ जावूं डारा चिड़ी
मानूं गुण थारा चिड़ी
कांई ठा थारै सुर गूंजै
भीतम भरियो मूंन ।

संग्रहके आधेसे अधिक पृष्ठोंमें यह पहली सशक्त कविता है। यहां कविका प्रकृतिमें रम जानेकी आंकाक्षा, चिड़ियोंकी 'डारों' के साथ मिलनेकी भावनामें वह है जो कि वह चिड़ियाको कहताहै—क्या पता तुम्हारे स्वरमें तुम्हारे भीतर भरा हुआ मौन गूंज रहाहो।

संग्रहके ५५ पृष्ठ तुकबंदी, शब्द-चयनमें चूकसे भरे हैं। शायद ये पृष्ठ क ख ग से प्रभावित कविताओंके भी होसकतेहैं। परन्तु इन पृष्ठोंके बाद यह चिड़ी प्रतीक लिये कविता समर्थ है। कवि कहताहै—हे चिड़ी! मेरे पास फगत कालमस है, तू चुपके-सी आ और उसे चुग जा। मेरा इस कालेपनसे पिंड छुड़ा। अपने इमरतको मुझे अपनी चोंचसे अपना शिशु जान पिला। परन्तु तुकबंदी एवं शब्द चयनकी चूकके भी कुछ छंद उल्लेखनीय हैं—

लू/ईरो बलज्या मूं/बाळ दियो मूं (पृष्ठ ४४)
सूरज···बळतो ओक **मिरड़ो**
मिरड़ै की लपटां में झुळसीजै **कीरड़ो**। (पृष्ठ ४४)

मिरड़ो-कीरड़ो तुकबन्दीके प्रयोग हैं तो 'बळज्या मूं बाळ दियो मूं' शिशु प्रयोग ठीक उसी तरह जैसाकि कवि कहताहै—

टींगरां रै गूंजियां में
कोयला है सब्द।

(शिशुओंके जेबोंमें शब्द कोयले हैं।) कविकी एक कविता देखिये :

फरवरी
जनवरी सूं बुरी है
रुत बसन्त री है। (पृष्ठ ४६)

तुकबंदी एक जगह फिर—

काकी री हंसली तोला तीसरी
साहू रै गिरवी रिपिया **बीसरी**

ऐसेही काला बादल धोळा बादल कवितामें गम्भीर भाव 'डांखळो' का असर लिये ये पंक्तियांभी—

रोवतड़ा रा रोज सुणै नीं
बणज्या जाबक बोळा बादल।

'जाबक' अर 'बोळा' दोनूं सब्दामें गम्भीरता निकलती महसूस होतीहै। कविताकी गम्भीरता बनाये रखने हेतु 'जाबक' की जगह 'साव' और 'बोळा' की 'बहरा' शब्दों का प्रयोग करते हुए किसी दूसरी पंक्तिकी रचनाकर भावोंको पिरोया जाता तो अधिक उचित होता।

कविता अन्तस्की आवाज है, भाषा कवितामें बाधक नहीं, कवि कहताहै—

भासा नैं जावणदे
भावां नैं आवणदे।

परन्तु कविका कविको संबोधन द्रष्टव्य है—

खुद ही समदर तूं
वाणी रो हार तूं।

और एक कवितामें शामका वर्णन अवलोकनीय है—

उजाळै पर सती होती
सुहागण सांझ जद
सिन्दुर सूं चोको तीपै देखां!

आंचलिक प्रयोगका सवेरा शायदही किसीने ऐसा देखा होगा—

भाभी उठी दे घमड़ीकी आखरी दिन निसर्‌यो।

यानि गांवोंमें औरतें आटा-चक्कियोंपर अनाज नहीं पिसवाती, रातको चार बजे उठती हैं और चाकीके पास आकर बैठ जातीहैं। सामान्य तौरपर वे तभीही उठती है जब सवेरा होताहै। जब वे उठतीहैं तो चाकीसे सारे दाने पीसने हेतु जोरसे हाथ चलातीहैं, चाकीको जोरसे घुमातीहैं, यह 'आखिरी घमड़की' कहलातीहै। कवि यहां सवेरेका आभास भाभीकी आखिरी घमड़कीसे करवाताहै जो निश्चयही अद्वितीय है। परन्तु इसी कवितामें आगे 'डांखळो' छंद आगया—

सूरज उचक
सीत रै कांधै
'त्या' करी
दिन निसर्‌यो। (पृष्ठ २०)

इसी कविता में इन पंक्तियोंमें भाभीकी आखिरी घमड़कीकी गूंज गुम होती प्रतीत होने लगतीहै। परन्तु गांवकी मौनको गूननेकी बात यहां उल्लेख योग्य है—

दीठ री पूण हद
दड़ा अर खेजड़ारी सून मांयनै गुणां
थाक्योड़ी पांखरो
एक सहज थाकेलो गुणां।

गांवकी मौन सामन्तशाहीका कारण है। कविकी कविता बखूबी यह बतातीहै—

'चोखलै' चमार री
'स्यान्तड़ी' साथै
हुयै बीं गजब नै गुणां! (पृष्ठ २४)

'चोखला चमार' 'स्यान्तड़ी' बीं गजब, तीन स्थितियां हैं जिनकी वजहसे गांव मौन हैं। और शोषणमें—

सांझ-सांझ पड़ ब्याज हुई।

(शेष पृष्ठ २८ पर)

पूर्वांचलीय भाषाएं

- असमिया
- ओड़िया
- नेपाली
- बाङ्ला
- मणिपुरी

जीवनकी अनन्य झांकियोंसे जीवन्त बहुवर्णी छटाका काव्य

कृति : 'सुदीर्घ दिन आरू ऋतु'
कृतिकार : डॉ. निर्मलप्रभा बरदलै

समीक्षक (१) नवारुण वर्मा
(२) डॉ. धर्मदेव तिवारी.

कवयित्री डॉ. निर्मलप्रभा बरदलैका समकालीन असमिया-साहित्यमें ऊँचा स्थान है। पचासवें दशकसे अबतक आप विभिन्न विधाओंमें साहित्य-साधनामें जुटी रहीहैं। प्रारम्भमें गीत-लेखिकाके रूपमें आप प्रतिष्ठित हुईं। उनके अनेक मधुर तथा ओजपूर्ण ललित-गीत जनताकी जबानपर उतर गयेहैं। असमिया बाल-साहित्यके विकासमें आपने अखंड योग दियाहै। अनेक बाल-कविताएं, रूपक तथा नाटक लोक-प्रिय हैं तथा राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिलाहै। पूर्व भारतके महान् सांस्कृतिक उत्तराधिकारके रूपमें प्रसिद्ध तांत्रिक-साधना एवं देवी कामाख्याकी सम्मोहक तथा ऐन्द्रजालिक रहस्यभूमिके रूपमें विख्यात असमकी देवीसे संबद्ध तत्त्वोंपर आपका शोध-कार्य उल्लेखनीय है। बहुमुखी प्रतिभा होनेपर भी डॉ. निर्मलप्रभा कवयित्रीके रूपमें ही ज्यादा चर्चित रहीहैं।

स्वतंत्रता-पूर्व असमिया काव्य एक ओर कल्पना-पूर्ण रोमांटिक भावना एवं राष्ट्रीय चेतनासे परिपूर्ण, भविष्यकी सुनहली आशाका संकेत देनेवाला था, आदर्शके प्रति आस्थाका स्वर उसमें था, परन्तु स्वातंत्र्योत्तर असमिया काव्य मोह-भंगकी आशा-निराशामें त्रिशंकु जैसा द्वन्द्वग्रस्त बना रहगया। राष्ट्रीय तथा सामाजिक परिवर्तनोंसे जन-जीवनमें व्याप्त विषमताकी खाई मिटनेकी बजाय और चौड़ी होती गयीहै, सामाजिक आर्थिक-प्रशासनिक पिछड़े-पनका अहसास जन-मानसको उद्वेलित करता रहाहै। प्राकृतिक अनन्य सौन्दर्य एवं सम्पदाके अधिकारी होनेपर भी, दूसरोंके द्वारा निरन्तर शोषित होते रहनेकी वेदना और भविष्यका आतंक जन-मनमें बसा रहाहै। पुराने हों या नये, सभी साहित्यकार कवि, इसीलिए वेदना-ग्रसित अनुभव करते रहेहैं। एक ओर अंग्रेजीके माध्यमसे पश्चिमी काव्य प्रवृत्तिका आयात करनेवाले कवि अभिनव बिम्बोंसे कविताको अधिक जटिल तथा दुर्बोधताकी ओर लेजा रहेहैं, दूसरे प्रगतिविदी-नामधारी कवि जन-भावनाके निकट पहुँचने तथा शोषितों उत्पीड़ितोंकी वेदनाको अभिव्यक्त करनेका दावा करनेके बावजूद काव्यात्माकतासे दूर मात्र नारेबाजीमें फँसे दीखतेहैं। तीसरे, विदेशी नागरिकोंकी अवैध घुसपैठके कारण चलनेवाले व्यापक आन्दोलनने अस्तित्वके संकटसे ग्रस्त जन-जीवनको गहरेतक प्रभावित कियाहै और इसके प्रभावसे कोई कवि अछूता नहीं रह सकाहै। कुछ कवि आतंकसे त्रस्त आत्म-मंथनमें जुटेहैं, तो कुछ जातिमें नव-जागरण-चेतनाके आग्रही हैं। यही कारण है कि समकालीन असमिया-काव्यमें स्वतन्त्रतापूर्व उद्बोधन का स्वर फिरसे गूँजने लगाहै, अस्तित्व-चेतनाका संघर्षोन्मुख रूप उभर रहाहै, यह अस्वाभाविक नहीं कि कई बार भावनाका उबाल महज भावोच्छ्वास और आक्रोशभर बनकर रह जाताहै, व्यंजना या काव्यात्मकता नहीं होती, तथापि कुछ ऐसे सशकत हस्ताक्षरभी उभरेहैं, जो उसे प्रतीकात्मक, व्यंजना-विभूषित काव्य-कला और रसात्मक भाव-भूमि प्रदान करनेमें जुटेहैं। 'सुदीर्घ दिन आरु ऋतु' की कवयित्रीमें भी यह चेतना उद्भाषित है। स्व. नलिनीबाला देवीके पश्चात् असमिया काव्य-शैलीको भाव एवं रूपकी दृष्टिसे उन्होंने अधिक संपुष्ट कियाहै। उनकी कविताएं निरंतर उत्कर्षकी ओर गतिशील रहीहैं। प्रारंभिक कविताओंकी भाव-भूमि 'प्रेम' होनेके बावजूद जड़-बंधन-मुक्तिकी व्याकुलता तथा नवीन अभिव्यंजना शैलीने सौन्दर्य-बोधका जो नया आयाम प्रस्तुत किया, उसने असम के काव्यप्रेमियोंको अनायास आकर्षित किया। अबसे लगभग चौदह-पन्द्रह साल पहलेसे ही आधुनिक भारतीय कविताके संकलनोंमें उनकी कविताएं भी समाविष्ट होकर चर्चित हुईं, फिरभी साठके दशकके अन्तिम हिस्सेसे ही कवयित्रीने प्रबुद्ध जनोंका अधिक ध्यानाकर्षण किया। सन् १९७८ में प्रकाशित उनके काव्य-संकलन 'अंतरंग' की समीक्षा करते हुए सुधी-समालोचक डॉ. चन्द्र कटकीने लिखा है— "पिछले कुछ सालोंमें निर्मलप्रभा बरदलैने अपने प्यारे

प्यारे कोमल-गीतों और कविताओंसे असमिया पाठकोंके दिलमें एक निजी जगह बनालीहै। मेरे विचारसे 'अंतरंग' के गीत जैसी लगनेवाली कविताएं उस क्षेत्रको और विस्तार देंगी।......इनकी अधिकतर कविताओंका मूल भाव है प्रेम, प्रेम यानी वैयक्तिक प्रेम, प्यार, हृदयकी मौन एवं मुखर आर्तता, प्रेम यानी विरह, विरहाशंका, विरहानल, भग्न-हृदयकी कातरता।" वस्तुत: गीतकी लयात्मकतासे प्रकृतिके मनोरम चित्रात्मक बिम्बोंके समन्वयके साथ-साथ सरिताकी उर्मियों-सी अविराम गतिका स्पदंन, असमके लोक-जीवनकी अनन्य झांकियोंसे निविड़ अतंरंग सान्निध्यसे जीवन्त बहुवर्णी छटाके अद्‌भुत-रमणीय-कमनीय प्रतीकोंकी नैसर्गिक प्रदीप्तिकी, निर्मल-प्रभाके काव्यकी प्रमुख विशिष्टता है।

असमके समकालीन कवि आलोचक डॉ. भवेन बरुवाने, जो इसके पहले साहित्य अकादमी पुरस्कारसे सम्मानित हो चुकेहैं, डॉ. निर्मलप्रभा बरदलैकी काव्यात्मक विशिष्टतापर प्रकाश डालते हुए कहाहै—डॉ. बरदलै उन मुट्ठीभर आधुनिक असमिया साहित्यकारोंमें एक हैं, जो असमके सांस्कृतिक ऐतिह्यके कमसे कम दो पहलुओंपर कुछ रसात्मक चिन्तन-विचार करती रहीहैं, तथा संगीत व कलाके क्षेत्रमें भी एक सजीव आन्तरिक आग्रहका परिचय देती रहीहैं। डॉ. बरदलैके हृदय स्थित रसात्मक ऐतिह्य-बोध एवं संगीत ने सही मानेमें जगह बना लीहै। ये सम्पदाएं विशेषतया कवि एवं रसज्ञके लिए देशी-विदेशी पोथी पत्रोंसे मिलनेवाले परिचयकी अपेक्षा अधिक सहायक शक्तियां हैं। दूसरी ओर एक संरक्षणवादी पुरुष-प्रधान प्यूरिटानिकल, सामाजिक मानसिकताकी अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष प्रतिकूलताओंपर ध्यान दिये बिना स्वच्छन्द, निर्बाध, आत्म-अभिव्यक्ति तथा आत्म-विकासका मार्ग अपनानेवाले एक प्रगतिशील नारी-मानसका आदर्शभी निर्मलप्रभा बरदलैके इस सामग्रिक परिचयमें समुज्वल है। और अबतक की असमिया महिला-साहित्यकारों में डॉ. बरदलैने ही साहित्यकी एकाधिक विधाओं तथा सांस्कृतिक सर्जनात्मक, चिन्तनात्मक एवं आनुष्ठानिक शिक्षणात्मक आदि एकाधिक पहलुओंको संग्रथित करने वाली एक व्यापक ढंगकी उल्लेखनीय सांस्कृतिक भूमिका अपनायी है। असमिया कवियोंमें उनकी सार्थकता प्राप्ति के तथा प्रत्यक्ष रूपसे प्रेम संबंधी उल्लेखनीय प्रांजल, स्वच्छन्द शैलीमें कुछ कविताएं लिखनेके मूलमें भी उनके भारतीय नारी-मानसके अन्दर इसी तरह व्यापक रूपसे सक्रिय, मुक्तिकी दिशामें उन्मुख आधुनिक-प्रवणताकी विशिष्ट भूमिकाका अनुभव कियाजा सकताहै।"

डॉ. निर्मलप्रभा बरदलैकी काव्य-चेतनाकी प्रमुख विशेषता है, प्रतीकों व चित्रात्मक बिम्बोंका प्रयोग, अद्‌भुत व्यंजना, संक्षिप्तता, शब्द-चयन नैपुण्य, गीतात्मकता एवं गहरी भावनानुभूति; इनकी कविताओंकी गीतात्मकता पहलेके कवियोंकी तुकान्त छन्दात्मकतासे भिन्न है, छन्दोंका बंधन न रहनेपर भी स्रोतस्विनीका निर्बाध प्रवाह उनमें व्याप्त है, यही प्रवाह और लय उनकी कविताकी जीवनी शक्ति बन जातेहैं और स्वर-लालित्यके संवेदन-स्पंदन द्वारा चित्तको अभिभूत करतेहैं। 'सुदीर्घ दिन आरु ऋतु' काव्य संग्रहमें ये विशिष्टताएं और अधिक उज्जल हैं।

इस संकलनको कविताओंकी चार बड़े शीर्षकोंमें रखा गयाहै :

(१) "बाटचरार कविता" याने प्रवेश-द्वारकी कविताएं, जिनमें नौ कविताएं है,

(२) "सुदीर्घ दिनर कविता" याने लम्बे दिनोंकी कविताएं, जिसमें तिरासी कविताएं हैं,

(३) "ऋतु" जिसमें बारह कविताएं हैं,

(४) "सुदीर्घ दिनर गान" याने लम्बे दिनोंके गीत, जिसमें दस गीत हैं।

आमुखमें ही कवयित्रीने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखाहै—

"जीवनसे बड़ी कविता और क्या है?

जीवन एक अनन्त कविता है—समझने न समझनेकी, चांदनीकी, आंधियोंकी, अप्राप्तिकी, पाकर खोनेकी, कोमलताकी, कठोरताकी, प्रकाशकी, अन्धकारकी, निस्संगताकी, असहायताकी, सत्यकथनकी, प्रतिज्ञाकी, सौन्दर्यकी स्वप्नकी, शोषणकी, दग्धताकी, कातरताकी, आर्तनादकी अश्रुओंकी...

'सुदीर्घ दिन' में प्रतिबिम्बित हुआहै जीवन, यह जीवन एकही समयमें वैयक्तिकभी है, सामाजिक-सामूहिकभी, दृश्य अदृश्य, गहरेसे गहरे हैं उसके अनुभव, विभिन्न तहों वाले, निजी पट-भूमिमें—

'ऋतु' में है इम्प्रेशन!

इस संकलनकी एक सौ चार कविताओंमें से सिर्फ ग्यारह कविताएं पूर्व-संकलनोंसे लाकर इसमें समाविष्ट की गयीहैं। शेष लगभग सभी कविताएं (जो किसी अन्य संकलनमें नहीं हैं) संन् उन्नीस सौ बयासीके विभिन्न अवसरोंपर रचित हैं। उन दिनों असममें था अस्वाभाविक प्रहर।

'बाटचरार कविता' (प्रवेश-द्वारकी कविताएं) मूल कविता-गुच्छके तोरण-स्वरूप हैं, 'ऋतु' की कविताएं दग्ध प्रहरमें जीवन-संधानमें खोये-मिले एक-एक ओसकण-से हैं, 'सुदीर्घ दिनर गान' को सहृदय पाठक "सुदीर्घ दिनर" कविताओं का 'विस्तार' (संगीतकी शब्दावलीमें) ही मानलें।"

इस संकलनकी अधिकतर कविताओंमें कविहृदयकी वेदना है। वैयक्तिक प्रेम एवं विरहकी पीड़ाकी प्रमुखता होनेपर भी देशकी अशान्त स्थिति और जन-जनकी वेदनासे उनका चित्त आक्रांत है। आहत शिशुको देख मातृत्व वेदनाकी गहरी तड़पसे वे चीत्कार कर उठतीहैं जिसमें अभिव्यक्त पीड़ित मानवताकी कराह अत्यन्त मार्मिक है— जैसे कालकी झाड़ूके सामने असहाय धूल जैसे उड़नेकी वेदना—

झाडूर आगर/धूलि/हबलै/मोर/बुकुत लागे/
झाडूर आगर/धूलि होवा/देखिले/मोर बुकुत लागे।

(मर्म वेदना)

यानी—

झाड़ूके सामनेकी/धूल बन जानेमें/
मेरे/दिलमें चोट लगतीहै/
झाड़ूके सामनेकी/धूल बनते/देख/
मेरे दिलमें चोट लगतीहै।

दुखकी बाढ़ कवि-हृदयको व्याकुलताके अगम सागरमें छोड़ जातीहै। उसे लगताहै, हो सकताहै, यह बाढ़ उतर जाये, फिर सूरज उगे, मगर तबतक क्या कुछ बचाभी रहेगा उस सूरजकी धूपका आनन्द पानेके लिए?

दुखर बानत हाउलि परिछे घर
तार उँवलि परिछे शिपा—
रद आहिबने/थाकिव ने बारू/
पँचा जपाटोत/रदत दिबले किबा।

(दुखर वानत)

यानी—

दुखकी बाढ़से तिरछा होगयाहै घर—
उसकी सड़ गयीहै जड़
क्या धूप आयेगी/क्या रहेगीभी/
सड़ी अड़कनपर धूपमें देनेको कुछभी।

संक्षिप्तता, निर्मलप्रभाकी कविताओंको अद्भुत रहस्यमय और अर्थगंभीर बना देतीहै। "देखनमें छोटे लगें, घाव करें गंभीर" को सार्थक बनानेवाली कविताएं कभी-कभी सूक्तियोंका रूप ले लेतीहैं और कभी 'हाइकू' का प्रभाव छोड़ जातीहैं। एक कविता है—

मरा गछे छां निदिये
हाय अन्ध!
मरा गछर मुखलै चाइये—
युग युग।

(युग युग)

यानी—

मरा हुआ पेड़ छाया नहीं देता—
हाय अन्धे!
मरे पेड़का मुख ताकता
युग युग।

कभी-कभी कवयित्री ऐसे प्रतीकोंका प्रयोगभी कर देतीहै जिनकी पृष्ठभूमि सम्पूर्ण-असमिया लोक-जीवन होतीहै। उनकी व्यंजकता उसीकी व्याख्यामें होतीहै। जैसे, कार्तिकके महीनेमें हर असमियाके सामने तुलसीके बिरवेके नीचे दिया जलाकर प्रार्थना कीजातीहै, वह दिया मानो सुखद भविष्यकी प्रतीक्षाका प्रतीक है जिसे सम्पूर्ण कार्तिक महीने का आधार दिया गयाहै—

अपेक्षार सुगन्धमयता—
तिर बिर तुलसी तलत।

(काति)

यानी—

प्रतीक्षाकी सुगन्धमयता,
झिलमिलाती तुलसीके तले।

इसके साथ हिन्दीके अज्ञेयकी 'दूजका चांद' तुलनीय है, यद्यपि दोनोंका संदर्भ भिन्न है—

"मेरे छोटे घर कुटीरका दिया
तुम्हारे मंदिरके विस्तृत आंगनमें
सहमा-सा रख दिया गया।"

कवयित्री निर्मलप्रभाकी कविताओंमें प्रश्नाकुल रहस्यात्मकताकी भी छटा दिखायी देतीहै, विश्व-रहस्यके अन्तस्तलमें झांककर वहभी अज्ञातका संधान पानेको अधीर-सी दीखतीहै—

मइ सुधिछिलों/मोर आकाश केनि/
समुखत तुमि धरिलाहि/नीला नयनर मणि/
मइ सुधिछिलों/मोर देवता केनि/
तुमि देखुवाला/पथर काषर/
सकरुण मुख खनि।

(आकाश देवता)

यानी—

मैंने पूछाथा/मेरा आकाश किधर है/

सामने तुमने करदीं/नीले नयनोंकी मणियां/
मैंने पूछाथा/मेरा देवता किधर है/
तुमने दिखलाये पथके किनारेके/
सकरुण वे मुख ।

भाव-तन्मयताके कारण कोई-कोई कविता बिल्कुल मनोरम सूक्ति या सुभाषितका रूप लेलेतीहै। जैसे—

जीवन एक शिल्प
एछटा शिलक
रूप दिया भाष्कर्यर
निजर लावण्यत
निजेइ हओक विभोर
सम्बोधन करक
मानवताक ।
मृत्युतकै
जीवन
डाङर ।

(जीवन शिल्प)

यानी—

जीवन है एक शिल्प
एक शिलाखंड
रूप दे देना मूर्तिकलाका
अपने लावण्यमें
स्वयं होवे विभोर
सम्बोधन करे
मानवताको
मृत्युकी अपेक्षा
जीवन बड़ा है ।

'सुदीर्घ दिन' की कुछ कविताओंमें समाज-जीवनका प्रबल आतंक अभिव्यक्त हुआहै। कवयित्रीका शंकित-हृदय मानों चीख उठताहै—

भयंकर सोंत/खेदि आहिछे/
समुखर परा/आतंकित/
पिठि दि/आतंकित/
भयंकर सोंत/खेदि आहिछे/
खेदि आहिछे ।

(भयंकर सोंत)

यानी—

भयंकर प्रवाह/खदेड़े आरहाहै/
सामनेकी ओरसे/आतंकित/
पीछेकी ओरसे/आतंकित/
भयंकर प्रवाह/खदेड़े आरहाहै/
खदेड़े आरहाहै ।

परन्तु कवयित्री उस भयावह स्थितिसे हार मानकर आंसू बहाते रहनेके पक्षमें नहीं। आंसुओंको वह कवच जैसा धारण करनेका आह्वान करतीहै—

चकुर पानी रे/निजर गालेइ तिते/
ना कान्दिबा/
चकुर पानी बोर/पिन्धि लोवा/
बर्मर दरे ।

(अश्रु मचार गान)

यानी—

आँखोंके आँसुओंसे/अपनेही गाल भींगते/
न रोओ ।
आँखोंके आँसुओंको/पहन लो/
कवचकी भाँति ।

असमके जन-मानसमें अस्तित्वके संकटकी जो ज्वाला धधक रहीहै, कवयित्रीका हृदयभी उसी ज्वालासे मंडित हो आह्वान करताहै, असम जननीकी अस्मिताकी रक्षा करनीही होगी, उसकी बलिदानी-संतानोंको—

तोमार अस्तित्व/अर्थमय करि
राखिबर बाबे/पौरुष/
रोपित हब लागिब/माटित/
सुउच्च पर्वतर/कठिनतारे/
बाधा दिब पारिब लागिब घुमुहा/
नदीर कोमलतारे/तोमाक/
करिब लागिब/श्रीमयी ।

(श्रीमयी माइ)

यानी—

तुम्हारे अस्तित्वको/सार्थक बना
रखनेके लिए/पौरुष/
रोपना पड़ेगा/मिट्टीमें/
अत्युच्च पर्वतोंकी/कठोरतासे/
समर्थ होना पड़ेगा रोकनेको आंधी/
नदीकी/कोमलतासे तुम्हें/
बनाना होगा/श्रीमयी ।

और इसके लिए वह उद्बोधित करतीहै उदात्त कंठसे—

उठि आहा/
देहर अरण्यर परा/देशे-देशे/
देहर ऊर्द्धत देश/देहर अधःत देश/
चउपाशे देश/गभीरत देश/

सुनील/सजल/
स्वप्नेरे जलमल देश/
इच्छार अखंड स्वदेश देश।

(अखंड स्वदेश)

यानी—
उठ आओ/
देहके अरण्यसे/देश-देशमें/
देहके ऊर्द्धमें है देश/देहके अधः में है देश/
चारों ओर देश/गहराईमें देश/
सुनील/सजल/
स्वप्नोंका झिलमिल देश/
इच्छाका अखंड स्वदेश।

और उसके हृदयसे ध्वनित हो उठतीहै ओजस्वी कामना—
मइ बिचारिछो हाजार चकुत/
दीप्त सूर्य-शिखा/
एइ भयाबह युग संधिर/
नाशिबले बिभीषिका !
× × × ×
मइ आछो/अखंडिता/कामरूपा है/
शुभ्र एक चेतना है/आछों/मइ आछों।

(मोर उक्ति)

यानी—
मैं चाहती हजारों आँखोंमें/
दीप्त सूर्य-शिखा।
इस भयावह युग-संधिकी/
नाश करनेको विभीषिका !
× × × ×
मैं हूं/अखंडिता/कामरूपा बनी हुई/
बनी हुई शुभ्र एक चेतना/हूं मैं/मैं हूं।

इस संकलनकी कविताओंमें कवयित्रीका जीवन-चिन्तनभी अभिव्यक्त हुआहै। भारतीय उदात्त चेतनाका संदेश मानो कवयित्रीके भावी उत्तरणका संकेत करताहै—अमृतके शाश्वत संधानका—

शिले कथा कओक,
गोट मरा शिलर समये।
शिल आरू शिलर
संर्षघर माजत धका
सोम-स्वरूप जीवन
बै याओक/पोहर है/
अमृत है।

(अभिषेक, ऋक् मंत्रर)

यानी—
शिला बात कहे,
जमा हुआ शिलाका समय।
शिला और शिलाके
संघर्षके बीच रहनेवाला
सोम-स्वरूप जीवन
बहता जाये/प्रकाश बनकर/
अमृत बनकर।

संसारके कोलाहलसे अलग होकर वहभी ध्यानमग्न होकर 'प्रेयस' से आगे तुरीय आनन्दका अनुभव करना चाहतीहै—
ध्वनि विरक्तिकर
ध्यानर तोरणेरे/याबलै दिया/
अनुभव कररिबलै दिया/प्रेयसर उत्तापक
× × × ×
हे शून्यता/
आनन्दर उपत्यकात/थिय करोवा
शिपा गजि उठक/
दुइ भ्रूर माजर परा
कण्ठर परा
बुकुर परा
नाभिर परा
मूलाधारर परा
तुरीय आनन्दर/उपत्यकात।

(तुरीय)

यानी
ध्वनि विरक्तिकर
ध्यानके तोरणसे/होकर जानेदो—
अनुभव करनेदो/'प्रेयस' के उत्तापको
× × × ×
ओ शून्यता/
आनन्दकी घाटीमें खड़ेकर दो
जड़ निकल आये
दोनों भौंहोंके बीचसे
कंठसे
वक्षसे
नाभिसे/मूलाधारसे/
तुरीय आनन्दकी घाटीमें।

'बिहर काँड़', 'निरंतर', 'चकुलो बुलिलेइ तेज', 'मोर बुकुत', 'आग्नेय पताका', आदि जैसी कुछ गद्य-कविताएं भी इसमें सन्निविष्ट हैं। उनमें भी कवयित्रीकी पूर्वोक्त सारी विशिष्टताएं अभिव्यक्त हैं। असमिया गद्य-काव्यके

क्षेत्रमें अभी इनका मूल्यांकन होना शेष है पर ये अंगूठीमें जड़े हीरक खंड-सी चमक रहीहैं—जैसे—

सत्यकी खेती करनेवाला
काँटी-सा मैं एक सुतीक्ष्ण आग्रह
पिंजरेमें न रहनेवाली
तुमुल प्रचंडतामें प्रतिबद्ध सत्यकी वेदीपर।
निमग्नता कठोर श्रममें
आतंकित अस्तित्व गरज उठे समुद्र जैसा
दिशा-दिशामें लहरायें आग्नेय पताकाएं।

(आग्नेय पताका)

'सुदीर्घ दिनर गान' खंडमें कवयित्रीके दस प्रसिद्ध लोकप्रिय गीत संकलित हैं, जो गंभीर देशप्रेमके उद्‌बोधक आह्वानसे ज्योतित हैं—और वेदनाकी ज्वालासे प्रदीप्त।

अन्तमें जैसाकि 'उत्स' कवितामें कवयित्रीका कथन है—सारा विप्लव, सारी क्रांति प्रेममें ही है—

सकलो/महत् चिन्ता/हृदयर परा/
सकलो/सोनाली शस्य/हृदयर परा/
सकलो विप्लव/प्रेमत।

यानी—

सारे/महत् चिन्तन/हृदयसे/
सारी/सुनहली फसलें/हृदयसे/
सारे विप्लव/प्रेममें।

'सुदीर्घ दिन आरू ऋतु' आधुनिक असमिया काव्य-साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है। अपूर्णताओंके बावजूद यह काव्य प्रेमियोंको आह्‌लादित करता रहेगा।

[२]

कवयित्रीने स्वयं स्वीकाराहै "जीवनतकै डाङर कविता आरु कि आछे ? जीवन एक अनन्त कविता—बुजार-नुबुजार; जोनाकर-धुमुहार, नोपोवार-पोवार, पाइ हेरुओवार, कोमल तार, कठिनतार, पोहरर, अन्धकारर, विसंगतार, असह्य-तार, सत्य उच्चारणर, प्रतिज्ञार, सौन्दर्यर, स्वप्नर, शोषण-तार, दग्धतार, कातरतार, आर्तनादर, अश्रुर...।"(मोर मनर एषार)। इससे कवयित्रीकी कविताके प्रति धारणा सहजही स्पष्ट होजातीहै। इस आधारपर हम उन्हें दुःख-वेदना, जीवन-जगत्‌की कवयित्री कह सकतेहैं, किन्तु वे मूलतः प्रेमकी कवयित्री रहीहैं। सच तो यह है कि डॉ. बरदलैने असमिया साठोत्तरी कविता तथा गीतको एक निश्चित आयाम दियाहै। प्रस्तुत आलोच्य कृतिको लेकर अबतक डॉ. बरदलैकी पाच कविता-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीहैं। इनके अतिरिक्त बारह शिशु गल्प; पांच प्रबन्ध संकलन, रेडियो नाटक; ऑपेरा तथा पन्द्रह सौ से अधिक गीतभी प्रकाशित हो चुकेहैं। इन विभिन्न विधाओंकी रचनाओंसे कवयित्रीकी सतत रचनाधर्मिताका परिज्ञान तो होताही है, साथही, उनकी बहुमुखी प्रतिभाका भी। यों, यह निर्विवाद रूपसे स्वीकार किया जायेगा कि उनकी प्रसिद्धिके प्रमुख कारण हैं—गीत और कविता ही।

विवेच्य कृति 'सुदीर्घ दिन आरु ऋतु' असमिया साहित्यकी एक सुन्दर कृति है जो क्रमशः 'बाटचरार कविता', 'सुदीर्घ दिनर कविता', 'ऋतु' और 'सुदीर्घ दिनर गान' उपशीर्षकोंमें विभक्त है। प्रथम उपशीर्षकमें ग्यारह, द्वितीयमें तिरासी, तृतीयमें बारह और चतुर्थमें दस कविताओंको स्थान मिलाहै, जिनमें दस गद्य गीत हैं, पर उन्हें शुद्ध रूपसे गद्यगीतकी आख्या नहीं दी जायेगी, क्योंकि गद्यगीतके लिए जिस गहन अनुभूतिकी आवश्यकता होतीहै, उसका यहां अभाव है। यदि इन दस गद्योंको घटा दिया जाये, तो आलोच्य कृति कुल एक सौ चार गीत-कविताओंका संकलन होजायेगी, जिनमें से, कवयित्रीके अनुसार ग्यारह कविताएं पहलेके संकलनोंसे ली गयीहैं। शेष कविताएं १९८२ की लिखी हुईहैं। यह स्पष्ट रूपसे प्रतीत नहीं होपाता कि कवयित्रीने केवल ग्यारह कविताओंको ही पहलेके संकलनसे यहां क्यों रखा ? इसका उद्देश्य क्या है ? कविताओंके विश्लेषणसे ऐसा लगताहै कि ग्यारहसे अधिक रचनाएं पहलेकी हैं, जिनका प्रकाशन नहीं होपायाहै। रचना-तिथिको न रखनाभी इसी धारणाको पुष्ट करताहै।

प्रथम उपशीर्षककी कविताएं संकलनकी पृष्ठभूमिके रूपमें रखी गयीहैं। इन कविताओंका मूल केन्द्र है—आत्म-चिन्तन और वेदना। आत्मचिन्तनकी दृष्टिसे 'कवि' और वेदनाकी दृष्टिसे 'सर्वस्व', 'मर्म वेदना' आदि कविताएं देखी जायेंगी। 'मर्म वेदना' में मानवीय मानसिक स्थितिका चित्रण है। वह सदासे परिस्थितिके कारागारमें बन्दी है, किन्तु वह जन्मसे ही मनुष्य है। वह हर तरहसे मुक्त है। यहां कवयित्री निराशासे आशाकी ओर गमन करतीहैं।

द्वितीय वर्गकी कविताएं विवेच्य संकलनका प्रमुख अंग हैं। इस वर्गकी कविताएं कल्पनासे उद्भूत हो जीवनकी विभिन्न संवेदनात्मक अनुभूतियोंमें परिणति पातीहैं, जो कभी साधारण विषयके माध्यमसे अन्तर्जगत्‌को, कभी विरोधाभासके माध्यमसे रहस्यमयताको, कभी व्यंजनात्मक चित्रमयताके द्वारा, कभी संगीतमयताके द्वारा, कभी

संवेदनात्मक अनुभूतिके द्वारा नवीन पथकी ओर सजीवताके साथ अग्रसर हुईहैं। संगीतात्मकता इनकी अचूक विशेषता है। दुःखकी वेलामें भी वे कहतीहैं—'केवल जानो ये मइ इयातेइ/एइखिनितेइ ए दिन आछिलो/एइबोर शिल, बालि, बाघढका, फुटुकार फूले/मेलाहिके छाटि थोवा बजर माजत/' (पृ. ८१) इसके साथही समीक्ष्य वर्गकी कविताओंमें समसामयिक बोध, अन्यायके प्रति आक्रोश, जीवन और कर्त्तव्य, राष्ट्रीय चेतना, जीवनके प्रति आस्था, रहस्यात्मक भावना आदि भाव व्यंजित हुएहैं। कवयित्री मरना नहीं चाहतीं—वे कहतीहैं—'मइ कालिलै मरिम/आजि बाचि थाकिबलै दिया/हे मोर स्रोतस्विनी दुःख/मोर शीर्ण शिरर अरेण्येरे/प्रवाहित है थका/मइ भागरा नाइ/' (पृ. ३६) यहां स्रोतस्विनी, 'दुःख' का विशेषण है। यह प्रयोग व्याकरणकी दृष्टिसे समीचीन नहीं है।

तृतीय उपशीषर्ककी कविताएं बारह मासका प्राकृतिक वर्णन मात्र है, जिसे कवयित्रीने 'दग्ध प्रहरत जीवन विचारोंते हेराइ पोपा एको टोपाल मेन नियर' (मोर मनर एषार) कहाहै, पर वस्तुत: इस महत्त्वकी ये कविताएं हैं नहीं। डॉ. बरदलैने प्रत्येक माहके लिए एक लघु कविताकी रचना कीहै, जो सम्बद्ध मासकी संपूर्णताको रूपायित—चित्रित करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। इतना होते हुएभी इसके प्रतीक बिम्ब और उपमान अत्यन्त सटीक हैं। इस दृष्टिसे 'वहाग' (वैशाख), 'जेठ', 'आहिन' (आश्विन), 'आघोन' (अगहन), 'पूह' (पूस), 'फागुन', 'चैत' कविताएँ देखी जायेंगी।

चौथे और अन्तिम वर्गकी कविताएँ शुद्ध रूपसे गीत हैं। यों अन्य उपशीर्षकोंमें भी कुछ गीतोंको स्थान मिलाहै अवश्य, पर यहाँ केवल गीत हैं, जिन्हें कवयित्रीने 'सुदीर्घ दिनर कविता समूहर विस्तार' कहाहै। वस्तुत: इस खण्डको पूरी पुस्तकका निष्कर्ष माना जायेगा। सच तो यह है कि डॉ. बरदलै मूलत: गीतकार हैं। फलत: यहाँ उनकी गीतात्मकताको मुखर होनेका सफल अवसर मिलाहै। इन गीतों का कथ्य बनाहै—समसामयिक बोध, जिसमें तत्कालीन शासन तंत्रके प्रति विद्रोह एवं नवीन स्वप्न तथा लक्ष्य निर्माणकी भावनाको चित्रित किया गयाहै।

कवयित्री सफल गीतकार हैं। अत: विवेच्य कृतिमें गीत यत्र-तत्र विखरे पड़ेहैं। इसकी अधिकांश कविताओंको क्षणिकाकी अभिधा दी जायेगी। इनमें कोई कथात्मकता नहीं है। इनमें जीवनमें घटित होनेवाली क्षणिक घटनाओं को स्थान मिलाहै। यहाँ सहजानुभूतिको सार्वजनीन बनाने की चेष्टा तो कीगयीहै अवश्य, पर कवयित्रीको इस दिशामें पूरी सफलता नहीं मिल पायीहै। हाँ, अपनी कथनभंगिमाके कारण आज डॉ. बरदलै असमिया साहित्यकी एक समर्थ गीतकार हैं।

डॉ. बरदलैकी कथन भंगिमाकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताहै--कम शब्दोंमें पूर्ण अभिव्यक्ति। डॉ. चन्द्र कटकीने भी स्वीकाराहै कि 'एक-एक दो-दो शब्दोंमें डॉ. बरदलै ऐसा ऐन्द्रजालिक और मायावी चित्र आंकतीहैं कि पाठक सदाके लिए उसकी ओर आकृष्ट होजाताहै। (फ्लैप-३)। इस दृष्टिसे 'काइटर प्रहर', 'प्रतिच्छवि', 'बै ग'ल', 'अकस्मात्', 'मोरतेजत,' 'शुभवार्ता', 'उत्स', 'मइ कम', 'मइ आछो', 'आन्तर्जातिक', 'अश्रु मचार गान', 'कि सुरे', 'साको', 'जीवन शिल्प', 'शिपार संग्राम' आदि कविताएँ विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं।

समग्रतासे अध्यध्यन-विश्लेषणोपरान्त यह तथ्य स्पष्ट होताहै कि डॉ. बरदलैकी कविताएँ किसी वाद विशेषसे संबद्ध नहीं हैं। सच तो यह है कि साठोत्तरी असमिया कविताओंसे "वादोंका घेरा प्राय: टूटता हुआ नजर आयाहै और कई बिन्दुओंपर समाजोन्मुखी, यथार्थवादी धारा एवं व्यक्ति-उन्मुखी प्रतीकधर्मी प्रयोगवादी धारा एक दूसरेको स्पर्श करती हुई प्रतीत होतीहै" (डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' 'शेष कथा' 'असमिया साहित्य कविता' पृ. ८६)। इसी परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत विवेच्य कृति तथा डॉ. बरदलैकी कविताओंको विश्लेषित किया जायेगा। □

(पृष्ठ १८ का शेष)

परन्तु इन गहरे-गम्भीर भावोंमें फिर 'डांखळा'—

दिन-दिन ज्यूं बेपरत हुयो कांदो सो
पोळी में ओद सुयो मांदो सो। (पृष्ठ २६)

ऐसेमें गरीबोंके साथ त्योहारोंका मजाक 'होली' में बखूबी करायाहै। हाथमें गुलाल है, राधा रूकमण उसकी पहुंचसे बाहर है, किसके लगाये? गाल कहां! उन्हें तो गरीबी खाचुकीहै, भाभीके गाल खाचुकीहै वहां। इसीलिए कवि आगे कहताहै—

जीमण नै बैठां तो दुनियां दो कोया है
एकमें मांखी दूजै में बाळ है।

इसी क्रममें आगे सरस्वतीको कलाळीका संबोधन दे कवि बहुत कोमल भावोंको कवितामें उतारताहै—

मोहन आलोक नै भावां सूं भर सुरसत हुई प्या दे
हाथमें कलम लियोड़ी है, कलाळी थोड़ी ओर।

कलाळी थोड़ी ओर! 'बहुत खूब' वाली कविता हैं यह। अगर 'ग-गीत' का क ख ग के आधारपर मूल्यांकन करें तो यह कविता-संग्रह अपने नाममें सार्थकता लियेहै। मोहन आलोक लेखकीय ऊर्जावाले कवि हैं, उनसे राजस्थानी साहित्यको बहुत आशा है। □

गत दो दशकोंका साहित्येतर चिन्तन

'गाँ मजलिस'

निबन्धकार : डॉ. हरेकृष्ण महताब

समीक्षक : डॉ. विजय द्विवेदी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, महाराजा पूर्णचन्द्र कालेज, बारीपदा (उड़ीसा).

'योग-जन्मा' डॉ. हरेकृष्ण महताब बहुमुखी प्रतिभाके धनी व्यक्ति नही, संस्था हैं। वे एक साथ स्वाधीनता-सेनानी, विख्यात जन-नेता, राजनीतिज्ञ, प्रशासक, विशिष्ट समाज-सेवी संगठक, गवेषक, इतिहासविद्, शिक्षा एवं समाज-शास्त्री, पत्रकार, सम्पादक, पत्र-पत्रिकाओंके स्वामी एवं सर्वोपरि साहित्य-प्रेमी साहित्यकार हैं। उनके व्यक्तित्वमें प्रतिभाके ये बहु रूप इस तरह रचे-बसे हैं कि किसी एकको भी अनदेखी करके 'गाँ-मजलिस' की समीक्षा करना सम्भव नहीं है। 'गाँ मजलिस' कृतित्व-व्यक्तित्वका दर्पण है। डॉ. महताब साहित्य लिखतेही नहीं, साहित्य जीतेभी हैं। "विशेषत: वे लोग जो महताबके प्रत्यक्ष वा परोक्ष सम्पर्कमें आयेहैं, उन लोगोंको उनका लिखा पढ़ते समय लगताहै जैसे डॉ. महताब सामने खड़ेहैं, अपनी स्वाभाविक मुद्रामें भाषण दे रहेहैं। ...इतना प्रबल व्यक्तित्ववादी लेखन हो, तो व्यक्तित्वकी उपेक्षा कैसे की जा सकतीहै? उनके विराट् साहित्यिक व्यक्तित्वकी पहचान करानेवाली रेखाएँ किसी तरहके दिक्, काल, कर्मगत बन्धनकी मोहताज नहीं हैं। साहित्यकी सभी विधाओं/उपविधाओंपर लेखनी चलायीहै। उनके विपुल एवं विविध साहित्यके पाठक ओड़िया समाजके सबसे ऊँचे वर्गसे लेकर सबसे निचले वर्गके सभी आयुके लोग हैं। साहित्यके बारेमें डॉ. महताबकी धारणा है कि साहित्य केवल मनोरंजन अथवा धनार्जनका साधन नहीं है, उसका मुख्य प्रयोजन समाजको सही दिशा प्रदान करना, नये युगका आवाहक होना एवं सामाजिक जीवन-मूल्योंको वहन करनाहै। इस दृष्टिसे वे साहित्यको समाज एवं कालोन्मुख बनानेके हामी हैं। इसीलिए 'गाँ मजलिस' में उन्होंने अपने समय एवं समाजकी प्रत्येक गतिविधिकी गहन एवं सूक्ष्म विवेचना कीहै। साहित्य विषयक विविध लेखोंमें उन्होंने बार-बार कहाहै कि साहित्यका उद्देश्य केवल कुछ विज्ञ पाठकोंमें रस-बोधको जगानाही नहीं, सामाजिक चेतनाका परिष्कार करके जन-सामान्यतक पहुँचानाभी है। वे साहित्यको जनग्राही, सुबोध एवं रचनात्मक बनानेके पक्षधर हैं। अपनी रचनाधर्मिताके बारेमें उनका कहना है, कि 'मैं जबभी कुछ लिखने बैठताहूँ तो लगताहै आम आदमी मेरे सामने खड़ाहै'। इस दृष्टिसे उनका गद्य साहित्य जन-जीवनकी तात्कालिक आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर लिखा गया प्रतिबद्ध साहित्य है। 'गाँ मजलिस' की साहित्यिकताको लेखककी साहित्य विषयक उक्त मान्यताओंके सन्दर्भमें ही परखाजा सकताहै। अन्य दृष्टिसे 'गाँ मजलिस' साहित्य नहीं पत्रकारिताकी वस्तु है।

डॉ. हरेकृष्ण महताबने आजसे प्राय: ३६ साल पहले अपने दैनिक पत्र 'प्रजातन्त्र' (ओड़िया) में 'गाँ मजलिस' नामसे एक स्तम्भ आरम्भ कियाथा। यह स्तम्भ तबसे अबतक चलता आरहाहै और डॉ. महताब इसके एकमात्र लेखक हैं। 'गाँ मजलिस' नामके औचित्यके बारेमें सन् इकहत्तरमें उन्होंने लिखाथा—'गाँ मजलिस' का जन्म आजसे २३ साल पहले हुआथा, इस उद्देश्यके साथ कि राजनीतिक हो, अर्थनीतिक हो या कोईभी विषय हो, सब तरहकी चर्चामें साधारण लोग भाग लें। इस स्तम्भमें विभिन्न विषयोंपर इस तरह चर्चा कीजातीहै जैसे गाँवके सामान्य लोगोंके बीच बैठकर किसी विषयपर बातचीत कीजा रहीहो। कालेज या विश्वविद्यालयमें प्रवेश न पा सकनेपर भी सब कुछ समझने और सभी विषयोंपर राय कायम करनेकी शक्ति ग्रामवासियोंमें है। उस शक्तिको जगानाही 'गाँ मजलिस' का उद्देश्य है। ...(प्रथम खण्ड पृ. १)। वस्तुत: 'गाँ मजलिस' में डॉ. महताबने देशजातिकी विभिन्न समसामयिक समस्याओंपर, विशेषकर उड़ीसाके भले-बुरे, सुख-दुख, आपत्ति-विपत्तिपर अपने निजी विचार व्यक्त कियेहैं। इन विचारोंमें उनके निजी एवं सार्वजनिक—सभी तरहके स्वार्थ, आत्म एवं लोकोपयोगी भाव आक्षेप-प्रत्याक्षेप-सभी कुछ संग्रथित हैं।

'गाँ मजलिस' के तीन भाग हैं। पहले भागका नाम 'राजनीति-समीक्षा' है; दूसरे खण्डका 'सामाजिक' एवं तीसरेका 'शासन-नीति'। पहले खण्डमें १२४ लेख हैं, दूसरेमें ७० तथा तीसरेमें ६६ लेख। प्रथम खण्डमें सन् १९७१ से सन् ७७ तक की उड़ीसा एवं देशकी राजनीतिकी समीक्षा कीगयीहै। दूसरे खण्डमें सन् ६४ से ७४ तक की सामाजिक चेतनाके बदलते सन्दर्भको प्रतिबद्ध सांवादिककी गहन दृष्टिसे देखा एवं स्वयं सापेक्ष्य कालोपयोगी रूपमें समीकृत किया गयाहै। तीसरे खण्डमें सन् ६४ से ७७ तक की शासन-नीतिका मूल्यांकन लोकतंत्र एवं गाँधीवादकी घोषित नीतियोंको सामने रखकर किया गयाहै। तीनों खण्डोंके सभी लेख आकारकी दृष्टिसे छोटे हैं। इन्हें विशेष प्रयोजन हेतु लिखा गयाहै इसलिए इनमें लक्ष्य-भेदनकी पर्याप्त क्षमता है।

ऊपर दिये गये विवरणसे स्पष्ट होजाताहै कि 'गाँ मजलिस' विषयवस्तु और प्रस्तुतीकरणकी दृष्टिसे साहित्येतर कृति है। इसका क्षेत्र साहित्य नहीं पत्रकारिता है। यहाँ प्रश्न कियाजा सकताहै कि तब इसे साहित्य मानकर क्यों पुरस्कृत किया गयाहै और इसकी समीक्षाके लिए साहित्य-समीक्षाके मानदण्डोंका उपयोग किसतरह किया गयाहै ! उत्तर है'''पत्रकारिता साहित्यकी तथ्यपरक विधा है। विधाके रूपमें 'सत्य' को यह विवेचनात्मक रूपमें ग्रहण करतीहै, जबकि साहित्यकी अन्य विधाएँ संवेदनात्मक होतीहैं। 'गां मजलिस' में लेखकने तथ्यके प्रति समन्वित दृष्टिकोण अपनायाहै। इसीलिए यह कृति न तो विशुद्ध साहित्य-कृति लगतीहै, न विशुद्ध पत्रकारिता-लेखन। ऐसा लेखन तभी संभव होताहै जब लेखक तथ्योंका संचालन/संप्रेषण पत्रकारके नजरिएसे तात्कालिक अनिवार्यताके रूपमें करताहो, परन्तु उसकी संवेदनाएँ सांस्कृतिक मूल्य-चेतना-संपन्न हों और वह तात्कालिक दायित्वोंके प्रतिभी जागरूक हो। 'गाँ मजलिस' के लेखकमें बहुत सारे गुण एक साथही जमा होगयेहैं और एक साथही लेखनमें प्रतिफलित होगयेहैं। इसलिए कहाजा सकताहै कि 'गाँ मजलिस' में पत्रकारकी नीति और साहित्यकारकी रीति है। इसी उपागम (अप्रोच) के जरिए लेखकने राजनीति, अर्थनीति, शासन-समाज-शिक्षा-खाद्यादि विविध नीतियोंपर अपने निजी विचार एवं दृष्टिकोण प्रस्तुत कियेहैं। उदाहरणके लिए 'गाँ मजलिस' के किसीभी लेखको लियाजा सकताहै। जहाँतक समीक्षाके मानदण्डोंका प्रश्न है, 'गाँ मजलिस' के लेखोंमें साहित्य-तत्त्वका मूल्यांकन शैलीपरक विवेचन द्वारा किया गयाहै।

'गाँ मजलिस' का प्रथम खण्ड 'राजनीति-समीक्षा' पर है। इसमें तात्कालिक घटनाओंके सन्दर्भमें उड़ीसा और भारतकी जन-विरोधी राजनीतिपर लेखकने एक प्रवीण राजनेता एवं कुशल राजनीतिज्ञकी दृष्टिसे विचार कियाहै। लेखकका कहनाहै कि इस देशने अपनी राजनीतिक-यात्रा जनसाधारणको सब तरहकी समान सुविधा देनेके उद्देश्यसे आरम्भ कीथी। इसीलिए संविधानमें मताधिकारकी व्यवस्था कीगयीथी और इसे 'गणतन्त्र' का नाम दिया गयाथा। परन्तु धीरे-धीरे यह सामन्तवादमें बदल गयाहै और आज जनता उसी तरहकी यातना सहनकर रहीहै जैसीकि वह पुराने जमानेके राजाओंके शासन कालमें सहन करतीथी। जो लोग अ-लोकतन्त्रवादी थे, आज वे ही समाजमें विशिष्ट व्यक्ति माने जारहेहैं। यह स्थिति भयावह है। लोकतान्त्रिक उपायोंसे यदि इन स्थितियोंमें बदलाव लाया जाये तभी देशका मंगल होगा (पृ. ५)। 'देशमें राजनीतिक सुधारका पहला कार्यक्रम है—पुराने जमानेके राजाओं द्वारा परिचालित दलका बहिष्कार करना (पृ. ६)। 'देशकी जन-जीवन विरोधी विकृत राजनीतिके विकास-क्रमकी विवेचना करने हुए डॉ. महताब लिखतेहैं—'उस समय ('सन् ४७ में—समी.) देशकी जनताकी आशा-आकांक्षाएँ, जितनी प्रबल थीं, तदनुरूप उनको कार्यकारी करनेके लिए त्याग हेतु (नेतृत्व) मानसिक रूपसे तैयार नहीं था। उस समय परिवर्तनकी बात ग्रहण नहीं कीगयी, यह उस समयके नेतृत्वका मारात्मक प्रमाद था। यह आज के इतिहासकी सुचिन्तित मान्यता है।"'''(पृ. १८)। आज शासन पद्धति और उसकी रक्षा करनेवाला संविधान परिवर्तनमें बाधक होरहेहैं (पृ. १९)। इन्हींके चलते देशमें तथा जातीय जीवनमें किसी तरहका सुधार सम्भव नहीं होसका। न तो गाँधीजीकी राम-राज्यकी कल्पना साकार होसकी, न समाजवादी समाजकी स्थापना होसकी और न ही गणतन्त्र सफल होसका। 'राजनीति' से 'नीति' लुप्त होगयी, बचा केवल 'राज' अतः राज करनेके लिए तन-धनके बलपर विभिन्न 'दल' बन गये। इन 'दलों' को नीति, न्याय, नैतिकतासे कुछ लेना-देना नहीं है। 'शासन दिन-प्रति-दिन जनतासे दूर होता चलाजा रहाहै, उसी अनुपातमें शासनसे जुड़े लोग और शासनको समर्थन देनेवाले राजनीतिक दलभी जनताकी समस्याओंसे बहुत दूर चलेजा रहेहैं। (पृ. १३९) इस तरह देशमें राजनीति की दृष्टिसे अराजकताकी विचित्र परिस्थिति पैदा होगयी

मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का प्रकाशन

साक्षात्कार

जून-जुलाई ८४ संयुक्तांक में

धरोहर में ठाकुर जगमोहन सिंह.

भीष्म साहनी की लम्बी कहानी.

कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास अंश.

विष्णु प्रभाकर, रघुबीर सहाय, स्वयं प्रकाश, जोगिन्दर पाल, राजेश जोशी, हरि भटनागरकी कहानियाँ.

प्रभाकर माचवे, कुँवर नारायण, परमानंद श्रीवास्तव, ज्ञानेन्द्रपति, कुलदीप कुमार, सुधीररंजन सिंह, नरेन्द्र गौड़की कविताएं.

बंगला देश की कहानी और कविताएँ.

त्रिलोचन और शम्भूबादलकी बातचीत.

नरेन्द्र मोहनका लेख और किताबों की समीक्षाएं आदि.

एक प्रति : पाँच रुपये   वार्षिक शुल्क : पच्चीस रुपये.

सम्पादक : सोमदत्त

डी १/१ प्रोफेसर कालोनी भोपाल ४६२००२.

फोन : ७३२२०

है। विरोध-पक्षभी यथास्थितिको बनाये रखनेमें अधिक रुचि रखताहै। इसलिए जन सामान्यमें निराशाजनित हिंसा, असन्तोष एवं विद्रोह भाव विकसित होगयाहै। यह स्थिति अधिक दिनोंतक नहीं चलेगी। इसमें बदलाव आयेगा, परन्तु तबतक बहुत कुछ मिट चुका होगा। 'आज प्रश्न यह है कि देशमें दलीय शासन चलेगा अथवा कानून का।' (पृ. १४८)।

'गाँ मजलिस' के इस खण्डमें राजनीतिकी समीक्षा सामयिक घटनाओंके सन्दर्भमें कीगयीहै। इन घटनाओं एवं स्थितियोंके साथ लेखक कहीं सीधे जुड़ा हुआहै तो कहीं परोक्ष रूपसे। कुछ लेखोंमें किसी दल, व्यक्ति अथवा गतिविधि विशेषके प्रति समर्थन किंवा विरोधको व्यक्त किया गयाहै, तो कुछका स्वर बिल्कुल प्रचारात्मक है। लेखकने इसमें कहीं सरकार बदलनेका अनुरोध कियाहै, तो कहीं सरकारसे जनहित विरोधी कामोंको बन्दकर देनेके लिए कहाहै; किसीमें स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधीकी राजनीतिक कर्म कुशलता, विरोधी दलोंकी दायित्व-हीनता, आपात्कालीन स्थिति, बन्दी-मुक्तिका उल्लेख है, तो किसीमें विनोबा, जयप्रकाश और वोटकी राजनीतिके बनते-मिटते समीकरणोंका आत्मपरक विवेचन है। इसमें कुछ लेख ऐसेभी हैं जिनमें डॉ. महताबने अपने ऊपर लगाये गये आरोपोंके लिए सफाई दीहै (निज कथा), तो कुछमें जनताकी उस विवश-व्याकुलताका चित्रण कियाहै जो अराजकताको जन्म देरहीहै (दुःख कहिबी काहाकू)। इस तरहसे 'गाँ मजलिस' की 'राजनीति' 'समीक्षा' में डॉ. महताबने समसामयिक राजनीतिक परिवेश एवं उसकी उपलब्धियोंको अपनी निजी रुचि, हित-अनहित, आशा-आकांक्षाकी नजरसे देखा-परखा है, उसे अपने पाठकों के सामने रखाहै। वे इस निर्णयपर पहुँचेहैं कि जाति, धर्म अथवा व्यक्ति केन्द्रित दलीय राजनीति द्वारा इस देशकी समस्याओंका समाधान सम्भव नहीं है। दलविहीन राज-नीतिही लोकतन्त्रकी रक्षा और जनाकांक्षाको पूराकर सकतीहै। (निर्दलीय राजनीति)।

'गाँ मजलिस' के दूसरे खण्डका नाम 'सामाजिक' है। इसमें समाजकी समीक्षा कीगयीहै। यह समाज सन् १९६४ से सन् ७४ के बीचका है। इसमें ७० लघु लेख हैं। इन लेखोंका 'कथ्य' हमारा आजका अपना समाज है, जिसमें चारों ओर 'पतन-समारोह' बड़ी धूम-धामसे मनाये जा रहेहैं। इन समारोहोंका आयोजन स्वाधीनोत्तर देशकी राजनीतिने कियाहै, संचालन शासन-नीति कर रहीहै, उद्घोषक संविधान है। समाजके सभी वर्गों, रुचियों एवं पेशोंके लोग इनमें भाग लेरहेहैं। समाजकी छात्र और युवा शक्ति विदेशी मदमत्त हो विवेक गवाँ रहीहै, कला-साहित्य, शिक्षा-संस्कृति 'अर्थ' को घेरे बैठीहैं, कर्मसे कटा हुआ धर्म मतिभ्रमका मंजीरा बजा रहाहै। 'आम' जनता नाच रहीहै, 'खास' जनता तालियां बजा रहीहै। सब अपनेमें लीन हैं, कोई किसीको देखने-सुननेके लिए तैयार नहीं है। इसी दयाका पात्र, विडम्बनामय समाजको डॉ. महताबने मानवतावादकी आधार-भूमिपर खड़े होकर गाँधीवादी समाजशास्त्रीकी हैसियतसे दुःख, ग्लानि और क्षोभके साथ देखाहै, अपने पाठकोंको दिखाया और बतायाहै कि···

समाजकी युवा-शक्ति गलत शिक्षा एवं संस्कारोंके कारण आज अपने कर्त्तव्योंका निर्धारण नहीं कर पारहीहै (द्वि. भा. पृ. ३), सामाजिक जीवनमें कंचन-कामिनी और कादम्बरीके बीच अटूट सम्बन्ध कायम होगयाहै। इसीसे समाजमें विशृंखलाता पैदा होरहीहै। इनका निराकरणही सामाजिक संरचनाको बनाये रख सकताहै (पृ. ३०)। समाजसे 'सादा जीवन उच्च विचार' का भाव पूरी तरह मिट चलाहै। बाहरी आडम्बर बहुत बढ़ गयेहैं, मिथ्याचार और भ्रष्टाचार जीवनके अपरिहार्य अंग बन गयेहैं। समाज इन सारी विसंगतियोंको सहनकर आँखें मूंदे विगत ३५ सालोंसे चलता आरहाहै। इससे देशकी शक्ति नष्ट हो गयीहै। "मिथ्याचारके विरोधमें सिर उठानेका साहस नहीं है। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रमें बड़ी-बड़ी बातें कहकर ठीक उनके विपरीत आचरणके फलस्वरूप देश और समाज आज दुर्बल होगयाहै। इसलिए मैं निवेदन करूँगा, जो जितनाकर सकताहो उतनाही हाथमें ले। पाल-गढ़ेपर खड़े होकर बड़ा बननेकी चेष्टा करनेसे हम नीचे गिरेंगे ही।" (पृ. ५२)।

'गाँ मजलिस' भाग दो का यही संक्षिप्त सार-संकलन है। इसमें जिस समाजका विवेचन किया गयाहै उसके निर्माणमें डॉ. महताबका अपना योगदान भी कम नहीं है। वे इससे इनकार भी नहीं करते। यह उनकी उदारता और सुधारवादिताका प्रतीक है। 'काँग्रेस' की 'नशा-निवारण' नीतिकी आलोचना करते हुए वे कहतेहैं··· मद्य-पानको बहुत-से लोग आधुनिकताका प्रमाण मानने लगेहैं। कारण, समाजके उच्च स्तरके लोग, वे लोग जिनके हाथोंमें अधिकार है, जो शासनकी गद्दीपर हैं, समय-समयपर मद पिये 'माताल अवस्था' में गिरते-पड़तेहैं। इसका प्रतिकार आवश्यक है, इसमें सन्देह नहीं।" (पृ. २८)। इसका प्रतिकार क्या है? वे लिखते हैं—'जो लोग देशको शराब

में डुबाकर उसे सर्वनाशकी ओर खींच रहेहैं, उन्हें साधारण जनताके सामने 'अपदस्थ' करनाही कर्त्तव्य है।' (पृ. २८)।

'गाँ मजलिस' का तृतीय खण्ड 'शासन नीति' के नामसे है। इस खण्डके ६६ लेखोंमें सन् १९६६ से सन् ७७ तक की, विभिन्न सरकारी 'नीतियों' के तहत चलनेवाली योजनाओं को कार्यकारी करनेवाली 'शासक-नीति' की समीक्षा कीगयी है। इन लेखोंके 'कथ्य' का पता इनके शीर्षकोंसे सहजही लग जाताहै। जैसे, 'जन ओ योजना', 'शासन र असुविधा', 'बजट-विचार', 'कागज-समस्या' आदि। साहित्यकी दृष्टिसे इन लेखोंमें महत्त्वका विषय यह नहीं है कि इनमें क्या कहा गयाहै, अपितु महत्त्व इस बातका है कि 'कैसे कहा गयाहै।' इस 'कैसे' का सीधा संबध 'शैली' से जुड़ताहै, क्योंकि साहित्यमें शैली 'आत्म' की भाषिक अभिव्यक्तिका नाम है। पुरानी रोमन और यूनानी सभ्यतामें इसे 'भाषण-कला' कहा जाताथा। भारतीय चिन्तनमें वैदिक कालसे ही माना जाता रहाहै कि 'वाक्' ही 'व्यक्ति' शब्दका मूलाधार है। 'व्यक्ति' से 'व्यक्तित्व' शब्द बनताहै। भाषामें सर्जित व्यक्तिका यही व्यक्तित्व साहित्य कहलाता है। 'गाँ मजलिस' के तीनों खण्डोंमें साहित्य तत्त्वकी खोज इसी आधारपर कीगयीहै, जिसका विवरण नीचे दियाजा रहाहै। परन्तु इसके पहले 'गाँ मजलिस' की भाषा नीतिकी चर्चा आवश्यक है।

'गाँ मजलिस' में भाषाका अत्यन्त सहज स्वाभाविक रूप मिलताहै। एक निश्चित उद्देश्यको सामने रखकर, जन-साधारणके लिए लिखे होनेके कारण 'गाँ मजलिस' की भाषा जितनी बोधगम्य है उतनीही प्रभावपूर्ण भी है। इसके वाक्य छोटे और सब तरहके आडम्बरोंसे मुक्त हैं। एक उदाहरण देखिये⋯आज नशा-निवारणपर चर्चा कीजाये। गाँधीजीके आन्दोलनके पहलेसे ही देशके समाजमें नशाका प्रचलन था। ताड़ी-शराब गाँव-देहातमें भी चलतीथी। ऊँचे स्तरके जो लोग साहब-सुहबाके संपर्कमें आतेथे, विदेशी शराब व्यवहार करते थे। किन्तु समाजमें शराबके प्रचलनके बावजूद इसका सम्मानजनक स्थान नहीं था⋯(दू.भा. पृ. ४४) इस उद्धरण की समीक्षा करनेपर भाषा विषयक निम्नलिखित विवरण प्राप्त होतेहैं⋯⋯(१)—भाषा प्रयोगका विषय एक सामाजिक बुराई है। यह आजकी नहीं पहलेसे चली आरही सामाजिक समस्या है। तात्कालिक चिन्ताका विषय नशाखोरीकी बढ़ती हुई सामाजिक प्रतिष्ठा है। यह बात साधारण आदमीको समझायी जारहीहै। (२)—वाक्य-संरचना सहज और सरल है। वाक्य छोटे-छोटे हैं। (३) बोल-चालमें प्रयुक्त होनेवाली सामान्य शब्दावली है। (४) भरतीके शब्द न होनेसे भाव स्पष्ट हैं। किसी तरहकी अर्थगत रहस्यमयता नहीं है। (५)वाक्य, व्याकरणके नियमोंके अनुरूप हैं। इनमें तथ्यका तर्कसम्मत विश्लेषण है। संक्षेपमें डॉ. महताबकी भाषाकी यही सामान्य विशेषताएँ हैं। परन्तु 'कथ्य' के अनुरूप भाषा विनियोगकी शैली 'गाँ मजलिस' के तीनों खण्डोंमें भिन्न-भिन्न है। इसका कारण दृष्टिकोण और व्यक्तित्वकी भिन्नता है।

'गाँ मजलिस' की 'राजनीति-समीक्षा' में डॉ. महताबके व्यक्तित्वके तीन पक्ष बहुत स्पष्ट रूपमें उभरे हैं—पत्रकार, राजनेता और साहित्यकार। पत्रकारके रूपमें उन्होंने समीक्षाके लिए तात्कालिक घटनाओंको चुनाहै। राजनेताके रूपमें उन्होंने 'घटित-घटनाओं' की समीक्षा कीहै और समीक्षाके लिए साहित्यकी भाषाका प्रयोग कियाहै। उदाहरणके लिए लेख 'एहि हेउछि बेल (यही समय है) कोही लें'। इस लेखमें तत्कालीन 'स्वतन्त्र पार्टी' की आलोचना कीगयीहै और कहा गयाहै कि आगामी चुनावोंमें 'स्वतन्त्र हटाओ' की आवाज उठनी चाहिये तथा इसको कार्यकारी करनेके लिए दूसरे राजनीतिक दलोंके बीच सहयोग स्थापित होना चाहिये।⋯लेखका आरम्भ इसप्रकार किया गयाहै—"देशमें राजनीतिक परिवर्तनके लिए पहला कार्यक्रम है, पुराने जमानेके राजाओं द्वारा परिचालित दलका बहिष्कार करना। उड़ीसा एकमात्र प्रदेश है जहां पुराने जमानेके दो राजाओंके द्वारा एक राजनीतिक दल गठित एवं परिचालित होरहाहै। जनमेजयके नाग-यज्ञके समय जिस तरह तक्षक आत्मरक्षाके लिए इन्द्रकी शरणमें गयाथा उसी तरह यहाँके राजा स्वतन्त्र-पार्टीका आश्रय लेरहेहैं। स्वतन्त्र पार्टीमें ऊपर राजाजी और नीचे केवल दो राजाहैं।" ⋯⋯इस गद्यांशका विवेचन करनेपर यह स्पष्ट होजाताहै कि इसके 'कथ्य' का क्षेत्र राजनीतिका विषय है। व्यावहारिक राजनीति दो तरहकी होतीहै दलीय और दलविहीन राजनीति। लेखक दलगत राजनीतिके पक्षमें है, परन्तु वह नहीं चाहता कि स्वतंत्र पार्टी शासनमें रहे। इस कामके लिए दूसरे राजनीतिक दलोंके बीच सहयोगकी कामना करके लेखकने प्रमाणितकर दियाहै कि वह एक सक्रिय राजनेता है। 'उड़ीसा', 'राजाजी' और 'दो राजा' का उल्लेख 'तथ्य', तात्कालिकता और प्रतिबद्धताका परिचायक है। ये गुण पत्रकारिताके हैं। राजाओंकी तक्षक

'प्रकर' के पूर्व प्रकाशित विशेषांक

१. 'प्रकर' विशेषांक १९७० ४.००
[१९६९ की उल्लेखनीय कृतियोंपर विधानुसार लेख]

२. 'प्रकर' विशेषांक १९७१ ८.००
[१९७० की उल्लेखनीय कृतियोंपर विधानुसार लेख]

३. 'प्रकर' विशेषांक १९७२ १०.००
[१९७२ की उल्लेखनीय कृतियोंपर विधानुसार लेख]

४. अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य २०.००
[प्रथम खण्डमें हिन्दीके विकास और प्रचारमें हिन्दीतरभाषियोंके योगदानपर राज्यानुसार विवरण; दूसरे खण्डमेंहिन्दी तरभाषियोंकी कुछ उल्लेखनीय पुस्तकोंका परिचय; और तीसरे खण्डमें हिन्दीतरभाषी लेखकोंकी निदेशिका]

५. भारतीय साहित्य : २५ वर्ष २०.००
[देशकी सभी भाषाओंके साहित्यका स्वातंत्र्योत्तर २५ वर्षोंका सर्वेक्षण । हिन्दीकी आलोचना, उपन्यास, कहानी, नाटक, रेडियो नाटक, कविता, हास्य-व्यंग्य, भाषा विज्ञान और कोश विधाओंपर एक-एक लेख, और असमिया, ओड़िया, बाङ्ला, गुजराती, मराठी, सिन्धी, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कश्मीरी, पंजाबी भाषाओंके साहित्यके २५ वर्षोंके सर्वेक्षणपर एक-एक लेख]

६. भारतीय पुरस्कृत साहित्य : १९८२ १५.००
[केन्द्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत १९८२ की सभी भारतीय कृतियोंपर समीक्षात्मक लेख]

सभी अंक एक साथ मंगानेपर डाक व्यय सहित मूल्य ७०.००

आजीवन सदस्योंको ५.०० रु. डाक व्यय-भेजने पर सभी अंक निःशुल्क

'प्रकर' ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

से तथा स्वतन्त्र-पार्टीकी इन्द्रसे तुलना साहित्यिक सादृश्य-विधान है । जिस तरह उक्त छोटेसे गद्य खण्डमें लेखकके उक्त तीनों रूप उभर आयेहैं; उसीतरह पूरे लेख और पूरी कृतिमें ये संग्रथित हैं । इसके लिए जिस 'शिल्प' का प्रयोग किया गयाहै उसकी रूपरेखा क्रमशः इसप्रकार है---प्रस्तावित विषयवस्तु, तत्कालिक सन्दर्भ, पारिवेशिक प्रतिक्रिया, साहित्यिक सन्दर्भ, समीक्षा और सम्मति । यहीं शिल्प 'राजनीति-समीक्षा' के सभी लेखोंमें प्रयुक्त किया गयाहै ।

'सामाजिक' (दूसरा खण्ड) में डॉ. हरेकृष्ण महताब एक महान गाँधीवादी समाजशास्त्री, समाज-सुधारक एवं साहित्यकार दिखायी पड़तेहैं । इसमें उन्होंने तात्कालिक घटनाओंके प्रति अधिक आग्रह न दिखाकर सामाजिक जीवन में व्याप्त बुराइयों, कुसंस्कारों, भ्रान्त सामाजिक नीतियों एवं बदलते मूल्योंका जीवन्त चित्रण कियाहै । इस भागके लेखोंमें सामाजिक तथ्योंके प्रति संवेदनात्मक दृष्टि अधिक दी गयीहै । ये संवेदनाएँ सांस्कृतिक मूल्य-बोधसे आवेष्टित एवं युक्तियुक्त हैं । इनकी अभिव्यक्तिके लिए साधनके रूपमें पहले खण्डकी अपेक्षा भिन्न भाषा-शैलीका प्रयोग किया गयाहै । इसमें वाक्य-संरचना पूर्वापेक्षा अधिक संश्लिष्ट है । इसका कारण कथ्य संबन्धी लेखकका गहन अध्ययन, अनुभूति, इतिहास लेखनकी अभिज्ञता और अभ्यास है । लेखकने विषय-वस्तुके प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनायाहै, इसीसे इस भागके लेखोंमें भाषा-रूपभी वैज्ञानिक होगया है । सामान्य जटिल वाक्य-संरचना, सटीक शब्द चयन, भाव एवं तथ्य व्यंजकता, संक्षिप्तता, समयता आदि भाषा विशेषताएँ—इन लेखोंमें मिलतीहैं। कहीं-कहीं व्यंग्यकाभी प्रयोग किया गयाहै । जैसे 'श्री जगन्नाथके साथ पत्र-व्यवहार' 'मानिले ठाकुर, न मानिले पथर', 'तव बाधति बाधते' आदि । इन लेखोंमें रम्य रचनाधर्मिता अधिक है, विश्लेषण कम । इसके कुछ लेखोंमें आध्यात्मिक चिन्तनका प्राधान्य है तो कुछमें सामाजिक और राजनीतिक चिन्तनका । इन लेखोंमें विषयवस्तुकी भिन्नता होते हुएभी शिल्प और शैलीगत समानता स्पष्ट दिखायी पड़तीहै ।

'सामाजिक' में समाजकी समीक्षा कम है, चिन्तन अधिक । इसलिए इसमें लेखोंको सामान्य प्रस्तावनाके साथ आरम्भ किया गयाहै और कथ्यके प्रति अपने निजी चिन्तनको प्रगट करनेसे पहले अनुभव तथा अध्ययनपर आधारित सम्बद्ध घटनाओंका समावेश किया गयाहै । अन्तमें उपदेशा-

त्मक उपसंहार है। एक उदाहरण—'इस शताब्दीके पूर्वार्द्धमें देशसे अंग्रेजी शासन समाप्त करनेके लिए सबसे पहले बंगालमें बम-पूजा आरम्भ हुई। उस समय पढ़ेलिखे देशप्रेमी नवयुवकोंने बम तैयार करना सीखा और यहां-वहां फेंकाभी। इससे अंग्रेजी राज्य तो गया नहीं, अपितु बम-प्रयोग अनुचित कामोंके लिएभी होने लगा। भारतके दूसरे प्रदेशोंमें बमका कारोबार नहीं है—कहनेसे चलताहै। केवल कलकत्तामें बमका नशा आजतक भी छूटा नहीं है। कलकत्तामें जो लोग बम तैयार करतेहैं उनमें—सभी श्रेणियोंके लोग हैं। इनकी सूची वहाँकी पुलिसके पास है। कुछ दिन पहले शान्ति-निकेतनके दीक्षान्त समारोहमें इन्दिरा गाँधीके भाषणके समय एक बम फूटाथा।…धीरे-धीरे यह व्याधि उड़ीसामें भी फैलने लगीहै।" (बम-पूजा) उक्त विवरण कटकमें हुए उस बम-विस्फोटके सन्दर्भमें है जिसमें पाँच लोग मरे और तीन गम्भीर रूपसे आहत हुएथे। इस घटनाको लेखकने जिस रूपमें पाठकोंके सामने रखाहै, उसमें लेखकके व्यक्तित्वके ऊपर गिनाये गये रूप स्पष्ट दृष्टिगत होतेहैं।

'शासन नीति' में सरकार द्वारा चलायी जारही विविध योजनाओंको किस तरह कार्यकारी कियाजा रहाहै, इसपर डॉ. महताबने एक कुशल राजनीतिज्ञकी तरह विचार किया है। इसके लिए उन्होंने अपने प्रशासनिक अनुभवोंका मुक्त प्रयोग कियाहै और बतायाहै कि विभिन्न योजनाओंको जिस तरह तरह चलायाजा रहाहै उससे, लोगोंके मनमें असहाय भाव बढ़ेगाही" (पृ. ९)। इसका कारण है—शासनमें व्याप्त चतुर्दिक भ्रष्टाचार। 'योजनाओंको कार्यकारी करनेके लिए निर्मल शासन चाहिये। दुर्नीतिग्रस्त शासनके हाथमें योजनाओंको देनेका मतलब है आगमें घी डालना।" (पृ.२९)। इस भागमें जिन योजनाओंपर विचार किया गयाहै उनका सम्बन्ध मुख्य रूपमें उड़ीसासे है। जैसे हीराकुद-टिकरपाड़ा बाँध, तालचेर, रेंगाली परियोजना, मूल्य-वृद्धि, चावल मिलें, शिक्षा नीति, सदाचार समिति आदि। इसी भागमें दलगत नीतियों और विभिन्न सरकारोंकी भूतपूर्व नीतियोंपर भी दृष्टि डाली गयीहै और सोदाहरण समीक्षा कीगयीहै। समीक्षाओंका आधार लोक-मंगलकी भावना है। कहाजा सकताहै कि इन समीक्षाओंमें शासन-नीतिको सामाजिक यथार्थके परिप्रेक्ष्यमें देखा और सुधारका उपाय सुझाया गयाहै। उदाहरणके लिए लेख 'कअण करा जाइ पारे' (क्या कियाजा सकताहै) का एक अंश देखिये'—उड़ीसाके विभिन्न अंचलोंमें उत्कट खाद्याभावके समाचार मिल रहेहैं। समाचारपत्रोंके संवाददाताओंके अलावा उस अंचलके लोगभी आकर जो वर्णनकर रहेहैं, उससे मालूम पड़ रहाहै कि हालत सचमुच गम्भीर है। कुसमयके लिए कुछ ऐसी सरकारी व्यवस्था और कानून बनाये गयेहैं, जिनके कारण निम्न श्रेणीके लोगोंपर दबाव कम होना तो दूर रहा, धीरे-धीरे बढ़ताजा रहाहै।" (पृ. १३८) यही शिल्प इस भागके सभी लेखोंमें पाया जाताहै। इससे पाठक स्वयंही निष्कर्ष निकाल सकतेहैं।

संक्षेपमें सम्पूर्ण 'गाँ मजलिस' के बारेमें केवल इतनाही कहाजा सकताहै कि यह परंपरागत पीत-साहित्यसे भिन्न एक ऐसा जन साहित्य है, जिसमें आजके समाजकी सभी गतिविधियाँ, नीति-रीतियाँ यथार्थ रूपमें चित्रित कीगयीहैं। इनका चितेरा एक ऐसा कलाकार है जो किसी प्रकारके बन्धनोंको मानकर नहीं चलाहै—चाहे वे बन्धन साहित्यके हों, भाषाके हों अथवा समाज और शासनके। लेखनीका ऐसा प्रयोग वही कर सकताहै जिसमें महानता सहज रूपमें निवास करतीहो तथा जिसके मनमें जन-जीवनके प्रति अटूट प्रेम, आस्था और विश्वास हो, तथा जो भाषा-साहित्यको जनताकी वस्तु मानताहो, विशेषज्ञोंकी वस्तु नहीं। इसे लेखककी स्वेच्छाचारिता भी कहाजा सकताहै, परन्तु ऐसा कहना अन्याय होगा—विशेषकर 'गाँ मजलिस' के प्रति। इस कृतिमें सामाजिक चेतनाको, दैनन्दिन जीवनमें घटित होनेवाली घटनाओंके उदाहरणसे, झकझोरकर जगानेकी प्रबल शक्तिके साथही संरचनाकी दृष्टिसे रमणीयता, सहजता, सुबोधता जैसे साहित्य-तत्त्व प्रचुर मात्रामें विद्यमान हैं। इसलिए कहाजा सकताहै कि 'गाँ मजलिस' के माध्यमसे डॉ. हरेकृष्ण महताबने भारती गद्य-साहित्यको एक ऐसी नयी शैली प्रदान कीहै जो नितान्त व्यावहारिकही नहीं, साहित्यको नयी जीवन-शक्ति देनेकी दृष्टिसे अनिवार्य थी। आज यह अनुभव कियाजा रहाहै कि साहित्य केवल कुछ लोगोंकी निजी-आकाक्षांओंका आइना, अनुपयोगी अभिव्यक्तियोंका शास्त्रीय अरणारोदन मात्र रह गयाहै। 'गाँ मजलिस' इस धारणका पूरी तरह खण्डन करतीहै और साहित्यको दिवास्वप्नोंकी कुहेलिकासे बाहर निकालकर यथार्थ-भूमिपर प्रतिष्ठित करतीहै। □

मानवीय नियतिकी चित्रात्मक शब्दकथा
(उपन्यासका कथासार)

कृति : 'नियति'
उपन्यासकार : इन्द्र सुन्दास.

समीक्षिका : डा. (श्रीमती) कमला साँकृत्यायन
प्राध्यापिका लोरेटो कालेज, दार्जिलिंग.

भारतीय नेपाली साहित्यमें उपन्यास विधाके एक स्थापित हस्ताक्षर इन्द्र सुन्दास हैं। वे पिछले ४८ वर्षोंसे नेपाली साहित्यकी निरन्तर सेवा करते आरहेहैं। पश्चिम बंगालकी शासकीय सेवामें अनेक वर्षों तक विभिन्न पदोंपर कार्य करनेके बाद अब वे अवकाशप्राप्त हैं। पब्लिसिटी-आफिसरसे लेकर मैजिस्ट्रेटके पदतक पहुंचकर सुन्दासजीने विभिन्न प्रकारके लोगोंको नजदीकसे देखाहैं, खट्टे-मीठे अनुभव प्राप्त कियेहैं और अनेक प्रकारकी स्थितियोंका सामनाभी कियाहै। सरकारी सेवामें रहते हुएभी उनकी लेखनी निरन्तर चलती रही। इसीका परिणाम है उनकी अनेक प्रकाशित कृतियां। उन्होंने अबतक सात मौलिक पुस्तकें लिखीं और पांच ग्रन्थोंके अनुवादभी कियेहै। इनमें साहित्य एवं दर्शन विषय प्रमुख हैं। सुन्दासजी केवल नेपाली नहीं बल्कि बंगला भाषाके भी अध्येता हैं। अंग्रेजी तथा हिन्दीभाषाका भी उन्हें गम्भीर ज्ञान है। उनके कितनेही दार्शनिक तथा साहित्य विषयक उत्कष्ट निबन्ध पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुएहैं। उनके एक लघु उपन्यास "जुनेली रेखा" को पश्चिम बंगाल सरकारकी नेपाली अकादमीने "भानु-पुरस्कार" से सम्मानित कियाहै। सुन्दासजीके पास अब पर्याप्त समय है, इसलिए वे दूने उत्साहके साथ लेखन कार्यमें लगे हुएहैं।

श्री इन्द्र सुन्दासने बहुत वर्ष पहले 'मंगली' नामक उपन्यास प्रकाशित करवायाथा। यह बहुचर्चित उपन्यास नेपाल तथा भारतके नेपाली स्नातक स्तर पाठ्यक्रमों वर्षोंसे पढ़ाया जाताहै। 'मंगली' के प्रकाशनके बाद १९८२ में लेखककी इस नयी कृति 'नियति' का साहित्य जगत्में बहुत स्वागत हुआ जिसे १९८३ का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआहै।

'नियति' सुन्दासजीका बृहत्काय उपन्यास है जिसमें कुल २२ अध्याय और २२० पृष्ठ हैं। पुस्तकके परिचयमें लेखकका कथन है—उपन्यास 'नियति' सिर्फ एक कहानी नहीं बल्कि जीवनकी सच्चाई है। यह इस अर्थमें ताजा है कि यह एक ऐसा कालखण्ड लेकर चलाहै जो १९६०-७० के बीचमें पड़ताहै, और इस कारण इसमें महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं अन्य स्थितियां और समस्याएं भी सम्मिलित हैं जो इस अवधिमें घटित हुईहैं। यद्यपि समस्याएं उस पर्वतीय क्षेत्रकी समस्याओंके रूपमें प्रस्तुत की गयीहैं जहाँके लेखक हैं, फिरभी वे सर्वदेशीय हैं।

उपन्यासका नायक बीर्जमान ऊंचे शिवालिक पर्वतके बीच घने सुरक्षित सरकारी जंगलके पास स्थित एक गाँवका नवयुवक है। वहीं ईमानदार पहाड़ी लड़का है, उसके अपने संकल्प हैं और अपनी महत्वाकांक्षाएं हैं। परिवारमें उसकी माँ, बड़े भाई, भाभी और उनके बच्चे हैं। परिवार परिश्रमी और खाता-पीता है। बड़ा भाई खेतीका काम करताहै ओर पिताकी मृत्युके बाद उसे गाँवका मण्डल 'चौधरी' बना दिया गयाहै। सरकारी जंगलातमें भी ठेकेदारी करके लकड़ीका व्यवसाय करताहै। बड़े भाई जोतमानकी यही इच्छा है कि उनका छोटा भाई बीर्जमान पढ़-लिखकर योग्य बने।

हाईस्कूलकी परीक्षा पास करनेके बाद बीर्जमानके सामने समस्या पैदा होतीहै—वह आगेकी पढ़ाई जारी रखे, नौकरी करे या फौजमें भर्ती होकर कहीं दूर चला जाये। सर्वप्रथम उसने स्कूलमें अध्यापकके लिए आवेदन पत्र दिया, साथही कामदिलाऊ दफतरमें आपना नामभी पंजीकृत करवा लिया। परन्तु बीर्जमानको ना तो शिक्षककी नौकरी मिली, न ही कामदिलाऊ दफ्तरसे किसी आशाकी किरण। अन्ततः वह निराश होगया। उसकी बाप-दादाके व्यवसाय-खेतीमें भी रुचि नहीं थी १९६१ का वर्ष परीक्षा, घूमना-घामना, परीक्षा-फलकी प्रतीक्षा, नौकरीकी खोज, पर्व-त्यौहार, वनभोज और हिमपात आदिमें भुला दिया गया।

बीर्जमानके, गांवके रिश्तेमें मामा लगने वाले बदन सिंह असाध्य रोगसे पीड़ित हैं। उसकी चिकित्सा आदिका भार बीर्जमानके बड़े भाईपर है। किन्तु उचित चिकित्साके बिनाही एक दिन उसकी मृत्यु होजाती है। उसके पीछे उसकी विधवा स्त्री और दो नाबालिग बेटियां हैं। आर्थिक रूपसे ये लोग अभावग्रस्त हैं, बीर्जमानका परिवारही इनकी देखभाल करताहै।

यहांसे बीर्जमानके जीवनमें नया अध्याय आरम्भ हो

जाताहै। बदनसिंहकी दो बेटियां लीलामाया और फूलमाया हैं। इनके प्रति बीर्जमानके मनमें बड़ी सहानुभूति है। मरते समय इन बच्चोंके पिता बदनसिंहने बीर्जमानसे वचन लियाथा कि वही इनकी रक्षा करेगा और समय आनेपर बड़ी बेटी लीलामायासे विवाहकर लेगा। इस दिये हुए वचनका निर्वाह करनेके लिए भी बीर्जमानको नौकरीकी बड़ी आवश्यकता थी। किन्तु नौकरी मिलना इतना आसानतो नहीं, अन्तमें कहीं कोई सफलता न मिलनेपर, कोई उपाय न सूझनेपर वह फौजमें भर्ती होकर चलाजाताहै।

१९६२ में भारतपर चीनियोंका आक्रमण हुआ इस समय बीर्जमान जैसे कितनेही पहाड़ी नवयुवक देशकी रक्षा के लिए फौजमें भर्ती होगयेथे। कितनोंने देशरक्षामें अपने प्राण उत्सर्ग किये, घायल हुए, अपंग बने। इन कारणोंसे बीर्जमानके परिवारके लोग उसके पल्टनमें भर्ती होनेके विरुद्ध थे, किन्तु बीर्जमानने किसीकी नहीं सुनी। भर्तीके बाद देहरादून स्थित गोरखा छावनीमें पहुंचकर भी वह अपनी बाल-सखी लीलामायाको नहीं भुला पाता। उसीकी यादकर वह दो-चार पैसे जमा करनेकी भी चेष्टा करताहै।

देहरादूनमें गोरखा पल्टनके नायब सूबेदारके परिवार से परिचय होजाताहै और सूबेदार साहबके आग्रहपर वह उनके घर भी यदाकदा चला जाताहै। सूबेदारकी दो बेटियां प्रियकला और सत्यकला हैं। उस घरमें बार-बार आते-जाते रहनेसे बीर्जमानका तरुण हृदय प्रियकलाकी ओर आकृष्ट होताहै। उसके रसिक मित्र इस बातको लेकर उससे छेड़खानीभी करतेहैं। किन्तु बीर्जमान तो एक साधारण सिपाही है, एक फौजी अफसरकी बेटी अपनेसे कम हैसियतके पुरुषकी ओर क्यों आकर्षित होगी। बीर्जमानका हृदय तब स्तब्ध होगया जब उसने सुना कि प्रियकलाका विवाह एक फौजी अफसरके साथ होनेजा रहाहै।

इस घटनाके बाद बीर्जमान अनमना होगया और अपने परिवारसे मिलनेके लिए व्याकुल हो उठा। दो महीने की छुट्टी लेकर वह अपने गांव चला जाताहै। गांवमें आकर देखा लीलामायाकी मां मृत्युशैयापर पड़ीहै। बीर्जमानका निश्चय था कि वह घर बसायेगा तो लीलाके साथही। लम्बे समयके बाद उसने लीलाको देखा, नवतरुणी बीर्जमान उसे उपहारस्वरूप एक साड़ी देताहै, उसकी बहन फूलमायाको लहंगा तथा मामीजीको भी कपड़ा। ये उपहार बीर्जमान और लीलामायाकी विवाहकी बातको पक्का करनेमें सहायता देतेहैं।

छुट्टी समाप्त होजानेपर बीर्जमान लीलासे विवाहकी आशा लेकर अपनी ड्यूटीपर लौट आताहै। चीन-भारत युद्धमें कितनेही जवान मारे गये। इसी समय पाकिस्तान मोर्चेपर बीर्जमानभी बुरी तरह घायल होकर शत्रुका बन्दी होगया। सभीने उसे मरा हुआ समझ लिया, लीला तथा उसकी मांने भी।

एक दिन लीलाकी मांभी चल बसी। लीला और उसकी छोटी बहनपर कष्टोंका पहाड़ टूट पड़ा। गांववालों की दया-दृष्टिपर ही वे दोनों निर्भर होगयी। बीर्जमानकी मां इन लड़कियोंको अपनी लगी, किन्तु बीर्जमानकी भाभीको लीला नापसन्द थी, यह बात लीला जानतीथी। इसलिए उनके घरमें जाते लीला भाभीसे ही डरतीथी।

इसी समय उस गांवके जंगली विभागमें बीट अफसर बनकर एक पढ़ा लिखा नवयुवक रिपुमर्दन आया। वह लीलाके जीवनके नजदीक आजाता है। यही बीट अफसर अब उन दोनों अनाथ लड़कियोंका संरक्षकभी बन जाताहै। यह बात गांवके सभी लोग जानतेहैं। बात शादी ब्याहतक पहुँच गयी। रिपुमर्दनकी योग्यता तथा कुलीनताको देखकर गांवके सभी लोग उसे लीलाके योग्य समझ लेतेहैं।

बीर्जमानको लापता हुए करीब साल होगया। लीलाके मनमें अब क्षीण आशाभी ना रही उसके लौटनेकी। अत: वहभी धीरे-धीरे फारस बाबूकी ओर आकर्षित होने लगी। लीलाने मनही मन इन्हींसे विवाह करनेका निश्चय करलिया, किन्तु रिपुमर्दनको अभी विवाहकी जल्दी नहीं है। बल्कि वह विवाहके लिए तैयारभी नहीं प्रतीत होता क्योंकि वह लीलाको सिर्फ खिलौना समझताहै। और एक दिन रिपुमर्दनका तबादला लोपचुके जंगलात आफिसमें होगया। दोनोंके मिलनेके अवसरभी कम होगये। वहीं कालिम्पोंगके एक धनी परिवारमें वह विवाहकर लेताहै।

पाकिस्तानी जेलमें बीर्जमानको भयंकर यातनाएं दी जातीहैं और उसे लगता है यहीं उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जायेगी। परन्तु जेलके चिकित्सा अधिकारियों द्वारा गोली निकाल दिये जानेके बाद बीर्जमानका घाव भर गया। अगले वर्ष बीर्जमान पाकिस्तानी जेलसे छूटकर देहरादून गोरखा छावनी पहुँच गया। जांच पड़ताल हुई, उसे मौखिक और लिखित विवरण देने पड़े। उसे अब पल्टनिया जीवनसे विरक्ति होने लगी और इस जीवनसे छुट्टी लेनेके लिए प्रयत्न करने लगा। बहुत पर्यवेक्षणके बाद उसे छुट्टी मिल गयी।

और कुछही दिनों बाद बीर्जमान एक मजदूरसे अपना सामान उठवाकर घर गोरुजुरे गांवमें अपने घरकी देहलीज पर पांव रख देताहै। घरके सब छोटे बेटेका पुनर्जीवित होकर

इस प्रकार सबके सामने उपस्थित होजानेपर उस गांवमें मानो आनन्दमेला होरहाहै। जीतमान, उसकी भाभी बच्चे सभी खुशियां मना रहेहैं। बीर्जमान सबको अभिवादन करताहै छोटे बच्चोंको गले लगाताहै। मांके लिए तो यह सन्तोषका दिन था। सभी उससे तरह-तरहके प्रश्न करते रहे।

इस खुशीके समुद्रोंमें भी बीर्जमानका मन आकण्ठ डूब नहीं सका। उसे तो रहरहकर उन दो अनाथिनी बालाओंका स्मरण आताहै। उनसे मिलनेके लिए उसका हृदय व्याकुल है, किन्तु यह व्याकुलता तो सबके सामने प्रकट नहीं कीजा सकती। फिरभी एक दिन उसने साहस बटोरकर अपने बड़े भाईसे उन दो अनाथ बालाओंके बारेमें पूछा। भाईने कहा—अपना मांकी मृत्युके बाद वे दोनों बहनें खुद कुछ न कुछ काम करके अपना पेट पाल रहीहैं।

बीर्जमानके हृदयमें सरल बालिका लीला देवीके रूपमें प्रतिष्ठितहै। वह अपने भाईसे कहताहै—मुझे उन बहनोंसे एक बार मिलने जाना होगा। इसके बाद क्या-क्या करना होगा, इस विषयपर बैठकर विचार करेंगे। भैया, इस सम्बन्धमें मांका विचारभी तो जानना होगा। बड़ा भाई असमंजसमें पड़ जाताहै। सच कहनेसे छोटेके दिलपर चोट लगेगी। किन्तु एक दिन बीर्जमान उन दो लड़कियोंसे मिलने जाताहै। वे दोनों अपनी दिवंगता मांकी यादकर बीर्जमान के सामने रो पड़तीहैं। उन्हें सान्त्वना देते हुए बीर्जमान कहताहै,—नहीं-नहीं, अब मत रोओ। अब तो सुखके दिन आरहेहैं। देखो, मैं जिन्दा लौट आयाहूं, तुम दोनोंके सुख-दुखका साथी बनूँगा। अगहन आनेमें दो ही महीने हैं। हम लोगोंको अपना घर बसानेका प्रबन्ध करना होगा इस बार तो पक्काही है।

परन्तु लीला यह सुनकर हक्की-बक्की होजाती है। कुछ रुककर कहती है—आपका कहना मेरी समझमें नहीं आया। यहभी कहा कि हम दोनों घर नहीं बसा सकेंगे, क्योंकि अब वह किसी औरको अपना पुरुष मान चुकीहै। उसने सोचाथा कि बीर्जमान इस संसारमें नहीं है। अकेली तरुणी लड़कियोंका जीना मुश्किल कर दे रहेथे मनचले युवक लोग। ऐसे समयमें उनकी रक्षाके लिए बीट आफिसर रिपुमर्दन सामने आये। उन्होंने हर प्रकारसे उन दो बहनोंकी सहायता की और अब लीलासे ब्याह करनेको भी तैयारहैं।

यह सुनकर जैसे बीर्जमानके हृदयमें भूकम्प आगया। फिरभी वह कहताहै —अच्छा किया लीला, भाग्यशाली हो तुम। अफसरानी होकर सुखसे तुम्हारा दिन बीतेगा। मैंने हमेशा तुम्हारी हितकमना ही कीहै।

किन्तु बीर्जमान चोट खाकर चक्कर खाते हुए घर लौट आया और अपने बड़े भाईसे सारी बातें कह देताहै। जीतमानको भी बहुत दुख होताहै।

फारस बाबू रिपुमर्दनको तबादला लेकर गये। चार महीना बीत जानेपर भी लीलाके पास कोई चिट्ठी नहीं आती। अब लीलाका क्या होगा, बीर्जमान चिन्तित है। यह भी सुननेमें आया कि रिपुमर्दनकी शादी अन्यत्र होगयीहै। बीर्जमान कभी-कभी लीलाके घर जाता रहताहै। लीला उसे अत्यन्त सुन्दरी लगतीहै। कई बार उसने यहभी कहा कि चलो मेरे साथ हमारे घर चलो, अपनी बहनको भी लेचलो। परन्तु लीला नहीं जायेगी, सदासे वह यही उत्तर देती आरहीहै।

रिपुमर्दनका विवाह अमंगल लग्नमें हुआथा। उसकी पत्नी एक दिनके लिए भी ससुराल नहीं आयी। एक दिन बिर्जमान रिपुमर्दनके आफिसमें हठात् पहुंच जाताहै। वह साफ पूछताहै कि रिपुमर्दनने लीलाको विवाह करनेका वचन देकर भी क्यों छोड़ दिया? पर रिपुमर्दनने उत्तर दिया मैं तो सोच रहाथा कि उसका विवाह तुम्हारे साथ हो। मैं उससे विवाह करनेमें असमर्थ हूं। मेरी पूरी सहानुभूति उन दोनों बहनोंके प्रति है, किन्तु मैं लाचार हूं। वह किसी सेभी विवाहकर सकतीहै। वह चाहे तो मैं मददकर सकताहूं।

बीर्जमान उसकी बातोंसे चौंका और गरम होकर बोला—आप एक शिक्षित व्यक्ति होकर भी दूसरेकी सीधी सादी बेटीकी इज्जतको इतना हल्का समझतेहैं? आपको लीलाके साथ ब्याह करनाही होगा। यही आपकी मदद होगी, दूसरी फालतू बातोंकी जरूरत नहीं।

रिपुमर्दनभी क्रुद्ध होकर बोला—अच्छा,तो मुझे ब्लैकमैल करने आयेहो? तुम एक पल्टनिया सिपाही होकर यहाँ धाक जमाने आयेहो? इसी तरह दोनोंमें हाथापाईकी नौबत आगयीहै। रिपुमर्दन बीर्जमानपर बन्दूक से गोली चलानेको तैयार होजाता है, परन्तु बीच-बचाव के कारण गोली नहीं चलती।

बीर्जमानके सरल मनको ऐसी बातें बिल्कुल अच्छी नहीं लगती, और लड़कीभी तो कोई और न होकर उसीकी बालापनकी सखी है जिसको वह अपने हृदय मन्दिरमें बिठा चुकाथा और जिसके लिए वह शुभकामनाएं किया करताथा। आज उसी सरल नारीपर किसी दूसरेने अपवित्र नजर रखकर उसकी जिन्दगी तबाह करनेकी ठानी है। तो बीर्जमान जैसा निष्कपट हृदय व्यक्ति यह कैसे सहन करे?

झगड़ा कोर्ट-कचहरीतक पहुँच गया, किन्तु मित्रों और बड़े-बूढ़ोंके बीचमें पड़नेसे कचहरीसे मुकदमा वापस लिया गया। उधर रिपुमर्दनने भी अपनी गलती स्वीकार करली। उसकीपत्नी, जो अपने मायकेमें ही रहतीथी, एक दिन अपने किसी पुरुष मित्रके भाग गयी। अब रिपुमर्दनके लिए रास्ता खुल जाताहै और वह लीलासे सम्बन्ध पक्का करनेको उत्सुक होताहै। लीला पहले तो इस प्रस्तावको बिल्कुल अस्वीकारकर देतीहै, किन्तु रिपुमर्दन किसी तरहसे लीला का विश्वास प्राप्त करनेमें सफल होजाताहै। और एक दिन शुभ मुहूर्तमें उसके माता-पिता तथा अन्य रिश्तेदार एक छोटीसी बारात लेकर लीलाके दरवाजेपर आते है, लीलाको दुल्हन बनाकर लेजातेहैं। उसके साथ उसकी छोटी बहन फलमायाभी चली जातीहै क्योंकि उसकी देखभाल करनेवाला वहां कोई नहीं था।

इस घटनाके कारण बीर्जमानका हृदय भीतरही व्यथित रहने लगा, किन्तु बाहरसे प्रसन्न रहनेकी चेष्टा करता। बड़े भाईको उसकी मनोदशाका पता था और एक दिन वह छोटे भाईके विवाहकी बात चला देताहै। परन्तु बीर्जमान यह कहकर टाल देताहै कि मुझे विवाह नहीं करनाहै, यदि होभी जाये तो किसीकी मृत्यु हो सकतीहै। इसलिए मेरे लिए विवाह करना अपशकुन होगा।

गांवमें रहनेवाले सीधेसादे भाई और उसके परिवारके अन्य लोग बीर्जमानकी बातोंपर विश्वासकर लेतेहैं। इसलिए फिर विवाहका प्रसंगही नहीं उठाते।

बीर्जमानको फौजी पेन्शन मिलतीहै जो एक आदमीकी जीविकाके लिए पर्याप्त थी। किन्तु बीर्जमानको योंही बैठे रहना अच्छा नहीं लगता। भाईके जंगलमें वह काम करता है, पेड़ गिराना, लकड़ी कटाना, आरा चलाना। इन सभी कामोंसे उसे अब अरुचि होगयीहै। अब इससे भिन्न कोई दूसरा काम वह करना चाहताहै। भूतपूर्व सैनिक होनेपरभी कोई छोटी मोटी नौकरी मिलना कठिन है। कुछ लोग उसे तस्करीका पेशा अपनानेके लिए सलाह देतेहैं, पर बीर्जमान इसको अनैतिक कार्य समझताहै।

अन्तमें एक मुसलमान दोस्तके घर जाताहै जिसके पिता की अपनी बेकरी है। पावरोटी, बिस्कुट आदि चीजें बनाकर दार्जिलिंग शहरमें बिक्री करने लेजाया करताहै। अच्छा कारोबार है, चल निकला। बीर्जमानभी बेकरी व्यवसाय आरम्भ करनेका निश्चय करताहै और उसी फतेह मुहम्मदकी बेकरीमें कुछ समयतक तालीम लेताहै। उसके बाद उसने अपनेही गांवमें एक कमरा किरायेपर लेकर अपनी बेकरी खोलदी। पासमें ही बच्चोंका स्कूल रहनेसे उसे व्यापारमें बहुत लाभ होने लगा।

अब वह रातदिन अपने काममें ही व्यस्त रहताहै। लोग उसको सिरफिरा भी कहते, पर वास्तवमें बीर्जमान शरीर और मनसे स्वस्थ और शान्त है। वह अपने जैसे युवकोंको देखकर कहता—बेकारीकी औषधिबेकारी—आकार बेकरी कार्मूला। एक्सपेरिमेन्ट करके देखो, मेरी पीढ़ीके युवा बन्धुओ।

कुछ समय इसी तरह बीत गया। बीर्जमानने अब दाढ़ी-मूंछ रख लीहै। वह पहलेकी तरह टिपटापभी नहीं रहता। पुराने सहपाठी रामभजनकी दुकानमें जाता रहताहै, बीड़ी पीते हुए सड़कके किनारे बैठा रहताहै। यह उसका रोजका कार्यक्रम है।

एक दिन जब वह गीत गुनगुना रहाथा कि उसी समय एक भले आदमीको देखकर वह चौंक पड़ा, और कोई नहीं वही रिपुमर्दन। उसके पीछे खड़ी उसकी स्त्री लीला। उनको देखकर बीर्जमानके जैसे होश उड़ गये। चेहरा दूसरी ओर घुमाकर वह चुपचाप बीड़ीका कश लेता रहा। बादमें उन दोनोंने उसे पहचान लिया। लीला उसको देखतीही रह गयी। वहभी उसकी एक झलक देखकर मुस्कुरा दिया। फिर दोनोंने एक दूसरेकी हालचाल पूछे। पता चला कि लीलाका पुराना घर देखने आयेहैं। दोनों पति-पत्नी उससे विदा लेकर पहाड़ी चढ़ाई चढ़ने लगे।

बीर्जमान देखताहै—लीला अब पहलेसे स्वस्थ और सुन्दर होगयीहै। रिपुमर्दनने उसे बहुत सुख-आराममें रखा है। यह सोचकर उसके मनको बड़ा सन्तोष मिला।

और इधर लीलाभी उसकी ऐसी अवस्था देखकर झेंपते-झेंपते वहाँसे चल पड़ी। उसे दुःख होताहै कि बीर्जमान की अवस्था ऐसी क्यों होगयी?

उपन्यासका कथनाक सीधा-साधा है, नयी औपन्यासिक तकनीक इसमें नहीं दिखायी देती, किन्तु लेखककी विशेषता इसीमें है कि वह उपन्यासके माध्यमसे इस पहाड़ी क्षेत्रके नेपाली समाज और संस्कृतिका भी यथार्थ चित्रण करतेहैं। लोगोंकी बोलचाल, सम्बन्धोंकी पवित्रता, रीतिरिवाज आचार-व्यवहारसे सभीपर उन्होंने प्रकाश डालाहै।

दूसरी विशेषता यह है कि उपन्यासने १९६२ के चीन-भारत युद्ध, १९६३-६४ के भारत-पाकिस्तान युद्धपर विशद प्रकाश डालाहै। एक पल्टनिया सिपाहीके मनमें देश और अपने परिवारके प्रति कितना स्नेह रहताहै, यहभी लेखककी नजरसे गुजरताहै। बीर्जमान बालसखीके प्रति निश्छल प्रेमके

वर्णनमें लेखकने कुशलता दिखायीहै। जंगलात विभागमें काम करनेवाले मजदूरों की तकलीफोंका सही चित्रण करने का भी प्रयास किया गयाहै। लेखककी अपनी जन्मभूमिके आसपासके पर्वतीय स्थलोंका वर्णन पुराने समयकी शिक्षा पद्धति, पुराने समयके कालिम्पोंगके उनके बड़े-बड़े गोदामोंका वर्णन, हिमालयकी स्वच्छ हवाकी सिहरन, प्रकृतिकी हरियालीकी खुशबू आदि सभी इस उपन्यासमें मिलतेहैं। उपन्यासकार पेशेसे मजिस्ट्रेट रहे हैं। उन्होंने स्वयं न जाने कितने मुकदमोंका फैसला किया। प्रस्तुत उपन्यासमें भी कोर्टका वर्णन, मुकदमों की पेशीका यथार्थ वर्णनहै।

भाषाकी दृष्टिसे नियतिकी भाषा-प्रांजल नेपाली भाषा है। वस्तुतः सुन्दास नेपाली भाषाके मर्मज्ञ हैं। उनकी भाषामें शुद्धता एवं माधुर्य है। कहीं-कहीं ठेठ नेपाली भाषा शब्दोंका प्रयोग करनाभी वे नहीं भूलते। देहरादून क्षेत्रमें बोली जानेवाली खिचड़ी नेपाली भाषाका नमूनाभी हम इस उपन्यासमें देख-पढ़ सकतेहैं।

पुरानी पीढ़ीके लेखक होनेपर भी सुन्दासजीकी लेखनी कथा-साहित्यके सृजनमें व्यस्तहै। उन्होंने प्रस्तुत पंक्तिकी लेखिकाको स्वयं कहा कि अभी वे नियतिसे भी बृहदकाय उपन्यास लिखनेमें व्यस्त हैं। हम आशा करतेहैं कि उनकी सुललित लेखनीका अस्वादन हम बार-बार कर सकेंगे।□

बाङ्ला : काव्य

मानव अस्तित्वका अर्थ और उसकी खोज

कृति 'जेते पारि किन्तु केन जाबो'
कवि : शक्ति चट्टोपाध्याय.

समीक्षक : डॉ. रणजीत कुमार साहा
साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन,
नयी दिल्ली.

१९३३ ई. में जन्मे शक्ति चट्टोपाध्यायके लिए, साहित्य अकादमीके १९८३ का साहित्यिक पुरस्कार उनकी पचासवीं वर्षगांठका प्रकारान्तरसे अभिनन्दन ही है। शक्तिने कई मौकोंपर कहाहै कि यह पुरस्कार उन्हें कुछ विलम्बसे प्राप्त हुआ। उनकी शिकायतसे सहमत होना कठिन है। **'जेते पारि किन्तु केन जाबो'** शक्तिकी विशिष्ट कविता पुस्तकोंमें से एक है, लेकिन उनकी पिछली सभी कृतियोंमें अप्रतिम है, यह अन्तिम रूपसे नहीं कहाजा सकता। बाङ्ला साहित्यके समीक्षकों और पाठकोंको इस बातकी प्रतीक्षा है कि शक्ति आने वाले वर्षोंमें ऐसी कोई कृति अवश्यही देंगे जो न केवल विवादोंसे परे हो बल्कि बाङ्ला काव्य-साहित्यके साथ-साथ समस्त भारतीय भाषाओंकी कालजयी कृतिके रूप में समादृत होनेकी समस्त संभावनाओंसे युक्तभी। समालोचकोंका एक वर्ग ऐसाभी है, जो शक्तिकी रचनाओं पर टिप्पणियां करते हुए एक प्रकारके अपरिभाषित भयसे आक्रान्त रहाहै। कहना न होगा, शक्ति रचनाको आलोचनाके हाथों बंधक बनाये रखनेको, तैयार नहीं। वे मानते रहेहैं कि हर कविका अपना 'कल्प स्वर्ग' होता है, जिसमें आलोचकका प्रवेश शायद वर्जित है।

बाङ्ला काव्य साहित्यमें रवीन्द्र-युगके अवसानके साथ-साथ, जिन कवियोंका अभ्युदय हुआ, उनमें सर्वश्री मंगलाचरण चट्टोपाध्याय, गोपाल भौमिक, दिनेशदास, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, सुभाष मुखोपाध्याय, मणीन्द्र राय, विमलचन्द्र घोष और बुद्धदेव वसु तथा विष्णु दे आदि प्रमुख थे और इनके साथ-साथ, जिस परवर्ती पीढ़ीने बाङ्ला कविताको ही नहीं, समसामयिक भारतीय कविताके आन्दोलनको असहमतिपूर्ण मुद्रा, दुर्धर्ष संघर्षका सतेज आमंत्रण और नया मुहावरा प्रदान किया, उनमें शक्तिके साथ सर्वश्री आलोकरंजन दासगुप्त, सुनील गंगोपाध्याय, शिशिर भट्टाचार्य, समरेन्द्र सेनगुप्त, मोहित चट्टोपाध्याय, दिव्येन्दु पालित,

मानस रायचौधुरी, शंख घोष, सुनील वसु, नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और अमिताभ दाशगुप्त आदि विशेष उल्लेख्य हैं। इनमें शक्ति अपनी रचनाओंकी विशिष्ट विचार एवं विषय-वस्तुकी दृष्टि तथा तेवरके कारण सबसे प्रभावी माने जातेहैं। पाठकोंपर अपने प्रभावकी दृष्टिसे बाङ्ला साहित्यमें उनके समकक्ष केवल सुनील गंगोपाध्यायको ही माना जाता रहाहै, जो वयमें भी उनसे एक वर्षही छोटे हैं।

शक्तिके काव्य उन्मेषमें **'कृत्तिवास'**, लेखक गोष्ठी का जिसके संस्थापक वही थे, विशेष महत्त्व रहा। इससे जुड़ा काव्य आन्दोलन आम आदमीकी वंचनाओं और विडम्बनाओंके मूलमें 'भूख' को रेखांकित करता रहा। बंगालके युवा कवियोंका विद्रोहभी कई खेमों और खूंटोंमें विभाजित हुआ। इनकी कविताका स्तर, कुल मिलाकर विद्रोह और विरोधका ही रहा—व्यवस्था और सामाजिक नैतिकताके विरुद्ध —जो आम आदमी के शोषणकी प्रमुख घटक-प्रवृत्ति है। आक्रोश और क्रोध की मुद्रावाले युवा-कवियोंको 'हंगरी जेनरेशन' जैसे आन्दोलनने भी अपनी ओर आकृष्ट किया। अमरीकी कवि एलेन तथा गिन्सबर्गके बंगाल आगमनसे भी कवियोंको नयी विचार-दृष्टि मिली। कहना न होगा, इन सारी गतिविधियोंका प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओंकी काव्य रचनाओंपर भी पड़ रहाथा। मंगलाचरण चट्टोपाध्याय तथा उनके परवर्ती विमलचन्द्र घोष जैसे प्रतिनिधि कवियोंके दशक और खेमेके कवियोंने इस श्रेयको बड़ी प्रसन्नताके साथ लेना चाहा कि उन्होंने रवीन्द्र-युगके बचे-खुचे अवरोधोंको ढोनेवाले कवियों और उनके प्रशंसकोंकी छुट्टी करदी। यही विचारधारा आगे चलकर शक्ति चट्टोपाध्याय जैसे कवियोंकी रचनाओंमें प्रस्फुटित हुई। अन्य समानान्तर कवियोंने भी व्यक्तिगत सन्दर्भोंके साथ कविताके सामाजिक स्वरूपको उजागर करनेकी कोशिश की। काव्यका 'अकादमिक', शास्त्रीय या पुस्तकीय प्रकाशन-मुद्रण इनका अभीष्ट नहीं था। आरंभमें पूर्वस्थापित दृष्टि या मान्यताके विरुद्ध खड़े रहनेके बाद, शक्तिकी परवर्ती और प्रौढ़ कविताएं इस तर्क एवं संशोधनके साथ मुखरित होती गयीं कि कोई वैज्ञानिक समीकरण भलेही न हो लेकिन बुद्धिके स्तरपर उसका निर्वाह अवश्य होना चाहिये। वर्ना कविता अर्थहीन और ध्वनिचित्रके रूपमें, रूढ़ हो जायेगी।

शक्तिने घोषणा कीथी कि 'बदहजमीही शिल्प है, और जीवनको खा-पकाकर, जितना अखाद्य (याकि जूठन) बचे वही गद्य, पद्य और चित्र आदि है।' शक्ति अपने बड़बोलेपनके लिएभी काफी (कु)ख्यात रहेहैं। उनके अनुसार कविकी कविताओंकी श्रेष्ठता उसके व्यक्तिगत मिथकोंपर ही निर्भर करतीहै। जैसाकि ऊपर बताया गया, शक्तिने इस संकलनमें भी 'भूख' को मानवीय अस्मिताके लिए सबसे जटिल संकटके रूपमें परिरेखित करते हुए 'मंदिरेर थेके बहुशताब्दीर पर' (पृ. २५) जैसी कविताभी लिखीहै, जो उनके पूर्व प्रकाशित संकलन 'भात नय पाथर रये छे' (—भात नहीं, पत्थर पड़ाहै) की अगली कड़ीके रूपमें देखीजा सकतीहै। यह भात मात्र शब्द या अन्न-सत्ता नहीं; एक जातीय अभिप्राय और आकांक्षाके रूपमें—सिद्धों की रचनाओंसे चलकर 'बंगालके काल' तक की लगभग एक हजार सालकी लम्बी परिक्रमाके बाद—इस संकलनमें भी द्रष्टव्य है :

'सूखे पत्ते बटोरनेवाली औरतें
जिनके साथ सूखी टहनियाँ और ठठ्ठर हैं
आगमें जलेंगी
भीखमें मिला भात तो नसीब होगा,
यही समझकर सब साथ-साथ हैं।' (पृ. २५)

× × ×

'आदमी घास नहीं खाता...
...फिर क्या खाताहै भला ?
खुदभी नहीं जानता
वह अपने दोनों हाथ पसारे खड़ाहै :
भात दो...' (निश्चिन्तपुरे सन्ध्या, पृ. ५७)

कविने मनुष्यकी इस शाश्वत भीखको, एक छोटी-सी प्रार्थना कवितामें संजोयाहै, भरी-पूरी पकी हुई फसलके बीचभी आर्त और गरीब किसानकी मनौतीके साथ, उसके अस्फुट करुण-स्वरमें अपना स्वस्त्ययनभी जोड़ दियाहै। अपने चारों ओर मंडरा रही भूख और अभावसे लड़ रहे किसानका एकमात्र संबल उसकी प्रार्थनाही है। कवि उसकी आस्थामें सम्मिलित होना चाहताहै :

'एक आदमी
हाथ पसारे खड़ा रहताहै
सुनहली फसलके बीच

दिन-दिनभर ।
मां अन्नपूर्णा अन्न दो—कहता हुआ
योजन विस्तृत खेतमें वह खड़ाहै—एकाकी
भर-पूर जाय उसकी खाली हथेली...'
(हात पेते दाँड़िये पृ. १६)

प्रस्तुत कृति शक्तिके पिछले संग्रहों (हेमन्तेर अरण्ये आमि पोस्टमैन; सोनार माछि खून करेछि; कवितार तुलो उड़े; एम आमि जे पाथर; हे प्रेम...हे नैशब्द्य; धर्मे आछे जिराफेउ आछे; अनन्त नक्षत्र वीथि तूमि...अन्धकारे; सुन्दर एखाने एका नय आदि) के मुकाबिले अधिक सहज, संयत और उदात्त है। यहां भावका परिष्कारही नहीं, शमनभी है और विपश्यना भी। कवि यहाँ किसी विशिष्ट मुद्रामें नहीं दीखता न उसके शब्द बौखलाये या खौलते हुएहैं। वह कुछ 'विशिष्ट' देख रहा और सुन रहा होताहै। पहले वह लगातार भटकता रहाथा—अब 'कुछ' खोज रहा या पा रहा होताहै। उसे लगताहै, शायद अब वह इन स्थानों या अनुभूतियोंको फिर देख या छू नहीं सकेगा। लेकिन यह भटकाव या छटपटाहटही उसे जीवनके हर स्पन्दन और सुदूर क्षेत्रों और कोनों—यहाँतक कि कारखानों, झुग्गियों, जेलों, अस्पतालों, जंगलों और श्मशानोंतक ले जातीहै। नये सिरेसे वस्तुस्थितिको पाने और पहचाननेकी यह ललकही, उसकी जड़ता और भटकावको सार्थकता प्रदानकर रही होतीहै। चाहे वह शान्ति निकेतनका ग्वालपाड़ा हो, वल्लभपुरकी संथाल बस्ती हो, अरावलीकी पहाड़ीपर बसा डूंगरपुर।

संकलनकी प्रथम कविता एक यात्री कविके हार्दिक उल्लास और असमंजसको रेखांकित करतीहै। यात्राको प्रस्तुत होते हुएभी, कवि अपनी यात्राको स्थगित करने का निर्णय लेताहै। कहीं जानेसे पहले—पहले वह नये सिरे लौटना और फिर प्रस्थान करना चाहताहै। संकलनकी इस महत्त्वपूर्ण कविताका अविकल हिन्दी-अनुवाद यहाँ रखाजा सकताहै :—

'सोचताहूं
मुड़कर खड़ा रहनाही ठीक रहेगा
अपनी दोनों हथेलियोंमें इतनी कालिख पोत रखीहै
—इतने युगोंसे—
कभीभी,
तुम्हारा बनकर, तुम्हारे बारेमें नहीं सोचा
अब रातमें इस गढ़के पास खड़ा होतेही
बुलाताहै चाँद आ...आ...आजा...
उधर गंगाके किनारे घूमकर खड़े होनेपर
लकड़बग्घा पुकारताहै...आ रे आ...

जा सकताहूं—
मैं किसीभी तरफ जा सकताहूं
लेकिन क्यों जाऊंगा भला ?
सन्तानका मुखड़ा हाथोंमें थामकर—
उसका चुम्बन लूंगा।

जाऊँगा—
लेकिन अभी नहीं जाऊंगा,
और जब जाऊँगा तुम सबको साथ लेकर जाऊँगा
मैं अकेला नहीं जानेवाला—
असमयही।'

इस छोटी-सी कविताका वक्तव्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उस कालजयी कविता 'यदि तोर डाक सुने केऊ ना आसे तब एकला चलो रे' से कितना अलग और विशिष्ट है। दोनोंके सन्दर्भ अवश्यही अलग-अलग हैं लेकिन यहाँ शक्तिके उस निर्णय और जिदपर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता होयीहै कि कवि अपने 'मैं' के वृत्तसे अलग निकलकर 'तुम' और 'तुम सबको' साथ लेकर जानेकी जिद किये बैठाहै। उसे यह पछतावा है कि उसने अबतक इस 'सर्वनाम' का प्रत्यय क्यों नहीं किया ? और कविकी यह वापसीकी यात्रा अपनीही संतानके भोले मुखड़ेकी ओर तकने और उसके चुम्बन-प्रस्तावसे आरंभ होतीहै। चाँद और लकड़बग्घेके बनाम या बकलम-खुदके खिलाफ लिये गये इस निर्णयने शक्ति के कवि व्यक्तित्वको एक नया आयाम प्रदान कियाहै। वह अपनी यात्राका पुनरारंभ करनेके पूर्व कोई खेद या रूमानियत भरा अवसादभी व्यक्त नहीं करना चाहता कि अपनी उतावलीभरी सनक और शीघ्रतामें वह अपने बच्चेको चूमतक नहीं पाया।

संकलनमें संगृहीत ५३ कविताएँ कविके भाव-विस्तारकी अनन्य साक्षी हैं। कुछ कविताएं किसी घटनासे प्रेरित होकर लिखी गयीहैं लेकिन स्थूल घटनाओंका विवरण न देकर कविने अपनी करुणाके जलसे इन्हें सींचाहै, जिससे ये अधिक सहज मानवीय और तरल होगयी हैं। 'एखर आमार कोनो अभिमान नेई' —(अब मेरा कोई अभिमान शेष नहीं) जैसी कविता अपने निर्वाह, बिम्ब, लय और भाव-प्रपत्तिकी दृष्टिसे कविकी अप्रतिम रचना है। शक्तिकी मानसिकता,

रचनाके सृजन-स्तरपर भी बहुत अस्थिर आकुल और अशान्त रहीहै। वे यौवनके उत्ताप और आवेगकी अनिवार्यताको भी स्वीकार करतेहैं और साथही, यह भी बताते-जताते रहेहैं कि कवितामें निहित आगही उसकी श्रेष्ठता और मौलिकताको संजोये रखतीहै।

कवि इस आगमें जलता रहना चाहता है। मृत्यु-बोधकी कई कविताएं उसकी अदम्य जिजीविषाका साक्षात्कार करातीहैं। दुःख और मृत्युके पद-चिह्नोंको मिटानेसे इनका आतंक खत्म नहीं होता। कई कारुणिक घटनाएँ भी उपस्थित होतीहैं—कविको जीवनकी और समाजके मंचपर भी 'आगुन लेगे छे'—(आग लगीहै) जैसी कविता कम्बलके एक हिस्सेको आगसे जलता देख कर, दूसरे हिस्सेको बचानेकी तैयारीसे जूझनेका संकेत देतीहै। कहना न होगा, यहाँ कम्बल—देशका प्रतीक है। लेकिन कविने सत्ता, व्यवस्था या नियामकपर उंगली उठाये बिना केवल अपनी इच्छा इस रूपमें व्यक्त कीहै कि जला हुआ चेहरा (मुझे) अच्छा लगता है। एक दूसरी कविता 'मृत्यु' (पृ. १२) में कविकी स्वीकारोक्ति है कि मुझे जलना सचमुच बहुत पसंद है। कविता है :

'इस श्मशानमें—जलीथी ढेर सारी लकड़ियाँ
मैं पसन्द करताहूं जलना; सचमुच पसन्द करताहूं
मैं जलना चाहताहूं नदीके किनारे
क्योंकि एक घड़ी ऐसीभी आतीहै, आ सकतीहै
जब नदीके किनारे आग झेलना असह्य हो उठे
और जलता मुर्दा मांग बैठे—एक अंजुरी जल—
फिर तो मृत्यु होती नहीं सफल/हो नहीं पाती
सफल।'

इस संकलनमें, इसीलिए पहली बार ऐसा लगताहै कि शक्ति अपने समग्र रचना-संसार और काव्य-संस्कारसे पुनर्साक्षात्कार कर रहेहैं। शायद इन्हें व्यवस्थितभी करना चाह रहेहैं।

कविने संकलनकी अंतिम कविताके रूपमें—एक 'समाधि लेख' (एपिटाफ) भी लिखाहै। यह असामान्य कविता लेखक-प्रकाशकके सम्बन्धकी विडम्बनाको बड़ी गहराईसे चित्रित करतीहै। प्रस्तुत पुस्तिकाके प्रकाश-कीय-सलाहकारने इसके अन्तिम प्रच्छदपर इस कटु यथार्थको संयोजित कियाहै। वहां यह चिन्ता व्यक्त कीगयी है कि क्या कवि शक्ति चट्टोपाध्याय सचमुच समाधि-लेख लिखनेकी उम्रमें पहुंच गयेहैं? इस आशकाको अपनी पाठकीय जिज्ञासासे जोड़ते हुए इस चर्चित कविताकी पंक्तियां उद्धृत कीजा रहीहैं :

'कुछ दिनोंतक सुखोपभोगकर लेनेके बाद
एक आदमीकी तरह उसकी मृत्यु होगयी
यह आदमी कवि था
साथ ही, बड़ा भारी कंगाल।
उसके मरनेके बाद,
प्रकाशकोंने एक महोत्सव आयोजित किया
चूँकि अब वह गुजर चुकाथा—जान बची
अब वह परेशान नहीं किया करेगा
हर साँझ सज-धजकर शोर नहीं मचायेगा—
कि पैसे निकालो
वर्ना बड़ी भारी तोड़-फोड़ होजायेगी
सारा अभिलेखागार तहस-नहस होजायेगा
निकालो भई, जल्दीसे कुछ पैसे निकालो
वर्ना घरमें लगा दूंगा आग

लेकिन इस आगमें खुद फुंक गया बेचारा
···कवि याकि कंगला। (पृ. ६४)

कहना न होगा, आज या कलके अधिकांश कविकी नियति यही है, यही थी, और शायद आगेभी यही रहे। साहित्यमें अपनी आग, ऊर्जा और चेतना भरनेवाले कवियोंको प्रकाशक अपनी दराजमें बन्द रखताहै। कवियों-साहित्यकारोंकी बेचारगीपर तरस खाकर, उसकी मृत्युपर उसकी स्वार्थ-लोलुप दृष्टि सामाजिक-साहित्यिक एवं सांस्कृतिक लाभोंको भी अन-देखी नहीं करती और ऐसी दुर्घटनापूर्ण घटनाओंको भी महोत्सवोंमें परिणतकर देतीहै।

उद्भट कल्पना, अति यथार्थवादी शब्दांकन और स्वप्न जगत्से मिलती-जुलती एक समानान्तर काव्य-सृष्टिसे चमत्कृत करनेवाले शक्तिकी कविता-यात्राका यह संकलन बहुतही महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। बाङ्लाके युवा कवियोंका एक बहुत बड़ा वर्ग शक्तिके अनुकरण या तर्जपर असफल विसदृश शब्द-चित्र सर्जन या बिम्ब विधानमें लगा रहाहै और कविता ठहर गयीहै। शक्ति शब्दोंकी पुनरावृत्ति (कभी-कभी ऊब पैदा करनेवाली) के लिए भी बुरे-भले बनाये गयेहैं, लेकिन यहाँ उन्होंने शब्द या वाक्यांशकी पुनरावृत्तिसे एक तरहकी लयात्म-कताको बनाये रखनेका उपक्रम कियाहै। इस प्रकारकी कृतियोंसे संभव है, नये कवियोंको कोई दिशा मिले और उनमें स्थैर्यभी आये।

साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत इस कृतिके कई संस्करण बाजारमें खप चुकेहैं। साथही, कविकी दो नयी काव्य-कृतियाँभी 'कॉक्स बाजारेर सन्ध्या' और 'कोथाकार तरवारि कोथाय रेखेंछि' आचुकीहैं।

इस ६४ पृष्ठोंवाली सुमुद्रित और सजिल्द कविता पुस्तककी कीमत मात्र सात रुपये है। यदि हिन्दीका कोई प्रकाशक इसे छापता (विशेषकर राजधानीका) तो इसकी कीमत लगभग २५ रुपये होती। फिर तो न केवल प्रकाशक बल्कि पाठकभी ऐसे प्रतिष्ठित कविके मरनेकी प्रार्थना और प्रतीक्षा करते।

पुस्तकका आवरण (चित्रकार : सुनील शील) भी बहुतही प्रतीकात्मक है और शक्तिकी कविताओंसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं। □

मणिपुरी : नाटक

महाभारतके पात्रोंके आधुनिक चित्र

'कर्णकी जननी और कर्णका अन्तिम विश्राम'

कृति : कर्णगी ममा अमसुङ
कर्णगी अरोइबा याहिप.
नाटककार : निङोम्बम इबोबी सिंह

समीक्षक : डॉ. ए. दिनमणि सिंह
मणिपुरी विभाग, मणिपुरी विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इम्फाल.

"कर्णगी ममा अमसुङ कर्णगी अरोइबा याहिप" (कर्णकी जननी और कर्णका अन्तिम विश्राम) में लेखक के दो लघु नाट्य संगृहीत हैं—कर्णगी ममा (कर्णकी जननी) और कर्णगी अरोइबा याहिप (कर्णका अन्तिम विश्राम) जोकि वास्तबमें आकाशवाणी नाटक (रेडियो प्ले) हैं।

कर्ण महाभारतका नायक माना जाताहै और कुन्ती पूरे महाभारतमें सबसे अधिक अभागिन नारी। कर्ण वीरताकी मूर्ति है वह अपने भुजबलसे भाग्यके विरुद्ध लड़ता रहा। हारना उसे आताही नहीं, कर्म उसका एकमात्र उद्देश्य रहाहै। भाग्यने उसे इतना कठोर बना दिया कि मारना और मरना उसके लिए खेल है, बायें हाथका खेल। लेकिन जननीहीन ममताके सामने उसकी कठोरता शनैः शनैः कोमल होती जातीहै, और उधर, कुन्तीकी पुत्रहीन ममता प्रतिदिन कठोर। कर्णकी कठोर कोमलता तथा कुन्तीकी कोमल कठोरता दोनों एकही चरम सीमापर आ मिलतीहैं, 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'' के महायुद्धकी ठीक पूर्व सन्ध्यामें। इसी चरम सीमाओंके संयोगपर केन्द्रित है 'कर्णगी ममा'—प्रथम नाटक।

द्वितीय नाटकमें कर्णका अन्तिम युद्ध तथा उसका हृदयस्पर्शी मरण भलीभाँति दिखाया गयाहै। कर्ण और अर्जुनके युद्धका दृश्य है। यह युद्ध दोनोंकी अन्तिम विद्या परीक्षा है और दो-दो संकल्पोंका निर्णायक। अर्जुनके पक्षमें देवताही नहीं अपितु भाग्य तथा ममताभी लड़ रहेहैं और कर्ण सबके विरुद्ध केवल अकेला लड़ता रहा। सारथीतक धोखा देगया। उधर सारथी पार्थकी रक्षाकर रहेहैं। कर्णके पास सब कुछ था। लेकिन समय आनेपर अब कोईभी नहीं रहा। गुरुका शाप काल बनकर आया और विद्याएं सब प्रतिकूल होती गयीं। उसकी विपरीत बुद्धि विनाश कालके समाचार देने लगी। बस एक रह गया—पौरुष।

(शेष पृष्ठ ४८ पर)

दक्षिणांचलीय भाषाएं

- कन्नड़
- तमिष़
- तेलुगु
- मलयालम

मानवका नये आलोकमें उसके आन्तरिक जगत्का सफल चित्रण

कृति : 'कथेयादळु हुडुगि'
कहानीकार : यशवन्त चित्ताल.

समीक्षक : टी. आर. भट्ट.
हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़.

आधुनिक कन्नड़ साहित्यमें विशेषतः साठोत्तर कथा-साहित्यमें यशवंत चित्तालका अग्र स्थान है। उन्होंने अधिक नहीं लिखाहै, मगर जितनाभी लिखाहै, उसमें मौलिकता है, जीवन-शक्ति है, सृजनशीलता है।

चित्तालका बाल्य जीवन उत्तर कन्नड़ जिलेके हने-हळ्ळि नामक गांवमें बीता। उसके बाद महानगर बंबई उनका कार्य-क्षेत्र रहा। अतः उनकी रचनाओंमें ग्राम जीवनकी सही झांकी देखनेको मिलतीहै। लेकिन वे प्रादेशिक जीवनको ही अभिव्यक्त करनेवाले लेखकोंमें नहीं हैं। वे उस प्रादेशिक वातावरणको सार्वत्रिक रूप देनेवाले साहित्यकार हैं। उनका स्वयं कहनाहै 'जीवनके बारेमें आज मुझे जो विशाल दृष्टि, उच्च विचार, सहज संवेदना मिलीहै, इन सबका रूप अपने बाल्य जीवनके झूलनेमें ही निश्चित हुआहै।'

चित्तालमें उदार सृजनशीलता है। आजके लेखकोंमें जिस संयमका अभाव है वह इनमें पर्याप्त रूपमें वर्तमान है। इस कारण उनका कथा-साहित्य शक्तिपूर्ण है। उन्होंने जीवनको गंभीर रूपमें और गहराईसे देखाहै तथा विभिन्न शास्त्रोंका अध्ययन कियाहै। इससे उनके सृजनको बल मिलाहै।

कन्नड़ साहित्यमें कहानी विधा एक अत्यन्त सशक्त प्रकार है। उसे स्थायी रूप दिया मास्ति वेंकटेश अय्यंगारने। इनके बाद यू. आर. अनंतमूर्ति, लंकेश, यशवंत चित्ताल, शांतिनाथ देसाई तेजस्वी, सदाशिव, नाडिग आदि लेखकोंने कहानी-विधाको अधिक पुष्ट किया। मास्ति वेंकटेश अय्यंगारसे ही स्फूर्ति पाकर कथा क्षेत्रमें उतर आये और आज उन्होंने कन्नड़ कथा-साहित्यको एक नया आयाम दियाहै। चित्तालकी साहित्य-साधनाके दो प्रमुख कारण हैं : एक है उनकी गतिशील संवेदना। उनके पास जीवनका गंभीर अनुभव है। उनकी अपनी जीवन-दृष्टि है। साथही जीवनके कार्य-कलापके प्रति प्रस्फुटित होनेवाली चैतन्यशीलता है। दूसरा उनमें विभिन्न दर्शनके विविध मुखोंको उचित शरीरके निर्माण करनेकी अद्भुत कला है। इस कलाको सफल बनानेके लिए परिश्रम, पूर्व चिंतन, प्रयोगशीलता, भाषा-संपत्ति उनमें विद्यमान है।

'कथेयादळु हुडुगि' (कहानी बन गयी लड़की) यशवंत चित्तालका चौथा कथा संकलन है जिसमें लेखकका नया प्रयोग एवं नयी संवेदना देखनेको मिलतीहै। प्रस्तुत संकलनमें आठ कहानियाँ हैं जिनमें कुछ कहानियाँ कथा के आलोचकको नये ढंगसे सोचने और विचार करनेको प्रेरित करतीहैं। साथही ये कहानियाँ आलोचकको आलोचनाके नये मानदंड खोजनेको विवश करतीहैं। चित्तालकी इन कहानियोंको उनके जीवन और जगत्के दीर्घ अनुभवका आधार मिलाहै। इस संग्रहकी कहानियों में व्यक्ति-व्यक्तिके बीच और जीवन और जगत्के बीच जो द्वंद्व चलताहै उसे शाब्दिक अभिव्यक्ति मिलीहै।

इतिहास और व्यक्तिका जीवन, प्रेम, काम, तथा व्यक्तिका जीवन, सृजनशीलता एवं जीवनका अनुभव— इन प्रमुख द्वंद्वोंका सामना चित्ताल अपनी इन कहानियों में करतेहैं। इन द्वंद्वोंमें जीवनका अनुभव और उन्हें गंभीर रूपमें परखनेकी खोज लेखकने यहाँ कीहै।

'त्रयोदश पुराण', 'अश्वथ्ताम' शीर्षक कहानियोंमें इतिहास और व्यक्तिके जीवनकी समस्या लेखकने उठायीहै। मनुष्यके जीवनके संदर्भमें इतिहासके संदर्भका क्या औचित्य है ? दुरंत गणेश (त्रयोदश पुराण) को अपने जीवनके व्यक्तित्वके निर्माणके लिए अवकाश नहीं देता। उसे बार-बार मृत्यु अपनी ओर खींचतीहै। यह इतिहासके क्रूर लक्षणका द्योतक है। दुरंतोंसे कोई संबंध न होते हुएभी गणेश इन आकस्मिक दुरंतोंमें फंस जाताहै। वह अपने पूर्वजोंद्वारा निर्मित व्यूहपर अकारण बलि होताहै। 'तीन हजार वर्षोंसे शोषण करती आयीहै जाति।' इसकी क्रियाओंसे अनभिज्ञ गणेशको यह एक भूतके रूपमें पीड़ित करतीहै। यहाँसे उसका पलायन आरंभ होताहै। लेकिन यह पलायनके स्वरूपका जीवन प्रधान रूपसे उसपर इतिहासके नये स्वरूपके आक्रमण का प्रभावही है।

'अश्वथ्ताम' शीर्षक कहानी इतिहास और व्यक्तिके संबंधके और एक मुखको प्रस्तुत करतीहै। इसका नायक रामचंद्र गणेशसे भिन्न है। वह अपनी क्रियाके माध्यमसे पाप-प्रज्ञाको खोजताहै जो उसके शरीर और मनपर छा गयीहै। वह कहताहै : 'मेरे हाथसे हुई इस शूद्र-हत्याको कितने दिन बीते ; हजार वर्ष ? नहीं, हजार निमिष ? काल-प्रज्ञाही गायब होरहीहै।'

'उद्धार' कहानीमें पौराणिक संकेतको संवेदना दी गयीहै। यहाँ वस्तुको आकार देनेके लिए कलाकारने 'रामायण' की अहल्याकी कथाका उपयोग कियाहै। यहां की नायिकाका नाम अहल्या है। इसकी कथा आत्महत्या से संबंधित है। वर्षाकी रात, आगंतुक, काले कुत्तेकी आवाज, ये तीनों अहल्याके जीवनमें परिवर्तन और दुरंतके कारण हैं। काले कुत्तेका सपना उसकी शादीकी सूचना देनेपर भी, शादी उसके जीवनका प्रथम दुरंत है। दूसरा है—वर्षाकी रातमें आगंतुकका आगमन, इसका भाग जाना। यह पाप-प्रज्ञा उसे सदा जलातीही रहतीहै। तीसरा है—और एक वर्षाकी रात में साधु घरके सामने खड़ा होताहै। भूतभी उसे और विवश करताहै। कुत्तेकी आवाज इसे द्विगुणित करती है। वह भूतका पुनरावर्तन नहीं चाहती, वह तैयारभी नहीं। अतः आत्महत्या। अन्तमें तो अहल्याको मुक्ति मिलतीहै।

'चक्रव्यूह' नामक कहानीमें अभिमन्युकी कथा है। यहाँ अभिमन्युकी मृत्युको सूचित करना लेखकका उद्देश्य नहीं है, अपितु उसकी मृत्युको देखकरभी उसपर प्रदर्शित की जानेवाली हृदयहीनताको स्पष्ट करनाहै। ४५ वर्षकी उम्रका, चार पुत्रोंका बाप इस कहानीका नायक है। वह २४ वर्ष उम्रकी लुसियाके साथ लैंगिक संबंध जोड़ताहै। यह संबंधही उसे मृत्युका अनुभव देता है। इस घटनाका केंद्र न्यूयार्क नगर है जो एक महा-चक्रव्यूह है। अनिवार्य रूपमें जब मन वर्तमानसे भूतकाल तक मुड़ताहै, वहाँभी चक्रव्यूहका प्रतीक उसे डराताहै। भूत वर्तमानका संघर्ष होनेपर पीड़ाके चक्रव्यूहसे कैसे पार पायेगा ? यहांका यही प्रश्न है। 'बीग मत्तु बीगद कै' (ताला और कुंजी) नामक कहानीमें केशवका दुरंत केवल वैयक्तिक नहीं है। वह व्यक्तियोंके परस्पर स्पंदनका साक्षी है।

'मुखामुखी', 'कथेयादळु हुडुगि' और 'कथेयल्लि बंदात मनेगू बंदु कद तट्टिद'—ये तीनों कहानियाँ सृजन क्रिया तथा जीवनानुभवसे संबंधित खोजके मुख्य तीन आधारोंको सूचित करतीहैं। महाभारतके अश्वथ्तामके समान मुखामुखीका केंद्र व्यक्ति दुरंतका प्रतीक है जो चित्तालकी कहानियोंमें व्यक्त होनेवाली मूलभूत यातना है। कहानीका नायक खुद कथाकार हैं। पत्नी, बेटी, अच्छी नौकरीके होते हुएभी वह नायक अज्ञात पीड़ासे तड़पताहै। वह सोचताहै कि अपने लेखनके माध्यमसे अपनी पीड़ाके मूलस्रोतका पता लगा सकूं।

मानव मानवके रूपमें विकसित होनेवाला व्यक्ति किस प्रकार समाजकी व्यवस्थाके शोषणसे पीड़ित होता है—इसका कलात्मक रूपमें विश्लेषण करनेमें ही मानवीयता है। प्रस्तुत 'कथेयादळु हुडुगि' कहानीमें जानकी नामक लड़की, जो अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक है, अपनी १३ वर्षकी उम्रमें ही रक्तके केन्सरसे मर जातीहै। मृत्यु के पहले अपने पितासे उसकी मांगही क्या है? 'मेरे बारेमें एक कहानी लिखो।' उसकी इच्छाकी पूर्ति करने वाले लेखकके सामने अनेक समस्याएं खड़ी होतीहैं। कथा-लेखक अपनी बेटी छोटी जानकीको कामिककी बेटीके रूपमें चित्रित करताहै। पिता चस्नालाकी दुर्घटनामें मरताहै, तब एकाकी मुग्ध जानकीपर एक स्कूटर सवार अत्याचार करताहै। जानकीकी मृत्यु एक बड़ा दुरंत है। इस कथामें एक संवेदनशील लेखककी वेदना का एक प्रमुख रूप प्रस्तुत है। कथामें के आरंभसे अंत तक व्यंग्य है। कथाके अन्तमें कथाकार और उसकी

(आगे देखें पृष्ठ : ४६)

(पृष्ठ ४४ का शेष)

पौरुषभी ममता तथा अन्य रागात्मक संबंधोंकी अभिज्ञा से उत्तरोत्तर कोमल होता गया। अन्ततः पार्थ और सारथीके सामने कर्णकी इहलीला सम्पूर्ण हुई। लेखक का विश्वास है, कर्णने अन्तिम विश्राम लिया। वह अपने प्रिय प्रतिद्वंद्वीसे पराजित नहीं हुआ। ठीक है उसे दैहिक पराजय मिली और उसका संकल्प (अर्जुन को मारनेका) भंग हुआ। लेकिन धर्मक्षेत्रमें उसकी हार्दिक विजय हुई और एक ऐसे नैतिक तथा रागात्मक संकल्पका पालन हुआ अवश्य, जो भरी सभामें या जनताके सामने कभी नहीं किया गयाहै।

प्रथम नाटकमें कुन्तीका धर्म, संकट तथा द्वितीयमें कर्णका ममतामें पला शौर्य। नाटकोंका कथानक महाभारतसे है। पात्र सब महाभारतसे हैं और सारा वातावरण महाभारतका ही। लेखकका प्रयास रहा कि आर्यभाषा और संस्कृतिको आर्येतर तिब्बती-बर्मी भाषाक्षेत्र मणिपुरमें लाया जाये। प्रयास पर्याप्त सीमा तक सफल रहाहै। नाटकोंके वातावरणमें मणिपुर तथा मणिपुरीका प्रतिबिम्ब उभरकर आयाहै। ये चूंकि आकाशवाणी नाट्य शैलीमें रचे गयेहैं इसलिए युद्धक्षेत्र आदिके दृश्य अनायासही प्रस्तुत किये गयेहैं। फ्लैश बैक आदि प्रविधियोंके माध्यमसे गत तथा विस्तृत घटनाओंको लाये जानेकी चेष्टा कीगयीहै। इसलिए लगभग एक घंटेके इन नाटकोंमें महाभारतका एक विस्तृत कथांश प्रस्तुत किया गयाहै। कभी कभार आकाशवाणी नाट्य विधिके बीचमें रंगमंचीय सामग्री आनेसे पठन-पाठनमें कुछ छोटी-मोटी असुविधाएं आ जातीहैं। (आशा है अगले संस्करणमें ये सुधरेंगी) लेखककी भाषा उच्च कोटिकी है। बाङ्ला तथा संस्कृतका प्रभाव परिलक्षित होताहै जोकि स्वाभाविक है। (क्योंकि लेखकने व्यासदेव तथा काशीरामका अध्ययन कियाहै।)

लेखकने अपने इन नाटकोंमें कर्ण-कुन्ती संबंधको महाभारतके पृष्ठोंसे ही लेकर मणिपुरी दर्शकों तथा श्रोताओंके सामने रखनेका सफल प्रयास कियाहै। इन्होंने बड़ी निष्ठा तथा भक्तिके साथ महाभारतके मनचाहे अंशका चित्र खीचाहै, बड़ी कुशलताके साथ। वास्तवमें चित्रही खींचा गयाहै जोकि रंगीन फोटो की भाँति सच्चा और विश्वसनीय है। काश महाभारत की भित्तिपर नये कर्ण तथा नयी कुन्तीका चित्र बनता। विशेष रूपसे प्रशंसनीय बात तो यह रही कि लेखक सात-आठ सालसे बिल्कुल चक्षुहीन है, तबभी वह साहित्यिक रचनाकर ही रहाहै।

लेखक पूर्ण रूपसे आदर्शवादी है। यथार्थ और घोर यथार्थके इस युगमें भी लेखकका जीवनके प्रति विश्वास अभी हिला नहीं है। इसके लिए धर्म अभी भी जीवित है और भगवान् सर्वत्र व्याप्त है, इसलिए जीवन इस जीवनमें जीने योग्य बना रहाहै। आजकल मानवका रागात्मक संबंध टूट-सा गयाहै। मानवका मूल्य अब घट-सा गयाहै। लेकिन लेखक निराश कभी नहीं हुआ। क्योंकि उसके लिए महाभारतकालीन धर्म क्षेत्र अबभी प्रत्येक क्षेत्रमें विद्यमान है। अखण्ड भारत की संस्कृति हमारे कोशमें है। इसीको संग्रहालयमें सुरक्षित रखनेके बदले खोज-खोजकर निकाला जाये और इसीका उपयोग खूब किया जाये, यही लेखककी कामना है जोकि तत्कालीन परिप्रेक्ष्यमें भलीभाँति काम्य है। □

पत्नी अनाथाश्रमसे एक लड़कीको लाकर उसका नाम जानकी रखतेहैं। टेकनीककी दृष्टिसे यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

चित्तालके कथा-विकासकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण कहानी है 'कथेयल्लि बंदात मनेगूबंदु कद तट्टिद'—(कहानीमें जो आया, घर आकर दरवाजा खटखटाया) शीर्षक कहानीकी वस्तु नवीन है। इसमें कथाकार व्यवस्थापक और कार्मिक यूनियनके समझौतेके कारण उन्नतिके बदले सर्वनाशकी जटिल एवं निम्न जातिका दर्शन कराताहै। व्योमु परिश्रमी है। पढ़ा लिखाहै। फिरभी वह हरिजन झोंपड़ीमें रहनेवाला कार्मिक दलित है। उसमें बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं है, समाजकी दृष्टिमें उसकी झोंपड़ी आतंकका रूप है, उसकी जागृति एक प्रकारकी चेतावनी है, उसकी उन्नति विद्रोहके लिए मार्ग है। व्योमु क्रांतिकारी है। वह क्रिया-शक्ति, जागृतिका प्रतीक है। जब हम कार्यविमुख होजातेहैं तब अवतरण करनेवाला चिरंजीवी है वह।

प्रस्तुत संकलनकी कहानियाँ वस्तु तथा टेकनीककी दृष्टिसे अत्यन्त सफल हैं। इन सबमें चित्तालके आत्मचरितके अंश हैं। मार्क्स, युग, कार्नाड, लोरेन्स, केसिरर आदि चिंतकोंकी विचारधारासे प्रभावित लेखकने यहाँ मानवको नये आलोकमें देखनेका प्रयत्न कियाहै। मानव के संबंधमें नया कहनेका प्रयत्न और मानवके आंतरिक जगत्को अत्यंत सफल रूपमें चित्रित करनेका प्रयास यहां है। उनकी इन रचनाओंमें जीवनसे संबंधित जीवन दर्शनकी अभिव्यक्ति है। □

तमिष् : आलोचना

तमिष काव्य-साहित्यमें भारती और उनकी काव्य-चेतना

कृति : 'भारती : कालमुम् करुत्तुम्'
कृतिकार : तो. मु. सि. रघुनाथन्.

समीक्षक : डॉ. एम. शेषन
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, द्वारकादास गोर्वधनदास वैष्णव महाविद्यालय, मद्रास.

सुब्रह्मण्य भारती तमिष साहित्यके आधुनिक कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ थे, साथही राष्ट्रीय चेतना, नवजागरणका शंख फूंकनेवाले सर्वप्रथम तमिष कविभी थे। अतः वे आधुनिक तमिष काव्य साहित्यमें राष्ट्रकविके नामसे सम्मानितभी हुए। इस अमर कविकी जन्म शताब्दीके अवसरपर उनकी जीवनी और कृतित्व के संबंधमें कई पुस्तकें प्रकाशित हुई। प्रस्तुत आलोच्य ग्रन्थ उनसे भिन्न नये दृष्टिकोणसे कविको आँकनेका तथा उनके युगको समझने एवं उनके समकालीन राष्ट्रभक्तोंसे संबंधित कई नूतन विवरण और नया प्रकाश डालनेका प्रयास करताहै।

लेखक तो. मु. सि. रघुनाथन्ने एक सीमित कालखण्ड (१९०५—१९११) के अन्तर्गत स्वतंत्रता आन्दोलनकी विस्तृत चर्चा करते हुए इस संदर्भमें कवि भारतीके राजनीतिक एवं साहित्यिक कार्यकलापोंको परखनेका विस्तृत प्रयास कियाहै। भारतीय राष्ट्रीय संग्रामके इस काल-खंडमें गांधीजीका आगमन नहीं हुआथा। स्वतंत्रताकामी राष्ट्रभक्तोंकी उस युगमें हिंसात्मक तरीकों और शस्त्र क्रांतिमें अधिक आस्था रही। रूसी क्रांतिकी सफलतासे प्रभावित भारतीय

नवयुवकोंका मन उस ओर अधिक खिंचा हुआथा। अरविंद, उनके अनुज फणीन्द्र, स्वामी विवेकानन्दके अनुज भूपेन्द्रनाथ आदि शस्त्र-क्रान्तिमें विश्वास रखने वाले नवयुवकोंने 'युगान्तर' पत्रिकाके माध्यमसे हिंसात्मक मार्ग और शस्त्र-क्रांति द्वारा विदेशियोंको निकाल कर स्वतंत्रता प्राप्तिका प्रचार कियाथा। भारतीभी इन नवयुवकोंसे अत्यन्त प्रभावित थे और शस्त्र-क्रांति द्वारा स्वतन्त्रता पानेके विचारोंके वे भी समर्थक थे। रूसी क्रांति एवं क्रांतिकारियोंकी प्रशंसामें लिखे उनके कतिपय गीत इस कथनके प्रमाण स्वरूप ग्रन्थमें प्रस्तुत किये गयेहैं। भारती द्वारा चलायी गयी 'इन्दिया' नामक तमिष् पत्रिकामें कविने सन् १९०६ में हिंसात्मक शस्त्र-क्रांतिका आह्वान कियाहै और गीत लिखेहैं। भारतके प्रसिद्ध वीर पुरुष शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह आदिकी प्रशंसामें भी भारतीने गीत लिखेथे। तमिष्नाडुमें समाजवादके समर्थनमें उन्होंने अपना पहला स्वर उठायाथा। १९०६ में भारतीजीकी भेंट बहन निवेदितासे हुई। और इस पहली भेंटमें ही वे उनसे अत्यन्त प्रभावित हुए। बहन निवेदिताने उनके मनमें स्वदेश भक्तिके बीज बोयेथे।

भारतीकी जीवनी एवं कृतित्वपर लिखनेवाले अनेक लेखकोंने इस बातपर जोर दियाहै कि भारती को हिंसात्मक क्रांति एवं शस्त्र क्रांतिमें विश्वास नहीं था और वे शुरुसे ही अहिंसावादी रहे। अतः हिंसात्मक आन्दोलनकी कार्यवाहियोंसे भारतीका कोई संबंध नहीं रहा और न उन क्रांतिकारियोंके प्रतिही कविकी इन पूरी सहानुभूति रही। प्रस्तुत ग्रन्थके लेखक इन लेखकोंसे सहमत नहीं। उनका विश्वास है कि १९०५ से लेकर सन् १९११ तककी अवधिमें भारतीका विश्वास शस्त्र-क्रांति द्वारा स्वाधीनता पानेके पक्षमें था। लेखक ने अपने विचारके समर्थनमें इस कालमें भारती द्वारा लिखे गये कई लेख, गीत, कविता तथा 'इन्दिया'में लिखी गयी उनकी कई टिप्पणियोंका हवाला दियाहै।

लेखकका कहनाहै कि भारतीय जनताका मन अहिंसात्मक तरीकोंकी ओर तभी झुका जब भारतीय राजनीतिमें गांधीजीका आविर्भाव हुआ। जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीकासे भारत लौटे तथा गुजरात, बिहार आदि विभिन्न राज्योंमें घूमे और वातावरण तैयारकर उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलनका सफलता पूर्वक संचालन किया तो राजनीतिक क्षेत्रमें उनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी तथा जनताका सहयोगभी उन्हें प्राप्त होने लगा। इसके फलस्वरूप १९१९ में बड़े जोरोंसे असहयोग आन्दोलनका अभियान शुरु हुआथा। इसी समय भारतके नेता एवं सामान्य जन गाँधीजीके अहिंसात्मक तरीकोंको स्वीकार करने लगेथे। यहींसे 'गाँधी-युग' प्रारम्भ होताहै। सुब्रह्मण्य भारतीभी इसी समयसे अहिंसामें विश्वास करने लगे, इसके पूर्व नहीं। लेखक यह स्पष्ट करनेका प्रयास करतेहैं कि भारती न तो पूर्ण रूपसे अहिंसामें विश्वास रखनेवाले व्यक्ति थे और न हिंसात्मक तरीकोंमें निष्ठा रखने वाले। भारतीने काली माता, दुर्गादेवी, चण्डी आदि शक्तिकी उपासनाके समर्थनमें कई गीत लिखेहैं। ये गीत इस बातके प्रमाण हैं कि कविका मन शस्त्र-क्रांति की ओर झुका हुआथा, कमसे कम गांधीजीके प्रभावमें आनेसे पूर्वतक।

आलोच्य ग्रन्थमें लेखकने भारतीकी जीवनीपर विचार करते हुए इस बातकी ओर पाठकोंका ध्यान आकृष्ट कियाहै कि भारती छुटपनसे काव्यके उपासक थे और बहन निवेदितासे भेंटके पूर्वही देशभक्ति से भरे गीतोंकी रचना किया करतेथे। बहन निवेदिता के प्रबल व्यक्तित्वसे वे अत्यन्त प्रभावित थे और भारतीके मनमें बीज रूपमें विद्यमान राष्ट्रभक्तिकी भावना इसके पश्चात तीव्र रूपसे प्रकट होने लगीथी। भारतीने बहन निवेदिताको अपने जीवनका मार्गदर्शक गुरु मानाहै। १९०८ जनवरीमें प्रकाशित 'स्वदेश गीत' नामक अपने काव्य गीतोंके संग्रहके 'समर्पण'में भारती ने लिखाहै 'जिस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना विश्व रूप दिखाकर आत्मदर्शन करायाथा, उसी प्रकार मुझे भारत माताके संपूर्ण रूपका दर्शन कराके, स्वदेश भक्तिका उपदेश देनेवाली मेरी गुरु बहन निवेदिताके चरणकमलोंमें यह ग्रन्थ आदरपूर्वक समर्पित है।'

श्री रघुनाथन्ने भारतमें २० वीं शताब्दीके प्रारंभिक कालमें प्रचलित उग्र राष्ट्रवाद एवं क्रांतिकारी आन्दोलनोंका विस्तृत परिचय देते हुए उससे संबंधित उस युगके नेताओंकी चर्चा इस संदर्भमें कीहै। भारती का उनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध रहाथा और भारती किस हदतक उन आँदोलनोंसे अनुप्राणित थे इसकाभी उल्लेख कियाहै। इसी प्रयोजनसे उस युगके प्रसिद्ध राष्ट्रनेता तिलक, लाजपतराय, अरविंद, विपिनचन्द्र पाल, भूपेन्द्रनाथ आदिकी चर्चा की गयीहै। राज-

नीतिके संबंधमें भारतीका क्या दृष्टिकोण रहा और उनका रुख किस ओर रहा। इसका अध्ययन करनेके लिए कवि भारती द्वारा संचालित 'इन्दिया' नामक तमिष पत्रिकाकी पुरानी जिल्दोंकी भी छानबीन कीहै। कुल मिलाकर यह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनके इस प्रारंभिक युगका विस्तृत इतिहास प्रस्तुत करनेके साथही तमिष् प्रदेशमें राष्ट्रीय आंदोलनके इतिहासकी चर्चा करतेहुये स्थानीय नेताओंके संबंधमें विवरण देनेका स्तुत्य प्रयास है। इस प्रकार यह ग्रन्थ राष्ट्रीय आंदोलनके परि-पार्श्वमें भारतीकी जीवनी, विचार और कृतित्वको देखने-परखनेका प्रयास है।

भारतीकी लोकप्रियता और कीर्तिका प्रमुख कारण मूलतः उनका कवि होनाहै। उनकी कविताकी कीर्ति का प्रमुख कारण यहभी रहाहै कि राष्ट्रकी स्वतन्त्रता, मानव मात्रकी मुक्तिके लिए उन्होंने अपनी काव्य-कृतियोंके माध्यमसे प्रयास किया। उनकी राष्ट्रीय चेतनासे भरी कविताओं और गीतोंने जनताके मानसमें स्वतन्त्रताकी प्यासको जगाने और राष्ट्रीय संग्राममें तीव्रता लानेका कार्य किया, इस तथ्यको नकारा नहीं जा सकता। साथही शस्त्र क्रांति और हिंसात्मक मार्ग के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समर्थनमें लिखे भारतीके गीतों की पृष्ठभूमि और लक्ष्योंकी भी लेखकने छानबीन की है।

ग्रन्थमें विषय-संग्रह तथा तथ्य-चयनके प्रति लेखक की ईमानदारी स्पष्ट परिलक्षित होतीहै। पुस्तककी भाषा विषयके अनुरूप सरल, स्पष्ट और प्रवाहमयी है। तर्कयुक्त शैलीमें विषयको समझानेका कौशल लेखकमें पर्याप्त है। □

तेलुगु : रेखाचित्र

अस्तित्वके लिए संघर्षशील जन-साधारणके शब्द-चित्र

कृति : 'जीवन समरम्'
कृतिकार : डॉ. रावूरि भरद्वाज.

समीक्षक : डॉ. भीमसेन निर्मल
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद.

श्री रावूरि भरद्वाज तेलुगुके लब्धप्रतिष्ठ कहानी-कार, उपन्यासकार एवं आकाशवाणीके सफल प्रोड्यूसर हैं। पिछले ३५-४० वर्षोंसे लिखते आरहेहैं। बचपनमें अत्यन्त दारिद्र्यके सुखको चखकर, मात्र अपनी प्रतिभा के बलपर, अनुभूतिको अभिव्यक्ति देनेकी प्रबल आकांक्षा के कारण, तेलुगु साहित्यके क्षेत्रमें 'कलाप्रपूर्ण' (आन्ध्र विश्वविद्यालयकी मानद डाक्टरेट उपाधि) की उपाधिसे समलंकृत होकर अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना चुकेहैं डॉ. रावूरि भरद्वाज। भूख, अपमान, बेकारी आदिको जी-भर अनुभव करनेके कारण, साधारण अथवा औसत दर्जेसे निम्न स्तरके व्यक्तियोंकी वास्तविक जीवन-कथाओंसे श्री भरद्वाज बेहद स्पंदित होकर, कलम चलातेहैं। 'पाकुडु राळ्ळु' (फिसल्लू पत्थर) नामक उपन्यासमें सिने-जगत्की भीतरी घृणास्पद परिस्थितियों का दर्पण प्रस्तुत किया गयाहै। 'कादंबरी' नामक उप-न्यासमें वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन

की विषमताओंका चित्रण है। यह उपन्यास हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक श्री बालशौरि रेड्डी द्वारा अनूदित होकर, 'कौमुदी' के नामसे प्रकाशित हुआहै। 'पाड्यमि', 'मुझे भगवान्‌को देखनेकी इच्छाहै' आदि भरद्वाजकी कहानियों के संकलन हैं।

'जीवन समरम्' अपने आपमें एक नयी तरहकी रचना है। पुस्तकमें रेखाचित्र कहने योग्य ५० स्केच हैं। किन्तु ये रेखाचित्रोंसे बढ़कर, व्यथार्तजीवियोंकी यथार्थ गाथाएं हैं। प्रारम्भमें ये रचनाएं तेलुगुके लोकप्रिय दैनिक 'ई नाडु' (सं. श्री चेरुकूरि रामोजि राव) में १९७८ में, धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुईहैं। शीर्षक था 'इंतेले पेदल ब्रतुकुलु' (येही हैं गरीबोंकी जीवन-कथाएं। गरीबीको स्वयं भोगकर, उन आँसुओंमें कलमको डुबोकर लिखनेके कारण, इस शीर्षकके पात्र तथा उनके पीछेकी सामाजिक एवं मानसिक दशाने पाठकोंको करुण रस प्लावित कर दिया। पाठक अत्यन्त प्रभावित हुए और कतिपय सज्जनोंने वर्णित व्यक्तियों की अनेक प्रकारसे सहायता की। यही तो रचनाकी सार्थकता एवं सफलता है। संपादक महोदयके प्रोत्साहन से ये ५० रेखाचित्र 'जीवन समरम्' के नामसे पुस्तकाकार प्रकाशित हुएहैं।

जीवनमें अपने अस्तित्वके लिए व्यक्तिके संघर्षका नामही व्यवसाय है। कोईभी व्यक्ति निर्व्यवसायी होकर नहीं रह सकता। संसारमें शतशः-सहस्रशः व्यवसाय हैं। इनमें कुछको हम 'व्यवसाय' के रूपमें पहचानतेहैं तो कुछपर हमारा ध्यान जाताही नहीं। जीविकोपार्जनके असंख्य साधनोंपर सच्चे कलाकारका ध्यान जाना चाहिये। डॉ. भरद्वाजने समाजके कई अनामक पेशेवार जनोंका, जो कोई-न-कोई काम करके जीवन-यापन करतेहैं अथवा जीवनके लिए समर (संघर्ष) करतेहै, चित्रणकर, सामाजिक चेतनासे युक्त, सजग लेखकके नाते, अपने कर्तव्यकी प्रभावशाली एवं सुन्दर पूर्तिके रूपमें, पाठकोंके समक्ष 'जीवन समरम्' को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत पुस्तकमें विभिन्न भाषा-भाषी (अधिकतर तेलुगुभाषी)और विभिन्न धर्मावलंबी (अधिकतर हिन्दू) लगभग ५० व्यक्तियोंसे साक्षात् मिलकर, उनके जीवन की गहराइयोंको परखकर, जीवनके लिए—जीवित रहने अथवा अपने अस्तित्वको बनाये रखनेके लिए उनके संघर्षके कारण संजनित उनकी व्यथा-कथाओंको हमारे सामने प्रस्तुत कियाहै। कुछ रेखाचित्रोंको पढ़कर, हृदय समाद्र होजाताहै और लगताहै कि काश, हमारेभी भरद्वाजके समान देखनेकी आँख और अभिव्यक्तिकी सामर्थ्य होती! क्योंकि इनमें सभी चरित्र ऐसे हैं जिनसे हमारा कभी-न-कभी काम पड़ाथा, साक्षात्कार हुआथा।

'जीवन समरम्' में कुल मिलाकर ५० रेखाचित्र हैं। (वैसे लेखकने 'ईनाडू' के लिए ५२ रेखाचित्र लिखे थे, पता नहीं दो क्यों छोड़ दिये गये।) इनमें ३० हिन्दू पुरुष हैं, ५ हिन्दू स्त्रिया हैं, १० मुसलमान हैं, मराठी, मलयालय और तमिषभाषी एक-एक, एक ईसाई और एक हरिजन हैं। इन पचास व्यक्तियोंके साथ बैठकर, उनकी अपने मुँहसे कही बातोंको अत्यन्त धैर्यके साथ सुनकर, नोटकर, उनके अंतरंग-विचारों और अनुभूतियोंके सारको इन रेखाचित्रोंके रूपमें लिपिबद्ध कियाहै कलाप्रपूर्ण रावूरि भरद्वाजने। 'ईनाडु' के संपादक श्री रामोजि रावके शब्दोंमें तेलुगु-पत्रिका-जगत् में ही यह अपूर्व रचना-प्रयोग है। समाजकी गूंगी जनताको जबान देकर, भरद्वाजने साहित्य-जगत्‌में भी एक नया प्रयोग प्रस्तुत कियाहै।

पहला रेखाचित्र है, अंजम्माका जो नौकरीपेशा बाबू लोगोंके घरोंसे भोजनके कैरियर लेकर, उनके दफ्तरों तक पहुंचानेका काम करतीहै। हैदराबाद (निजाम रियासत) के रजाकार आंदोलनके समय उसके पिताकी हत्या होजातीहै। उस समय अंजम्मा चार सालकी थी। उसकी माँ चार संतानोंके साथ, जीवन-यापन करने लगी तो रिश्तेदारोंने उसे अनाथ जानकर, उसकी जमीनपर कब्जाकर लिया। उसके बाद उस परिवारकी कष्ट-कथाका प्रारंभ होताहै। अंजम्माकी शादी होजातीहै। तीन बच्चोंको जन्म देनेके बाद, उस का पति दुर्घटना-ग्रस्त होकर मर जाताहै। सगे-संबंधी तो ऐसे अवसरोंपर सहायता करतेही नहीं। तीन बच्चों को सड़कपर छोड़, वह मरेभी कैसे? कुछ लोगोंने उस की हालतपर तरस खाकर, एक छोटी-सी फेरीवाली गाड़ी खरीद दी। उसपर वह कुछ दिन प्याज, कुछ दिन लाल मिर्च, कुछ दिन इमली, कुछ दिन साग-तरकारी बेचकर, अंजम्मा अपना और बच्चोंका पेट पालती रही। उसमें नुकसान आया तो उस व्यापारको छोड़कर, भोजनके कैरियर लेजाने-लानेका काम अपनाया। दफ्तरकी दूरीके आधारपर, प्रति कैरियरका ५ से १० रुपये तक उसका रेट है। २२-२५ तक खातेदार हैं। औसतन दो सौ रु. मिल जातेहैं। उसने अपने बड़े

बच्चेको भी यही काम सिखाया। पढ़ाई-वढ़ाईकी व्यवस्था वह बेचारी कहाँसे करे ? किसीभी तरह दिन काटेजा रहीहै। निराशाका अनंत समुद्र उसकी आँखों के सामने लहरा रहाहै।

ताले दुरुस्त करनेवाला जहांगीर, मिर्चकी भुजिया बेचनेवाली सायित्री (सावित्री) (जो पुरुषोंके हाथ बिक कर, अंतमें जीविकोपार्जनके लिए यह काम करने लगतीहै), लोहेके औजार बनानेवाला सीरामुलु (श्री रामुलु), पत्थरकी मूर्तियां बनानेवाला आगुमय्या, गरम-गरम मसालेदार चने बेचनेवाला शेषगिरि, घूरेकी कुंडियोंमें से शीशेके टुकड़े बीन-बीनकर उन्हें बेचनेवाला मुत्यालु, लाटरी-टिकट बेचनेवाला नायर, ईंट बनाने वाला रामुलु, पशुओंके खुरोंमें कील ठोंकनेवाला काशय्या, हथघड़ियोंको चमकानेवाला साम्यूल, पुराने कपड़ोंके बदले स्टीलके बरतन देनेवाला, केशवुलु वीरगाथाएं सुनाते हुए दर-दर भटकनेवाला रामकिष्टय्या, पुराने बोतल-डिब्बे आदि खरीदनेवाला चलपति, दीवारें बनानेवाला राज शेषय्या, सिने-जगत्‌में हारकर फूल बेचकर गुजारा करनेवाला नागराज, सर्कस कंपनीको छोड़कर तोतेके द्वारा भविष्य बतानेवाला यशवंतराव, चूड़ियाँ बनाने वाला भिक्षालू, तरकारी बेचनेवाला यादगिरि, कुर्सियों पर प्लास्टिक-तार चढ़ानेवाला बालय्या, जो पहले लॉरी ड्राइवर था और दुर्घटनाके कारण जिसकी दोनों टाँगे टूट गयीथीं, घर-घर घूमकर बरतन ठीक करनेवाला रजाक, नवाबीसे ऑटो-वर्कशाप और बादमें साइकल रिपेरर बना मस्तान, पहले होटलमें और बदमें किसी आर्टिस्टके पास कामकर अंतमें सड़कपर चित्र (देवताओंके) खींचकर पैसे कमानेवाला नटराजन, संपेरा खाजा मियां जिसे अपने पालतू सांपोंसे बेहद प्रेम था—आदिकी करुण कथाएं पढ़कर दिल पिघल जाताहै और आंखें तर होजातीहैं। इनके अतिरिक्त मिट्टीके बरतन बनानेवालेका, रीछको नचानेवालेका बच्चोंके लिए मिठाइयां बेचनेवालेका, चूना पोतनेवाले का, भविष्यवाणी करनेवाली जंगली जातिकी स्त्रियोंका, मछली पकड़नेवालेका, गद्दे-गद्दियाँ बनानेवालेका, उपले-कंडे बनानेवालीका, सान धरनेवालेका, गन्नेका रस बेचनेवालेका चित्रण बड़ी मार्मिकताके साथ कियाहै डॉ. भरद्वाजने। 'सर्वपदाम् आस्पदम्' (मृच्छकटिक नाटक) बने दारिद्र्यके वशीभूत हो, जीवन-यापन करने वाले बाधा-तप्तजीवियोंका यथार्थ-चित्रण मेरे विचारसे, भारतीय भाषाओंमें पहली बार 'जीवन-समरम्' में हुआ है।

इन रेखाचित्रोंके शीर्षक कुतूहलको जगानेवाले और प्रभावशाली हैं। यथा, 'तर होनेवाली एकभी आंख नहीं', 'भयं भयं, जीवनही भयप्रद', 'चलनेवाले हाथ', 'भूखसे तड़पनेवाली आंतड़िया', 'दायें-बायें धोखा', 'जीना नहीं, मरनाही नहींहै', 'जीनेके लिए बहुरूप', 'जीवनका फल, कड़वा गरल', 'दालमें नमकका मसाला' आदि अतीव सार्थक बन पड़े हैं। तेलुगुके प्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि स्व. श्री श्री (श्रीरंगम् श्रीनिवासराव) की कविताओंकी कुछ पंक्तियोंको शीर्षकके रूपमें ग्रहणकर श्री भरद्वाजने औचित्यका तथा काव्यमयताका प्रदर्शन कियाहै। उदाहरणके लिए 'क्या है गर्वका कारण ?', 'शिल्पीके लिए अनर्ह वस्तु कौन-सी है ?' आदि प्रस्तुत किये जा सकतेहैं।

शीर्षकही नहीं, कई रेखाचित्रोंमें वर्तमान सामाजिक व्यवस्थापर लेखककी व्याख्याएं तीखी और पैनी हैं। बी. काम तक पढ़कर भी कोई नौकरी न मिलनेके कारण, छोटे बच्चोंके लिए गली-गलीमें 'रंकुल राट्नम्' (चक्करदार हिंडोला) चलानेवाले जाफरका कहनाहै कि 'अबतक जो पढ़ा, वही बस है। उद्देश्य रहित बेकार की पढ़ाईके लिए मैं एक और वर्ष गंवाना नहीं चाहता।' (पृ. ३१) अपने निजी गाँवके बारेमें पूछनेपर, केशवुलु कहताहै कि 'बाबू ! इस दलिद्दर देशमें कोई गांव हो, सब एक जैसे हैं।' (पृ. ५४) हजार मकान बना चुकने वाले राज शेषय्याका अपना मकान नहीं है। ताले-चाबी दुरुस्त करनेवाले जहाँगीरके घर ताला नहीं है। उसका कहना है कि 'बाबूजी, हमारे झोंपड़ोंके लिए तालेकी क्या जरूरत है ? चुरा लेजानेके लिए रखा क्या है—मेरे दारिद्र्यके सिवा ?' (पृ. ६) इसपर लेखककी टिप्पणी है—'संपन्नोंकी संपत्तियोंकी रखवालीके लिए हजारों तालोंकी मरम्मत करनेवाले जहाँगीरके झोंपड़ेके दरवाजेके लिए एक छोटा तालाभी न हो, यह आश्चर्य है न !' हथकरघेपर कपड़े बुननेवाले वीरास्वामीके 'जीवनमें प्रकाशकी किरणें कब फैल जायेंगी ? उसके मुखपर संतोषकी रेखाएं कभी दीख सकेंगी ? लॉटरी-टिकट बेचनेवाला नायर कहताहै कि 'साब, मेरे चेहरे पर कहीं लखपति बननेके लक्षण दिखायी पड़ रहेहैं ?··· मुझे ऐसी बातोंपर न विश्वासही, न कोई आशाही।' क्या ऐसे नायरसे हमें कुछ सीखना नहीं है ? मिर्चकी

भुजिया बनाकर बेचनेवाली सावित्री कहतीहै कि 'पता नहीं किस जन्ममें कौन-सा पाप कियाथा, इस जन्ममें इतने दुःख भोगने पड़ रहेहैं। अगले जन्ममें ही सही, थोड़ा सुख मिल जाये, वही सब कुछ है।' भारतीय कर्मसिद्धान्तका कैसा जीता-जागता उदाहरण है!

रोटीके लिए, पेट भरनेके लिए तरह-तरहके काम करनेवाले इन पचास लोगोंमें अधिकतर वर्तमान सामाजिक व्यवस्थासे किसी प्रकारका संतोष नहीं है, किन्तु अपने जीवन-विधानको बेधारने या विद्रोह करनेकी सामर्थ्यभी नहीं है। वे सुचारे, दिन काटनेजा रहेहैं। कुछ इसीमें संतुष्टभी हैं, भारतीय कर्मसिद्धांतपर प्रगाढ़ आस्थाके कारण। इन लोगोंकी हालतपर पाठकके मन में दया-सहानुभूतिके भाव जग जातेहैं। क्या इतनाही सम-समाजकी स्थापनाके लिए पर्याप्त है? जीनेकी इच्छा हो तो किसीभी प्रकार जियाजा सकताहै। लेकिन क्या वहभी कोई जीवन है? गाँधीवादके प्रति आस्थावान होनेके कारण (प्रति शुक्रवारको आकाशवाणीके हैदराबाद केंद्रसे महात्मा गांधीकी सूक्तियोंकी व्याख्याएं करते रहनेके अलावा डॉ. भरद्वाज अपने जीवनमें भी गांधीजीके सिद्धांतोंसे प्रभावित हैं) वे विद्रोहका संदेश नहीं देसके। जो माल-मसाला उन्होंने प्रस्तुत कियाहै, उसे पढ़कर, दिल पिघल जाताहै, आँखें नम होजातीहैं और एक लंबी-सांस निकल जातीहै, दया और सहानुभूतिके भाव जाग जातेहैं किंतु इस सामाजिक व्यवस्था को बदल देनेका संकल्प नहीं। यदि यही सामग्री किसी साम्यवादी लेखकके हाथसे लिपिबद्ध होती तो अंगारे बिखर जाते, ज्वालामुखीका विस्फोट होजाता।

जीवनके लिए दर-दर भटकनेवाले, बूंद-बूंद लहू बहानेवाले इन व्यथार्तजीवियोंको भी पुलिसवाले नहीं छोड़ते। समय-समयपर या मौके-बे-मौके इनकाभी खून चूसते रहतेहैं। भेंटकर्ता (डॉ. रावूरि भरद्वाज) को भी कुछ लोगोंने पुलिसके सी. आई. डी. विभागका समझ लियाथा और देरतक पूरा विवरण देनेमें संकोच करते रहे।

सरकारी आर्थिक सहायताकी योजनाओंपर भी डॉ. भरद्वाजकी व्यंग्यपूर्ण व्याख्याएं समुचितही लगतीहैं। यह आर्थिक सहायता क्या सचमुच जरूरतमंद व्यक्तिको मिल रहीहै? दूरसे जलपूर्ण दीखनेवाले बादल, उनके पास आते-जाते रिक्त क्यों बनतेजा रहेहैं? इन प्रश्नोंका वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें कोई उत्तर नहीं है।

एक स्थानपर डॉ. भरद्वाजने लिखाथा कि 'दारिद्र्य कई लोगोंको कायर बना देताहै पर मैं तो दारिद्र्य का दूध पीकर और मजबूत होगया, कुन्दन बन गया। 'यदि बचपनमें यातनाएँ, पीड़ाएँ, अवमाननाएं न भुगत चुका होता तो मैं शायदही लेखक बनता।' इसीलिए भरद्वाजकी आंख और कलम समाजके वंचित एवं पीड़ित जनोंकी अनुभूतियोंको समझने एवं उन्हें अभिव्यक्ति देनेमें बेजोड़ हैं।

कुल मिलाकर 'जीवन समरम्' समाजशास्त्रके अध्येताओं तथा राजनीतिक-क्षेत्रके पाठकोंके लिए अनिवार्य रूपसे पठनीय पुस्तक है। सामाजिक चेतनासे युक्त लेखक समाजको किस दृष्टिकोणसे देखताहै और किस रूपमें उसे अभिव्यक्तकर सकताहै, यह जानना चाहने वालोंके लिए 'जीवन समरम्' जैसा नया प्रयोग आँख खोलनेवाला प्रयास है।

इस पुस्तकमें प्रयुक्त भाषाकी एकरूपतासे बचनेका प्रयास लेखकको करना चाहियेथा। सभी पात्र एकही प्रकारकी भाषाका प्रयोग करतेहैं, यह कुछ खटकताहै।

एकदम कल्पनाका सहारा छोड़, वास्तविकता चित्रणभी पाठकको प्रभावितकर सकताहै, इस तथ्यका 'जीवन समरम्' जीता-जागता उदाहरण है। इस पुस्तक का अन्य भारतीय भाषाओंमें अनुवाद होना चाहिये।

इस प्रकारकी पुस्तकके पीछे लेखकने अपने उद्देश्य के रूपमें निम्न श्लोक उद्धरणके रूपमें दियाहै।

'न त्वमहं कामये राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्तिनाशनम्॥'

उद्देश्य समुचित है, प्राणियोंकी आर्तिका प्रभावशाली चित्रण हुआहै किंतु अंतमें प्रश्न बच जाताहै उस आर्तिका निराकरण कैसे हो? यह तो समर है जीवन का। संभवतः निरंतर चलता रहेगा। लेखकने 'उस समरका जीवंत चित्रण कियाहै। इस अपने कर्तव्यकी पूर्ति कलाप्रपूर्ण रावूरि भरद्वाजने बड़ी निष्ठाके साथ कीहै जिसकी मुक्तकंठसे सराहना कीजानी चाहिये। यह साहित्य जगत्में सचमुच एक नया प्रयोग है। □

व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक समीक्षाके निबन्ध

कृति : तिरञ्ञेटुत्त प्रबंधङ्ङळ्
कृतिकार : प्रो. एस. गुप्तन नायर

समीक्षक : डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै

'तिरञ्ञेटुत्त प्रबंधङ्ङळ्' प्रोफेसर एस. गुप्तन नायरके बाईस साहित्यिक निबंधोंका संकलन है। पुस्तक के अंतमें दो परिशिष्टभी जोड़े गयेहैं। एकाध निबंध को छोड़कर शेषके रचना-काल नहीं दिये गयेहैं। परिशिष्ट-२ में लेखकीय वक्तव्यके अनुसार ये निबंध गत चालीस वर्षोंमें लिखे गये प्रकाशित एवं अप्रकाशित समीक्षात्मक निबंधोंसे चुने गयेहैं। इन बाईस निबंधोंको 'चर्चावेदी', 'कवि और कविता', 'कला-चिन्तन', 'क्रान्तदर्शी' और 'सामूहिक चिन्तन' शीर्षक पांच खंडों में समेटा गयाहै। अतः प्रत्येक खंडमें आये समीक्षात्मक निबंधोंका विश्लेषण करते हुए गुप्तन नायरजीके समीक्षक-व्यक्तित्वका आकलन करना सुविधाजनक और उपयुक्त होगा।

'चर्चावेदी' नामक खंडमें 'आस्वादक चाहिये', 'कविता किसके लिए', 'आशान क्या जनवादी कवि हैं', 'समीक्षाकी सीमाएं' तथा 'मारारकी समीक्षा' शीर्षकसे पाँच निबंध हैं। प्रथम दो निबंध परस्पर पूरक हैं और उनमें कविताके स्वरूप, आस्वादक सहृदय, कविताके प्रभाव आदि नाना प्रश्नोंपर विचिंतन करते हुए बताया गयाहै कि शब्द, अर्थ और अनुभूतिके सामरस्यसे काव्य-सृजन होताहै। काव्यकी भाषा अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा भिन्न होतीहै, उसकी कथन-शैली अलग होती है। उसकी गति ऋजु स्वभावोक्तिके स्थानपर वक्रोक्ति की ओर है अर्थात् 'वाच्यार्थसे व्यंग्यार्थकी ओर है। फलतः प्राचीन कविता तथा नवीन कवितामें पर्याप्त अन्तर है। वाच्यार्थ-प्रधान उपन्यास या नाटकका आस्वादक काव्यास्वादनकी क्षमता नहीं रखता। काव्यास्वादनके लिए सहृदयकी अपेक्षा है। आस्वादक-पक्षमें लेखक अभिनवगुप्तके तन्मयीभावनको प्रश्रय देताहै, जिसके लिए आस्वादकका सूक्ष्म संवेदनशील होना नितांत आवश्यक है। काव्यार्थ कोशमें निहित नहीं, सहृदयमें है और उसे शब्दब्रह्मके साथ साक्षात्कार प्राप्त करना होगा। काव्यास्वादनके लिए पाठकका संस्कार, अनुभूतिप्रवणता एवं कल्पना-वैभव आदि परमावश्यक है। नाटक, उपन्यास, चलचित्र आदिके आतंक, औद्योगिक युग, शास्त्रीय एवं तार्किक दृष्टि तथा कविकी अन्तर्मुखीनता आदिके फलस्वरूप आज कविताके आस्वादक कम होतेजा रहेहैं। आजका सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि काव्यास्वादक सहृदय कहांसे प्राप्त करें और यहीं समीक्षकका दायित्व उभर आताहै। आशानके कवि-व्यक्तित्व पर गुप्तन नायरके विचार क्रान्तिकारी हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि आशान-काव्यकी एक-दो पंक्तियों को आधार बनाकर अबतकके समीक्षकोंने उन्हें जनवादी कवि सिद्ध करनेका दुस्साहस कियाहै। श्री गुप्तन नायर का यह निबंध इस खंडका ही नहीं, पुस्तकका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निबंध है, जिसमें गुप्तन नायरके निर्भीक समीक्षक-व्यक्तित्व एवं अतलस्पर्शी दृष्टिका परिचय मिलताहै। अबतक स्वीकृत एक मान्यताके विरोधमें वे जा रहेहैं। नायरजीने यह स्पष्ट घोषित कियाहै कि किसी वादसे पृथक् आशान-काव्यका समग्र एवं विशद अध्ययन करनेपर यह विदित होगा कि उनकी कवितामें आद्यन्त एक आध्यात्मिक अन्तर्धारा प्रवाहित है और

यही वह तत्त्व है जो उनकी कविताको समकालीन वल्लत्तोल या अन्य कवियोंसे पृथक् करताहै। आशान जनवादी कवि इसलिए भी नहीं कि उनकी कविता जनसामान्यकी भाषासे दूर है; रति वात्सल्यादि मसृण भावनाओंकी सृष्टिसे वल्लत्तोल आशानकी अपेक्षा जनता के निकट हैं। आशान-काव्यका शृंगार भी आध्यात्मिक धरातलका स्पर्श करताहै। उनके काव्य-नायकभी बहुधा वैरागी, संन्यासी उपगुप्त, आनंद आदि हैं। गुप्तन नायरके इस निबंधने मलयालम-समीक्षाके मानदंडमें क्रान्ति लादी, कई समीक्षकोंने भौंहें सिकोड़ीं तथा साम्यवादी समीक्षकोंने चुनौती तक दी, जिसका थोड़ा-सा संकेत पुस्तकके परिशिष्ट-१ में गोविन्द पिल्लैको दिये गये उत्तरमें प्राप्त होताहै। 'समीक्षाकी सीमाएं' निबंधमें गुप्तन नायरके समन्वयात्मक दृष्टिकोणका परिचय मिलताहै जबकि वे कहतेहैं कि भारतीय एवं पाश्चात्य सभी समीक्षा-पद्धतियाँ साहित्यको समझने, मूल्यांकन करनेके प्रयास हैं। चाहे कोईभी पद्धति अपनायें, उसे पांडित्य प्रदर्शनका माध्यम न बनाया जाये। लेखककी दृष्टिमें भारतीय समीक्षा-पद्धति पांडित्य प्रदर्शनका दुर्विलास था और उसमें परिवर्तन तब आया जबकि हम पाश्चात्य समीक्षा-पद्धतियोंसे परिचित हुए। नये ज्ञान-विज्ञानके आलोकमें साहित्य-समीक्षा प्रकाम्य है। पर सबकी अपनी सीमाएं हैं; उन्हें साहित्यकी गलत व्याख्याका साधन न बनाया जाये। चाहे किसी भी समीक्षा-पद्धतिको अपनायें, सृष्टि और स्रष्टामें मन को तल्लीन करनेके साथ कला-सृष्टिकी विशिष्टानुभूति को उसी रूपमें सहृदय सामाजिक तक पहुंचानेके अपने दायित्वसे समीक्षकको अवगत होना चाहिये। 'मारारकी समीक्षा' में मलयालमके मूर्द्धन्य समीक्षक कुट्टि कृष्ण मारारकी समीक्षाके क्षेत्रमें अनुपम देनकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की गयीहै; पर जहां मारारकी हठधर्मिताका आभास पाया, वहाँ लेखकने अपनी असहमति प्रकट की। दुर्योधन, रावण आदि पात्रोंमें कुछ वैशिष्ट्य देख कर युधिष्ठिर, श्रीराम आदिपर कीचड़ उछालने तथा उनके अतिमानवीय व्यक्तित्वको छिपानेके मारारके प्रयासपर कटु व्यंग्य किया, जो अवश्यही गुप्तन नायर की सात्त्विक दृष्टि, स्वतंत्र चिन्तन एवं निर्भय आलोचक-व्यक्तित्वको उद्भासित करताहै।

द्वितीय 'कवि और कविता' खंडमें 'आशान और रोमांटिसिज्म', 'वल्लत्तोलका व्यक्तित्व', 'ओटक्कुषल (बाँसुरी) की भूमिका', 'चंगम्पुषा नामक मानव' और 'आधुनिक कविता' शीर्षकसे पाँच निबंध प्रस्तुत हैं, जो एक प्रकारसे आधुनिक मलयालम कविताके विकासकी रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें समर्थ हैं। 'आशान और रोमांटिसिज्म' निबंधमें गुप्तन नायर प्रारंभिक समीक्षकोंके समान रोमांटिसिज्मको पलायनवादकी संज्ञा देते हुए कवियोंको आकाशदर्शी, नक्षत्रदर्शी (पृ. ८८) ही नहीं मानते, रोमांटिसिज्मको आदिम एवं स्वाभाविक मनोवृत्ति मानतेहैं। जहाँतक हमारी धारणा है, रोमांटिसिज्म पलायनवादका पर्याय नहीं होसकता; बौद्धिक जिज्ञासा, सौन्दर्य-प्रेम तथा प्राकृतिक रहस्यवाद अंग्रेजी रोमांटिक कविताकी मूलभूत विशेषताएं रहीं। रोमांटिसिज्मको पलायनवाद माननेवाले गुप्तन नायरने आशानके 'चिन्ताविष्टयाय सीता' खंडकाव्यमें रामके अश्वमेध यज्ञके अवसरपर बन्धुजनोंके निर्दय व्यवहारसे आतंकित हो भूगर्भमें समा जानेवाली सीताजीको रोमांटिकका प्रतीक (अर्थात् पलायनवादी!) मानाहै! (पृ. ९४) पलायनके प्रति अतिशय दुराग्रहके कारण लेखककी दृष्टिमें प्रत्येक कला संकीर्ण लोकानुभवोंकी गुत्थियोंसे दूर मनोलोककी एकाग्रताकी ओर पलायनही है (पृ. ९६) और फलतः वह कालिदासको भी रोमांटिक मानताहै। लेखककी ये धारणाएं विशेष विचारणीय हैं। वल्लत्तोल तथा जी. शंकर कुरुपपर उसकी समीक्षा पर्याप्त विद्वत्तापूर्ण है। सौन्दर्यबोधको कलाकी संज्ञा देते हुए नायरजीने वल्लत्तोल-काव्यमें निहित सात्त्विक भावनाको प्रकाशित कियाहै तो 'ओटक्कुषलकी भूमिका' में जी. शंकर कुरुपको अपने समयका प्रतिनिधि कवि सिद्ध करते हुए उनके काव्यमें अधिष्ठित प्राकृतिक रहस्यवाद, राष्ट्रीय भावना, विश्व-बंधुत्व एवं मानवतावादका उद्घाटन करनेके साथही यह स्पष्टकर दियाहै कि महाकवि 'जी' मनुष्यको मनुष्यके रूपमें देखनेवाले कवि हैं और उनका रहस्यवाद नानात्वमें एकत्वकी अनुभूति है। 'आधुनिक कविता' के संदर्भमें गुप्तन नायरकी अनुशासित एवं पर्यवेक्षक दृष्टि स्पष्ट है। आधुनिक होनेसे समस्त कविताको हेय मानने या प्रकाम्य माननेकी अनुदारता या उदारता उनमें नहीं है। उनकी समीक्षक दृष्टि नीर क्षीर विवेकी है। सिद्धिहीन छन्दोविधानसे अनभिज्ञ, मोहभंग एवं संत्राससे पीड़ित, अधिक वाचाल और आधुनिकताके नामपर काव्यको धूमिल, अस्पष्ट एवं रुग्ण भावनाओंसे भरते तथा नये-नये प्रयोगोंके पीछे

भागते तथाकथित कवियोंकी तुलना गीली मिट्टीसे घरौंदे बनाते-तोड़ते शिशुओंसे कीहै तथा उनके निषेधात्मक व्यक्तित्वपर व्यंग्य करते हुए नायरजीने लिखाहै कि ये कवि 'तव माता पतिव्रता' कहनेपर 'नहीं नहीं' कहनेको उत्सुक हैं। उन्हीं गुप्तन नायरजीने आधुनिक होते हुएभी एन. वी. कृष्ण वारियर, वैलोप्पिल्लिल श्रीधर मेनोन तथा जी. शंकर कुरुपकी कविताओंमें प्राप्त आधुनिकताकी मुक्त कंठसे प्रशंसा कीहै क्योंकि उनकी नवीनता मात्र बाह्य नहीं, आभ्यन्तरिकभी है।

इसी खंडके अन्तर्गत एक निबन्ध 'चंगम्पुषा नामक मानव' शीर्षकसे भी है। 'कवि और कविता' खंडके अन्तर्गत होनेसे तथा इस खंडके अन्य निबन्धोंमें आशान, वल्लत्तोल, शंकर कुरूपके कवि व्यक्तित्वकी समीक्षा करनेसे स्वाभाविक रूपसे पाठक यह आशा करेंगे कि हमारा समीक्षक कवि चंगम्पुपाके व्यक्तित्वकी उपस्कारक परिस्थितियोंका उल्लेख करते हुए उनके कवि व्यक्तित्वका मूल्यांकन करेगा। लेकिन ऐसी आशा यहाँ दुराशा सिद्ध होतीहै। खेदके साथ कहना पड़ताहै कि गुप्तन नायरने न चंगुम्पुषाके साथ न्याय कियाहै न अपने खंडके नामकरणके साथ। चंगम्पुषाके कवि व्यक्तित्वको ताकमें रखकर चंगम्पुषा नामक व्यक्तिकी दुर्बलताओं जैसे मद्यपान, वेश्यागमन, अहंवृत्ति एवं मोहभंगपर आलोचक दृष्टि गयीहै। आश्चर्य इस बातका है कि चंगम्पुषा गुप्तन नायरके सतीर्थ्यही नहीं, गुप्तन नायरको साहित्य मंचपर लाने वालेभी हैं। अतः उनकी मानवीय दुर्बलताओंका पर्दाफाश करते हुए गुप्तन नायरने अपनी विद्वेष-बुद्धिका परिचय दियाहै। उन्हें संकीर्ण हृदय, चपल बुद्धि एवं अहंमन्य आदि कहना वस्तुस्थितिसे कोसों दूर है। चंगम्पुषा जीवनानुभवों,अनुभूतियोंके व्यक्ति थे। मलयालमके कवियोंमें सबसे अधिक संवेदनशील तथा कल्पना प्रवण थे। उनका कवि-हृदय साधारण जीवनानुभूतियोंसे संतुष्ट न होकर असाधारण जीवनानुभूतियोंका अन्वेषी रहा और उस मार्गमें उसे जोभी नये अनुभव प्राप्त हुए, उन्हें कवितामें व्यक्त करता गया। अपनी अनुभूतियोंकी निर्व्याज अभिव्यक्तिका कवि होनेके कारण वह कई बार अपने आदर्शों, विचारोंके वैविध्यमें खड़ा होजाता है। अतः यह कविकी संकीर्णता एवं चपलता नहीं, उस की संवेदनशीलता एवं प्रगतिशीलताका द्योतक है। जैसे सूर्यरश्मिके पड़तेही ओसकण बहुरंगी दिखायी देने लगताहै, वैसेही हृदयबिन्दुपर काव्यरश्मिके पड़तेही वह बहुवर्ण शवलिमासे युक्त होजाताहै। कुछभी हो, अपनी ३३ वर्षकी अल्पायुके भीतर लगभग ३५ काव्य सुमनोंकी वासंती सुगंधिसे मलयालम साहित्य तथा केरलीय जनमानसको सुवासितकर तथा मधुनिष्यन्ती संगीत माधुरीसे सहृदयोंकी हृत्तंत्रीको स्पंदितकर गानगंधर्वके अपर नामसे प्रख्यात हुए चंगम्पुषाके समान केरलीय जनमानसमें शाश्वत प्रतिष्ठा प्राप्त कवि दूसरा नहीं हुआ। उनके 'गंधर्वगान' स्वरूपपर व्यंग्य करते हुए और पुराणोंका आधार लेते हुए जब गुप्तन नायर कामाधिक्यको गंधर्व लक्षण बताते हैं, तब वे केवल चंगम्पुषा पर ही नहीं, केरलीय जनताका भी परिहासकर रहेहैं। गुप्तन नायरने हास्य-व्यंग्यमयी वाणीमें लिखाहै कि चंगम्पुषा विश्व कवि बननेका स्वप्न दर्शन करतेथे। गुप्तन नायरको यह स्मरण रखना चाहिये मलयालम के कवि चंगम्पुषाने जिस भाषाको अपना काव्य-माध्यम बनाया, वह सीमित क्षेत्रमें प्रचलित भाषा है फलतः चंगम्पपुषा केरलके बाहर प्रसिद्ध नहीं हुए। **पर केरल प्रान्तमें उनके 'रमणन्' काव्यकी एक लाखसे अधिक प्रतियोंकी बिक्री क्या कविके उत्कर्षकी परिचायक नहीं?** चंगम्पुषापर इतना उग्र कठोर एवं निर्मम आघात प्रोफेसर गुप्तन नायर जैसे संतुलित दृष्टिवाले समीक्षककी तूलिकासे हुआ, इसकी कल्पनातक नहीं कीजा सकती। कविने करुण स्वरमें गायाथा **'छल-कपटसे परिव्याप्त संसारमें सात्विक एवं पवित्र हृदय लेकर आनाही मेरी सबसे बड़ी पराजय है।"**

तृतीय खंड 'कला-चिन्तन' में छः निबन्ध हैं जो इस प्रकार हैं—'कलाओंका पारस्परिक अनुबंध', 'कलाकारकी स्वतंत्रता', 'कला और सामान्य जनता,' 'जन सामान्यका कलास्वादन,' 'उण्णायीका संगीत शिल्प' और 'अभिनय कला'। कला सम्बन्धी नाना समस्याओं पर विचार करते हुए लेखकने समस्त कलाओंको संगीत की ओर उन्मुख पायाहै और बतायाहै कि लय ताल समस्त कलाओंमें सामान्य तत्त्व है और सबका अन्तिम लक्ष्य रसास्वादन करानाही है। कलाकारपर किसी बाहरी नियंत्रणका वह विरोधी है। वह कलाकारको संयमित करनेका भार कलाकारके अन्तःकरण, आलोचक तथा पाठकपर छोड़ देताहै। प्रोलिटेरियन कला, विश्वजनीन कला, सामान्य जनताकी कला आदिके

नारे सुनायी दे रहेहैं और ऐसी कलाओंका समर्थन लेनिन, टालस्टाय, गांधीजी आदिने भी कियाहै। गुप्तन नायरका स्पष्ट मत है कि ऐसी कला संभव नहीं है क्योंकि सामूहिक बोधसे उत्पन्न होती हुईभी कला वैयक्तिक प्रतिभाकी उपज है और ऐसी स्थितिमें वह सबकी रुचि एवं आस्वादनकी वस्तु बनही नहीं सकती। शास्त्रीय ज्ञानके अभावमें कर्णाटक संगीत, मुद्राओंका तात्पर्य समझे बिना कथकळी किसीके पल्ले नहीं पड़ सकती। गुप्तन नायर यहभी मानते हैं कि 'सामान्य जनताके लिए कला' की मान्यतापर कलाओंको अपनी उत्कृष्ट कोटिसे निम्न धरातलपर लानेका श्रम जघन्य अपराध है। आम जनताका नाम लेकर सिनेमा, उपन्यास, कथा-साहित्यमें लैंगिकता भरनेवाले स्वार्थी लोगों की लेखक भर्त्सना करताहै तथा आग्रह करताहै कि अपने देशके सांस्कृतिक मूल्योंकी बलि न चढ़ायी जाये। सामान्य जनताकी कला सम्बन्धी रुचि एवं संस्कारको बढ़ानेके स्थानपर कलाको सामान्य जनताके स्तरपर प्रतिष्ठित करके हम उसके साथ व्यभिचारकर रहेहैं।

'क्रांतदर्शी' खंडमें चार निबंध सम्मिलित हैं— 'इब्सन', 'स्टेफन स्वेंग,' 'टागोर और गाँधी' तथा 'सी. वी. रामन पिल्लेकी परंपरा तथा विरासत'। इब्सन तथा स्टेफन स्वेंगके जीवन, कृतित्व एवं आदर्शोंपर सविस्तार प्रकाश डाला गयाहै। यहाँ नायरजीके समीक्षक-व्यक्तित्वका नहीं, कथाकार व्यक्तित्वका आभास मिलताहै। 'टागोर तथा गाँधी' शीर्षक निबंधमें दोनों महापुरुषोंके आदर्शों, विचारोंमें भारी अन्तर होते हुए भी दोनोंकी पारस्परिक सहानुभूति और आत्मीयताके कई उदाहरण प्रस्तुत कियेहैं और निष्कर्ष रूपमें बताया है कि गाँधाजीने ग्रामीणोंके ईश्वर विश्वासकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित कियाहै तो टागोरने उपनिषदीय पुरुष संकल्पकी ओर। अन्तिम लेख गुप्तन नायरकी बहुज्ञता, सूक्ष्म पर्यवेक्षक दृष्टि एवं साहित्यके नानाविध तत्त्वोंकी पकड़का आभास देताहै और यहाँ गुप्तन नायरका समीक्षक-व्यक्तित्व अपने चरमोत्कर्षपर है। लगभग ३५ पृष्ठोंके इस निबंधमें मलयालमके प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार सी. वी. रामन पिल्लैकी कृतियोंका विभिन्न मानदंडोंपर विचार विश्लेषण करके कृतियोंका उचित मूल्यांकन करनेके साथही १९ वीं शतीके केरलीय वातावरणकाभी दस्तावेज प्रस्तुत किया है।

'सामूहिक चिन्तन' खंडके अन्तर्गत आये दो निबंध 'परम्परा और प्रगति' तथा 'चरखा और परशु' सामान्य कोटिके हैं। प्रथममें यह दर्शाया गयाहै कि यथार्थ परंपरा प्रगति एवं शास्त्र-सिद्धिके विपरीत नहीं है। द्वितीय निबंधमें केरलीय जनतापर गाँधीजीके प्रभावके लिए कारणभूत दो घटनाओं 'माप्पिल लहला' तथा 'वैक्कम सत्याग्रह' का उल्लेख करते हुए मलयालमके गाँधीवादी साहित्यकी समीक्षा की गयीहै। बादमें लेखक ने बड़े खेदके साथ बतायाहै कि परशुधर मुनिकी कन्या केरलकी जनता गाँधीजीके अहिंसा-सिद्धाँत तथा परशुरामकी हिंसावृत्तिके बीच झूल रहीहै। गोडसेके बादभी कितनेही लोगोंने कितनीही बार गाँधीजीका वध कियाहै। गाँधी साहित्यपर कहने योग्य एकभी पुस्तक मलयालममें नहीं लिखी गयी। परशुरामसे सृष्ट केरलमें अहिंसापर हिंसा, सत्याग्रहपर अत्याग्रहकी विजय होतीहै। लेखकका गाँधीवादी आदर्श शाँति एवं अहिंसामें मानवकी विजयका दर्शन करताहै। 'चरखा' तथा 'परशु' क्रमशः क्रमशः अहिंसा एवं हिंसाके प्रतीक रूपमें प्रस्तुत है। ऐसा लगता है कि लेखकने परशुराम के परशुको ही ध्यानमें रखाहै जो उसकी एकाँगी दृष्टि का द्योतक है। परशुरामका व्यक्तित्व उभयपक्षी था— वे कर्मठ संन्यासी थे, हिंसा-अहिंसाके प्रतिमूर्ति थे। एक हाथमें कमण्डलु तथा दूसरे हाथमें परशुधारी कर्मठ संन्यासी परशुरामका व्यक्तित्व हिन्दीके कवि दिनकर को परिचित था, मलयालमके समीक्षक गुप्तन नायर को नहीं।

परिशिष्टमें 'गोविन्द पिल्लैको एक उत्तर' तथा 'पलटकर देखनेपर' रखे गयेहैं। प्रथम एक पत्र है। गुप्तन नायर द्वारा १९६६ में प्रकाशित 'इज्मके परे' शीर्षक निबंध संकलनका प्रतिवाद करते हुए मार्क्सवादी गोविन्द पिल्लैने १९७५ में 'इज्मके भीतर' नामक एक पुस्तक प्रकाशितकर साहित्य जगत्में पर्याप्त कोलाहल मचा दियाथा तो उनके कुछ प्रश्नोंका समाधान देते हुए गुप्तन नायरने यह वैयक्तिक पत्र लिखा और आग्रह किया कि परस्पर कीचड़ उछालनेके स्थानपर पारस्परिक सहयोगसे पतनोन्मुख साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें नवजीवन भरनेका प्रयास करें तथा साम्यवादी मानवतावादको त्यागकर उदार मानवतावादको प्रश्रय दें। द्वितीय परिशिष्ट वास्तवमें पुस्तककी भूमिका मात्र है, जिसे पुस्तकके अन्तमें स्थान दिया गयाहै।

(शेष पृष्ठ ६६ पर)

पश्चिमांचलीय भाषाएं

- कोंकणी
- गुजराती
- मराठी
- सिन्धी

असहाय नारी जीवनका शोषण

कृति : 'कार्मेलीन'
कृतिकार : दामोदर यशवन्त मावजो

समीक्षक : पुंडलिक नारायण नायक
हिन्दी रूपान्तर : कान्ता पलसाने
पुणे विश्वविद्यालय, पुणे.

१९८३ की साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त कोंकणी उपन्यासिका 'कार्मेलीन' दामोदर यशवंत मावजो की आजतककी साहित्यिक-प्रतिभाका उच्चतम शिखर है। श्री मावजो मन और आयुसे नवयुवक हैं। उनका गौरव गोमंतकीय युवा कोंकणी प्रतिभाओंका भी गौरव है। वस्तुतः आजका कोंकणी साहित्य जिनके कृतित्वपर आधारित है, उनमें श्री मावजोका स्थान ऊँचा है। उनका पिंड कहानी-कथाकारका है और एक सफल कथाकारके रूपमें वे प्रगतिकर रहेहैं। 'गाँथन' एवं जागरणा' जैसे उनके कथा-संग्रह कोंकणी भाषाकी कथा-विधाको नया आयाम देतेहैं। 'काणी एका खोमसाची' तथा एक 'आशिल्लो बाबुलो' नामक दो दीर्घ कथाएं किशोर वर्गके लिए तथा 'सूड' नामक एक दीर्घ कथाको कोंकणी भाषा मंडल तथा गोवा कला अकादमीने पुरस्कृतकर उनकी कृतियोंका सम्मान बढ़ायाहै। 'कार्मेलीन उनकी पहली उपन्यासिका है। लेखककी साहसिक यात्रा कहानी, उपन्यासिका तथा उपन्यासके रूपमें है। कहानीके बाद तुरन्त उपन्यास क्षेत्रमें पदार्पण करना खतरनाक न सिद्ध हो इसलिए शायद उन्होंने छोटे उपन्यास लिखे हों। उनका यह पर्याय सफल रहाहै। इसमें कोई शंका नहीं है।

श्री मावजोकी कहानियोंकी विशेषता उनकी भाषागत क्षेत्रीयता तथा लेखनमें संयम तथा अलिप्तता है। उनकी कई कहानियाँ क्षेत्रीय पकड़ बनाये रखते हुएभी सार्वजनीन हैं। गोवाके लेखकोंकी अपनी सीमाएं हैं जोकि उनमें वहाँकी समाज रचनाके कारण आगयीहैं। गोवाका ईसाई लेखक ईसाई समाजके अलावा दूसरे समाजके बारेमें लिखते समय हीनता अनुभव करताहै, इसी प्रकार हिन्दू लेखक ईसाई समाज रचनामें पैठते हुए संकोच करताहै। लेकिन श्री मावजो इसके अपवाद हैं। उनकी रचनाओंमें दोनों वर्गोंके सामाजिक जीवनका सही चित्रण होपायाहै। इसलिए उन्हें गोमंतकीय जीवनका सच्चा भाष्यकार कहाजा सकताहै।

सफल कहानी लेखकके सभी गुण श्री मावजोको उपन्यासकी रचनामें सहायक सिद्ध हुएहैं। 'कार्मेलीन' की विषयवस्तु, उसमें की व्यक्ति रेखाएं, उनका गोवा की मिट्टीसे हुआ संयोग, वातावरण एवं व्यक्ति-रेखाके निर्माणके लिए किया गया लोकभाषाका उपयोग, इन सभी बातोंकी ओर दृष्टि डाली जाये तो क्षेत्रीय ललित साहित्यकी रचनाके लिए लोकभाषाही एक आवश्यक पर्याय रह जाताहै।

'कार्मेलीन' व्यक्ति प्रधान उपन्यासिका है। इस दृष्टिसे उसका शीर्षकभी समर्पक है। कार्मेलीन ईसाई है। लेकिन जीवनको लेकर उसका चिंतन और दर्शन हिन्दुत्व अर्थात् भारतीय स्वरूपके स्तरका है। क्योंकि गोवाका ख्रीस्त धर्म मात्र साढ़े चारसौ वर्षोंकी परम्परा लियेहै। किसी पेड़पर लगायी गयी कलमकी तरह इस धर्मका हिंदुत्वसे संबंध है। इसीलिए कार्मेलीनकी आचार विचार प्रणाली, नीति-अनीतिकी कल्पनाएं ख्रीस्तीय होते हुएभी भारतीय स्वरूप लिये हुएहैं।

कार्मेलीन गोवाके सासष्टी तहसीलके सुरावली गाँवकी है। उसके बचपनमें ही संसर्गजन्य रोगोंसे उस के माता-पिता तथा भाईकी एक साथ ही मृत्यु हो जातीहै। यहींसे उसका दुर्भाग्य शुरू होताहै। उसके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी उसकी फूफीपर आ पड़ता है। और सही सही अर्थोंमें वही उसकी 'माय-गाय' (सब कुछ) बनती है। बचपनसे ही कार्मेलीन सुन्दर

तथा बुद्धिमती है। किशोरावस्था पारकर यौवनकी देहरीपर कदम रखतेही वह अपनीही फूफीके लड़के आग्नेलके मोहजालमें फंस जातीहै। कोलवेके समुद्र किनारेपर आग्नेल उसे रात-बेरात घुमाने लेजाता और उससे शरीर सुख प्राप्त करता। किंतु आग्नेलका विवाह किसी दूसरीही लड़कीसे कर दिया जाताहै। कार्मेलीन हताश होतीहै। उसका विवाह जुजे नामक एक फुटबाल खिलाड़ीसे कर दिया जाताहै। जुजे कार्मेलीनको मात्र भोग्याके रूपमें ही देखताहै। वह एकदम निकम्मा, बेफिक्र, बेशर्म तथा एक नंबरका पियक्कड़ है। उससे कार्मेलीनको एक लड़की पैदा होती है। अपने पतिको सुधारनेके प्रयत्नमें वह अपने पतिके साथ पाली गाँवमें, जहाँ वह काम करताहै, जाकर रहतीहै। वहाँ जुजे रातमें शराबमें धुत होकर सोता रहताहै, तभी उसका पार्टनर मित्र रूजार कार्मेलीनके साथ सहवास करताहै। कार्मेलीनभी लगातार दो दिनोंतक प्राप्त इस शरीरसुखसे तृप्त और सुखी होती है, क्योंकि इसके पहले उसनेभी इस तरहकी तृप्तिका अनुभव नहीं कियाथा।

किंतु बेटी बेलिंदाके भविष्यके बारेमें चिन्तित तथा पाप-पुण्यकी कल्पनासे घबराकर वह अपने पतिके घरको 'रामराम' कर लौट जातीहै। शीघ्रही दूसरा बच्चा पैदा होताहै। लेकिन इसे अपने पापका फल समझ वह उसकी देखभाल करतीहै और ऐसेही दुर्लक्षित क्षणोंमें उस छोटे बालककी एक दुर्घटनामें मृत्यु होजातीहै। वह छाती पीट-पीटकर रोती रह जातीहै। अब वह अपना सर्वस्व बेलिंदाके लिए दाँवपर लगानेके लिए तत्पर होजातीहै। पियक्कड़ पति नौकरी खो बैठताहै, उसकी दुनियां उजड़ने लगतीहै! सारी जिम्मेदारी कार्मेलीनपर आ पड़तीहै। वह फटे आकाशको थिगलियोंसे जोड़नेका अथक प्रयत्न करती रहतीहै। पड़ोसन तथा एक रिश्तेदार इझाबेल उसकी सहायता करतीहैं।

इसी बीच गोवा स्वतंत्र होताहै और विदेशोंके साथ व्यापारके दरवाजे खुलतेहैं। कोई जानकार कार्मेलीनको कुवैत जाकर अपनी किस्मत आजमानेकी सलाह देतेहै। वहाँपर होनेवाले धोखोंकी भी जानकारी दी जातीहै। किंतु 'हाँ' या 'न' की अनिश्चिततामें बेलिंदाके उज्ज्वल भविष्यके लिए पैसोंकी आवश्यकता बताकर कार्मेलीन कुवैतके लिए प्रस्थान करतीहै। निसार नामक एक अरबके यहाँ वह आयाका काम करतीहै। वहाँके ऐश्वर्यमें वह बेलिंदाके भविष्यके सपने देखतीहै।

कुवेतमें शुक्रवार छुट्टीका दिन होताहै। निसारकी पत्नी नोरिया हर शुक्रवारको अपने पीहर चली जाती है क्योंकि निसारके आसुरी भोगसे उसे आजके दिन मुक्ति चाहिये होतीहै। और हर शुक्रवारको निसार समयका भान न रखते हुए कार्मेलीनके साथ बलात्कार करताहै। कभी कार्मेलीन व्याकुल होतीहै तो कभी सुखी। बलात्कार कुछ क्षणोंके लिए जबरदस्ती और बादमें सुखद अनुभूति हो, कुछ इसी तरहसे। इसके लिए कार्मेलीनको बहुत सारा पैसा दिया जाताहै, वेतनके अलावा शरीर सुख देनेके बदलेमें। अनजानेमें कार्मेलीन पैसोंकी शिकार बनती जातीहै। मनुष्यकी आवश्यकताएं पूरी हो सकतीहैं आशाएं नहीं। कुछ ऐसी स्थिति कार्मेलीनकी होतीहै। इसीलिए दो बार न लौटनेका निश्चयकर मातृभूमिको लौटनेवाली कार्मेलीन फिरसे कुवैतकी ओर आकर्षित होतीहै। तीसरी बार भी उसका मोह छूटता नहीं। घर और जमीनकी समस्याएं अब पूरी होगयीहैं, किन्तु उसकी 'सर्वस्व' बेलिंदा मेट्रिकमें फेल होजातीहै। उसके सुखी भविष्य के लिए वह तीसरी बार कुवेत जानेका निर्णय लेतीहै। तभी उसकी यौवनमें कदम रखती बेटी बेलिंदा माँसे कहतीहै, 'मुझे और नहीं पढ़नाहै। तुमने मेरे लिए अपार कष्ट उठायेहैं। अब बस। अब मैं स्वयं कुवैत जाकर पैसा ले आतीहूँ।''

व्यक्तित्वका विकास इस उपन्यासिकाकी विशेषता मानीजा सकतीहै। कार्मेलीनके व्यक्तित्वमें असहायता, आवश्यकतानुसार ईर्ष्या है, परिस्थितिसे समझौता करनेवाली है। इस व्यक्ति चित्रणके समय लेखकने कोई अतिरेकी भूमिका नहीं स्वीकार कीहै। अथवा संभोगको अस्त्र बनाकर उसके पतनका अतिरंजित वर्णनभी नहीं कियाहै। प्रत्येक घटनाके समय उसका स्वयंको 'सम्हालने' का मुख्य उद्देश्य होनेके कारण उपन्यासके अन्तमें उसका अपेक्षाभंग, उसका बेहोश होकर गिर पड़ना अधिक परिणामकारक सिद्ध हुआहै। कार्मेलीनके अलावा अन्य व्यक्ति रेखाएं भी उनके अपने अलग व्यक्तित्वके कारण ध्यानमें बनी रहतीहैं। जुजे एक असमर्थ, नालायक और व्यसनी लोगोंका प्रतिनिधित्व करताहै। उसकी अयोग्यताके कारण कार्मेलीन

का नैतिक पतन घृणास्पद न लगकर करूणामय लगता है। ईझाबेल एक परोपकारी, स्वावलम्बी गृहिणी प्रतीत होतीहै। आग्नेलके ममतालू पिताके स्वभावमें ईसाका संदेश महकता-सा लगताहै। लेकिन उनकी पत्नीके स्वभावमें मत्सर, तिरस्कार पूरी तरह व्याप्त है।

उपन्यासमें प्रसंगानुसार औरभी व्यक्तिरेखाएं उभरतीहैं। कुवेतके निसार और नोरियाकी व्यक्ति रेखाएं उनके विक्षिप्त व्यवहारको ध्यानमें रखते हुए भी दूसरोंकी तुलनामें कमजोर हैं। उपन्यासका केवल तीसरा भाग कुवैतमें घटित होताहै, शेष सब गोवामें। यहाँके वातावरण-निर्मितिमें विशेषकर खींस्तीय समाजके रीति-रिवाजोंकी सूक्ष्मताओंकी जानकारीभी उपन्यासमें वास्तविक रूपमें आयीहै। कोंकणीके सासष्टी बोलीके अनेक शब्द प्रयोग और वाक्य रचनाएं हेतु-पुरस्कार प्रयुक्त हुएहैं, जिसके कारण उपन्यासकी क्षेत्रीयता अधिक स्पष्ट हुईहैं। उपन्यासके प्रत्येक प्रसंगकी रचना किसी छोटी कथा जैसी है। प्रत्येक घटनाका अन्त एक निश्चित परिणाम सिद्ध करनेके लिए योजित होनेके कारण कथानकका क्रमिक विस्तार होता जाताहै। किंतु कई प्रसंगोंमें घटनाके पूर्वही उसका आभास मिल जानेसे पाठकोंपर 'क्लाइमेक्स' का परिणाम कुछ अंशमें ढीला पड़ जाताहै। घटनाएं योग्य प्रमाणमें विस्तारित हैं। कहीं-कहीं कोई प्रसंग आवश्यकतानुसार कई पृष्ठोंमें है तो कोई प्रसंग चार पाँच पंक्तियोंमें ही निपटा दिया गयाहै। कार्मेलीन और आग्नेलके बाल्यकालसे युवातक के कालको अति संक्षेपसे और समझ बूझकर चित्रित किया गया है। प्रत्येक घटनाके बाद कार्मेलीनकी भावनाएं किसी भी प्रकारका पर्दा न रखते हुए पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत होतीहै। कुवेत जानेसे पहले ईझाबेलको ईमानदारीसे अपनी व्यक्तिगत बातें बता देनेवाली कार्मेलीन कुवेत से लौटनेके बाद अपने चरित्रकी बातें जानबूझकर टालती रहतीहै तथा रंजक काल्पनिक बातें बताती रहतीहै। कार्मेलीनमें आया यह परिवर्तन उसके व्यक्तित्वका अंग बन जानेके कारण यह व्यक्ति रेखा अधिक वास्तविक लगने लगतीहै। मनकी इस बदलती प्रक्रियाको मनोविज्ञानमें भी वास्तविक माना गयाहै। कार्मेलीनके दुर्भाग्यको पूंजी मानकर पाठकोंसे पर्याप्त सहानुभूति प्राप्त कीजा सकतीथी। परन्तु लेखकने ऐसा नहीं किया। लेखककी यह तटस्थताही इस उपन्यासकी विशेषता है। इसी साहित्यिक कसौटीपर खरी उतरनेके कारण कार्मेलीनको पढ़ना एक विशिष्ट साहित्यिक आनन्द प्रदान करताहै।

वैशिष्ट्यपूर्ण स्वभाव चित्रणके कारण उपन्यास के कुछ विधान ध्यानमें बने है। अपने प्रेमी आग्नेलका विवाह होनेपर उसकी पत्नीको देखकर कार्मेलीन अपना दुख भूल जातीहै। क्योंकि वह उससे कम सुन्दर है, स्त्रीसुलभ ईर्ष्यां जाग उठतीहै और तुच्छतासे कहतीहै, "हट, यह, इस कार्मेलीनके नखकी बराबरीभी नहीं कर सकती, अब तो दया-आनी चाहिये आग्नेलपर, मुझपर नहीं।" ऐसीही एक दूसरी घटनाहै कुवैतकी। अरबोंकी वासनाका शिकार बनी सेझलीन भोलेपनका स्वांग रचकर कार्मेलीनको मिस नोरोन्य नामक धंधेवाली महिलाकी बात-बताते हुए कहतीहै, उस नोरोन्यसे मैंने कितनीही बार कहाहैं, 'बहना तू जो करतीहै वह योग्य नहीं हैं। तुझे यदि सोनाही है तो किसी अच्छे पैसेवाले अरबके साथ सोयाकर। तुझे पैसेभी ज्यादा मिलेंगे। किन्तु एक दीनारके लिए तू इंडियनों (कुवेत में व्यवसायके लिए गये मलबारी लोग) के पास अपना मान सम्मान गिरवी मत रख।"

एक और घटना है—एक-शुक्रवारको निसार कार्मेलीनके साथ उसका मासिक स्राव शुरु होनेके बावजूद संभोग करताहै। कार्मेलीन बडी दुखी होतीहै, निसार से वह अपनी व्यथा कहतीभी है, निसार उसी समय उसके सामने पलंगपर बीस दीनार फेंकताहै। उस समय व्यथित हृदय कार्मेलीनके मुखसे निकलता है, "अरब सुखकी कीमत पैसोंसे करतेहैं यह तो जानाथा, किन्तु आज समझमें आया कि वह दुखकी कीमत भी पैसोंसे ही तय करतेहैं।

ऐसीहै कार्मेलीन। कार्मेलीन अर्थात्—असहाय जीवन की दुर्गति। अरब देशोंमें पैसा कमाने गये भारतीयोंको विशेष रुपसे गोमंतकियोंका पैसोंके बदलेमें क्या-क्या खोना पडताहै, इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण। विषय वस्तु की विशिष्टता एवं आशयकी गहनताकी दृष्टिसे यह उपन्यासिका कोंकणी साहित्यमें ही नहीं बल्कि, भारतीय कथा साहित्यमें सम्मानजनक स्थान प्राप्तकर लेगी, इसमें कोई शंका नहीं। युवा कोंकणी प्रतिभावान् लेखकोंका इससे अधिक गौरव और क्या होगा?

(दिनांक १५-१-८४ को गोवासे प्रकाशित नवप्रभा के रविवारीय अंकमें श्री पुंडलिक नारायण नायक की कार्मेलीनपर लिखी समीक्षापर आधारित अनुवाद)

मानव-केन्द्रित विश्लेषणात्मक एवं चिन्तनात्मक साहित्यिक निबन्ध

कृति : 'चिन्तयामि मनसा'
कृतिकार : डॉ. सुरेश ह. जोशी

समीक्षक : डॉ. रजनीकान्त जोशी
हिन्दी प्राध्यापक, गुजरात
विद्यापीठ, अहमदाबाद.

लगभग दो दशक पूर्व सुविख्यात अस्तित्ववादी चिन्तक ज्हॉन-पॉल-सार्त्र को नोबेल पुरस्कार प्रदान करनेकी घोषणा हुईथी, लेकिन उन्होंने पुरस्कार लेना अस्वीकारकर दियाथा। सार्त्र की प्रकृतिको नोबेल पुरस्कार विजेताकी हैसियतसे पहचाना जाये यह पसंद न था। सन् १९८४ में गुजरातीके सुप्रसिद्ध व शीर्षस्थ आलोचक सर्जक एवं कवि डॉ. सुरेश ह. जोशीको दिल्ली स्थित साहित्य अकादमीने सन् १९८३ का पुरस्कार प्रदान करनेकी घोषणा की। किंतु डॉ. जोशी ने अपने सैद्धान्तिक कारणोंसे पुरस्कार लेना स्वीकार नही किया। डॉ. जोशीको उनकी आलोचनापरक कृति 'चिन्तयामि मनसा' पर साहित्य अकादमीने पुरस्कार घोषित कियाथा।

डॉ. सुरेश जोशीको गुजराती साहित्यमें अपने बहुमूल्य प्रदेय तथा मौलिक चिन्तनके कारण सम्माननीय स्थान प्राप्त है। गुजरातीके प्रभाशंकर जोशी, कवि सुन्दरम्, निरंजन भगत, उशनस्, जयन्त पाठक, रघुवीर चौधरी, चन्द्रकांत शेठ आदि अनेक विद्वान् डॉ. जोशीके प्रति आदर भाव रखतेहैं। यदि डेढ़ दशक पूर्व साहित्य अकादमीने पुरस्कारके परिप्रेक्ष्यमें डॉ. जोशी का सम्मान किया होता तो वह उपयुक्त समय होता। अब, जब उनके अनेक विद्यार्थी 'गुरु' के पदपर आसीन हों, साहित्यकी नयी दिशाकी ओर उन्मुख हों या अपने गुरु डॉ. जोशीके विचारोंसे दूर होते जा रहेहों, उस स्थितिमें डॉ. जोशीका अकादमी द्वारा इस प्रकार का सम्मान मूल्यहीन हो चुकाहै। वे शेष हैं इसी कारण पुरस्कार दे दिया जाये, यह नीति अकादमी एवं लेखक दोनोंके लिए शोभाहीन कहीजा सकतीहै।

डॉ. सुरेश जोशीने आलोचनापरक अपनी कृति 'चिन्तयामि मनसा' अर्पित कीहै अपने विद्यार्थी-गुरुओं को। इस कृतिमे कुल मिलाकर तेरह लेख ग्रंथित हैं : १. अर्थघटन, २. साहित्य और तत्त्व ज्ञान, ३. कस्मै देवाय हविषा विधेम ? ४. सार्त्र—आजके परिप्रेक्ष्यमें, ५. सर्जक, सर्जन, आलोचना—क्रियाशील व प्राणवन्त सन्निकर्ष, ६. आलोचनाका चैतन्यवादी दृष्टिकोण, ७. काव्यालोचनका एक नवीन दृष्टिकोण ? ८. ओक्ता-विदोपासकी काव्य विभावना, ९. संकेत विज्ञानकी सैद्धांतिक भूमिका, १०. संकेत विज्ञान, ११. नवीन आलोचनाके बारेमें थोड़ा-सा, १२. साहित्यालोचन एवं भाषाविज्ञान, १३. आधुनिकता एवं अनु-आधुनिकता। इस प्रकार इन शीर्षकोंसे प्रकट है कि काव्य शास्त्र, दर्शन, भाषाविज्ञान, सर्जकोंका काव्य विषयक दृष्टिकोण, पश्चिमकी आलोचनाकी दिशा आदिपर डॉ. सुरेश जोशीका चिन्तन अभिव्यक्त हुआहै।

वैसे तो डॉ. जोशीने आलोच्य ग्रन्थके बारेमें कहा है कि 'यह तो मात्र मेरे छुटपुट लेखोंका संग्रह मात्रही है।' वास्तवमें 'चिन्तयामि मनसा' तो प्राचीन तथा आधुनिक विचारधाराकी छोटी-सी किन्तु अत्यन्त मूल्यवान पुस्तक है। लेखक अनेक सिद्धांतोंके विश्लेषकही नहीं किन्तु सिद्धाँत स्वामीभी कहेजा सकतेहैं। इसका कारण यह है कि डॉ. जोशीका चिन्तन क्षेत्र देशगत भौगोलिक दृष्टिसे भी अत्यन्त विस्तृत रहाहै। प्राचीन से अर्वाचीन तथा अनु-अर्वाचीनताके अकल्प्य पथपर वे शोधकर्त्ताकी तरह चिन्तन करते दृष्टिगोचर होतेहैं। साथही विश्वसाहित्यको लेकर वे स्वयंभी हार्दिकतासे व्यक्त होते दिखायी देतेहै। लेखक स्वयं आलोच्य पुस्तक

के एक प्रकरण आधुनिकता एवं अनुआधुनिकता' में स्वीकार करतेहुए कहतेहैं : 'साहित्यमें जिसे आधुनिक या अद्यतन कहते आयेहै, उसके आगेके विद्रोहको देखनाहै और इस परिप्रेक्ष्यमें Postmodernity क्या है, यह हमें 'खोज करनीहै। Post Modernity एक आन्दोलन है, प्रवाह है, विचारधारा है। Modernity विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियोंके संकेत करतीहै, आनेवाले समयकी मंजिलका निर्देश करतीहै। आन्दोलनकी समयावधि अब अधिक नहीं रहती। वह ज्यादासे ज्यादा एक-दो दशक तक ही सीमित रहतीहै। किन्तु जिसे अनुआधुनिकता कहतेहै वह तो दो सौ वर्षतक भी टिक सकती है।' (चि. म. पृ. १३३-३४)

अतः यह स्पष्ट है कि डॉ. जोशी मूलतः प्राचीन कालके शोधकर्ता होते हुएभी सदा नवीनताकी ओर उन्मुख रहेहै। गुजराती साहित्यके रसज्ञ-तज्ज्ञोंसे आधुनिकताकी सनक लगानेवाले डॉ. सुरेश भाई जब अनुआधुनिकताकी बात करतेहै तब विश्व-साहित्यके कौनसे अक्षांश-रेखांशपर मानवका चिन्तन कहां किस प्रकार प्रवृत्त है यह तो गुजराती साहित्य-ग्राफपर आलोच्य लेखकही शब्दाँकित करनेका सामर्थ्य रखतेहै। डॉ. जोशी कहतेहैं : 'मेरे मनमें साहित्यके बारेमें जो आधारभूत तात्त्विक प्रश्न उठतेहै वे सब समग्र विश्वके साहित्य के अनुशीलन परिशीलनके परिणामस्वरूप उपस्थित होतेहैं।' (पृ. १३२)

'चिन्तयामि मनसा' का पहला शीर्षक है 'अर्थघटन ?' इस प्रकरणमें लेखक कविताका रसास्वाद एवं अर्थघटनकी चर्चा करतेहै। उनके मतानुसार 'अर्थघटन' का अर्थ अभिप्राय, तात्पर्य या आशय नहीं बल्कि रस है। अर्थघटन अर्थात् रस निष्पत्तिकी प्रक्रियाकी खोज। उपरांत, प्रस्तुत खोजसे पूर्व अर्थबोध अनिवार्य है या नहीं, तथा कवि-कर्मका मूल्यांकन करते समय भाषाकर्मकी छानबीनभी किस सीमातक कीजा सकतीहै, इस की वे विस्तृत चर्चा करतेहैं : 'अर्थघटन अर्थात् रचनाकी खोज।····· रचनाके बीज रूप अंगको, विभिन्न प्रकार के कल्पनोंको, चरित्र एवं घटनाओंको सजाकर, समझाना रहताहै जिससे रचनाके अवयवोंके बीचका पारस्परिक संबंध साभिप्राय दिखायी दे।' (पृ. १०२)

साथही वे कहतेहै कि अर्थघटनके लिए तार्किक पद्धति कैसी हो सकतीहै ? क्या रचनाको घटक-शैली, कल्पना, प्रतीक आदि सौन्दर्य प्रक्रिया सिद्धकर सकतेहै ? अतः इस प्रश्नके बारेमें चिन्तन करना वे अत्यन्त आवश्यक समझतेहै। इसी परिप्रेक्ष्यमें उन्होंने जोह्न एलिस का मंतव्यभी प्रस्तुत कियाहै।

डॉ. जोशीने इसी प्रसंगमें कविके लिए एक सुन्दर शब्द-प्रयोग कियाहै—'कीमियागर'। कवि ऐसा कीमियागर है जो भिन्न-भिन्न शब्दोंको सीकर, जोड़कर, झालपांजकर अनेक प्रकारके नवीन प्रयोग करताहै। उपरान्त, क्रमशः कालके संकेतोंके द्वारा वह अभिव्यक्तिभी करताहै जिसे केवल शब्दकोशके द्वारा जाना नहीं जा सकता। उसके लिए तो पूर्णतः तैयार होना पड़ताहै : आवश्यक जानकारी प्राप्त किये बिना किसीभी कविता का आस्वाद नहीं लिया जासकता।' (पृ. ५) इसी तथ्य की ओर डॉ. जोशी संकेत करतेहै : 'कविता एक बार श्रवण करनेसे या पढ़नेसे चेतनामें ओतप्रोत होजाये ऐसा तो कदाचित्ही संभव हो सकताहै। किन्तु अर्थघटन रसास्वादको गौण बनादे ऐसातो नहींही होना चाहिये।' (पृ. १२)

हाँ, कविकी चेतनाके साथ-साथ अर्थघटन-कर्ता अपनी संवेदना या अपनी रस-दृष्टि या नैतिक-अनैतिकताके खयाल जोड़ने लगे तो अवश्य काव्यालोचनामें रुकावट आसकतीहै। साथही, लेखकने यहाँ यह निर्देश भी कियाहै कि काव्यके अर्थको समझनेके लिए अलंकार अवश्य उपयोगी होतेहैं। इसी सन्दर्भमें कविताको गहराईसे समझनेके हेतु अलंकारोंकी उपयोगिताका निर्देश करते हुए लेखकने बोर्डसनके उद्धरणके साथ अपना मंतव्य प्रस्तुत कियाहै : 'जहां-जहां सरमुखत्यारशाहीका दौर चलताहो वहाँ सर्जकोंपर रोक-सी लग जातीहै। फिरभी सर्जकोंकी सत्यनिष्ठा, अभिव्यक्तिकी सच्चाई कुंठित नहीं कीजा सकती। अतः सर्जनकी जो आवश्यकता है वह सर्जन तो करनाही चाहिये। वस्तुतः जिस सत्यको प्रस्तुत करनाहै वह तो व्यक्त होताही है जिसे जाननेवालेही समझ सकतेहैं, परन्तु जड़भरत शासकोंकी समझदारीसे वह बाहर ही रहताहै। इस प्रकार यहां अलंकार, रूपक आदि हमारे काव्य-बोधकी दिशाका संकेत बननेके बजाय उसे चतुराईसे प्रछन्न रख कर प्रयुक्त रखनेका कार्य सर्जक करताहै। संक्षेपतः ऐसी अवस्थामें 'परोक्ष संकेत' ही व्यंजनाका साधन बन जाताहै।' (पृ. १०)।

'साहित्य एवं तत्त्व ज्ञान' शीर्षक 'चिन्तयामि मनसा' का द्वितीय प्रकरण है। इसमें लेखकने मेर्लोपोंति

का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहाहै, 'अब साहित्य एवं तत्त्व ज्ञान' परस्पर अलग या आमने-सामने नहीं रह पायेंगे। अभिव्यक्तिके ये दोनों प्रकार मानवीय वैय-क्तिक चेतनाके बुनियाद—Originary—अनुभवको जीवनके प्रत्येक क्षण-क्षणांशको ग्रहणकर भाषा द्वारा व्यक्त करनेका प्रयास करताहै।' (पृ. १३) और इसी चीजको लेखक आलोच्य प्रकरणके प्रथम वाक्यके द्वारा इस प्रकार व्यक्त करताहै, 'एक प्रकारसे देखें तो कविता ही तत्त्व ज्ञानकी माता है।' (पृ. १३) अर्थात् दोनों भिन्न-भिन्न तो नहींही हैं बल्कि प्रगाढ़ संबंध रखतेहैं।

जगत्के बारेमें मनुष्यने जो सर्वप्रथम उच्चारण किया था वह कविताके द्वाराही अभिव्यक्त हुआथा और उसमें जो प्रस्तुत था वह आनेवाले दिनोंका तत्त्वज्ञान ही था। यहां लेखकने प्लेटोके आदर्शनगर राज्यके बारेमें, कवि तथा कविताके संबंधमें तथा साहित्य एवं तत्त्वज्ञानका जो संबंध मेर्लोपोतिनने बतायाहै उसका विस्तृत विश्लेषण इस निबंधमें कियाहै। मेर्लोपोतिने यह देखा कि अब जगत्को सरलतापूर्वक घेरेमें नहीं रखा जासकता।

प्लेटोके नगर राज्यकी कल्पनाकी चर्चा यहाँ डॉ. सुरेश जोशीने विस्तारसे कीहै। कविकी कवितापर जिस प्रकार प्लेटोने प्रतिबंधकी चर्चा कीथी, उसके लिए किसीने उनको माफ नहीं कियाथा। यहाँ लेखकका माननाहै कि 'वस्तुतः कवियोंको कविकी हैसियतसे अछूता नहीं रखा जाता, किन्तु किसी विशिष्ट क, ख, ग, नामक कविताको सामने रखकरही रोक लगायी जाती रहीहै। (पृ. १६)।

प्लेटोका कहनाहै कि कविता नगरतन्त्रके आदर्श को सिद्ध करनेमें उपकारक होनी चाहिये। फिरभी, यहभी वास्तविकता है, प्लेटोने इस सीमातक कल्पना भी नहीं कीथी कि उनके नगर राज्यमें देवत्व स्थापित हो जायेगा।

प्लेटोके तत्त्वज्ञानकी चर्चा करते हुए डॉ. जोशीने अत्यंत खुलकर स्पष्ट कियाहै कि समाजके नैतिक राज-कीय संविधानके आग्रहोंका आदर्श तो होना जरूरी हैही और इस दृष्टिसे बाह्य रूपसे वे हमें कलाकी आलोचना करनेवाले नजर आतेहैं तथा इस प्रकारके अर्थोंके कारण प्लेटोके साथ अन्यायभी होजाताहै। किन्तु वास्त-विकता यह है कि प्लेटो कलाकी उपेक्षा करताहै नहीं है। वस्तुतः वह तो वहीं आलोचना करताहै जो कला समाजोपयोगी नहीं है बल्कि हानिप्रद है। लेखकने यहाँ प्लेटोके कला-विषयक दृष्टिकोणको प्रस्तुत करते हुए कहाहै कि प्लेटोने तो मनुष्यकी अधोगतिके लिए उत्तर-दायी कलापर ही प्रहार कियेहैं। इस प्रकारकी कला मानवके चित्तको विकारी बनानेका कार्य करतीहै, परि-णामस्वरूप मनुष्यमें मेल स्थापित नहीं कर पाती।

कविकी स्वतन्त्रता, सामाजिक प्रतिबद्धताके परि-प्रेक्ष्यमें कविके कर्त्तव्य एवं शुद्ध कविता क्या है, आदि विषयोंपर ध्यानाकर्षक निबंध प्रस्तुत हुआहै: 'कस्मै देवाय हविषा विधेम?' सर्जक जोभी ग्रहण करताहै वह सब अपने आसपासके समाजसे, कल्पनासे, एवं इन सबको अतीत व वर्तमानके साथ गुंफितकर वह इच्छित सौन्दर्य शब्दबद्धकर प्रस्तुत करताहै। एलियटने चाहे कहाहो कि 'यह सामाजिक व्यक्ति एवं सर्जक कवि दोनोंको अलग करना चाहिये।' यह कैसे सम्भव हो सकताहै? और इसी परिप्रेक्ष्यमें डॉ. सुरेश जोशीका माननाहै कि यह तो मात्र एक आदर्श कल्पना है जो पूर्ण रूपसे सार्थक हो नहीं सकती।' (पृ. ३२)

उपरांत, इसी प्रकरणमें, लेखकने उन कवियोंके प्रति, जो राजकीय आश्रय मांगतेहैं, लेतेहैं, अपनी अरुचि प्रकट कीहै। निबंधकारने यहाँ एक प्रश्न उठाया है 'सर्जकका प्रभाव समाजपर कितना है? उसका कहनाहै अदालतमें मुकदमा चलनेपर न्यायाधीश अपना फैसला सुनाकर सजा आदिका आदेश देताहै और उस पर अमलभी होताहै। किन्तु वर्षोंकी साधनाके बाद सर्जक अपनी कृति समाजके समक्ष प्रस्तुत करताहै तो उसकी हालत क्या होतीहै?' (पृ. ३६)

कवि समाजके लिए क्रांतिका दूत अवश्य है पर वहाँतक जहाँतक समाजको उसकी आवश्यकता है। १९७५में सर्जकोंकी रचना व जबानपर ताला लगाया गयाथा, यहभी एक सत्यही है। और यहभी यथार्थ है कि स्वतन्त्र प्रकृतिके सर्जक शासकोंके लिए सँपोले होतेहैं।

'सार्त्र: आजके परिप्रेक्ष्यमें' नामक लेख 'चिन्त-यामि मनसा' का उल्लेखनीय निबंध है। वैसेभी आजके मानवके संदर्भमें भी सार्त्रका तत्त्व ज्ञान अप्रस्तुत तो नहीं है। फ्रांस आदिकी नयी पीढ़ीके लिए सार्त्र अब आधुनिक नहीं रहे और खुद सार्त्रने भी कहाथा कि 'मैं तो अपने समयके लोगोंके लिएही लिखताहूं।' फिरभी आजके संदर्भमें भी सार्त्रका दर्शन मानवके लिए उप-

(पृष्ठ ५८ का शेष)

सम्पूर्ण निबंधोंका अध्ययन करनेपर प्रोफेसर गुप्तन नायरके समीक्षक व्यक्तित्वका आभास मिलताहै। मलयालम, संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्योंका व्यापक अध्ययन एवं गम्भीर चिंतन-मनन समीक्षक गुप्तन नायरकी विशेषता है। अपने विचारोंके समर्थनमें वे भारतीय एवं पाश्चात्य चितकों, विचारकोंके उद्धरण प्रभूत मात्रामें प्रस्तुत करतेहैं। इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि गुप्तन नायरके विचार उधार लिये हुएहैं। भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियोंके व्यापक अध्ययन एवं स्वतन्त्र चिन्तनसे प्राप्त अपने मौलिक विचारोंको बड़ी निर्भयताके साथ वे प्रस्तुत करतेहैं। बहुमतके साथ चलनेकी दास्य वृत्ति आलोचक गुप्तन नायरमें नहीं। उनका अध्ययन इतना व्यापक है कि साहित्य, कला, दर्शन, समाजशास्त्र, नृतत्त्व शास्त्र, मनोविश्लेषण शास्त्र सबमें उनकी गति है और इस बहुमुखी ज्ञानका वे अपनी समीक्षा पद्धतिमें यथोचित उपयोगभी करतेहैं। समीक्षाके क्षेत्रमें वे बड़े समन्वयवादी हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों समीक्षा-शैलियों से उपयोगी तत्त्वोंको वे आत्मसात् करतेहैं। साहित्यको मात्र साहित्य मानकर चलना उनका आदर्श है उसे वादोन्मुख देखनेकी भूल वे नही कर सकते। जहाँ साहित्यको वादोन्मुख करनेका दुस्साहस किया जाताहै, ऐसे प्रयत्नोंसे गुप्तन नायरका समीक्षक बराबर टकराताहै। 'आशान क्या जनवादी कवि हैं' शीर्षक निबंध इसके लिए पर्याप्त उदाहरण है। डॉगमाटिज्मकी ओर बढ़नेवाले साम्यवादियोंकी कठोर शब्दोंमें वे निन्दा करतेहैं। किसीभी वादसे बद्ध न होते हुएभी वे किसी भी वादमें उपलब्ध मानवोपयोगी तत्त्वोंको ग्रहण करते हैं। किसीभी कवि या कृतिका मूल्यांकन देशकाल परिस्थितियोंके परिप्रेक्ष्यमें करना गुप्तन नायरकी विशेषता है। वे कवि या कृतिको खंडित न कर समग्रता से देखतेहैं और यथासंभव संतुलित दृष्टि अपनातेहै। नवीन कृतियोंका प्राचीन मानदंडोंपर मूल्यांकन गुप्तन नायरकी दृष्टिमें अनुपयुक्त है। यही कारण है आशान की "नलिनी" पर उनके विचार अन्य समीक्षकोंसे मेल नहीं खाते। कवि या कृतिकी समीक्षामें वे बराबर तुलनात्मक दृष्टि अपनातेहै। आशान, वल्लत्तोल आदिपर समीक्षा हमारे इस कथनके पर्याप्त उदाहरण प्रस्तुत करतीहै। गुप्तन नायरकी समीक्षा-शैलीमें पांडित्य प्रदर्शनके लिए स्थान नहीं है, सौम्यता एवं शान्तचित्तता है। उनकी कथन-शैली एक कथा-वाचककी-सी शैली है। ऐसा लगता है कि वे हमारे सम्मुख बैठकर बातकर रहेहैं और प्रश्न उठा रहेहैं। जहाँ हमसे उत्तर नही मिलते, वे स्वयं उदाहरणों द्वारा प्रश्नोंका समाधान देतेहैं। फलतः समीक्षा शैलीमें क्लिष्टताके लिए स्थान नही रहा। उनकी समीक्षा शैली समाज सापेक्ष सौन्दर्यमूलक एवं मानवतावादी है। अतः निश्चित रूप से मलयालमके इने-गिने श्रेष्ठ समीक्षकोंमें उनकी गणना है और कुट्टिकृष्ण मारार, जोसफ मुंडशेरी, एन. वी. कृष्ण वारियरके उपरांत उनका नाम आदरसे लिया जा सकताहै। प्रस्तुत निबंध संकलन एक पठनीय ग्रंथ है। □

यांगो है जिसका समर्थन डॉ. जोशीने किया है। ऐसे आजके साहित्यिक वातावरणमें मोड़ तो आयाही है। फ्रांसकी नयी पीढ़ीमें भी नवीन चेतना दिखायी देतीहै, विशेष उसे फिलॉसोफीको मसलना अच्छा नहीं लगता। इसी कारण एलेक्जेंडर ड्यूमाके उपन्यासका जब नया संस्करण प्रकाशित हुआ तो उन्हें बहुतही शांतिका अनुभव हुआ। रोजर इकोर नामक एक लेखकने तो यहाँ तक कह डाला कि, 'यह कैसा अत्याचार है। उपन्यास आखिर शोध निबंध तो नहींही है।'

वर्तमानमें सार्त्र-चिंतन करते हुए डॉ. जोशीने कहा है कि हमारी वर्तमान परिस्थिति तथा बढ़ता हुआ टेक्नालोजीका विकास राजनीति अर्थनीतिके प्रदूषणके बीचभी धर्मकी श्रद्धाके स्थानपर राजनीतिक श्रद्धा स्वीकार होती परिलक्षित होतीहै। मानव मानवमें परस्पर सन्देह बढ़ रहाहै। फलस्वरूप नैतिक आग्रह तो असंगत ही दिखायी देने लगेहैं।' डॉ. सुरेश जोशीने आलोच्य पुस्तकमें वर्तमान मानवीय अवनतिके बारेमें एक उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत कियाहै: 'मालरोने कहाहै कि नित्शेने ईश्वरकी मृत्युकी घोषणा कीहै। और अब तो धीरे-धीरे मानव अदृश्य होता जायेगा।' (पृ. ४२)

दास्तोवस्कीने मानवको बिलमें रहनेवाले प्राणी के समान चित्रित कियाहै। काफकाने अपनी 'मेटामौर्फोसिस' कहानीमें तो उसे चपड़ा बनता दिखायाहै। 'द फल्यायस' नामक नाटकमें सार्त्र भी मानवको जंतुकी कक्षा से गिरता हुआ देखतेहैं। आलां रोल्स-ग्रियेने मनुष्यको एक पदार्थके समान चित्रित करके अनुभवके पदार्थीकरणकी बात कहीहै। (पृ. ४२)।

इस प्रकार डॉ. सुरेश जोशीने इस निबंधमें यह सिद्ध करनेका सफल प्रयास कियाहै कि पहले मानव, मानवके रूपमें था किन्तु अब तो उसने अपना चेहराभी पोंछ डालाहै अर्थात् उसने खुद अपना अवमूल्यनकर लियाहै। नवीन टेक्नालॉजी एवं अर्थतंत्र नेताओंने मनुष्य को संघर्ष तथा युद्धके लिएभी प्रेरित कियाहै एवं मनुष्यके पदसे तो वह झरताही जाताहै। फलतः लेखक की यह टिप्पणी समीचीन लगतीहै कि, 'मनुष्यके विनाश के लिए क्या अब कुछभी शेष रहाहै?'

इसी प्रसंगमें लेखकने उल्लेख कियाहै कि मात्र अपने उपयोगके लिएही शासकोंने जवानोंको अपने नियंत्रणमें रखनेका कार्य कियाहै जिससे धर्मके स्थानपर अधर्म, ईश्वरके स्थानपर शासक तथा चुनावही दिखायी देतेहैं और कुछ नहीं। साथही यहभी उल्लेख कियाहै कि हमारे शिक्षा केन्द्रोंमें शिक्षा-विषयक प्रवृत्तिही होनी चाहिये किन्तु शिक्षण संस्थाएं अपने धर्मसे च्युत होगयीहैं, यहभी एक यथार्थही है।

साहित्य तो डॉ. जोशीके जीवनमें केन्द्रवर्ती पदार्थ के समान प्रतिष्ठित रहाहै। साहित्यकी विचारणाके साथ भाषा, भाषा-विज्ञान आदिका चिन्तनभी वे अत्रत्य तत्रत्य करते दिखायी देतेहैं। विशेष रूपसे इन सबके साथ मानवका चिन्तन तो वे विशेष रुचिके साथ करते ही हैं। इस कृतिके विभिन्न प्रकरणोंके केन्द्रमें 'मानव तो रहाही है, जो यहाँ 'सार्त्र दर्शन' के परिप्रेक्ष्यमें भी देखा गयाहै।

'ओक्तावियोपासकी काव्य-विभावना', 'सर्जक, सर्जन, विवेचन—क्रियाशील व प्राणवन्त सन्निकर्ष', 'आलोचनाका चैतन्यवादी दृष्टिकोण' एवं 'संकेत विज्ञान' तथा 'नवीन आलोचना' जैसे प्रकरणभी इस पुस्तकके ध्यानाकर्षक प्रकरण हैं। ये सभी तात्त्विक चिन्तन प्रस्तुत करनेवाले निबंध हैं जिनसे डॉ. जोशीका व्यक्तित्व उभराहै। इन सबमें कविता एवं आलोचना, इन दोनों क्षेत्रोंमें डॉ. जोशीका शोधकर्त्ता हाइडेजर वियडेस्ली, एरिस्टोटल, प्लेटो, एजरा पाउंड, रोलां बार्थ, टी. एस. एलियट, मेर्लोपोंतिन, वालेरीमालार्मे, बॉदलेरकी विचार धाराको लेकर चिन्तन करता दृष्टिगोचर होताहै।

डॉ. सुरेश जोशीने अपने शिक्षा विषयक मौलिक विचारोंको अपने स्वतन्त्र ग्रन्थ 'विद्या विनाशने मार्गे' (विद्या विनाशके पथपर') में खुलकर व्यक्त कियाहै जो 'चिन्तयामि मनसा' के प्रकरणोंमें भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे दृष्टिगोचर होतेहैं।

डॉ. जोशीने यह स्पष्ट रूपसे कहाहै कि 'हम कहां हैं' इसकी जाँच-पड़ताल हम नहीं करते। परिणामस्वरूप साहित्यिक-व्यवहार-पथमें सर्जक-आलोचककी विसंगति का संकेत कियाहै। वस्तुतः आधुनिक विचारके आधार की छानबीन पुनः करनी आवश्यक है और इसी परिप्रेक्ष्यमें डॉ. जोशीने गेलेलियोके सूत्रको इस प्रकार प्रस्तुत कियाहै: प्रत्येक आँकने योग्य वस्तुको आंकना और जिसे अभीतक आँका नहीं गयाहै उसे आँकनेका प्रयत्न करना। उनका कहनाहै कि साहित्यकारोंने तो यथार्थकी बात करते-करते अपने आग्रहोंको ही स्थापित कियाहै जिसमें दोस्तोएवस्की कार्लोस आदिभी आ जाते हैं जिन्होंने अपनी वास्तविकताको Reality,

Magic Reality या Costly Reality जैसे शीर्षक देकर पुरुषार्थ तो कियाहै परन्तु बेरोजगारी, प्रदूषण, मुद्रा स्फीति, बढ़ती आबादी, ऊर्जा संकट आदि सांप्रत यथार्थ क्षेत्रोंके छोटे-बड़े शीर्षकही कहे जाने चाहियें न !

'चिन्तयामि मनसा'में लेखकका आधुनिकताके परिप्रेक्ष्यमें संस्कृति व सांप्रत आदिके बारेमें किया गया धर्मतः व मानवतः चिन्तन अन्तिम प्रकरणको विशेष सशक्त बनाताहै। जीवन, धर्म, इतिहास, विचार पद्धति आदि प्रत्येक क्षेत्रमें स्थापित आधुनिकता तो वास्तवमें सतत विगतमें ढलतीही जातीहै, जिसका लेखकने यहाँ अनेक उद्धरणों एवं उदाहरणोंके द्वारा विश्लेषणभी कियाहै।

एक अध्यापकने यहाँतक कह दिया कि क्या हम अभीतक एरिस्टोटलकी प्रदक्षिणा नहीं कर रहे ? आलोचनामें प्रगति जैसा कुछ है ? या फिर हिन्दीके कवि धूमिलकी परिभाषामें कहें तो अंग्रेजीके ८ के समान चक्कर और चक्कर काट रहेहैं। रूपरचनावाद अब बासी होगयाहै। अब संरचनावाद आयाहै तथा अब तो यूरोपमें से Post Structuralism की बातेंभी आने लगीहैं। उपरांत Modernism एवं Modernity का भेद करतेहैं तब Post modernity एवं मौलिक Poetics की बातेंभी शुरू होगयीहैं। इस व्यापक संदर्भ के परिप्रेक्ष्यमें साहित्यमें जिसे अर्वाचीन कहतेहैं उसके दृष्टि-बिन्दुको खोजनेका डॉ. जोशी हमें संकेत करतेहैं। वास्तविकता यह है कि Modernism का उद्भव फ्रांसमें हुआ और आन्दोलन था साहित्य व कलाके क्षेत्र का। तत्पश्चात उसका प्रसार स्पेनमें हुआ, बादमें इंगलैंड व अमरीकामें भी। अब हम Post modern युगमें जानेकी तैयारी करके अपनी चेतनाको उसके अनुरूप ढालनेके प्रयासमें हैं।

इस प्रकार डॉ. सुरेश जोशीने 'चिन्तयामि मनसा' में बहुतही ध्यानाई निरीक्षण कियेहैं। विशेषतः कविता एवं आलोचना व संशोधनकी दृष्टिसे आलोच्य ग्रन्थ असंदिग्ध रूपसे मूल्यवान् है। यह प्रश्न अवश्य है कि गुजराती भाषामें ऐसे ग्रन्थ हैं कितने ?

डॉ. सुरेश जोशी निर्भीक व प्रामाणिक लेखक हैं। साहित्य अकादमीके मंत्रीको अपनी पुरस्कार-अस्वीकृतिके बारेमें लिखाथा कि,

'नकद पुरस्कार देनेकी अकादमीकी नीतिसे मेरा विरोध है। क्योंकि, पुस्तकोंकी ऊँची कीमतके कारण साहित्य रसिक उसे खरीद नहीं सकते। अतः पुरस्कार लेखककी पुस्तकोंको पाठकोंतक पहुंचानेमें असमर्थ रहता है। उपरांत जिसमें केवल बिखरे लेख हों, ऐसे ग्रन्थों को पुरस्कृत किया जाये यहभी उपयुक्त नहीं। इस प्रकारकी परंपरा साहित्यको गलत मूल्य, राजनीति, लोबीइंग एवं हानिप्रद गुटबन्दीकी ओरही घसीट ले जातीहै। अकादमीने अपने प्रारम्भ कालसे ही उदीयमान सर्जकोंके प्रति उपेक्षाका व्यवहार रखाहै। इस पुरस्कार को स्वीकार करनेका अर्थ है अकादमीकी दमघोटू नीति का समर्थन।' कुछभी हो, प्रस्तुत ग्रन्थ 'चिन्तयामि मनसा' अनेक दृष्टियोंसे विशिष्ट, विविधतापूर्ण एवं सत्त्व-समृद्ध तो हैही।

गुजरातीके इस चोटीके आलोचक-सर्जकके लिए 'बहुश्रुत' शब्द प्रयोग करना समीचीन लगताहै। डॉ. सुरेश जोशी यूरोपीय साहित्यके विद्वान् तो हैंही, किन्तु संस्कृत साहित्यके परमज्ञाताभी हैं, बाङ्ला भाषापर तो उनका अच्छा अधिकार है। ऐसे बहुश्रुत सारस्वतका का जन्म सन् १९२१ की ३० मईको गुजरातके सूरत जिलेके, बारडोली तालुकाके बालोड नामक गांवमें पिता हरिप्रसाद जोशीके घर हुआथा। उनके दादा आदिवासियोंमें काम करतेथे। गुजरातके सोनगढ़ गाँवमें वे कई वर्षतक रहे। प्राथमिक माध्यमिक शिक्षा सोनगढ़, पारण, नवसारीमें ली एवं उच्च शिक्षा बम्बईमें रहकर प्राप्त की। वे बम्बईके एलिफिन्सटन कालेजसे सन् १९४३में बी. ए. तथा १९४५ में एम. ए. हुए। बाद में सुरेश भाईने कराचीके डी. जे. सिंध कालेजमें अध्यापन का कार्य किया। नौकरीकी इस अवधिमें मकान न मिलने से वे रातको स्कूलकी बैंचपर पड़े रहते। प्रातः उठकर वे म्युनिसिपलिटीके नलसे स्नानकर लेते और गुनगुना लेते---'गुजारे जे शिरे तारे/जगतनो नाथ ते सहेजे।' अर्थात् ईश्वर जैसे-जैसाभी सहनेको कहतेहैं वैसे सहन कर। कराँचीके दो वर्षोंके समयमें श्री जोशीको अध्ययन करनेका पर्याप्त अवसर मिला और उसका लाभभी उठाया। इसी अवधिमें उन्होंने विदेशी साहित्यका विशेष रूपसे अध्ययन किया।

सन् १९४७ में भारतके स्वाधीन होनेपर वे गुजरात आये और गुजरातके वल्लभ विद्यानगरके विट्ठलभाई पटेल महाविद्यालयमें सन् १९५१ तक अध्यापक रहे। तत्पश्चात् एम. एस. युनि. बड़ौदा में गुजरातीके व्या-

(शेष पृष्ठ ७२ पर)

यथार्थवादकी मुक्त और प्रामाणिक अभिव्यक्ति

'सत्तान्तर'

उपन्यासकार : व्यंकटेश माडगूलकर

समीक्षक : (१) डॉ. रू. गो. चौधरी
प्राचार्य, राष्ट्रीय कला विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चालीस गांव
(२) श्याम विमल

पुस्तक और पुरस्कारका परस्पर संबंध हमेशा एक-सा नहीं होता। कभी पुस्तक पुरस्कारसे गौरवान्वित हो जातीहै और कभी पुरस्कार पुस्तकसे गौरवान्वित हो जाताहै। साधारण रूपसे पुस्तक और पुरस्कार एक-दूसरेको सम्मानित करतेहैं। पुस्तक और पुरस्कारके स्वतःसिद्ध मूल्यपर यह निर्भर करताहै। पुस्तकका स्वतःसिद्ध मूल्य कम हो तो पुरस्कार उसे सम्मानित करताहै और वह अधिक हो तो पुस्तक पुरस्कारको सम्मानित करतीहै। जब दोनोंका स्वतःसिद्ध मूल्य समान होता है, वे एक-दूसरेको सम्मानित करतेहैं। स्पष्ट है कि व्यंकटेश माडगूलकर—जो मराठीके मूर्द्धन्य कथाकार हैं—के 'सत्तान्तर' ने साहित्य अकादमी पुरस्कारको गौरवान्वित कियाहै।

'सत्तान्तर' व्यंकटेश माडगूलकरका लघु उपन्यास है। इस लघु उपन्यासमें माडगूलकरजीने एक महान सत्यको आविष्कृत कियाहै। और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें सत्य और तथ्य एकात्म हैं, तथ्यही सत्य है। अ. भा. मराठी साहित्य सम्मेलनके (१९८३) अध्यक्षीय अभिभाषणमें उन्होंने अपनी भूमिका स्पष्ट कीहै। उनका कथन है कि अब यथार्थवादकी सीमाएं विस्तार पा चुकीहैं। जिसे हम ग्रामीण साहित्य, दलित साहित्य जैसे नाम देतेहैं वह यथार्थवादकी ही मुक्त प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। जिस कृतिमें स्वाभाविक गुणधर्म अंगभूत होतेहैं, उसे ठोस रूप देनेवाली समुचित पृष्ठभूमि हमेशा प्राप्त होतीहै।' हम निर्भ्रान्ति रूपसे कह सकते हैं कि 'सत्तान्तर' यथार्थवादकी मुक्त, प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। उसके यथार्थको ठोस रूप देनेवाली पृष्ठभूमिका बड़ाही सजीव अंकन माडगूलकरजीने कियाहै।

उपन्यासके आरम्भमें लेखकने जो उद्धरण इतिहासाचार्य, वि. का. राजवाडेके 'भारतीय विवाह संस्था का इतिहास' शीर्षक ग्रन्थसे दियाहै वह बहुतही मार्मिक है। उद्धरण है: 'मानव पशुकोटिका प्राणी है और उसके निकटवर्ती सगे-सम्बन्धी हैं बन्दर।' बन्दरोंके सहज-प्रवृत्त आचरणके यथातथ्यपूर्ण वर्णन द्वारा लेखक ने मानवके सहज-प्रवृत्त आचरणका ध्वनन सशक्त एवं वस्तुपरक भाषा शैलीमें कियाहै। अतः इसमें तथ्यका हू-ब-हू चित्रण तो हैही सत्यकी भी अभिव्यंजना है। तथ्य बन्दरोंके कार्यकलापोंके चित्रणमें है और सत्य उसके द्वारा ध्वनित मानवीय प्रेरणाओंमें निहित है। इस उपन्यासके दो आयाम स्पष्ट हैं, एक आयाम है प्रकृतिवाद और दूसरा आयाम है प्रतीकात्मता। पर इसका दूसरा आयाम पहले आयामके गर्भमें छिपाहै।

इस उपन्यासका विषय है सत्तान्तर यानी सत्ता-संघर्ष और उसमें एक पक्षके पराजित होनेपर दूसरे पक्ष के हाथों सत्ताकी प्राप्ति एवं संचालन। बन्दरोंकी तीन टोलियों और उनके नायकोंके बीच भीषण संघर्ष इस

रचनामें चित्रित है । ये नायक हैं 'मुड़ा', 'मोगा' और 'लालबुड्या' । उस जंगलमें बन्दरोंकी सात टोलियाँ थी और प्रत्येकका अपना क्षेत्रीय राज्य था । इन टोलियों में सतत संघर्ष होता रहता । एक टोलीके नर दूसरी टोलीके नरोंसे और एक टोलीकी मादा दूसरी टोलीके मादाओंसे लड़ती रहती । अपनी सत्ताकी रक्षाके लिए उन्हें योंही सदा युद्धमान रहना पड़ताथा । लेखकने सात टोलियोंमें से तीन टोलियोंके परस्पर सत्तासंघर्षका अंकन इस उपन्यासमें कियाहै । संघर्ष केवल सत्ताके लिए नहीं था । संघर्ष जीवनकी रक्षाके लिएभी था । और डार्विनके विकासवादके अनुसार केवल सबलही इस संघर्षमें जीत सकताहै, अपनी रक्षा कर सकताहै । इन बन्दरोंको जंगलके अन्य हिंस प्राणियों—शेरों, वन्य कुत्तों, झीलके घड़ियालों, अजगरों और बाज पंछियोंसे भी प्राणोंकी रक्षाके लिए हमेशा सजग रहना पड़ताथा । इस प्रकार जीवन संघर्षके दो रूपोंका दर्शन इस उपन्यासमें लेखकने बड़ी यथार्थपरक भाषामें करायाहै । बन्दरोंका आपसमें संघर्ष है सत्ताके लिए और उनका अन्य हिंस प्राणियोंसे संघर्ष है अपने अस्तित्वको बनाये रखनेके लिए । या यों कह सकते हैं किसत्ताके दो रूप अंकित हैं । एक है एकाधिकार जो राजनीतिका विषय है और दूसरा है अस्तित्व जो समस्त प्राणिजातिकी जीवन रक्षासे संबंधित है । इस संघर्षका एक रूप राजनीतिक है और दूसरा रूप रक्षात्मक है ।

इस रचनाके प्रारम्भमें ही यह स्पष्ट किया गयाहै कि 'मोगा' और उसके घुसपैठिए पाँच साथी किसी दुर्बल टोलीके नायकको अधिकारसे पदच्युतकर उसपर अपना अधिकार स्थापित करनेकी ताकमें हैं । चार साल पहले 'मुड़ा' ने उस टोलीपर हमला बोल दियाथा जिस में 'मोगा' और पांच बन्दर बच्चेभी थे । इस संघर्षमें 'मुड़ा' की जीत हुईथी और प्रतिद्वन्द्वी अपनी मादाओं और छोटे-छोटे बच्चोंको छोड़कर भाग गयाथा । पर 'मुड़ा' ने 'मोगा' और अन्य पांच बच्चोंको बहिष्कृतकर दियाथा । 'मोगा' की कोई टोली नहीं थी वह इन पाँच बन्दरोंके साथ किसी बटमारके समान लूट-खसोट करता और जहाँ-तहां भटकता रहता । अब ये छहों मुड़ाके राज्यके चारों ओर संचरणकर रहेथे । उन्हें अधिकारकी लिप्सा थी, मादाओंकी आवश्यकता थी, धाक जमानेकी धुन थी । 'मुड़ा' के साथ 'लालबुड्या' का संघर्ष हमेशा होता रहता । पर 'लालबुड्या' जीवनके संघर्षमें पराजित होता रहता । एक बार साँपके काटनेपर उसने आखिरी सांस ली और वह गिद्धोंका भक्ष्य बना । तबसे मुड़ाने दोनों टोलियोंपर अधिकार जमानेकी चाल चली । 'मोगा' लालबुड्याके रिक्त स्थानको हड़पना चाहताथा पर राजनीतिज्ञ 'मुड़ा' की उसपर नजर थी हीं । 'मोगा' और उसके साथी 'मुड़ा' की ताकतको आजमा रहेथे । एक दिन घमासान संघर्षमें 'मोगा' की जीत हुई और 'मुड़ा' मौतका शिकार बना । इस प्रकार कालके साथ संघर्षभी अखंड रूपसे चलता रहता है । जब खानेवालोंकी संख्यामें वृद्धि होतीहै । तब संघर्ष बढ़ता जाताहै । प्राप्य अन्न या भूमिमें जब कोई अपना हिस्सा माँगताहै तब संघर्ष उफानपर होताहै । जब अस्थिरता पैदा होततीहै, कोई आक्रामक बाहरसे आकर घुसपैठ करना चाहताहै, तब संघर्ष चोटीपर पहुंच जाताहै । इसमें शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग होताहै । जो शस्त्रास्त्रोंको नहीं जानते वे दाँतों और नाखूनोंका प्रयोग करते हैं । पर यह सत्य है कि संघर्ष सार्वकालिक है, सार्वभौमिक है ।

कभी कभी संघर्ष अपनोंसे होताहै, कभी-कभी परायोंसे । अपनी जातिके भीतरही अधिकार-लिप्सासे प्रेरित प्रतिद्वन्द्वी पाये जातेहैं और कभी अन्य जातियों के प्राणियोंसे भी संघर्ष छिड़ जाताहै । इस संघर्षमें बलवानही हावी होजाताहै । इस सत्यके दर्शन लेखकने कई प्रसंगोंके द्वारा करायाहै । 'बोथरी' वानरी वन्य कुत्तेका ग्रास बनजातीहै । हिरण घड़ियालके चंगुलमें फँसकर जान गँवाताहै । 'लालबुड्या' की सर्पदंशसे मृत्यु होतीहै और वह गिद्धोंका भक्ष्य बन जाताहै ।

इस कृतिमें दो प्रबल प्रेरणाओंके प्रभावसे अनुप्राणित आचरणका जीवंत अंकन किया गयाहै । फ्रॉयडने केवल दो प्रवृत्तियोंको बुनियादी मानाहै—१. आक्रमण की प्रवृत्ति और २. काम प्रवृत्ति । 'सत्तान्तर' में आक्रमण प्रवृत्तिकी प्रधानता है, पर काम प्रवृत्तिको भी पर्याप्त स्थान मिलाहै । इस कृतिमें केवल बहिर्देशित आक्रमणका रूप उभरकर सामने आताहै । बहिर्देशित आक्रमणही संघर्ष या युद्धके मूलमें होताहै । 'मुडा', 'मोगी', 'लालबुड्या' और अन्य नरों अथवा 'लांडी', 'उनाडी' 'काळतोंडी' मादाओंका आक्रमण-भाव बहिर्देशितही हैं । केवल नरही नहीं, मादाभी एक-दूसरीपर झपट पड़तीहैं । नरके सत्ता हथियाने और एकाधिकार पानेसे टोलीकी सभी स्त्रियाँ उसकी हो जातीथीं । नर-

वानरकी टोलीमें जीवित रहना असम्भव था। उसे बहिष्कृत कर दिया जाताथा। केवल वानरियाँही टोलीमें रह सकतीथीं और उनका कार्य था प्रजोत्पादन। एक सयानी बनी वानरीका 'मुडा' के प्रति आकर्षण, प्रियाराधन और मिलनभी लेखकने यथार्थ रूपमें अंकित कियाहै। उसी वानरीने 'मोगा' से भी संबंध स्थापित किया। इस सम्बन्धमें लेखकका भाष्य बहुतही व्यंग्यात्मक है। लेखक कहताहै 'किसी चीजकी प्राप्तिके लिए उसके बदलेमें अपने शरीरको नरके हवालेकर देनेकी रीति केवल मनुष्य-प्राणीने ही नहीं अपनायीहै।' इस प्रकार आक्रमण और काम अपने अविकृत रूपमें इन प्राणियोंमें दिखायी देतेहैं।

बन्दरोंकी टोलीका नायक नर होताहै और वह सर्वेसर्वा बन जाताहै। नारियोंपर उसीका एकाधिकार होताहै। सभी नारियाँ उसके अंकित होतीहैं और उनका स्थान नर-नायककी अपेक्षा गौण होताहै। नर-नारी विषमताका यह अंकन वस्तुपरक दृष्टिकोणसे लेखकने कियाहै। नरको अपनी ओर आकर्षितकर लेनेकी कला ये नारियाँ जानतीहैं और अपने बच्चोंकी देखभालभी अच्छी तरह करतीहैं। नर और नारीकी प्रकृतिदत्त विशेषताओंका मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखकने कियाहै। नर आक्रामक होताहै, नारी ग्रहणशील। नर स्वामी होताहै, नारी सेविका। नर अधिकारी होताहै, नारी किंकरी। पर नारियोंमें आक्रमण प्रवृत्तिकी अपेक्षा काम-प्रवृत्ति अधिक प्रबल होतीहै और नरमें काम प्रवृत्तिकी अपेक्षा आक्रामकता अधिक। प्राणि-मनोविज्ञानके आधारपर मानव मनोविज्ञानके सिद्धांत स्वभावतः निःसृत होतेहैं। तुलनात्मक मनोविज्ञानका ज्ञाताही ऐसे सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी सामर्थ्य रख सकताहै। माडगूलकरजी निश्चयही इस तुलनात्मक मनोविज्ञानके ज्ञाता हैं।

लेखकने इस उपन्यासके पात्रोंकी जातीय विशेषताएं तो स्पष्ट रूपसे अंकित कीही हैं, बल्कि प्रत्येक पात्रकी निजी विशेषताओंको भी उभारकर पाठकोंके सामने रखाहै। 'मुडा', 'मोगा' और 'लालबुड्या' तीनों में अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। 'तरणी', 'लांडी', 'बोथरी', 'थोटी', उनाडी, 'काळतोंडी' आदि वानरियों में से प्रत्येकका व्यक्तित्व भिन्न है। जातीय समताएं होनेपर भी व्यक्तिगत भिन्नताएं लेखकने भली-भाँति अंकित कीहैं। हरएक वानर-पात्र चाहे वह नर हो या मादा अपनी खासियतोंको लेकर पाठकोंके सामने आता है और अपने व्यक्तित्वसे प्रभावित करताहै।

लेखकने बन्दरोंको नामभी उनके व्यक्तित्वके अनुरूप दियेहैं। भीषण लड़ाईमें एक वानरके बांये कानका बड़ा हिस्सा टूट चुकाथा और उसका कान मुड़ गयाथा इसलिए उसका नाम रखा गयाहै 'मुड़ा'। 'लालबुड्या' नाम इस कारण दिया गयाहै कि उसके पृष्ठभागका छोर लाल था। 'मुड़ा' की टोलीमें सात बन्दरियां थीं। एक थी 'तरणी' क्योंकि वह तरुण थी। दूसरी थी 'लांडी' जिसकी पूँछ आधी टूट गयीथी। तीसरी थी 'उनाडी' जो तरह-तरहका ऊधम मचाती रहती। चौथी 'थोटी' थी क्योंकि उसका बांया हाथ बाहुतक ही शेष था। पांचवीं 'कानी' थी, छठी 'लाजरी' और सातवीं 'बोकांडी'। 'कानी' सचमुच कानी थी, 'लाजरी' लज्जाशील थी और 'बोकांडी' हमेशा बन्दरियोंसे लड़ती रहतीथी। 'लालबुड्या' की टोलीमें जो बन्दरी थी उसका नाम है 'काळतोंडी' क्योंकि उसका मुँह काला था। वह कलमुँही थी।

इस कृतिकी सबसे बड़ी विशेषता है उसकी भाषा शैली। चाहे प्रकृति-चित्रका अंकन हो, चाहे चरित्रांकन, चाहे कालका वर्णन हो, चाहे गतिका, चाहे जातीय प्रवृत्तियोंका विश्लेषण हो चाहे वैयक्तिक विशेषताओंका, लेखकने ठोसपन देनेवाली यथार्थतापरक शब्दावलीका प्रयोग कियाहै। पहलेही पृष्ठपर ऐसी शब्दावलीके दर्शन होतेहैं। 'टळटळीत' विशेषणसे दोपहरका ठोस चित्र अंकित होताहै तो 'कुळकुळीत' से वर्णका ठोस रूप सामने उभरताहै। 'गुरगुराट' से ठोस ध्वनि व्यंजित होतीहै और 'भपकारा' से ठोस गंध। 'गिरगिरत' से गतिचित्रको ठोस रूप मिलाहै। वानरोंकी रतिके लिए 'जुगणे' क्रियाका प्रयोग बड़ाही सार्थक है। इसमें प्रकृतिके स्वतन्त्र चित्रोंका अंकन नहीं है। बाह्य प्रकृति आन्तरिक प्रकृतिसे घुलमिल गयीहै। पर रूप, रस, गंध स्पर्श और नादके संवेदनोंको ठोस रूप देनेवाली सार्थक एवं प्रसंगानुकूल संज्ञाओं, विशेषणों, क्रियाओं और अव्ययोंका प्रयोग लेखकने कियाहै।

लेखकका इस प्रकृतिके प्रति, प्राणिजीवनके प्रति आकर्षण क्यों? इसका उत्तर स्वयं लेखकने दियाहै: 'सचमुच मेरा यह आकर्षण बहुत पुराना है। मानवको निसर्गसे भिन्न रूपमें मैं देख नहीं सका। शरारत करने की उम्रमें क्रीड़ा-साथियोंके प्रभावसे मैं शिकार खेलता

(पृष्ठ ६८ का शेष)

ख्याता बने, बादमें प्रोफेसरके पदतक अपनी सेवाएं देकर अभी-अभी कुछेक वर्ष पूर्वही सेवा-निवृत्तभी हुए हैं। अब वे केवल साहित्यिक प्रवृत्तिमें ही प्रवृत्त रहते हैं।

सन् १९६१ में आपने मध्यकालके कवि नरहरिकी ज्ञान-गीतापर शोध कार्य करके पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की और आजतो उनके अनेक विद्यार्थीभी पी-एच. डी. के मार्गदर्शक हैं। सन् १९४९में आपने ऊषा बहनसे विवाह किया। प्रणव, कल्लोल तथा ऋचा उनकी तीन संतानें हैं।

डॉ. सुरेश जोशी प्रारंभसे ही अपने स्वतन्त्र विचारों के कारण चर्चित रहेहैं। पहले क्रमशः'वाणी', 'क्षितिज', 'मनीषा', 'ऊहापोह, (चर्चा) नामक पत्रिकाओंका संपादन किया और अभी थोड़े वर्षोंसे 'एतद्' नामक पत्रिकाका संपादनभी वे कर रहेहैं।

शोध, सर्जन, लेखनके क्षेत्रमें डॉ. जोशीका योगदान प्रशंसनीय रहाहै। कविताके क्षेत्रमें 'उपजाति' (१९५६), 'प्रत्यंचा' (१९६१) तथा 'इतरा' (१९७३), उपन्यासके क्षेत्रमें 'छिन्नपत्र' (१९६५), 'मरणोत्तर' (१९७३),कहानी संग्रहोंमें, 'गृहप्रवेश' (१९५७), 'बीजी घोडीक' (१९५८) 'अपि च (१९५६), 'न तत्र सूर्यो भाति,' (१९६७) जैसे बहुमूल्य प्रकाशनोंसे गुजराती साहित्य समृद्ध हुआहै। 'जनान्तिके' (१९६५) 'इदम् सर्वम्' (१९७१), 'अहो बत किम् आश्चर्यम्' (१९७५), उनके निबंध संग्रह हैं जिनमें लेखककी मौलिक विचारणा खुलकर अभिव्यक्त हुईहै! इसके उपरांत, उपन्यास-परक आलोचनात्मक ग्रन्थोंमें 'कथोपकथन' (१९६९) 'शृण्वन्तु' (१९७२) और 'भोंय तळियानो आदमी' (संतहका आदमी) (१९६७) जैसे ग्रन्थ बहुतही ख्यात-नाम व बहुचर्चित रहेहैं। साथही, अनुवादके क्षेत्रमें भी डॉ. जोशीकी देन ध्यानार्ह रहीहै।

इस प्रकार डॉ. सुरेश जोशी विगत साढ़े तीन दशकोंसे साहित्य-सर्जनकी प्रवृत्तिसे संलग्न रहेहैं। उनकी स्वतंत्र प्रकृति तथा शोध-वृत्तिके कारण मौलिक विचारणासे वे गुजराती साहित्य क्षेत्रमें सदा बहुचर्चित भी रहेहैं। उनकी श्रेष्ठ पुस्तकोंको राज्य सरकारके अनेक पुरस्कारभी मिलेहैं एवं चन्द्रक (पदक) भी। सन् १९७१ में गुजरातका सुविख्यात पुरस्कार रणजीत राय सुवर्ण चन्द्रक उनको मिलाथा। चन्द्रक स्वीकार करनेसे उस समय काफी चर्चाभी हुईथी। किन्तु डॉ. जोशीने चन्द्रककी पूरी कीमत जयप्रकाश नारायण निधिमें अर्पितकर दीथी। अब और अन्तमें यही कहना समीचीन होगा कि डॉ. सुरेश जोशी गुजरातके गौरव हैं और भविष्यमें भी उनके सर्जनसे प्रेरणा मिलती रहेगी। □

था। आज यह केवल कालबाह्य प्रतीत होताहै, पर संस्कृतिके आरंभिक कालके मानव प्रबल शिकारीही तो थे। जिस युवाने हाथमें कभी बंदूक नही उठायी, जिसने नदियोंके तलों और पहाड़ियों-जंगलोंकी छानबीन नहीं की, उसकी शिक्षा अधूरीही है। शिकारी युवाकी बुद्धि जब विकसित होजातीहै वह बंदूकको त्यागकर भिन्न कारणसे ही तालाब या जंगलकी ओर जाताहै। नित्य-प्रतिके संबंधियोंकी अपेक्षा भिन्न संबंधी उसे यहाँ प्राप्त करने होतेहैं। लेखककी शिकायत है कि समृद्ध प्रकृति, बनों, वन्य प्राणियों और पंछियोंकी भारतमें बहुतायत होनेपर भी साहित्यकारोंको इनका आकर्षण नहीं है।' 'राजहंसकी कलध्वनि और सारसकी आर्त पुकार इन्होंने सुनीही नहीं। कृष्णसार मृगके झुण्डकी छलाँगोंने इनके दिलकी धड़कनोंको प्रभावित कियाही नहींहै।' स्पष्ट है कि व्यंकटेश माडगूलकरका भारतकी समृद्ध प्रकृति और वन्य प्राणियोंके प्रति आकर्षणही उनके मानवीय आचरण के विश्लेषणमें नया आयाम प्रस्तुत करताहै। 'सत्तान्तर' इस आयामका मूर्त्त रूप है। 'सत्तान्तर' में दो वानर-यूथोंके बीचका जो भीषण संग्राम चित्रित है वह लेखक की निजी निरीक्षण जन्य सूझबूझको द्योतित करताहै। मराठीके विज्ञ समीक्षक प्रा. हा. तकणंगलेकरजीने 'सत्तान्तर' को इमर्सन और डार्विनके संयुक्त प्रभावका अंकन मानाहै। इसमें माडगूलकरजीकी स्वतन्त्र प्रतिभा एवं प्रज्ञाके दर्शन होतेहैं। घिसे-पिटे विषयोंका पिष्टपेषण करनेकी अपेक्षा माडगूलकरजीने मराठी उपन्यासको एक नया मोड़ दियाहै प्राणिजीवनके यथार्थ एवं सशक्त अंकनके द्वारा।

[२]

औपन्यासिक परंपरा और सिद्धान्तको ध्यानमें रखते हुए अगर इस कृतिको पढ़ें तो लगेगा यह उपन्यास नहीं, बल्कि वानर-जातिके रहन-सहन, कार्य-कलाप, आदतों, प्रवृत्तियों और संघर्षपूर्ण जीवनका आंखों देखा लेखा-जोखा है।

यह कम महत्वपूर्ण नहीं कि वानर-जीवनको लेकर बुनी गयी कथा संस्कृतकी पंचतंत्री शैलीसे और रामायणी वानर-सेनाके मानवीकरणही नही, दैवीकरणके कारण उठनेवाली अविश्वसनीयतासे बिल्कुल हटकर है। क्योंकि न इसमें हितोपदेश है और न ही संदेशदायक आप्त वाक्य। यहाँ तो वानर जातिके ठेठ जंगल-जीवन को निकटसे, सूक्ष्मतासे, अनारोपित दृष्टि द्वारा देखा-भाला गयाहै। हाँ, इस कृतिके माध्यमसे यानी वानरों की प्रवृत्तियों व आदतोंके सर्वेक्षणसे आजतकके विकसित प्राणी सभ्य मनुष्यकी यदाकदा व्यक्त होनेवाली आदिम प्रवृत्तियों और आदतोंका वानरी आदतोंसे साम्य यदि कोई देखना चाहे तो वहभी झलक आताहै। संभवतः लेखकका परोक्ष लक्ष्य यहां यही रहाहो! पाश्चात्य दार्शनिक डार्विनके सिद्धान्तसे वह परिचित है तथा पुस्तकारंभके चौथे पृष्ठपर लेखक द्वारा रेखांकित वानर-चित्रके नीचे मराठीके इतिहासाचार्य वि. का. राजवाडे की उक्तिको भी संकेत रूपमें संदर्भित किया गयाहै, जिसका हिन्दीमें अर्थहै—मनुष्य पशुकोटिमें का प्राणी है और उसके निकटके सगे-संबंधी पशु वानर कहलातेहैं।

इस सचित्र (सभी रेखाचित्र उपन्यासकारने ही रचे हैं) उपन्यासमें लेखकने कहींभी खास टिप्पणी देतेहुए यह सिद्ध करनेका जाने-बूझे प्रयास नहीं किया कि वह वानर-जातिपर मानव-जातिका रूपक बांध रहाहै। कथामें न संवाद है न श्लिष्ट उक्तियां। फिरभी सजग पाठकको उक्त कृति पढ़ते समय वानरी प्रवृत्तियोंके जरिए मानव-प्रवृत्तियोंका परिचय और समर्थन प्रतीत होता चले तो यह कृतिकारकी विशिष्ट सफलताही मानी जानी चाहिये—न केवल प्राणियोंकी आंतरिक भाषाको तथा बाह्य हरकतोंको शब्द-बद्ध करनेकी विशिष्ट सफलता, प्रत्युत बीसवीं सदीकी समाप्तिके करीब पहुंचे हुए सभ्य सुसंस्कृत मानवकी कमजोरियोंपर अनारोपित व्यंग्य-विडंबन करनेकी प्रशंसनीय कुशलता भी मानी जानी चाहिये।

'सत्तांतर' शीर्षकभी अपनेमें प्रवृत्ति-द्योतक शब्द है। यहां कथावस्तुके आधारपर वानर-दलोंमें इसी बातपर संघर्ष पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहताहै कि कौन दलका अधिपति बने और अपनी सत्ता कायम करे। इसके लिए मौका देखकर गुरिल्ला हमले और मारामारीकी प्रक्रिया चलती रहतीहै। जिसकी लाठी उसीकी भैंसवाली उक्ति ही चरितार्थ होतीहै / विजयमें प्राप्त इनकी सत्तामें जो घटनाएं होतीहै, वे हैं दलकी संख्या बढ़ानेके लिए एक-दूसरेके दलके वानर-शावक चुराना या छीन लेना ताकि उनकी मांएं भी आजायें, अन्यथा वानरियोंको पटाना और गर्भित करना और इन्हीं कारणोंको लेकर युद्ध होना। आधिपत्यके बाद सत्तामें प्राप्त होतेहैं—गर्मी मिटाने व प्यास बुझानेको जंगलके ताल व नाले, बैठने व विश्वास करनेको सागौन, अगरू, बड़, पीपल जैसे विशाल वृक्ष, भूख मिटानेको आम, इमली, गूलर,

जामुन, कटहल जैसे फलदार पेड़, सेमल, पलाश, नीम, अमलतास, महुआ जैसे फूलदार पेड़ोंसे भरे सुगंधित बन-प्रांत, बांसोंके झुरमुट, वन्य पशु-पक्षियोंसे घिरे घने अरण्य।

इन अरण्योंमें वानर-दलोंके न सिर्फ आपसी संघर्ष होतेहैं बल्कि असावधानी व धोखेमें वानर हिंस्र प्राणियों के खुद शिकार होजातेहैं। ऐसी तीन-चार घटनाओंका जिक्र यहां हुआहै। जैसे जंगली कुत्तोंद्वारा बेथरी नामक वानरीकी हत्या, बाज पक्षी द्वारा वानर-शावकको पंजों से दबोचकर ले उड़ना और बसे नोंच-नोंचकर खाजाना, सांप द्वारा लालबुड्या नामक वानर नेताका डंसा जाना और उसका तड़प-तड़पकर मर जाना। प्रसंगवश एक रोमांचक घटना सोनमृगकी मृत्युकी भी दी गयीहै; यह मृग बाघ द्वारा पीछा किये जानेपर भागता-भागता ताल में कूद पड़ताहै जहां वह थका-हारा पस्त होकर मगर-मच्छका भोजन बन जाताहै।

उपन्यास-कथामें तीन वानर-टोलियों द्वारा एक-दूसरेको पराजित करने और सत्ता हथियानेकी घटनाएं दी गयीहैं। शुरूमें 'मुडा' नामक वानर-नेताकी टोलीका वर्णन है, इस टोलीमें सात वानरियां, चार नन्हें बच्चे, सवा-डेढ़ सालके तीन नर शिशु और उनसे कुछ बड़ी दो मादा शिशु हैं।

उक्त टोलीके पड़ौसमें 'लालबुड्या' नामक स्वामी की टोलीमें सात वानरियां और दो बच्चे हैं।

तीसरी टोली है 'मोगा' नामक नायककी। इसमें नायकको मिलाकर कुल छह नर वानर हैं, किसीका परिवार नहीं बनाहै। ये नालेके पारसे आतेहैं और मौका पाकर उक्त टोलियोंमें घुसपैठ करके उनसे जा भिड़तेहैं।

लेखकने एक जगह उल्लेख कियाहै कि दस-बारह लाख वर्ष पीछे अफ्रीकामें जनमा वानर-वंश यूरोपके रास्ते एशियामें आयाथा जो वर्तमान शताब्दितक यहां रह रहाहै। उसीका वंशज मुडा वानर मध्यभारतके एक विशाल जंगलमें टिकाहै। इसी दलकी दैनिक चर्या का वर्णन व आक्रांत या आक्रामक होनेकी दशामें हर-कतोंका सजीव एवं रोमांचकारी चित्रण पढ़ते हुए पाठक-मन जंगलमें स्थानांतरित होजाताहै। मुडाकी टोलीके साथ पड़ौसी लालबुड्याकी टोलीकी ठन जातीहै। इनके घावोंके निशानों, कान-पूंछ कटे होनेके चित्रोंसे स्पष्ट होताहै कि आपसी संघर्षोंसे ऐसी हालत इनकी हुईहै।

एक दिन लालबुड्या सांप काटेसे मर जाताहै, टोलियोंके वानरोंको पतातक नहीं चलता। अब मुडाका एकच्छत्र राज्य है, किंतु मोगाकी घुसपैठी टोली मौके-मौकेपर गोरिल्ला हमले करके भाग जातीहै और धैर्यपूर्वक मुडा के मरनेका इन्तजार करतीहै। अंततः बुरी तरहसे घायल मुडा पानीके किनारे मरा पाया जाताहै।

बस, अबतो मोगा दल द्वारा वानर-टोलीके परिवार जनोंकी ताबड़तोड़ हत्या शुरू होजातीहै, प्रलय-सी आ जातीहै वानर-वानरियों व उनके बच्चोंपर। वह बच्चों की हत्या कर देताहै और वानरियोंपर रौब जमा लेता है। धीरे-धीरे वानरियां मोगाको अपना स्वामी व टोली का राजा मान लेतीहैं। अब तो मुडा-टोलीकी 'तरणी-ताणी' नामक गर्भवती वानरी मोगाको पटानेका यत्न करतीहै, किंतु मोगा इसी टोलीकी 'काणी' वानरीके प्रति आसक्त है। इस प्रसंगपर लेखकका वानर-मनो-विज्ञानपर, लगता है, खासा अध्ययन है। बतौर बानगी देखिये—

"दोपहरको विश्राम करनेका नित्यका समय हुआ, फिरभी टोलीके तनावमें कमी नहीं आयी।

बाल-बच्चोंवाली वानरियां 'मोगा' (नये स्वामी) को टाल देतीं, उसके निकट न जातीं, उसकी तरफ देखतीतक नहीं थीं।

इसी बीच 'तरणी' (जो पहले दलपति 'मुडा' की पत्नी थी) उन्मत्त-सी हो गयी। पेटमें गर्भ है फिरभी उसमें वासना जागी। मोगाका ध्यान खींचनेके लिए उसकी तरफ कूल्हे करके पूंछको जमीनपर पटकती रही। सिर हिलाकर इशारे करती रही। ऐसेमें यदि मोगा उसके निकटतम होकर मैथुनकर लेता तो आगे होनेवाले तरणीके बच्चेका पता उसे चल जाता, तो क्या वह उसका सिर चबाकर मार न डालता। परन्तु तरणीकी इन चालोंको मोगाने कतई नजरअंदाज कर दिया। उसकी तरफ पीठ करके वह काणीकी ओर निहारता रहा।

दोपहरका विश्राम हुआ तो, पर अधूरा। मोगा झपकी लेकर जाग गया और बड़बड़ाता रहा, उससे तीस-पैंतीस फुट दूरके पेड़पर वानरियां भयाक्रांत हो गोला बनाकर बैठीथीं।

हल्की आवाजमें खुद-ब-खुद गुस्सेमें बड़बड़ाता उसे देख तरणी हौलेसे उठकर उसके पास आयी। उसकी पीठके बाल सहलानेके लिए झुकी, परन्तु मोगाने उसे

शरीरपर हाथही नहीं लगाने दिया । तरणीने अपनी जोरदार कोशिश जारी रखी, तब मुंहसे 'ऑ' करके मोगाने उसे धमकाया, फिर वह गप्प होकर दूर सरक गयी ।

उपन्यासमें संवाद-विहीनता है, फिरभी लगे कि वानरोंमें परस्पर बातें होतीहैं—प्यारकी, गुस्सेकी, भय की, आदेश देनेकी, इन्कार-स्वीकारकी, तो यह लेखकीय कौशल है कि उसने वानरों तथा अन्य जंगली पशु-पक्षियोंके हुप्प-हुप्प, बुभु:कार, खकर्र खक्, खकर्र खक्, खकर्र खक् कक्, चिर्रर्र-चिर्रर्र, चक्कु-चक्कु(रातका पंछी) बाँss (मृगकी) आँ, ची ची ची तथा भाषिक क्रियाएं देकरआह्वानात्मक, चेतावनी-सूचक, भयसूचक, क्रोधपरक,गर्वीली, उत्तेजक भाव-भंगिमाएं देकर ऐन्द्रीयताभी बनाये रखीहै ।

इसके अलावा यथावसर पेड़ों, लताओं, पक्षियोंके नामोंसे लेखककी बहुज्ञताभी प्रकट होतीहै। प्रकृति-चित्रण, कालछटा, घटनाएं हरकतें उपन्यासको रोचक एवं पठनीय बनातीहैं । मराठी भाषा अपने मराठा तेवरके साथ वस्तुको अनुकूल व प्रभावी रूप देतीहै ।

उपन्यासका कलेवर वानरों तथा अन्य वन्य प्राणियों के कारनामोंसे भरा-पूराहै—एक तूफानी स्थितिमें से गुजरता महसूस करताहै पाठक-मन । किन्तु उपसंहार अत्यन्त शान्त, प्रकृत, नव-सृजन व प्रकारांतरसे नयी सत्ताकी आशाका संचार करनेवाला बन पड़ाहै । सत्ता पानेकी हवस और उस कारण मारामारीमें सर्वनाश जैसी स्थिति आ चुकनेके बाद अकेली पड़ गयी 'थोटी' नामक वानरी अपने नवजात शिशुको पेटमें दुबकाये बैठी है । दोनों, मां व शिशु, पावस ऋतुकी नयी बूंदाबांदीमें प्रकृति-स्वरूपको और अपने जीवनकी भवितव्यताको निहार व अनुमान रहे होतेहैं ।

एक भेंटमें लेखकने मुझे बताया कि वह इसके दूसरे संस्करणमें एक खास संशोधन करनेजा रहेहैं । पहले जहां-जहां समय व दूरीके नाप-जोखके आधुनिक पैमाने (मिनट, घंटे, इंच, फुट, मीटर) अंकित हुएहैं, उनके स्थानपर आदिम पैमाने (घड़ी, पल, बालिश्त, हाथके नाप) देनेका संशोधन होगा, इससे वानर-युगकी आदिम अकृत्रिमता बनी रहेगी । सहीभी यही है ।

मराठी कथाकार डॉ. माडगूलकरकी मन:प्रकृति वस्तुत: नगर-मुक्त बाह्य प्रकृतिमें रमतीहै । उन्होंने मराठीमें अपनी नयी पुस्तक 'जंगलांतील दिवस' की भूमिकामें अपनी मन:प्रकृतिका हवाला देते हुए लिखाहै कि रिक्शा, बस, रेल, विमान आदि यांत्रिक गतिमें जीवन जड़ होगयाहै । कभी शरीरपर चाँदनी नहीं पड़ती, कभी पेड़ोंके पत्तोंकी सरसर नही सुननेमें आती, नालेमें नहाना नहीं होता, चित पड़े-पड़े तारों भरे आकाशको निहारता नहीं होपाता ।

फिरभी नगर-जीवनकी आपाधापीसे समय निकाल कर दूर-दूरकी यायावरी कीहै लेखकने—खासकर जंगली प्राणियोंके बीच गुजारेहैं दिन । ऐसी प्रबल रुचि ने ही 'सत्तांतर' नामक अद्वितीय औपन्यासिक कृतिकी रचना करायी । श्री माडगूलकरसे हुई बातचीतमें पाया कि वानर जातिपर उपन्यास-जैसी कृति मराठी भाषामें पहली बार आयीहै, संभवत: हिंदीमें भी वन्य प्राणियों पर ऐसे उपन्यासोंका अभावही है । यदि कोई है तो उसकी सूचना प्रसारित कीजाये । □

वाचक परिवार

□ उत्कृष्ट और चुनी हुई पुस्तकें वाचकों एवं पाठकों तक न्यूनतम मूल्योंमें पहुंचानेके लिए 'वाचक परिवार' का गठन कियाजा रहाहै ।

□ विस्तृत जानकारी शीघ्रही प्रचारित कीजायेगी और 'वाचक परिवार' की सदस्यताके लिए आपको आमन्त्रित किया जायेगा ।

संयोजक
'वाचक परिवार'

निर्वासन और विभाजनकी पीड़ा

कृति : अंधो दूंहो

कवि : डॉ. अर्जुन शाद

समीक्षक : (१) प्रा. जगदीश लछाणी
चांदबाई मनसुखाणी कालेज, उल्हासनगर
(२) डॉ. मोतीलाल जोतवाणी
प्राध्यापक सिंधी विभाग
देशबन्धु कालेज (सायं), नयी दिल्ली

डॉ. अर्जुन शादकी काव्य-कृति 'अंधो-दूंहों' तीन खण्डोंमें विभाजितहै। पहले खण्डमें 'अंधों दूंहो' लम्बी कविता है, शेष दो खण्डोंमें गजलें और कुछ फुटकर कविताएं हैं। प्रारंभिक लंबी कविता, जिसने इस कृतिका आधा हिस्सा घेर रखाहै, विशेष प्रभावित करताहै। इसे पढ़ते समय ऐसा अनुभव होताहै, जैसे यह रचना हमारीही हो। अर्थात् कविका दर्द सबका बन गयाहै। इस रचना की यही विशेषता और सफलता है। किसी विशिष्ट रचनाका निर्माण रचयिताकी आंतरिकतामें से प्रायः एक विस्फोटके रूपमें होताहै, किन्तु विस्फोटभी तो एक लम्बी प्रक्रियामें से गुजरनेके बाद होताहै। रचना व्यक्तिगत अनुभूतियोंको मानवीय अनुभूतियोंतक पहुंचानेकी प्रक्रियाहै और इस प्रकार जहाँसे उसका प्रारंभ होताहै—अन्तभी प्रायः वहींपर होजाताहै। अर्थात् रचनाकारकी व्यक्तिगत अनुभूति, रचनाके रूपमें एक सामान्य अनुभूति बनकर प्रस्तुत होतीहै। कला-बुद्धि-सापेक्ष न होकर अनुभूति-सापेक्ष है, इसलिए कलाकार का संघर्ष अपनी अनुभूतियोंको उसी रूपमें प्रस्तुत करने का संघर्ष होताहै, जिस रूपमें उसे अनुभूति हुईहै अथवा हो रहीहै। इस प्रक्रियाके माध्यमसे रचनाकार अपनी अनुभूतियोंको दूसरोंतक प्रायः उसी रूपमें पहुंचाना चाहताहै। यहीं शास्त्रीय साधारणीकरणके सिद्धान्तकी सार्थकता सिद्ध होतीहै।

यह कविता देश-निर्वासित जातिकी भावनाओंको आधार बनाकर रची गयीहै। कवि निर्वासित प्राणीकी अतल गहराइयोंमें उतरकर, उसके दर्दको गहराईके साथ पकड़ताहै। कविताका 'मैं' देश-निर्वासित प्राणी 'सिन्धी' होते हुएभी कविकी सजगता एवं सतर्कताके कारण, किसीभी निर्वासित-जातिका और व्यक्तिका प्रतिनिधित्व करनेमें सफल होगयाहै। निर्वासित जातिकी त्रासदीको कविने 'मैं' पात्रके माध्यमसे वाणी दीहै। कवितामें 'सिन्धीत्व' पर बल न देकर, उस स्थितिपर बल दिया गयाहै, जिस स्थितिके कारण व्यक्तिको अपने देशसे अलग किया जाताहै। कविको खुदभी निर्वासनकी पीड़ा सहनी पड़ीहै, लेकिन कविने इस पीड़ाको एक संकुचित स्तरपर न लेकर विश्व-स्तर पर लियाहै। इसी सार्वजनिक पीड़ाके कारणही विभाजन की पीड़ा केवल 'सिन्धीयों' तक ही सीमित न रह, किसीभी निर्वासित जातिकी पीड़ा बन गयीहै। यह व्यापक भाव-स्थिति है :

> न जमीनपर टिकाहूं
> और न हवामें लटका हुआ
> हूंभी, या हूंभी नहीं
> मेरी हस्ती क्या है
> न तसव्वुफ़ और न वेदांत
> कोई साथ नही देता मेरा
> इतिहासने तो मानो
> पांच हज़ार वर्षोंके परिवर्तनका
> सबसे बड़ा शिकार
> मुझेही बनायाहै

अपनी जन्मभूमिसे उखड़ जानेसे कविको भय है कि कहीं हमारा साहित्य, हमारी भाषाभी हमसे न छूट जाये।

देश विभाजनके दर्दसे पीडित कविका अन्दाज़े-बयां भावुक हो उठाहै, परन्तु इस भावुकतामें भी सूक्ष्मता एवं गहराई है :

> वियोग

एक ऐसा दर्दहै
जो दिखायी न देते हुएभी
कभी-कभी ऐसा दिखायी देताहै
कि मानवको यह अनुभूति होने लगतीहै
कि यह दर्द
कैसीभी खुशीका मफ़हूम
क्षत-विक्षतकर देताहै

कवि अपने हृदयकी शून्यतासे परिचित है और अपनी इस हीनताको छिपानेके लिए अपनी भौतिक सुख-सुविधाओंको प्रकट करताहै, फिरभी अपने को शून्यतासे बचा नहीं पाता—

मैंने कई बार अपनी हस्तीके लिए
खुद अपने आपको विश्वास देनेके लिए
अपनी उपलब्धियोंका प्रदर्शन कियाहै
पर मन खोखला है मेरा
वहभी क्या हस्ती
जो विश्वके नक्शेपर
किसीभी जगह
अपना परिचय नहीं पासकती
अपनी तस्वीरको
दूसरोंकी तस्वीरपर लगानेसे क्या होगा ?

'मैं' पात्रको सांसारिक उपलब्धियोंके बावजूद चारों ओर शून्यताही दिखायी देतीहै :

दर्पणमें देखताहूं
मेरी उपलब्धियोंके बावजूद
मुझे शून्यताही दिखायी देतीहै
इस शून्यताको पाकर
मुझे ऐसा लगताहै
कि मैं 'मैं' नहीं रह गयाहूं
और मेरे स्थानपर
मेरे सामने है
एक निर्जीव परछाईं
जिसका परिचय
खुद मुझे नहीं मिल रहाहै
मैं उस दर्पणको
टुकड़ा-टुकड़ाकर के
फेंकही देताहूं.

कवि भूमिहीनताके कारण अपना अभिज्ञान भी खोताजा रहाहै ।

देश विभाजन अभिशाप बनकर हमारे सामने आया हैं और यह अभिशाप उन तमाम लोगोंकी पीड़ा बन गयाहै, जिन्हें इस स्थितिसे गुजरना पड़ाहै :

मेरा आत्माओंके भटकनेमें विश्वास नहीं
पर आज मुझे अनुभव होने लगाहै
कि आत्माएं होतीहै
और एक मेरी आत्मा है
जो हर तरफ भटक रहीहै
और शायद हमेशा भटकती रहेगी······
······ ······ ······
अभी मैं अपने आपसे दूर
कोईभी दुनियां देखनेके लिए
तैयार नही
क्योंकि ऐसा करनेसे
मैं अपनी आयुकी
अवधि तो पूरीकर सकताहूं
वह है मेरी शारीरिक अवस्था
जिसे दूसरा जन्म कभी मिलेगा नहीं
दूसरा जन्म मिलेगा कैसा ?
आत्माको दूसरा जन्म धारण करनेके लिए
बाह्य आकार तो चाहियेही
मेरे बाह्य शरीरका आकार
होगाही नहीं
तो आत्माका प्रवेश किसमें होगा ?

भाव गहनताके कारणही कवि अपनी रचनामें विभाजनके दर्दको साकार करनेमें सफल हुआहै और कविकी भावुक अभिव्यक्ति चुभीला प्रभाव उत्पन्न करने में सफल हुईहै और काव्य-कृति हृदयकी अतल गहराईयोंमें उतर जातीहै । यह सही है कि कवि इस खण्ड काव्यका निर्माण करते समय अत्यन्त भावुक हो उठाहै, फिरभी उसने 'कला' का पल्लव कभी नहीं छोड़ा। अपनी कलात्मक अभिव्यक्तिके कारण यह काव्य-कृति भाव एवं कलाका एक सुन्दर संगम बन पायीहै :

ज़मीनका विभाजन करना आसान है,
पर हृदयका विभाजन करनेसे
विद्युत्का कहर ढा सकताहै,
यह जो जलावतनी है
उसमें वतन तो दूर रहा
इतिहास एवं संस्कृतिके हज़ारों वर्षोंकी
कल्पनाको भी मुझसे अलग किया गयाहै
मैं एक सियासी बेघर बनकर

कभी किसी राहपर,
तो कभी किसी राहपर भटकता रहताहूं
मालूम नहीं आखिर,
अन्जाम क्या होगा ?

और सचमुच रचनाकारने विभाजनकी इस भयावह घटनाके भीतर झांकाहै । यही कारण है कि रचनाकार विभाजनकी त्रासदीको दिल दहला देनेवाले शब्दोंमें बाणी दे पायाहै । विभाजनके इस दर्दको अन्य सिन्धी कवियोंने भी अभिव्यक्ति दीहै, पर, यह अभिव्यक्ति अतुलनीय है, भावुकताकी तीव्र धारामें बहते हुएभी कविने बौद्धिकता एवं विचार पक्षका त्याग नहीं किया है । कवि भाव, विचार एवं शैलीके प्रति सजग रहाहै । यह सजगताही इस काव्य कृतिको कलात्मक पदपर पहुंचातीहै ।

डॉ. अर्जुन शाद सिन्धीके महान ग़ज़ल-गो शायरोंमें प्रमुख स्थान रखतेहैं । वैयक्तिकता एवं संगीतात्मकता इनके ग़ज़लोंमी मुख्य विशेषताएं हैं योंभी ग़ज़लको वैयक्तिक भावनाओंकी अभिव्यक्तिका साधनतो बनाया ही जाताहै । इसलिए कविने इन्हें सामाजिक दस्तावेज़ बनानेसे परहेज़ कियाहै । प्रत्येक कविकी रचनाओंमें कोई न कोई दर्शन तो अवश्य छिपा रहताहै, लेकिन कबि दर्शनको कभी हावी नहीं होने देता । डॉ. अर्जुन शादने अपनी ग़ज़लोंको प्रगतिशील भावनाओंकी अभिव्यक्तिका साधन अवश्य बनायाहै लेकिन बड़े कलात्मक ढंगसे…

हदसे गुजरता है जब सितमका तूफान
तेज रफ्तारसे आताहै, शरारोंका कदम ।

डॉ. शाद ऐसे ग़ज़लगो शायर नहीं हैं जो दुःखको देखना न चाहतेहों, दुःखको वे जीवनका एक अभिन्न अंग मानतेहैं । बावजूद इसके कविने कभी निराशाका पल्लव नहीं पकड़ा :

ग़मभी एक ज़हर है, मयभी ज़हर
ज़हरको ज़हरसे ही मिटाताहूं मैं ।

— — —

दिलमें है मेरे 'शाद' हसीन सूरतोंका निवास
मैं कैसे कहूं कि मेरा मुकद्दर ग़रीब है ।

ग़ज़ल उनके मनका दर्पण है और भावनाओंकी तरह हृदयस्पर्शीभी । □

[२]

अंधों दूंहो (अंधा धुआं) में एक लंबी कविता, कुछ ग़ज़लें और नयी कविताएं संगृहीत हैं । शादकी गज़लें और नयी कविताएं साधारण कोटिकी हैं । उनमें सिंधी कवि एम. कमलकी ग़ज़लों और वासुदेव मोहीकी नयी कविताओंका नया दम-ख़म नहीं है । उनकी लंबी कविता 'अंधों दूंहो' में ऐसा क्या है जो विशिष्ट कहा जा सकताहैं, साधारण नहीं ?

द्वितीय विश्व युद्धके परिणामस्वरूप जर्मनीके दो भाग होगये । उसके पश्चात् कई देशोंके बटवारे हुए, जिनमें वीयतनाम और कोरिया आजातेहैं : हमारे देशका बटवाराभी हुआ, जिसके कारण समूचा सिंध पाकिस्तान का हिस्सा बन गया । जो सिंधी हिंदू लोग स्वतन्त्र भारतमें आबसे, वे इतिहासकी इस क्रूरताको नहीं भुला पायेहैं । सिंधकी भूमि तसव्वुफ़ (सूफ़ीवाद) और वेदांत की भूमि रहीहै । इतिहासका यह क्रूर विरोधाभास देखिये कि वही भूमि राजनीतिका सबसे बड़ा शिकार बनी ! शाद कहतेहैं :

न तसव्वुफ़, न वेदांत
कोई साथ नहीं देता
इतिहासने मानो
पांच हज़ार वर्षके परिवर्तनोंका
सबसे बड़ा शिकार
मुझे बनायाहै ।

और भारतमें आकर ये सिंधी-लोग अलग-अलग प्रांतोंमें आकर बसेहैं और भाषिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दबावोंमें आकर उन अलग-अलग प्रांतोंके होतेजा रहेहैं । उनकी अपनी अलग पहचान कम होतीजा रहीहै । कवि को लगताहै—

समयका फेर है
मैं इतिहासके रॉकेटसे छूटकर
आ पड़ा हूं अलग-अलग द्वीपोंपर
जहाँ
चारों ओर
काले समंदरके अजगर
अपनी जीभें
कारतूसोंकी आगकी तरह निकालकर खड़े हैं
मेरी हर सांस
हर लम्हा
बिजलीके खुले तारोंमें जकड़ी जाकर

[शेष पृष्ठ ८१ पर]

उत्तरांचलीय भाषाएं

- डोगरी
- पंजाबी

मानवीय अनुभूतियोंके तरल चित्र

कृति : 'आले'

कृतिकार : वेद राही

समीक्षक : डॉ. अशोक जेरथ
कार्यक्रम अधिकारी,
आकाशवाणी, जम्मू.

नौ कहानियोंका यह संग्रह भिन्न-भिन्न कथानकोंके धरातलोंपर टिके विभिन्न सोचके टुकड़ोंको समन्वितकर एक सांझा खाका प्रस्तुत करताहै। अकेलेपनका अहसास और उसकी पहचानसे उठनेवाली वेदनाके शब्दचित्रसे लेकर बेरोजगारीकी क्षुब्धता और शख्सी हुकूमतकी नींव तले दबी दीनोंकी संवेदनाओंके सूक्ष्मचित्र इस संग्रह में संकलित हैं।

अधिकतर कहानियां पत्रिकाओंमें प्रकाशित कहानियां हैं जिनको हम ताजा कहानियाँ नहीं कह सकते। विशेषकर डोगरी पाठकके लिए यह कहानी संकलन कुछ नया नहीं देपाता। 'पाला पवा करदा हा', 'फहें दा बूट' और 'चौं पैरें आली लोथ' आदि कहानियां तो हिन्दी पत्रिकाओंमें भी प्रकाशित हो चुकीहै। इस कहानी संग्रह का महत्त्व इतना अवश्य है कि वेद राहीकी श्रेष्ठ रचनाएं एकही संग्रहमें संकलित हैं।

'आले', 'मौत' और टैह्लन मानवीय अनुभूतियोंका वह सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करतीहैं जिसे देखकर संवेदनाएं तरल होकर बहने लगतीहैं। अकेलेपनके अहसाससे जुड़ी मजबूरियोंसे घिरी 'आले' की बुढ़िया और 'टैह्लन' की धन्नी एकही मानसिकताके दो अलग-अलग चरित्र हैं। दोनों उस समयतक अपने अस्तित्वको सम्भालेहैं जब तक उन्हें अपने होनेका अहसास नहीं होता। और जब यह अहसास उनके मनमें जाग जाताहै तो दोनोंही टूट जातीहैं। आलेकी बुढ़िया अकेले मकानों, दीवारों, छतों को अपना साथी मानकर जीती रहतीहै पर जब उसे इस बातका अहसास होताहै कि ये गलियां, बंद दरवाजे, खामोश दीवारें उसकी साथी कैसे हो सकतीहैं तो वह टूट जातीहै। तो दूसरी ओर 'टैह्लन' के तौरपर काम करती धन्नी राजाके दरबारमें गोलीके तौरपर आयीथी। राजा-रानियोंकी हुकूमत समाप्त होगयी। राजे-रजवाड़े महलोंको छोड़ गये, पर धन्नी उन महलों को नहीं छोड़ सकी। उसे राजाके साथ रहनेका सुख तो प्राप्त नहीं हुआ पर महलोंमें रहनेके सुखको वह समेटे रही। उसी सुखमें वह सन्तुष्ट थी। पर, जब राजकुमार की मृत्युपर दूसरी औरतें उसके पास अफसोस करने आयीं तो उसे अपने होनेका अहसास हुआ। 'मौत' राजनीतिक धरातलपर देशके टूटनेसे उठनेवाली विभीषिकाओंके मानवीय रिश्तोंपर प्रभावकी कहानी है तो 'मुड़दा आसन' नगरीय जीवनके अलगावकी ऐसी कथा है जहां एक व्यक्तिको दूसरेके साथ कोई सरोकार नहीं। मानवीय रिश्ते सहज संज्ञाएं हैं उनके सेतु टूट चुकेहै। इसीलिए 'उच्ची डाली दा अम्ब' कहानीभी नगरीय परिवेशकी ओर संकेत करतीहै।

'चौं पैरें आली लोथ' ड्रामाई अन्दाज़में लिखी गयी ऐसी कहानी है जो चरम स्थितिमें भी व्यक्तिके सही चयनकी ओर संकेत करती हुई अस्तित्वकी स्थापनाकी बात कहतीहै। मित्तरु अपनी दुलहनसे मिलनेकी बेचैनी को किसीभी प्रकार रोक न सका और एक ट्रकपर चढ़ गया जिसमें एक लाश बटोटसे जम्मू ले जायीजा रही है। लाश ढकी है। सर्दी बहुत पड़ रहीहै। मित्तरुके लिए दो ही उपाय हैं कि यातो लाशके साथ साझेमें लिहाफको बांट ले या बर्फ हो जाये। जीवनके लिए उसने पहला उपाय अपनाया और जम्मू पहुंच गया।

लगभग सभी कहानियोंमें सहज प्रवाहकी झलक हमें मिलतीहै। बनावटीपन अथवा अतिनाटकीय स्थितियों को नकारा गयाहै और जहां नाटकीयता हैभी तो वह कहानीकी रवानगीके लिए बहुत जरूरी है। कथानककी रवानीमें सहज करवटकी ओर संकेत हैं।

'आले' की संगृहीत कहानियोंके स्त्री पात्र सशक्त और संवेदितकर देनेवाले हैं। उन्हें बहुत सूक्ष्मताके साथ

चित्रित किया गयाहै। 'आले' की बूढ़ी "टैह्लन' की धन्नी और 'उच्ची डाली दा अम्ब' की छल्लो तीनोंही अपनी-अपनी कहानियोंके केन्द्रीय पात्र हैं पर तीनोंही सहज और सरल हैं, व्यथित हैं और अपने परिवेशकी छटपटाहटसे घिरी हैं। पुरुष पात्रोंमें 'पाला पवा करदा हा' का 'दौलू' 'मौत' में भाईका चरित्र और 'चौं पैरें आली लोथ' में मित्तरु सशक्त पात्र कहेजा सकतेहैं।

इस संग्रहकी तीन कहानियों—'आले', 'टैह्लन' और 'चौं पैरें आली लोथ' शिल्पके हिसाबसे सशक्त कहानियाँ कहीजा सकतीहैं—पर तीनों कहानियां वर्षों पहले लिखी गयीथीं—विशेषकर प्रथम दो कहानियोंको तो पिछले दशकमें रखाजा सकताहै। पूछाजा सकताहै क्या वेद राही कहानीमें चुक गयेहैं या कहानी उनमें चुक गयीहै। इन नौ कहानियोंको किसी विशेष उद्देश्य से संकलितकर प्रकाशित किया गयाहै—रचनाधर्मिता की कसौटीकी ओर यह संग्रह संकेत नही करता। गत बीस वर्षोंमें लिखी गयी ये रचनाएं वर्तमान मानसिकता के परिप्रेक्ष्यमें कहांतक लीजा सकतीहैं? इस संग्रहकी नवीनतम रचना 'चौं पैरें आली लोथ' भी लगभग पांच वर्ष पूर्व लिखी गयीथी, जो केवल शिल्पका एक नमूना है, कथ्य उसमें पूरी तरह उभर नही पाया। इन रचनाओंको १९८२ में संगृहीतकर प्रकाशित करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी? वह भी डोगरीमें जबकि डोगरी पाठक इन सभी रचनाओंसे पहलेसे परिचित था। आवश्यकता थी वेद राहीकी नवीनतम रचनाओंके संकलन की—यातो वे लिखी नहीं गयीं या इस योग्य नहीं थीं कि उन्हें संकलितकर पुस्तक रूपमें सामने लाया जाता। पुरानी रचनाओंमें जोना चुक गये रचनाकारकी मानसिकताकी ओर संकेत करताहै।

पुस्तककी भूमिकामें रचनाकारने डोगरी कहानी यात्राका संकेत देते हुए अपनी रचना-प्रक्रियाका परिचय दियाहै। कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे भी उठाये गयेहैं कि डोगरी भाषामें छपी पहलेकी कुछेक कहानियाँ कहानी-विधासे काफी दूर हैं—उन्हें कहानी कहाजा सकताहै कि नहीं? रचनाकारने अपनी भूमिकामें ही अपने कहानी-संकलन 'काले हत्थ' को प्रथम कहानी संकलनके तौरपर प्रतिष्ठापित करनेका प्रयास कियाहै यह कहकर कि उस संग्रहसे पहले दो संग्रह अनगढ़, शिल्प और कहानी शैली से दूर मात्र सीधी-सादी बातोंका सिलसिला है। यह सच है कि शुरू-शुरूमें डोगरीकी कहानियां लोक-कथाओं की ओर संकेत करतीहैं—कई तो घटनाएं मात्र हैं, किन्तु क्या उनकी ऐतिहासिकताको भुलायाजा सकताहै? किसीभी साहित्यके आरम्भिक इतिहासमें कहानीका वह रूप हमें नहीं मिलता जिसकी अपेक्षा बादमें आनेवाले आलोचकों और रचनाकारोंको रहतीहै। कहानीका तो हर भाषाके साहित्यमें क्रमिक विकास हुआहै। इन रचनाओंको यह कहकर नकारा नहीं जा सकता कि इनमें साहित्यिक तत्त्वोंका अभाव है।

डोगरी भाषाके साहित्यमें प्रकाशित पुस्तकोंमें इस पुस्तकका 'गेटअप' पुस्तक-प्रकाशनके समयतक सर्वश्रेष्ठ कहाजा सकताहै। 'आले' नामको चरितार्थ करता बुढ़ियाका चित्र बहुत सटीक और आकर्षक है 'ब्लैक और व्हाईट' में छपा कवर पुस्तकके 'गेटअप' को सुन्दर बना गयाहै। ☐

[पृष्ठ ७८ का शेष]

इलेक्ट्रिक शाकसे घिरकर रह गयीहै
एक जिस्मके कई हिस्से
सभी जिंदा हैं—चेहरेके सिवा।

दरअसल, आजकल कई राष्ट्रों (Nations) की अलग-अलग राष्ट्रीयताएं (Nationalitles) अपनी अलग-अलग पहचान करानेमें लगीहैं। एकही राष्ट्रके अन्दर ये राष्ट्रीयताएं अस्मिताके लिए छटपटा रहीहैं। व्यक्तिके स्तरपर ही नही, राष्ट्रीयताके स्तरपर भी अलगावकी भावना क्यों बढ़ रहीहै। कवि शादको अलगावका अनुभव होरहाहै। परन्तु क्यों हो रहाहै? इसका उत्तर उनके पास नहीं है। क्या एक राष्ट्रकी छत्रछायामें रहकर ये राष्ट्रीयताएं विकास नहीं पा सकतीं?

पुस्तकके आवरणपर सिंधी-कवि वफाकी सम्मति प्रकाशित है, जिसमें लिखा गयाहै 'अंधो दूंहो' में खंडकाव्यकी विशेषताएं हैं, जो सिंधी-काव्यको शादकी देन है। इसमें उन्होंने बटवारेकी महान् त्रासदीके हृदय-विदारक भाव और विचार प्रस्तुत कियेहैं।' ढाई सौ से कम पंक्तियोंमें लिखी हुई यह लंबी कविता, जिसमें अंतर्यात्राका विभाव-हीन वर्णन हुआहै, खंडकाव्य कैसे हुई? ☐

आध्यात्मिक आदर्शवादका काव्य

कृति : 'अनिक विस्थार'

कवि : प्रीतमसिंह सफीर

समीक्षक : डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी
गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय
अमृतसर.

प्रीतमसिंह सफीर पंजाबी जगत्में महत्त्वपूर्ण एवं माननीय हस्ताक्षर हैं। आधुनिक पंजाबी काव्यकी समृद्ध विरासत इनके काव्यमें प्रवाहित है, जिसका सादृश्य अन्यत्र दुर्लभ है। यह परम्परा पंजाबी कवितामें भाई वीरसिंह एवं प्रो. पूर्णसिंह जैसे महाकवियोंसे प्रारम्भ होतीहै, परन्तु सफीरकी काव्योपलब्धि इसका शिखर-बिन्दु है। प्रो. पूर्णसिंहने 'खुल्ले मैदान' और 'असमानी रंग' कविताओंमें ऐसे निजी और कलात्मक अनुभवके द्वारा अपने अनुभवोंको व्यक्त किया कि पंजाबी कविताका नया रंग-रूप निखर आया। इस धाराके समानांतर प्रो. मोहनसिंहकी प्रगतिशील काव्य-धाराभी गतिशील थी, दोनों धाराओंका समानांतर अध्ययन पंजाबी कविताकी ऐतिहासिक पीठिकाको नये संदर्भोंमें प्रस्तुत करताहै। इस प्रस्तुतीकरणमें 'सफीर' बावा बलवन्त, ईश्वर चित्रकार, पंजाबीके नये काव्य स्वरोंको रुमानियतके द्वारा प्रस्तुत न कर उच्च आध्यात्मिक अनुभवोंके द्वारा प्रस्तुत करतेहैं। पंजाबी कविताका यह दौर वास्तवमें नये आधुनिकता-बोधका परिचायक है। आधुनिकीकरणकी प्रक्रिया आतंक, संत्रास और घुटनके साथ अकेले आदमीकी मानसिक पीड़ाओंका चित्रणभी करतीहै, इस चित्रणका पहला सजग उदाहरण जसवन्तसिंह नेकी तथा हरिभजनसिंहकी कविताओंमें विद्यमान है।

प्रीतमसिंह सफीर, पंजाबी काव्य-परम्पराको अपने कई काव्य-संग्रहों द्वारा गत्यात्मक बनातेहैं। इनका ब्योरा इस प्रकार है: १. कत्तक कूंजा [१९४१] २. पाप दे सोहले [१९४३] ३. राग रिशमा [१९४६] ४. रक्त बूंदा [१९४६] ५. आदि जुगादि [१९५८] ६. सरब कला [१९६६] ७. अदार अपूर [ ] ८. अगम अगोचर [१९८१] ९. अनिक विस्थार [१९८३]

प्रीतमसिंह सफीरको आधुनिक पंजाबीका रहस्यवादी कवि माना जाताहै। वे अपने रहस्यवादी कवि अनुभवको दर्शन और धर्मकी पृष्ठभूमिमें निर्मित करतेहैं। डॉ. प्रेमप्रकाशसिंहने ऐसे अनुभवको बौद्धिक रहस्यवाद कहाहै।"१ भाई वीरसिंहकी तरह सफीरकी कविताका रहस्यवादी स्रोतभी गुरबाणी है। परन्तु भाई वीरसिंह की कवितासे सफीरकी कवितामें कुछ बुनियादी अन्तर हैं। जहां भाई वीरसिंह गुरवाणीका आश्रय केवल दृष्टांत जुटानेके लिए लेतेहैं। वहां सफीर कविताकी दार्शनिक पृष्ठभूमिके लिए 'गुरवाणी वेचार' का सहारा लेतेहैं। कलाकी दृष्टिसे भी अन्तर कियाजा सकताहै। भाई वीरसिंहकी समास शैली है परन्तु सफीरकी व्यास शैली है। सफीरकी कविता भौतिक मूल्योंसे जुड़कर भी अलौकिक मूल्योंकी विषयगत पहचान करातीहै। यह पहचान तथ्यात्मक होते हुएभी व्यक्ति और समाजसे ऊपर उठकर उन मूल्योंको रेखांकित करतीहै जो भारतीय जन मानसमें शताब्दियोंसे पैठी हुईहै। इस कथनको सफीरकी प्रारम्भिक काव्य-कृतियोंसे संपुष्ट कियाजा सकताहै। सफीर आजके द्वन्द्वात्मक जीवनकी कटु सच्चाइयोंको मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक अनुभवोंके द्वारा अभिव्यक्त करतेहैं। इस अभिव्यक्तिकी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है 'अनिक विस्थार'।

'अनिक विस्थार' पर कवि प्रीतमसिंह सफीरको १९८३ के साहित्य अकादमी पुरस्कारके साथ यह कृति अन्य काव्य गुणोंके कारण प्रतिष्ठाकी हकदार है। प्रस्तुत कृतिमें ४८ कविताएं संकलित हैं। यह कविकी प्रतिनिधि कृति है। प्रस्तुत कृतिमें नये काव्य अनुभव हैं, साथही कविके मनचाहे विषयभी हैं। समकालीन पंजाबी कविता के लिए यह काव्य-कृति चुनौती है। आजके युगमें

कविताकी क्या जरूरत है ? क्या कविता केवल शब्दोंका खिलवाड़ मात्र है या यह कविता जीवनकी गहराईमें उतरकर अपनी सक्रिय भूमिका निभातीहै; या यूंही भोगे हुए क्षणोंकी जुगाली मात्र है। प्रीतमसिंह सफीरकी कविताओंमें से गुजरते हुए सजग पाठक इन प्रश्नोंका उत्तर सहजही प्राप्त कर लेताहै, क्योंकि कविताका संदेश तो अमर है 'जो कदे मुक्के ना/ओह बहार बनके आओ।'

कवि अनंत उल्लासके सागरमें उतरकर डूबती हुई लहरोंका सदाके लिए आत्मसात् कर लेना चाहताहै। वह इसी प्रकार जीवनके संघर्षमें भी लीन होकर जीवन की चुनौतीको स्वीकारकर लेना अपना परम लक्ष्य घोषितकर देताहै। सफीरकी कवितामें 'आदि-अनंत' संगीत है, अनहद नाद है, और कोटि ब्रह्माण्डोंकी छाया है। कविके ऐसे अनुभव वैज्ञानिक युगमें कहाँतक सार्थक हैं ? पाठकको अधिकार है कि वह प्रश्नचिह्न लगाये ? क्या विज्ञानने हमारी परम्परा और संस्कृतिको अलगा दियाहै ? या फिर हमही अपनी विरासतसे दूर गयेहैं। इन दोनों प्रश्नोंके केन्द्र-बिन्दु 'अनिक विस्थार' की काव्य संवेदना है। बहुतसे आलोचकोंने सफीरको नवीन कवि न कहकर परम्पराके प्रयोगके दोराहेपर खड़ा कवि कहा है। परन्तु 'अनिक विस्थार' की कविताएं इस कथनको झुठला देतीहैं। जैसे :

करोड़ खरब, करोड़ राह [पृ. १-]
समैं दी कजा समझो [पृ. ७१]

ऐसाभी नहीं है कि सफीर अपने आध्यात्मिक अनुभवोंसे बिछुड़ गयाहै बल्कि अपनी उसी दृष्टिको नये जीवन अनुभवोंमें सुसज्जितकर प्रस्तुत करताहै। सफीर की कवितामें रहस्यवादी अनुभव सहज ज्ञानके द्वारा प्रकट हुएहैं :

'रहे कायम शान फकीरी दी [पृ. ३७]
'चरणा दी छोह तो [पृ. २०]

१. प्रेमप्रकाशसिंह—'प्रीतमसिंह सफीर दा कवि लोक', जालंधर : न्यू बुक कम्पनी, १९६९, पृ. १५.

करतारसिंह दुग्गलने 'अनिक विस्थार' की भूमिका लिखते हुए कहाहै कि 'अभीतक सफीरकी कलममें वही पुराना जादू है। उसके बोलमें वही पुरानी खुश्बू है अभी तक उसका काव्य स्वर दिलकी गहराइयोंको छूनेवाला है।' कविताकी कितनी बड़ी शक्ति छुपीहै, श्री दुग्गलके उपर्युक्त शब्दोंमें।

'अनिक विस्थार' की कविताएं नये आध्यात्मिक क्षितिजोंको छूती हुई अपने महत्त्वको स्थापित करतीहैं। बहुतसे आलोचकोंका सफीरकी कविताके बारेमें यह कथन संगत प्रतीत नहीं होता कि सफीर एकही अनुभव को टुकड़ोंमें प्रस्तुत करतेहैं। इस दृष्टिसे प्रस्तुत रचनामें नये विषयोंको देखाजा सकताहै। 'अनिक विस्थार' की कविताएं आदमीकी पहचान, समाजकी समझ और अध्यात्म-प्राप्तिकी कविताएं हैं।

आधुनिक पंजाबी कविताके इतिहासमें प्रयोगवादके बाद सुखपाल वीरसिंह हसरत जैसे कवियोंने 'शक्तिवाद' का नारा दिया। डॉ. तारनसिंह तथा डॉ. सुरेन्द्रसिंह कोहली जैसे आलोचकोंने शक्तिवादके नारेको स्वीकार करते हुए पंजाबी कवितामें इस नये स्वरको खुशामदीद कहा। 'अनिक विस्थार' की कविताओंका विश्लेषणका विचार बेशक इस बिन्दुसे न किया जाये, फिरभी यह स्वर भिन्न रूपमें यहां मौजूद है। उदाहरणके लिए 'गुरु गोविन्दसिंह' के व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर लिखी गयी कविताएं 'आज की रात' में कविका यह कथन द्रष्टव्य है :

'हुण समां है/सुण सकां/हुकम दी आवाज फेर/सिर देयाँ/भरपूर इह अंज पियार तों/आओ सवामी/कलगीयां/शानां समेत/तड़पदी पई मेल नूं/दर दरदी भिखारी/अज दी रात।

सफीरकी कविता देशकालकी सीमाओंको लांघकर नये वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक क्षितिजोंके सीमाकंनकी परिधि है। सच तो यह है कि जागरूक कवि किस प्रकार विशाल गहन एवं सूक्ष्म अनुभवको परिवर्तितकर देशकाल की संभावनाओंके साथ सफलतापूर्वक निभाताहै। इस निर्वाहका प्रामाणिक उत्तर 'अनिक विस्थार' की कविताएं हैं। □

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार

कन्नड साहित्यके 'तीर्थरूप'

पुरस्कृत कृति : 'चिकवीर राजेन्द्र'

लेखक-परिचय : माधव पंडित

पुस्तक परिचय : डॉ. टी. आर. भट्ट

सामान्य व्यक्तिकी धारणा है कि वह नारकीय जीवन बितानेको बाध्य है, उससे मुक्तिका उपाय उसके पास नहीं है, वह विवश है। सामाजिक व्यवस्थाको प्रभावित करनेवाला बुद्धिजीवी उसकी सहायताकर सकता है! पर उसेभी जीवनकी इस विवशतासे मुक्ति का उपाय ढूंढ़नेसे पूर्व उसका एक सम्पूर्ण चित्र तैयार करना होताहै, उसके प्रत्यक्ष लक्षण अंकित और निर्धारित करने होतेहैं और यथासंभव कारणोंको खोजना होताहै। जहांतक नारकीयताके चित्र प्रस्तुत करनेका प्रश्न है, उसके अंकनमें कन्नड कहानीकार डॉ. मास्ति वकटेश अय्यंगारको बहुत अधिक सफलता मिलीहै। हाँ इस नारकीय स्थितिसे मुक्तिके लिए समाजको अभी कई मंजिलें तय करनीहैं।

इस कहानीकारको कन्नड़ पाठक 'श्रीनिवास' नामसे जानताहै। कहानीकारके मित्र उन्हें 'मास्ति' नामसे पुकारतेहैं। वे जीवनके ९३ वर्ष पारकर चुकेहैं और अबभी सक्रिय हैं और स्वस्थ हैं। उनकी धारणा है कि वे सौ वर्षतक जीवित रहेंगे और निरन्तर कार्यशील रहेंगे। उनके साथ, हमभी कामना करते हैं: **'जीव शरदः शताधिकम्।'** इस दीर्घायुष्यका आरम्भ अभावोंमें हुआथा और जन्म ६ जून १८९१ को कोलार जिलेके मास्ति खेड़में जिस परिवारमें हुआथा वह परिवार आर्थिक दृष्टिसे धीरे-धीरे अपनी सम्पत्ति खो रहाथा। बालक मास्तिका पालन-पोषण पहले दादाने किया फिर चाचाने। मैसूरमें छात्रकालमें मास्तिको बहुत कठिन समय बिताना पड़ा। इन स्कूली दिनोंमें प्रायः एक प्रकार से भिक्षावृत्तिसे भोजन मिलताथा। अभावसे संघर्ष करतेहुए भी मास्तिने अध्ययन जारी रखा और मद्रास प्रेजीडेंसी कालजसे मास्टर डिग्री अर्जित की और विश्वविद्यालयमें प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके बाद मैसूर लोक-सेवाकी परीक्षामें प्रथम स्थान प्राप्तकर प्रशासनिक सेवामें आगये। रियासती व्यवस्थामें लम्बे समय तक सेवा करनेके बादभी अन्ततः इन्हें १९४३ में त्याग-पत्र देकर अलग होजाना पड़ा। सेवा-कालमें भी वे निरंतर लिखते रहे। श्रीनिवास नामसे इनकी कहानियाँ नियमित रूपसे प्रकाशित होती रहीं। वस्तुतः इनकी मां प्यारसे श्रीनिवास नामसे पुकारतीथीं। इनकी पारिवारिक मातृभाषा तमिष थी, परन्तु कन्नड़ क्षेत्रमें बस जानेके कारण उन्होंने कन्नड़ भाषाको अपना लिया।

अभाव, छात्र-कालकी भिक्षा-वृत्तिके कारण जिस नारकीय जीवनमें से इन्हें निकलना पड़ा, उसीमें जन-जीवनके रूपका साक्षात्कारभी हुआ। जीवनसे अनुभूति मिली, उसके कारण संवेदनात्मक पृष्ठभूमि तैयार हुई, उसीको उन्मुक्त भावसे शब्द-चित्र प्रदान करते रहे। उनका स्वयं यह कहनाहै कि मेरा लेखन और जीवन-प्रवाह साथ-साथ आगे बढ़े हैं। मैंने सामान्य लोगोंको स्वयं जिस रूपमें देखा, उनकी अच्छाई-बुराईको जिस रूपमें जाना-पहचाना, उसी रूपमें उसे चित्रितकर दिया, इस संवेदनात्मक अनुभवने उनकी कहानियोंको गहराई प्रदान की और नया आयाम दिया। मानवताके प्रति गहरे लगावके कारण, वे सामान्य जनके दुःख-दर्दके साथ जुड़ सके, निस्सन्देह अपनी अनुभूत्यात्मक पृष्ठभूमिके कारण। यही सामान्य जन उनकी कहानियोंके पात्र बने क्योंकि उस वर्गसे उनका सहज लगाव है। कहानीकारके अपने शब्दोंमें वे उनके लिए अर्चनीय हैं।

श्रीनिवासकी प्रथम कहानी १९१४ में प्रकाशित हुई, प्रथम कहानी संग्रह १९२० में। इन कहानियोंने

वाचकोंको अभिभूतकर दिया, लेखनकी यह एकदम नयी शैली थी। इससे पहले कहानियोंके पात्र गगन-विहारी थे, उनका चित्रण अतिरंजित था, परन्तु मास्ति ने पात्र जनसाधारणके सामने उनकेही धरातलपर ला खड़े किये, जिनसे वे परिचित थे, जिनके दुःख-दर्द और नारकीय जीवनके स्वयं भागीदार थे, परिचित लकड़हारे थे, दही बेचनेवाले थे, वेश्याएं थीं। उन्हें प्रतीत हुआ कि वे कहानीके पात्र नहीं, जीवन्त मानव हैं उन्हींके रूप में कहानीमें उनकी प्राण-प्रतिष्ठा हुईहै। मास्ति उस युग के एकाकी व्यक्ति थे जिन्होंने कहानीको नया रूप, नया शिल्प प्रदान किया। यद्यपि कहानीकारका कहनाहै कि वे शिल्पकी चिन्ता नहीं करते, केवल कहानीका विषयही उसके रूपको निर्धारित करताहै।

कन्नड़ साहित्यके आलोचक एल. एस. शेषगिरि रावका विचार है: 'प्रतीत होताहै कि कन्नड़ कहानी लेखन मास्तिके आगमनकी प्रतीक्षामें था। इससे पूर्व कन्नड़ साहित्यमें केवल कविता और नाटकका साम्राज्य था। वे कन्नड़ साहित्यकी नवचेतनाके जनक हैं।'

इसी कारण मास्ति वेंकटेश अय्यंगारको कन्नड़ साहित्यका 'तीर्थरूप' कहा गयाहै।

मास्तिका सर्जन-क्षेत्र कहानीतक सीमित नहीं है। उन्होंने उपन्यास, नाटक, काव्य, आलोचना, जीवनी आदि विविध विधाओंमें लिखाहै। उनकी लगभग १२० रचनाएं हैं। इस विपुल साहित्यिक अवदानमें १७ कहानी-संग्रह, १७ काव्य-संकलन, १८ नाटक, ४ उपन्यासके अतिरिक्त आत्मकथा, जीवनियां, आलोचनाग्रन्थ तथा अंग्रेजीमें लिखित कृतियाँ सम्मिलित हैं। सबसे अधिक ध्यातव्य सूचना यह है कि वे आजभी कहानियाँ लिख रहेहैं, न उनके स्रोत सूखे हैं न वे चर्वित-चर्वण कर रहेहैं।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगारको **ज्ञानपीठ पुरस्कार** उनके **'चिकवीर राजेन्द्र'** उपन्यासपर प्रदान किया गया है। यह उपन्यास १९५६ में लिखा गयाथा, जबकि वे ६५ वर्षके थे। यह उनका दूसरा उपन्यास है (उपन्यास की डॉ. टी. आर. भट्ट लिखित परिचयात्मक समीक्षा आगे दी गयीहै)। उपन्यासकी कथा-वस्तु कोडगु क्षेत्र (उत्तर-भारतमें कुर्ग नामसे परिचित) से सम्बन्धित है। वस्तुतः यह केवल 'कोडगु' की ऐतिहासिक गाथा नहीं है, बल्कि १८ वीं शतीमें सम्पूर्ण देशमें राजनीतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक स्तरपर भारतीय और विदेशी तत्त्वों के बीच जो संघर्ष चल रहाथा, तथा भारतीय तत्त्वोंमें परस्पर जो आन्तरिक स्वार्थोंका जटिल संघर्ष छिड़ा हुआथा उसीका प्रतीक इस उपन्यासका क्षेत्रीय फलक है। इसमें एक व्यक्तिकी दुरवस्था, समाज और राजनीतिकी अधोगति और इतिहासकी अदम्य धारा साथ-साथ चित्रित कीगयीहैं। उन अनैतिक कृत्योंको उभारा गयाहै जिनसे समाजका विखण्डन हो गया। सम्भवतः यह उपन्यास आजकी विघटनात्मक प्रवृत्तियोंके मूल कारणोंका भी संकेत दे जाताहै।

कन्नड़ साहित्यके समीक्षकोंका विचार है कि 'चिकवीर राजेन्द्र' मास्तिकी सर्वश्रेष्ठ कृति नहीं है। मास्ति की कहानी-लेखनकी सर्वोच्च स्थितिको चुनौती नहीं दी जा सकती, उनके उपन्यास और उनकी कविताएं दोनों उस स्तरतक नहीं पहुंचते। यहभी माना जाताहै कि शिवराम कारन्त (१९७७ में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त) को मानवीय सम्बन्धों और मूल्योंको उद्घाटित करनेकी विशिष्टताके कारण कन्नड़ उपन्यासकारके रूपमें जो स्थान प्राप्त है, मास्तिके उपन्यास उस स्तरको नहीं छू पाते। मास्तिकी कविताओंकी तुलना तो पाण्डु रोग पीड़ित व्यक्तिसे कीगयीहै। उन समीक्षकोंका कहनाहै कि कन्नड़ काव्यधाराका नेतृत्व कुप्पळि वेंकटप्पगौड़ पुटप्पा (कुवेंपु) और दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे करतेहैं। दोनों ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कवि हैं। बेन्द्रे और मास्तिमें केवल एकही समानता है कि दोनों मूलतः कन्नड़ नहीं हैं। बेन्द्रेकी मातृ-भाषा मराठी थी, मास्ति की मातृभाषा तमिष है।

मास्तिने आत्म-मूल्यांकनभी कियाहै। उनका विश्वास है कि लिखनेके लिएही मेरा जन्म हुआहै'''मुझे लिखनाही होताहै। लिखना मेरा स्वभाव है, अनुभव करता रहताहूं लिखूं। लिखनेकी अन्तःप्रेरणा होतीहै, क्षमता जागृत होतीहै, लिखनेको बाध्य करतीहै। मैं लिखताहूं। '''मेरे भीतर कोई शक्ति है जो निरन्तर मेरा पथ प्रदर्शनकर रहीहै। तभी मैंने लिखा। ''अपनी अन्तःप्रेरणासे मैं परिचित नहीं था, इससे परिचित होनेमें नब्बे वर्ष लगे। तब एकाएक लगा कि यह मैं नहीं हूं जो लिख रहाहै अपितु मेरे भीतर बैठा कोई अन्यही है।'''मैं भगवद् विश्वासी हूं, इसलिए मैं निश्चित रूपसे जानताहूं कि वह सदा मुझे देख रहाहै। मैं कुछ नहीं करता, मैं तो केवल उसका माध्यम हूं। जो कुछ है सब भगवत्कृपा है। मेरी कामना है:

'सर्वे भवन्तु सुखिनः'

चिकवीर राजेन्द्र

[ऐतिहासिक उपन्यास]

उपन्यासकार : मास्ति वेंकटेश अय्यंगार
समीक्षक : डॉ. टी. आर. भट्ट

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास' आधुनिक कन्नड साहित्यके महान् कला-सर्जक हैं जो एक साथ सशक्त कवि, युगप्रवर्तक कथाकार, लोकप्रिय नाटककार, समर्थ निबंधकार, निष्ठावान् पत्रकार, आत्मचरित, जीवनीके विशिष्ट लेखक एवं वस्तुनिष्ठ आलोचक हैं। उनकी साहित्य यात्रा सन् १९२० में कहानीसे आरंभ हुई और आजभी लिख रहेहैं। उनकी समस्त रचनाओंकी संख्या १२० है।

जिस प्रकार उनकी कृतियाँ परिमाणकी दृष्टिसे अधिक हैं उसी प्रकार गुण और साहित्यिकताकी दृष्टिसे उत्कृष्ट हैं। कन्नडमें लिखनेपर भी वे समस्त भारतीयता का प्रतिनिधित्व करतेहैं। उनका समस्त जीवन और समस्त रचनाएं भारतीय आदर्श एवं संस्कृतिकी महत्ता को प्रस्फुरित करतीहैं। उनके चार उपन्यास हैं।

'चिकवीर राजेन्द्र' १९५६ में प्रकाशित हुआ, यह कन्नडका एक सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें कोडगु राज्यके अन्तिम सम्राट् चिकवीर राजेन्द्रके समय की विस्तारसे चर्चा है। चिकवीर राजेन्द्र उन्नीसवीं सदीके आरंभमें कोडगुके शासक थे। उस युगके कोडगु की परिस्थिति, जन-जीवन, शासन-पद्धति आदिका जीवंत चित्र लेखकने प्रस्तुत उपन्यासमें खींचाहै।

प्रस्तुत उपन्यास लेखकके परिपक्व अनुभवका रूप है, उसमें चारित्रिक प्रज्ञा है तथा कलात्मक चातुर्य है। राजनीतिके क्षेत्रमें जो उतार-चढ़ाव चित्रित हैं, वे केवल राजपरिवार तक सीमित नहीं, अपितु उस देश-कालकी जीवन-पद्धतिमें गोचर जनताके धर्म, रूढ़ि-विश्वास, आशा-आकांक्षाका भी परिचय देतेहैं। दीर्घ समय तक कोडगु स्वतंत्र राज्य था, जिसका वैभव अपार था, फिरभी इस राज्यके अंतिम सम्राट् चिकवीरके कालमें इसकी जो अवनति हुई वह अतुलनीय है। अंग्रेज भारतके एक-एक क्षेत्रको कम्पनी-शासनके अन्तर्गत विलीनकर रहेथे। इस विषम राजनीतिक वातावरणमें समस्त देशकी मानसिक स्थितिका विश्लेषण करनाही प्रस्तुत उपन्यासका ध्येय है। इस दृष्टिसे 'चिकवीर राजेन्द्र' का सांस्कृतिक महत्त्वभी है।

कोडगु (कर्नाटकका एक छोटा-सा क्षेत्र) नैसर्गिक सौन्दर्यका आगार है, तथा वीर लोगोंका प्रदेश है। दोड्डवीर राजेन्द्र शासन-कालमें कोडगुके पासके प्रदेश मैसूर, मंगलूर आंग्लोंके अधिकारमें थे। इस सम्राट्के अप्रतिम पराक्रम एवं प्रजा-प्रेमके कारण अंग्रेज असहाय बने रहे। दोड्डवीर राजेन्द्रने अपना उत्तराधिकार छोटे भाइयोंको न सौंपकर अपनी बेटी देवम्माको सौंपा। भाईकी मृत्युके कुछ दिन बाद लिंगराज देवम्माको सत्ता से हटाकर कोडगुका शासक बना (१८०१) और नौ साल तक शासन करता रहा। इसके शासन कालमें आँतरिक अस्थिरता बढ़ गयी। सन् १८२० में लिंगराज का पुत्र चिकवीर राजेन्द्र शासक बना, और राज्यकी आन्तरिक विषमता बढ़ने लगी। बाहर अंग्रेजोंसे शत्रुता और राज्यके भीतर अनेक प्रकारके विग्रह और कलह। राजाकी बहिनके पति चेन्नबसवय्याकी दृष्टिमें चिकवीर असमर्थ राजा है। चेन्नबसवय्या चाहताहै कि राज्य सत्ता उसकी पत्नी देवम्माको मिले। वह स्वयं सर्वाधिकारी बननेका स्वप्न देखताहै। अय्याजीका पुत्र वीरय्या वर्षोंसे अधिकारकी प्रतीक्षामें है। उसकी इच्छा है कि संन्यासी होकर भी शासन चलाऊं। दूसरी ओर लिंगराजकी प्रेयसी अपने पुत्र कुंटबसय्याको शासक बनानेके लिए प्रयत्नशील है।

सम्राट् चिकवीर अविवेकी है, अहंकारी है तथा असमर्थ राजा है, अधिकार-लोलुप है। अधिकारके मदमें वह किसीको आदर नहीं देता। प्रजा जनोंके हितकी चिन्ताभी नहीं करता। उसे अपनी रानी गौरम्माकी अपेक्षा प्रेयसीसे अधिक मोह है, उसीपर विश्वास है। इसीलिए रानीका अपमान करता रहताहै। वह अपने निष्ठावान् मंत्रियोंका विश्वासभी खो बैठताहै। विलासिताके कारण उसका स्वास्थ्यभी बिगड़ जाताहै। राजा और मंत्रियोंके सम्बन्ध टूट जातेहैं। राज्यकी नैतिक, धार्मिक स्थितिका पतन होताहै। इस प्रकार आंतरिक तथा बाह्य व्यवस्था बिगड़नेसे आंग्ल कम्पनीको हस्तक्षेपका अवसर मिल जाताहै। स्थिति विषम है, अंग्रेजोंका षडयंत्र जारी है। अन्तमें वह अंग्रेजोंसे टकराताहै जो उसे गद्दीसे उतारकर इंग्लैंड भेज देते हैं। इस राजनीतिक विस्फोट और इनके कारणोंका परिशीलनही उपन्यासकी मुख्य कथावस्तु है।

चिकवीरके निर्दय आचरणसे ही उपन्यासका आरम्भ होताहै। जब उसे यह जानकारी मिलतीहै कि चेन्नबसवय्या राजा बननेका स्वप्न देख रहाहै, तो बहिन को गृहबंधनमें रखने जाताहै। चारों ओर चिकवीरका विरोध होताहै। उसे सब ओर अपनी हारही हार गोचर होतीहै तो वह और क्रूर होजाताहै। बाहर अंग्रेजोंका षडयंत्र चलता रहताहै। वे राज्यको शक्तिसे छीनना नहीं चाहते। वे ऐसी स्थितिकी प्रतीक्षामें हैं जिससे सम्राट् स्वयं राज्य छोड़कर चला जाये।

चिकवीर मानसिक संतुलन खो बैठताहै। अपने मंत्री और बहनोई चेन्नबसवय्याकी हत्या करवाताहै जो बाल जीवनसे उसका साथी, विश्वासपात्र था। उसे किसीपर विश्वास नहीं रहा, वह अपनी दुरवस्थाको स्वयं निमन्त्रित करताहै और अन्तमें उसका पतन होताहै। कोडगु राज्य अंग्रेजोंके अधीन होजाताहै।

कथा-वस्तु विन्यासकी दृष्टिसे इस उपन्यासका महत्त्व है। कोडगुके पतनका मुख्य कारण स्वयं चिकवीर राजेन्द्र है, उसकी चरित्रहीनता और उसका नैतिक पतन है। यही उपन्यासका केन्द्र-बिन्दु है। उपन्यासमें आदिसे अन्ततक नाटकीयता है। इससे कथाकारकी वस्तुनिष्ठ कल्पनाशीलताका परिचय मिलताहै। चिकवीर राजाके अधःपतनको सूचित करनेवाली प्रत्येक घटना मुख्य घटनाके साथ घूमती चलतीहैं। विभिन्न घटनाओंके अंकनमें कलात्मकता है।

इसप्रकार यह विशिष्ट चारित्रिक उपन्यास है। घटनाएं छोटे-से क्षेत्रसे सम्बन्धित होनेपर भी समस्त देशका प्रतिनिधित्व करतीहैं। हमने अंग्रेजोंसे केवल राजनीतिक दासताही नहीं पायी, अपितु उनकी जीवन-पद्धतिभी अपनायी, जो दास-वृत्तिकी चरम सीमा है। इस छोटे-से क्षेत्रकी जीवन-पद्धति, विश्वास, संस्कृति आदिपर अंग्रेजी संस्कार पर्याप्त प्रबल रूपमें लक्षित होतेहैं। यहां यहभी स्पष्ट होताहै कि आत्मविस्मृतिकी दुरवस्था कितनी गम्भीर है। भाषा, भाव, कला-सौष्ठव की दृष्टिसे उपन्यास एक सफल कृति है। □□

ग्रन्थ-लेखक-समीक्षक विवरण परिशिष्ट

सर्वदेशीय भाषा

हिन्दी : काव्य

चर्चित कृति : 'खूंटियोंपर टंगे लोग'; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली—११०-००२। पृष्ठ : १३६; डिमाई ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

कवि : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (स्व.)

जन्म : १५ सितम्बर १९२७, बस्ती (उ. प्र.)। **निधन :** २४ सितम्बर ८३। **शिक्षा :** इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे एम. ए.। **कार्यक्षेत्र :** शिक्षक, लिपिक, आकाशवाणीमें सहायक प्रोड्यूसर, 'दिनमान' साप्ताहिकमें मुख्य उपसंपादक, 'पराग' के सम्पादक। कवि संबंधी **संपर्क :** कु. विभा सक्सेना, ४७ बाबर रोड, बंगाली मार्केट, नयी दिल्ली-११०-००१।

कृतियां : उपन्यास : उड़े हुए रंग। **लघु-उपन्यास :** सोया हुआ जल और पागल कुत्तोंका मसीहा। **कहानी-संग्रह :** लड़ाई, अंधेरेपर अंधेरा। **नाट्य-कृति :** बकरी (हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में ५०० से अधिक बार मंचित)। **बाल-नाटक :** भों-भों, खों-खों, लाखकी नाक। **बाल-काव्य :** बतूताका जूता, मटंगूकी टाई। **यात्रा :** कुछ रंग, कुछ गंध। **काव्य:** काठकी घंटियां, बांसका पुल, सूनी नाव, गर्म हवाएं, कुआनो नदी, जंगलका दर्द, खूंटियों पर टंगे लोग।

नयी कविताके शीर्षस्थ कवियोंमें परिगणित।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'खूंटियोंपर टंगे लोग' को जन सामान्यके प्रति गहन सहानुभूति, अन्याय और शोषणके विरुद्ध आक्रोश तथा साथही व्यक्तिगत गीतात्मकता एवं

उर्दूकी भाषाके लिए हिन्दी साहित्यको अनुपम देन माना गया है।

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

जन्म : २२ जनवरी १९४१, रहली (सागर) म. प्र.। **शिक्षा :** सागर विश्वविद्यालयसे एम. ए., पी-एच. डी.। **कार्यक्षेत्र :** अध्यापन, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह (म. प्र.)। **सम्पर्क :** फुटेरा वार्ड न. २, दमोह (म. प्र.)-४७०६६१।

कृतियां—आलोचना : छायावादी काव्यकी प्रगतिशील चेतना, भवानी मिश्रकी काव्य चेतना, नयी कविताके प्रमुख हस्ताक्षर; नयी कृतियां (प्रकाश्य)। **व्यंग्य :** दीवारें पारदर्शी हैं, दरवाजेपर दस्तक।

मध्यांचलीय भाषाएं

मैथिली : पत्रकारिता इतिहास

चर्चित कृति : 'मैथिली पत्रकारिताका इतिहास'; प्रकाशक : मैथिली अकादमी, श्रीकृष्णपुरी, पटना (बिहार)-८००-००१। पृष्ठ : ४०५; डिमाई ८१; मूल्य : २३.०० रु.।

कृतिकार : पं चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'

जन्म : १९२५, खोजपुर, मधुबनी, (बिहार)। **शिक्षा :** व्याकरणाचार्य। **कार्यक्षेत्र :** शिक्षक, अनेक पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन, रंगकर्मी, मैथिली फिल्म 'कन्यादान' में अभिनय, कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय विद्वत् परिषद्के सदस्य। **सम्पर्क :** मिश्री टोला, दरभंगा (बिहार)-८४६-००४।

कृतियां : काव्य-गुदगुदी, युगचक्र, ऋतुप्रिया, उनटापाल, त्रिफला, आशा दिशा; उपन्यास—वीरकन्या, विदागिरी; कहानी-संग्रह—जल-समाधि, एक अन्य संग्रह; एकांकी संग्रह—समाधान। अनेक आलोचनात्मक निबन्ध।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'मैथिली पत्रकारिताक इतिहास' के विषयके प्रति सर्जनात्मक दृष्टिकोण, विशद अध्ययन, तथ्योंके गहरे विश्लेषण तथा ललित शैलीके लिए मैथिली साहित्यको अनुपम देन माना गया है।

समीक्षक : प्रा. गौरीकान्त झा

शिक्षा : एम. ए.। **कार्यक्षेत्र :** अध्यापन; मैथिली विभाग, पूर्णियां कालेज, पूर्णियां (बिहार)।

सम्पर्क : मुक्ताकाश, नवरतन, पूर्णियां (बिहार)।

अन्य : आधुनिक मैथिली साहित्यके निर्माता कुमार गंगानन्द सिंहपर शोध-कार्यमें संलग्न। मैथिली साप्ताहिक 'समाद' एवं 'विकल्प' के सम्पादन विभागसे सम्बद्ध रहे। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं शोध-पत्रिकाओंमें अनेक-आलोचनात्मक एवं शोध-मूलक निबन्ध प्रकाशित।

राजस्थानी काव्य

चर्चित कृति : ग-गीत; प्रकाशक : ग्राम मंच प्रकाशन, श्रीगंगानगर (राजस्थान)। पृष्ठ : १०४; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

कवि: मोहन आलोक

जन्म : ३ जुलाई १९४२, किशनपुरा (चूरू) राजस्थान। **शिक्षा :** एम. ए. (हिन्दी)। **वर्तमान निवास :** २०७, फोर्थ ब्लाक, वार्ड नं. २७, श्री गंगानगर (राजस्थान)

कृतियां : प्रस्तुति कृति, लेखककी पहली कृति, जिसपर राज्य सरकार, राजस्थान साहित्य अकादमी तथा साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कार। दूसरी कृति : 'डांखळा।'

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'ग-गीत' को सर्वहारा जनके हर्ष एवं विषादके कलात्मक समायोजन, मानवीय मूल्योंमें गहन आस्था, अन्तरंग शैली तथा प्रभावी कथनके लिए राजस्थानी साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक : बी. एल. माली 'अशान्त'

कार्यक्षेत्र : गत छै वर्षोंसे 'झुणझुणियो' पत्रिकाका संपादन : **सम्पर्क :** ३/३४३ मालवीय नगर, जयपुर (राजस्थान)।

कृतियां : (प्रमुख) **उपन्यास :** मिनखरा खोज, **कहानी :** किली-किली कटको, **नाटक :** बोलता आखर, **निबंध :** माटी सूं मजाक, **बाल उपन्यास :** कुचमाही राछू, बितानियो दाहो, बैंजू। अबतक लगभग दो दर्जन मौलिक एवं सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित। राजस्थान अकादमीसे पुरस्कृत।

पूर्वांचलीय भाषाएं

असमिया : काव्य

चर्चित कृति : 'सुदीर्घ दिन आरु दिन'; प्रकाशक; नवज्योति, शिवसागर (असम) । पृष्ठ : १२८; डिमाई ८२; मूल्य : १५.०० रु. ।

कवयित्री : डॉ. निर्मलप्रभा बरदलै

जन्म : १९३३. शिवसागर (असम) । **शिक्षा :** गुवाहटी विश्वविद्यालयसे एम. ए. (भाषा विभाग), 'असमिया कविताकी प्रकृति' विषयपर शोध कार्य और इसीपर १९७२ में पी-एच. डी. प्राप्त । **कार्य-क्षेत्र :** सम्प्रति गुवाहाटी विश्वविद्यालयमें असमिया विभागकी वरिष्ठ रीडर । विभिन्न साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थानोंसे सम्बद्ध, देश-विदेशकी यात्राएं । अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित । सम्पर्क : चांद मीरी, गुवाहाटी (असम)-७८१-००३ ।

कृतियां : काव्य-संकलन, शोध ग्रंथ, बाल-साहित्य की कुल ४२ कृतियां अबतक प्रकाशित । १५०० से अधिक लोकप्रिय गीतोंकी रचना । अनेक रूपक, रेडियो एकांकी आदिकी रचना । 'देवी' विषयपर गंभीर शोध ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'सुदीर्घ दिन आरु ऋतु'को अपने समृद्ध भाव-वैविध्य, आवाहक कल्पना विधान, भास्वर आशावाद एवं मानवीय मूल्योंकी संपुष्टिके लिए असमिया साहित्यको अनुपम देन माना गया है ।

समीक्षक : नवारुण वर्मा

जन्म : १९३४, असमके एक चाय बागानमें । **कार्य-क्षेत्र :** सम्प्रति गुवाहाटीमें कलमकी मजदूरी (असमिया साहित्य-संस्कृति विषयक एकमात्र हिन्दी पत्रिका 'असमिया साहित्य' त्रैमासिकसे सम्बद्ध)। हिन्दी असमिया दोनों भाषाओंमें कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदिकी रचना । अनुवादके क्षेत्रमें भी काम । २० कृतियाँ प्रकाशित। **सम्पर्क** : खारघुली, गुवाहाटी (असम)-८७१-००४।

समीक्षक : डॉ. धर्मदेव तिवारी 'शास्त्री'

शिक्षा : एम. ए., पी-एच.डी.; साहित्याचार्य, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार ।

कार्यक्षेत्र : रीडर, हिन्दी विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी. (असम)-७८१०१४ ।

ओड़िया : निबन्ध

चर्चित कृति : 'गाँ मजलिस'; प्रकाशक : कटक स्टूडैंट्स स्टोर, कटक (उड़ीसा)-७५६-००२ । प्रथम खण्ड (राजनीति समीक्षा), प्रथम प्रकाशन : दिस' ७७; पृष्ठ : २९०; मूल्य : डीलक्स २०.०० रु., सामान्य १६.०० रु. । द्वितीय खण्ड (सामाजिक), प्र. प्र. दिस. ७८; पृष्ठ : २००; डीलक्स १५.०० रु., सामान्य, १२.०० रु. । तृतीय खण्ड (शासन नीति), प्र. प्र. दिस. ८०; पृष्ठ : १८०; मूल्य : डीलक्स १८.०० रु., सामान्य १५.०० रु. ।

निबन्धकार : डॉ. हरेकृष्ण महताब

जन्म : २१ नवम्बर १८९९, सप्तग्रह योगमें; आगरपाड़ा गांव, ज़िला बालेश्वर ।

शिक्षा : रैवन शॉ कालेजमें शिक्षा कालमें १९२२में असहयोग आन्दोलनमें भाग लिया और जेलयात्रा, १९३०, ३२ और ४२ में भी जेलयात्रा । **कार्य-क्षेत्र :** स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद दो बार उड़ीसा राज्यके मुख्यमंत्री, १९५० में केन्द्र सरकारमें मंत्री और अविभाजित बम्बईमें राज्यपाल (दो-दो वर्ष)। उल्लेखनीय राष्ट्रीय नेता और समाजसेवी । **सम्पर्क** : एकाम्र निवास, भुवनेश्वर (उड़ीसा)-७५१००२ ।

कृतियाँ : लगभग २४ कृतियाँ—उपन्यास, कहानी, कविता, निबन्ध और इतिहास—प्रकाशित । चर्चित कृतियां—**काव्य :** पलासी अवसाने (१९२७ में प्रकाशित और ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त), शेष अश्रु । **उपन्यास :** प्रतिभा, अन्यापार, टाउटर, नूतन धर्म । **निबंध :** गाँ मजलिस । **इतिहास :** उड़ीसार इतिहास । **प्रकाशन व्यावस्था और सम्पादन :** प्रजातंत्र (दैनिक), झंकार (मासिक) और ईस्टर्न टाइम्स (अंग्रेजी) । **विशिष्ट :** १९४७ में ओड़िया लेखकोंके लिए वार्षिक सम्मेलन 'विश्व मिलन' की स्थापना । साहित्य-सेवाके लिए अनेक सम्मानार्थ उपलब्धियां ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'गाँ मजलिस' को व्यंजक तथा उत्तेजक विचारों,

ऋजु और प्रांजल गद्य, युक्तियुक्त एवं तटस्थ दृष्टि-कोण तथा संस्कृति एवं सभ्यताके प्रति अपने सरोकारके लिए ओड़िया साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक : डॉ. विजय द्विवेदी

जन्म : २३ जनवरी १९४०, अकसौली, जि. मीरजापुर (उ. प्र.) **शिक्षा :** एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (तुलनात्मक भाषाशास्त्र), पी-एच. डी., शोधछात्र डी. लिट्. (पंजीकृत) । **कार्यक्षेत्र :** विगत २१ वर्षोंसे उड़ीसा सरकारके शिक्षा विभागमें राजपत्रित अधिकारी । **सम्पर्क :** हिन्दी विभागाध्यक्ष, महाराजा पूर्णचन्द्र कालेज, बारीपदा (उड़ीसा)-७५७.००१ ।

कृतियां-आलोचना : नयी कविता : प्रेरणा और प्रयोजन, नयी कविता : स्रोत और सिद्धान्त, शैली विज्ञान का स्वरूप; **उपन्यास :** गंगाका पानी मटमैला, स्वर्गकी संसदमें; **रम्यरचना :** सब सच है; **यन्त्रस्थ** साठोत्तर हिन्दी कहानी, लोक चिन्तन; **अनुवाद :** अथवा अंधार (ओड़िया नाटक, नाटककार यदुनाथ दास महापात्र, भू. पू. शिक्षामंत्री उड़ीसा सरकार)। **सम्पादन :** डॉ. रामकुमार वर्मा अभिनन्दन ग्रन्थ ।

नेपाली : उपन्यास

चर्चित कृति 'नियति'; प्रकाशक : नेपाली ग्रन्थ प्रकाशन, मेरी भिल्ला, ४१३ हिलकार्ट रोड, दार्जिलिङ (प. बंगाल)। पृष्ठ : २२०; प्रकाशन १९८२; मूल्य १२.०० रु. ।

उपन्यासकार : इन्द्र सुन्दास

जन्म : २२ सितम्बर १९१८, सिपाहीधुरा (दार्जिलिङ)। **शिक्षा :** कलकत्ता विश्वविद्यालय । **कार्यक्षेत्र :** १९४० से सरकारी सेवामें, १९७७ में उपजिलाधीश एवं प्रथम श्रेणी दण्डाधिकारीके रूप में सेवा निवृत्त ।

कृतियां : लगभग ५० वर्षोंसे लिख रहेहैं। कथा संकलन एवं गद्यकी एक-एक पुस्तकके अतिरिक्त तीन उपन्यास और तीन जीवनियां प्रकाशित। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, टालस्टॉय, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरुकी कृतियोंका नेपालीमें अनुवाद । 'जुनेली रेखा' (उपन्यास) भानुभक्त पुरस्कारसे सम्मानित ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'नियति' को जीवनके प्रामाणिक चित्रण, मानवीय संबंधोंकी जटिलताके प्रति जागरूकता, यथार्थ चरित्र-विन्यास तथा प्रभावी प्रस्तुतिके लिए नेपाली साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै ।

समीक्षिका : डॉ. (श्रीमती) कमला सांकृत्यायन

शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी., साहित्यरत्न । **कार्यक्षेत्र :** प्राध्यापिका, लोरेटो कालेज, दार्जिलिङ (पश्चिम बंगाल)। **सम्पर्क :** राहुल निवास, २१ कचहरी रोड, दार्जिलिङ (प. बंगाल)।

बाङ्ला : काव्य

चर्चित कृति : जेते पारि किन्तु केन जाबो'; प्रकाशक : आनन्द पब्लिशर्स प्रा. लि., ४५, बेनिया टोला लेन, कलकत्ता-७००००९। पृ. ६४: प्रथम संस्करण १९८२; मूल्य; ७.०० रु. (सजिल्द)

कवि : शक्ति चट्टोपाध्याय

जन्म : २५ नवम्बर १९३३, बहरू गांव, २४ परगना (प. बंगाल)। **शिक्षा :** प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता एवं यादवपुर विश्वविद्यालय । **कार्यक्षेत्र :** आनन्द बाज़ार पत्रिकामें सहायक सम्पादक । **सम्पर्क :** १९, कारनेल विश्वास रोड, कलकत्ता-७०००१९ ।

कृतियां : अबतक साठ रचनाएं प्रकाशित, प्रथम काव्य-संकलन १९५७ में प्रकाशित। कुछ कृतियां— हेमन्तेर अरण्ये आमि पोस्टमैन, सोनार माछि खून करेछि, कवितार तुलो उड़े, एम आमि जे पाथर, आमि एक बड़ो एका, पाहेर काथा माटिर बाड़ी, हे प्रेम हे नैशब्द्य, धर्मे आछो जिराफेड आछो, अनन्त नक्षत्र वीथि तुमि अंधकारे, चतुर्दशपदी कवितावली, उड़न्त सिंहासन, पाब्लो नेकदार प्रेमेर कविता, लोरदार कविता, श्रेष्ठ कविता, भात नेय पाथर रये छे, कोथाकार तखारि कोथाय रेखे थे, कॉक्स बाजारेर सन्ध्या, जेते पारि किन्तु केन जाबो (इस पुरस्कृत रचनाके चार संस्करण हो चुके हैं)। अनेक रचनाओंका भारतीय तथा विदेशी भाषाओंमें अनुवाद ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'जेते पारि किन्तु केन जाबो' को मानव एवं प्रकृतिपर प्रौढ़ चिन्तन, मानवके अस्तित्वमें अर्थकी

खोज, परिष्कृत काव्य भाषा एवं कलात्मक सौन्दर्यके लिए बाङ्ला साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक : डॉ. रणजीत कुमार साहा

जन्म : २७ जुलाई १९४६, भागलपुर (बिहार)। **कार्यक्षेत्र** : विश्वभारती शान्ति निकेतन, दिल्ली विश्वविद्यालय, अब साहित्य अकादमी। **सम्पर्क** : साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, ३५ फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली-११०-००१।

कृतियां : अबतक ६ ग्रन्थ प्रकाशित। तुलनात्मक भारतीय साहित्य तथा ललित कलाओंको केन्द्रित कर लेखनमें व्यस्त।

मणिपुरी : नाटक

चर्चित कृति : कर्णगी ममा अमसुड. कर्णगी अरोइबा याहिप; प्रकाशक : एन. देशमणि सिंह, शीड. जमै ओक्रम लैकाइ, इम्फाल। पृष्ठ : ९४; क्राउन ८१. मूल्य : ८.०० रु.।

नाटककार : निङोम्बम इबोबी सिंह

जन्म : १३ अप्रैल १९२१, इम्फाल। **शिक्षा** : सातवीं कक्षातक, संस्कृत, हिन्दी और बांङ्लाका निजी तौरपर अध्ययन। **कार्यक्षेत्र**: प्राथमिक विद्यालयोमें अध्यापन, शिक्षक रूपमें सेवामुक्त। नाट्यमंडलियोंमें कार्य, सफल अभिनेता, सफल निर्देशक। नाट्य-शिक्षण तथा नाट्य-निर्देशन हेतु मणिपुर राज्य सरकार द्वारा पुरस्कृत। अबतक ३० नाटकोंका निर्देशन, १९७५में आंखें खो बैठे। **सम्पर्क** : सिंहजमेइ मखा, ओइनाम थिंगेल, इम्फाल (मणिपुर)—७९५-००१।

कृतियां : अबतक १५ पुस्तकें प्रकाशित, अनेक पाण्डुलिपियाँ प्रकाशनकी प्रतीक्षामें। कीर्त्तिवासी सप्तकाण्ड रामायण, काशीरामदास कृत महाभारत १ और २, माइकेल मधुसूदन दत्तके 'मेघनाद वध' काव्यके कुछ अंशोंका मणिपुरीमें अनुवाद, सती मरी, नाट्य और मंच, राम राज्य, हिन्दू पर्व दिन लइतेड. शैथारोल।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'कर्णगी ममा अमासुड. कर्णगी अरोइबा याहिप'को प्राचीन कथावस्तुके सम्यक् निर्वाह, चातुर्यपूर्ण नाटकीय विनियोजन, शक्तिशाली चरित्र चित्रण तथा कवित्वपूर्ण भाषाके लिए मणिपुरी साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक : डॉ. ए. दिनमणि सिंह

जन्म : १ सितम्बर १९४०, एलांग खाङ्पोकपी (मणिपुर)। **शिक्षा** : एम. ए. (हिन्दी), आगरा विश्वविद्यालय; हिन्दी शिक्षण पारंगत, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान; डि. फिल. (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)। **कार्यक्षेत्र** : विभिन्न महाविद्यालयोंमें प्रवक्ता, सिंहजमेई हिन्दी महाविद्यालयके प्राचार्य; अब मणिपुर विश्वविद्यालय, इम्फालके मणिपुरी भाषा विभागमें।

कृतियां : तेरह कृतियाँ प्रकाशित, इनमें आलोचना, कहानी-संग्रह, काव्य और अनूदित ग्रन्थ हैं। कहानी संग्रह 'पिष्टोल अमा कुन्दाल्लइ अमा' साहित्य अकादमी द्वारा गत वर्ष पुरस्कृत।

दक्षिणांचलीय भाषाएं

कन्नड़ : कहानी

चर्चित कृति : कथेयादळु हुडुगि; प्रकाशक : बाप्पको पब्लिकेशन्स, ८८, मैसूर रोड, बेंगलुरु—५६००१८। पृ. १४७; डिमा. ८०; मूल्य १२.०० रु.।

कहानीकार : यशवन्त चित्ताल

जन्म : ३ अगस्त १९२८, हनेहळ्ळि (उत्तर कन्नड़) **शिक्षा** : विज्ञानके प्रतिभा सम्पन्न छात्र, स्टीवेंस इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नॉलॉजी. न्यू जर्सी (अमरीका) से रासायनिक इंजीनीयरीकी मास्टर उपाधि। **कार्यक्षेत्र** : बेकेलाइट हाइलैम लि. बम्बईके अधिशासी निदेशक, पोलियर टेकनीकके विशेषज्ञ। **सम्पर्क** :२ बैंडस्टैंड एपार्टमेंट्स, २१२ ए, बैंडस्टैंड, बान्द्रा, बम्बई-४०००५०।

कृतियाँ : पाँच कथा संग्रह, दो उपन्यास और एक निबन्ध संग्रह प्रकाशित। 'शिकारी' उपन्यासपर १९८१ में कन्नड साहित्य अकादमीका पुरस्कार, १९८२ में एक कहानी-संग्रहपर पुरस्कार। अनेक कहानियाँ विभिन्न भारतीय भाषाओंमें अनूदित, दो कथानकोंपर फिल्म-निर्माण।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति : 'कथेयादळु हुडुगि' को समकालीन जीवनकी जटिलतामें अन्तर्दृष्टि, गहरी मानवीय संवेदना, सूक्ष्म व्यंग्य तथा

किस्सागोईमें अभिनव प्रयोगके लिए कन्नड साहित्य को अनुपम देन माना गयाहै ।

समीक्षक : डॉ. टी. आर. भट्ट

कार्यक्षेत्र : १९७३ से स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालयमें हिन्दीका अध्यापन; 'पन्त और बेन्द्रेकी काव्य चेतना' पर शोध कार्य । काव्य में विशेष रुचि । तुलनात्मक अध्ययनसे सम्बन्धित अनेक लेख प्रकाशित । इस समय 'उत्तरके प्रमुख लोक नाटक और दक्षिणके लोक नाटकोंका तुलनात्मक अध्ययन' शोध कार्यमें निरत । अनुवाद कार्य भी पर्याप्त कियाहै ।

तमिष : आलोचना

चर्चित कृति : भारती : कालमुम् करुत्तुम्; प्रकाशक : मीनाक्षी पुस्तकालयम्, मदुरै । पृष्ठ : ५५२; प्रकाशन वर्ष १९८२; मूल्य : २५.०० रु. ।

कृतिकार : तो. मु. सि. रघुनाथन

जन्म : ३० अक्तूबर १९३३, मदूर (तिरुनेलवेली-तमिषनाडु) । **शिक्षा :** १९४२ के छात्र आन्दोलनमें गिरफ्तारीके बाद औपचारिक महाविद्यालयीन शिक्षा अचानक समाप्त । **कार्यक्षेत्र :** तमिषके लब्ध प्रतिष्ठ समालोचक, कवि एवं उपन्यासकार 'सोवियत नाडु' (सोवियतलैण्डका तमिष संस्करण) के सम्पादक । **सम्पर्क :** सोवियत संघ सूचना केन्द्र, ११५, त्यागराजार मार्ग, टी. नगर मद्रास-६००-०१७ ।

कृतियां : अबतक बीस कृतियाँ प्रकाशित, इनमें साहित्य आलोचन्, सामाजिक साहित्य, गंगा और कावेरी, भारती तथा शेल्ली, भारती : कुछ दृष्टिकोण आदि सात समीक्षात्मक अध्ययन, तीन उपन्यास, तीन काव्य संकलन और दो नाटक हैं । इन का उपन्यास 'पंचुम पसियुम' पहली तमिष औपन्यासिक कृति है जो किसी यूरोपीय भाषामें अनूदित हुईहै । अनेक कहानियोंके अनुवाद विदेशी भाषाओंमें हो चुकेहैं । दो बार सोवियत भूमि नेहरु पुरस्कारसे सम्मानित । साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत इस कृतिको 'इलक्कीय चिन्तनै पुरस्कार' भी प्राप्त हो चुकाहै ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति : 'भारती: कालमुम् करुत्तुम्' को कवि और उसके रचना संसारमें गहरी अन्तर्दृष्टि, वस्तुपरक अन्तरंगता, संतुलित समीक्षात्मक विश्लेषण तथा प्रसाद शैलीके लिए तमिष साहित्यको अनुपम देन माना गया है ।

समीक्षक : डॉ. एम. शेषन्

जन्म : मदुरै (तमिलनाडु) । **शिक्षा :** आगरा-वाराणसीमें शिक्षा, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसीसे एम. ए. (स्वर्गीय डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के छात्र), पी-एच. डी.का शोध विषय : 'कल्कि और वृन्दावनलाल वर्माके ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अनुशीलन ।' **कार्यक्षेत्र :** मद्रासके द्वारकादास गोवर्धनदास वैष्णव कालेजमें हिन्दी विभागाध्यक्ष । **सम्पर्क :** 'गुरूकृपा', ११ डॉ. ए. रामास्वामी मुदालियर रोड,के. के. नगर (पश्चिम) मद्रास—६००-०७८

कृतियाँ : तमिके शैव सन्त, तमिषषके वैष्णव भक्त कवि प्रकाशित ग्रन्थ सम्प्रति स्वातन्त्र्यपूर्व हिन्दी एवं तमिषके कहानी साहित्यके बारेमें तुलनात्मक अध्ययनमें संलग्न ।

तेलुगु : रेखाचित्र

चर्चित कृति : 'जीवन समरम्'; प्रकाशक : कमला पब्लिशिंग हाउस, विजयवाड़ा-२ (आंध्रप्रदेश) । पृष्ठ : १९८; डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु. ।

कृतिकार : डॉ. रावूरि भरद्वाज

जन्म : ५ जुलाई १९२७, मोगुलुरु गांव (हैदराबाद आंध्रप्रदेश)—**शिक्षा :** औपचारिक स्कूली शिक्षा आठवीं कक्षातक, अन्यथा स्वयं शिक्षित । आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा मानद डाक्टरेट उपाधि, 'कलाप्रपूर्ण' । **कार्यक्षेत्र :** विविध कार्य करते हुए वे १९४४ में पत्रकारिताके क्षेत्रमें । सम्प्रति आकाशवाणी हैदराबादमें प्रोड्यूसर । **सम्पर्क :** १५२/३, ई टी, विजयनगर कालोनी, हैदराबाद-५००-४५७ ।

कृतियां : अबतक एक सौ सत्रह पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें कहानियां, उपन्यास, नाटक, निबन्ध तथा नवसाक्षरों और बच्चोंके लिए रचनाएं सम्मिलित । कहानियोंके अनुवाद अनेक भारतीय भाषाओं और अंग्रेजीमें । १९६८ में गोपीचन्द पुरस्कारसे सम्मानित तथा प्रस्तुत कृति आंध्रप्रदेश साहित्य अकादमीसे भी पुरस्कृत ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति—'जीवन समरम्' को सर्वहारा जनके प्रति गहन सहानुभूति, चरित्रोंके प्रामाणिक चिन्तन, अकुंठ आशावाद तथा शक्तिशाली प्रस्तुतिके लिए तेलुगु साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक : डॉ. भीमसेन निर्मल

जन्म : ४० नवम्बर १९३०, मेदक (आंध्रप्रदेश)। **शिक्षा** : एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (तेलुगु), पी-एच. डी. (हिन्दी)। **कार्यक्षेत्र** : प्रोफैसर हिन्दी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद। **सम्पर्क** : १-१-४०५/७/१ गांधीनगर, हैदराबाद-५००.३८०।

कृतियां : हिन्दी और तेलुगुमें लगभग ४०। अनुवाद एवं तुलनात्मक अध्ययनमें विशेष रुचि। अज्ञात हस्तलिखित प्रतियोंको प्रकाशमें लानेमें प्रयास। १९८४-८६ में तेलुगु लिपिमें लिखे गये हिन्दी नाटकोंका नागरी लिप्यन्तरण कर उन्हें शोधका विषय बनाकर शोध-प्रबन्ध लिखा।

मलयालम : निबंध

चर्चित कृति : तिरञ्ञेटुत्त प्रबन्धङ्ङल्; प्रकाशक : साहित्य प्रवर्त्तक सहकरण संघम्; कोट्टयम (केरल)। पृष्ठ : ३२५; डिमा. ८२; मूल्य : ३०-०० रु.।

निबन्धकार : प्रो. एस. गुप्तन नायर

जन्म : २३ अगस्त १९१९, कार्यकुळम् (केरल)। **शिक्षा** : केरल विश्वविद्यालयसे मलयालममें बी. ए. आनर्स (१९४१), उसके बाद तीन वर्षतक विश्वविद्यालयमें शोधकार्य।

कार्यक्षेत्र : केरल विश्वविद्यालयके मलयालम विभागमें प्राध्यापक (१९४५), अनेक कालेजोंमें विभागाध्यक्ष, कालिकट विश्वविद्यालयमें प्रोफैसर (आचार्य) पदपर' यहींसे कार्यमुक्त। बीचमें भाषा संस्थानके निदेशक पदपर चार वर्षतक। सम्प्रति केरल साहित्य अकादमीसे संबद्ध। **सम्पर्क** : विश्वभारती, पेरुरकडा डा. घ., त्रिवेन्द्रम्-६९५-००.५।

कृतियां : अबतक १२ कृतियां प्रकाशित, जिनमेंसे पांच अनुवाद। 'आधुनिक साहित्य', 'समालोचना' 'इज्मसे परे', 'काव्य स्वरूप' 'क्रान्तदर्शी' आदि चर्चित समीक्षा ग्रन्थ। 'संक्षिप्त अंग्रेजी-मलयालम कोश' के कोशकार। १९६७ में केरल साहित्य अकादमी द्वारा 'इज्मगल कप्पुरम' (इज्मसे परे) के लिए पुरस्कृत। 'मलयाली', 'ग्रन्थालोकम्' तथा 'विज्ञान केरली' का सम्पादन। स्वामी विवेकानन्द की सम्पूर्ण रचनाओंके मलयाली रूपान्तरके सम्पादक। सम्प्रति एक आध्यात्मिक पत्रिका 'सन्निधानम' के मुख्य सम्पादक।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति 'तिरञ्ञेटुत्त प्रबंधङ्ङळ्' को विलक्षण समीक्षात्मक अन्तर्दृष्टि, अनम्य किन्तु संतुलित मूल्यांकन, सौम्य शैली तथा प्रांजल गद्य लेखनके लिए मलयालम साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक : डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै.

जन्म : २९ अगस्त १९३५, तट्टयिल ग्राम (केरल)। **शिक्षा** : उस्मानिया विश्वविद्यालयसे हिन्दीमें एम. ओ. एल. (१९६९), 'पन्त काव्यमें बिम्ब योजना' विषयपर पी-एच. डी. (१९७३)। **सम्पर्क** : १९०, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया कालोनी, गांधीनगर, हैदराबाद (आं. प्र.)-५००-३८०।

कृतियां : अबतक बाईस ग्रन्थ प्रकाशित, 'पंत : छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व', 'पंत काव्यमें बिम्ब योजना', 'छायावादी बिम्ब विधान और प्रसाद', 'सन्त कबीर', 'प्रसाद और कामायनी', 'केरल : साहित्य और संस्कृति' आदि चर्चित ग्रन्थ। मलयालमकी 'अध्यात्म रामायण' एवं 'उत्तर रामायण' का सानुवाद लिप्यन्तरण। केन्द्र सरकार तथा उत्तरप्रदेश शासनसे कई बार पुरस्कृत।

पश्चिमांचलीय भाषाएं

कोंकणी : उपन्यासिका

चर्चित कृति : कार्मेलीन.

कृतिकार : दामोदर यशवन्त मावजो

जन्म : १ अगस्त, १९४४, माजोर्डा (गोवा) **शिक्षा** : बम्बई विश्वविद्यालयसे वाणिज्य स्नातक **कार्यक्षेत्र** : अपने जन्म-स्थानमें निजी व्यवसाय **सम्पर्क** : माजोर्डा (गोवा)-४०३७१३।

कृतियां : दो उपन्यास, दो कहानी-संग्रह, एक नाटक और तीन बाल-साहित्यकी पुस्तकें प्रका-

शित। गांथन' (१९७२) एवं 'जागरणा' (१९७५) गोवा कला अकादमी द्वारा पुरस्कृत, जागरणा, (कहानी-संग्रह) कोंकणी भाषा मंडल द्वारा पुरस्कृत। 'वीलेम नीलेम सोनवनेम' (नाटिका) भी प्रथम पुरस्कार प्राप्त कृति। अनेक कहानियां विभिन्न भारतीय भाषाओंमें अनूदित। देश-विदेश की अनेक यात्राएं।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति : 'कार्मेलीन' को भावनात्मक अन्तर्द्वन्द्वके आकलन, गहरी मानवीय समझ, सम्मोहक कथानक तथा प्रभावशाली भाषा के लिए कोंकणी साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक-रूपान्तरकार : कान्ता पलसाने

गोवासे प्रकाशित 'नवप्रभा' के रविवासरीय अंक (१-१-८४) में श्री पुंडलिक नारायण नायककी 'कार्मेलीन' पर प्रकाशित समीक्षापर आधारित अनुवाद वस्तुतः रूपान्तर है। रूपान्तरकार श्रीमती कान्ता पलसाने एम. ए. (भूगोल), एम. ए. (हिन्दी, प्रथम श्रेणी), अनुवाद विज्ञानपर शोध कार्यमें संलग्न, मराठी, मारवाड़ी, हिन्दी, अंग्रेजी का अच्छा ज्ञानहै। **सम्पर्क** : पुणे विश्वविद्यालय परिसर, हेल्थ सेन्टरके पास, पुणे (महाराष्ट्र), ४११-००७।

गुजराती : निबन्ध

चर्चित कृति : **'चिन्तयामि मनसा'** ; प्रकाशक : चन्द्रकान्त कड़िया सद्भाव प्रकाशन, ५७/६२, कापाडिया एस्टेट, रतनपोल अहमदाबाद-३८०००१। पृष्ठ : १५६; डिमा. ८१ (महाशिवरात्रि वि. सं. २०३८); मूल्य : ३०.०० रु.।

कृतिकार : डॉ. सुरेश ह. जोशी

परिचय : देखिये पृष्ठ सं.६८; **सम्पर्क** : ५३, नूतन सोसायटी, फतेहगज, वडोदरा (गुजरात)-३९०-००२।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'चिन्तयामि मनसा' को समसामयिक विश्लेषणात्मक चिन्तनके प्रति अपने गहरे सरोकार' प्रमुख साप्ताहिक मुद्दोंकी गहरी समझ तथा वर्तमान आलोचनाके परिदृश्यके सूक्ष्म मूल्यांकनके लिए गुजराती साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै।

समीक्षक : रजनीकान्त जोशी

शिक्षा : एम. ए. (भारतीय संस्कृति), एम. ए. (हिन्दी), पी-एच. डी.। **कार्यक्षेत्र** : हिन्दी प्राध्यापक (गुजरात विद्यापीठमें)। **संपर्क** : सी/५, ओजस एपार्टमेंट्स, सुरेन्द्र मंगलदास मार्ग, अहमदाबाद-३८०.०१५।

कृतियां :गुजरातीमें—विदित(समीक्षा),हिन्दी कवि धूमिल (समीक्षा),अवलोकन(समीक्षा), तमिष कवि सुब्रह्मण्य भारती(सर्जक परिचय),वत्सल मा कस्तूरबा (संक्षिप्त चरित्र)। हिन्दीमें—अज्ञेय एवं सप्तक शृंखला, आधुनिक गुजराती साहित्य, हिन्दी गुजराती समान स्रोतीय शब्दावली। हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंमें साहित्य, कला, संस्कृति विषयक सौ-सौ से अधिक लेख, शोध लेखभी।

मराठी : लघु उपन्यास

चर्चित कृति :'**सत्तान्तर**; प्रकाशक : मैजेस्टिक बुक स्टाल, गिरगांव, बम्बई-४००००४। पृष्ठ : ६४; मूल्य : १५.०० रु.।

उपन्यासकार : व्यंकटेश माडगूलकर

जन्म : ६ जुलाई १९२७, माडगूल गाँव (महाराष्ट्र)। **शिक्षा** : स्कूली पढ़ाई छोड़ 'भारत छोड़ो' आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण गिरफ्तारी वारंट, तीन वर्षतक 'भूमिगत'। **कार्यक्षेत्र** : १९४७ में कहानी लेखकके रूपमें ख्याति, १९५०-५५ में फेमस पिक्चर्स बम्बईके लिए चित्रपट-कथा लेखक। १९५५ से आकाशवाणी पुणेसे सम्बद्ध, प्रोड्यूसर। **सम्पर्क** : 'अक्षर', ११०/१० एरंडवाड़ा, १४ वीं लेन, प्रभात रोड, पुणे (महाराष्ट्र)-४११००४।

कृतियां : छः उपन्यास, जिनमें 'वनगरवाड़ी' देशकी चौदह भाषाओंमें अनूदित, अब जर्मनमें प्रकाशित हो रहीहै, 'बाबटल' का रूसीमें अनुवाद हो रहाहै। १४ कहानी-संग्रह, सात नाटक, दस सिने नाटक प्रकाशित। संस्मरणोंपर आधारित निबन्धोंकी दो पुस्तकें प्रकाशित। १९४७ में 'अभिरुचि' पत्रिकाकी लघुकथा-प्रतियोगितामें 'देवा सत्व महार' पर प्रथम पुरस्कार, इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र सरकार साहित्य पुरस्कार, एन. सी. केलकर पुरस्कार, हरिनारायण आप्टे पुरस्कारसे सम्मानित।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति : 'सत्तान्तर'

को अभिनय विषयवस्तु, गहन आकलन, सम्यक् विश्लेषण तथा निर्बाध शैलीके लिए मराठी साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै ।

समीक्षक : (१) डॉ. रु. गो. चौधरी (रूपचन्द गोविन्द चोधरी)

शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी—बनारस), एम. ए. (अंग्रेजी—पुणे), एम. एड् (पुणे) पी-एच. डी. (पुणे)। पी-एच. डी. विषय : कामसूत्र और फ्रायड के संदर्भमें मध्यकालीन हिन्दी काव्यका अनुशीलन । अनुसन्धान : भारतीय मनोविज्ञान और शिक्षा । **कार्यक्षेत्र** : प्राचार्य, राष्ट्रीय कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चालोसगाँव (महाराष्ट्र)। अनुन्धान-निर्देशक, पुणे विद्यापीठ, पुणे । सदस्य, नैतिक शिक्षा समिति । इससे पूर्व सदस्य, पाठ्य-पुस्तक निर्मिति एवं पाठ्यक्रम अनुसंधान मंडल; सदस्य, शिक्षक प्रशिक्षण मंडल; सदस्य, विद्वत्परिषद् एवं पाठ्यक्रम मंडल । **सम्पर्क** : उपर्युक्त ।

(२) श्याम विमल

जन्म : १९३१ (वसन्त), शूजाबाद (पाकिस्तान) **शिक्षा** : एम. ए., बी. एड, शास्त्री, प्रभाकर, साहित्यरत्न एवं मराठी शिक्षणमें डिप्लोमा । **कार्यक्षेत्र** : अध्यापन, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, दिल्ली । **सम्पर्क** : विमल कुटीर, १-बी/२२, लाजपतनगर, नयी दिल्ली-११०-०२४ ।

कृतियां : उपन्यास—व्यामोह(१९६१, द्वि. स. ६७), नावें अपनी-अपनी (६८), अच्छा हुआ यहभी (७८), गलत-सही घड़ियां (८१); काव्य—दीमक की भाषा (७०), इतना जो मिला (८४); अनुवाद : कालिदास कृत 'ऋतुसंहार' ।

सिन्धी : काव्य

चर्चित कृति : 'अंधो दूंहों'; प्रकाशक : श्रीमती मोहिनी मीरचंदाणी, १ सितम्बर बीच सोसायटी नार्थ साउथ रोड १०, प्लाट २३, जूहू (जे. वी. पी. डी.), बम्बई-४००.०४९। पृष्ठ : ५६; डिमा. ८२; मूल्य : १२.०० रु. ।

कवि : अर्जुन गोविन्दराम मीरचन्दाणी 'शाद'

जन्म : १७ दिसम्बर १९२४, सक्खर (पाकिस्तान)। **शिक्षा** : पी-एच. डी.—सिन्धी गज़लोंपर शोध कार्य । **कार्यक्षेत्र** : बम्बई विश्वविद्यालयमें सिन्धी विभागके अध्यक्ष अनेक संस्थाओंसे संबद्ध। **सम्पर्क** : उपर्युक्त प्रकाशकीय पता ।

कृतियाँ : दो काव्य-संकलन—आउ घिटियुनि जो गाईं दड़, तपस्या जूं रोशिनियू, एवं एक काव्य नाटक; एक आलोचनात्मक कृति—बेबस ऐं नओं दौर ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति : 'अंधो दूंहों' को विस्थापित होनेकी गहरी अनुभूति, तीव्र भावनात्मक आकर्षण, अस्मिताकी खोज तथा प्रांजल भाषाके लिए सिन्धी साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै ।

समीक्षक : (१) जगदीश सोभिराज लछाणी

जन्म : १९३९ । **शिक्षा** एम. ए. । : **कार्यक्षेत्र** : श्रीमती चांदीबाई हिम्मतमल मनसुखाणी कालेज उल्हासनगरमें हिन्दी एवं सिन्धीके प्रवक्ता । **कृतियां** : समीक्षा एवं बाल साहित्यकी कई कृतियां प्रकाशित । **सम्पर्क** : जय एपार्टमैंट्स, प्लाट नं. ८; फर्स्ट फ्लोर, उल्हासनगर-४२१००३ ।

(२) डॉ. मोतीलाल जोतवाणी

जन्म : १३ जनवरी १९३६; सक्खर (पाकिस्तान) **शिक्षा** : एम. ए. (अंग्रेजी), पी-एच. डी. (दिल्ली विश्वविद्यालय), जे. डी. (पंजाब विश्वविद्यालय) कार्यक्षेत्र : वरिष्ठ प्राध्यापक (रीडर) सिन्धी, देशबन्धु कालेज (सायं), नयी दिल्ली-११००१९ । **सम्पर्क** : बी-१४, दयानन्द कालोनी, लाजपतनगर-४, नयी दिल्ली-११०-०२४ ।

कृतियां : अंग्रेजी, हिन्दी और सिन्धीमें लगभग ३० कृतियोंके लेखक । हिन्दी प्रकाशन : साहित्येतिहास—सिन्धी भाषा, लिपि और साहित्य (१९७८); उपन्यास—पीली बत्ती पर (७७), ये लोग (८०); काव्य—नीमकी भूमिका अलग है (८३); अनुवाद एवं सम्पादन—सिन्धीकी श्रेष्ठ कहानियां (५८), सिन्धीकी चुनी हुई कहानियां (६७), शाह लतीफका काव्य (६९), जीनत (७१), शाह लतीफ (७१), प्रतिनिधि संकलन : सिन्धी (७४); अन्य : चांदके गीत (६१), आजादीकी कहानी (६५) ।

उत्तरांचलीय भाषाएं

डोगरी : कहानी

चर्चित कृति : **'आले'**; प्रकाशक : निस्तन्द्र प्रकाशन, ३५ कूचा कर्मचन्द, जम्मू-१८०.००१ । पृष्ठ : १३२; क्रा, ८२; मूल्य : २५.०० रु. ।

कृतिकार : वेद राही

जन्म : २२ मई १९३३, जम्मू । **कार्यक्षेत्र** : आकाशवाणी, सूचना विभागमें योजना पत्रिकाके सम्पादकीय विभागसे सम्बद्ध रहे, इसे त्यागकर बम्बई में फिल्मी क्षेत्रमें, सुप्रतिष्ठित फिल्म-निर्माता—चार फिल्मोंका निर्माण तथा लगभग २५ फिल्मोंके आलेख तैयार किये । **सम्पर्क** : ३५/बी, सर्वोत्तम हाउसिंग सोसायटी, इली ब्रिज, अंधेरी, बम्बई-४०००५८ ।

कृतियां : कुल दस कृतियां प्रकाशित, तीन कहानी-संग्रह, दो उपन्यास; इनमें से तीन मूलतः हिन्दी में । कुछ कहानियोंका अनुवाद हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, रूसी आदि विभिन्न भाषाओंमें ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति : 'आले' को मानवीय स्थितियोंके सुविस्तृत फलक, गहरी भावनात्मक अन्तर्दृष्टि भाषापर असाधारण अधिकार तथा शिल्प वैविध्यके लिए डोगरी साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै ।

समीक्षक : डॉ. अशोक जेरथ

जन्म : १९४६, जम्मू । **शिक्षा** : एम. ए. (हिन्दी, अंग्रेजी), डिप्लोमा बंगला, पी-एच. डी. । **कार्यक्षेत्र** : डिग्री कालेज, ऊधमपुरमें प्राध्यापक, अब आकाशवाणी जम्मूमें कार्यक्रम अधिकारी । **सम्पर्क** : १८१, मस्तगढ, जम्मू-१८०.००१ ।

कृतियाँ : उपन्यास—न टूटनेवाले पंख; कहानी-संग्रह—चेरीके फूल, आहत चीजें; बाल-साहित्य—डुग्गरकी वीर गाथाएं । सम्पादन—मधुरिमा, देवदारकी छाया तले (कहानी-संग्रह), नमियाँबारां (डोगरी लोककथाएं), जम्मू कश्मीरकी कहानियां । अनुवाद—नंगा रुक्ख, धरती अपनी अपनी (केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत) । अनुसंधान—डुग्गरकी लोक कलाएं । प्रकाश्य : चेतना प्रवाह और हिन्दी साहित्य ।

पंजाबी काव्य :

चर्चित कृति : **अनिक विस्थार**; प्रकाशक : सिंह ब्रदर्ज, माई सेवां, अमृतसर । पृष्ठ : १३५; डिमा. ८०; मूल्य : १०.०० रु. ।

कवि : प्रीतमसिंह सफीर

जन्म : अप्रैल १९१६, मलिकपुर (जि. रावलपिंडी, पाकिस्तान) । **शिक्षा** : खालसा कालेज अमृतसरसे स्नातक, लॉ कालेज लाहौरसे कानूनकी उपाधि । **कार्यक्षेत्र** : १९३८ में लाहौरमें वकालत, देश विभाजनके बाद १९४७ में उच्चतम न्यायालयमें वकालत, १९६९ में दिल्ली उच्च न्यायालयमें न्यायाधीश, १९७८ में सेवामुक्त । **सम्पर्क** : ए-२८, नीतिबाग, नयी दिल्ली-११०.०१६ ।

कृतियाँ : अबतक ग्यारह काव्य-संकलन प्रकाशित, इनमेंसे कुछ हैं : कत्तककूजां (१९४१), पाप दे सोहले (४३), राग रश्मिां (४६), रक्त बूंदां (४६), आदि जुगादि (५८) सरब कला (६६), अपार अनूप, अगम अगोचर(८१)विभिन्न अकादमिक तथा विधि-संस्थाओंसे सम्बद्ध ।

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रशस्ति :

'अनिक विस्थार' को गहन मानवीय आस्था, विशद आध्यात्मिक आदर्शवाद, गीतात्मक रहस्यवाद तथा सार्वदेशिक जीवन दृष्टिके लिए पंजाबी साहित्यको अनुपम देन माना गयाहै ।

समीक्षक : डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी

जन्म : १२ मार्च १९५०, होशियारपुर (पंजाब) । शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी, पंजाबी), पी-एच. डी. । **कार्यक्षेत्र** : अध्यापक, हिन्दी विभाग, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर ।

कृतियां : प्रथम स्वच्छन्दतावादी उपन्यासकार (१९७८), काव्य—गरम लोहा (८२) सम्पादन-सौन्दर्योपासक (उपन्यास, ७९) । प्रेसमें—हिन्दी साहित्येइतिहासकी भूमिका, कवित्ता सवैये : भाई गुरदास । □